हरियाणा खेती

2019 नववर्ष की शुभकामनाएं

ISSN-0970-6518

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार

वार्षिक चंदा 150/-

आजीवन सदस्यता 1500/-

जनवरी / पौष-माघ

S	M	T	W	T	F	S
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30	31		

फरवरी / माघ-फाल्गुन

S	M	T	W	T	F	S
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28		

मार्च / फाल्गुन-चैत्र

S	M	T	W	T	F	S
31					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30

अप्रैल / चैत्र-बैसाख

S	M	T	W	T	F	S
	1	2	3	4	5	6
7	8	9	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30				

मई / बैसाख-ज्येष्ठ

S	M	T	W	T	F	S
			1	2	3	4
5	6	7	8	9	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30	31	

जून / ज्येष्ठ-आषाढ़

S	M	T	W	T	F	S
30						1
2	3	4	5	6	7	8
9	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29

जुलाई / आषाढ़-श्रावण

S	M	T	W	T	F	S
	1	2	3	4	5	6
7	8	9	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30	31			

अगस्त / श्रावण-भाद्रपद

S	M	T	W	T	F	S
				1	2	3
4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17
18	19	20	21	22	23	24
25	26	27	28	29	30	31

सितम्बर / भाद्रपद-आश्विन

S	M	T	W	T	F	S
1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30					

अक्तूबर / आश्विन-कार्तिक

S	M	T	W	T	F	S
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30	31		

नवम्बर / कार्तिक-मार्गशीर्ष

S	M	T	W	T	F	S
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30

दिसम्बर / मार्गशीष-पौष

S	M	T	W	T	F	S
1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30	31				

अवकाश

जनवरी
13 गुरु गोबिन्द सिंह जन्म दिवस
26 गणतन्त्र दिवस

फरवरी
10 बसंत पंचमी व सर छोटू राम जयन्ती
19 गुरु रविदास जन्म दिवस

मार्च
04 महा शिवरात्रि
21 होली
23 शहीदी दिवस

अप्रैल
13 राम नवमी
14 डॉ. बी. आर. अम्बेडकर जयन्ती
17 महावीर जयन्ती

मई
07 भगवान परशुराम जयन्ती

जून
05 ईद-उल-फितर
06 महाराणा प्रताप जयन्ती
17 संत कबीर दास जयन्ती

जुलाई
31 शहीद उधम सिंह शहीदी दिवस

अगस्त
12 ईद-उल-जुहा (बकरीद)
15 स्वतन्त्रता दिवस/रक्षा बंधन
24 जन्माष्टमी

सितम्बर
23 हरियाणा वीर शहीदी दिवस
29 महाराजा अग्रसेन जयन्ती

अक्तूबर
02 महात्मा गांधी जयन्ती
08 दशहरा
13 महर्षि वाल्मीकि जयन्ती
27 दिवाली
28 विश्वकर्मा दिवस

नवम्बर
01 हरियाणा दिवस
12 गुरु नानक जयन्ती

दिसम्बर
25 बड़ा दिन

सभी रविवार व हर महीने के द्वितीय एवं चौथे शनिवार को छुट्टी रहेगी।

सीमित अवकाश

28 फरवरी	:	महर्षि दयानन्द सरसवती जयन्ती
19 अप्रैल	:	गुड फ्राईडे
18 मई	:	बुध पूर्णिमा
07 जून	:	गुरु अर्जन देव शहीदी दिवस
03 अगस्त	:	हरियाली तीज
01 सितम्बर	:	मोहर्रम
17 अक्तूबर	:	करवा चौथ
28 अक्तूबर	:	गोवर्धन पूजा
02 नवम्बर	:	छठ पूजा
10 नवम्बर	:	मिलाद-उल-नबी/ईद-ए-मिलाद
24 नवम्बर	:	गुरु तेग बहादुर शहीदी दिवस
26 दिसम्बर	:	शहीद उधम सिंह जन्म दिवस

उपर्युक्त में से वर्ष में से कोई भी तीन (3) छुट्टियां ली जा सकती हैं।

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित

© कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 52 | जनवरी 2019 | अंक 01

इस अंक में

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ
किसानों की आय दोगुनी करने के मूल मंत्र व परिणाम	अशोक कुमार ढिल्लों, सूबे सिंह एवं जोगेन्द्र सिंह	1
गेहूं में खरपतवारों की समस्या व उनकी रोकथाम	विरेन्द्र सिंह हुड्डा, मीनाक्षी सांगवान एवं समुन्द्र सिंह	2
मटर फसल के मुख्य कीट एवं रोकथाम के उपाय	रूमी रावल एवं योगेश कुमार	3
ग्रीन हाऊस/पॉलीहाऊस में टमाटर की खेती करने की उन्नत तकनीक	राजेश कुमार, विकास कुमार शर्मा एवं अनिल कुमार गोदारा	4
रबी फसलों में खरपतवार नियंत्रण कैसे करें	सतबीर सिंह पूनियां एवं विरेन्द्र हुड्डा	6
बेर के रोग एवं उनकी रोकथाम	एन.के. यादव, एच.एस.सहारण एवं विनोद कुमार मलिक	8
बसंतकालीन मक्का : वैज्ञानिक खेती	नरेन्द्र सिंह, मेहरचन्द कम्बोज एवं प्रीति शर्मा	9
हरी पालक : कम लागत–अधिक लाभ	तन्वी मेहता एवं डी. एस. दुहन	11
दलहनी फसलों का जैविक खेती में महत्व	सीमा दहिया, मीना सुहाग एवं श्वेता	12
एक्टिनोबैक्टीरिया: जैविक उर्वरक	लीलावती, कविता रानी एवं अनुपमा दहिया	21
केंचुआ खाद – काम एक : लाभ अनेक	ममता फौगाट, रीटा दहिया एवं सुनील कुमार	22
स्वास्थ्य की दृष्टि से अर्जुन की छाल का महत्व	मीनू सिरोही एवं वीनू सांगवान	22
अर्ध शुष्क क्षेत्रों के लिए कृषि वानिकी का महत्वपूर्ण वृक्ष: बरमाडेक	करिश्मा नंदा, संदीप आर्य एवं नरेन्द्र	23
फसल अवशेष प्रबन्धन में कस्टम हायरिंग सैंटरों की भूमिका	जयनारायण भाटिया, फतेह सिंह एवं प्रद्युमन भटनागर	24
बच्चों को दें : सुरक्षित वातावरण	कुसुम राणा, शीला सांगवान एवं सुमन मलिक	26
Post-Harvest Management of Fruits	Surender Singh, Mukesh Kumar and R.S. Saini	27
Safe and Judicious Use of Pesticides	Bajrang Lal Sharma and Naresh Kumar	28
Insects' Role : Reducing Malnutrition	Sangeeta Tiwari, Manisha and Narendra Kumar	30
नव वर्ष पर विशेष – कविता	सुषमा आनन्द	31

स्थाई स्तम्भ : फरवरी मास के कृषि कार्य 13

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

संकलन
डॉ. एम. एस. ग्रेवाल
परामर्शदाता (मृदा विज्ञान)
विस्तार शिक्षा निदेशालय

सह–निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह–निदेशक (हिन्दी)

सुनीता सांगवान
सम्पादक (अंग्रेजी)
प्रकाशन अनुभाग
आवरण एवं सज्जा
राजेश कुमार

लेखकों से अनुरोध : हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। टाईपिंग के लिए कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें। अपना लेख हमें ई–मेल पर भी भेज सकते हैं haryanakhetihau@gmail.com

किसानों की आय दोगुनी करने के मूल मंत्र व परिणाम

✍ अशोक कुमार ढिल्लों, सूबे सिंह[1] एवं जोगेन्द्र सिंह[1]
कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

क्रम संख्या	मूल मंत्र	परिणाम
1.	फसल एवं फार्म योजना बनाएं।	संसाधनों का समुचित उपयोग करके टिकाऊ लाभ व अधिक मुनाफा पाएं।
2.	उचित समय पर बुवाई करें।	अधिक उपज व अधिक मुनाफा पाएं।
3.	उन्नत/प्रमाणित बीज की ही बिजाई करें।	15 –20 प्रतिशत अधिक उपज पाएं।
4.	बीजोपचार (कीटनाशक/फफूंदनाशक/बायो–फर्टिलाइज़र से) करें।	कम खर्च में निरोग व स्वस्थ फसल उपजायें।
5.	उचित बीज दर से कतार में बुवाई उचित दूरी व गहराई पर करें ।	पौधों की उचित संख्या, अच्छी बढ़वार व ज़्यादा उपज लें।
6.	लेजर लेवलिंग से खेत को समतल करें।	पानी की बचत करके अधिक पैदावार लें।
7.	फसल चक्र अपनाएं।	कीट, रोगों व खरपतवारों के प्रकोप में कमी एवं खेत की उर्वराशक्ति में बढ़ोत्तरी पाएं।
8.	मिलवां–फसल (इंटर क्रॉपिंग) की बिजाई करें।	कम जोखिम व अधिक लाभ पाएं।
9.	दलहनी/तिलहनी फसलों में जिप्सम का प्रयोग करें।	उपज की गुणवत्ता के साथ–साथ भूमि की उर्वरा–शक्ति बढ़ाएं।
10.	सिंचाई की आधुनिक प्रणाली अपनाएं।	पानी के सदुपयोग के साथ–साथ पैदावार व सिंचित क्षेत्र में बढ़ोत्तरी पाएं।
11.	फसल की महत्वपूर्ण अवस्थाओं पर सिंचाई अवश्य करें।	पानी की उपलब्धता के आधार पर उचित पैदावार पाएं।
12.	मिट्टी–पानी जाँच के आधार पर संतुलित उर्वरकों का इस्तेमाल करें।	खाद के अंधाधुंध प्रयोग से बचें व कम खर्च करके अधिक पैदावार लें।
13.	गर्मी में गहरी जुताई करें।	कीट–रोग व खरपतवारों के प्रकोप में कमी पाएं।
14.	आधुनिक/उन्नत कृषि यंत्रों का उपयोग करें।	समय, श्रम व पैसा बचाएं।
15.	नकदी फसलों/सब्जियों/उद्यानिकी फसलों को अपनाएं।	निरंतर आमदनी पाएं।
16.	सब्जियों की अगेती व पछेती किस्में उगाएं।	विपणन मंडी में अधिक कीमत पाएं।
17.	समन्वित कीट नियंत्रण प्रणाली अपनाएं।	कम खर्च में कारगर कीट नियंत्रण पायें।
18.	समन्वित पोषक तत्व (खाद) प्रबंधन अपनाएं।	रासायनिक खादों पर निर्भरता घटायें।
19.	जैव प्राद्यौगिकी तथा नवीनीकरण ऊर्जा प्रौद्योगिकी अपनाएं।	भूमि और जल की प्रति इकाई उत्पादकता बढ़ाने में मदद पाएं।
20.	कृषि विविधीकरण अपनाएं।	अधिक मुनाफा पाएं।
21.	क्षरित भूमि का सुधार करें।	खेती योग्य भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाएं।
22.	समन्वित कृषि प्रणाली अपनाएं।	कम ज़मीन से किसान अपने हाथ में 24 घंटे नकदी पायें।
23.	सिफारिशानुसार अगेती व पछेती फसल लें।	विषम परिस्थितियों में भी अच्छी फसल व अधिक आमदनी पायें।
24.	कृषि आदान (बीज/दवा/खाद आदि) खरीदते समय पक्का बिल अवश्य लें।	धोखाधड़ी से बचें व आदानों की गुणवत्ता सुनिश्चित करें।
25.	उपज को सुखाकर/छानकर/ग्रेडिंग कर मण्डी में लेकर जाएं।	अनावश्यक कटौतियों से बचें व उतनी ही उपज से अधिक लाभ प्राप्त करें।
26.	नज़दीकी मंडियों के भाव व आमद की जानकारी रखें।	उचित समय पर बिक्री करके अधिक कीमत/मूल्य पायें।
27.	भण्डारण निगम की सुविधा उठाएँ।	उचित भण्डारण व विपणन के सही समय का चुनाव करके अच्छे भाव पाएं।
28.	विश्वविद्यालय के निःशुल्क नम्बर, किसान मोबाईल सन्देश व किसान कॉल सैंटर से संपर्क करें।	समय–समय पर कृषि सम्बंधित नवीनतम जानकारी प्राप्त करके अधिक आमदनी पाएं।
29.	किसान क्रेडिट कार्ड बनवाएं।	समय पर व पर्याप्त मात्रा में कम ब्याज दर पर ऋण पायें।
30.	कृषि बीमा योजना अपनाएं।	प्राकृतिक आपदाओं से होने वाली हानि से बचें।
31.	किसान स्वयं सहायता समूह, सहकारिता व किसान क्लब बनायें।	आपस में मिलजुल कर सभी को फायदा हो व अपनी शक्ति बढ़ाएं।
32.	फसल अवशेष खेत में मिलाएं।	मिट्टी में ऑर्गेनिक कार्बन बढ़ाकर खेत की उर्वरा शक्ति बढ़ाएं।
33.	सरकार द्वारा चलाये जा रहे कृषि एवं विकास कार्यों में बढ़–चढ़ कर भाग लें।	नवीनतम जानकारी प्राप्त करें, समस्या का समाधान पाएं तथा सरकारी योजनाओं का लाभ उठायें।

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, फतेहाबाद व सोनीपत

गेहूं में खरपतवारों की समस्या व उनकी रोकथाम

✍ विरेन्द्र सिंह हुड्डा, मीनाक्षी सांगवान[1] एवं समुन्द्र सिंह
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गेहूं रबी मौसम की मुख्य फसल है। नई किस्मों, खाद व पानी का समुचित प्रयोग करने से गेहूं की पैदावार प्रति एकड़ तो बढ़ी है परन्तु इसके साथ-साथ खरपतवारों की समस्या भी बढ़ गई है। प्रदेश के धान-गेहूं फसल चक्र वाले इलाकों में गुल्ली डंडा (कनकी) एक बहुत बड़ी समस्या बन गया है। इसके अलावा इन इलाकों में लोम्बड़ घास, पोआ घास, पीतपापड़ा, जंगली पालक, मैणा व मालवा की भी समस्या दिन प्रतिदिन बढती जा रही है। प्रान्त के दक्षिण पश्चिमी क्षेत्र जहाँ पर गेहूं की काश्त कपास, बाजरा, ज्वार व ग्वार के बाद की जाती है वहां पर जंगली जई, बाथू, खड़बाथू, गुल्ली डंडा, हिरणखुरी, मेथा, गजरी, प्याज़ी व कंटीली पालक खरपतवार पाये जाते हैं। अगर गेहूं की फसल में समय पर खरपतवार नियन्त्रण न किया जाये तो पैदावार में 25-75 प्रतिशत तक गिरावट आ जाती है।

गेहूं के मुख्य खरपतवार

घास जाति के खरपतवार : गुल्ली डंडा या कनकी, जंगली जई, पोआ घास या घुई, लोम्बड़ घास, राई घास आदि।

चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार : बाथू, जंगली पालक, खड़बाथू, मैणा, मेथा, हिरणखुरी, कृष्णनील, पीतपापड़ा, चटरी, मटरी, मालवा (सोंचल), प्याज़ी, गजरी व कंडाई आदि।

खरपतवारों की रोकथाम : गेहूं की फसल में खरपतवारों की रोकथाम दो तरीकों से की जाती है।

गुड़ाई द्वारा : अगर सम्भव हो तो कोर लगाने के 10 दिन बाद कसोले या खुरपे से एक बार निराई गुड़ाई करें। परन्तु घास जाति के खरपतवार शुरू की अवस्था में गेहूं के पौधे से मिलते जुलते होने के कारण इन्हें गुड़ाई द्वारा निकालना सम्भव नहीं है। अत: इन हालातों में खरपतवारनाशक का प्रयोग बहुत ज़रूरी है।

खरपतवारनाशकों के प्रयोग द्वारा : प्रदेश के धान-गेहूं फसल चक्र वाले क्षेत्रों में पिछले 20 साल पहले कनकी खरपतवार में आइसोप्रोटयुरोन नामक खरपतवारनाशक के प्रति प्रतिरोधिता आ गई थी परन्तु अब पिछले 3-4 वर्षों से अन्य खरपतवारनाशकों में भी यह प्रतिरोधिता बढती जा रही है। विभिन्न खरपतवारनाशकों द्वारा गेहूं में खरपतवार नियन्त्रण की विधि नीचे दी गई है-

जिन खेतों में केवल चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार हों वहां पर 2, 4-डी या अलग्रिप (मैटसल्फ्यूरोन) का प्रयोग करने से ही खरपतवारों का नियंत्रण अच्छी प्रकार से हो जाता है। पिछले कुछ सालों में जंगली पालक की समस्या ज़्यादा देखने को मिल रही है। अत: जिन खेतों में जंगली पालक की समस्या हो वहां पर केवल अलग्रिप (मैटसल्फ्यूरोन) का ही प्रयोग करें क्यूंकि जंगली पालक का नियंत्रण 2, 4-डी से नहीं होता। अलग्रिप जंगली पालक के साथ-साथ बाथू, प्याज़ी, मेथा, सैंजी, मैणा, पीतपापड़ा आदि को भी नियंत्रित करती है। हिरणखुरी व मालवा

[1] कृषि विज्ञान केन्द्र, रोहतक

गेहूं की फसल में चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु प्रयोग किये जाने वाले खरपतवारनाशक

खरपतवारनाशक	मात्रा (ग्रा./मि.ली.) प्रति एकड़	दवाई डालने का समय
अलग्रिप (मैटसल्फ्यूरोन)	8	बिजाई के 35-45 दिन बाद
2,4-डी सोडियम साल्ट (पाऊडर)	250	वही
2,4-डी अमाइन व ईस्टर तरल पदार्थ	300	वही
एफिनिटी (कारफैंट्राजोन)	20	वही
ऐलीएक्सप्रेस (कारफैंट्राजोन+मैटसल्फ्यूरोन का तैयार मिश्रण)	20	वही

गेहूं की फसल में घास जाति वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु प्रयोग किये जाने वाले खरपतवारनाशक

खरपतवारनाशक	मात्रा (ग्रा./मि.ली.) प्रति एकड़	दवाई डालने का समय
पीनोक्साडेन 5 ई.सी. (एक्सिअल)	400	बिजाई के 35-40 दिन बाद
क्लोडीनाफोप 15 डब्ल्यू. पी. (टोपिक, प्वाइंट, रक्षक प्लस, जय विजय, मुल्लाह, टोपल आदि)	160	वही
फिनोक्साप्रोप-इथाइल (प्यूमा पावर)+ चिपचिपा पदार्थ	400+200	वही
सल्फोसल्फ्यूरोन-75 डब्ल्यू. जी. (लीडर, सफल-75, एस. एफ.-10)+ चिपचिपा पदार्थ	13+500	वही
आइसोप्रोट्थुरोन 75 डब्ल्यू. पी.	500	वही

गेहूं की फसल में मिश्रित खरपतवारों के नियंत्रण हेतु प्रयोग किये जाने वाले खरपतवारनाशक

खरपतवारनाशक	मात्रा (ग्रा./मि.ली.) प्रति एकड़	दवाई डालने का समय
टोटल (सल्फोसल्फ्यूरोन+मैटसल्फ्यूरोन)+ चिपचिपा पदार्थ	16+500	बिजाई के 35-40 दिन बाद
अटलांटिस (मिजोसल्फ्यूरोन+आइडोसल्फ्यूरोन)+ चिपचिपा पदार्थ	160+200	वही
अकोर्ड प्लस (फिनोक्साप्रोप+मेट्रीबुजिन)	500	वही
वेस्ता (क्लोडीनाफोप+मैटसल्फ्यूरोन)	160	वही
पीनोक्साडेन+एलग्रिप/एफिनीटी/2,4-डी	400+8/20/250	वही
पेंडीमेथालिन 30 ई.सी. (स्टॉम्प)	2000	बिजाई के तुरंत बाद

खरपतवार का नियंत्रण केवल एफिनिटी (कारफैंट्राजोन) द्वारा व गजरी का नियंत्रण केवल 2, 4-डी या ऐलीएक्सप्रेस (कारफैंट्राजोन + मैटसल्फ्यूरोन का तैयार मिश्रण) द्वारा ही सम्भव है ।

नोट :- 1. खरपतवारनाशक-प्रतिरोधी मंडूसी या गुल्ली डंडा के प्रबंधन के लिए पेंडीमेथालिन 30 ई.सी. को 2 लीटर प्रति एकड़ की दर से 200 लीटर पानी में घोल बनाकर बिजाई के तुरन्त बाद छिड़काव करें तथा बिजाई के 35 दिन बाद किसी एक सिफारिशशुदा खरपतवारनाशक (क्लोडीनाफोप 15 डब्ल्यू. पी. 160 ग्रा. प्रति एकड़ या पीनोक्साडेन 5 ई.सी. 400 मि.ली. प्रति एकड़ या सल्फोसल्फ्यूरोन 75 डब्ल्यू. जी. 13 ग्रा. प्रति एकड़ या सल्फोसल्फ्यूरोन+मैटसल्फ्यूरोन 80 डब्ल्यू. जी. (तैयार मिश्रण) या मिजोसल्फ्यूरोन+आइडोसल्फ्यूरोन 3.6 डब्ल्यू. डी. जी. 160 ग्रा. प्रति एकड़ (तैयार मिश्रण) का छिड़काव करें। इनमें से जिस खरपतवारनाशक ने गत वर्ष अच्छे परिणाम नहीं दिए हैं उसका प्रयोग न करें तथा खरपतवारनाशकों का अदल-बदल कर प्रयोग करें। पेंडीमेथालिन के छिड़काव के समय भूमि की ऊपरी सतह पर भरपूर नमी होनी चाहिए।

नोट :- 2. अगर फसल में केवल कनकी व जंगली जई की समस्या है तो क्लोडीनाफोप, फिनोक्साप्रोप या पीनोक्साडेन का ही इस्तेमाल करें परन्तु चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार इकट्ठे हों तो टोटल, सल्फोसल्फ्यूरोन, एटलांटिस, अकोर्ड प्लस या वेस्ता का इस्तेमाल करें।

नोट :- 3. गेहूं-धान फसल चक्र में जहाँ फिनोक्साप्रोप, क्लोडीनाफोप से कनकी की रोकथाम नहीं हो रही वहां पीनोक्साडेन, सल्फोसल्फ्यूरोन, एटलांटिस या अकोर्ड प्लस का इस्तेमाल करें।

नोट :- 4. अकोर्ड प्लस गेहूं की कुछ किस्मों (पी बी डब्ल्यू 550, डब्ल्यू एच 542, डब्ल्यू. एच. 283, एच डी 2894

नोट :- 5. एफिनिटी (कारफैंट्राजोन) अकेले या पीनोक्साडेन के साथ मिलाकर छिड़कने से भी गेहूं के पौधों पर गोल निशान पड़ जाते हैं लेकिन 3-4 सप्ताह बाद ठीक हो जाते हैं व गेहूं की पैदावार पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता।

खरपतवारनाशकों के प्रयोग हेतु निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए

- खरपतवारनाशकों की सिफारिश की गई मात्रा का छिड़काव 150-200 लीटर पानी में मिलाकर फ्लैट फैन नोज़ल युक्त हस्त चालित स्प्रे पम्प द्वारा करना चाहिए व छिड़काव एकसार होना चाहिए।
- खरपतवारनाशक का छिड़काव तर बत्तर खेत में ही करें। अगर बत्तर खुश्क हो जाए तो स्प्रे के लिए पानी की ज़्यादा मात्रा का प्रयोग करें।
- अगर 2, 4-डी का छिड़काव ऊपर बताये गए समय से अगेता या पछेता हो जाये तो गेहूं में बालें टेढ़ी मेढ़ी निकलती हैं तथा पैदावार में भारी कमी आ जाती है।
- फिनोक्साप्रोप, क्लोडीनाफोप व सल्फोसल्फ्यूरोन के साथ 2, 4-डी, एफिनिटी या अलग्रिप मिलाकर छिड़काव करने से इन दवाइयों का गुल्ली डंडा (कनकी) व जंगली जई पर नियंत्रण कम हो जाता है इसलिए अगर गुल्ली डंडा (कनकी) के लिए फिनोक्साप्रोप, क्लोडीनाफोप व सल्फोसल्फ्यूरोन का प्रयोग किया गया है तो इसमें 7-10 दिन बाद 2,4-डी का छिड़काव करें। *(शेष पृष्ठ 8 पर)*

मटर फसल के मुख्य कीट एवं रोकथाम के उपाय

✍ **रूमी रावल एवं योगेश कुमार**
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मटर एक महत्वपूर्ण सब्जी की फसल है। इसे रबी में उगाया जाता है व इसका प्रयोग ताज़ा, डिब्बाबंद व सूखी मटर में किया जाता है। इसमें प्रचुर मात्रा में प्रोटीन, फास्फोरस, कार्बोहाइड्रेट, पोटाशियम एवं विटामिन पाए जाते हैं। स्वाद एवं पौष्टिकता की दृष्टि से दलहनी फसलों में ये मुख्य फसल है लेकिन इसके सफल उत्पादन में हानिकारक कीट एक मुख्य बाधा है जोकि पैदावार को काफी कम कर देते हैं। परन्तु किसान समय पर हानिकारक कीटों की पहचान व उनकी रोकथाम के तरीकों को अपनाकर मटर की अच्छी पैदावार ले सकते हैं। इन कीटों का विवरण एवं प्रबंधन नीचे दिया गया है।

चुरड़ा : इस कीट के शिशु व प्रौढ़ छोटी फसल की पतियों पर रहकर रस चूसते हैं जिससे पतियां मुड़ जाती हैं और सूख जाती हैं और पैदावार कम होती है।

रोकथाम : इस कीट की रोकथाम के लिए 60 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 10 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।

चेपा : इस कीट के शिशु एवं प्रौढ समूह में रहकर मटर की कोमल पत्तियों की निचली सतह, कलियों, फूलों तथा फलियों से रस चूसते हैं। कीटों से प्रकोपित पौधे छोटे रह जाते हैं तथा उनकी पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। कीट से ग्रसित फलियां छोटी रह जाती हैं और उनमें हल्का बीज बनता है।

रोकथाम : इस कीट के नियंत्रण के लिए 400 मि.ली. डाइमैथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. या 500 मि.ली. आक्सीडिमेटोन मिथाईल (मैटासिस्टॉक्स) 25 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। ज़रूरत पड़ने पर 15 दिन के बाद अगला छिड़काव करें ।

सुरंगी कीड़ा : इस कीट का आक्रमण पौधे की प्रारंभिक अवस्थाओं से ही शुरू हो जाता है। इस कीट की इल्लियां पतियों में सुरंग बनाकर हरे पदार्थ क्लोरोफिल को खा जाती हैं जिससे पत्तियों में सफेद रंग की धारियां बन जाती हैं। पत्तियां मुरझाकर सूख जाती हैं एवं फूल और फलियां बहुत कम लगते हैं।

रोकथाम : इस कीट के नियंत्रण के लिए फसल की सही समय पर बुवाई करनी चाहिए।

फल बेधक सूण्डियां : देर से बोई गई फसल में इस कीट का आक्रमण अधिक होता है। इस कीट की सूण्डियां फलियां शुरू होने पर आती हैं। ये सूण्डियां फलियों में छेद करके अंदर घुसकर दानों को खा जाती हैं। इस कारण फलियां उपयोग करने योग्य नहीं रह जातीं।

रोकथाम : इस कीट के नियंत्रण के लिए 600 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 10 ई.सी को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ में छिड़काव करें। अगर आवश्यकता पड़े तो अगला छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर करें ।

ग्रीन हाऊस/पॉलीहाऊस में टमाटर की खेती करने की उन्नत तकनीक

✍ राजेश कुमार, विकास कुमार शर्मा एवं अनिल कुमार गोदारा
उद्यान विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

उत्पादन व पोषकता की दृष्टि से टमाटर एक महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय सब्जी की फसल है। सोलेनेसी परिवार की सब्जी वाली फसलों में टमाटर प्रमुख व्यावसायिक फसल है। इसमें कार्बोहाइड्रेट, विटामिन, कैल्शियम, आयरन तथा अन्य खनिज लवण प्रचुर मात्रा में उपस्थित रहते हैं। इसके फल में लाइकोपीन नामक वर्णक पाया जाता है जिसे विश्व का सबसे महत्त्वपूर्ण एंटीऑक्सीडेंट कहा जाता है। इन सबके अलावा कैरोटिनायड्स एवं विटामिन भी टमाटर में बहुतायत मात्रा में पाये जाते हैं। ताज़े फल के अतिरिक्त टमाटर को परिरक्षित करके चटनी, जूस, अचार, सॉस, कैचप, प्यूरी इत्यादि के रूप में उपयोग में लाया जाता है।

पॉलीहाऊस में टमाटर उत्पादन की अपार संभावनाएं हैं क्योंकि खुले वातावरण में तैयार टमाटर की फसल कम गुणवत्ता व कम पैदावार वाली होती है तथा बीमारी व कीटों से बचाने के लिए किसान इस फसल पर अत्यधिक छिड़काव करते हैं जिसके कारण वातावरण प्रदूषित होता है तथा लोगों/उपभोक्ताओं को विभिन्न घातक बीमारियां होने का डर बना रहता है।

जलवायु : टमाटर की अच्छी उपज में तापमान का बहुत बड़ा योगदान होता है। ग्रीनहाऊस में फसल के लिए आर्दश तापमान दिन में 22-23 डिग्री सेल्सियस तथा रात्रि में 18-20 डिग्री सेल्सियस तथा आर्द्रता 70-75 प्रतिशत के मध्य होनी चाहिए। तापमान अधिक होने पर फूल एवं अपरिपक्व फल टूटकर गिरने लगते हैं। जब तापमान 13 डिग्री सेल्सियस से कम एवं 35 डिग्री सेल्सियस से ज़्यादा होता है तब परागण का अंकुरण बहुत कम हो जाता है अत: पॉलीहाऊस में इन वातावरणीय कारकों को आसानी से नियंत्रित करके भरपूर फसल ले सकते हैं।

भूमि का चुनाव एवं खेत की तैयारी : टमाटर की खेती के लिए समुचित जलनिकास वाली जीवाष्म युक्त बलुई दोमट या दोमट भूमि, जिसका पी. एच. मान 6.5-7.5 के बीच हो, उपयुक्त होती है। तैयार पौध की रोपाई से पहले खेत की पहली गहरी जुताई मिट्टी पलट हल से करें, तत्पश्चात 3-4 आड़ी-तिरछी जुताई कल्टीवेटर से करके मिट्टी को भुरभुरी व समतल बना लेना चाहिए।

खाद व उर्वरक : खाद व उर्वरक की मात्रा का निर्धारण हमेशा मिट्टी की जांच के आधार पर करना हितकर होता है। टमाटर के सफल उत्पादन के लिए सामान्य तौर पर 10 टन गोबर की खाद प्रति एकड के हिसाब से जुताई से पहले डालकर अच्छी तरह मिट्टी में मिला दें। ऊर्वरकों में 200 किलोग्राम नाइट्रोजन, 62 किलोग्राम फास्फोरस तथा 240 किलोग्राम पोटाश की मात्रा का प्रति एकड़ प्रयोग टपका सिंचाई विधि द्वारा करें।

उन्नत किस्मों का चयन : टमाटर की वृद्धि करने की प्रवृत्ति के अनुसार इसे तीन वर्गों में बांटा गया है-





1. असीमित वृद्धि करने वाले
2. सीमित वृद्धि करने वाले
3. अर्द्ध-सीमित वृद्धि करने वाले

पॉलीहाउस में मुख्य रूप से बेलनुमा टमाटर की किस्में (असीमित वृद्धि करने वाली) लगायी जाती हैं जोकि लगातार बढ़ती रहती हैं तथा पौधों पर फल गुच्छों के रूप में लगते हैं। इसके फलों का औसत भार 50-100 ग्राम प्रति फल होता है। असीमित वृद्धि वाली किस्मों में पुष्पन के उपरान्त भी वानस्पतिक कलिका का निर्माण होता रहता है, जबकि सीमित वृद्धि वाली किस्मों में पुष्पकलिका में निर्माण के साथ वानस्पतिक वृद्धि रुक जाती है। पॉलीहाउस में चैरी टमाटर की किस्में भी असीमित बढ़वार करने वाली होती हैं। इन किस्मों में फल गुच्छे में लगभग 15-20 फल एक साथ लगते हैं।

नर्सरी : टमाटर का बीज कीमती होने की वजह से इसे प्लग ट्रे में उगाना हितकर होता है। एक हैक्टेयर खेत के लिए संकर टमाटर का 250-300 ग्राम बीज पर्याप्त होता है। बोने से पहले बीज की श्रेणी तथा उसकी वैधता, जमाव आदि पैकेट पर अच्छी तरह देख लें। फिर बीज को 1-2 सैंटीमीटर गहराई में ट्रे में बो दें। बीज प्रतिरोपण के बाद टमाटर की पौध 5-6 सप्ताह में तैयार हो जाती है।

पौध की रोपाई : पॉलीहाऊस की मिट्टी को 4-5 बार गहरी जुताई करके भुरभुरी बना लेनी चाहिए एवं मिट्टी में गोबर की खाद को अच्छी तरह मिला देना चाहिए। पौधों के बीज की दूरी सामान्यतया फसल की किस्म तथा भूमि की उत्पादन क्षमता पर निर्भर करती है। ग्रीन हाऊस में सूक्ष्म सिंचाई (ड्रिप) के द्वारा पानी दिया जाता है तो (30×60 सैंटीमीटर व 30×45 सैंटीमीटर) में रोपण करना अनुकूल रहता है। रोपाई के तुरंत पश्चात सिंचाई करें।

सिंचाई : प्रारंभ में पौध रोपने के बाद हल्की सिंचाई करें यदि संभव हो तो यह सिंचाई फुहारे के द्वारा करें। टमाटर के पौधे मिट्टी में नमी की असमानता के प्रति अति संवेदनशील हैं। सिंचाई का अन्तराल टमाटर के उत्पादन के साथ-साथ गुणवत्ता को भी प्रभावित करता है। इनकी पॉलीहाउस मे सिंचाई बूंद-बूंद पद्धति से करते हैं।

निराई-गुड़ाई और मिट्टी चढ़ाना : पॉलीहाऊस में निराई-गुड़ाई की कम आवश्यकता पड़ती है फिर भी प्रत्येक सिंचाई के बाद निराई-गुड़ाई

करने से वायु संचार बढ़ता है जिससे जड़ों का अच्छा विकास होता है। टमाटर के पौधों की जड़ के पास सतह से ऊपर की तरफ पत्तियों की गांठों तक मिट्टी चढ़ाते हैं ताकि उन गांठों से भी जड़ें निकल आएं जो मिट्टी से पोषक तत्व खींचकर पौधों को पहुंचाती हैं। इससे फसल उत्पादन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

पौधों को सहारा देना तथा कटाई-छंटाई करना : पॉलीहाऊस में पौधों की कटाई-छंटाई बहुत ही आवश्यक है जिसके लिए कटाई-छंटाई करने वाले कुशल मज़दूरों की आवश्यकता होती है। बाद में पौधों से आने वाली अन्य शाखाओं को कटाई-छंटाई के द्वारा हटा दिया जाता है। इस प्रक्रिया में अनचाही शाखाएं और पत्तियों को ब्लेड या तेज़ धार के चाकू से काटकर अलग कर देते हैं। अनिर्धारित टमाटर की प्रजाति में पौधों को रस्सियों से सहारा देते रहते हैं, क्योंकि उनकी ऊँचाई 10 फीट से अधिक हो जाती है तथा फल भी अधिक लगते हैं। इस प्रकार हमारी फसल का ज़्यादातर हिस्सा ज़मीन पर लगने से खराब हो सकता है। अत: पौधों को एक प्लास्टिक की रस्सी के सहारे लपेटकर ऊपर की ओर चढ़ाया जाता है।

परागण : यह एक स्वपरागित फसल है परन्तु पॉली हाऊस में हवा का बहाव न होने के कारण परागण उचित तरह से नहीं हो पाता है। फलस्वरूप फल कम संख्या में बनते हैं एवं उपज में काफी गिरावट आ जाती है, अत: पॉली हाऊस में परागण की क्रिया बहुत महत्तवपूर्ण है, इसके लिए बैटरी से चलने वाले वाइब्रेटर का प्रयोग किया जाता है।

फसल सुरक्षा : हानिकारक कीट व उनकी रोकथाम

1. **सफेद मक्खी :** यह सफेद पंखों वाला छोटा सा कीड़ा है जिसका शरीर पीले रंग का होता है। शिशु व प्रौढ पत्तों की निचली सतह से रस चूसते हैं जिससे पत्ते पीले पड़ जाते हैं। यह मक्खी मरोड़िया (विषाणु) रोग फैलाती है। इसका प्रकोप बरसात की फसल में होता है। इस कीट के नियंत्रण के लिए 400 मिली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करें। पॉलीहाऊस में सफेद मक्खी को आकर्षित करने के लिए पीले प्रपंच (चिपचिपे ट्रैप) लगाने चाहिएं।

2. **लीफ माइनर :** यह पीले रंग का लारवा होता है तथा पत्तियों के नीचे की ओर रहकर उसमें से रस चूसकर नुकसान करता है। जिस कारण पत्ते का आकार उल्टी नाव जैसा हो जाता है। अगर फसल में इसका प्रकोप अधिक है तो पत्ते भूरे रंग के होकर नीचे गिरने लगते हैं। इसकी रोकथाम के लिए प्रोपेनोफॉस 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर दवा का छिड़काव करना चाहिए।

3. **चेपा :** ये कीड़े हरे रंग के जूं की तरह होते हैं और पत्तों की निचली सतह से रस चूस कर काफी हानि पहुँचाते हैं। चेपा विषाणु रोग भी फैलाता है। 300 मिली. डाई मैथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. या ऑक्सीडैमेटान मिथाइल (मैटासिस्टॉक्स) 25 ई.सी.को 200-300 लीटर पानी में घोलकर एक एकड़ में छिड़काव करें। यदि आवश्यकता हो तो छिड़काव 10 दिन के अन्तर पर करें।

4. **फल छेदक सूण्डी :** यह हरे या पीले-भूरे रंग की सूण्डी है। ये सूण्डियां कोमल पत्तियों को खाती हैं। कलियां, फूलों व फलों में सुराख कर देती हैं। ग्रसित फल बाद में सड़ जाते हैं। मध्य मार्च के आस-पास पत्तों पर जैसे ही फल छेदक के अण्डे दिखाई दें तो 20,000 ट्राइकोग्रामा किलोनिस परजीवी छोड़ें व इसके चार दिन बाद पुन: 20,000 परजीवी प्रति एकड़ फसल पर छोड़ें। इसके बाद 10-10 दिन के अन्तर पर 1.0 लीटर निम्बीसिडीन, 400 ग्राम बेसीलस थुरिनजियंसिस (बीटी) 400 ग्राम कार्बेरिल 50% घु. पा. को 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

रोग व उनकी रोकथाम :

1. **आर्द्रगलन रोग :** यह पौधशाला (नर्सरी) की बहुत गंभीर बीमारी है इस रोग से पौधे अंकुरण से पहले और बाद में भी मर जाते हैं। बिजाई से पहले बीज का उपचार 2.5 ग्राम एमीसान या कैप्टान या थाईरम दवा एक किलो बीज में मिलाकर करें। उगने के बाद 0.2 प्रतिशत (2 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में) कैप्टान के घोल से नर्सरी की सिंचाई करें।

2. **पत्ती मरोड़ व काली धारियों वाला तथा मौजेक आदि विषाणु रोग :** पौधों की बढ़वार रुक जाती है, पत्तियां मोटी, भद्दी तथा मुड़ी हुई हो जाती हैं। तने पर धारियां पड़ जाती हैं। फल बहुत ही छोटा रह जाता है जो मरा हुआ-सा दिखाई देता है। स्वस्थ व रोग रहित बीज लें, बीमारी फैलाने वाले कीड़ों की नर्सरी व खेतों में रोकथाम करें। 10-15 दिन के अन्तर पर कीटनाशक दवाइयों का छिड़काव करें। जैसा कि सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए बताया गाया है। रोगी पौधों को आरम्भ में ही निकाल कर नष्ट कर दें।

3. **ब्लोजम एंड रोट :** यह रोग कैल्शियम की कमी की वजह से होता है। कैल्शियम की कमी के कारण फल पर काले धब्बे पड़ जाते हैं। फल की उत्पादकता में कमी आ जाती है तथा गुणवत्ता पर भी गहरा असर होता है। सप्ताह में 2 बार कैल्शियम को ड्रिप में देना चाहिए और 1 प्रतिशत कैल्शियम नाईट्रेट का छिड़काव करने से इस रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

4. **जड़ गांठ रोग :** यह निमेटोड जनित रोग है। इस रोग के कारण पौधों की वृद्धि रुक जाती है। जिससे पत्तियां पीली होकर सिकुड़ जाती हैं। पुष्प व फल बहुत कम मात्रा में बनते हैं। इसकी रोकथाम के लिए नर्सरी में कार्बोफ्यूरान (फ्यूराडान-3 दानेदार), 7 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से भूमि में मिलायें। मई व जून में खेत की 2 से 3 गहरी जुताई, 10-15 दिन के अन्तर से करने से सूत्र कृमियों की संख्या बहुत घट जाती है। सूत्रकृमि ग्रसित खेतों में टमाटर की हिसार ललित किस्म लगाएं।

नोट : कीटनाशकों का छिड़काव फल तोड़ने से तीन सप्ताह पहले बंद कर दें। इन दवाइयों के साथ बोर्डो मिश्रण को न मिलाएं परन्तु कॉपर ऑक्सीक्लोराइड मिला सकते हैं। कीट ग्रसित फल तोड़कर मिट्टी में मिला दें।

रबी फसलों में खरपतवार नियंत्रण कैसे करें

✍ सतबीर सिंह पूनियां एवं विरेन्द्र हुड्डा
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारतवर्ष की अत्यधिक दर से बढ़ती जनसंख्या के लिए अधिक मात्रा में खाद्यान्न, सब्जियों व फलों का उत्पादन अतिआवश्यक है ताकि हर आदमी को समुचित व संतुलित भोजन प्राप्त हो सके। सभी प्रकार की फसलों के अधिक उत्पादन के लिए गुणवत्ता वाले बीज व संतुलित खाद, उचित मात्रा व अवस्था में सिंचाई, समय पर बिजाई या रोपाई एवं फसलों की बीमारियों, कीटों व खरपतवारों की रोकथाम बहुत ज़रूरी है जिसके लिए आधुनिक कृषि क्रियाओं को अपनाना ज़रूरी है। आज खाद्यानों की कमी के कारणों का विश्लेषण करें तो हमें पता चलेगा कि फसलों में विभिन्न नाशकों द्वारा लगभग 1,07,000 करोड़ रूपये के बराबर की वार्षिक हानि होती है। जिसमें अकेले खरपतवारों के कारण 37 प्रतिशत हानि होती है जबकि कीड़ों से 22 प्रतिशत व बीमारियों से 29 प्रतिशत होती है। फसलों में होने वाले नुकसान में खरपतावारों का योगदान बहुत ज़्यादा है जो पैदावार को 10-60 प्रतिशत व कई बार इससे भी अधिक कम कर देते हैं।

खरपतवारों के कारण न केवल फसलों का उत्पादन कम होता है बल्कि उत्पादित फसल व बीज की गुणवत्ता भी कम हो जाती है। खरपतवार न केवल फसल को मिलने वाले पोषक तत्वों (नाईट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश) को फसलों से चुरा लेते है बल्कि हमारी भूमि से पानी को भी अवशोषित कर लेते हैं। जिसके कारण जहां 5 सिंचाई की आवश्यकता होती है वहां किसान को ज़्यादा पानी देना पड़ता है। इसलिए समय पर खरपतवार नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है। इसके अलावा खरपतवार कीड़े व बीमारियों को बढ़ावा देते हैं। अत: फसलों की सही पैदावार एवम् बीजों की गुणवत्ता के लिए खरपतवारों की रोकथाम अनिवार्य है।

जब से मनुष्य ने खेती आरम्भ की है तभी से खरपतवार फसलों से प्रतिस्पर्धा करते रहे हैं व इनको सम्पूर्ण रूप से खत्म करना सम्भव नहीं है परन्तु इनसे होने वाले नुकसान को कम अवश्य किया जा सकता है। खरपतवार नियंत्रण के अनेक उपाय उपलब्ध हैं। लेकिन किसी एक उपाय से इनको अधिक समय तक रोक पाना सम्भव नहीं है व इसके लिए एक समन्वित कार्यक्रम की आवश्यकता है। इसके लिए सही किस्म का चुनाव, खेती की तैयारी (तप्पड़ बिजाई), बीजने का समय, बीज की मात्रा, खाद की मात्रा व सिंचाई की विधि व समय महत्वपूर्ण हैं। जिनके सही चुनाव से खरपतवारों से होने वाले नुकसान को काफी कम किया जा सकता है। निराई-गुड़ाई करके खरपतवारों को नष्ट करने का तरीका सदियों पुराना है व आज भी कारगर है। खुरपा, कस्सी, कसोले, व्हील हैण्ड हो व हाथ से खरपतवारों को आसानी से नष्ट किया जा सकता है। चौड़ी कतार वाली फसलों में कल्टिवेटर चलाकर भी खरपतवारों को नष्ट किया जा सकता है। निराई-गुड़ाई से न केवल खरपतवारों का नियंत्रण होता है बल्कि पौधों की जड़ों को हवा भी मिलती है व खेत में नमी का संरक्षण होता है। जो अधिक पैदावार में सहायक है। लेकिन निराई-गुड़ाई हर जगह सम्भव नहीं है। समय पर मज़दूर न मिलना, मज़दूरी की अधिक लागत, खेत की अवस्था व बारिश के मौसम में निराई-गुड़ाई सम्भव नहीं है। अक्सर खरपतवार फसल से पहले उग जाते हैं व फसल के अन्दर एक से अधिक बार उगने व अलग-अलग खरपतवारों के कारण निराई-गुड़ाई कई बार करनी पड़ती है जो हर जगह सम्भव नहीं है व उत्पादक लागत को बढ़ा देती है, ऐसी अवस्था में खरपतवारनाशकों का प्रयोग कर खरपतवारों पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

खरपतवारनाशक खरपतवारों को उगने से पहले नष्ट कर देते हैं जिससे फसलों में होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है। खरपतवारनाशकों के प्रयोग में सावधानी आवश्यक है वरना ये फसल को भी नुकसान पहुंचा सकते हैं। खरपतवारनाशकों की उचित मात्रा, समय पर उपचार/ छिड़काव, उचित 'नोज़ल', छिड़काव के लिए पानी की मात्रा व विधि अपनाकर खरपतवारों को आसानी से नष्ट किया जा सकता है।

लगातार एक ही खरपतवारनाशक के प्रयोग से खरपतवारों में प्रतिरोधकता आ सकती है। अत: फसल चक्र व खरपतवारनाशकों का बदल-बदल कर प्रयोग करें। कोई भी एक खरपतवारनाशक सभी खरपतवारों को नष्ट नहीं करता। अत: एक से अधिक खरपतवारनाशकों को मिलाकर या एक के बाद दूसरे का छिड़काव करने से खरपतवारों का नियंत्रण कर सकते हैं।


कनकी


पोआ


जंगली जई


लोमड़ घास


बाथू


कृष्ण नील


जंगली पालक


मालवा/सौंचल


हिरणखुरी

- जहां कनकी में रोधकता आ चुकी है वहां इन खरपतवारनाशकों का प्रयोग न करें।
- इन खरपतवारनाशकों के छिड़काव के 150 दिन तक गेहूं के बाद ज्वार, मक्का, बाजरा या दाल वाली फसलें न बीजें।
- गेहूं की कुछ किस्में अकॉर्डप्लस के प्रति संवेदनशील हैं व गेहूं को कुछ नुकसान पहुंचा सकती हैं। यद्यपि छिड़काव के 1 महीने बाद नुकसान कम हो जाता है। लेकिन सावधानी अवश्य बरतें।

तालिका 1 : मुख्य रबी फसलों में प्रयुक्त खरपतवारनाशकों के प्रयोग की मात्रा एवम् छिड़काव का समय।

फसल	खरपतवारनाशक	प्रयोग का समय	मात्रा (मि.ली. या ग्रा. प्रति एकड़)
गेहूं	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के लिए		
	2, 4-डी	बिजाई के 30-35 दिन बाद	250-500
	एलग्रिप	बिजाई के 30-35 दिन बाद	8
	एफीनिटी'	बिजाई के 30-35 दिन बाद	20
	संकरी पत्ती वाले खरपतवारों के लिए		
	आइसाप्रोट्युरान'	बिजाई के 30-35 दिन बाद	500
	टोपीक व अन्य '	बिजाई के 30-35 दिन बाद	160
	प्यूमा पावर'	बिजाई के 30-35 दिन बाद	400
	एक्सियल	बिजाई के 30-35 दिन बाद	400
	लीडर, सफल व एस.एफ. 10''	बिजाई के 30-35 दिन बाद	135
	दोनों प्रकार की खरपतवारों के लिए		
	एंटलांटिस''	बिजाई के 30-35 दिन बाद	160
	टोटल''	बिजाई के 30-35 दिन बाद	16
	अकोर्ड प्लस'''	बिजाई के 30-35 दिन बाद	500
	एक्सियल + एलग्रिप	बिजाई के 30-35 दिन बाद	400+8
	एक्सियल + ऐफिनिटी'	बिजाई के 30-35 दिन बाद	400+20
	एक्सियल + 2, 4 डी	बिजाई के 30-35 दिन बाद	400+500
	आइसोप्रोट्युरान + 2,4 डी	बिजाई के 30-35 दिन बाद	500+500
	स्टोम्प	बिजाई के 1-2 दिन बाद	2000
जौ	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के लिए		
	2, 4-डी	बिजाई के 30-35 दिन बाद	250-500
	एलग्रिप	बिजाई के 30-35 दिन बाद	8
	एफेनिटी'	बिजाई के 30-35 दिन बाद	20
	संकरी पत्ती वाले खरपतवारों के लिए		
	एक्सियल	बिजाई के 30-35 दिन बाद	400
चना, मसर,	स्टोम्प	बिजाई के 1-2 दिन बाद	1000-2000
राया, सरसों	स्टोम्प	बिजाई के 1-2 दिन बाद	2000
गन्ना	2, 4 डी	50-90 दिन बाद	2000
	एट्राजिन	बिजाई के तुरन्त बाद	1600

- एफीनिटी से गेहूं व जौ के पत्तों पर गोल धब्बे बन जाते हैं लेकिन 3-4 सप्ताह बाद ये खत्म हो जाते हैं व फसल की पैदावार पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता।

तिलहनी एवम् दलहनी फसलें ज़्यादातर वर्षा पर निर्भर करती हैं तथा अधिकतर वर्षा की दबी हुई नमी में खासकर रबी मौसम में बीजी जाती हैं। अत: ऐसी स्थिति में खेत की ऊपरी सतह सूखी रहती है इसलिए ज़मीन पर डाली जाने वाली खरपतवारनाशक रसायन की सिफरिश नहीं की जाती क्योंकि सूखी ज़मीन में इन दवाओं का असर खरपतवार नियंत्रण पर असरदार नहीं पाया गया है। अत: ऊपर बताई गई अलग-अलग दवाएं खासकर दलहनी एवम् तिलहनी फसल में केवल उसी अवस्था में सुनिश्चित करें जब इन फसलों को पहले पानी लगाकर यानि पलेवा देकर या बरसात की पूरी नमी हो अन्यथा किसी खरपतवारनाशक का उपयोग न करें। जहां तक सम्भव हो सके, निराई-गुड़ाई का तरीका ही अपनाएं। इस विधि/तरीके को अपनाने से बीज की गुणवत्ता बढ़ती है, साथ-साथ फसल की पैदावार भी अच्छी होती है।



स्प्रे से पहले खरपतवारनाशक उचित घोल तैयार करना चाहिए

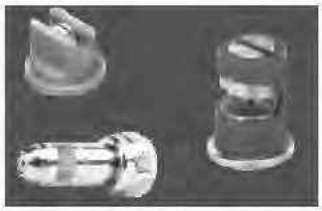

विभिन्न प्रकार के स्प्रे नोक

सरसों में मरगोज़ा (ओरोबैंकी) खरपतवार: समस्या, उपचार एवं सावधानियां

हरियाणा प्रान्त में सर्द ऋतु में उगाई जाने वाली फसलों में सरसों एक महत्वपूर्ण फसल है। मरगोज़ा (ओरोबैंकी) एक ऐसा नुकसानदायक जड़ परजीवी खरपतवार है जो सरसों की खेती के लिये एक भंयकर समस्या बन चुका है। साधारणतया मरगोज़ा खरपरतवार की समस्या उन क्षेत्रों में केन्द्रित है जहां पर सरसों की खेती हल्की रेतीली बालू मिट्टी वाली ज़मीनों, जिसमें पानी को पकड़े रखने की क्षमता अपेक्षाकृत कम एवं सिंचाई व्यवस्था मुख्यत: वर्षा आधारित एवं फव्वारा सिस्टम पर निर्भर है। दक्षिणी हरियाणा विशेषकर लोहारू, भिवानी, तोशाम, सतनाली, ढिगावा, बाढ़डा, दादरी, नारनौल, रेवाड़ी एवं उसके आसपास के क्षेत्रों में इसका अत्यधिक प्रकोप देखा गया है। स्थानीय भाषाओं में मरगोज़ा, रूखड़ी, सरसों का मामा, खुंबी, गुल्ली आदि नामों से भी जाना जाता है।

मरगोज़ा खरपतवार एक वार्षिक पौधा है जिसका प्रसार बीज द्वारा ही होता है। इसके बीज बहुत ही सूक्ष्म, अण्डाकार, गहरे भूरे-काले रंग के होते हैं जिन्हे नंगी आंखों से देख पाना मुश्किल है। इसकी बीज उत्पादन एवं अंकुरण क्षमता बहुत ही ज़बरदस्त है। इसका अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसका एक पौधा लगभग 1-2 लाख बीज बनाने की क्षमता रखता है तथा भूमि में सामान्यत: 10-15 साल पड़े रहने के बाबजूद इसका बीज पुन: उग सकता है।

आमतौर पर यह देखा गया है कि मरगोजा खरपतवार जनवरी महीने के आखिर तक ज़मीन के अन्दर रहकर ही सरसों की फसल को नुकसान पहुंचाता रहता है और फरवरी माह में उचित तापमान मिलने पर 7-10 दिन बाद फूल आ जाते हैं और फूल आने के 7-8 दिन बाद बीज बनने शुरू हो जाते हैं। सरसों की फसल पकने से पहले ही इसके बीज पक कर खेत में झड़ जाते हैं। कभी-कभी अगेती बोई गई फसल में बिजाई के 45-60 दिन बाद भी इसका पौधा दिखाई पड़ता है। दूसरे गैर-परजीवी खरपतवारों की अपेक्षा, सरसों में मरगोजा खरपतवार का नियन्त्रण करने में काफी मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। अपने पूरे जीवनचक्र में काफी समय तक भूमिगत रहने, सरसों के पौधे की जड़ों से जुड़कर पानी, पोषक तत्वों एवं प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया की आपूर्ति करना, अद्भुत बीज प्रसार, अंकुरण एवं उत्पादन क्षमता के कारण परम्परागत खरपतवार नियन्त्रण के तरीके लगभग नाकाफी साबित हुए हैं। इसके इलावा जब तक इस परजीवी खरपतवार का पौधा ज़मीन के ऊपर दिखाई देता है, सरसों की फसल को लगभग सारा नुकसान पहुंचा चुका होता है। इसलिए हमें ऐसी खरपतवारनाशक विधि की आवश्यकता है जो कि सरसों की फसल व पौधों को बिना नुकसान पहुंचाए इससे जुड़े परजीवी खरपतवार को नियन्त्रित कर सकें। *(शेष पृष्ठ 21 पर)*

बेर के रोग एवं उनकी रोकथाम

✍ एन.के. यादव, एच.एस.सहारण[1] एवं विनोद कुमार मलिक[2]
कपास अनुसंधान केन्द्र, सिरसा
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बेर शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों का एक बहुत ही सफल वृक्ष है इसलिए इसे बारानी का बादशाह भी कहा जाता है। बेर की खेती प्राय: भारत के सभी प्रान्तों में होती है किन्तु मध्य प्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र में अपेक्षाकृत अधिक होती है। दक्षिणी व पश्चिमी हरियाणा की जलवायु शुष्क व गर्म है जो बेर उत्पादन के लिए उपयुक्त है।

बेर फल स्वादिष्ट व सस्ता होने के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक प्रचलन में है। लेकिन बेर में लगने वाले रोग इसकी उत्पादकता व गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। यदि किसान भाई बेर में लगने वाले रोगों की सही समय पर पहचान करके उनकी रोकथाम कर लें तो बेर का उत्पादन व उत्पादकता को काफी हद तक बढ़ाया जा सकता है। बेर में लगने वाले प्रमुख रोग व उनकी रोकथाम के उपाय निम्नलिखित हैं:-

1. **पाऊडरी मिल्ड्यू (छाछिया):** यह बहुत ही घातक रोग है। इसका प्रकोप अक्तूबर-नवम्बर में शुरू होता है। जिससे बेर की फसल को काफी नुकसान होता है। इस रोग की पहचान यह है कि इससे फलों व पत्तियों पर सफेद चूर्ण जैसी परत-सी दिखाई देने लगती है। शुरू में ये धब्बे छोटे होते हैं जो बाद में पूरे फल पर फैल जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप फल पीले तथा भूरे रंग के होकर गिर जाते हैं। पैदावार में भारी कमी हो जाती है।

रोकथाम : 0.1 प्रतिशत (1.0 मिली लीटर प्रति लीटर पानी) कैरोथियान का पहला छिड़काव फूल निकलने के ठीक पहले और दूसरा छिड़काव जब फल मटर के दाने के बराबर हो जाएं तब करें। यदि कैरोथियान उपलब्ध न हो तो 0.2 प्रतिशत (2 ग्रा. प्रति 1 ली. पानी) सल्फैक्स का छिड़काव किया जा सकता है। सफल नियंत्रण हेतु सभी फलों का फफूंदनाशक घोल से तर हो जाना अत्यन्त आवश्यक है।

2. **सूटी मोल्ड (कजली रोग या काले धब्बों वाला रोग) :** इसका प्रकोप अधिकतर पत्तियों पर अक्तूबर माह में होता है और इसके प्रकोप से पत्तियों की निचली सतह पर गहरे-काले रंग के छोटे-छोटे धब्बे से दिखाई देते हैं। अगर इसकी रोकथाम न हो तो रोगी पत्तियों का रंग ऊपर से भूरे रंग का हो जाता है और बाद में ये रोग ग्रस्त पतियां सूखकर गिर जाती हैं।

रोकथाम : इसकी रोकथाम के लिए 0.3 प्रतिशत (3 ग्राम प्रति ली0 पानी) कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के घोल का छिड़काव करें।

3. **आल्टरनेरिया झुलसा रोग :** इस रोग का प्रभाव अधिकतर पत्तियों पर पाया जाता है। इस रोग में भूरे रंग के धब्बे पत्तियों की निचली सतह पर जनवरी-फरवरी में दिखाई देते हैं। कभी-कभी धब्बे पत्तियों की ऊपरी सतह पर भी दिखाई देते हैं। रोगयुक्त पत्ते सूखकर गिरने लगते हैं।

रोकथाम : इस रोग की रोकथाम हेतु मैन्कोजेब (डाईथेन एम-45 या इंडोफिल एम. 45) नामक दवाई का 0.2 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव करें।

4. **सरकोस्पोरा लीफ स्पॉट :** इस रोग का प्रभाव भी केवल पत्तियों पर पाया जाता है। प्रारम्भ में पत्तियों पर छोटे-छोटे गोल आकार के धब्बे दिखाई देते हैं। ये धब्बे बीच में भूरे रंग तथा किनारे पर लाल रंग के होते हैं जो बाद में बड़े होकर पत्तियों के दोनों तरफ दिखाई देने लगते हैं। रोग के अधिक प्रकोप से पत्तियां सूख कर गिर जाती हैं।

रोकथाम : इसकी रोकथाम के लिए मैन्कोजेब नामक दवा के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव रोग के लक्षण दिखाई देते ही करें एवं 15 दिन के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करें।

5. **लीफ रस्ट (रतुआ):** पत्तियों की निचली सतह पर नारंगी या भूरे रंग के छोटे-छोटे कील बनते हैं। रोग से प्रभावित पत्तों का रंग भूरा या गहरा-भूरा हो जाता है।

रोकथाम : इस रोग के उपचार हेतु मैन्कोजेब (डाईथेन एम-45) नामक दवा का 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

6. **फल गलन :** फल के निचले हिस्से में हल्के-भूरे रंग के धब्बे बनते हैं। धब्बों के ऊपर छोटे-छोटे काले दाने दिखाई देते हैं। यह रोग कई प्रकार के फफूंदों द्वारा होता है।

रोकथाम : रोकथाम के लिए 0.2 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के घोल का छिड़काव करें।

(पृष्ठ 03 का शेष)

- चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों में अगर हिरणखुरी (बेलड़ी), मटरी, चटरी व कंडई (रस्सा) खरपतवारों की समस्या ज़्यादा हो तो 2,4-डी की 500 ग्रा. मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करें।
- अगर गेहूं की कटाई के तुरन्त बाद ज्वार, मक्का या लोबिया की बिजाई करनी है तो गेहूं की फसल में सल्फोसल्फ्यूरोन, टोटल या एटलांटिस का छिड़काव न करें।
- मंडूसी या गुल्ली डंडा या कनकी के प्रति प्रतिरोधिता से बचने के लिए हर साल खरपतवारनाशकों का अदल-बदल कर प्रयोग करें।
- अलग्रिप व 2,4-डी का छिड़काव करने के बाद पम्प को थोड़े सोडे या सर्फ से अच्छी तरह साफ कर लें अन्यथा अगर यही पम्प चौड़ी पत्ती वाली फसल में छिड़काव के लिए प्रयोग किया जाये तो फसल में भारी नुकसान हो सकता है।
- अगर हवा ज़ोर से चल रही हो तो 2,4-डी व सल्फोसल्फ्यूरोन का छिड़काव न करें अन्यथा साथ वाले खेत में खड़ी सरसों या चने की फसल जल जाएगी।

[1]सह-निदेशक (पादप रोग) विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार
[2]सहायक वैज्ञानिक (पादप रोग), चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

बसंतकालीन मक्का : वैज्ञानिक खेती

✍ नरेन्द्र सिंह, मेहरचन्द कम्बोज एवं प्रीति शर्मा
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, करनाल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा प्रदेश में मक्का की औसत पैदावार लगभग 11 क्विंटल प्रति एकड़ है जबकि अनुसंधान प्रयोगों एवं अग्रिम पंक्ति प्रदर्शनों में मक्का की पैदावार 28 से 32 क्विंटल/एकड़ भी ली गई है। बसंतकालीन मक्का की काश्त हरियाणा प्रदेश में सफलतापूर्वक की जा सकती है। इस मौसम में फसल की अधिक अवधि होने के कारण पैदावार भी खरीफ की अपेक्षा 15-20 प्रतिशत ज़्यादा होती है और बसंतकालीन मक्का में कीटों व बीमारियों से नुकसान भी कम होता है। बसंतकालीन मक्का की अधिक पैदावार लेने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

उन्नत किस्म : चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित व सिफारिश की गई सभी किस्में एकल संकर किस्में हैं, जो निम्नलिखित तालिका में दी गई हैं :-

किस्म का नाम	पकने का समय (दिन)	पैदावार (क्विंटल/एकड़)	गुण
एच एच एम-1	103-108	23-25	पौधे तगड़े और मध्यम ऊंचाई वाले, भुट्टे लम्बे, दाने पीले व पिचके हुए।
एच एच एम-2	108-112	25-26	भुट्टा लम्बा, दाने लम्बे, सफेद व चमकदार, मक्का की मुख्य बीमारियों जैसे मैडिस पत्ती झुलसा रोग व रतुआ रोग के प्रति रोगरोधी
एच एम-4	105-108	25-26	पत्तियां हरे रंग की, भुट्टे लम्बे व मोटे, दाने उभरे हुए व नारंगी, बेबीकॉर्न के लिए सर्वोत्तम किस्म। बेबीकॉर्न पैदावार 6-8 क्विंटल/एकड़।
एच एम-5	108-110	26-28	पौधा मोटा व मज़बूत, पत्तियां चौड़ी एवं गहरे रंग की, भुट्टे लम्बे व बहुत मोटे, दाना सफेद व पिचका हुआ, रोग व पालारोधी किस्म।
एच एम-10	108-110	26-28	पौधे मज़बूत एवं पत्तियां गहरे हरे रंग की, दाने हल्के पीले व हल्के पिचके हुए।
एच एम-11	108-110	26-28	पौधे पतले, मज़बूत व मध्यम ऊंचाई वाले, पौधे पतले होने के कारण प्रति एकड़ पौधों में वृद्धि की जा सकती है। भुट्टे लम्बे व मध्यम मोटाई वाले, दाने पीले व हल्के पिचके हुए, रोग रोधी किस्म।
एच क्यू पी एम-1	108-110	24-26	उच्च गुणवत्ता वाली संकर किस्म, पौधे लम्बे व मज़बूत, भुट्टे लम्बे व मध्यम मोटाई वाले, दाने पीले रंग के एवं हल्के पिचके हुए।
एच क्यू पी एम-4	111-114	25-28	उच्च गुणवत्ता वाली संकर किस्म, पौधे लम्बे, मज़बूत, भुट्टे लम्बे, दाने हल्के नारंगी रंग के व हरी छल्ली के लिए भी उपयुक्त।
एच क्यू पी एम-5	175-185	24-26	उच्च गुणवत्ता वाली संकर किस्म, पौधे मज़बूत व पत्तियां हरे रंग की, भुट्टे लम्बे व मध्यम मोटाई के, दाने नारंगी रंग के।
एच क्यू पी एम-7	110-112	25-28	उच्च गुणवत्ता वाली संकर किस्म, पौधे मज़बूत व लम्बे, भुट्टा लम्बा, दाने हल्के नारंगी व हल्के पिचके हुए।

खेत का चयन : मक्का का अच्छा उत्पादन लेने के लिए इसे रेतीली दोमट व अर्ध दोमट तथा अच्छे जल निकास वाले खेतों में लगाना चाहिए।

खेत की तैयारी : खेत की 4-5 जुताइयां करके दो बार सुहागा लगाएं तथा खरपतवारों व ढेलों से रहित अच्छी बीज शय्या तैयार हो सके, जिससे बीज का अंकुरण शीघ्र व ज़्यादा हो।

बिजाई का समय : बसंतकालीन मक्का के लिए 1 फरवरी से 10 मार्च तक का समय सही पाया गया है, ज़्यादा पैदावार के लिए 15 फरवरी तक बिजाई हो जानी चाहिए। ऐसा करने से प्ररोह मक्खी का प्रकोप भी कम होता है। जबकि मेढ़ों पर बिजाई के लिए 20 नवम्बर तक बिजाई की जा सकती है।

बिजाई का तरीका : मेढ़ों पर बिजाई करने से अंकुरण ज़्यादा होता है तथा फसल का सर्दी से बचाव होता है। पूर्व पश्चिम दिशा में मेढ़ें बनाकर बीज मेढ़ों पर दक्षिण दिशा में 4-6 सैं.मी. गहरा बोएं। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सैं.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 20 सैं.मी. रखें।

बीज उपचार : बीज जनित तथा मृदा जनित रोगों व कीट व्याधियों से बचाने के लिए बीज को बिजाई से पहले फफूंदनाशक तथा कीटनाशक से उपचारित करना चाहिए। दीमक व प्ररोह मक्खी की रोकथाम के लिए इमिडाक्लोपरिड 7 मि.ली. ग्राम/किलो ग्राम, व रोगों से बचाने के लिए थाइरम 4 ग्राम या कैप्टान 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।

बीज की मात्रा : औसतन 8 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ डालने से वांछित पौधों की संख्या प्राप्त की जा सकती है।

खाद व उर्वरक : मक्की से ज़्यादा पैदावार लेने के लिए गोबर की खाद व रासायनिक उवर्रकों की अधिक मात्रा की ज़रूरत होती है। अच्छी गली व सड़ी गोबर की खाद 6 टन प्रति एकड़ के हिसाब से प्रयोग करें। सामान्य दशाओं में एन.पी.के. 72:24:24 किलोग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से संतुलित मात्रा में डालें। गोबर की खाद व सारी फास्फोरस, पोटाश, ज़िंक सल्फेट व 1/3 नत्रजन खेत की तैयारी के समय तथा 1/3 भाग नत्रजन फसल के घुटनों की ऊंचाई के समय तथा 1/3 भाग नत्रजन फसल में झण्डे आने के समय दें।

खरपतवार नियंत्रण : खरपतवार फसलों से पौष्टिक तत्वों, पानी, प्रकाश व जगह के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। खरपतवार नियंत्रण के लिए एट्राजिन 400-600 ग्राम प्रति एकड़ 200-250 लीटर पानी में घोलकर बिजाई के 1-2 दिन बाद या खरपतवार अंकुरण से पहले छिड़काव करना चाहिए।

सिंचाई : सिंचाइयों की संख्या मौसम, फसल काल, वर्षा व मिट्टी की नमी बनाए रखने की क्षमता पर निर्भर करती है। पहली सिंचाई हल्की करें ताकि मेढ़ों के ऊपर 2/3 ऊंचाई से ज़्यादा न चढ़े। 30-35 दिन की फसल, झण्डे आने, दाना भरने व गुम्फावस्था सिंचाई के लिए बहुत संवेदनशील होती हैं।

बसंतकालीन मक्का की फसल के हानिकारक कीट : मक्का फसल में कई प्रकार के कीट नुकसान पहुंचाते हैं, जिनमें मुख्यत: गुलाबी तना छेदक सूण्डी, प्ररोह मक्खी व भुट्टा भेदक हैं। मक्का फसल में महत्वपूर्ण कीटों के नुकसान पहुंचाने के तरीके एवं उनके लक्षणों की पहचान करना, इनके प्रबन्धन के लिए बहुत आवश्यक है। अत: मक्का फसल के महत्वपूर्ण कीटों के नुकसान पहुंचाने के तरीके एवं लक्षणों की पहचान तथा इनके प्रबन्धन के उपाय निम्न हैं।

1. गुलाबी तना छेदक सूण्डी: सिसेमिया इन्फैरेन्स (लेपिडोपटरा: नोकट्यूडी) :

नुकसान पहुंचाने के लक्षण: सबसे पहले नवजात सूण्डी अण्डे से निकलकर पत्ते की सीथ में छुपकर सीथ पत्तियों की तने से सटी कोशिकाओं को खाते हुए, तने में सुरंग बनाकर नुकसान पहुंचाती हैं। इस तरह तना सूख जाता है, जिसे डैड हार्ट कहते हैं। पत्ते की सीथ तथा तने के इलावा इस कीट की सूण्डी पौधे के अन्य भागों को भी नुकसान पहुंचा सकती है। सूण्डी भुट्टे, झण्डा (नर मंजरी), सिल्क को भी नुकसान पहुंचा सकती है। अधिक प्रकोप की अवस्था में पौधों की बढ़वार रूक जाती है और पौधों पर भुट्टा व झण्डा (नर मजंरी) एक ही स्थान पर दिखाई देते हैं।

गुलाबी तना छेदक के प्रबन्धन के उपाय:

1. फसल कटाई के उपरान्त मक्का फसल के अवशेष खेत से बाहर निकालकर नष्ट कर दें क्योंकि इन अवशेषों में गुलाबी सूण्डी सर्दी में छिप कर रहती हैं।
2. गर्मी के महीनों में खेत की गहरी जुताई करें जिससे इन कीटों की सुप्त अवस्थाएं (सूण्डी व प्यूपा) नष्ट हो जाएं।
3. डैड हार्ट (सूखा तना) तथा अधिक प्रभावित पौधों को निकालकर नष्ट कर देना चाहिए।

2. प्ररोह मक्खी (तना मक्खी): एथेरीगोना सोकाटा रोन्डानी एथेरीगोना नकवी स्टीसकल (डीपटरा: मससीडी)

नुकसान पहुंचाने के लक्षण : प्ररोह मक्खी (तना मक्खी) का प्रकोप बसन्त ऋतु में उगाई जाने वाली मक्का में होता है। यह कीट मुख्यत: जनवरी से मार्च के महीनों में अधिक नुकसान पहुंचाता है। इस कीट के मैगेट अण्डे से निकलने के तुरन्त बाद पौधे के अंकुरित होते ही कोमल पौधों के पत्तों के आवरण में छेद करके उसकी कोशिकाओं को खाते हैं। इस कीट के मैगट कोमल पौधों की 3 पत्ती अवस्था में ही नुकसान पहुंचाना शुरू कर देते हैं। मैगट तने में घुसकर तने को भेद कर सड़ा देते हैं। इस कीट के प्रकोप के कारण पौधों की मध्य शिरा भूरी हो जाती है व सूखकर डैड हार्ट बन जाती है और जिसको आसानी से खींचा जा सकता है और पौधों की बढ़वार रूक जाती है व पौधा ऊपर से मर जाता है। यह कीट फसल जमाव के एक सप्ताह से लेकर चार सप्ताह तक नुकसान पहुंचाता है। प्रभावित पौधों में शाखायें निकल आती हैं। पुराने पौधों में डैड हार्ट नहीं बनते हैं परन्तु पत्ते तने में उलझ जाते हैं और बढ़वार रूक जाती है।

प्रबन्धन के उपाय

1. प्ररोह मक्खी (तना मक्खी) के प्रकोप से बचने के लिए, मक्का की बिजाई फरवरी माह के पहले सप्ताह में पूरी कर लें। क्योंकि पछेती बिजाई में इस कीट का प्रकोप अधिक होता है।
2. इस कीट से ग्रसित पौधों को मैगट के साथ निकालकर नष्ट कर दें।
3. भुट्टा बेधक कीट हैलिकोवरपा आर्मिजेरा (हबनर) (लेपिडोपटरा: नोक्टयूडी)

नुकसान पहुंचाने के लक्षण: प्रौढ़ तितली सिल्क पर अण्डे देती है। अण्डे से सूण्डी निकलने के बाद सबसे पहले सिल्क और झाण्डा (नर मंजरी) को खाती है। उसके बाद सूण्डी छल्ली (भुट्टे) के दानों में सुरंग बनाकर ऊपर से नीचे जाती है। अधिक आक्रमण की अवस्था में भुट्टे (छल्ली) को मल मूतर से भर देती है। सूण्डी द्वारा भुट्टे को नुकसान से हरे भुट्टे की गुणवत्ता में कमी आ जाती है और उसकी गुणवत्ता पर भी नुकसान होता है। आमतौर पर एक छल्ली (भुट्टे) में एक ही सूण्डी मिलती है।

प्रबन्धन के उपाय

1. इस कीट की रोकथाम के लिए सूण्डियों को पकड़कर नष्ट कर दें या मिट्टी के तेल में डाल दें।
2. मक्का के खेत में फैरोमोन ट्रैप (10 प्रति हैक्टेयर) लगाने से इस कीट के संभावित प्रकोप का पता लग जाता है।
3. प्रकृति में पाये जाने वाले मित्र कीट जैसे ट्राईकोग्रामा कीलोनीस, बरकोनीडस, टैक्निडस और एन.पी.वी. का मक्का के खेत में संरक्षण करें जो कि इस कीट का कुदरती तौर पर नियन्त्रण करते हैं।

बसंतकालीन मक्का की हानिकारक बीमारियां : रबी फसल में मुख्तया सामान्य ज़ंग की समस्या आती है। यह रोग पक्सिनिया सोरघ नामक फफूंद द्वारा लगता है। इसमें पत्तों पर ज़ंग जैसे छोटे-छोटे धब्बे बन जाते है।

प्रबन्धन : 1. हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा सिफारिश की गई मक्का की रोगरोधी किस्में लगाएं।

2. 400 से 600 ग्राम मैंकोजेब (डाईथेन एम 45) को 200-250 लीटर पानी में घोलकर 2-3 छिड़काव करने से फसल का बचाव रहता है।

पक्षियों से देखभाल : फसल पकने के अन्तिम 25 दिनों के दौरान इसका पक्षियों से बचाव करें। पक्षियों को गुलेल, पटाखों, ढोल, आदि से डराकर भगाया जा सकता है।

कटाई व गहाई : जब भुट्टे का ऊपर का छिलका भूरा पड़ जाये तो समझ लें कि फसल पककर तैयार हो गई है, हालांकि तने व पत्ते अभी हरे ही दिखाई देते हैं। मक्का की कटाई के लिए भुट्टों को खड़ी फसल से तोड़ लें और सुखा कर यंत्रचालित या हस्तचालित मशीन से गहाई करें।

आवश्यक सूचना

''हरियाणा खेती'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें। **-सह-निदेशक (प्रकाशन)**

हरी पालक : कम लागत-अधिक लाभ

✍ तन्वी मेहता एवं डी. एस. दुहन
सब्जी विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मनुष्य को अपना भोजन पौष्टिक व संतुलित बनाने के लिए प्रतिदिन 300 ग्राम सब्जियों का सेवन करना चाहिए। इसमें हरी पत्तेदार सब्जियाँ (125 ग्राम), जड़ वाली सब्जियाँ (100 ग्राम), एवं अन्य सब्जियाँ (75 ग्राम) के अनुपात में शामिल होनी चाहिएं। आमतौर पर हरी सब्जियों का प्रयोग भोजन में कम ही किया जाता है। खासकर आज की पीढ़ी के बच्चे इसके सेवन से बचते हैं। इसलिए हरी सब्जियों की महत्ता एवं सफल खेती के बारे में जानना बहुत आवश्यक है। हरी पालक विटामिन 'ए' का बहुत अच्छा स्रोत है। यह आँखों को स्वस्थ रखने में महत्वपूर्ण योगदान देता है और इसके सेवन से शरीर को बीमारियों से लड़ने की क्षमता प्राप्त होती है। यह मनुष्य के मानसिक विकास में भी मदद करता है। शरीर को खून की कमी से बचाने के लिए प्रतिदिन प्रचुर मात्रा में आयरन (लौह तत्व), फोलिक एसिड, विटामिन 'बी', विटामिन 'सी' की विशेष आवश्यकता होती है। पालक इन सभी तत्वों को शरीर में संतुलित रूप से पहुँचाने में सहायक है। हरी पालक की खेती में किसान थोड़ी लागत से भी ज़्यादा मुनाफा ले सकते हैं। यदि सही समय पर अच्छी किस्मों का चुनाव करके इसकी खेती की जाए तो यह एक काफी लाभकारी फसल साबित हो सकती है। इसके लिये किसान अपने खेत को छोटे-छोटे टुकड़ो में बाँट लें और अलग-अलग समय पर एक-एक कनाल में बिजाई करें ताकि लम्बे समय तक इसकी पैदावार ले सकें। ऐसा करने से किसानों की आमदनी बढ़ जाएगी। पालक की सफल खेती लेने हेतु कुछ उन्नत कृषि क्रियाएं इस प्रकार से हैं :

उन्नत किस्मों का चुनाव :

- **जोबनेर ग्रीन :** यह अधिक उपज देने वाली किस्म है। इसकी पत्तियाँ एक समान, हरी, मोटी, रसीली तथा अन्य किस्में आल ग्रीन की पत्तियों से बड़ी होती हैं। इसकी हरी पत्तियों की औसत पैदावार 120 क्विंटल प्रति एकड़ है।
- **पंजाब ग्रीन :** इस किस्म की पत्तियाँ चमकदार, गहरी हरी, लम्बी व रसीली होती हैं। यह पहली कटाई के लिए बिजाई के 30 दिन बाद तैयार हो जाती हैं। इसमें ऑक्जैलिक एसिड कम मात्रा में पाया जाता है जो कि एक वांछित विशेषता मानी जाती है। इसकी पत्तियों की औसत पैदावार 125 क्विंटल प्रति एकड़ है।
- **आल ग्रीन :** इसकी पत्तियाँ एक समान हरी तथा कोमल होती हैं। इससे 4-6 कटाई ली जा सकती हैं। इस किस्म की औसत पैदावार 80 क्विंटल प्रति एकड़ है।
- **एच एस-23 :** इसकी पत्तियाँ गहरी हरी, मोटी व कोमल होती हैं। यह एक शीघ्र तैयार होने वाली किस्म है। इस किस्म की 6-8 कटाइयाँ ले सकते हैं।
- **पूसा ज्योति :** इस किस्म की पत्तियाँ रंग में गहरी हरी, रेशा रहित, मुलायम व रसीली होती हैं। पौधे अच्छे व अधिक पत्तियों वाले होते हैं तथा पोटाशियम, कैल्शियम, सोडियम व एस्कॉर्बिक अम्ल अन्य किस्मों की अपेक्षा अधिक होती है।
- **पूसा हरित :** यह किस्म पहाड़ी क्षेत्रों में पूरे वर्ष भर उगाई जाती है। मैदानी क्षेत्रों में भी इस किस्म की खेती अच्छी प्रकार से की जाने लगी है। पौधे उर्ध्व विकास करने वाले, एक सामान हरे होते हैं। इस किस्म की खेती क्षारीय मृदा में भी की जा सकती है। इस किस्म की औसत पैदावार 80 क्विंटल प्रति एकड़ है।
- **पंत कम्पोज़िट-1 :** इस किस्म की पत्तियाँ मुलायम, रसीली व एक समान हरी होती हैं। यह किस्म पत्ती धब्बा बीमारी से अवरोधी होती है।

भूमि एवं जलवायु : पालक मुख्य रूप से सर्दी में लगाए जाने वाली फसल है लेकिन थोड़ी जानकारी के साथ इसे पूरा साल लगाया जा सकता है। पालक में पाला सहन करने की क्षमता होती है। भूमि का पी.एच. 7 के आसपास होना चाहिए। इसके लिए बालुई दोमट मिट्टी, जिसकी निकासी ठीक से हो सर्वोत्तम रहती है।

खेत की तैयारी : पालक की बिजाई सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती है लेकिन बालुई दोमट भूमि इसके लिये ज़्यादा उपयुक्त होती है। भूमि को 3-4 बार जुताई करके तैयार किया जाता है। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा (सुहागा) लगाते हैं जिससे मिट्टी समतल एवं भुरभुरी हो जाये।

बिजाई का समय : पालक की बिजाई साल में किसी भी समय की जा सकती है लेकिन बिजाई का उत्तम समय अगस्त से दिसंबर माह है।

बीज की मात्रा : एक एकड़ भूमि के लिए लगभग 8-10 किलोग्राम बीज पर्याप्त होता है।

फासला : पालक की बिजाई कतारों में की जाती है। कतार से कतार की दूरी 20 सैं.मी. व पौध से पौध की दूरी 5 सैं.मी. होनी चाहिए। 10 से 15 दिन में जमाव होने के बाद जब पौधे 3 से 4 सैं.मी. के हो जाएं तब यदि किसी स्थान पर पौधे ज़्यादा हों तो उनको विरलीकरण विधि से इनकी संख्या कम कर देनी चाहिए। ऐसा करने से इसके पत्तों का विकास ढंग से होता है।

खाद व उर्वरक : पालक की फसल के लिए 20 टन गोबर, 32-35 किलोग्राम नाइट्रोजन तथा 16 किलोग्राम फास्फोरस की शुद्ध मात्रा का प्रयोग करें। गोबर की खाद, फास्फोरस की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा बिजाई से पहले खेत में मिला दें। बची हुई नाइट्रोजन की आधी मात्रा को 2 हिस्सों में विभाजित करें तथा हर कटाई के बाद इसे डालें। कटाई के बाद एक हल्की सिंचाई करें।

सिंचाइयां : यदि नमी की कमी हो तो बिजाई के तुरंत बाद एक हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। इसके बाद की सिचाइयां गर्मी के मौसम में 4-6 दिन के अंतर पर व सर्दी के मौसम में 10-12 दिन के अंतर पर करनी चाहिएं।

खरपतवार नियंत्रण : फसल की शुरू की अवस्था में 2-3 बार निराई-गुड़ाई करने से खरपतवार नष्ट हो जाते हैं। निराई खुरपी की सहायता से करते हैं। दो पंक्तियों के बीच हल्की गुड़ाई भी कर दें जिससे पौधों की जड़ों में वायु संचार पूर्ण रूप से हो सके।

पालक की कटाई के लिए निम्नलिखित बातें ध्यान में रखें :

- मुलायम प्ररोहों सहित पत्तियाँ तोड़ें।
- कटाई करके मनचाहे आकार के बंडल बनायें।
- 0-4 डिग्री सैं.ग्रे. तापमान व 90-95 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता पर 10-12 दिनों तक भंडारित करें।
- कटाई के बाद पालक को सुखाकर सूखी पालक के रूप में बनायें।

फसल की कटाई : वैसे तो इसकी कटाइयां किस्मों, मौसम एवं भूमि की उर्वरा शक्ति पर निर्भर करती है। पर पालक की पहली कटाई बिजाई के लगभग 30-35 दिनों बाद की जाती है। इसके बाद की कटाइयां 20-25 दिनों के अंतर पर की जाती हैं। पालक की हरे पत्तों की औसत पैदावार 32-40 क्विंटल प्रति एकड़ है।

पौध संरक्षण :

- **चेपा :** यह कीट पत्तों के निचले हिस्से से रस चूसकर फसल को बहुत हानि पहुँचाता है जिससे कि पत्ते मुड़ने शुरू हो जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए मैलाथियान (50 ई. सी.) 350 एम. एल दवाई की मात्रा को 80 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। पत्तियों की कटाई कीटनाशकों के प्रयोग से कम से कम 10 दिन बाद करनी चाहिए।
- **पर्णदाग :** यह रोग पालक की प्रमुख समस्या है। इसमें हल्के, भूरे गोल धब्बे जो बीच से धूसर रंग के होते हैं व सिरों से लाल रंग के होते हैं। यह बीमारी बीज वाली फसल में अधिक पाई जाती है। इस बीमारी की रोकथाम के लिए पौधों की निचली पत्तियों को तोड़कर जला अथवा ज़मीन में दबा देना चाहिए। बहुत अधिक संक्रमण होने की अवस्था में बाविस्टिन 200 ग्राम या इंडोफिल-एम.-45 600 ग्राम नामक दवाई को 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। ज़रूरत होने पर दूसरा छिड़काव 15-20 दिनों के अंतर पर करें।

भण्डारित अनाज की कीड़ों से रक्षा

अगर अनाज अच्छी तरह से सुखा कर, कीट-रहित व सूखे भण्डार में ढककर भण्डारित किया है तो उसके कीड़ों अथवा नमी से खराब होने की संभावना बहुत कम है। फिर भी भण्डारित अनाज का समय-समय पर निरीक्षण करना चाहिए। यह क्रिया वर्षा ऋतु में बहुत महत्वपूर्ण होती है। यदि अनाज में कीड़ा लगा हो तो इसमें ज़हरीली गैस छोड़ने वाली दवाई एल्यूमिनियम फास्फाईड (सैल्फास, क्विनलफॉस, फास्फ्यूम) की 7 गोलियां (3 ग्राम) प्रति 1000 घनफुट या 28 घनमीटर स्थान के हिसाब से डालें और 7 दिन तक भण्डार बंद रखें। इन दवाइयों का प्रयोग पूरी सावधानी से किसी विशेषज्ञ की देखरेख में करें।

दलहनी फसलों का जैविक खेती में महत्व

✍ सीमा दहिया, मीना सुहाग एवं श्वेता
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जैविक खेती एक फसल उत्पादन प्रणाली है जो मृदा, पारिस्थितिक तंत्र और लोगों के स्वास्थ्य को बनाए रखती है। यह प्रतिकूल प्रभाव छोड़ने वाले आदानों के बजाय पारिस्थितिकीय प्रक्रियाओं, जैव विविधता और स्थानीय परिस्थितियों में अनुकूल चक्रों पर निर्भर करता है। जैविक खेती परंपरा, नवाचार और विज्ञान का मिला जुला रूप है जो कि टिकाऊ वातावरण, निष्पक्ष संबंध और अच्छी गुणवत्ता वाले जीवन को बढ़ावा देता है।

दालें क्या हैं?

दलहन एक प्रकार की फलीदार फसलें हैं जो की सूखे बीजों के लिए उगाई जाती हैं। सूखे सेम, मसूर और मटर की दालें सबसे ज़्यादा जानी और उपभोग करने वाली दालें हैं। सबसे अधिक खपत वाली दालों में चना, अरहर, मसर, सूखे मटर, मूंग, मोठ, राजमा और चंवला मुख्य हैं। इनके अलावा ल्यूपिन और सेम बहुत ही कम जानी जाने वाली प्रजातियां हैं। केवल उन्हीं फली वाली फसलों को दालों के रूप में वर्गीकृत किया जाता है जो सूखे बीज पैदा करती हैं। जो फलीदार फसलें सब्जियों के लिये (जैसे: हरी मटर, हरी सेम), तेल निष्कर्षण (जैसे: सोयाबीन, मूंगफली) और हरे चारे (जैसे: बरसीम, रिजका) के लिए इस्तेमाल में आती हैं उन्हें दालों की श्रेणी में शामिल नहीं किया जाता है ।

दालों के लाभ

बेहतर स्वास्थ्य : दालों में प्रोटीन और खनिज की मात्रा उच्च होती है इसलिए दालों को नियमित रूप से भोजन में शामिल करने से मानव स्वास्थ्य और पोषण में सुधार हो सकता है। इसके साथ-साथ दालों में आहार फाइबर की मात्रा उच्च होती है, इस प्रकार वे मोटापा रोकने, रक्तचाप को कम करने और हृदय रोगों के जोखिम को कम करने में मदद करती हैं।

मिट्टी को उपजाऊ बनाने में सहायक : दलहन नत्रजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया द्वारा मृदा में नत्रजन जमा करने में मदद करते हैं वे मृदा में हाइड्रोजन गैस भी छोड़ते हैं, जो कि मृदा सूक्ष्म जीवों पर एक और सकारात्मक प्रभाव डालती है। अंतर-सस्य प्रणाली में दालों को शामिल करके और/या उनको कवर फसलों के रूप में उगाने से नत्रजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया एवम मृदा से बंध्य-फॉस्फोरस मुक्त करके मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाती है। इसलिए, दलहन-अनाज फसल चक्र में, पूर्ववर्ती दलहन फसल द्वारा प्रदान किये गये अवशिष्ट नत्रजन के कारण अनाज की फसल की पैदावार और क्रूड प्रोटीन की मात्रा में वृद्धि की जा सकती है। दलहन फसलें मृदा में कार्बनिक पदार्थ एवं माइक्रोबियल बायोमास और उनकी गतिविधियों को बढ़ावा देती हैं जो कि मृदा संरचना और उसकी जल अवधारण क्षमता में सुधार करते हैं और इसके साथ-साथ हवा एवं पानी के क्षरण को कम करने में मदद करते हैं। *(शेष पृष्ठ 20 पर)*

फरवरी मास के कृषि कार्य



फसलों में

गेहूँ और जौ

यह महीना समय पर बीजी गई गेहूँ की बौनी किस्मों में तीसरा पानी और पछेती किस्मों में दूसरा पानी लगाने का है। यदि नाइट्रोजन वाली खाद की कोई मात्रा शेष रह गई हो तो इसी पानी के साथ डाल दें व खाद डालने के बाद गोड़ी अवश्य करें। हल्की ज़मीन में खाद सिंचाई के बाद डालें। इसी प्रकार जौ की फसल में भी दूसरा पानी तथा नाइट्रोजन की बची आधी मात्रा भी डालें।

तापमान में गिरावट आने, आसमान में लगातार बादल या धुंध छाए रहने के कारण प्राय: गेहूँ की पछेती फसल में जस्ते की कमी के लक्षण दिखाई दे सकते हैं। 25-30 दिन की फसल पर नीचे की दो पत्तियों को छोड़कर अन्य पत्तियों का हरा रंग उड़कर हल्का होना शुरू हो जाता है। फिर पत्तों के मध्य में सफेद या हल्के-पीले रंग के छोटे-छोटे धब्बे बन जाते हैं। जस्ते की लगातार कमी बने रहने पर धब्बे आकार में बड़े हो जाते हैं। अत्यधिक कमी में नई आने वाली पत्तियों तथा मुख्य तनों पर भी, जहाँ पत्तियां मिलती हैं, वहां पर भूरे-पीले धब्बे बन जाते हैं। कई बार पत्ती के बीच का भाग मुख्य सिरे को छोड़कर पूरा सूख जाता है परंतु पत्ती की नोक की ओर का हिस्सा हरा बना रहता है। पत्ती बीच में से मुड़कर नीचे की ओर लटक जाती है। कई बार नई पत्तियां अत्यंत पतली एवं नुकीली दिखाई देती हैं। पौधे की गांठों के बीच की दूरी घट जाती है, बढ़वार कम हो जाती है, फसल में बालें देर से आती हैं तथा बाल में दानों की संख्या कम बनती है। यदि कमी को समय से दूर न किया जाए तो उपज में बहुत गिरावट आ जाती है।

खड़ी फसल में जस्ते की कमी तुरंत दूर करने के लिए फसल की पत्तियों पर 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट का छिड़काव करें। एक एकड़ फसल पर छिड़कने के लिए मानवचालित पंप से 200 लीटर घोल की आवश्यकता होगी जिसके लिए 1.0 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट लगेगा। क्योंकि ज़िंक सल्फेट की तासीर तेज़ाबी होती है, अत: इसे उदासीन करने के लिए 0.25 प्रतिशत चूने का घोल या 2.5 प्रतिशत यूरिया का घोल (यदि फसल में नाइट्रोजन की भी कमी हो) प्रयोग करना चाहिए। इकट्ठा घोल बनाने से पहले ज़िंक सल्फेट तथा चूना या यूरिया का घोल 9-10 लीटर पानी में अलग-2 बना लेना चाहिए। फिर मलमल के बारीक कपड़े से छानकर दोनों घोलों को मिलाकर घोल की पूरी मात्रा (200 लीटर) बना लें। 15-15 दिन के अंतर पर 2-3 छिड़काव करें। ओस से भीगी फसल पर, तेज़ हवा चलते समय या शाम के समय छिड़काव न करें। यदि किसी कारणवश छिड़काव से फसल गल जाए तो फसल को पानी लगा दें। यदि ज़मीन में पर्याप्त नमी है तो पानी लगाने की कोई आवश्यकता नहीं। एक सप्ताह में फसल स्वयं ठीक हो जाएगी।

जिन किसान भाइयों के ट्यूबवैल या बोर के पानी में बाइकार्बोनेट है और ज़मीन में कैल्शियम कार्बोनेट भी है, वहां पानी लगाने के बाद फसल में पीलापन भी आ सकता है। ध्यान से देखें कि यदि नीचे की पत्तियां हरी हों तथा नई निकलने वाली पत्तियां पीली धारीदार या पूर्णतया पीली दिखाई दें तो समझें कि यह लोहे की कमी के कारण है। यह समस्या कुछ खेतों या कुछ विशेष किस्मों में अधिक स्पष्ट दिखाई देगी। ज़मीन में पहुंचाये गए पानी में बाइकार्बोनेट की अधिकता के कारण यह समस्या प्रकट हुई है। अत: समस्या के तुरंत समाधान के लिए पहले तो फसल पर 0.5 प्रतिशत फैरस सल्फेट घोल के 8-10 दिन के अंतर पर लगातार 2-3 छिड़काव करें तथा बाइकार्बोनेट को उदासीन करने के लिए पानी की जांच के अनुसार जिप्सम डालें। फैरस सल्फेट बाज़ार में हरा-कसीस के नाम से पंसारी के यहां से मिल जाएगा। खरीदते समय ध्यान दें कि इसका रंग हरा हो। यदि लाल रंग है तो उसे छिड़कने से लाभ नहीं होगा।

यदि चेपा (माहू) का आक्रमण हो जाए तो 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़कें।

गेहूँ की फसल में पीले रतुए के लक्षण दिखाई देते ही बचाव के लिए फसल पर 800 ग्राम जाइनेब (डाईथेन या इंडोफिल जेड-78) या मैन्कोजेब (डाइथेन या इंडोफिल एम-45) या प्रोपीकोनाजोल 200 मि. ली. को 250 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें और आवश्यकता पडने पर 10 या 15 दिन के अंतर पर दोहराएं।

गन्ना

बीज/नौलख बोई जाने वाली फसल के खेतों की मिट्टी का नमूना

लेखक :

- अश्विनी कुमार, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
- एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (पादप रोग विज्ञान)
- वी. एस. हुड्डा, सहायक वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
- एम. एस. ग्रेवाल, परामर्शदाता (मृदा विज्ञान)
- अशोक चन्द्र यादव, परामर्शदाता (सब्जी विज्ञान)
- सरिता, विस्तार विशेषज्ञ (लुवास)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

लेकर तुरंत मिट्टी की जांच करवाएं। प्रथम पखवाड़े में ही 15-20 गाड़ी गोबर की गली-सड़ी खाद पूरे खेत में बिखेरकर भूमि की ऊपरी सतह में जोतकर मिला दें। यदि खाद कम गला-सड़ा हो तो प्रति एकड़ खाद के साथ 20-25 किलोग्राम यूरिया भी बिखेरकर मिला दें। ध्यान रखें कि खेत में गलन-सड़न प्रक्रिया को ठीक तरह से चलाने के लिए पर्याप्त नमी होनी अति आवश्यक है। यदि खेत सूखा हो तो हल्का पानी लगा दें।

गन्ना बीजते समय रासायनिक खादों का प्रयोग मिट्टी की जांच रिपोर्ट के अनुसार करें। यदि जांच करना संभव न हो तो बिजाई के समय प्रति एकड़ 20 किलोग्राम शुद्ध नाइट्रोजन (44 किलोग्राम यूरिया), 20 किलोग्राम शुद्ध फास्फोरस (125 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट या 44 किलोग्राम टी.एस.पी. या डी.ए.पी.) गंडेरियों (पोरियों) के नीचे डालें। यदि ज़मीन में पोटाश तथा जस्ता भी कम हो तो 20 किलोग्राम शुद्ध पोटाश (32 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश) तथा 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट भी बिजाई के समय अन्य उर्वरकों के साथ डाल दें। लवणीय तथा क्षारीय ज़मीन में ज़िंक सल्फेट अवश्य डालें।

मोढ़ी फसल में यदि अच्छी फूट आ गई हो तो फरवरी माह में पहली जुताई-गुड़ाई के समय 30 किलोग्राम शुद्ध नाइट्रोजन (66 किलोग्राम यूरिया) प्रति एकड़ डालें। यदि ज़मीन में प्राप्य फास्फोरस कम है और बीजी फसल में फास्फोरस की कमी दिखाई दे तो नाइट्रोजन उर्वरक के साथ 20 किलोग्राम शुद्ध फास्फोरस (125 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट या 44 किलोग्राम डी.ए.पी. या टी.एस.पी.) भी अवश्य डालें।

गन्ने की बिजाई के समय दीमक तथा कनसुआ की रोकथाम के लिए प्रति एकड़ 2.5 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. या 600 मि.ली. फिप्रोनिल 5 एस.सी. को 600 से 1000 लीटर पानी में फव्वारे द्वारा खूडों में पोरियों के ऊपर डालें तथा खूडों को उपचार के बाद तुरंत सुहागा लगाकर बंद कर दें। इसके अलावा 150 मि.ली. इमिडाक्लोप्रिड (कान्फिडोर 200 एस.एल. या इमिडागोल्ड 200 एस.एल.) को 250-300 लीटर पानी में मिलाकर नैपसैक पंप से खूड्डों में पोरियों पर छिड़काव भी किया जा सकता है। स्केल कीट (शल्क) लगी फसल को काट लें व खेत में बची पत्तियां आदि तुरंत जला दें। इस कीट से ग्रसित क्षेत्र में केवल एक ही मोढ़ी की फसल लें। बीज केवल स्वस्थ फसल से ही लें। बिजाई से पूर्व पोरियों को 0.25 प्रतिशत एमिसान या मैन्कोजेब (डाईथेन या इण्डोफिल एम-45) 250 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी के घोल में 4-5 मिनट डुबोकर उपचारित कर लें।

सूरजमुखी

सूरजमुखी की बिजाई 15 फरवरी तक पूरी कर लें। समय पर बिजाई के लिए हरियाणा सूरजमुखी नं. 1 व संकर किस्में के बी एस एच-1, एम एस एफ एच-8, पी ए सी-36, के बी एस एच-44, एच एस एफ एच-848 तथा पी सी एस एच-234, पछेती बिजाई के लिए संकर किस्में एम एस एफ एच-17, पी ए सी-1091, सनजीन-85, प्रोसन-09 तथा एच एस एफ एच-848 किस्मों का बीज प्रयोग करें। उन्नत किस्म का 4 तथा संकर किस्मों का 1.5 से 2 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ प्रयोग करें। बिजाई से पहले बीज को 4-6 घंटे तक पानी में भिगोकर छाया में सुखा लें। बीजजनित रोगों से बचाव के लिए फफूंदनाशक से बीज का उपचार करना ज़रूरी है। जड़गलन तथा तनागलन रोगों से बचाव के लिए प्रति किलोग्राम बीज को 3 ग्राम थाईरम से बिजाई से पहले उपचारित करें। बीजोपचार के लिए बाविस्टीन 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के लिए भी प्रयोग की जा सकती है। उन्नत किस्म में कतारों के बीच की दूरी 45 सैं.मी. तथा पौधों के बीच की दूरी 30 सैं.मी. और संकर किस्मों के लिए कतारों में 60 सैं.मी. एवं पौधों में दूरी 30 सैं.मी. रखें। बीज की गहराई 3-5 सैं.मी. रखें। सूरजमुखी की बिजाई 15 फरवरी तक पूरी कर लें।

उन्नत किस्म एवं सामान्य उपजाऊ अवस्थाओं में संकर किस्मों में 24 किलोग्राम शुद्ध नाइट्रोजन तथा 16 किलोग्राम शुद्ध फास्फोरस प्रति एकड़ के हिसाब से डालें। संकर किस्म (हाइब्रिड) के लिए 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (90 कि.ग्रा. यूरिया) तथा 20 कि.ग्रा. फास्फोरस (125 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) प्रति एकड़ डालें। हल्की भूमि वाले प्रांतों (दक्षिणी क्षेत्रों) में नाइट्रोजन की मात्रा 32 कि.ग्रा. एवं फास्फोरस की 24 कि.ग्रा. प्रति एकड़ प्रयोग करें। पूरी फास्फोरस व आधी नाइट्रोजन बिजाई के समय डालें।

जनवरी में बीजी गई फसल में पहली सिंचाई, बिजाई के लगभग 30-35 दिन बाद करें। नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा (प्रति एकड़ 12 कि.ग्रा. सामान्य उपजाऊ एवं 16 कि.ग्रा. हल्की भूमि में) प्रथम सिंचाई के समय डालें। जनवरी में बीजी गई फसल में पहली निराई-गुड़ाई भी करें।

कपास

अगर कपास की फसल के बाद खेत खाली रह गया हो तो फरवरी के अंत में हल से गहरी जुताई कर दें। इससे मिट्टी में पड़ी सूण्डियों को पक्षी खा जाएंगे। अगली फसल में गुलाबी व चितकबरी सूण्डियों तथा मीलीबग का आक्रमण कम हो, इसके लिए ज़रूरी है छंटियों के साथ लगे टिंडों को झाड़कर नष्ट कर दें तथा ऐसी छंटियों को जलाने के लिए प्रयोग करें। यदि छंटियां खेत में खड़ी हों तो उनकी गहरी कटाई करें। ध्यान रहे कि मोढ़ी की फसल कभी न लें।

चना

चने पर फली छेदक सूण्डी का आक्रमण कुछ क्षेत्र में हो सकता है। इससे बचने के लिए 200 मि.ली. मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. या 400 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. या 400 ग्राम कार्बेरिल 50 घु. पा. को 100 लीटर पानी के साथ प्रति एकड़ छिड़कें। इसके अतिरिक्त 80 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. या 50 मि.ली. साईपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. डेकामेथ्रिन 2.8 ई.सी. इतने ही पानी में मिलाकर प्रति एकड़ भी कारगर है। इनके स्थान पर 10 किलोग्राम क्विनलफॉस 1.5 डी या कार्बेरिल 5 डी धूड़ा प्रति एकड़ भी धूड़ा जा सकता है। ज़रूरत पड़ने पर 15 दिन पर कीटनाशक दवा बदल कर फिर छिड़कें।

अंगमारी या झुलसा के आक्रमण से सचेत रहें, विशेषकर यदि मौसम नम व ठंडा रहे और वर्षा के आसार दिखाई दें तो प्रभावित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें।

सरसों व राया

यदि मौसम अनुकूल हो तो चेपे (अल/माहू) का आक्रमण ज़रूर मिलेगा। फसल को इस कीट से बचाने के लिए 250-400 मि.ली. मैटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. या रोगोर 30 ई.सी. को 250-400 लीटर पानी के साथ प्रति एकड़ फसल पर दोपहर बाद छिड़कें तथा ज़रूरत हो तो 15 दिन बाद फिर दोहराएं। सरसों के पत्तों पर सुरंग बनाने वाला कीट भी इन्हीं कीटनाशकों से मर जाएगा। मधुमक्खियों को बचाने के लिए दोपहर तीन बजे के बाद ही कीटनाशक छिड़कें।

यदि सफेद रतुआ व डाऊनी मिल्ड्यू के लक्षण फसल पर दिखाई दें तो बचाव के लिए 600 ग्राम मैन्कोजेब (डाईथेन या इण्डोफिल-एम-45) का 200 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। फफूंदनाशकों की नियंत्रण क्षमता बढ़ाने के लिए प्रति 100 लीटर घोल में 10 ग्राम सेल्वेट-99 या 50 मि.ली. ट्राईटान अवश्य मिला लें।

नेपियर (हाथी) घास

नई बीजने वाली फसलों में, खेत की तैयारी करके उसमें प्रति एकड़ लगभग 20 गाड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिलाकर डालें।

बरसीम, रिजका एवं जई

इन फसलों में आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा सही अवस्था पर चारे की कटाई करते रहें। चारे की कटाई ओस सूखने के बाद करें। फालतू बरसीम एवं रिजका की 'हे' तथा जई की 'साइलेज' बना लें।

नोट : अपने ट्यूबवैल के पानी की जांच करवाएं और भूमि खराब होने से बचाएं।



सब्जियों में

टमाटर

इस मास बसंतकालीन फसल के लिए तैयार खेत में पौधरोपण करें। खेत तैयार करने के लिए, जैसा कि जनवरी माह में बताया गया है, एक एकड़ में 10 टन गोबर की सड़ी खाद, 40 किलोग्राम नाइट्रोजन (88 किलोग्राम यूरिया खाद), 25 किलोग्राम फास्फोरस (150 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट) तथा 20 किलोग्राम पोटाश (32 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश) डालें। गोबर की खाद को आमतौर पर पौधरोपण से लगभग 3 सप्ताह पहले खेत में भली प्रकार बिखराकर मिला लें। पौधरोपण के समय 1/3 नाइट्रोजन तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा दें। पौधरोपण में कतारों में 60 सैं.मी. की दूरी तथा पौधों में 45 से 60 सैं.मी. की दूरी रखें। पौधरोपण के बाद एक हल्की सिंचाई अवश्य करें। पाला की आशंका होने पर रात के समय खेत के आसपास खरपतवार व फूस जलाकर धुआं करें। सफेद मक्खी को मारने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में प्रति एकड़ 15 दिन के अंतर पर छिड़कते रहें ताकि मरोड़िया रोग न लगे। पौधों को पाला या कोहरे के प्रति प्रतिरोधी बनाने के लिए साईकोसिल दवा का पौधशाला में छिड़काव करें।

बैंगन

बसंतकालीन फसल के लिए खेत की तैयारी करें। तैयारी लगभग टमाटर की ही तरह करें। परंतु खाद की मात्रा में फास्फोरस 20 किलोग्राम (120 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट) व पोटाश 10 किलोग्राम (16 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश) प्रति एकड़ की दर से दें। पौधरोपण कतारों में 60 सैं.मी. की दूरी पर करें तथा पौधों से पौधों की दूरी 45 सैं.मी. रखें। अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए सिफारिशशुदा किस्में, जैसे कि हिसार प्रगति, हिसार श्यामल या बी आर-112 या एच एल बी-25 या हिसार बहार किस्मों को प्रयोग में लाएं। पौधरोपण के बाद खेत में हल्की सिंचाई देना आवश्यक है।

शरद्कालीन फसल की काट-छांट करके भी फसल ली जा सकती है। ऐसा करने के लिए सभी पालाग्रस्त टहनियों को काट दें तथा खेत में उचित खाद, पानी दें। इससे आप अगेती फसल प्राप्त कर सकते हैं जिससे कि मुख्य फसल की अपेक्षा लाभ अधिक होता है।

मिर्च

बसंतकालीन फसल के लिए मिर्च की पौध की खेत में रोपाई करें। कतारों की दूरी 45 से 60 सैं.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 से 45 सैं.मी. रखें। लंबी किस्मों में एन पी 46ए या पूसा ज्वाला, पंत सी-1, हिसार शक्ति या हिसार विजय को प्रयोग में लाएं तथा शिमला मिर्च में कैलिफोर्निया वण्डर नामक किस्म को प्रयोग में लाएं। खेत तैयार करते समय प्रति एकड़ की दर से खाद व उर्वरक का प्रयोग करें-10 टन गोबर की सड़ी खाद, 25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (55 कि.ग्रा. यूरिया खाद), 12 कि.ग्रा. फास्फोरस (72 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) तथा 12 कि.ग्रा. पोटाश (20 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश)। पौधरोपण के समय ½ नाइट्रोजन व पूरी फास्फोरस व पोटाश दें। गोबर की खाद को जुताई करते समय, पौधरोपण के लगभग 3 सप्ताह पहले खेत में भली प्रकार बिखराकर जुताई करें।

मटर

फलीछेदक सूण्डी का प्रकोप होने पर 60 मि.ली. सायपरमेथ्रीन 25 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। पत्तियों में सुरंग बनाने वाले कीट व माहू से फसल को बचाने के लिए 400 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. या 500 मि.ली. मैटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। ज़रूरत हो तो यही छिड़काव 15 दिन बाद दोहराएं। कीटनाशक के छिड़काव के बाद 3 सप्ताह तक फसल को खाने के काम में न लें। सफेद चूर्णी रोग से बचाव के लिए 500 ग्राम सल्फेक्स या 80 मि.ली. कैराथेन प्रति एकड़ की दर से 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

फूलगोभी, पत्तागोभी व गांठगोभी

तैयार फसल के फूलों व गांठों को उचित समय पर काट कर बाज़ार भेजें। इस समय अल (माहू/चेपा) व सूण्डियों का आक्रमण होता है। इससे फसल को बचाने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 10 दिन के अंतर पर छिड़कें।

डायमण्ड बैकमॉथ सूण्डी के लिए 400 ग्रा. बैसिलस थूरिन्जिएन्सिस (बायोआस्प) घु.पा. या 300 मि.ली. डायजिनान 20 ई.सी. या 60 मि.ली. डाईक्लोरवास 76 ई.सी. का छिड़काव भी कर सकते हैं। कटाई से एक सप्ताह पहले कीटनाशक का छिड़काव बंद कर दें।

प्याज़ व लहसुन

इन फसलों की आवश्यकतानुसार सिंचाई, निराई-गुड़ाई करें। नाइट्रोजन उर्वरक की एक तिहाई मात्रा दें। खेत में नमी की कमी न होने दें क्योंकि इससे गांठों की बढ़वार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। चूरड़ा (थ्रिप्स) हल्के भूरे अथवा पीले रंग का बारीक-सा कीट पत्तियों का रस चूस कर पौधों को कमज़ोर कर देता है जिससे पत्तों का ऊपरी भाग सूख जाता है। अधिक आक्रमण होने पर पत्ते सफेद, भूरे पडने लगते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 300 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 60 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 75 मि.ली. फेनवेलरेट 20 ई.सी. या 175 मि. ली. डेल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

बैंगनी धब्बे वाले रोग से बचाने हेतु, विशेषकर प्याज़ की बीज वाली फसल में इस माह के दूसरे पखवाड़े में 400 ग्राम मैन्कोजेब (डाईथेन या इण्डोफिल एम-45) को 200 लीटर पानी में घोल कर प्रति एकड़ छिड़काव करें। इसी घोल में 20 ग्राम सेल्वेट भी मिला लें।

मूली व गाजर

इन फसलों की तैयार जड़ों की खुदाई करें तथा उन्हें साफ करके बाज़ार भेजें। जड़ों को ज़मीन में कड़ी न होने दें व आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। यदि माहू (अल/चेपा) का आक्रमण सिंगरों के लिए उगाई गई फसल पर हो जाए तो 250-400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250-400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। कीटनाशक के छिड़काव के बाद एक सप्ताह तक फसल को खाने के काम में न लें।

आलू

अगेती फसल की खुदाई पूरी हो चुकी होगी। उसे सुखा लें तथा कटे हुए व रोगी आलुओं को अलग कर लें। इन्हें बाज़ार बेचने के लिए भेजें या शीतालय में रखें। यदि फसल बीज के लिए है तो खुदाई करके बड़े, रोगी व दूसरी जाति के आलुओं को छांट कर अलग कर लें।

पालक

पालक की फसल की आवश्यकतानुसार कटाई करें तथा पत्तों को बंडलों में बांधकर बाज़ार भेजें। नियमित रूप से सिंचाई करें। खेत तैयार करके गर्मी की पालक के लिए बिजाई की जा सकती है। इसके लिए प्रति एकड़ 8 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होगी। जौबनेर ग्रीन, आल ग्रीन या एच एस 23 किस्मों को प्रयोग में लाएं। बीज को कतारों में 15-20 सैं.मी. की दूरी पर बीजें।

भिण्डी

गर्मी की फसल के लिए खेत की तैयारी करें। एक एकड़ के लिए 10 टन गोबर की खाद, 40 किलोग्राम नाइट्रोजन (90 किलोग्राम यूरिया खाद) व 24 किलोग्राम फास्फोरस (150 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट) की आवश्यकता होगी। एक एकड़ खेत के लिए 16-18 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होगी। उन्नत किस्मों, पूसा सावनी, वर्षा उपहार या हिसार उन्नत को प्रयोग में लाएं। अच्छे अंकुरण के लिए बिजाई से पहले बीजों को रात भर पानी में भिगो लें। बाविस्टीन नामक दवा 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें।

कद्दू जाति की अन्य सब्जियां

प्लास्टिक प्रोट्रेस विधि द्वारा कद्दू जाति की अन्य सब्जियों की अगेती पौध तैयार करने से फरवरी के शुरु में रोपाई की जा सकती है जिसके फलस्वरूप एक से दो महीने पहले फसल ली जा सकती है।

कद्दू जाति की अन्य सब्जियों की बिजाई का समय फरवरी-मार्च है। इन सब्जियों की मात्रा, उन्नत किस्में तथा उगाने की दूरी तालिका में दी गई है। केवल पोटाश के सिवाय, खाद व उर्वरक की मात्रा खरबूजा व तरबूज के बराबर दें।

अन्य सब्जियां

गर्मी की अन्य सब्जियां, जैसे ग्वार, शकरकन्दी (तनों के लिए) तथा लोबिया की बिजाई अभी भी की जा सकती है। अरबी की बिजाई भी इसी समय हो सकती है। एक एकड़ खेत हेतु बिजाई के लिए 320-400 कि.ग्रा. गांठों की आवश्यकता होगी। खेत में उचित नमी का ध्यान रखें।

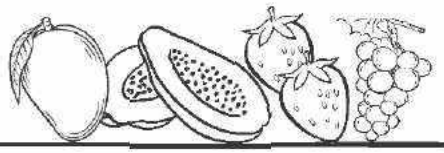

फलों में

संतरा, माल्टा, नींबू आदि

750 ग्राम यूरिया प्रति पौधा इस महीने के मध्य तक अवश्य डाल दें। नए पौधों पर लगाए गए छप्पर आदि दूसरे सप्ताह के बाद हटा सकते हैं क्योंकि मौसम कुछ गर्म होना शुरू हो जाएगा।

नींबू का सिल्ला व सफेद मक्खी रस चूसकर बहुत हानि पहुंचाते हैं। सुरंगी कीट नए पत्तों पर टेड़ी-मेड़ी, चमकीली लाइन बना देता है जिससे पत्ते पूरी तरह मुड़ जाते हैं। नए फल कमज़ोर हो जाते हैं तथा कम भी लगते हैं। इन कीटों की रोकथाम के लिए फूल खिलने से पहले नया फुटाव आने पर 750 मि.ली. मैटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. या 625 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. या 500 मि.ली. न्यूवाक्रान/मोनोसिल 36 डब्ल्यू.एस.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। इसे नींबू जाति के सभी पौधों तथा बाड़ की झाडियों पर भी छिड़कें तो अधिक लाभ होगा।

छाल खाने वाली सूण्डी अपने मल व लक्कड़ के बुरादे से एक मोटी झिल्ली-सी बनाकर इसके नीचे तनों व टहनियों की छाल खाती है। वह तनों में सुराख भी बनाती है। इसकी रोकथाम के लिए रूई के फोहों को दवाई के घोल में डुबोकर किसी धातु की तार की सहायता से कीड़ों के प्रत्येक सुराख के अंदर डाल दें और सुराख को गीली मिट्टी से ढक दें। 10 लीटर पानी में घोल बनाने के लिए दवाइयों की मात्रा इस तरह रखें-40 ग्राम

कार्बेरिल (सेविन) 50 घु.पा. या 10 मि.ली. फैनिट्रोथियान (फोलिथियान/सुमिथियान) 50 ई.सी.। इसके अलावा मिट्टी के तेल, साबुन व पानी का 10% घोल (1 लीटर मिट्टी का तेल +100 ग्राम साबुन + 9 लीटर पानी) भी काफी प्रभावकारी व अच्छा सिद्ध हुआ है।

मोटल लीफ (जस्ते की कमी) : पत्ते की नसों के दोनों ओर की जगह सफेद हो जाती है इसके लिए 500 मि.ग्रा. प्लान्टामाइसिन और 2 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराईड को प्रति लीटर पानी में घोल कर जुलाई, अक्तूबर, दिसम्बर व फरवरी में छिड़काव करें।

टहनीमार रोग : पौध गलन या गूंद निकलने वाले भागों को कुरेद कर साफ करें। बोर्डोपेस्ट लगाएं और फिर एक सप्ताह बाद दोबारा लगाएं। काट-छांट के बाद 0.3% कॉपर- ऑक्सीक्लोराईड का छिड़काव करें।

सूत्रकृमि भी पौधों को भारी हानि पहुंचाते हैं व इनकी रोकथाम के लिए कार्बोफ्यूरान (फ्यूराडान 3 जी.) 13 ग्राम प्रति वर्ग मीटर या नीम की खली 1 कि.ग्रा. प्रति पौधा व 7 ग्राम कार्बोफ्यूरान 3जी. के दाने प्रति वर्ग मी. की दर से तने के आस-पास के 9 वर्गमीटर क्षेत्र में मिट्टी में मिलाएं। दवा डालने के तुरंत बाद प्रचुर मात्रा में पानी दें। इसका प्रयोग फूल आने से पहले और फल तोड़ने के बाद ही करें। दवाई डालने से पहले ज़मीन को भुरभुरा कर लें। ये बहुत ज़हरीली दवाएं हैं। अत: इन्हें बड़ी सावधानी से काम में लाएं।

संतरा व माल्टा में कोढ़ से पत्तों, टहनियों और फलों पर गहरे-भूरे रंग के खुरदरे धब्बे पड़ जाते हैं। टहनीमार रोग से टहनियां ऊपर से सूखनी शुरू हो जाती हैं, कभी-कभी बड़ी टहनियां भी सूख जाती हैं। पत्तों पर दाग पड़ जाते हैं और फल व तने भी गल जाते हैं। इन बीमारियों के नियंत्रण के लिए रोगी टहनियों की काट-छांट करें और इसके बाद 0.3 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का पहला छिड़काव अक्तूबर में, दूसरा छिड़काव दिसम्बर में व तीसरा फरवरी में करें।

तरबूज व खरबूजा

तरबूज व खरबूजा की अगेती फसल लेने के लिए इन फलदार सब्जियों की प्लास्टिक प्रोट्रेस विधि द्वारा पौधे तैयार करके फरवरी के शुरु में रोपाई कर दें।

इन फसलों की बिजाई फरवरी के शुरू से ही करें। तरबूज की किस्में चार्लेस्टन ग्रे या शूगर बेबी तथा खरबूजे की किस्में हरा मधु या पंजाब सुनहरी प्रयोग में लाएं। यदि बिजाई से पहले बीजोपचार कर लें तो उचित होगा। (2.0 ग्राम बाविस्टीन प्रति किलोग्राम बीज की दर से)। तरबूज के लिए बीज की मात्रा लगभग 1.5 से 2.00 किलोग्राम प्रति एकड़ तथा खरबूजे की एक किलोग्राम प्रति एकड़ है। खेत तैयार करते समय 4-6 टन गोबर की खाद, 6 किलोग्राम नाइट्रोजन (15 किलोग्राम यूरिया खाद), 10 किलोग्राम फास्फोरस (60 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट) तथा 10 किलोग्राम पोटाश (16 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश, जहां पर पोटाश की कमी हो) दें तथा खड़ी फसल में 14 किलोग्राम नाइट्रोजन (30 किलोग्राम यूरिया खाद) उर्वरकों द्वारा दो बार में टॉप ड्रेसिंग करें। खरबूजे की बिजाई 2.5 मीटर चौड़ी डोल में किनारों पर 60 सैं.मी. के फासले पर करें। खरबूजे की बिजाई हेतु शूगर बेबी किस्म के लिए 3 मीटर और चार्लेस्टन ग्रे के लिए 4 मीटर चौड़ी क्यारियां बनाएं तथा क्यारियों के दोनों ओर 60 सैं.मी. की दूरी पर बीज बोएं। खेत में नमी का ध्यान रखें।

अंगूर

पुरानी बेलों में यूरिया 337 ग्राम व 2 कि.ग्रा. सुपरफास्फेट इस महीने के पहले सप्ताह तक अवश्य डाल कर पहली सिंचाई करें। इसके साथ-साथ नए पौधे भी 10 फरवरी तक ज़रूर लगा लें। अगर काट-छांट का कार्य बाकी है तो इस महीने के पहले सप्ताह तक अवश्य पूरा कर लें। काट-छांट के बाद बाविस्टीन नामक दवा 0.2% का छिड़काव करें। नई बढ़वार आने से पहले छिड़काव अवश्य करें। अंगूर में सूत्रकृमि रोग के नियंत्रण के लिए नींबू जाति के पौधे की भांति उपचार करें।

आम

पोटाश खाद पोटाशियम सल्फेट के रूप में अवश्य दें। इस तरह से प्रति पौधा आधा किलोग्राम यूरिया और एक किलोग्राम पोटाशियम सल्फेट पौधे की छतरी के नीचे तने से 2-3 फुट की दूरी पर अवश्य बिखेर दें और अच्छी तरह से गोड़ाई करें और सिंचाई भी ज़रूर करें।

सब्जी का नाम	बीज की मात्रा (प्रति एकड़)	बोने की दूरी		किस्में
		कतारों की	पौधों की	
1	2	3	4	5
लौकी	2 कि.ग्रा.	2 मी.	60 सैं.मी.	पूसा समर प्रोलिफिक (लंबी व गोल),
चप्पन कद्दू	2 कि.ग्रा.	60-90 सैं.मी.	45-60 सैं.मी.	पूसा अलंकार, बीकानेरी ग्रीन, हिसार सिलेक्शन-1, हिसार टिण्डा-10
टिण्डा	2 कि.ग्रा.	125-150 सैं.मी.	45-60 सैं.मी.	हिसार टिण्डा-10
करेला	2 कि.ग्रा.	125-150 सैं.मी.	20-45 सैं.मी.	कोयम्बटूर लौंग, पूसा दो मौसमी
तोरी	2 कि.ग्रा.	180-240 सैं.मी.	45-60 सैं.मी.	पूसा चिकनी, पूसा नसदार
खीरा	1 कि.ग्रा.	150 सैं.मी.	45-60 सैं.मी.	जापानी लौंग ग्रीन
ककड़ी	1 कि.ग्रा.	150 सैं.मी.	60-75 सैं.मी.	लखनऊ अर्ली व करनाल सलेक्शन

पेड़ों के तनों पर जो अल्काथीन शीट लगा रखी है उसके नीचे एकत्रित मीली बग के नियंत्रण के लिए 100 मि.ली. मैटासिड 50 ई.सी. या 300 मि.ली. एकालक्स 25 ई.सी. को 50 लीटर पानी में घोलकर एक एकड़ बाग के पेड़ों पर छिड़काव करें। पत्तों, टहनियों, फूलों आदि पर चढ़े कीटों को मारने के लिए 500 मि.ली. मैटासिड 50 ई.सी. या 1.5 लीटर एकालक्स 25 ई.सी. को 500 लीटर पानी में घोल कर प्रति एकड़ छिड़कें।

आम का तेला इस महीने प्राय: आक्रमण करता है। इसकी रोकथाम के लिए इस महीने के अंत में 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 1.5 कि.ग्रा. कार्बेरिल (सेविन) 50 डब्ल्यू.पी. को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़कें। गुच्छा-मुच्छा ग्रस्त टहनियों को काटकर जला दें व 0.2 प्रतिशत कैप्टान व मैलाथियान 0.1 प्रतिशत नामक दवा के मिश्रण का छिड़काव करें। यह क्रिया 10-12 दिन के अंतराल पर दोहराएं।

आड़ू, अलूचा और नाशपाती

आधी यूरिया फूल आने से पहले आड़ू (450 ग्राम), अलूचा (180 ग्राम) व नाशपाती में (500 ग्राम) ज़रूर डाल दें और हल्की सिंचाई कर लें। फूल आते समय सिंचाई न करें।

बेर

बेर की मक्खी की लट (मैगट) फलों को अंदर से काना कर देती हैं। इनकी रोकथाम के लिए 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी.+5 कि.ग्रा. गुड़ को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ बाग में छिड़काव करें। अगर ज़रूरी हो तो 10 दिन के बाद यही कीटनाशक दोबारा छिड़कें। दोबारा कीटनाशक दवा का छिड़काव करने के कम से कम दो दिन बाद ही खाने के लिए फल तोड़ें व अच्छी तरह पानी से धोकर प्रयोग करें। प्रतिदिन गिरे फलों को एकत्रित करके ज़मीन में दो फुट की गहराई पर दबा दें।

बेर के नए पौधे लगाने का कार्य 15 फरवरी तक पूरा करें तथा पौधे लगाने के पश्चात् पौधों की सिंचाई करते रहें।

अमरूद

जुलाई-अगस्त में अमरूद की फसल लेने के लिए खाद आदि इस महीने के पहले सप्ताह में (गोबर की खाद 75 किलोग्राम, सुपर फास्फेट 625 ग्राम, 250 ग्राम सल्फेट ऑफ पोटाश तथा 750 ग्राम यूरिया) अवश्य डाल दें और हल्की सिंचाई करें। पहले सप्ताह तक वैज ग्राफ्टिंग विधि से कलमी पौधे तैयार कर सकते हैं।

लीची व चीकू

लीची में 875 ग्राम और चीकू के पौधों में 400 ग्राम यूरिया प्रति पेड़ डालकर निराई-गोड़ाई करें और हल्की सिंचाई भी करें।

आंवला

नए पौधे लगाने का कार्य 15 फरवरी तक पूरा करें तथा पौधे लगाने के पश्चात् गर्मियों में पौधों की सिंचाई 4-5 दिन पर तथा सर्दियों में 7-10 दिन पर करते रहें। ढाई किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट और 500 ग्राम यूरिया प्रति पौधा डालकर निराई-गोड़ाई करें और हल्की सिंचाई करें।

पपीता

नये पौधों को सर्दी से बचाने के लिए बनाए गए छप्परों को दूसरे सप्ताह में हटा दें। पौधों में प्रति पेड़ आधा किलोग्राम मिश्रित खाद जिसमें अमोनियम सल्फेट, सिंगल सुपर फास्फेट व पोटाशियम सल्फेट 2 : 4 : 1 के अनुपात में डालें और सिंचाई 8-10 दिन के अंतर पर करते रहें। इसके अतिरिक्त 20 कि.ग्रा. गोबर की खाद प्रति पौधा अवश्य डालें। खाद को तने से 35-40 सैं.मी. की दूरी पर चारों ओर डालें।

नर्सरी में क्रियाएं

नर्सरी में छोटे पौधों को सर्दी से बचाने के लिए जो छप्पर बनाए गए थे उनको दूसरे सप्ताह के बाद हटा दें। प्योंदी पौधों से अगर फालतू टहनियां प्योंदी बिंदु के नीचे आ रही हों तो उनको काट दें। प्योंदी पौधों को डंडी से सहारा दें, ताकि वे अपनी बढ़वार सीधी कर सकें। जट्टी-खट्टी में रोगी पौधों को निकाल दें। आम, लोकाट, अमरूद के देसी पौधों को अनार्चिंग के लिए गमलों में बदलें। अमरूद, आड़ू, जट्टी-खट्टी के बीजों को नर्सरी में बीजें। अंगूर, नाशपाती, अनार, अंजीर, शहतूत, मीठा नींबू और बारहमासी लेमन की कलम, तैयार की गई क्यारियों में लगा दें।

पौधे लगाना : पतझड़ी फलदार पौधों व बेर तथा आंवला को दूसरे सप्ताह तक नंगी जड़ों से लगाया जा सकता है लेकिन इसके बाद पौधों को गाची समेत ही लगाएं तथा सदाबहार फलदार पौधों को दूसरे सप्ताह में लगाना शुरू कर दें।

पौधे की सिंचाई : फलदार पौधे जो पिछले साल लगाए गए थे उनकी बढ़वार काफी जल्दी होगी इसलिए हर पौधे का ज़मीन की सतह से 60-70 सैं.मी. तक एक ही तना रखें और बराबर की जो बढ़वार आती है तो एक माह के अंतराल पर एक-एक टहनी काटते रहें और पौधों पर 4-6 टहनियां रखते रहें। इसके बाद ज़मीन की सतह से 3 और 5 फुट की ऊंचाई तक 4-5 द्वितीय टहनियां लें। पौधों को बांस की डंडी से सहारा भी अवश्य दें।



पशुओं में

गाय-भैंस

गायों व भैंसों को साफ रखना चाहिए। छोटे बच्चों के आवास में बिछावन का प्रयोग करें, इसे गीला न होने दें और 7-10 दिन में बदल देना चाहिए। इन दिनों भैंसें गर्मी में आती हैं। गर्मी में आने के 8-10 घंटे पश्चात् उनकी मिलाई करानी चाहिए। अच्छी नस्ल के कट्टे व कट्टियां तथा अच्छी बच्छियां लेने के लिए अपने नज़दीकी कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों से गाय-भैंसों को नए दूध कराएं। गाय-भैंसें नियमित रूप से गर्मी में आती रहें, इसके लिए उन्हें संतुलित आहार दें और उनके आहार में 50-60 ग्राम खनिज मिश्रण अवश्य मिलाएं। भैंसें अधिकतर रात को या सुबह के समय गर्मी के

लक्षण दिखाती हैं। इसलिए सुबह-सुबह पशु की जांच करके गर्मी में आए पशुओं की पहचान करें। सर्दी से बचाव के लिए पशुओं को रात को सूखा चारा या तूड़ी डालें।

गाय-भैंस को मुंह व खुर के रोग से बचाने के लिए टीके समय पर लगवाएं। इस रोग का पहला टीका बछड़े-बछड़ियों को 6 सप्ताह की आयु या इससे पहले, दूसरा टीका पहले टीके के 6 सप्ताह बाद, तीसरा टीका दूसरे टीके के 3 मास उपरांत और तत्पश्चात् यह टीका हर 6 मास बाद लगवाना चाहिए।

थन सूजन रोग से पशुओं को सुरक्षित रखने के लिए पशुओं को गीले में न रहने दें और पूरे हाथ से मुट्ठी बांध कर दूध निकालें। दूध निकालने से पहले थनों को साफ पानी से धोकर साफ कपड़े से पोंछना चाहिए। यदि थनों को अंगूठे और उंगलियों के बीच में रखकर दूध निकाला जाएगा तो पशुओं के थन गंठीले हो जाते हैं और उनमें थन सूजन का रोग लग जाता है।

आप अपने पशु चिकित्सक की सलाह से पशुओं को कृमि नाशक दवाइयां दें ताकि उन्हें पेट के कीड़ों से बचाया जा सके।

बरसीम अधिक खिलाने से पशुओं के पेट में अफारा आ जाता है। पशुओं को बरसीम के अफारे से बचाने के लिए बरसीम के हरे चारे में सूखा चारा जैसे कि तूड़ी, कड़वी तथा कूटी इत्यादि मिलाकर खिलाएं। यदि बरसीम पहले दिन की हो तो उसे दूसरे दिन खिलाने से पहले धूप लगाएं। अफारा आने पर 500 ग्राम सरसों या अलसी के तेल में 60 ग्राम तारपीन का तेल व 10 ग्राम हींग मिलाकर पिलाएं तथा तुरंत पशु चिकित्सक से संपर्क करें।

भेड़-बकरी

भेड़-बकरियों को अपने क्षेत्र के पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार दवाई पिलाकर कृमिरहित करें। भेड़-बकरियों को साफ-सुथरे तथा सूखे स्थान पर रखें। भेड़ों से अच्छी और अधिक ऊन प्राप्त करने के लिए उनमें नस्ल का सुधार करें। इसके लिए उन्हें अच्छी नस्ल के मेढ़ों से मिलाएं। इस प्रकार जो नई भेड़ें पैदा होंगी, वे अच्छी नस्ल की होंगी तथा अधिक ऊन व आय आपको मिलेगी।

कुक्कुटों में

जिन चूजों की आयु 6 से 8 सप्ताह की हो गई हो उन्हें रानीखेत की बीमारी से बचाव का दूसरा टीका लगवाएं। यदि मुर्गियों के शरीर पर जूएं व चिचडियां हों तो इसके लिए आप मैलाथियान और सेविन नामक दवाओं का पशु चिकित्सक की सलाह से मुर्गीघरों व मुर्गियों पर छिड़काव कराएं। चिचडियों के कारण मुर्गियों में चीचड़ी ज्वर आ सकता है। इस रोग से मुर्गियों में 43 डिग्री से 44 डिग्री तक बुखार चढ़ जाता है, प्यास खूब लगती है, पीले और हरे रंग के दस्त लग जाते हैं और मुर्गियां काफी संख्या में मर जाती हैं। इस रोग के उपचार के लिए पशु चिकित्सक की सलाह लें। मांस के लिए रखे गए ब्रायलर चूजों को 6 से 8 सप्ताह की आयु में बेच देना चाहिए। यदि इन चूजों की आयु 8 सप्ताह से अधिक हो गई हो तो उन्हें रखना लाभदायक नहीं।

मुर्गीघरों में दिन और रात की रोशनी मिलाकर 16 घंटे होनी चाहिए। यदि रोशनी कम रहे तो मुर्गियां कम अंडे देंगी।



घर-आंगन में

हरियाणा एक शाकाहारी राज्य है। शाकाहारी व्यक्तियों के लिए खुम्ब एक अत्यन्त लाभकारी आहार है। पौष्टिकता के आधार पर खुम्ब की तुलना अन्य दालों, सब्जियों से की जाए तो सोयाबीन की अपेक्षा खुम्ब की पौष्टिकता अधिक है। इसमें उच्च कोटि के प्रोटीन, विटामिन, खनिज लवण तथा रेशे पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। इसमें कार्बोहाईड्रेट और वसा की मात्रा कम होने से यह हृदय एवं मधुमेह से पीड़ित रोगियों के लिए एक पौष्टिक आहार है। इसमें पाई जाने वाली प्रोटीन अधिक पाचनशील है। उत्तम कोटि की प्रोटीन होने के कारण कैल्शियम और फास्फोरस का भी उचित शोषण होता है। अत: खुम्ब का प्रयोग प्रतिदिन के भोजन में विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन बनाकर कर सकते हैं।

- लोहे के बर्तन में भोजन पकाएं जिससे उसमें पोषक तत्त्व लोहा बढ़ जाता है जो एनीमिया से पीड़ित महिलाओं एवं किशोरियों के लिए अति आवश्यक है।
- भोजन पकाने में खाने के सोडे का प्रयोग न करें।
- हरी सब्जियों को काटने से पहले धोएं।
- सब्जियों का पतले से पतला छिलका उतारें।
- सब्जियों को बड़े-बड़े टुकड़ों में काटें।
- सब्जियों को कम से कम पानी में पकाएं, इससे उसमें विद्यमान विटामिन, खनिज लवण सुरक्षित रहते हैं।
- चावलों को उबालने के बाद उसमें से फालतू पानी को न निकालें।

लेखकों से अनुरोध

हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। लेख में अंग्रज़ी शब्दों का प्रयोग न करें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें**। अपना लेख हमें ई-मेल पर भी भेज सकते हैं :

haryanakhetihau@gmail.com

(पृष्ठ 12 का शेष)

खाद्य सुरक्षा को बढ़ावा : उनके सूखे दानों को अपने बिना पोषण मूल्य को खोए लंबे समय तक संग्रहित किया जा सकता है, जो कि फसल के बीच लचीलेपन और खाद्य उपलब्धता को बढ़ावा देता है। कुछ फसलें जैसे कि अरहर बहुत खराब मृदा और अर्द्ध शुष्क वातावरण में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है जहां अन्य फसलों की पैदावार नहीं हो सकती।दलहन फसलों के अवशेषों को जानवरों के चारे के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है, और इन अवशेषों में संग्रहित प्रोटीन की मात्रा पशु स्वास्थ्य में सुधार करती है।

जलवायु परिवर्तन को कम करने और अनुकूलन में सहायक : एक अनुमान के मुताबिक कई स्थानीय किस्मों को मिलकर दलहन फसलों की सैकड़ों किस्में हैं जो कि दुनिया भर में न ही निर्यात की गयी हैं और न उगाया गया है। उनकी व्यापक आनुवंशिक विविधता से अधिक जलवायु-रेसिलिएंट किस्मों का चयन किया जा सकता है। कई दलहन फसलें अक्सर अनाज या घास वाली फसलों की तुलना में मृदा में कार्बन संचय की दर को अधिक बढ़ावा देते हैं। दालों को फसल चक्र में शामिल करके हम उर्वरकों की ऊर्जा सघन विनिर्माण से बच सकते हैं।

गरीब किसानों के लिए अच्छी खबर : दालों के कई फायदे हैं, ये खराब फसल या प्राकृतिक आपदाओं के समय किसानों के लिए बफर प्रदान करते हैं। दलहन उच्च मूल्य वाली फसलें हैं, जिनसे आमतौर पर अनाज वाली फसलों की तुलना में 2-3 गुना अधिक आमदनी प्राप्त कर सकते हैं। दालों का स्थानीय संसाधन भी ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार के अवसर प्रदान कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, वे महंगे रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों पर निर्भरता को कम करते हैं।

लम्बी संग्रहण और उपयोग अवधि : जब वायुरोधी कंटेनरों में संग्रहित किया जाता है, तो दालों को बिना बिगड़े महीनों, सालों तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

दालें शून्य अपव्यय : दालों के हर भाग का उपयोग किया जा सकता है: फली लोगों को खिला सकते हैं, पौधे की पत्तियों को जानवरों को खिला सकते हैं या फिर उनको हरी खाद के रूप में उपयोग में ला सकते हैं।

कम लागत की खेती : दलहन किसानों के लिए कम लागत का सौदा है क्योंकि इनके लिये नत्रजन उर्वरक खरीदने की ज़रूरत नहीं है। इसके अतिरिक्त दलहन फसलों में कीटनाशकों का इस्तेमाल भी न के समान होता है।

'स्वच्छ' फसलें-ग्रीनहाऊस गैसों का उत्सर्जन नहीं करते हैं : दलहन ग्रीनहाऊस गैसों के उत्सर्जन न करने के लिये जानी जाती हैं या फिर बहुत ही कम मात्रा में उत्सर्जन करती हैं।

अन्य फसलों की वृद्धि और विकास में सहायक : फसलें जो कि दलहन के साथ में लगाई जाती हैं, उनकी वृद्धि तेज़ी से होती है। दलहनों की जड़ें गहरी होती हैं, इसका मतलब कि ये पानी के लिए अन्य फसलों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं करती हैं।

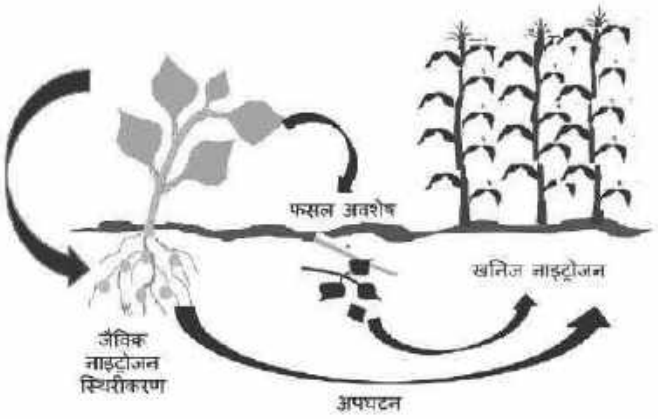

चित्र 1: दलहन आधारित फसल प्रणाली

जैविक खेती में दालों की महत्ता

1. दलहन, कई प्रकार के जीवाणुओं (जैसे : राइजोबियम, ब्रैडीराइजोबियम) के साथ सहजीवन में, वायुमंडलीय अप्राप्य नत्रजन को प्राप्य नत्रजन में परिवर्तित करने में सक्षम होते हैं, जिनका उपयोग पौधों द्वारा किया जा सकता है। एक अनुमान के मुताबिक फलीदार फसलें प्रति वर्ष प्रति हैक्टेयर 72 से 350 किलो नत्रजन का स्थिरीकरण करने में सक्षम होती हैं।
2. दालों की कुछ प्रजातियों मृदा-बाध्य फास्फोरस को मुक्त करने में सक्षम होती हैं, जो पौधों के पौष्टिक भोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
3. अंतर-फसल प्रणाली में दलहन फसलें अपनी गहरी जड़ संरचनाओं के कारण भूमिगत उपयोगिता दक्षता को बढ़ाती हैं, एक मध्यवर्ती पौधों के रूप में दलहन फसलें खरपतवार नियंत्रण एवम अंतर फसल को कीटों-बीमारियों से बचाती हैं।
4. गहरी जड़ों वाली दलहन जैसे अरहर अंतर फसल के लिये भूजल की आपूर्ति करती हैं।
5. दालों को उनकी बहुमुखी प्रतिभा की वजह से जैविक प्रणालियों में अलग-अलग तरीकों से उपयोग में लेते हैं: फसल चक्र, अंतर सस्य प्रणाली, ले-फार्मिंग और कवर फसल के रूप में।



एक्टिनोबैक्टीरिया: जैविक उर्वरक

✍ लीलावती, कविता रानी एवं अनुपमा दहिया
सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

एक्टिनोबैक्टीरिया धागे की तरह संरचना वाले बैक्टीरिया का एक समूह है। मिट्टी में एक्टिनोबैक्टीरिया, जब पौधे की जड़ की सतहों के आस-पास रहते हैं, तब कार्बनिक पदार्थ के टूटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये काइटिन, सेलूलोज, स्टार्च, लिपिड्स और जटिल कार्बोहाइड्रेट के अवक्रमण के लिए विभिन्न प्रकार के हाइड्रोलाइटिक एंजाइमों के स्राव द्वारा उन्हें सरल पदार्थों में परिवर्तित करके पोषक तत्व पुनरावर्तन करने जैसी उपयोगी गतिविधियों के लिए जाने जाते हैं। ये पौधों के लिए आवश्यक हार्मोन का भी उत्पादन करते हैं। एक्टिनोबैक्टीरिया चट्टानी फॉस्फेट की घुलनशीलता में सहायक हैं। एक्टिनोबैक्टीरिया की इन क्षमताओं का पौधों के विकास संवर्धन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और इसलिए, इनको ''जैविक उर्वरक'' भी कहा जाता है। ये जैविक उर्वरक पर्यावरणीय अनुकूल और नवीकरणीय स्रोत होने के कारण हानिकारक उर्वरकों और कीटनाशकों की जगह उपयोग करने के लिए बेहतर विकल्प प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त एक्टिनोबैक्टीरिया में हाइड्रोलाइटिक एंजाइम, रोगाणुरोधी यौगिक, एचसीएन इत्यादि माध्यमिक मेटाबोलाइट्स की एक विस्तृत श्रृंखला उत्पन्न करने की क्षमता होती है जो उन्हें संभावित जैविक नियंत्रक बनाती है। इनका उपयोग अनाज, दलहनी फसलों और फल-फूल वानिकी में सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

निरूपण : इन जैविक उर्वरकों का गठन आमतौर पर कीटाणुरहित स्थिति के तहत किया जाता है। सामान्यत: इस उद्देश्य के लिए एक प्रयोगशाला की आवश्यकता होती है। हालांकि, बाज़ार में भी कुछ जैविक उर्वरक उपलब्ध हैं। एक्टिनोबैक्टीरिया के समूह में, स्ट्रेप्टोमाइसेस की कुछ प्रजातियां तरल रूप में बाज़ार में उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए, वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार, ''रोस्टिन'', एक स्ट्रेप्टोमाइसेस फ्यूमैनस जैविक उर्वरक, विभिन्न क्षमता की बोतलों में तरल रूप में बाज़ार में उपलब्ध है और इनमें स्ट्रेप्टोमाइसेस फ्यूमैनस की कोशिकाओं या बीजाणुओं की मात्रा कम से कम 3 $\times 10^{8}$ कोशिकाएं/बीजाणु प्रति मिलीलीटर होती हैं। इसे मनुष्यों, जानवरों और फायदेमंद कीड़ों के लिए पूरी तरह से सुरक्षित और गैर-विषाक्त माना जाता है। वैज्ञानिक तथ्यों के मुताबिक, इस जैविक उर्वरक का उपयोग करने से अनाज और सोयाबीन की उत्पादकता क्रमश: 20 और 30% बढ़ी है।

उपयोग करने की प्रक्रिया : पौधों के विकास को बढ़ावा देने और लाभप्रद फसल उत्पादन के लिए बीज उपचार एक महत्वपूर्ण स्थिति है। तरल जैविक उर्वरकों में बीज दो से तीन घंटे की अवधि के लिए ठीक तरीके से भिगोते हैं और उपचार के बाद बीज सुखाए जाते हैं। फिर, हल्के सूखे बीज मिट्टी में उगाए जाते हैं। जब जैविक उर्वरकों से उपचारित बीज उगाए जाते हैं, तब ये पौधों के आंतरिक भाग को उपनिवेशित करते हैं तथा पौधों में प्राथमिक पोषक तत्वों की आपूर्ति या उपलब्धता को बढ़ाकर पौधों के विकास को बढ़ावा देने में मदद करते हैं।

एक्टिनोबैक्टीरियल जैविक उर्वरकों के फायदेमंद प्रभाव

एक्टिनोबैक्टीरियल जैविक उर्वरक रासायनिक उर्वरकों से सस्ते हैं। ये नवीकरणीय जैविक संसाधनों से तैयार किए जाते हैं। एक्टिनोबैक्टीरियल जैविक उर्वरकों का उपयोग राइजोस्फियर की मिट्टी की संरचना में सुधार करता है और पौधों के चारों ओर फायदेमंद सूक्ष्मजीवों के विकास के लिए एक बेहतर वातावरण बनाता है। इन जैविक उर्वरकों द्वारा मिट्टी में रोगाणुरोधी यौगिकों का उत्पादन बढ़ जाता है जो रोगजनक बैक्टीरिया और कवक को मारने में उपयोगी है और पौधों की बीमारियों की रोकथाम में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

यद्यपि, एक्टिनोबैक्टीरियल जैविक उर्वरकों का उपयोग फसल और मिट्टी के लिए बहुत फायदेमंद है परंतु इन जैविक उर्वरकों के निर्माण के लिए पूर्ण कीटाणुरहित स्थिति आवश्यक है। इसलिए, इन्हें प्रयोगशाला के बाहर तैयार नहीं किया जा सकता है।

(पृष्ठ 7 का शेष)

पिछले 14 साल से हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार के वैज्ञानिक सरसों में मरगोजा से होने वाली हानियों व इसकी रोकथाम के उपायों पर शोधकार्य कर रहे हैं। तजुर्बों के आधार पर यह पाया गया है कि जिस दवाई से मरगोजा का नियन्त्रण किया जा सकता है अगर उस दवाई का सही समय पर और सही मात्रा में उपयोग न किया जाये तो इससे सरसों की फसल को भी नुकसान होने की संभावना बनी रहती है। शोधकार्य से यह निष्कर्ष निकला कि ग्लाइफोसेट खरपतवारनाशक की 25 मि.ली. मात्रा प्रति एकड़ बिजाई के 30 दिन बाद व 50 मि.ली. मात्रा प्रति एकड़ बिजाई के 55-60 दिन बाद 125-150 लीटर पानी में छिड़काव करने से मरगोजा का 60-90 प्रतिशत तक नियन्त्रण होता है। ध्यान रखें कि छिड़काव के समय या बाद में खेत में नमी का होना ज़रूरी है इसके लिए छिड़काव से 2-3 दिन पहले या बाद में सिंचाई अवश्य करें। सुबह के समय जब पत्तों पर ओस व नमी बनी होती है तब भी छिड़काव न करें।



एक कदम स्वच्छता की ओर

केंचुआ खाद - काम एक : लाभ अनेक

✍ ममता फौगाट, रीटा दहिया एवं सुनील कुमार[1]
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखने और उसे बेहतर करने के लिए और साथ ही साथ अच्छा कृषि उत्पादन प्राप्त करने के लिए अन्य साधनों के अतिरिक्त खाद का भी विशेष स्थान है और इन सभी के लिए केंचुआ खाद एक बेहतरीन विकल्प है। केंचुआ खाद जहां उत्पादन को बेहतरीन बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है वहीं यह एक अतिरिक्त आय का भी एक अच्छा साधन है। देश में हरित क्रांति के बाद से खाद्य उत्पादन में बेहद सार्थक वृद्धि हुई है। कभी विदेशों से आयात करने वाला भारत अब अन्न उत्पादन में आत्मनिर्भर है और अन्न का निर्यात भी करता है। लेकिन अधिक अन्न उत्पादन लेने की इस अंधी दौड़ में हमने अपनी मिट्टी की उर्वरकता को काफी हानि पहुंचाई है। ऐसे में रासायनिक खाद के साथ-साथ जैविक खाद या पारंपरिक कृषि पद्धति का चलन बढ़ रहा है, जो एक अच्छा संकेत है। जैविक खादों में केंचुआ खाद/वर्मी कम्पोस्ट सबसे लोकप्रिय है। वर्मीकम्पोस्ट कृषि व्यर्थ पदार्थों को केंचुए के उपयोग से खाद में बदलने की प्रक्रिया है। वर्मी कम्पोस्ट फसलों की वृद्धि तथा विकास के लिए आवश्यक स्थूल तथा सूक्ष्म तत्व प्रदान करता है। केंचुआ खाद एक आदर्श प्राकृतिक खाद है, जो मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों को और भी बेहतर बनाती है। रसायनों के उपयोग से मिट्टी का स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है, इसलिए मिट्टी के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में केंचुए की खाद का प्रयोग करना चाहिए। केंचुआ खाद बनाने के लिए दो सप्ताह पुराना गोबर, कीड़ों द्वारा नष्ट फल और सब्जियां, फलों और सब्जियों के छिलके, फसलों की पत्तियां और डंठल, घास-फूस और दूसरे कार्बनिक अपघटनशील पदार्थ आदि का प्रयोग किया जाता है। गोबर को पेड़ की छाया में ही सुखाना चाहिए, इस प्रक्रिया के दौरान गोबर की सारी गर्मी निकल जाती है और केंचुओं को कोई नुकसान नहीं पहुंचता। वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए 1 मी. चौड़ा और इच्छनुसार लम्बा वर्मीबैड या वर्मी टैंक बनाते हैं और ऊपर से ढक देते हैं। एक मीटर क्षेत्र में 500-700 केंचुए डालते हैं और धीरे-धीरे इनकी संख्या बढ़ती रहती है। वर्मीकम्पोस्टिंग बनाते समय नमी का स्तर बनाए रखना चाहिए। केंचुआ खाद पौधों के लिए संतुलित आहार है क्योंकि इसमें नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाशियम के साथ-साथ सूक्ष्म तत्व, वृद्धि वर्धक हार्मोन्स, विटामिन और इन्जाइम्स मिलते हैं। केंचुआ खाद से फसलों की गुणवत्ता बढ़ती है। केंचुआ खाद तैयार करने वाले बैड का विकल्प भी प्रयोग कर सकते हैं। मोटे कपड़े और प्लास्टिक बैगों का प्रयोग किया जा सकता है और इन्हें कहीं भी आसानी से ले जाया जा सकता है और साथ ही स्थाई संरचना बनाने की आवश्यकता नहीं है। केंचुए किसानों के पुराने मित्र हैं और मिट्टी के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने के साथ-साथ पर्यावरण सुरक्षा में भी सहयोग देते हैं।

''मृदा को बचाना है, समृद्ध हरियाणा बनाना है।''

[1]एस. के. आर. ए. यू. बीकानेर

स्वास्थ्य की दृष्टि से अर्जुन की छाल का महत्व

✍ मीनू सिरोही एवं वीनू सांगवान
खाद्य एवं पोषण विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अर्जुन एक सदाबहारी वृक्ष है जो भारत जैसे गरम जलवायु वाले देश के विभिन्न क्षेत्रों जैसे हरियाणा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र इत्यादि में पाया जाता है। वैसे तो पोषण व औषधीय दृष्टि से अर्जुन के सभी भाग जैसे पत्तियाँ, जड़, फल, बीज व छाल सभी उपयोगी हैं परन्तु अर्जुन की छाल स्वास्थ्य की दृष्टि से सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण है। इसकी छाल में विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व जैसे बीटा कैरोटीन, विटामिन सी, खनिज लवण जैसे कैल्शियम, क्रोमियन, आयरन, ज़िंक, कॉपर, मैग्नीशियम इत्यादि, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फाइबर व फाइटोकैमिकल्स जैसे फ्लेवोनॉइड्स, ग्लाइकोसाइड्स, पॉलीफिनाल्स, बीटा सीटोस्टिरोल इत्यादि पाये जाते हैं। ये फाइटोकैमिकल्स तथा विटामिन्स जैसे विटामिन सी व बीटा कैरोटीन शरीर में एण्टीऑक्सीडेन्ट्स का कार्य करते हैं। एण्टीआक्सीडेन्ट्स हमारे शरीर में फ्री रेडीकल्स के निर्माण को रोकते हैं और हमारे शरीर को विभिन्न प्रकार के गम्भीर रोगों जैसे कैंसर, हार्ट अटैक, गुर्दे, फेफड़े, लीवर इत्यादि के रोगों व शीघ्र बुढ़ापे से बचाते हैं। अर्जुन की छाल का प्रयोग विशेष रूप से हृदय रोगों व मधुमेह के उपचार के लिये किया जाता है। वैसे तो बाज़ार में विभिन्न प्रकार की मानव निर्मित दवाइयाँ उपलब्ध हैं जिनका प्रयोग हृदय रोगों तथा मधुमेह के उपचार के लिये किया जाता है। परन्तु जहाँ एक ओर हर वर्ग इन्हें खरीदने में असमर्थ है वहीं इन दवाइयों के कई विपरीत प्रभाव भी देखने को मिलते हैं।

विभिन्न अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि अर्जुन की छाल हृदय व मधुमेह के रोगियों के इलाज के लिए रामबाण है। वहीं दूसरी ओर लम्बे समय तक इसका प्रयोग करने से शरीर के अन्य अंगों जैसे लीवर, गुर्दे इत्यादि पर इसका कोई दुष्प्रभाव भी नहीं पड़ता है। वैसे तो बाज़ार में आजकल अर्जुन की छाल से बनी चाय, कैप्सूल व गोलियाँ उपलब्ध हैं परन्तु घर पर भी अर्जुन की छाल से पेय पदार्थ तैयार किये जा सकते हैं। 10 ग्राम अर्जुन की छाल को 300-400 मिली लीटर पानी में तब तक उबाला जाता है जब तक की पानी की मात्रा 100-150 मिली लीटर रह जाये। फिर उबले पानी को छानकर ठण्डा करके प्रतिदिन सुबह के समय खाली पेट पीना चाहिये।

अर्जुन की छाल के फायदे

1. अर्जुन की छाल में क्यू-10 नामक कोएन्जाइम पाया जाता है जो हृदय की माँसपेशियों को मज़बूत बनाकर हृदय की कार्यक्षमता को बढ़ाता है।
2. यह भोजन में उपस्थित कोलेस्ट्राल का बड़ी आँत द्वारा अवशोषण बढ़ा देता है। जिससे शरीर से अधिक से अधिक कोलेस्ट्राल का निष्कासन हो सके और शरीर में कोलेस्ट्राल की मात्रा सामान्य बनी रहे।
3. यह लीवर द्वारा पित्त रस के निर्माण को तेज़ कर देता है जिससे ज़्यादा से ज़्यादा कोलेस्ट्राल पित्त रस बनाने में प्रयोग हो सके। *(शेष पृष्ठ 26 पर)*

अर्ध शुष्क क्षेत्रों के लिए कृषि वानिकी का महत्वपूर्ण वृक्षः बरमाडेक

✍ करिश्मा नंदा, संदीप आर्य एवं नरेन्द्र
वानिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

देश की बढ़ती आबादी की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का समुचित उपयोग अत्यंत आवश्यक है। आज हमें ऐसी व्यवस्था करने की ज़रूरत है जिसमें पर्याप्त मात्रा में खाद्यान, ईंधन एवं लकड़ी और पशुओं के लिए चारा आदि का प्रबन्ध सुनिश्चित हो सके। देश में सभी प्रकार के वनों का क्षेत्रफल आवश्यक पैमाने से कम न हो इसके लिए कृषि प्रणाली में कृषि वानिकी का समावेश आवश्यक है। कृषि वानिकी के समुचित विकास एवं प्रबंधन से हमारी आवश्यकता की पूर्ति भी होगी और पर्यावरण भी सुरक्षित रहेगा। हाल के वर्षों में वन क्षेत्र में हो रही कमी को देखते हुए कृषि वानिकी को बढ़ाने की अत्यंत आवश्यकता है जिससे किसान की अच्छी आमदनी हो तथा पर्यावरण का संतुलन भी बना रहे। हरियाणा जैसे कृषि प्रधान प्रदेश में कृषि वानिकी का महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि यहां वन क्षेत्र बहुत कम है।

मेलिया दुबिया जो साधारणतया, बरमाडेक व मालाबार नीम के नाम से जाना जाता है, यह मिलिएसी परिवार से संबंधित है। मेलिया दुबिया, तेज़ी से बढ़ने वाला पतझड़ी वृक्ष है जिसे प्रकाश की बहुत आवश्यकता होती है। इस वृक्ष की लंबाई आमतौर पर 15–20 फीट तक पाई जाती है तथा कभी–कभार 40 फीट तक भी पहुंच जाती है। इसकी लकड़ी दीमक रोधी है तथा पत्तियां हरे चारे के लिए उपयोगी हैं। सफेदे और पोपलर के पश्चात् यह वृक्ष कृषि वानिकी में एक सफल वृक्ष साबित हुआ है तथा इन वृक्षों के मुकाबले इसे कम सिंचाई की आवश्यकता होती है। इसका सीधा बढ़ने वाला तना एवं पतझड़ी व्यहवार इसे कृषि वानिकी के लिहाज़ से एक बेहतरीन वृक्ष बनाता है। दक्षिण भारत में यह बेहद महत्वपूर्ण कृषि वानिकी वृक्ष है। उत्तर भारत में इसके साथ रबी फसलें उगाने से बेहतरीन परिणाम मिलते हैं। चूंकि यह पतझड़ी वृक्ष है, जिसके फलस्वरूप दिसंबर से फरवरी तक वृक्ष पत्तियों रहित होने के कारण रबी फसलों को भरपूर सूर्य की रोशनी तथा अन्य महत्वपूर्ण संसाधन उचित मात्रा में मिलते हैं। बरमाडेक के वृक्ष पर फूल फरवरी से लेकर मई तक की अवधि में आते हैं, कुछ समय बाद ही फूलों का स्थान फलों के गुच्छे ले लेते हैं, परन्तु बीज तैयार होने में तकरीबन एक साल लगता है। फल वृक्ष से टूटकर नीचे नहीं गिरते तथा लम्बी अवधि के लिए डालियों पर बने रहते हैं।

यह वृक्ष कम समय में अच्छी आमदनी के लिए एक बेहतर विकल्प है। यह वृक्ष विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है परन्तु गहरी उपजाऊ और रेतीली दोमट मिट्टी में यह अपना बेहतरीन प्रदर्शन करता है। यह वृक्ष उन नमी वाले क्षेत्रों के लिए बढ़िया है जहां वार्षिक वर्षा 800–1000 मि.मी. हो। इसे हरियाणा के शुष्क इलाके में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है परन्तु सिंचाई का पानी अनिवार्य है।

बीज उपचार : बरमाडेक की अंकुरण क्षमता बेहद कम है इसलिए बीज को पूर्व उपचार की आवश्यकता होती है। बीज की अंकुरण क्षमता बढ़ाने के लिए निम्न उपचार करने चाहिएं। बीज को 24 घंटे के लिए गर्म पानी में डुबो दें। (60–70°सेल्सियस) बीज को गोबर और पानी के घोल में सात दिनों तक रखकर उपचार करें एवं उसके पश्चात उगाएं। बीज को रोपने से पहले पानी में तैरते बीजों को हटाकर श्रेणीकरण अवश्य कर लेना चाहिए।

पौधशाला के रखरखाव की विधि : साफ तथा सूखे बीज खुली पौधशाला शय्या पर 5 सैं.मी. की दूरी पर उगाएं। 6–7 कि.ग्रा.बीज एक मानक नर्सरी बेड (10×1) मीटर के लिए काफी है। उगाए गए बीज को नियमित रूप से पानी दें। बीज को मार्च–अप्रैल के महीने में उगाएं, गोबर की खाद को मिट्टी में 2:1 के हिसाब से मिलाएं।

एक महीने के पश्चात पौधों को उखाड़कर प्लास्टिक की थैलियों में उगाएं परन्तु ध्यान रहे प्रत्यारोपण के समय पौधों के मरने का खतरा होता है इसलिए पौधों को 3–4 महीने छायादार नर्सरी में रखें परन्तु छटे महीने के अंत में छायादार जगह से हटाकर बाहर रखें।

वृक्षारोपण विधि : 2×2 फीट के आकार का गड्ढा खोदें तथा उसमें 2–3 कि.ग्रा. जैविक खाद डालें एवं गड्ढे को बंद कर दें। दस दिन के पश्चात गड्ढे को 1/2 फीट की गहराई पर खोलें और उसमें 40 ग्राम फोस्फो बैक्टीरिया, एजोस्पाईरिलम और ट्राईकोडरमा विरिडि मिला दें। 10–20 ग्राम स्युडोमोनास एवं 100 ग्राम वैम का प्रयोग बेहतर विकास के लिए लाभदायी है। अंत में पौधे को इसमें उगा दें एवं पानी दे दें।

पोषक तत्व प्रबंधन : पौधे के बढ़िया विकास के लिए 20–25 ग्राम नाईट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश के मिश्रण का साल में दो बार प्रयोग करें। अन्य पोशक तत्व प्रबंधन ज़रूरत के अनुसार करें।

सिंचाई : बारिश एवं मॉनसून के समय सिंचाई न करें तथा वृक्ष के बेहतरीन प्रदर्शन के लिए उसे 10–15 दिन के अंतराल पर सींचें। पानी को खड़ा न रहने दें, अधिक समय तक पानी में खड़े रहने से पौधे को नुकसान पहुंचता है व पौधा मर भी सकता है।

पौधों की देखभाल : यह वृक्ष अधिक रोशनी में बढ़िया प्रर्दशन करता है। अगर इसे मेंढ़ों पर उगाया जाए तो यह बेहतरीन नतीजे देता है एवं चार–पांच वर्षों के भीतर कटाई के योग्य हो जाता है। पौधों का भेड़–बकरियों द्वारा चरा जाना स्वाभाविक है इसलिए पहले वर्ष पौधों का ज़्यादा ध्यान रखें। पौधों को मॉनसून के आगमन पर उगाएं एवं गड्ढे का आकार 2×2×0.60 मी. का रखें। पौधों के बीच 3×3 मी. तथा 3×4 मी. की दूरी उचित है। कृषि वानिकी के लिहाज़ से पौधे से पौधे और पंक्ति से पंक्ति की दूरी 5×5 मीटर अनुकूल है तथा आदर्श दूरी 8×8 मीटर मान्य है जोकि उनके थोड़े समय में बेहतर विकास के लिए बेहतर है। यह वृक्ष बाज़ार में अच्छे भावों पर बिकता है।

लाभ : मेलिया दुबिया लकड़ी के उत्पाद से सम्बंधित कारखाने जैसे पेपर तथा प्लाईवुड के लिए उत्तम कच्चा माल प्रदान करता है। इस वृक्ष की लकड़ी में दीमक प्रतिरोधी क्षमता है तथा अत्यधिक पल्प की वसूली एवं अच्छी फाइबर ताकत पाई जाती है। यह वृक्ष कम समय में अधिक बायोमास उत्पादन करता है इसलिए मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने में इसका इस्तेमाल किया जा सकता है। यह वृक्ष विभिन्न प्रकार की जलवायु में पाया जाता है तथा जल्दी बढ़ता है। इसी कारण शुष्क क्षेत्रों के लिए इसे बड़े पैमाने पर कृषि वानिकी के लिए चुना जाना लाभदायी है।

फसल अवशेष प्रबन्धन में कस्टम हायरिंग सैंटरों की भूमिका

✍ जयनारायण भाटिया, फतेह सिंह एवं प्रद्युमन भटनागर
कृषि विज्ञान केन्द्र, कुरूक्षेत्र
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

धान एवं गेहूँ की कटाई के बाद किसान बचे हुए फसल अवशेषों को खेत में ही जला देते हैं। यह समस्या सिंचित क्षेत्रों खासकर गेहूँ–धान फसल चक्र में तो एक भयावह स्थिति बन चुकी है। इन अवशेषों में पोषक तत्व भी काफी मात्रा में विद्यमान रहते हैं। यदि इन अवशेषों का समुचित प्रयोग किया जाए और वापिस ज़मीन में ही मिला दिया जाए तो भूमि की उर्वरा शक्ति में काफी हद तक इजाफा किया जा सकता है तथा पर्यावरण प्रदूषण पर भी नियंत्रण पाया जा सकता है।

गौरतलब है कि एक टन धान की पराली में 5.5 किलो ग्राम सल्फर, नाइट्रोजन, 2.3 कि.ग्रा. फास्फोरस, 25 कि.ग्रा. पोटाश, 1.2 कि.ग्रा. सल्फर व 50 से 70 प्रतिशत ज़मीन से लिए हुए सूक्ष्म तत्व के अलावा 400 कि.ग्रा. कार्बन जलाने पर नष्ट हो जाते हैं। आंकड़ों के हिसाब से उत्तर–पश्चिम क्षेत्रों में जहाँ पर धान की खेती व्यापक स्तर पर की जा रही है, 23 लाख टन धान के अवशेषों से लगभग 7 लाख टन नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश व सल्फर आग के हवाले किए जा रहे हैं, जिनका मूल्य 1000 करोड़ रूपयों से ऊपर है। आग लगाने से कुल पोषक तत्वों का प्रति हैक्टेयर 3300 रू नुकसान होता है (1336 रू प्रति एकड़)। अवशेषों को जलाने पर कार्बनमोनोक्साईड, कार्बनडाईऑक्साईड, नाईट्रस ऑक्साईड, सल्फर डाईऑक्साईड तथा मिथेन गैसों का उत्सर्जन होता है जो कि वायुमण्डल में प्रदूषण फैलाते हैं तथा वातावरण का तापमान दिन–प्रतिदिन बढ़ा रही हैं। यह ज़हरीली गैसें मानव स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक हैं तथा इनके कारण खाँसी, दमा, आंखों में जलन व चमड़ी के कई प्रकार के रोग हो रहे हैं।

इस समस्या के समाधान हेतु केन्द्र सरकार द्वारा पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और दिल्ली राज्यों के लिए फसल अवशेषों का खेतों में ही प्रबन्धन के लिए कृषि मशीनीकरण पर केन्द्रीय योजना शुरू की गई है। इस योजना के तहत 1152 करोड़ रूपये व्यय का प्रावधान रखा गया है। इस कार्य को कार्यान्वित करने के लिए राज्य कृषि विभाग, कृषि विज्ञान केन्द्र, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थान और राज्य कृषि विश्वविद्यालयों की महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी।

कस्टम हायरिंग सैंटर : कृषि विभाग द्वारा प्रदेश के सभी ज़िलों में अलग–अलग खण्डों/कलस्टरों में कस्टम हायरिंग सैंटर स्थापित किए जा रहे हैं जिसमें विभिन्न प्रकार के आधुनिक कृषि यन्त्र विशेषकर फसल प्रबंधन यन्त्रों का समावेश किया गया है, क्योंकि छोटे/मझोले किसानों के लिए सभी महंगे कृषि यन्त्र खरीद पाना संभव नहीं होता है। अत: सरकार की योजना के तहत इन कृषि यन्त्र बैंकों से तय दरों पर कृषि यन्त्र प्राप्त करके खेतों के कार्य करवा सकते हैं।

कस्टम हायरिंग सैंटर स्थापित करने की मद एवं परियोजना लागत :

1.	कस्टम हायरिंग के लिए कृषि यन्त्र बैंक	10 लाख से लेकर 60 लाख रू. तक।
2.	कस्टम हायरिंग के लिए हाइटैक हाईप्रोडेक्टिव इक्यूपमैंट हब	1 करोड़ से 2.5 करोड़ तक।

कस्टम हायरिंग सैंटर स्थापित करने के लिए पात्रता :–

	स्कीम का नाम	परियोजना लागत
1.	कस्टम हायरिंग के लिए कृषि यन्त्र बैंक	किसानों के समूह/सहकारी समितियां/ पंजीकृत किसान समूह/स्वयं सहायता
2.	कस्टम हायरिंग के लिए हाइटैक हाईप्रोडेक्टिव इक्यूपमैंट हब	समूह उद्यमी जिसकी वार्षिक टर्न ऑवर दो करोड़ से अधिक हो।

कस्टम हायरिंग सैंटर स्थापित करने के लिए अनुदान राशि :–

सोसाईटी द्वारा कृषि यन्त्रों की खरीद करके बिल सहायक अभियन्ता कार्यालय में जमा करवाने होंगे। लागत का 40 प्रतिशत या मद में दी गई सीमा अनुसार जो भी कम हो, अनुदान राशि सोसाईटी/समूह के बैंक खाते में जमा करवाई जायेगी। यदि सोसाईटी/समूह ने बैंक से कोई लोन लिया है तो अनुदान राशि उस बैंक को अदा की जायेगी।

फसल अवशेष प्रबन्धन के लिए हरियाणा में कृषि एवं किसान कल्याण विभाग द्वारा वर्ष 2018–19 के दौरान 900 कस्टम हायरिंग सैंटर स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया है जिनके लिए 137 करोड़ रूपये का प्रावधान रखा गया है तथा जिसमें से 72 करोड़ रूपये का अनुदान किसानों, किसान समूहों व सोसायटी को दिया जाएगा। इस स्कीम के तहत ज़िला करनाल में 120, कैथल में 112, कुरूक्षेत्र में 100, जींद 90, सोनीपत, अम्बाला व यमुनानगर प्रत्येक में 60–60, फतेहाबाद, सिरसा व पानीपत में 50–50, झज्जर में 40, भिवानी व रोहतक में 30–30, पलवल में 25, हिसार में 10, रिवाड़ी व फरीदाबाद में 5–5 तथा पंचकूला में 3 कस्टम हायरिंग सैंटरों की स्थापना का लक्ष्य रखा गया है।

इन कस्टम हायरिंग सैंटरों में फसल अवशेष प्रबन्धन को समुचित रूप से आठ तरह के कृषि यन्त्र इन सिटू फसल अवशेष प्रबन्धन के लिए चुने गये हैं। जिनका विवरण, क्षमता, अनुमानित मूल्य व अश्व शक्ति का ब्यौरा दिया जा रहा है :

1. हैप्पी सीडर :

क्षमता	1 एकड़ प्रति घंटा
अश्व शक्ति	50 एच.पी. या अधिक
अनुमानित मूल्य	1 लाख से 1.75 लाख

हैप्पी सीडर एक ऐसी मशीन है जो धान की फसल की कटाई के बाद गेहूँ को सीधे खेत के अवशेषों के साथ ही बुवाई कर सकती है। हैप्पी सीडर पराली संभालने वाला रोटर व ज़ीरो ड्रिल मशीन का मिश्रण है इसमें रोटर धान की पराली को दबाने का काम करता है व ज़ीरो ड्रिल गेहूँ की बुवाई का काम करता है। यह यन्त्र धान की कटाई के बाद तुरन्त बुवाई को सरल बनाता है तथा भूमि में उपलब्ध पोषक तत्वों व जीवाणुओं को सुरक्षित करता है।

2. सुपर स्ट्रा मैनेजमैंट सिस्टम (एस.एस.एम.एस.)

क्षमता	1.5 घंटा /एकड़
अश्व शक्ति	100 एच.पी. या अधिक
अनुमानित मूल्य	1.12 लाख रूपये

धान की फसल को कम्बाईन हारवैस्टर से निकालने के लिए इन मशीनों के पीछे सुपर एस.एम.एस. है जो कम्बाईन के पीछे गिरती हुई पराली को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर एक सार बिखेर देती है जिससे किसान ज़ीरो टिलेज व हैप्पी सीडर से अपने खेत की आसानी से बिजाई कर सकता है। हाल ही में हरियाणा प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड ने अंडर सैक्शन-31 ए प्रदूषण नियन्त्रण एवं रोकथाम 1981 के तहत पुराने सभी कम्बाईन हारवैस्टरों में सुपर स्ट्रा मैनेजमैंट सिस्टम जरूरी कर दिया है।

3. पैडी स्ट्रा चॉपर :

क्षमता	एक एकड़ प्रति घंटा
अश्व शक्ति	50 एच.पी. या अधिक
अनुमानित मूल्य	3 से 3.5 लाख

यह यन्त्र धान व गेहूँ के खड़े हुए फसल अवशेषों को काटकर छोटे-छोटे टुकड़ों में डाल देता है जिसके उपरान्त हैरो, कल्टीवेटर, रोटावेटर जैसे कृषि यन्त्रों द्वारा तुरंत अवशेष भूमि में मिलाने से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है, फसल अवशेष जलाने से मुक्ति मिलती है तथा आगामी फसल की पैदावार में बढ़ोत्तरी होती है।

4. भार्ब मास्टर :

क्षमता	आधा घंटा प्रति एकड़
अश्व शक्ति	35 एच.पी.
अनुमानित मूल्य	45 हज़ार रुपये

यह एक ऐसा यन्त्र है जिसमें ज़ीरो टीलेज मशीन या हैप्पी सीडर से गेहूँ की बुवाई से पहले धान व गेहूं के फसल अवशेषों में भार्ब मास्टर/कटर कम स्प्रैडर चलाना पड़ता है जिससे वह धान व गेहँ के अवशेष के टुकड़ों को बारीक काटकर पूरे खेत में एक साथ फैला देता है जिससे बिजाई करने में आसानी हो जाती है तथा फसल अवशेष मल्चिंग का काम करते हैं व इसको अपनाने से आगामी फसल में खरपतवार भी कम उगते हैं।

5. रिवर्सिबल मोल्ड बोर्ड हल :

क्षमता	1 एकड़ प्रति घंटा
अश्व शक्ति	55 एच.पी. या अधिक
अनुमानित मूल्य	1.50 लाख से 2.40 लाख

यह यन्त्र खेत में गहरी जुताई करके फसल अवशेषों को मिट्टी में अच्छी तरह से दबा देता है। ऐसा करने से मिट्टी की जल ग्रहण करने की क्षमता बढ़ जाती है। रिवर्सिबल प्लो द्वारा गहरी जुताई करने से खरपतवारों के बीज भी नष्ट हो जाते हैं। इस प्रक्रिया से भूमि में उपस्थित हानिकारक जीवाणुओं को भी नष्ट करने में सहायता मिलती है।

6. रोटरी भालेसर

क्षमता	1 एकड़ प्रति घंटा
अश्व शक्ति	40 एच.पी.
अनुमानित मूल्य	50 हज़ार

रोटरी भालेसर एक मज़बूत यन्त्र है जो कि चारागाह व झाड़ियों को काटने में सबसे उपयुक्त पाया गया है। यह यन्त्र 1.20 मीटर, 1.50 मीटर व 1.80 की चौड़ाई में उपलब्ध है जिसको ट्रैक्टर के साथ जोड़कर काम में लाया जाता है। इस यन्त्र की यह खासियत है कि यह 25 मिली मीटर लम्बे खड़े फसल अवशेषों को भी काटकर छोटे-छोटे टुकड़ों में कर देता है। इसका धारधार ब्लेड व मज़बूत ढ़ांचा इसकी काम करने की क्षमता को बढ़ाता है इसलिए ऊबड़-खाबड़ झाडियों, ऊंचे-नीचे घास व पार्कों में इस यन्त्र का बखूबी प्रयोग किया जा रहा है।

7. ज़ीरो टिलेज सीड ड्रील :

क्षमता	1 एकड़ प्रति घंटा
अश्व शक्ति	30 एच.पी. या अधिक
अनुमानित मूल्य	35 से 40 हज़ार

धान की कटाई उपरान्त खेत में खड़े धान के फसल अवशेषों के प्रबन्धन के लिए गेहूँ की बिजाई इस मशीन से करना लाभदायक पाया गया है। इस मशीन द्वारा गेहूँ की बिजाई करने से धान फसल के फाने नहीं जलाने पड़ते। फाने चाहे कितने भी बड़े क्यों न हों उसी में ही गेहूं की बिजाई हो जाती है जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहती है, जमाव जल्दी होता है, खरपतवार कम उगते हैं व लगभग 1000-1200 रूपये प्रति एकड़ की बचत भी होती है।

8. रोटावेटर :

क्षमता	1 घंटा प्रति एकड़
अश्व शक्ति	50 एच.पी. या अधिक
अनुमानित मूल्य	0.90 लाख से 1.20 लाख

इस कृषि यन्त्र को भी फसल अवशेष प्रबन्धन के प्रयोग में लाया जा सकता है। चॉपर चलाने के बाद कटी हुई पराली को हल्का पानी लगाकर रोटावेटर की मदद से धान व गेहूँ के फसल अवशेषों को ज़मीन में आसानी से मिला सकते हैं। यह फसल अवशेष ज़मीन में मिलाने के बाद बहुत जल्दी गल-सड़ जाते हैं।

अत: सभी किसानों से निवेदन है कि सरकार द्वारा कस्टम हायरिंग सैंटरों में सुझाए गए आठ प्रकार के कृषि यन्त्रों का फसल अवशेष प्रबन्धन में ज़्यादा से ज़्यादा उपयोग करें। प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और पर्यावरण हितैषी न केवल किसानों और सरकार दोनों के लिए फायदे का सौदा साबित होगा बल्कि मानवता के लिए स्वच्छ वातावरण प्रदान करने में एक मील का पत्थर साबित होगा।

''खेत के अवशेष खेत में मिलाएं
ज़मीन की उपजाऊ शक्ति बढ़ाएं
एवं वातावरण शुद्ध बनाएं''

बच्चों को दें : सुरक्षित वातावरण

✍ कुसुम राणा, शीला सांगवान एवं सुमन मलिक
कृषि विज्ञान केन्द्र, झज्जर
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

घर व इसके आसपास प्रयोग होने वाली वस्तुएं सभी प्राणियों खास करके बच्चों के लिए बड़ी दुर्घटना का कारण बन सकते हैं । बिजली की बिना ढकी तारें, आग, गरम पानी, बिना ग्रिल लगी खिडकियां, बालकानी के पास रखे स्टूल, बच्चों की पहुंच तक रखी दवाइयां तथा ज्वलनशील पदार्थ जैसी अनेक परिस्थितियाँ बच्चों के लिये बड़ी दुर्घटना के साथ–2 जानलेवा भी सिद्ध हो सकती हैं।

आये दिन हम अपने आसपास बच्चों के जलने, करंट लगने, सीढ़ियों से गिरने, स्नानघर में बंद होने व गलती से दवा, सिक्का, खिलौने व अन्य चीज़ निगलने जैसी अनेक घटनाओं के बारे में सुनते रहते हैं। बच्चे जिज्ञासु होते हैं तथा उनके लिये वयस्कों द्वारा की गई कोई भी अच्छी या बुरी क्रिया कुछ नया सीखने की प्रतिक्रिया होती है। बच्चे लाईटर को जलाने ,शेव करने, स्टोव को जलाने तथा बंदूक को चलाने जैसे घातक प्रयास भी कर सकते हैं।

निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखकर हम बच्चों को विभिन्न दुर्घटनाओं से बचा सकते हैं :–

1. बच्चों को सिगरेट , हुक्के , लाईटर , माचिस तथा अन्य धुयें तथा आग वाली चीज़ों से दूर रखें।
2. मोमबत्ती को उसी कमरे मे जलायें जहां बच्चों के साथ वयस्क मौजूद रहें। मोमबत्ती को बच्चों की पहुंच से दूर रखें।
3. खाना बनाते समय गैस व चूल्हे के पास बच्चों को गोदी या पास में न बिठाएं। ज्वलशील पदार्थों जैसे घी, तेल, मिट्टी के तेल इत्यादि को चूल्हे से दूर रखें।
4. गरम खाने व तरल पदार्थ जैसे दूध, चाय, दवाइयों को रसोईघर की स्लैब पर न रखें। मेज़ पर मेज़पोश न बिछायें जिसे बच्चे अपनी ओर खींचकर उसपर रखे सामान से दुर्घटनाग्रस्त हो सकते हैं।
5. बिजली के उपकरणों को जब प्रयोग में न ला रहे हों तो उनकी तार निकाल कर रखें । बिजली के प्लग्स को टेप या अन्य किसी चीज़ से ढक दें ।
6. स्नानघर में बच्चों को एक सेकेंड के लिये भी अकेला न छोडें। बच्चों को नहलाने के लिये रखे गर्म पानी का तापमान स्वयं चैक करें। बाथरूम की चिटकनी ऐसी लगायें जो बाहर से भी खुल सकती हो क्योंकि बच्चे अज्ञानतावश स्वयं को कुंडी लगाकर अंदर बंद हो सकते हैं।
7. बच्चों के लिये खिलौने ऐसे खरीदें जो रंगीन, हल्के तथा उनको हानि न पहुंचाने वाले पदार्थों से बने हों क्योंकि बच्चे प्राय: देखकर, छूकर, सुनकर व चखकर सीखते हैं तथा अक्सर खिलौनों को मुँह में डालकर उन्हें जानने समझने की कोशिश करते हैं।
8. खिलौनों के ऊपर की प्लास्टिक पेकिंग को तुरंत निकाल दें क्योंकि यह छोटे बच्चों के लिये जानलेवा भी हो सकती है। आठ साल से कम उम्र के बच्चों को नुकीले किनारों, कांच व धातु से बने खिलौने न दें ।
9. घर की बालकनी में कोई भी स्टूल, बड़े खिलौने व कुर्सी इत्यादि न रखें जिनपर चढ़कर बच्चा गिर सकता है ।

इन बातों को ध्यान में रखें व बच्चों को स्वस्थ व सुरक्षित वातावरण प्रदान करें।

(पृष्ठ 22 का शेष)

4. यह शरीर में बुरे कोलेस्ट्राल के निर्माण को कम करता है और अच्छे कोलेस्ट्राल के निर्माण को बढ़ाता है।
5. यह कोलेस्ट्राल के निर्माण में सहायक एन्जाइम्स की कार्यविधि को कम करता है।
6. यह शरीर में रक्त को गाढ़ा होने से रोकता है जिससे रक्त आसानी से रक्त वाहिनियों द्वारा पूरे शरीर में लाया और ले जाया जा सके।
7. यह रक्त वाहिनियों को आराम की स्थिति प्रदान करके उच्च रक्तचाप को नियन्त्रित रखता है।
8. यह शरीर में बुरे कोलेस्ट्राल के ऑक्सीकरण को रोकता है। जिससे वह रक्त वाहिनियों में खून के प्रवाह में बाधा उत्पन्न न करे।
9. अर्जुन की छाल में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के फाइटोकैमिकल्स व अन्य एण्टीऑक्सीडेन्ट्स हृदय तथा शरीर के अन्य भागों से रक्त को लाने व ले जाने वाली रक्त वाहिनियों में खून का थक्का जमने से रोकते हैं जिससे अचानक हार्टअटैक, ब्रेन हैमरेज इत्यादि का खतरा कम हो जाता है।
10. यह शरीर में ग्लूकोज़ से ग्लाइकोजन तथा ग्लूकोज़ से ऊर्जा के निर्माण में सहायक एन्जाइम्स की कार्यविधि को बढ़ाता है जिससे रक्त में ग्लूकोज़ की मात्रा सामान्य बनी रहे। यह मधुमेह को भी नियन्त्रित करता है।
11. अर्जुन की छाल में पाये जाने वाले एण्टीऑक्सीडेन्ट्स शरीर के महत्वपूर्ण अंगों जैसे लीवर, गुर्दे, मस्तिष्क, आँखों की रेटिना, हृदय इत्यादि को फ्री रेडिकल्स के प्रभाव से बचाते हैं। ये शरीर में बनने वाली विभिन्न एण्टीऑक्सीडेन्ट्स जैसे कैटालेज, सुपर आक्साइड डिसम्यूटेज़ इत्यादि की कार्यक्षमता को भी बढ़ाते हैं।

विभिन्न आयु वर्ग के व्यक्ति यदि अर्जुन की छाल व इससे बने पेय पदार्थों व अन्य खाद्य पदार्थों को प्रतिदिन अपने आहार में शामिल करते हैं तो वे हृदय के विभिन्न रोगों, व मधुमेह, कैंसर जैसे गम्भीर रोगों से अपने आपको मुक्त करके स्वस्थ, तनाव मुक्त व लम्बा जीवन जी सकते हैं।

Post-Harvest Management of Fruits

✍ **Surender Singh, Mukesh Kumar[1] and R.S. Saini[2]**
SNIATTE
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Because of perishable nature, 20 to 30% production of fruits goes waste during post-harvest handling of fruits. This is mainly due to improper harvesting, transportation and storage. The losses increase as produce moves down the pipeline from harvesting to its consumption by the consumer. Therefore, elimination of these losses will significantly increase fruit supply without bringing additional land under plantation and using additional inputs management of horticultural crops should therefore, be done in such a way so that the fruit quality may not be affected adversely through harvesting till it reaches to the consumers. Care to be taken during handling of fruit crops is summarized under appropriate heading below :

Care during Harvesting : Fruits should be harvested at proper stage of maturity/ripening. As fruits harvested at immature stage remain poor in quality on ripening. Similarly, delayed harvesting increases fruit susceptibility to decay. The maturity of fruits can be judged by colour, size, shape, firmness, ease of separation from the tree, specific gravity and their chemical composition. Harvest maturity of fruits depends upon purpose for which it is harvested. For example if fruits are to be transported to local market then fully ripe fruits are harvested but for distant market, fruits should be harvested at fully mature stage when fruits are hard and can withstand jerks of transportation.

Harvesting of Fruits : Much attention is to be paid during harvesting of fruits. Improper harvesting causes bruising and injury to fruits which spoil the look of the fruits and make susceptible for pathogen infection. Manual harvesting is most desirable but it is very expensive method. Fruits like citrus can be harvested by pulling, clipping and shaking; mango and guava fruits are harvested mainly by hand plucking but harvesting by clipping with picking poles is also being used. Fruits from high branches can be harvested with the help of clipper fixed on the pole with a collecting bag attached to it. Care should be taken that the fruit should not fall on the ground with such a force which may cause injury to fruits. To avoid injury, make the ground soft or provide cushioning with soft grass.

Harvesting of fruits should be done with secateur keeping small pedicel intact with each fruit. Harvesting of fruits in cool hours of day i.e. morning or evening is more suitable as it helps in natural pre-cooling. Grapes should be harvested with secateur by cutting the rachis near the attachment in such a way that the bloom of grapes berries remains intact.

Pre and Post-harvest Applications : Some chemicals are effectively used to increase the shelf life of fruits. Use of calcium nitrate spray@ 1.0 percent, 10 days before harvest increases the shelf life of grapes, ber, guava, etc. Spray of 500 ppm Bavistin /Captan, 10 to 20 days before harvest helps in decreasing the decay losses in grapes and citrus. Dipping of fruits in 500 to 1000 ppm solution of ethrel seven days before harvest helps in better colour development, easy harvest in citrus. Application of sesame oil (2% emulsion) is good for better shelf life of Kinnow and mandarins. Post-harvest application of 200 ppm GA to lemon fruits, 1000 ppm Kinnow impregnated packing material in peaches and 1000 to 2000 ppm MH to mango fruits are beneficial for better storage.

Care after Harvest : Fruit washing is done only where the artificial colouring and waxing is practiced i.e. in fruits like oranges, mandarins, lemons, etc. Soiled fruits should be washed before sending to market for fresh consumption, whereas fruits like grapes, phalsa, strawberry should not be washed as washing removes natural bloom and protecting coverings and therefore such fruits become highly susceptible to pathogens. Fruits like grapes, guava should be fumigated with SO_2, to remove the surface pathogens.

Grading : Before packing, grading of fruits is very important. Fruits are graded on the basis of quality as A, B, C so on. After grading, sizing is done. Fruits of uniform size as per prescribed dimension are graded and can be named as extra large, large, medium, small, etc. These grading for quality and size should be written on each package.

Packing : For systematic market of fruits packing in suitable packages is very useful as the packed fruits are less liable to transport injury and consumer gets fruit in good condition. For transportation bigger packages (10 to 20 kg capacity), depending on kind of fruits should be selected, while 2 to 5 kg capacity containers are preferred for retail market. To avoid bruising, cushioning is done with waste paper cuttings; doob grass, green leaves, etc.

Storage of Fruits : Principal aim of storage is to control the rate of transpiration, respiration and disease infection. Cold storage is generally used for keeping the fruit for longer period, but it is costly and also not easily available to the fruit growers. Similarly, controlled atmosphere storage is beyond the reach of farmers. However, similar type of storage called as modified storage is most convenient. It also increases Co_2 concentration and decreases oxygen so reduces respiration rate. Kinnow fruits in sealed polythene bags remain in good conditions for 90 days. For short term storage, zero energy chamber is very useful. It is made up of bricks lining, side walls with double layer of bricks and space between two wall is filled with sand. Top of chamber is covered with Khas Khas. Sand is saturated with water and it maintains temperature 10°C less in summer. Fruits like mango, ber and oranges can be stored for 8, 12 and 27 days, respectively in zero energy chambers.

[1]KVK Bawal (Rewari), CCSHAU, Hisar
[2]KVK Mandkola (Palwal), CCSHAU, Hisar

Safe and Judicious Use of Pesticides

✍ **Bajrang Lal Sharma and Naresh Kumar**[1]
Krishi Vigyan Kendra, Sirsa
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Proper and safe use of Pesticides are beneficial to man if vice versa they may be extremely dangerous. Pesticides are substances or mixtures which are used for controlling, preventing, destroying, repelling or mitigating to a pest. Dangerous consequences have led if growers use without proper knowledge. Evidence suggests that not only chemical pesticides are used in increasing quantities but they are sometimes used and handled in an irresponsible way, which lead many problems like pest resurgence, pesticide residues, secondary pest outbreaks, health hazards to humans and also other environmental effects will be there. Therefore, it is critical to use the pesticides safely and judiciously i.e. using recommended pesticides at recommended times and doses, while taking care of all the safety precautions. This will lead to effective and economic pest control over the long term, less pesticide usage/ load on various crops, less residues in the environment and in food and reduction in the associated risks.

Where and why misuse of Pesticides

1. Intentional Misuse
2. Unintentional Misuse
3. Unintentional Release

Above can be prevented through effective training, certification and supervision.

Need for safe and judicious use of pesticides : The main aim of use of insecticide in a manner that it should be optimized in order to reduce the environmental contamination and maximizing its effectiveness against the target insect.

So, it is important to ensure the use of right pesticide at right time and in right doses. The under dose of pesticides may give poor results along with increasing the immunity of the insects whereas, their overdose may cause harmful effects to the environment and other forms of life.

Consequences of indiscriminate pesticide use : Major consequences due to the indiscriminate use of the pesticides are :

- **Development of resistance to pesticides :** The repeated use of the same pesticide may lead to develop resistance to a particular pesticide or family of pesticides.
- **Pest resurgence :** Population of insect rebounds to numbers greater than before the suppression occurred. Maximum cases of resurgence belong to order Homoptera (44%) followed by Lepidoptera (24%) and phytophageous mites (26%).
- **Toxicity to beneficial fauna :** The indiscriminate use of pesticides on the crops result in wide spread mortality of beneficial insects (natural enemies, pollinators, etc.)
- **Pesticide residues :** According to FAO, the reports of high levels of pesticide residues in food crops in India is an indication that pesticides are used in a wrong way. There are two types of sources of pesticide residues - direct and indirect. Field application of the pesticides on the crops are the direct sources of residues. On the other hand, indirect sources of residues include drifting, run-off from the fields, volatilization of the pesticides and spillage.

  Other Consequences are : Outbreaks of secondary pests, Bioaccumulation, Biomagnifications, Environmental pollution and Occupational hazards.

Make safe use of insecticides by :

- **Minimizing Exposure :** Avoid frequent exceed dose applications of the pesticide. All precautions should be followed while applying pesticides, such as wearing the protective cloth; like rubber gloves, eye protecting sun glass, a long-sleeved shirt, long pants, closed shoes, pesticide formulations, baits, and traps should kept out reach of children and pets. Never dump leftover pesticides in the garbage, on the lawn, or down the drain, where it could contaminate the soil or drinking water.
- **Minimizing Spray Drift :** Do not spray opposite wind direction. If possible avoid spraying when there is strong wind. Use nozzles that do not produce small droplets. Adjust boom height as low as practical. During spray avoid high travel speeds. Spray when soil is coolest and relative humidity is highest. Use non-volatile pesticides and drift control additives when permitted by the pesticide label.

Other Safety Measures are :

1. **While handling and mixing pesticides**
   - Before mixing and loading pesticides we should keep some important points in mind, because they generally result in possible of exposure i.e. spills.
   - Obtain proper equipment, including protective clothing, etc.
   - Mix chemicals outside or in a well-ventilated area.
   - Clean up spilled pesticides immediately from skin and clothing, etc.
   - While mixing, handling or applying pesticides, a person should not smoke, eat or drink.
   - Do not use mouth to siphon a pesticide from the container.
2. **During storage of the pesticides :** Proper storage of pesticides will protect the health, environmental contamination and maintain the chemical shelf life.

   Criteria of Storage :
   - Warehouse must be located away from highly populated area from wells or domestic water storage tanks and a well-drained land.
   - The site should be accessible from all sides to help fire fighting.

[1]Ph. D. Agri-meteriology

- Storage buildings should be made of non-combustible materials, flooring should be cemented and have a slope to drain off any spillage.
- A wash basin with running water and emergency shower should be placed in a suitable area.
- Warning signs in local languages should be placed on the outside of all walls of the warehouse.
- Roof should be leak proof and the material should be handled with care.
- The stores must be well lit. The electrical fittings should be sound and must be properly earthed.

3. **During transportation**
   - Use open type vehicle such as a pick-up truck.
   - Wettable powers and dust formulation in paper containers should be protected from rain.
   - Avoid puncturing or tearing paper containers while handling them during loading or unloading or storing.

Judicious use of pesticide : Following points must be kept in mind during Judicious use of pesticides :

- Waiting periods of chemicals, economic threshold levels, compatibility of chemicals with natural enemies, nature of chemicals, the recommended doses, time of application, and application technology, etc.

Measures for Judicious Use :

1. **Choosing the right pesticide :** Choosing right pesticide depends on properties of the compound, biological activity on the target pest and the effects on the non-target organisms.
2. **Application of pesticides in time :** Follow economic thresholds level or the time when the most vulnerable stage of insect life is apparent. The application should be timed to reduce the frequencies and dosage of insecticides application to save the natural enemies and pollinators. Apply pesticides in evening.
   - Timing of application depends upon suitable weather windows.
   - Sometimes application is governed by crop growth stages at the period when damage is likely to occur (a specific crop growth stage).
3. **Application of correct pesticide doses :** Use in the recommended doses pesticides to: - Avoid excessive residues on crops for feed and food. Achieve optimum pest control with minimum danger to desirable organisms. Avoid chemical damage to the crops. Obtain the most economical control of pests.
4. **Application technique :** Application method should be in such a way that use minimum dose while controlling the pests below the Economic Threshold Level (ETL). The insecticides can be used without any detrimental effect on the parasitoids and predators by selective placement or spot application. Controlled Droplet Application is good example of a rational pesticide use (RPU) technology. By controlling the droplet size, ultra-low volume (ULV) or very low volume (VLV), application rates of pesticide mixtures can achieve similar (or sometimes better) biological results by improved timing and dose-transfer to the biological target (i.e. pest).Other efficient application techniques include banding, baiting, specific granule placement and seed treatments, etc.
5. **Pesticide application equipment :** The correct usage of equipment and its proper maintenance affects the ability to place pesticides on target more economically and effectively.
6. **Use of specific formulations :**
   - Encapsulated and slowly release pesticides prevents the leaching as well as the volatilization of the pesticide molecules while spraying.
   - Granular formulations are safe to parasitoids, predators and pollinators.
   - Use of micro capsulation and controlled release formulations, which may allow less frequent or lower rates of application in the field.
7. **Use of soft insecticides :** Use insecticides which are less toxic to non targets, more environment friendly, quickly biodegradable, selective and have low use rates. E.g.: neonicotinoids, chitin synthesis inhibitors, insect growth regulators, juvenile hormone (JH) analogues and bacterial fermentation products, etc.

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक नि:शुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

Insects' Role : Reducing Malnutrition

✍ **Sangeeta Tiwari, Manisha and Narendra Kumar**[1]
Ph.D. Student, Department of Entomology
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

India is facing a serious burden of under-nutrition which include childhood stunting, anaemia in women of reproductive age and overweight adult women. According to global nutrition report-2017, more than140 countries in the world are facing the problem of malnutrition. In India, more than half of our reproductive women are suffering from anaemia and 38 per cent of children (0-5 year) are stunting due to malnutrition. The steady increase in population in near future results in a great pressure on agriculture scientists and farmers to increase crop production to fulfil the food. This pressure can reduce to greater extent by changing our food habits. The insects can become alternative food source. As per world food summit of 1996, the insects can fulfil all the aspects of food security and also found excellent source of protein, mineral and vitamins, etc. which is essential for curing mal nutrition in day to day increasing population.

The term entomophagy is used for the practice of eating insects. The eggs, larvae, pupae, and adults of certain insects have been eaten. The culture of insect-eating by humans is common in most parts of the world, including North, Central, and South America; Africa, Asia, Australia, and New Zealand. More than 1,000 species of insects are known to be eaten in 80% of the world's nations. The ethnic people of India also consume insects as food.

Types of edible insects : Practice of entomophagy is quite common among the ethnic people of North East India particularly among the tribes of Arunachal Pradesh, Assam, Manipur and Nagaland and to a lesser extent by the tribes of Meghalaya and Mizoram. A review on the practices of entomophagy in India revealed that about 255 species of insects are taken as food by different tribes of India. Among these edible species of insects, consumption of coleopteran species is highest constituting about 34%; followed by Orthoptera (24%), Hemiptera (17%), Hymanoptera (10%), Odonata (8%), Lepidoptera (4%), Isoptera (2%) and the least was Ephimeroptera (1%). Edible insect commonly consumed by tribes of India includes Dragonflies (*Acisomapanorpoide*), giant water bug (*Belostomaindica*), red ant (*Oecophyllasmaragdina*), grasshopper (Oxyahylahyla), termite (*Odentotermies* sp.), etc. Edible insects are chosen by members of various tribes according to their traditional beliefs, taste, regional and seasonal availability of the edible insects. Depending on the species, only certain, but sometimes all, developmental stages are consumed.

Preparation of the edible insects for consumption involves mainly roasting or boiling. Sometimes spices are added to enhance the taste. Insects can be pan-fried, boiled, roasted or baked with a bit of oil and salt. They can also be made into flour and used for bars, breads, crackers, and cookies.

Advantages of insect eating : Insects, a traditional food in many parts of the world, are highly nutritious and especially rich in proteins and these represent a potential food and protein source. Insects provide proteins that include all nine essential amino acids. They are a good source of unsaturated fats. Essential fatty acids cannot be synthesized by the human body and must be obtained through diet. Insect are a great way to deliver these healthy fats. Crickets have a perfect omega balance. The availability of vitamins and minerals depend upon the diet of insect on which it was raised. They are excellent source of iron, magnesium, zinc, calcium, vitamin A, vitamin B and B_{12}. They provide instant energy as insect have 50, 87, 63, 70 and 95 per cent high calorific value than soybean, corn, beef, beans and wheat, respectively.

We are also consuming insect : Unknowingly all of us are consumers of some insects. Dactylopius coccus is one of such insect which belongs to super family Coccoidea. These insects are also known as scale insects and cochineals. The cochineals produce a red dye called as carmine. The pigment carmine, which has long been used as Carmine is primarily used as lipstick colorant, natural food colouring, fruits shining colour, pink or purple coloured ice cream, yogurts, fruit juices and candles. The pharmaceutical industry uses cochineal to cooler pills and ointments a red food colouring and a natural dye for textiles.

Risk associated with eating insects : Firstly, there is the risk of allergens. But there are many rumours regarding consumption of insects. But there is little evidence of allergic reactions from insect consumption. There is also the potential for the growth of microbial fauna within an insect gut however, with the correct application of preservation and storage techniques such as refrigeration or boiling, this can be avoided. Pesticide accumulation within the edible insects, particularly wild insects, is another possible threat. Some insects produce toxins as a form of chemical defence which can bring about nausea or vomiting and therefore it is important to be able to appropriately identify toxic and non-toxic species. One particular toxic substance steroid is produced by beetles, which if ingested in high quantities can cause retardation, infertility, masculinisation and liver cancer.

Entomophagy is good for the environment : The rearing of insects for human consummation is called as mini livestock production.

Insect farming can be a more sustainable practice because insects don't need much space, can live under all sorts of conditions and easy to feed. The insets require only 1.7 kg fed and 1 liters water for production of one kg of protein, whereas animals need 20 kg of feed and 1500 liters of water. The rate of reproduction is very slow in case of animals as compared to insects.

कविता

'नव वर्ष पर विशेष'

आता रहा है यूं तो हर बार नया साल
लेकिन क्या हुआ देश में कोई नया कमाल?
हालात जो थे वो ही रहे, कुछ भी न बदला
हाँ, मिलते रहे वादों, दिलासों के नये जाल
यह बेबसी, लाचारी, यह भूख, गरीबी
इन्सान के दु:खों का बढ़ता रहा जंजाल
बढ़ता रहा जंजाल
'पर' नुच से गए सारे उस सोने की चिड़िया के
रोती है, बिलखती है, हो करके वो बेहाल
न जाने कब आएगी, लोगों में बुद्धि, फिर
सुधरेगा न जाने कब इस देश का यह हाल
कब भूख से उबरेगा अन्नदाता (किसान) हमारा!
कब तक तड़पेगा अन्नदाता हमारा!!
लायेगा नई ताज़गी क्या अब यह नया साल?
क्या यह नया साल!
आशा ही पे जब कायम दुनिया है ये सारी फिर
क्यों छोड़ दें आशा हम, रहे क्यों यह बुरा हाल
आओ करें विनती अब ईश्वर से सभी मिलकर
आओ करें विनती अब ईश्वर से सभी मिलकर
भरपूर खुशी लेकर आए यह नया साल
आए यह नया साल! आए यह हर साल!!

डॉ. सुषमा आनन्द
प्रोफेसर (हिन्दी), प्रकाशन अनुभाग
चौ. च. सिं. ह. कृ. वि., हिसार

ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती



वर्ष 52 अंक 2

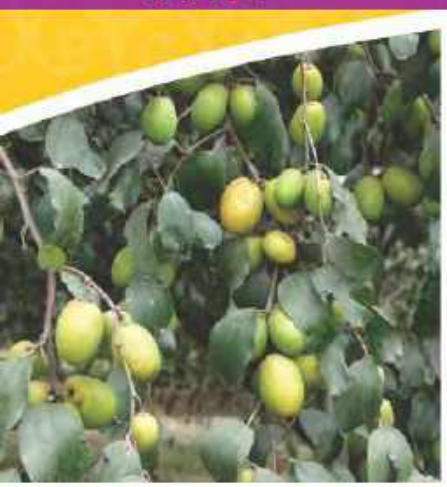











वार्षिक चंदा 150/- फरवरी 2019 आजीवन सदस्यता 1500/-

प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित

© कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 52 | फरवरी 2019 | अंक 02

इस अंक में

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ
रबी फसलों में चेपा (अल) का समेकित प्रबन्धन	जयलाल यादव, रमेश कुमार एवं सतपाल यादव	2
बेर की मुख्य बीमारियां : प्रबंधन	मनजीत सिंह, हवा सिंह सहारण एवं विनोद कुमार मलिक	3
चने के कीड़े तथा बीमारियां : रोकथाम	मीनू एवं योगिता बाली	4
टमाटर व अन्य सब्जियों में जीवाणु जनित रोग नियन्त्रण	सुनिता चंदेल, प्रनीत चौहान एवं नरेश मेहता	5
भूमि को उपजाऊ – कैसे बनाएं	ममता फौगाट, रीटा दहिया एवं सुनील कुमार	6
मिर्च के हानिकारक कीट व उनका निदान	रूमी रावल एवं योगेश कुमार	6
सब्जियों के लिए पौधशाला प्रबंधन	तन्वी मेहता, एस. डी. दुहन एवं वी. पी. एस. पंघाल	7
ब्राह्मी (बकोपा मोनेरी)	राजेश कुमार आर्य एवं आई. एस. यादव	8
अमरूद के रोग एवं बचाव	राजेन्द्र सिंह, ममता एवं हवा सिंह सहारण	9
पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्वों का महत्व	पूजा, एम.एस.ढांडा एवं दीपिका राठी	10
मित्र कीटों का खेती में महत्व	संगीता तिवारी, नरेन्द्र कुमार एवं सुनीता यादव	11
बसन्तकालीन बुवाई हेतु गन्ने की उन्नतशील प्रजातियां	सुधीर शर्मा, रमेश कुमार एवं लोकेश यादव	12
बाल्यावस्था में मानसिक विकास एवं विकार	रीना एवं बिमला ढांडा	18
गर्भवती महिला का आहार	अमृत चावला, वीना जैन एवं आशा बत्तरा	19
स्वच्छता – रखे रोगमुक्त	कुसुम राणा, बी. पी. राणा एवं सुमन मलिक	20
आलू : मूल्य संवर्धन एवं फसलोपरांत प्रबंधन	कनिका पंवार एवं इंदु पांचाल	21
पशुओं में रेबीज़ रोग : एक घातक बीमारी	गौरी चंद्रात्रे, मनीश शर्मा एवं के. के. जाखड़	22
पशुओं मे पेशाब के रुकने (यूरोलिथियासिस) की समस्या : कारण, उपचार व बचाव के उपाय	प्रियंका, सतबीर शर्मा एवं प्रिया	23
जन संचार माध्यमों का बदलता स्वरूप	प्रदीप कुमार चहल, भरत सिंह घणघस एवं राजेश कुमार	24
समाज में मीडिया एवं सोशल मीडिया : सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव	जतेश काठपालिया, सुभाष चन्द्र एवं रश्मि त्यागी	25
सर्दी के मौसम में मुर्गीपालन : कैसे करें	प्रियंका, सतबीर शर्मा एवं औम प्रकाश	26
Integrated Farming System (IFS) – Need of an Hour	Anil Kumar Malik, Babu Lal Dhayal and Lokesh Yadav	28
Quality Improvement in Fruit Crops	Surender Singh, Mukesh Kumar and R.S. Saini	29
Pregnancy Diagnosis and its Management in Bitch	Swati Ruhil, Puneet Zhandai and Devan Arora	30
बेरोज़गार युवक एवं किसानों के लिए सर्टिफिकेट कोर्स आरंभ	संदीप आर्य एवं मंजु दहिया	32
स्थाई स्तम्भ : मार्च मास के कृषि कार्य		**13**

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
विस्तार विशेषज्ञ (विस्तार शिक्षा)
विस्तार शिक्षा निदेशालय

सह–निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह–निदेशक (हिन्दी)

सुनीता सांगवान
सम्पादक (अंग्रेजी)
प्रकाशन अनुभाग
आवरण एवं सज्जा
राजेश कुमार

लेखकों से अनुरोध : हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। टाईपिंग के लिए कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें। अपना लेख हमें ई–मेल पर भी भेज सकते हैं haryanakhetihau@gmail.com

रबी फसलों में चेपा (अल) का समेकित प्रबन्धन

✍ जयलाल यादव, रमेश कुमार एवं सतपाल यादव[1]
कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

रबी फसलों मुख्यत: सरसों, मेथी, धनिया तथा कभी-कभी गेहूं की फसल पर भी चेपा का प्रकोप होता है। इन सभी फसलों पर चेपा (अल/माहू) नामक कीट का आक्रमण हर साल फरवरी-मार्च के महीने में होता है। चेपा की भिन्न-भिन्न जातियां अलग-अलग फसलों को हानि पहुँचाती हैं परन्तु इनका नुकसान पहुंचाने का तरीका लगभग एक जैसा होता है। चेपा फसलों की पत्तियों, नरम टहनियों, फूलों व फलीय भागों का रस चूसकर नुकसान पहुंचाता है। यह विभिन्न फसलों पर किस प्रकार आक्रमण करता है तथा उनका समेकित प्रबन्धन के बारे विवरण नीचे दिया गया है :

सरसों

यह कीट अल, चेपा, माहू इत्यादि नामों से जाना जाता है। यह कीट छोटा, कोमल, हल्के हरे-पीले रंग का 1 से 1.5 मि.मी. लम्बा व जूं के आकार का नन्हा-सा होता है। यह पौधे के प्रत्येक भाग पर समूह में मिलता है परन्तु फूलों पर अधिक होता है। इसके बिना पंख वाले और पंखदार प्रौढ़ एवं शिशु दोनों एक साथ ही समूह में रहते हैं व समुदाय में सभी कीट मादा होते हैं।

जीवन चक्र : शुरू की अवस्था में यह कीट फसल की बाहरी कतारों पर एकत्रित होकर प्रजनन करता है, इन्हें वंश वृद्धि के लिए नर की ज़रूरत नहीं पड़ती। वयस्क मादा बच्चों को जन्म देती है जो 7-10 दिन में पूर्ण रूप से विकसित हो जाते हैं। एक मादा अपने जीवनकाल में 17 से 135 शिशुओं को जन्म देती है। औसतन एक मादा जनवरी-फरवरी के महीने में 5 से 9 शिशुओं को प्रतिदिन जन्म देती है। इस प्रकार एक वर्ष में लगभग 45 पीढ़ियाँ पूरी हो जाती हैं।

नुकसान : यह कीट सरसों जाति की फसलों का सबसे बड़ा शत्रु है और भारत के सभी हिस्सों मे जहाँ भी सरसों उगाई जाती है वहां व्यापक रूप से पाया जाता है। इस कीट से फसल को 25 से 40 प्रतिशत की हानि हो सकती है। इस कीट का प्रकोप सरसों पर दिसम्बर माह के अंतिम सप्ताह में शुरू होता है, जब फसल पर फूल बनने शुरू होते हैं व मार्च तक बना रहता है। पंख वाले प्रौढ़ पहाड़ी क्षेत्रों में हवा के साथ उड़कर मैदानी इलाकों में पौधों के ऊपर बैठ जाते हैं और एक बिना पंखदार परिवार को जन्म देते हैं। इस कीट की संख्या जब आसमान में बादल हों एकदम बढ़ती है, हल्की वर्षा हो जाए (बूंदा-बांदी), हवा में अधिक नमी हो (औसत 70-75 प्रतिशत) तथा तापमान कम हो जाए (औसत 13 डिग्री सैं.ग्रे.) इस कीट के शिशु व प्रौढ़ पौधों के विभिन्न अंगों से रस चूस कर पौधे को कमज़ोर कर देते हैं जिसके कारण कभी-कभी तो फलियां ही नहीं लगती। फलियों में बने दानों का वज़न कम होता है तथा इनमें तेल की मात्रा काफी कम हो जाती है। कीट का लगातार आक्रमण रहने पर पत्तियों पर मधु स्रावित करते हैं। जिससे पत्तियों पर काली फफूंद विकसित हो जाती है जिसे कज्जली फफूंद के नाम से भी जाना जाता है। जिसके कारण पौधे की भोजन बनाने की ताकत कम हो जाती है तथा बढ़वार भी रुक जाती है और पैदावार न के बराबर होती है। तापमान बढ़ने के साथ और पकने से (मार्च में) पंखदार नर और मादा उत्पन्न होने शुरू हो जाते हैं जो हवा के साथ उड़कर ठण्डे पहाडों की ओर चले जाते हैं।

समेकित प्रबन्धन :

1. सरसों की अपेक्षा राया की खेती करनी चाहिए, क्योंकि राया पर कम प्रकोप होता है।
2. सरसों एवं राया की बिजाई अक्तूबर के प्रथम अथवा द्वितीय सप्ताह तक कर दें तो फसल पर इसका प्रकोप कम होता हैं क्योंकि अगेती बोई गई फसलों पर फूल जल्दी आने शुरू हो जाते हैं एवं उस समय इस कीट का प्रकोप शुरू नहीं होता है।
3. सन्तुलित खादों का प्रयोग करें। फसलों में अधिक मात्रा में नाइट्रोजन का प्रयोग करने से इस कीट का आक्रमण बढ़ जाता है।
4. दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में जहां इस कीट के समूह दिखाई दें उन टहनियों के प्रभावित हिस्सों को तोड़कर मिट्टी में दबा दें या नष्ट कर दें।
5. चेपा का आर्थिक कगार (10% पुष्पित पौधों पर 9-10 कीट प्रति पौधा या औसत 13 कीट प्रति पौधा) होने पर 250-400 मि.ली. मेटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. या डाईमेथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. को फसल बढ़वार के अनुसार 250-400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।
6. साग के लिए उगाई गई फसल पर छिड़काव केवल 250-400 मि. ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को फसल की अवस्था अनुरूप 250-400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से करें। ज़रूरत पड़ने पर 7-10 दिन बाद फिर दोहराएं तथा छिड़काव के 7 दिनों तक साग का प्रयोग न करें।
7. छिड़काव कार्यक्रम हमेशा 2 बजे के बाद करें ताकि मधुमक्खियों को कोई नुकसान न हो क्योंकि मधुमक्खियां पर-परागण द्वारा उपज बढ़ाने में सहायक होती हैं।
8. मित्र कीट जैसे क्रायसोपा, लेडी बर्ड बीटल व सिरफिड खेत में होने पर चेपा नियन्त्रण हेतु कीटनाशकों का प्रयोग न करें।

मेथी

मेथी की फसल पर लगने वाला चेपा गहरे भूरे काले रंग का होता है और इसे बगला चेपा भी कहा जाता है। इस कीट का प्रकोप भी मुख्यत: फूलों पर ही आरम्भ होता है। जब जनवरी के अन्त या फरवरी के महीने में फूलों के साथ यह कीट समूह में दिखाई देता है। बाद में यह कीट सारी टहनी पर फैल जाता है। इस कीट के भी शिशु व प्रौढ़ पौधों से रस चूस कर हानि पहुँचाते हैं जिससे पौधे की बढ़वार रुक जाती है, फलियां कम लगती हैं और पैदावार में काफी नुकसान होता है।

[1]सहायक वैज्ञानिक (कीट विज्ञान) क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल

समेकित प्रबन्धन :

1. शुरू में कीट ग्रसित टहनियों को तोड़कर नष्ट कर दें।
2. आवश्यकता होने पर 300 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

नोट – कीटनाशक से छिड़काव की गई फसल से साग के लिए पत्तियां या तो न तोड़ें या कम से कम 10 दिनों बाद ही तोड़ें।

धनिया

धनिया पर आक्रमण करने वाला चेपा देखने में हल्के पीले से हल्के हरे रंग का होता है। इस कीट के शिशु व प्रौढ़ फूलों व फूलों की टहनियों पर बहुत अधिक मात्रा में रस चूसकर हानि पहुंचाते हैं। ग्रसित फूल या तो खिल ही नहीं पाते या फिर उनमें बीज नहीं बन पाता। फरवरी के महीने में यह कीट बहुत तेज़ी से फैलता है और कुछ ही दिनों में अनदेखी से फसल पर बहुत अधिक हानि पहुँचा देता है। इसलिए इस कीट के फसल पर दिखाई देते ही रोकथाम के कदम उठाने चाहिएं।

समेकित प्रबन्धन:

1. शुरू में कीट ग्रसित टहनियों/फूलों आदि को तोड़कर नष्ट कर दें।
2. 400 मि.ली. मैलथियान 50 ई.सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

गेहूं

गेहूं पर लगने वाला चेपा गहरे हरे रंग का होता है। इस कीट का प्रकोप फसल पर फरवरी–मार्च के महीने में ही होता है जब ये गेहूं की पत्तियों व बालियों पर रस चूसता दिखाई देता है। रस चूसते समय एक शहदनुमा पदार्थ छोड़ता रहता है जिसपर काली फफूंद पैदा हो जाती है।

प्रबन्धन:

यदि 12 प्रतिशत पौधों की बालियों या सबसे ऊपर वाली पत्तियों पर चेपा के समूह (एक समूह में 10 कीट तक हों) मिलें तो 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

लेखकों से अनुरोध

हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। लेख में अंग्रज़ी शब्दों का प्रयोग न करें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें**। अपना लेख हमें ई–मेल पर भी भेज सकते हैं :

haryanakhetihau@gmail.com

बेर की मुख्य बीमारियां : प्रबंधन

✍ **मनजीत सिंह, हवा सिंह सहारण एवं विनोद कुमार मलिक**
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बेर भारत का बहुत ही प्राचीन एवं लोकप्रिय फल है। बेर शुष्क क्षेत्रों या बारानी परिस्थितियों में खेती के लिए उपयुक्त है। इसे इंडियन जुज्यूब और बारानी का बादशाह भी कहा जाता है। बेर एक ऐसा फलदार पेड़ है जो कि एक बार पूरक सिंचाई के स्थापित होने के पश्चात् वर्षा के पानी पर निर्भर रहकर भी फलोत्पादन कर सकता है। यह विटामिन 'सी' व 'बी' का अच्छा स्रोत है तथा इसमें कैल्शियम, लौह और शर्करा प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। सस्ता एवं लोकप्रिय फल होने के कारण इसे गरीबों का मेवा भी कहा जाता है।

बेर की खेती भारत में लगभग सभी राज्यों में होती है परन्तु हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश व गुजरात में अपेक्षाकृत अधिक होती है। हरियाणा के पश्चिमी व दक्षिणी क्षेत्रों की जलवायु शुष्क व गर्म है जो बेर के उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण है।

बेर प्राकृतिक पौष्टिक तत्वों से भरपूर व खाने में मीठा व स्वादिष्ट फल है। बेर एक एंटीऑक्सीडेंट फल है परन्तु बेर में लगने वाली बीमारियां इसकी गुणवत्ता व पैदावार या उत्पादन पर प्रभाव डालती हैं। यदि किसान बेर में लगने वाली बीमारियों की सही समय पर पहचान करके उसका प्रबंधन कर लें तो बीमारियों के नुकसान से बचा जा सकता है और उत्पादन को बढ़ा सकते हैं। बेर की मुख्य बीमारियां एवं उनके प्रबंधन निम्न प्रकार हैं :

पाऊडरी मिल्ड्यू : यह बहुत ही घातक बीमारियों में से एक है। इसका प्रभाव अक्तूबर–नवम्बर में शुरू होता है। इससे बेर की फसल में काफी हानि होती है। इस बीमारी की मुख्य पहचान यह है कि इसके फलों व पत्तियों पर सफेद रंग के चूर्ण जैसी परत दिखाई देती है। शुरू में ये धब्बे छोटे होते हैं जो बाद में पूरे फल पर फैल जाते हैं। इस बीमारी के कारण फलों की सतह खुरदरी व फलों का आकार छोटा रह जाता है जिससे पैदावार में भारी गिरावट या कमी हो जाती है।

प्रबंधन : कैराथियान 0.1 प्रतिशत (1.0 मिली लीटर प्रति लीटर पानी) नामक दवाई का पहला छिड़काव फूल निकलने से ठीक पहले तथा दूसरा छिड़काव जब फल मटर के दाने के बराबर हो जाएं तब करें। यदि कैराथियान उपलब्ध न हो तो उसकी जगह सल्फैक्स 0.2% (2.0 ग्राम प्रति लीटर पानी) नामक दवाई का छिड़काव भी कर सकते हैं। सफल रोकथाम के लिए फलों का फंफूदनाशक घोल से तर हो जाना बहुत ज़रूरी है।

आल्टरनेरिया झुलसा रोग : इस बीमारी का प्रकोप ज़्यादातर पत्तियों पर पाया जाता है। इस बीमारी में भूरे रंग के धब्बे पत्तियों की निचली सतह पर दिखाई देते हैं। कभी–कभी धब्बे पत्तियों की ऊपरी सतह पर भी दिखाई देते हैं। बीमारी वाले पत्ते सूखकर गिर जाते हैं।

प्रबंधन : इस बीमारी के समाधान के लिए 0.2% (2.0 ग्राम प्रति लीटर पानी) मैन्कोजेब (इण्डोफिल एम–45 या डायथेन एम–45) नामक दवाई का घोल बनाकर छिड़काव करें। *(शेष पृष्ठ4 पर)*

[1]पौध संरक्षण संगरोध एवं भण्डारण निदेशालय, फरीदाबाद।
[2]पौध रोग विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

चने के कीड़े तथा बीमारियां : रोकथाम

✍ मीनू एवं योगिता बाली
कृषि विज्ञान केंद्र, भिवानी
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा के पश्चिमी भागों में चने का बहुत महत्व है। चने के कुल क्षेत्रफल का 88% हरियाणा के पश्चिमी भागों में ही है। लेकिन चने की फसल में अनेक बीमारियां व कीड़े आक्रमण करते हैं जिनको समय पर नियंत्रित न किया जाए तो ये कम पैदावार का कारण बनते हैं। चने की मुख्य बीमारियों व कीड़ों की रोकथाम निम्न प्रकार से है:

बीमारियां

उखेड़ा : यह बीमारी बिजाई के लगभग 3-6 हफ्ते बाद दिखाई देती है। इसमें पत्तियां मुरझा कर लुढ़क जाती हैं। लेकिन उनमें हरापन रहता है। तने को लंबाई से काटने पर रस वाहिकी काली भूरी दिखाई देती है। उखेड़ा से बचाने के लिए ज़मीन में नमी बनाये रखें व 10 अक्तूबर से पहले बिजाई न करें, बाविस्टीन 2.5 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करें। बिजाई से पूर्व बीज का उपचार जैविक फफूंदनाशक बायोडर्मा 4 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज+वीटावैक्स 1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से करें।

तना गलन: पत्तियां बदरंग होकर गिर जाती हैं। ज़मीन की सतह पर सफेद फफूंद तने को चारों ओर से घेर लेती है।

जड़ गलन रोग: यह दो प्रकार से होता है :

1. गीला जड़ गलन : यह रोग ज़्यादा नमी वाली ज़मीन में होता है।

2. सूखा जड़ गलन रोग : यह रोग चने में फूल व फलियां बनते समय ज़्यादा होता है।

इस बीमारी का प्रकोप फसल की अंकुरण अवस्था में या सिंचित क्षेत्रों में जब फसल बड़ी हो जाती है, तब होता है। भूमि की सतह के पास पौधे के तने पर गहरे भूरे धब्बे दिखाई पड़ते हैं। बीमार पौधे के तने व पत्ते हल्के पीले रंग के हो जाते हैं। मुख्य जड़ के नीचे का भाग गल जाने के कारण ज़मीन में ही रह जाता है।

विषाणु रोग : रोगी पौधे छोटे रह जाते हैं तथा संतरी या भूरे रंग के हो जाते हैं। यह बीमारी देसी चने में ज़्यादा आती है। जोड़ वाली जगह पर तिरछा काटने से अंदर भूरा-सा दिखाई देता है। ज़मीन में नमी को संरक्षित करने व 10 अक्तूबर के बाद बिजाई करने से इस रोग से बचा जा सकता है।

कीड़े

दीमक : रेतीली व अर्ध-नमी वाली ज़मीन में यह कीट ज़्यादा सक्रिय रहता है।

रोकथाम : 1500 मी.ली. क्लोरपायरिफॉस 20 ई.सी. को पानी में मिलाकर 2 लीटर घोल बना लें। इस घोल को 1 क्विंटल बीज पर छिड़कें व एकसार उपचारित करने के बाद बोने से पहले रातभर ऐसे ही पड़ा रहने दें।

कटुआ सूंडी : यह कीट उगते हुये पौधों के तने के बीच में व बढ़ते हुये पौधों की शाखाओं को काटकर नुकसान करती है।

रोकथाम : दस किलो 0.4% फेनवलरेट धूड़ा प्रति एकड़ के हिसाब से करें।

फली छेदक सूंडी : यह कीट फलियों में बन रहे हरे बीज/दानों को खा कर नष्ट कर देती है। इस कीड़े की सूंडियां प्यूपा बनने तक लगभग 30-40 फलियां खा जाती हैं।

रोकथाम : 400 मी.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. या 150 मि.ली. नोवालूरोन 10 ई.सी. 150 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ छिड़काव उस समय करें जब एक सूंडी प्रति एक मीटर लाइन पौधों पर मिलने लगे। यदि ज़रूरी हो तो दूसरा छिड़काव 15 दिन बाद करें। बड़ी सूंडियों को हाथ से इकट्ठा करके नष्ट कर दें। खेत से चटरी-मटरी खरपतवार निकाल दें।

(पृष्ठ 3 का शेष)

सरकोस्पोरा लीफ स्पॉट : इस बीमारी का प्रकोप भी केवल पत्तियों पर ही दिखाई देता है। इसमें सबसे पहले पत्तियों पर छोटे-छोटे गोल आकार के धब्बे दिखाई देने लगते हैं। धब्बे बीच में से भूरे रंग के और किनारे पर लाल रंग के दिखाई देते हैं जो बाद में बड़े होकर पत्तियों के दोनों तरफ दिखाई देने लगते हैं। इस बीमारी के अधिक प्रभाव से पत्तियां सूख कर गिर जाती हैं।

प्रबंधन : इसके सामाधान के लिए मैन्कोजेब 0.2% (2.0 ग्राम प्रति लीटर पानी) नामक दवाई के घोल का छिड़काव बीमारी के लक्षण दिखाई देते ही करें व दूसरा छिड़काव 15 दिन के अंतराल में करें।

रतुआ (लीफ रस्ट) : इस बीमारी का प्रभाव पत्तियों पर पाया जाता है। पत्तियों की निचली सतह पर भूरे या नारंगी रंग के छोटे-छोटे कील बन जाते हैं। इस बीमारी से प्रभावित पत्तों का रंग भूरा व गहरा भूरा हो जाता है।

प्रबंधन : इस बीमारी की रोकथाम के लिए 0.2% (2.0 ग्राम प्रति लीटर पानी) मैन्कोजेब या डाईथेन एम-45 नामक दवाई का घोल बनाकर छिड़काव करें।

कजली रोग या काले धब्बों वाली बीमारी (सूटी मोल्ड) : इस बीमारी का प्रभाव ज़्यादातर पत्तियों पर दिखाई देता है तथा इस बीमारी के प्रभाव से पत्तियों की निचली सतह पर गहरे काले रंग के छोटे-छोटे धब्बे से दिखाई देने लगते हैं। अगर इस बीमारी का समय पर उपचार न हो तो बीमारी वाली पत्तियों का रंग ऊपर से भूरे रंग का हो जाता है तथा बीमारी वाली पत्तियां सूखकर नीचे गिरने लगती हैं।

प्रबन्धन : इस बीमारी के प्रबंधन हेतु कॉपर आक्सीक्लोराइड दवाई 0.3% (3 ग्राम प्रति लीटर पानी) के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करें।

फल गलन : इस बीमारी में फल के निचले हिस्से में हल्के भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं व बीमारी वाले धब्बों के ऊपर छोटे-छोटे काले रंग के दाने दिखाई देते हैं। यह बीमारी कई प्रकार के फफूंदों के कारण होती है।

प्रबन्धन : इस बीमारी के उपचार के लिए कॉपर आक्सीक्लोराइड नामक दवाई 0.2% (0.2 ग्राम प्रति लीटर पानी) के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करें।

टमाटर व अन्य सब्जियों में जीवाणु जनित रोग नियन्त्रण

✍ सुनिता चंदेल[1], प्रनीत चौहान[1] एवं नरेश मेहता
पादप रोग विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हिमाचल प्रदेश में बेमौसमी सब्जियों की खेती की तरफ लोगों का रूझान तेज़ी से बढ़ा है तथा पिछले दशकों में सब्जी के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। प्रदेश की जलवायु विभिन्न प्रकार की सब्जियां उगाने के लिए उपयुक्त है। बागवानी के एकीकृत विकास के लिए विविधता लाना अतिआवश्यक है तथा विविधता लाने के लिए सब्जियों की खेती बहुत महत्वपूर्ण है। करीब 9396 हैक्टेयर भूमि में इसका उत्पादन होता है और वर्ष 2013-2014 में इसकी उत्पादकता 17.3 मीट्रिक टन है। पिछले कुछ वर्षों में सब्जियों के क्षेत्र में कई गुणा वृद्धि हुई है फिर भी सब्जियों के अच्छे उत्पादन एवं गुणवत्ता के लिए विभिन्न रोग प्रमुख रुकावट हैं। प्रदेश में विभिन्न प्रकार की सब्जियां जिनमें टमाटर, शिमला मिर्च व आलू एक मुख्य सब्जी फसल हैं, उगाई जाती हैं। जिनकी खेती प्रदेश में वर्ष भर किसी न किसी क्षेत्र में की जाती है। किसानों की इन्हीं समस्याओं को ध्यान में रखते हुए टमाटर व अन्य सब्जियों के जीवाणु जनित रोगों के प्रबन्धन का निम्नलिखित वर्णन किया गया है :

टमाटर के जीवाणु जनित रोग

जीवाणु धब्बा : यह रोग *जैन्थोमोनास वेसीकेटोरिया* नामक जीवाणु से उत्पन्न होता है। इस रोग के लक्षण पौधे के पत्तों तथा तनों पर छोटे-छोटे धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। जो बाद में गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। धब्बे आपस में मिल जाते हैं तथा इनका आकार विकसित हो जाता है। बाद में पत्ते पीले पड़ जाते हैं। फलों पर भूरे काले रंग के उभरे हुए धब्बे बनते हैं जिनके किनारे अनियमित होते हैं। बाद में ये धब्बे धंस जाते हैं।

रोगचक्र व अनुकूल वातावरण: यह जीवाणु बीज जनित है तथा पौधे के अवशेषों में भी जीवित रहता है। संक्रमित बीज से इस रोग का आक्रमण पौधशाला में भी हो जाता है। रोगी पौधे को खेत में लगाने से रोग खेत में भी फैल जाता है। तापमान (20-25° सेल्सियस) तथा अधिक आर्द्रता (90%) इस रोग के लिए अनुकूल है।

नियन्त्रण: रोगग्रस्त पौधे के अवशेषों तथा फलों को नष्ट कर दें। फसल चक्र अपनाएं तथा रोगमुक्त बीज का चयन करें। बीज को 30 मिनट के लिए स्ट्रैप्टोसाइक्लिन (1 ग्राम/10 लीटर पानी) का छिड़काव करें तथा इसके सात दिन के बाद कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (30 ग्राम/10 लीटर पानी) या बोर्डो मिश्रण (4:4:50) का छिड़काव 7 से 10 दिन के अंतराल पर करें।

मुर्झान रोग: यह रोग *रालस्टोनिया सोलेनेशियरम* नामक जीवाणु से जनित होता है। रोगग्रस्त पौधे के पत्ते बिना पीले पड़े ही नीचे की तरफ झुक जाते हैं तथा बाद में पूरा ही पौधा मुरझा जाता है व मर जाता है।

रोगचक्र व अनुकूल वातावरण: यह जीवाणु भूमि जनित है। अधिक तापमान व नमी इस रोग की वृद्धि के लिए उपयुक्त है।

नियन्त्रण: तीन वर्ष का फसल-चक्र अपनाएं। पौध रोपण से पहले खेत को सौर ऊर्जा से कम से कम 45 दिनों तक उपचारित करें। खेत तैयार करते समय ब्लीचिंग पाऊडर (15 कि.ग्रा./हैक्टेयर) मिट्टी में मिलायें तथा हल्की सिंचाई करें। रोगग्रस्त खेतों में रोग प्रतिरोधक किस्म जैसे सन सीड 7711 का रोपण अधिक उपयुक्त होता है।

जीवाणुज कैंकर रोग: यह रोग *क्लेविबैक्टर मिचिगानेन्सिस* उपप्रजाति *मिचिगानेन्सिस* नामक जीवाणु से होता है। इस रोग से निचले फैलाव के पत्ते मुरझा जाते हैं। तने पर भूरे रंग की धारियां व कैंकर उभर आते हैं। फलों पर भी सफेद रंग से घिरे छोटे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं।

रोगचक्र व अनुकूल वातावरण: यह जीवाणु संक्रमित बीज, रोगग्रस्त पौधे के अवशेषों व खरपतवार आदि में जीवित रहता है। 28° सेल्सियस तापमान रोग के लिए अनुकूल है। रोग नम वातावरण में पौधे के अन्दर गम्भीर रूप धारण कर लेता है।

नियन्त्रण: रोगग्रस्त पौधे के अवशेषों को एकत्र कर नष्ट कर दें। फसल चक्र अपनायें तथा रोगग्रसित भूमि में टमाटर की फसल कम से कम तीन वर्ष तक न लगाएं। रोगमुक्त बीज का प्रयोग करें। बीज को स्ट्रैप्टोसाइक्लिन (1 ग्राम/10 लीटर पानी) के घोल में 1 घण्टे के लिए उपचारित करें। रोगग्रस्त पौधों को निकाल कर नष्ट कर दें। कॉपर आधारित फंफूदनाशकों का भी प्रयोग छिड़काव के रूप में 10-12 दिन के अन्तराल में कर सकते हैं।

शिमला मिर्च जीवाणु जनित रोग

जीवाणु धब्बा: यह रोग *जैन्थोमोनास वेसीकेटोरिया* नामक जीवाणु से होता है। पत्तियों पर धब्बे छोटे, उठे हुए, भूरे तथा खुरदरे होते हैं। रोगग्रस्त पत्तियां पीली पड़ कर नीचे गिर जाती हैं। इस रोग के लक्षण हरे फलों पर दिखते हैं।

रोगचक्र व अनुकूल वातावरण: यह जीवाणु रोगग्रस्त बीज की सतह पर जीवित रहता है तथा प्रारम्भिक संक्रमण करता है। 20-25° सेल्सियस तापमान तथा अधिक नमी वाला मौसम इस रोग के लिए उपयुक्त है।

नियंत्रण: रोगग्रस्त पौधे के अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें। फसल-चक्र अपनाएं तथा टमाटर फसल को चक्र में न लगाएं। स्वस्थ फलों से ही बीज लें तथा बीज का उपचार स्ट्रैप्टोसाइक्लिन (1 ग्राम/10 लीटर पानी) से 30 मिनट तक करें। बीज को छांव में सुखायें। फसल पर स्ट्रैप्टोसाइक्लिन (1 ग्राम/10 लीटर पानी) का छिड़काव करें तथा 7-10 दिन के अंतराल पर कॉपर आक्सीक्लोराइड (30 ग्राम/10 लीटर पानी) का छिड़काव करें तथा 7-10 दिन के अंतराल पर कॉपर आक्सीक्लोराइड (30 ग्राम/10 लीटर पानी) या बोर्डो मिश्रण (4:4:40) का छिड़काव करें।

आलू

मुरझान तथा भूरा गलन : यह रोग *रालस्टोनिया सोलनेशियरम* नामक जीवाणु द्वारा होता है। इस रोग में पौधा बिना पीला पड़े पूरी तरह से मुरझाकर सूख जाता है। तेज़ धूप में पौधे की ऊपरी पत्तियां मुरझा जाती हैं। रोग की विकसित अवस्था में तने के निचले हिस्से को तिरछा काट कर दबाने से कटे हुए स्थान से सफेद रंग के जीवाणु दिखाई देते हैं। कन्दों की आंखों के पास गलन व भूरे रंग के धब्बे बनते हैं और ऐसे कंदों को काटने पर घेरे रूपी धब्बे दिखाई देते हैं। जिसमें से जीवाणु पंक भी दिखाई देते हैं।

(शेष पृष्ठ 9 पर)

[1]डा. यशवन्त सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय नौणी, सोलन

भूमि को उपजाऊ – कैसे बनाएं

✍ ममता फौगाट, रीटा दहिया एवं सुनील कुमार[1]
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आज मृदा की उपजाऊ क्षमता खतरे में है। लगातार इसकी उपजाऊ क्षमता घटती जा रही है। बढ़ती हुई जनसंख्या के पालन-पोषण के लिए और हरित क्रांति लाने के लिए ज़्यादा मात्रा में रसायनों के प्रयोग करने, अधिक और गहरी जुताई करने और ज़्यादा पैदावार वाली फसलें उगाने से भूमि का संतुलन बिगड़ चुका है। रसायनों के अधिक प्रयोग से सूक्ष्म जीवों के खत्म होने से मिट्टी की संरचना बिगड़ जाती है। जीवंत मृदा जैविक खेती का आधार है। जैविक खेती में भूमि के स्वास्थ्य की अहम भूमिका है। जैविक खेती ऐसी प्रबंधन प्रक्रिया है जिसमें मृदा स्वास्थ्य व पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ उच्च गुणवत्ता के उत्पाद भी प्राप्त होते हैं। बताया गया है कि गुड़ से बैक्टीरिया की संख्या कई गुणा बढ़ती है और मिट्टी जीवंत हो जाती है। फसल के प्रकार तथा विभिन्न फसलों हेतु पोषकों की आवश्यकता के अनुसार के आधार पर खेत में डाले जाने वाली परिपक्व तत्वों को मिट्टी की जांच के आधार पर देना चाहिए। जैविक खाद, केंचुआ खाद, हरी खाद, एवं जैव उर्वरक समुचित मात्रा में डालने से मिट्टी की उर्वरकता बढ़ती है। रासायनिक आदानों के प्रयोग को अधिकाधिक नकारते हुए फसल अवशेष का उपयोग, अधिक व गहरी जुताई का त्याग तथा खेतों की मेढ़ों पर उपयोगी वृक्ष तथा झाड़ियां लगानी चाहिएं। मिश्रित फसलोत्पादन जैविक खेती का मूल आधार है। मिश्रित फसलोत्पादन से बेहतर प्रकाश संश्लेषण होता है। दलहनी फसलें वायुमण्डल से अत्यधिक मात्रा में नत्रजन एकत्र करती हैं और अपनी सहचरी फसलों को भी उपलब्ध कराती हैं। फसल चक्र जैविक खेती की रीढ़ है। मृदा को शाक्तिशाली और समृद्ध बनाने व प्राकृतिक जीवाणुओं की कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए फसल चक्र अत्यधिक आवश्यक है। उच्च पोषण वाली फसलों की बुवाई से पूर्व तथा पश्चात् दलहनी फसलों की बुवाई करें। अनेक केन्द्रों पर किए गए परीक्षणों के आधार पर फसल चक्रों की अनुशंसा की गई है। उदाहरण के तौर पर सोयाबीन-सरसीम/सरसों/चना (टमाटर/पत्तागोभी-फूलगोभी, मटर एवं मक्का, बाजरे पर लहसुन, चावल, गेहूं/आलू/सरसों/मसूर (मूंगफली,-रबी ज्वार, सोयाबीन-ड्यूरम गेहूं, आलू, मूंग, मिर्च + कपास एवं मक्का-मूंग (सोयाबीन-ड्यूरम गेहूं/सरसों/मूंग/ईसबगोल (चावल-लहसुन, ज्वार+ग्वार-जई-मूंग (मक्का-कपास, मिर्च, प्याज़, एवं बैंगन-सूरजमुखी।

एक उर्वर तथा जीवंत मृदा में जीवाश्म का स्तर पर्याप्त रहना चाहिए। साथ ही पर्याप्त मात्रा में छोटी जीवन अवधि वाले कीट पतंगे होने चाहिएं। जैविक खेती में मृदा स्वास्थ्य को ठीक बनाए रखने के लिए पारम्परिक नुस्खे जिनमें आमतौर पर पशुओं का गोबर, गौमूत्र, छाछ, गुड़, मक्खन आदि के साथ-साथ विभिन्न खलियों के प्रयोग एवं दालों के आटे के

(शेष पृष्ठ 8 पर)

[1]एस. के. आर. ए. यू. बीकानेर

मिर्च के हानिकारक कीट व उनका निदान

✍ रूमी रावल एवं योगेश कुमार
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

दुनिया के मिर्च उत्पादक देशों में भारत का नाम सबसे ऊपर आता है। मिर्च एक मसाला व नकदी फसल है। इसमें विटामिन 'ए', 'सी' और कुछ खनिज लवण पाए जाते हैं जो मानव सेहत के लिए भी बहुत ही फायदेमंद हैं लेकिन इसके सफल उत्पादन में कई प्रकार की अड़चनें जैसे कीट व रोग आदि आड़े आती हैं। मिर्च की फसल को कुछ कीट नुकसान पहुंचाकर पैदावार कम कर देते हैं। इस लेख में मिर्च की फसल के हानिकारक कीटों व उनके प्रबंधन के बारे में जानकारी दी जा रही है जिसे पढ़ व अपनाकर किसान फसल की अच्छी उपज ले सकते हैं।

दीमक: इस सर्वभक्षी कीट का अधिक प्रकोप सितम्बर से नवम्बर तथा फरवरी-मार्च में होता है। इसका प्रकोप रेतीली मिट्टी, कम पानी और ज़्यादा तापमान की अवस्थाओं में ज़्यादा होता है। ये हल्के भूरे रंग का कीट ज़मीन के नीचे मिट्टी में अपना घर बनाकर रहता है। ये मिर्च की जड़ों व तनों को काटकर हानि पहुंचाते हैं, इस वजह से पौधे मुरझाकर सूख जाते हैं।

रोकथाम: पिछली फसल के अवशेष व ठूंठों को निकाल दें। खेत में गोबर की खाद अच्छी तरह से सड़ा कर डालनी चाहिए। खेत व खेत के आसपास दीमक के घरों व खरपतवारों को नष्ट कर दें।

चूरड़ा: ये छोटे-छोटे कीट, पत्तियों एवं पौधे के अन्य मुलायम भागों से रस चूसते हैं। आक्रमण फसल की छोटी अवस्था में ही शुरू हो जाता है। फूल लगने के समय प्रकोप बहुत भयंकर हो सकता है। इस समय पत्तियां सिकुड़ जाती हैं तथा मुरझाकर ऊपर की ओर मुड़ जाती हैं। पत्तियां पीली भी पड़ जाती हैं। पौधे कमज़ोर हो जाते हैं और उपज बहुत कम हो जाती है।

रोकथाम: इस कीट की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. का छिड़काव प्रति एकड़ की दर से 200-250 लीटर पानी में मिलाकर 15-20 दिन के अन्तर पर करें।

अष्टपदी (माईट): ये बहुत ही छोटे कीट होते हैं जोकि पतों से रस चूसते हैं जिससे पत्ते पीले पड़ जाते हैं और नीचे की ओर मुड़ जाते हैं। पौधे कमज़ोर हो जाते हैं और पैदावार भी कम होती है।

रोकथाम: अष्टपदी (माईट) की रोकथाम के लिए 300 मि.ली. प्रौम्पट 20 ई.सी. फैनपरोपैथ्रिन 15% व पाइरिप्रोक्सीफेन 5% को 200 लीटर पानी में मिलाकर फसल में फूल आने से पहले, प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। 10-12 दिन के अन्तराल पर 2-3 बार छिड़काव आवश्यक हो सकता है।



एक कदम स्वच्छता की ओर

सब्जियों के लिए पौधशाला प्रबंधन

✍ तन्वी मेहता, एस. डी. दुहन एवं वी. पी. एस. पंघाल
सब्जी विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

नर्सरी एक सरंक्षित स्थान है जहां पर पौध उपयुक्त परिस्थितियों में उगाई जाती है जब तक कि वो खेत में लगाने योग्य न हो सकें। सब्जियों की पौध तैयार करना सब्जी उत्पादन के लिए एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसे अच्छी तरह से तैयार करने के लिए तकनीकी जानकारी का होना आवश्यक है। सब्जियों की खेती दो तरह से की जाती है। पहली प्रकार में सब्जियों के बीजों को प्राय: खेत में सीधा बो दिया जाता है जैसे– भिंडी, लोबिया, गाजर, मूली, शलगम, कद्दू प्रजाति की फसलें, पत्ते वाली सब्जियां तथा फ्रेंचबीन आदि। दूसरी प्रकार की सब्जी फसलों में पहले बीजों को पौधशाला में बिजाई करके पौध तैयार की जाती है तथा बाद में इस पौध की खेत में रोपाई की जाती है जैसे– फूलगोभी, पत्तागोभी, ब्रोकोली, टमाटर, बैंगन, मिर्च, प्याज़, शिमला मिर्च आदि। यहां हम किसानों को मोटे तौर पर बताना चाहेंगे कि जिस सब्जी फसल का बीज आकार में बड़ा होता है उनके बीजों को सीधा बोया जाता है और जिस सब्जी फसल का बीज आकार में छोटा होता है उनकी पहले पौध तैयार की जाती है।

पौधशाला में पौध तैयार करने के लाभ कुछ इस प्रकार हैं :

1. नर्सरी का क्षेत्र छोटा होने के कारण पौध की देखरेख करना आसान हो जाता है।
2. नर्सरी में पौध को कीड़े व बीमारियों से आसानी से बचाया जा सकता है।
3. नर्सरी लगाने से खेत में लगी फसल के लिए 30–35 दिन का अतिरिक्त समय मिल जाता है जिससे किसान की आमदनी बढ़ जाती है।
4. नर्सरी लगाने से खेत प्रबंधन आसान व उसकी लागत कम हो जाती है।
5. बेमौसम में पौध तैयार करके अगेती फसल ली जा सकती है जिससे अधिक लाभ कमाया जा सकता है।
6. सब्जियों का बीज प्राय: महंगा होता है जिससे कि प्रत्येक बीज की देखभाल करना अनिवार्य हो जाता है और नर्सरी में ये काम आसानी से हो जाता है।

नर्सरी को तैयार करने के लिए उपयुक्त स्थान :

1. सब्जी फसलों की नर्सरी के लिए भूमि बलुई दोमट तथा इसका पी. एच. 6–7 होना चाहिए।
2. नर्सरी को हमेशा पानी के स्रोत के पास तैयार करें।
3. नर्सरी छायादार जगह पर नहीं होनी चाहिए। नर्सरी के पौधे को पर्याप्त मात्रा में सूर्य का प्रकाश मिलना चाहिए।
4. पौधशाला या नर्सरी को हमेशा बारिश के दिनों में ऊंचे स्थान पर तैयार करें जिससे पानी न भर सके तथा उचित जल निकासी हो सके।
5. नर्सरी हमेशा किसान के घर के नज़दीक होनी चाहिए ताकि देखभाल ठीक तरह से की जा सके।
6. नर्सरी हमेशा रोगरहित स्थानों पर बनाई जानी चाहिए। उदाहरणत: यदि किसान के पास एक ही एकड़ जगह है तो हर साल खेत के कोने बदलते रहना चाहिए।

बीजों का चयन: बीज हमेशा प्रमाणित कम्पनी से खरीदना चाहिए। अगर किसान अपने बीज इस्तेमाल करें तो बीज आवश्य आदर्श गुणवत्ता के होने चाहिएं। बीज खरीदने का बिल हमेशा संभाल कर रखना चाहिए।

बीजों का अंकुरण परीक्षण: बीज को खराब होने से बचाने के लिए इनका अंकुरण परीक्षण करना चाहिए। इस परीक्षण के बाद किसान अंकुरित बीज की मात्रा का पता लगा सकते हैं। यह परीक्षण बीज बुवाई के कुछ दिन पहले करना चाहिए।

बीजोपचार: बीज की बिजाई करने से पहले बीज को भूमि व जड़ जनित बीमारियों से बचाने के लिए बीज का उपचार करना चाहिए। सब्जियों में ज़्यादातर बीजों का उपचार कैप्टान, थाईरम या बाविस्टिन नामक दवा से 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज द्वारा किया जाता है।

क्यारियां तैयार करने की विधि: सब्जियों की पौध तैयार करने के लिए बीजों की बिजाई क्यारियों में की जाती है। 3 x 1 मीटर लम्बाई व चौड़ाई की क्यारियां बनाई जाती हैं। क्यारियों के बीच में से 1 फीट रास्ता खरपतवार निकालने तथा निराई–गुड़ाई के लिए रखा जाता है। पौध की क्यारियों को वर्षाकाल में आम खेत से 10–15 सैं.मी. ऊंचा उठाकर तथा सर्दी के समय ज़मीन को आम खेत से नीचे रखकर तैयार किया जाता है।

खाद का प्रयोग: तीन मीटर लम्बी क्यारी के लिए 10 कि.ग्रा. गोबर की खाद नर्सरी तैयार करते समय ज़मीन में मिला देते हैं तथा अन्य पोषक तत्वों में 100 ग्राम यूरिया, 150 ग्राम डाई अमोनियम फास्फोट (डी. ए. पी.) तथा 120 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश (पोटाश खाद) प्रति क्यारी की दर से मिलाकर खेत तैयार कर लेते हैं।

क्यारियों का उपचार: बीज को बोने से 1 दिन पहले 3 मी. लम्बी क्यारी में 10–25 ग्राम बाविस्टिन या कैप्टान दवाई को मिट्टी में अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। इससे फफूंद वाली भूमि में बीमारियों का प्रकोप कम हो जाता है। वर्षा ऋतु में फार्मल्डीहाइड नामक रसायन के एक भाग को 80–100 भाग पानी में मिलाकर क्यारियों में डालना चाहिए तथा इस दवाई के छिड़काव के 10 दिन बाद ज़मीन को अच्छी तरह से खोदकर छोड़ दें जिससे दवाई की गैस ज़मीन से पूरी तरह से निकल जाए, नहीं तो पौधों के जमाव पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

बीज की बिजाई: नर्सरी में बीज की बिजाई क्यारी में करनी चाहिए। क्यारियों में 5–10 सैं.मी. की दूरी पर सीधी लाइन बना लें तथा 1–2 सैं.मी. गहराई पर बीज डालें। बीज की बिजाई करने के बाद गोबर की सड़ी–गली बारीक खाद से एक पतली परत बनाकर ढक दें। पौध सर्दियों में 5–6 सप्ताह में तथा गर्मियों में 4 सप्ताह में रोपाई के लिए तैयार हो जाती है।

सिंचाई: नर्सरी की फव्वारे से हल्की सिंचाई करें। अगर पानी खुले नाले से लगाएंगे तो बीज पानी के साथ बहकर एक स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं। इसलिए हमेशा सिंचाई नियमित रूप से करनी चाहिए।

नर्सरी की देखभाल: बीजों के अच्छे अंकुरण के लिए जब तक बीज अंकुरित न हो जाये, नमी की कमी नहीं होनी चाहिए। इसके लिए गर्मियों में

प्रतिदिन शाम के समय पानी देते रहें। गर्मी, तेज़ धूप से बचाने के लिए नर्सरी पर घास-फूस या सरकंडे का छप्पर डाल दें। जैसे कि सर्दी में बीज देर से जमता है, इसके लिए नर्सरी को सफेद पारदर्शी पॉलिथीन शीट से ढक दें।

कीट व बीमारियों की रोकथाम: कीड़ों का प्रकोप होने पर कीटनाशक दवाइयों जैसे की मैलाथियान 50 ई.सी. का 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी के साथ घोल बनाकर 10 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें। आर्द्रगलन की रोकथाम के लिए मिट्टी व बीज का उपचार बिजाई के समय कैप्टान से करें।

पौध रोपण: पौध जब 10-15 सैं.मी. लम्बी हो जाए या 4-6 पत्तियां निकल आएं तो खेत में लगाने के लिए तैयार हो जाती है। पौध को खेत में लगाने से 15 दिन पहले नर्सरी में सिंचाई को कम कर दें जिससे पौधों में प्रतिकूल वातावरण सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है। पौध रोपण हमेशा शाम के समय करें जिससे रात की ठंडक में पौधे आसानी से स्थापित हो जाएं। पौध रोपण के बाद हल्की सिंचाई करें।

यदि किसान इन सब बातों को ध्यान में रखेंगे तो पौधशाला में नर्सरी को अच्छे तरीके से तैयार कर सकते हैं तथा इस स्वस्थ पौध को खेत में स्थापित करके अधिक मुनाफा ले सकते हैं।

(पृष्ठ 6 का शेष)

साथ-साथ सामयिक वृक्षों की छायादार मिट्टी का वितरण देखने को मिलता है। इन पारंपरिक उत्पादों का लगातार उपयोग करने से लाभदायक सूक्ष्म जीवों की वृद्धि होती है। सूक्ष्मजीव मिट्टी के पोषक तत्वों को एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित करते हैं जिससे वो पौधों के प्रयोग में आते हैं। पारंपारिक नुस्खे जिनमें भू-अमृत, जीवमृत और भूमि संजीवनी का प्रयोग किया जाता है। इसके प्रयोग से मृदा में उपस्थित मृदा खनिज पोषक तत्वों के रूप में प्रदान होते रहते हैं। अर्क तथा गौ-मूत्र इत्यादि बहुत ही अच्छे वृद्धि उत्प्रेरक हैं जो अलग-अलग स्थान तथा जलवायु में कारगार सिद्ध हुए हैं। भू-अमृत में अनेकों लाभदायी सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं। एक एकड़ के लिए 200 लीटर भू-अमृत की आवश्यकता होती है। दस किलोग्राम गाय का गोबर, 10 लीटर गोमूत्र, 2 कि.ग्रा. गुड़, किसी दाल का आटा, 1 कि.ग्रा. जीवंत मृदा 200 ली. पानी में मिलाएं, 5-7 दिनों हेतु सड़ने दें और दिन में 3 बार मिश्रण को हिलाते रहें। एक एकड़ में सिंचाई जल के साथ प्रयोग करें। पंचगव्य - एक विशिष्ट जैव समृद्धिशाली सूत्र है। पंचगव्य में पौधों की अच्छी बढ़वार हेतु आवश्यक लगभग सभी सूक्ष्म मात्रिक तत्व तथा हार्मोन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। जैविक खेती मृदा की उर्वकता एवं किसानों की उत्पादकता को बढ़ाने में सहायक है। जैविक विधि द्वारा खेती करने से उत्पादन की लागत तो कम होती ही है, इसके अतिरिक्त किसान अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। समृद्ध मृदा किसानों को सर्वांगीण विकास, शुद्ध वातावरण, पौष्टिक आहार के साथ-2 खुशहाल जीवन जीने की राह दिखा सकती है।

"खेत है तो किसान है और किसान है तो हम सब हैं।
इसलिए किसानों का सशक्त होना बहुत ज़रूरी है।"

ब्राह्मी (बकोपा मोनेरी)

✍ **राजेश कुमार आर्य एवं आई. एस. यादव**
आनुवंशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

ब्राह्मी को सफेद कामनी, जल-नीम व जल ब्राह्मी के नाम से भी जाना जाता है। यह बहुवर्षीय भूस्तरी शाक है। इसकी शाखाएं ऊपर की ओर बढ़ती हैं। ब्राह्मी के पर्ण सरल, छोटे 2.5 से 6 सैं.मी., किनारे दांतेदार, मांसल पर्व पर एक दूसरे के विरुद्ध लगे रहते हैं। पुष्प एकल, कक्षीय, कम्पेनुलेट कसेला श्वेत या नीला, फल कैप्सूल जिसमें स्थायी वर्तिका रहती है।

औषधीय उपयोग: महर्षि चरक के अनुसार ब्राह्मी मनोरोगों की अचूक दवा है। यह अपस्मार में विशेष लाभ करती है। सुश्रुत संहिता के अनुसार ब्राह्मी का उपयोग मस्तिष्क विकृति, नाड़ी दौर्बल्य, उपस्मार, उन्माद एवं स्मृति नाश में लाभकारी है। ब्राह्मी पंचांग का सूखा चूर्ण मानसिक कमज़ोरी, तनाव, घबराहट व अवसाद के रोगियों को देने से लाभ होता है। भावप्रकाश के अनुसार ब्राह्मी मेधावर्धक है। हिस्टीरिया जैसे रोग में तुरंत लाभ करती है। सिर दर्द, चक्कर, भारीपन तथा चिन्ता में ब्राह्मी तेल का प्रयोग उत्तम है। ब्राह्मी की क्रिया मस्तिष्क और मज्जा तंतुओं पर होती है। मस्तिष्क को शान्ति देने के अतिरिक्त यह पौष्टिक टॉनिक का भी काम करती है। अधिक बोलने से स्वर भंग व तुतलाने में भी ब्राह्मी सफलता पूर्वक कार्य करती है। ब्राह्मी को पागलपन व मिर्गी की औषधि भी बताया गया है।

किस्में: सुबोधक व प्रज्ञाशक्ति मुख्य किस्में है।

भूमि तथा जलवायु: प्राकृतिक रूप से नम तथा दलदली, छायादार स्थानों में आसानी से उगती है। समशीतोष्ण जलवायु की आवश्यकता होती है। तेज़ी से बढ़वार 33-40 डिग्री तापमान तथा 65-80 प्रतिशत आर्द्रता पर होती है।

भूमि की तैयारी: गहरी जुताई करने के बाद खेत को तैयार करके समतल बनाते हैं।

बोने का समय: सिंचित दशा में फरवरी-मार्च में तथा असिंचित दशा में जुलाई-अगस्त में बिजाई करें।

बीज की मात्रा: एक एकड़ के लिए लगभग 40 किलो सकर्स की आवश्यकता होती है। नाइपर मोहाली (पंजाब), सीमैप (लखनऊ) एवं जोगेन्द्र नगर (हिमाचल प्रदेश) सकर्स प्राप्ति के मुख्य स्थान हैं।

रोपने की विधि: जड़ युक्त तनों की कलमें सीधे खेत में लगा सकते हैं। 5.0-7.5 सैं.मी. लम्बे सकर्स के टुकड़े क्यारियों में लगाकर 1.5-2.0 माह की पौध तैयार करें, पौधों को 40 x 20 सैं.मी. के अंतर से खेत में प्रत्यारोपित करें। एक बार रोपण करने के बाद 5-6 साल तक यह चलती रहती है और काटने पर दूब के समान फैलती है। रोपने के तुरंत बाद हल्की सिंचाई आवश्यक है।

खाद/उर्वरक: 10-12 टन गोबर की खाद प्रति एकड़ खेत तैयार करते समय डाल दें।

निराई-गुड़ाई: इसके पौधे ज़मीन पर फैलते हैं जो कि बड़े पौधों से स्पर्धा नहीं कर पाते हैं। आरम्भ में हाथ/खुरपे से 15-20 दिन के अंतराल पर खरपतवार निकालें।

सिंचाई: वर्षा ऋतु के बाद सिंचाई करना आवश्यक है। शीत ऋतु में 20 दिन के अंतर से व ग्रीष्म ऋतु में 15 दिन के अंतर से सिंचाई करें, अर्थात मृदा में नमी बनी रहे परंतु खेत में पानी नहीं भरें।

कटाई एवं शुष्क करने की तकनीक: तने को 4-5 सैं.मी. ऊंचाई पर पहली बार जून में और दूसरी कटाई अक्तूबर-नवम्बर में करनी चाहिए, तत्पश्चात् छाया में शाक को सुखाना चाहिए। कटाई किए हुए शाक को तुरंत 70-80 डिग्री ताप पर 30 मिनट के लिए ओवन में रख सकते हैं इसके बाद शाक छाया में या 35 डिग्री ओवन में सुखाना चाहिए। सूखे हुए शाक का भंडारण ठंडे और नमी रहित स्थान पर पॉलिथीन थैलियों आदि में कर सकते हैं।

उत्पादन: लगभग 8-10 क्विं. प्रति एकड़ शुष्क शाक अक्तूबर की कटाई में और लगभग 6-8 क्विं. प्रति एकड़ तक शुष्क शाक जून की कटाई से औसतन वर्ष में दो बार कटाई से शुष्क शाक लगभग 14-18 क्विं. प्रति एकड़ मिल जाता है। यह ताज़ा भी बिक जाता है। प्रति किलो शुष्क शाक का बाज़ार भाव लगभग 20 रुपए है। एक एकड़ पर लगभग 15000 रु. खर्चा होता है। एक एकड़ से शुद्ध आमदनी लगभग 25000 से 30000 रु. तक ली जा सकती है।

(पृष्ठ 5 का शेष)

रोगचक्र व अनुकूल वातावरण: यह जीवाणु मृदा में काफी समय के लिए जनित रहता है। मृदा में भारी नमी व 28-30° सेल्सियस तापमान इस रोग के संक्रमण के लिए अनुकूल है।

नियंत्रण: रोगमुक्त क्षेत्र में साफ बीज का प्रयोग करें। साबुत कंदों का बीज के लिए प्रयोग करें क्योंकि काटने से स्वस्थ कंदों में भी जीवाणु पहुंचने की सम्भावना रहती है। रोगी पौधों को मिट्टी के साथ निकालकर नष्ट कर दें। ब्लीचिंग पाउडर 12.5 कि. ग्रा. प्रति हैक्टेयर का प्रयोग बिजाई के समय उर्वरकों के साथ मिलाकर करें। मक्का, मटर, जौ, बन्दगोभी के साथ 2-3 साल का फसल चक्र अपनाएं। स्ट्रैप्टोसाईक्लीन नामक जीवाणुनाशक 30 ग्राम प्रति 100 लीटर में घोल बनाकर रोगी पौधों के पास मिट्टी में डालें।

कॉमन स्कैब: यह रोग *स्ट्रैप्टोमाइसिस स्कैबिज* नामक जीवाणु से होता है। कंदों पर छोटे भूरे व उभरे हुए धब्बे (दाग) पड़ जाते हैं। और बाद में यह धब्बे आकार में बड़े और अन्ततः कोकी हो जाते हैं। यह धब्बे विशेषतः किनारों से उभरे हुए तथा बीच में से धंसे हुए होते हैं।

रोगचक्र व अनुकूल वातावरण: रोग का प्रथम संक्रमण मृदा में रोगजनक तथा रोग ग्रसित कंदों द्वारा होता है। द्वितीय संक्रमण मृदा जल, हवा तथा रोग संक्रमित कंदो से फैलता है। रोग जनक घावों द्वारा कंदों में प्रवेश करता है। 20-22° सेल्सियस तापमान, मृदा में नमी की कमी तथा 5.2-8.0 पी एच मान इस रोग के संक्रमण के लिए अनुकूल है।

नियंत्रण: रोग मुक्त कंदों का रोपण करें। गेहूं-जौ अथवा प्याज़, मक्की जैसी फसलों के साथ फसल चक्र अपनाएं। मृदा का पी एच मान 5.3 बनाने के लिए सल्फर या जिप्सम का प्रयोग करें। रोग ग्रसित कंदों को 3% बोरिक एसिड+स्ट्रैप्टोसाइक्लिन (3 ग्राम 110 लीटर पानी) के घोल में 30 मिनट तक डुबा लें। मृदा को पी सी एन बी नामक फफूंदनाशक (30 ग्राम/10 लीटर पानी) से उपचारित करें।

अमरूद के रोग एवं बचाव

✍ राजेन्द्र सिंह, ममता एवं हवा सिंह सहारण
उद्यान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अमरूद पौष्टिक गुणों से भरपूर फल है। यह हर प्रकार की मिट्टी व जलवायु में उगाया जा सकता है। सूखेपन में भी इसकी सहनशक्ति है। लेकिन उक्ठा, फल गलन या टहनीमार रोग प्रमुख रूप से लगते हैं।

उक्ठारोग (विल्ट): जड़ों के रोगग्रस्त होने के काफी समय बाद लक्षण दिखाई देते हैं। समन्वित पौधों की पत्तियां पीली पड़कर गिर जाती हैं और बाद में पौधा सूखने लगता है। इसके अन्य कारकों में सूत्रकृमि, विभिन्न तत्वों का अभाव व असन्तुलन तथा जलवायु प्रभावित करते हैं।

रोकथाम: पौधे उन्हीं खेतों में लगाएं जहाँ पानी के निकास की अच्छी व्यवस्था हो। बहुत अधिक भारी मिट्टी में पौधे न लगायें। वर्षा या सिंचाई के पानी को तने के चारों ओर खड़ा न होने दें। रोगग्रस्त पौधों को जड़ सहित उखाड़कर नष्ट कर दें। गड्ढे को फारमैलिन द्वारा उपचार करके दोबारा पौधा लगाएं।

हर पौधे के थाले में 15 ग्राम बावस्टिन मार्च, जून व सितम्बर में डालकर पानी लगा दें तथा मार्च व सितम्बर में पौधों पर 0.3 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट का छिड़काव करें।

टहनी मार रोग या फल गलन: फल पकने वाली अवस्था में फलों के ऊपर गोलाकार अनेक धब्बे बनते हैं जोकि बाद में आपस में मिलकर धंस जाते हैं तथा नारंगी रंग के फफूंद उत्पन्न हो जाते हैं। टहनियों पर यदि संक्रमण हो जाये तो डालियाँ या शाखाएं पीछे से सूखने लगती हैं। फलों के संक्रमण होने के फलस्वरूप बनते हुए फल छोटे, करड़े और काले रंग के होते हैं या कई बार पहचान बहुत देर में होती है।

रोकथाम: डालियों को काटकर 0.3 प्रतिशत कॉपरऑक्सीक्लोराइड के घोल का छिड़काव करें और 15 दिन की अवधि पर फल लगने के बाद 2-3 छिड़काव करें।

आल्टरनेरिया लीफ स्पॉट: पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे बनते हैं। रोगग्रस्त पत्तियां झुलसकर गिर जाती हैं।

रोकथाम: कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव 2 सप्ताह के अन्तर पर 2-3 बार करें।

आवश्यक सूचना

''हरियाणा खेती'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें। **- सह-निदेशक (प्रकाशन)**

पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्वों का महत्व

✍ पूजा, एम.एस.ढांडा एवं दीपिका राठी
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के मुख्य कारणों में अधिक उत्पादन देने वाली प्रजातियों का उगाना, कार्बनिक खाद की कम मात्रा देना तथा फसल अवशेषों को जला देना हैं। किसान नत्रजन, फॉस्फोरस व पोटाश का इस्तेमाल तो करते हैं, लेकिन यह इस्तेमाल जागरूक किसान, फसल में लक्षण परिलक्षित होने पर ही कर रहे हैं। यहाँ पर यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि फसल में किसी भी तत्व की कमी के लक्षण काफी देर से परिलक्षित होते हैं, तब तक काफी देर हो चुकी होती है। बेहतर है कि प्रत्येक तीन साल के अंतराल पर खेत में सूक्ष्म पोषक तत्वों की जांच करवाते रहें। जिस तत्व की कमी है, उसे खेत तैयारी में अंतिम जुताई के समय बुरक कर दें। ताकि फसल को उसकी कमी से जूझना न पड़े। मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्व के प्रयोग करने पर उपलब्धता धीमी होती है तथा फसल को दो-तीन वर्ष तक ये तत्व सुलभ रहते हैं। यदि मिट्टी की जांच नहीं कराई है तो बुवाई के बाद से ही किसान को अगली फसल पर सतत् निगरानी रखनी चाहिए तथा उनके लक्षणों के अनुरूप पोषक तत्वों की कमी का पता लगाकर फसल को उसकी पूर्ति करें।

ज़िंक (जस्ता): ज़िंक प्रोटीन के निर्माण तथा उपज की गुणवत्ता सुनिश्चित करता है। उसकी कमी फसल में प्राय: 35 से 45 दिन के पश्चात् दिखाई देती है। पहले उसकी कमी ऊपर से दूसरी से चौथी पत्ती पर परिलक्षित होती है। पहले पीले धब्बे, जो धीरे-धीरे पूरी पत्ती को पीली करते हैं तथा यह पीलापन धीरे-धीरे ऊपर से नीचे की ओर बढ़ता है। उसकी कमी से गांठों के बीच की दूरी कम होने के कारण पौधे झाड़ीनुमा दिखते हैं व बाली भी देर से निकलती है। इसकी पूर्ति के लिए 20 से 25 किलो ज़िंक सल्फेट प्रति हैक्टेयर का अंतिम जुताई पर प्रयोग करें। खड़ी फसल में कमी होने पर 0.5% ज़िंक सल्फेट एवं 0.25 प्रतिशत बिना बुझे चूने का दो-तीन बार 10 से 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें। इसके लिए एक किलो ज़िंक सल्फेट एवं 0.5 किलो बिना बुझा चूना 200 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

बोरान: बोरान का मुख्य कार्य कोशिका विभाजन तथा वृद्धि करना है। यह पराग के विकास में महत्वपूर्ण है। इसकी कमी का मुख्य प्रभाव ऊपर की पत्ती तथा नई कलियों पर पड़ता है। पत्ती धीरे-धीरे धब्बेदार हो जाती हैं। फलियों का विकास रुक जाता है। रंग भूरा-काला हो जाता है। बाली में कुछ हिस्से या पूरी बाली में दाना नहीं बनता है। इसकी पूर्ति के लिए 100 किलो बोरेक्स प्रति हैक्टेयर अंतिम जुताई के समय में बुरकें। खड़ी फसल में कमी होने पर 0.5 प्रतिशत बोरेक्स का दो से तीन बार छिड़काव करें। फूल आने के समय बोरान की कमी होने पर बाली में दानों का पड़ना प्रभावित होता है। अधिक बोरान का प्रयोग भी बुरा असर डालता है।

आयरन (लोहा): आयरन का मुख्य कार्य क्लोरोफिल बनाना है। जो कि प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के लिए आवश्यक है। साथ ही यह नत्रजन व सल्फर की स्वांगीकरण में सहायक है। उसकी कमी से गेहूं की नई पत्तियां पीली पड़ जाती हैं लेकिन पत्ती की मुख्य शिराएं हरी रहती हैं। बाद में पत्ती भूरी होकर सूख जाती है। इसकी पूर्ति के लिए 15 से 20 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर फैरस सल्फेट इस्तेमाल करें। यदि खड़ी फसल में इसके लक्षण दिखें तो फैरस सल्फेट का दो या तीन बार छिड़काव करें। ध्यान रहे कि लक्षण दिखते ही छिड़काव करें ताकि अधिक नुक्सान न हो।

मैंगनीज़: यह पौधे की कई एंजाइम की सामान्य प्रक्रिया, नत्रजन तथा प्रकाश संश्लेषण में महत्वपूर्ण है। इसकी कमी में पत्तियां आयरन की कमी की तरह पीली पड़ जाती हैं लेकिन शिराएं हरी रहती हैं। इसकी पूर्ति के लिए 0.5% मैंगनीज़ सल्फेट का दो से तीन बार खड़ी फसल में छिड़काव करना चाहिए।

मोलिब्डेनम: इसका मुख्य कार्य जैविक नत्रजन स्थिरीकरण तथा प्रोटीन निर्माण में सहायता करता है। कमी होने से पुरानी पत्तियों पर हल्के भूरे या पीले धब्बे पड़ जाते हैं, पत्ती मुड़ने लगती है। कभी-कभी प्यालेनुमा आकार ले लेते हैं इसकी पूर्ति के लिए खेत तैयारी के समय 2 से 3 किलोग्राम प्रति हैक्टैयर सोडियम मोलिबेडट या अमोनियम मोलिडेट का इस्तेमाल करें।

सल्फर: सल्फर अमीनो एसिड्स तथा फैटी एसिड्स का प्रमुख अंश है। इसकी कमी भी पहले ऊपरी पत्तियों पर परिलक्षित होती है। इसकी पूर्ति सल्फर वाले खाद मुख्य रूप में सिंगल सुपर फॉस्फेट से की जाती है। खेत तैयारी के समय 40 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर सल्फर तत्व या जिप्सम देकर भी उसकी पूर्ति की जा सकती है।

कॉपर (तांबा): कॉपर क्लोरिकल के निर्माण में सहायक है। यह कई एंजाईम्स का हिस्सा है तथा जैविक नत्रजन के स्थिरीकरण के लिए आवश्यक है। कॉपर की कमी से पत्तियां पीली पड़कर सफेद होने लगती हैं तथा चमक खो देती हैं और झड़ने लगती हैं। इसकी पूर्ति के लिए भूमि में 1.5 से 2 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर कॉपर सल्फेट का इस्तेमाल करें। खड़ी फसल में 0.25 प्रति कॉपर सल्फेट का छिड़काव करके भी कमी पूरी की जा सकती है। फसल यदि पीली पड़ने लगे तो तुरंत विशेषज्ञ से सलाह लें। इसके लिए प्रभावित पौधे जड़ सहित उखाड़कर विशेषज्ञ के पास ले जाएं या खेत पर ही विशेषज्ञ को लाएं ताकि समय पर निदान हो सके।



मित्र कीटों का खेती में महत्व

✍ संगीता तिवारी, नरेन्द्र कुमार[1] एवं सुनीता यादव
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अनेक जीव जन्तु देखने में डरावने और दुश्मन जैसे प्रतीत होते हैं लेकिन ये हमारे पशु धन और फसल की सुरक्षा में विभिन्न प्रकार से सहायता भी करते हैं। कुछ जीव फसल को सीधे और परोक्ष रूप से लाभ पहुंचाते हैं। इनसे या तो फसलें सुरक्षित रहती हैं या इनकी पैदावार में वृद्धि होती है, अत: इनको न मारें, बल्कि बढ़ने दें। मित्र कीट प्रकृति में हानि पहुँचाने वाले कीट की संख्या को आर्थिक कगार से नीचे रखता है। इस मित्र कीट का संरक्षण समन्वित कीट नियंत्रण का प्रमुख हिस्सा है। प्रकृति में यह संरक्षण की प्रक्रिया स्वत: ही चलती है लेकिन आधुनिक खेती में रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से यह सदियों से चली आ रही प्रक्रिया नष्ट हो रही है। दूषित कीटनाशक दवाई के प्रयोग से किसान के मित्र कीट जैसे कि परजीवी, पैरासिटॉइड तथा परभक्षी नष्ट हो रहे हैं। इन सभी कीटों के प्रयोग से हानिकारक कीटों की संख्या को नियंत्रण करने की क्रिया को जैविक कीट नियंत्रण कहा जाता है। कुछ मित्र कीट जैसे ट्राईकोग्राम, लेडी बर्ड बीटल तथा क्राईसोपरला का प्रयोगशाला में उत्पादन होता है। लेकिन अधिकतम मित्र कीट प्रकृति में सदैव उपस्थित रहते हैं जो अपने शत्रु कीट को नियंत्रण करते हैं। परभक्षी छोड़ने के 10 दिन पहले व 10 दिन बाद खेत में कोई कीटनाशक न छिड़कें। खेत में काईसोपा के अण्डे कभी न छोड़ें क्योंकि अण्डे भी दूसरे परजीवियों के द्वारा प्रभावित हो सकते हैं।

प्रमुख मित्र कीटों का विवरण इस प्रकार है:

लेडी बर्ड बीटल: इसके शरीर पर सख्त लाल पंखों पर सात काले धब्बे होते हैं, पेट के नीचे का हिस्सा काले रंग का होता है। यह कीट मुख्य रूप से नारंगी शरीर वाले कीड़ों, चेपा, सफेद मक्खी, तेला आदि को खाता है। एक बीटल अपने जीवन काल में 5,000 चेपा खाती है।

ट्राईकोग्रामा: ट्राइकोग्रामा गहरे रंग का छोटा ततैया कीट है जो लेपीडोपटेरा कुल के लगभग 200 प्रकार के नुकसानदेहक कीड़ों के अण्डों को खाकर जीवित रहता है। अण्डा परजीवी कीट गन्ना, कपास, धान, सूरजमुखी और सब्जियों में हानिकारक तनाबेधक, फलबेधक का जैविक विधि द्वारा नियंत्रण करता है। मादा ट्राइकोग्रामा, पोषक अण्डों में अपने अण्डे देती है और बाद में पोषक अण्डों के हिस्से को चूसकर उसे नष्ट कर देती है। अन्त में ये उनसे ज़िन्दा वयस्क कीड़ों के रूप में निकलते हैं। अण्डे से वयस्क कीड़ा बनने की अवस्था में 10–14 दिन लगते हैं। एक ट्राइकोग्रामा 100 अण्डों को मार देता है। इसका प्रयोग ट्राइकोग्रामा कार्ड के रूप में होता है जिसमें संकलित अण्डे चिपके होते हैं। खेतों में इन्हें नुकसानदेह कीटों के अण्डों के नियंत्रण के लिए प्रयोग किया जाता है। इन कार्ड को छोटे-छोटे टुकड़ों में फाड़ कर खेत के विभिन्न भागों में बीचों-बीच पत्तियों की निचली सतह पर जोड़ कर लगाया जाता है।

सीरफिड मक्खी: सीरफिड मक्खियों के वयस्क के पेट पर काले और पीले बैंड होते हैं। यह नियमित रूप से 300 एफिड्स से ग्रसित खेत में मिलती है। इसके अण्डे भूरे रंग के आयताकार होते हैं। मादा अपने अण्डे एफिड की कालोनियों के आस-पास देती हैं। लार्वा अपने विकास चरण और प्रजातियों के आधार पर 1 से 13 मि.मी. की लम्बाई का होता है। प्यूपा आयताकार और हरे रंग से गहरे भूरे रंग के होते हैं जो कि मिट्टी तथा पौध में प्यूपेसन करते हैं। वयस्क पराग पर फीड करते हैं जबकि लार्वा कीट पर फीड करता है।

टरकनिड मक्खी : इस मक्खी का वयस्क घर वाली मक्खी के जैसा दिखता है। लेकिन इस के शरीर के अंतिम भाग पर नुकीले बाल होते हैं। टरकनिड की मादा अपने अण्डे शत्रु कीट के अन्दर या उसके पास/ऊपर देती हैं। कुछ प्रजातियों में अण्डे मादा कीट के अन्दर ही विकसित होते हैं तथा वह लार्वा को जन्म देती हैं। इस कीट का लार्वा शाकाहारी होता है। प्यूपे की अवधि आम तौर पर 1 से 2 सप्ताह तक रहती है। इस कीट का वयस्क पराग पर फीड करता है।

प्रेडेंगमेन्टिस: यह बड़े हरे या भूरे रंग का शिकारी कीट है। इसका आगे का पैर (फोरलेग) राप्टरियल होता है। इस पैर की मदद से यह आकार त्रिकोणीय होता है जो कि आसानी से सभी दिशाओं में अपने शत्रु कीट को देख सकता है। यह आम तौर (एक से अधिक कीट को खाता है) पर पॉलिफंगस है।

क्राईसोपरला: क्राईसोपरला परभक्षी कीट कई तरह की मुलायम सूंडियों, माहू, फूदका, सफेद मक्खी तथा मिलीबग इत्यादि को खाकर फसल को सुरक्षित रखता है। एकीकृत नाशकजीव प्रबन्धन में इस परभक्षी कीट का प्रयोग किया जाता है। यह कीट सामान्यत: हरे रंग का 1 से 1.3 सैं. मी. लम्बा तथा चौड़ाई में 1 से 2.0 मि.मी. होता है। इसका अण्डा स्टाक लिये हरे रंग का होता है। अण्डे से सूंडी 74 दिन में बनती है। सूंडी प्यूपा अवस्था में 5 से 7 दिन रहती है। उस के बाद उस में से वयस्क निकलते हैं। वयस्क 4 दिन बाद अण्डे देना शुरू करते हैं। नर 10 से 12 दिन तथा मादा 35 दिन तक जीवित रहती है।

एपीरिकेनिया: यह परजीवी कीट है जो कि पायरिल्ला के अण्डों, बच्चों व प्रौढ़ तीनों का शिकार करता है। परजीवी कीट एपीरिकेनिया के अंडों के अंदर ही पलते हैं व उन्हें नष्ट करते हैं। इस परजीवी कीट के बच्चे व प्रौढ़ पायरिल्ला का प्राकृतिक नियंत्रण करते हैं। इस परजीवी कीट को 5000 प्यूपा + 500000 अण्डे/है. तथा 1000 प्यूपा/है. दर से खेत पायरिल्ला की उपस्थिति में छोड़ें।

जैविक नियंत्रण के मुख्य लाभ:

1. मित्र कीट स्वयं अपनी संख्या बढ़ा सकता है। यह प्रक्रिया अपने आप निरंतर होती रहती है।
2. इस प्रबंधन पद्धति से हानिकारक कीटों में प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न नहीं होती है।
3. कई मित्र कीटों को प्रयोगशाला में पाल कर कीट नाशक रसायनों से कम खर्च में प्रयोग प्रबंधन का कार्य किया जा सकता है।
4. मित्र कीट शत्रु कीट को स्वयं ढूंढ सकता है।
5. कीटनाशकों के कम प्रयोग से वातावरण भी दूषित नहीं होता है।
6. मित्र कीट कोई हानिकारक अवशेष नहीं छोड़ते हैं और न ही लाभप्रद जीवों को हानि होती है।
7. इस प्रबंधन पद्धति के प्रयोग से हम द्वितीयक कीट के प्रकोप को रोक सकते हैं।

[1]संयोजक व ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (कीट विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र, सदलपुर (हिसार)

बसन्तकालीन बुवाई हेतु गन्ने की उन्नतशील प्रजातियां

✍ सुधीर शर्मा, रमेश कुमार एवं लोकेश यादव
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, करनाल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गन्ना हरियाणा प्रांत की नकदी फसलों में से एक मुख्य फसल है। इसके अंतर्गत प्रांत में लगभग एक लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल है। हरियाणा में गन्ने की बुवाई मुख्यत: बसन्त (फरवरी-मार्च) में की जाती है। अधिकांश कृषकों को यह जानकारी नहीं होती है कि इस समय गन्ने की कौन-कौन सी प्रजातियां बुवाई के लिए उपयुक्त हैं। जिस प्रजाति का गन्ना उन्हें सुगमता से मिल जाता है उसी को वे अपने खेत में बो देते हैं। फलस्वरूप न तो अच्छी पैदावार मिल पाती है और न ही चीनी का परता उचित मात्रा में मिल पाता है। गन्ना खेती में प्रजातियों का विशेष महत्व है इसलिए नवीनतम उन्नतशील प्रजातियों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी किसानों तक पहुँचाना आवश्यक है। इन उन्नतशील प्रजातियों को अपना कर किसान अच्छी गन्ना उपज व चीनी परता में आशातीत वृद्धि कर सकते हैं।

शीघ्र पकने वाली प्रजातियां

सी ओ एच 160 (CoH 160) : यह एक अगेती पकने वाली व अधिक पैदावार देने वाली नवीनतम किस्म है।इसमें खाण्ड अंश 18 -20 प्रतिशत है। इसका गन्ना ठोस, वज़न में भारी तथा मध्यम मोटाई का है। इसकी मोढ़ी अच्छी तथा यह एक न गिरने वाली किस्म है। यह प्रजाति कीड़ों एवं बीमारियों की प्रतिरोधी है। इस किस्म से अच्छी पैदावार लेने के लिए समय पर जड़ बेधक कीड़ों की रोकथाम आवश्यक है। इसकी औसत पैदावार 340 क्विंटल प्रति एकड़ है। इस किस्म को 90 सैं. मी. खूड़ से खूड़ की दूरी पर ही लगाना चाहिए और इसमें 25 प्रतिशत ज़्यादा पोषक तत्वों की ज़रूरत पड़ती है।

सी ओ एच 56 (CoH 56) : यह एक अगेती पकने वाली व अधिक पैदावार देने वाली किस्म है। इसमें खाण्ड अंश 18.0 प्रतिशत है। इसका गन्ना मध्यम मोटाई का व पत्तियां चौड़ी व हल्के हरे रंग की होती हैं। यह न गिरने वाली व अच्छे फुटाव वाली किस्म है। यह घसेला रोग के लिए अति संवेदनशील है। अत: इसका बीज गर्म व तर हवा विधि द्वारा उपचारित करके ही प्रयोग में लाना चाहिए। इसकी सिफारिश केवल प्रांत के पश्चिमी क्षेत्र के लिए की जाती है। यह लाल सड़न रोग के लिए संवेदनशील है। अत: इसे खड़े पानी की परिस्तिथियों में न उगायें। इसकी औसत पैदावार 300 क्विंटल प्रति एकड़ है।

सी ओ एच 92 (CoH 92) : यह एक अगेती पकने वाली किस्म है। इसमें खांड अंश 18-20 प्रतिशत है। इसका जमाव अच्छा परन्तु फुटाव कम है। इस किस्म का गन्ना मोटा, ठोस तथा लम्बी बढ़वार वाला होता है। अच्छी पैदावार के लिए जड़ बेधक कीड़े की रोकथाम का समय पर प्रबंध आवश्यक है। इसकी औसत पैदावार 250 क्विंटल प्रति एकड़ है। इसकी बिजाई की सिफारिश पूरे हरियाणा प्रान्त के लिए की जाती है।

मध्यम पकने वाली प्रजातियां

सी ओ एच 99 (CoH 99) : यह एक मध्यम पकने वाली किस्म है। इसमें खांड अंश लगभग17.5 प्रतिशत होता है। खड़े पानी, खराब पानी व खराब ज़मीन जैसी परिस्तिथियों में यह एक सर्वोत्तम किस्म है। गिरने के बाद भी पैदावार व चीनी पर प्रतिकूल असर नहीं पड़ता। यह कीड़ों व बीमारियों के लिए संवेदनशील नहीं है। पूरे प्रान्त के लिए इसकी बिजाई की सिफारिश की गई है। इसकी औसत पैदावार 280 क्विंटल प्रति एकड़ है।

सी ओ एच 119 (CoH 119) : यह एक मध्यम पकने वाली किस्म है। इसका गन्ना ठोस, वज़न में भारी तथा मध्यम मोटाई का है। यह किस्म बसन्तकालीन बिजाई के लिए उपयुक्त है। इसकी मोढ़ी अच्छी तथा यह एक न गिरने वाली किस्म है। यह किस्म लाल सड़न रोधक है तथा इसको सारे प्रान्त के लिए अनुमोदित किया गया है। इसकी औसत पैदावार 320 क्विंटल प्रति एकड़ है। इस किस्म की अच्छी पैदावार लेने के लिए समय पर बिजाई तथा मंजूरशुदा (सिफारिश) किया गया बीज व खाद की मात्रा का ही प्रयोग करें।

सी ओ एच 128 (CoH 128) : यह किस्म मध्यम पकने वाली है। इसकी औसत पैदावार 305 क्विंटल प्रति एकड़ है। यह अच्छे फुटाव वाली किस्म है। यह किस्म गन्ने के लाल सड़न रोग की प्रतिरोधी है तथा इसमें कीड़ों का प्रकोप कम होता है। इसमें खाद की मात्रा अन्य मध्यम व पछेती किस्मों सी ओ एच 119, सी ओ एच 1148, सी ओ एस 767 व 7717 के बराबर डाली जाती है।

अन्य शीघ्र पकने वाली प्रजातियां

सी ओ 238 : यह एक अगेती पकने वाली किस्म है। इस किस्म को उत्तर पश्चिम क्षेत्र के लिए जारी किया है जो अधिक गन्ना एवं चीनी उपज के लिए प्रचलित है। यह किस्म सूखे एवं जलमग्नता क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। यह गन्ने की प्रमुख बीमारयों – लाल सड़न व कंडुआ – के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है। चोटी बेधक का प्रबंधन इस किस्म के लिए आवश्यक है। इसकी औसत पैदावार 340 क्विंटल प्रति एकड़ है।

सी ओ 118 : इस अगेती किस्म को उत्तर पश्चिम क्षेत्र के लिए वर्ष 2009 में जारी किया गया था। यह एक अधिक गन्ना उपज एवं अधिक चीनी उक्त वाली किस्म है। इस किस्म का फुटाव कम रहता है। इस किस्म को कम नाइट्रोजन की आवश्यकता है। इस किस्म की औसत पैदावार 340 क्विंटल प्रति एकड़ है।

मार्च मास के कृषि कार्य



फसलों में

गन्ना

गन्ने की पछेती किस्मों की कटाई इसी महीने समाप्त करें व नई फसल की बिजाई इस माह पूरी कर लें। उन्नत किस्में, सी ओ जे 64, सी ओ एच 56 व सी ओ एच 92 (अगेती), सी ओ 7717, सी ओ एस 8436, सी ओ एच 99 व सी ओ एच 119 (दर्मियानी), सी ओ एच 128, सी ओ 1148, सी ओ एस 767 व सी ओ एच 110 (पछेती) आदि ही बोएं। खेत की तैयारी के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा इसके बाद 6-8 जुताइयां देसी हल से करके सुहागा लगाएं। ज़मीन के नीचे सख्त सतह को तोड़ने के लिए बिजाई से पहले 1.5 × 1.5 मीटर की दूरी पर चिज़लर को 1.5 फुट गहराई पर 4 साल में एक बार ज़रूर चलाएं। इससे भूमि की भौतिक स्थिति में बहुत सुधार आता है। चिज़लर चलाने के बाद खेत की तैयारी के लिए 2 बार हैरो, 2 बार कल्टीवेटर चलाकर सुहागा लगाएं। एक एकड़ गन्ने की बिजाई के लिए 35-40 क्विंटल गन्ने, यानि लगभग 35,000 दो आंखों वाले टुकड़ों या 23000 तीन आंख वाले टुकड़ों की ज़रूरत होती है। अच्छे जमाव तथा कंडुआ के बीजगत संक्रमण के निवारण हेतु 0.25 प्रतिशत एमिसान या मेन्कोज़ेब (250 ग्राम/100 लीटर पानी) से बीज को 4-5 मिनट डुबोकर उपचार करके ही बोएं। बिजाई दो खूडों में फासला लगभग 60 से 75 सैं.मी. व गहराई 7.5 सैं.मी. रखकर करें। पोरी के 1/4 भाग को दूसरी पोरी पर चढ़ाकर बोएं व बिजाई करने के बाद सारे खेत में सुहागा लगाएं। गन्ने के जमाव को बढ़ाने के लिए आधा सूखा खूड्ड सिंचाई विधि या गड्ढा (पिट) विधि द्वारा भी गन्ने की बिजाई की जा सकती है। दोपहर के समय बिजाई न करें। अच्छे जमाव के लिए बीज गन्ने के 2/3 ऊपरी भाग से ही लेना चाहिए। खरपतवारों की रोकथाम के लिए अट्राजीन 50 घुलनशील पाऊडर 1.6 कि.ग्रा. प्रति एकड़ की दर से बिजाई के 2-3 दिन बाद 250-300 लीटर पानी में घोलकर छिड़कें। एकीकृत खरपतवार नियंत्रण हेतु बिजाई के 35-40 दिन बाद एक गुड़ाई करके दूसरी सिंचाई के बाद नमी में 1.6 किलोग्राम प्रति एकड़ अट्राजीन का छिड़काव करें। अन्त: फसलीकरण में इस शाकनाशक का प्रयोग न करें। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का नियंत्रण करने के लिए 1.0 कि.ग्रा. 2,4-डी (80% सोडियम नमक) 250 लीटर पानी में बिजाई के 7-8 सप्ताह बाद प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। यदि फसल में मोथा (डीला) घास की समस्या हो तो घास उगने पर 2,4-डी (इस्टर) का 400 मि.ली. प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। 2,4-डी मोथा घास को ऊपर से ही नष्ट करती है इसलिए घास के दोबारा उगने पर छिड़काव को दोहराएं। मोथा (डीला) घास के नियंत्रण के लिए सैम्प्रा (75% हैलोसल्फ्यूरॉन) का 36 ग्रा. प्रति एकड़ की दर से 200 लीटर पानी में घोलकर बिजाई के 35-45 दिन बाद (पहली सिंचाई के 2-3 दिन बाद) जब मोथा घास 3-5 पत्ती की हो तब फ्लैट फैन नोज़ल से छिड़काव करें। अन्त: फसलीकरण में इस शाकनाशक का प्रयोग करें।

कम लागत से अधिक पैदावार प्राप्त करने तथा पूरा लाभ लेने के लिए गन्ना बोने से पहले मिट्टी का परीक्षण कराएं। सामान्यत: 15-20 गाड़ी गोबर की अच्छी प्रकार गली-सड़ी खाद बिजाई से 20-25 दिन पहले डालें। खाद को पूरे खेत में समान रूप से बिखेर कर मिट्टी की ऊपरी तह में मिला दें। यदि खाद कच्ची हो तो 20-25 किलोग्राम यूरिया/एकड़ भी बिखेर दें और हल्की सिंचाई कर दें। बिजाई के समय पोरियों के नीचे 20 किलोग्राम नाइट्रोजन (45 किलोग्राम यूरिया खाद) व 20 किलोग्राम फास्फोरस (125 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट या 45 किलोग्राम डी ए पी)/एकड़ डालें। रेतीली तथा कल्लर भूमि में 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट भी प्रति एकड़ बिजाई के समय अवश्य प्रयोग करें। यदि ज़मीन में प्राप्य पोटाश कम हो तो 35 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश/एकड़ भी डालें। गन्ने की मोढ़ी में 65 कि.ग्रा. यूरिया/एकड़ छिट्टा करके पानी दें।

बिजाई के लिए कीटग्रस्त पोरियां न लें। फसल उगते समय दीमक पोरी की आंखों को नष्ट कर देती है। कनसुए के आक्रमण से पौधों की गोभ सूख जाती है। अत: इन दोनों कीटों से फसल को बचाने के लिए बिजाई के समय 2.5 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. या 600 मि.ली. फिप्रोलिन (रीजेन्ट) 5 एस.सी. को 600 से 1000 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ खूडों में बीज के ऊपर फव्वारे से डालें। 150 मि.ली. इमिडाकलोप्रिड (कान्फीडोर) 200 एस. एल. को 250-300 लीटर पानी में मिलाकर भी नैपसैक पंप द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है।

गेहूँ और जौ

इस समय फसलें दूधिया अवस्था में होती हैं। अत: इनकी सिंचाई करनी आवश्यक है। अगर खेत में कुछ पौधे मूल किस्म के पौधों से भिन्न दिखाई दें तो उनको बीज की शुद्धता के लिए निकाल दें। खुली कांगियारी से ग्रसित गेहूं की बालियों को देखते ही खेत से सावधानीपूर्वक लिफाफे से ढककर निकाल दें तथा इसे खेत से बाहर ले जाकर मिट्टी में गहरे दबाकर

लेखक :

- अश्विनी कुमार, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
- एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (पादप रोग विज्ञान)
- वी. एस. हुड्डा, सहायक वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
- अशोक चन्द्र यादव, परामर्शदाता (सब्जी विज्ञान)
- सरिता, विस्तार विशेषज्ञ (लुवास)
- सूबे सिंह, विस्तार विशेषज्ञ (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

नष्ट करें या जला दें। बालियां निकालते समय पौधे अधिक नहीं हिलाने चाहिएं क्योंकि इससे फफूंदीकण बिखर जाते हैं।

इस महीने गेहूं की पत्तियों के पीलेपन के कई कारण हो सकते हैं। ज़मीन में देर तक पानी खड़ा रहने, अधिक सर्दी या ज़मीन में कंकर होने या फास्फोरस या ज़िंक की कमी के कारण भी पीलापन हो सकता है। अगली फसल में प्रति एकड़ 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट और फसल की आवश्यकतानुसार फास्फोरस की खाद डालें।

जिन स्थानों में पत्तों की कांगियारी (फ्लैग स्मट) देखें उन पौधों को काटकर, जलाकर नष्ट कर दें।

किसी-किसी वर्ष जौ व गेहूं में अल (चेपा या माहू) का आक्रमण हो जाता है। इस कीट से फसल को बचाने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

सूरजमुखी

बिजाई के 3 सप्ताह बाद निराई-गुड़ाई अवश्य करें। सूरजमुखी में 24 किलोग्राम नाइट्रोजन व 16 किलोग्राम फास्फोरस उन्नत किस्मों में एवं 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (90 कि.ग्रा. यूरिया) तथा 20 (125 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) किलोग्राम फास्फोरस संकर किस्म के लिए प्रति एकड़ प्रयोग करें। नाइट्रोजन बिजाई व पहली सिंचाई पर बराबर मात्रा में डालें। फास्फोरस बिजाई के समय पोरा करें।

कटुआ सूण्डी या हरे रंग की सूण्डी का आक्रमण हो तो 10 कि.ग्रा. फैनवालरेट 0.4 प्रतिशत प्रति एकड़ धूड़ें या 80 मि.ली. फैनवलरेट 20 ई. सी. या 50 मि.ली. सायपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. डैकामेथ्रिन 2.8 ई.सी. को 100-150 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

सरसों व राया

बिना पकी फसल में औसत 10 प्रतिशत या इससे अधिक पौधों पर (चेपा या माहू) का आक्रमण हो तो 400 मि.ली. मैटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. या रोगोर 30 ई.सी. को 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

सफेद रतुआ तथा मृदुरोमिल रोगग्रस्त टहनियों को काटकर जला दें। पछेती बीजी गई फसलों पर आल्टरनेरिया ब्लाईट, डाऊनी मिल्ड्यू और सफेद रतुआ के उपचार के लिए 600-800 ग्राम डाइथेन या इण्डोफिल एम-45 को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करें। ज़रूरत अनुसार छिड़काव 2-3 बार 15 दिनों के अंतर पर दोहराएं।

चना

वर्षा के अभाव में चने में फल आने के बाद सिंचाई करें। चने में टाट वाली सूण्डी लगने पर 400 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. या 400 ग्राम कार्बेरिल 50 घु. पा. या 200 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 एस. एल. या 80 मि.ली. फैनवलरेट 20 ई. सी. या 125 मि.ली. साइपरमैथरिन 10 ई.सी. या 50 मि.ली. साईपरमैथरिन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. डैकामैथरिन 28 ई. सी. को 100 लीटर पानी में घोल बनाकर या 150 मि.ली. नोवालूरान 10 ई. सी. (रिमोन) 150 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। अथवा 10 कि.ग्रा. कार्बेरिल 5 प्रतिशत या क्विनलफॉस 1.5 प्रतिशत धूड़ा प्रति एकड़ धूड़ें। एक मीटर लंबे खूड में औसतन एक सूण्डी मिले तब ही कीटनाशक छिड़कें। ज़रूरत पड़ने पर 15 दिन बाद इन्हीं में से किसी एक कीटनाशक का छिड़काव/भुरकाव पुन: करें। झुलसा रोग के लक्षण आते ही फसल पर 500 ग्राम डाइथेन या इण्डोफिल एम-45 का 250 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

कपास

पिछली कपास फसल के ठूंठों से हुए फुटाव को नष्ट करें क्योंकि इन पर विभिन्न प्रकार के कीड़े पनपते हैं। गर्मी के मौसम में मीलीबग भी इन पर शरण लेता है व संख्या-वृद्धि करता है।

कपास की फसल काटने से लेकर अगली फसल लेने तक, जहां भी सूण्डियां हों, उन्हें मारें ताकि आने वाली फसल में इनका कम प्रकोप हो। गुलाबी सूण्डी नवम्बर से मार्च तक कपास के बीजों में, छंटियों के साथ लगे टिण्डों या फिर घरों व मिलों में पड़े बीज में सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती है व मार्च के बाद प्यूपा बनते हैं जिनसे पतंगे बन कर उड़ जाते हैं।

जो भी छंटियां मार्च के बाद जलाने के लिए रखनी हों उनको हर हालत में मार्च में ही झाड़ लें व जो भी टिण्डे, कचरा आदि झड़ जाएं उनको जला दें। यह काम अभियान के रूप में करें।

मार्च तक मिलों में प्राय: कपास में से बिनौले व रूई अलग कर लिए जाते हैं। इसलिए विस्तार कार्यकर्त्ताओं को मिलों में जाना चाहिए और जो भी कचरा बाकी बचा पड़ा हो उसे जलवा कर नष्ट करवाना चाहिए।

बरसीम व लूसर्न

चारे के लिए समय-समय पर इन फसलों की कटाई करते रहें। प्रत्येक कटाई के बाद फसल को पानी अवश्य दें। बरसीम की फसल से बीज लेने के लिए शुष्क क्षेत्रों में इसकी कटाई मार्च के पहले सप्ताह तथा नम क्षेत्रों में मार्च के तीसरे सप्ताह के बाद न करें। काशनी, बथुआ आदि खरपतवारों के पौधे हों तो उन्हें खेत से निकाल देना चाहिए। इससे बीज की शुद्धता बनी रहती है।

बैसाखी मूँग

खड़ी फसल की कटाई के तुरंत बाद एक सिंचाई करें। आवश्यकतानुसार दो बार खेत की जुताई करके बैसाखी मूंग की बिजाई मार्च तक पूरी कर लें। मूंग की उन्नत किस्म एम एच 421, एम एच 318, सत्या, बसन्ती व मुस्कान की बिजाई की सिफारिश की जाती है। इस समय एक एकड़ की बिजाई के लिए 10-12 कि.ग्रा. बीज आवश्यक है। सिंचित क्षेत्रों में बिजाई पंक्तियों में लगभग 20-25 सैं.मी. का फासला रखकर करें। बीज की बिजाई से पहले मूंग को राइजोबियम टीके से उपचारित करें। बिजाई के समय 100 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट तथा 12 किलोग्राम यूरिया एक एकड़ में ड्रिल करें। यदि उपर्युक्त उर्वरक उपलब्ध न हों तो 35 किलोग्राम डी. ए. पी. का प्रयोग बिजाई के समय बीज के नीचे पोरा करें। सल्फर की आवश्यकता पूरी करने के लिए 200 किलोग्राम यानि 4 कट्टे जिप्सम/एकड़ भी प्रयोग करें।

नेपियर (हाथी घास)

नेपियर घास की रोपाई मार्च में पूरी कर लें। खेत की तैयारी करके उसमें प्रति एकड़ लगभग 20 गाड़ी गोबर या कम्पोस्ट खाद मिला दें। नेपियर घास

की बिजाई के लिए नेपियर बाजरा संकर नं. 21 ही लगाएं। एक एकड़ के लिए 11,000 तने के टुकड़े (50 सैं.मी. लंबे, दो-तीन आंखों वाले) काफी होंगे। इन जड़ों या तनों के टुकड़ों को कतारों में ढाई फुट तथा टुकड़ों की आपस की दूरी दो फुट रखकर लगाएं। पहले से चली आ रही नेपियर (हाथी) घास की अच्छी तरह निराई-गुड़ाई करके लगभग आधा कट्टा यूरिया प्रति एकड़ के हिसाब से डालें और समय पर सिंचाई करते रहें।

अरहर

मार्च से अरहर की बिजाई की जा सकती है। जहां पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है वहां अरहर की किस्म मानक, यू पी ए एस-120 व पारस लें। शुद्ध फसल में पंक्ति से पंक्ति (कतार) का फासला 40 सैं.मी. व मिश्रित फसल में 50 सैं.मी. रखकर बिजाई करें। बीच में एक पंक्ति मूंग की भी लेना लाभदायक रहता है। एक एकड़ के लिए अरहर का 5-6 किलोग्राम बीज डालें। बिजाई के समय बीज को राइजोबियम के टीके से उपचारित करें। बिजाई के समय 100 किलोग्राम सुपर फास्फेट एवं 12-17.5 कि.ग्रा. यूरिया प्रति एकड़ बीज के नीचे ड्रिल करें। यदि सिंगल सुपर फास्फेट न मिले तो 35 किलोग्राम डी. ए. पी. प्रति एकड़ बीज के नीचे ड्रिल करें। इससे नाइट्रोजन तथा फास्फोरस दोनों की आवश्यकता पूरी हो जाएगी। दो कट्टे जिप्सम (100 किलोग्राम) प्रति एकड़ भी प्रयोग करें इससे सल्फर की आवश्यकता पूरी होगी।

गर्मी के चारे

इस माह में अगेते चारे के लिए बाजरा की कोई भी संकर किस्म (दूसरी पीढ़ी), ज्वार की किस्में हरियाणा चरी 136 (एच सी 136), हरियाणा चरी 171 (एच सी 171), स्वीट सूडान घास 59-3 (एस एस जी 59-3), हरियाणा चरी 308 (एच सी 308) व हरियाणा ज्वार 513 (एच जे 513), लोबिया की सी एस 88 व ग्वार की एच एफ जी 156 की बिजाई शुरू करके अप्रैल तक पूरी कर लें। खेत की अच्छी तरह तैयारी करके बाजरे के लिए 3-4 किलोग्राम, ग्वार के लिए लगभग 16 किलोग्राम, सूडान घास के लिए 10-14 किलोग्राम ज्वार के लिए 20 से 24 कि.ग्रा. व लोबिया के हरे चारे के लिए 16-20 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ के हिसाब से तथा कतारों का फासला ज्वार हेतु 25 सैं.मी., बाजरा, ग्वार व लोबिया में 30 सैं.मी. रखकर पोरे से बिजाई करें। बाजरा, ज्वार व सूडान घास की बिजाई के समय 44 किलोग्राम यूरिया प्रति एकड़ के हिसाब से डालें। लोबिया के लिए लगभग 100 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट व 12 कि.ग्रा. यूरिया खाद बिजाई के समय बीज के नीचे प्रति एकड़ पोर दें। चारे के लिए बाजरे की किस्म का ध्यान अवश्य रखें। डाऊनी मिल्ड्यू अवरोधी किस्म ही चुनें।



सब्जियों में

टमाटर

फरवरी में बसंतकालीन फसल की रोपाई के बाद अब फसल को निराई-गुड़ाई तथा सिंचाई की आवश्यकता पड़ेगी। सिंचाई लगभग आठ-दस दिनों के अंतर पर करें। रोपाई करने के लगभग तीन सप्ताह बाद 14 किलोग्राम नाइट्रोजन (30 किलोग्राम यूरिया खाद) प्रति एकड़ की दर से खड़ी फसल में टॉप ड्रैसिंग द्वारा दें। इस उर्वरक को देने के बाद सिंचाई अवश्य करें। फफूंद रोग से रक्षा के लिए रोगों से बचाव हेतु नियमित रूप से 600-800 ग्राम इण्डोफिल एम-45 को 250 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ खेत में 10-15 दिन के अंतर पर छिड़काव करें। विषाणु रोग वाले पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दें। हड्डा बीटल, हरा तेला व सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिन के अंतर पर छिड़काव करें। इससे विषाणु रोग भी नियंत्रण में किया जा सकता है।

बैंगन

रोपाई की गई बैंगन की फसल में आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा निराई-गुड़ाई करें। मरी व सूखी हुई पौध के स्थान पर दोबारा पौध की रोपाई करें। पौधरोपण के लगभग तीन सप्ताह बाद खड़ी फसल में 14 किलोग्राम नाइट्रोजन (30 किलोग्राम यूरिया खाद) प्रति एकड़ की दर से दें। यूरिया खाद देने के बाद सिंचाई अवश्य करें। नई फसल में रस चूसने वाले कीड़ों की रोकथाम के लिए 300-400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अंतर पर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। टहनियों के कीट ग्रसित भाग को तोड़कर नष्ट कर दें। फूल/फल लगने पर शाखा व फल छेदक तथा अन्य कीड़ों की रोकथाम के लिए नीचे लिखी (क) व (ख) भाग में से बारी-2 किसी एक कीटनाशक दवा को 200-250 लीटर पानी में मिला कर 15-20 दिन के अंतर पर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

(क) (i) फेनवालरेट 20 ई.सी.-80 मि.ली.

(ii) साईपरमेथ्रिन 25 ई.सी.-70 मि.ली.

(iii) डैल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी.-200 मि.ली.

(ख) (i) कार्बेरिल 50 डब्ल्यू. पी.-500 ग्रा.

(ii) स्पाइनोसेड 45 एस.सी.-75 ग्राम/80 लीटर पानी

मिर्च

ग्रीष्म ऋतु की फसल की रोपाई यदि फरवरी माह में की है तो उसके लगभग तीन सप्ताह बाद, 8 किलोग्राम नाइट्रोजन (18 किलोग्राम यूरिया खाद) प्रति एकड़ की दर से दें। किसान खाद देने के बाद सिंचाई करें। फसल की निराई-गुड़ाई करें तथा उचित समय से सिंचाई करें। मिर्च की फसल को विषाणु रोग व कीड़ों से बचाने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर 10-15 दिन के अंतर पर एक एकड़ में लगी फसल पर छिड़काव करें।

मटर

मटर की पत्तियों में सुरंग बनाने वाले कीड़ों का प्रकोप होने पर 400 मि.ली. डाईमेथोएट 30 ई.सी. या 500 मि.ली. मिथाइल डेमेटान 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़कें। सफेद चूर्णी रोग के लक्षण दिखते ही 500 ग्राम सल्फैक्स या केराथेन 40 ई.सी.

80 मि.ली. प्रति एकड़ के हिसाब से 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। तैयार फलियों को तोड़कर बाजार में भेजें।

पत्तागोभी व गांठगोभी

फसल की आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा इस माह के अंत तक लगभग सभी फूलों/गांठों की कटाई कर लें।

प्याज़ व लहसुन

प्याज़ की फसल में थ्रिप्स (चूरड़ा) का आक्रमण हो तो 300 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 75 मि.ली. फैनवैलरेट 20 ई.सी. या 175 मि.ली. डैल्टामैथ्रिन 2.8 ई.सी. या 60 मि.ली. साईपरमैथ्रिन 25 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़कें। इसके साथ कोई चिपचिपाहट लाने वाला पदार्थ भी मिला लें जिससे कि घोल भली प्रकार पौधों पर चिपक सके।

मूली

गर्मी में मूली की बिजाई की जा सकती है। इस समय केवल 'पूसा चेतकी' किस्म को ही प्रयोग में लाएं। उचित होगा कि दोमट मिट्टी में छोटी-छोटी डोलियों पर ही इसकी बिजाई करें। डोलियों में 30 से 45 सैं. मी. की दूरी रखें।

पालक

गर्मी की फसल की बिजाई, यदि न की हो तो, अभी भी की जा सकती है। एक एकड़ के लिए लगभग 8 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होगी। जोबनेर ग्रीन, आल ग्रीन या एच एस 23 किस्मों को प्रयोग में लाएं। तैयार खेत में बिजाई 15-20 सैं.मी. की दूरी पर कतारों में करें।

भिण्डी

भिण्डी की बिजाई इस माह में भी की जा सकती है। पूसा सावनी, हिसार उन्नत, हिसार नवीन, एच बी एच 142 व वर्षा उपहार किस्मों का बीज प्रयोग में लें। एक एकड़ के लिए 16-18 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होगी। जड़ गलन से बचाव के लिए बोने से पहले बीज को कारबेंडाज़िम (दो ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) नामक फफूंद नाशक दवा से उपचारित करें।

यदि भिण्डी की बिजाई फरवरी माह में की है तो फसल की उचित सिंचाई व निराई-गुड़ाई करें तथा लगभग 30 कि.ग्रा. यूरिया खाद (14 कि.ग्रा. नाइट्रोजन) प्रति एकड़ की दर से बिजाई के लगभग एक महीने के बाद दें। किसान खाद देने के बाद सिंचाई करना आवश्यक है। तापमान के बढ़ने के साथ ही चित्तीदार तना व फलबेधक सूण्डी की रोकथाम के लिए 400-500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 400-500 ग्राम कार्बेरिल 50 डब्ल्यू.पी. को 250-300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

तरबूज व खरबूजा

फसल की निराई-गुड़ाई करें तथा उचित सिंचाई का प्रबंध करें। बिजाई के लगभग एक माह के बाद 15 कि.ग्रा. यूरिया खाद (7 किलोग्राम नाइट्रोजन) प्रति एकड़ की दर से खड़ी फसल में दें तथा सिंचाई करें। कद्दू जाति की सब्जियों में लाल भूण्डी (लालड़ी) का प्रकोप इस महीने में बहुत अधिक होता है। इसके नियंत्रण के लिए 5 कि.ग्रा. कार्बेरिल 5 डी. को 5 कि.ग्रा. राख में मिला कर प्रति एकड़ धूड़ा करें। इसके अतिरिक्त 25 मि. ली. साईपरमैथ्रिन 25 ई.सी. या 30 मि.ली. फैनवैलरेट 20 ई.सी. या 100 ग्रा. कार्बेरिल 50 घु.पा. को 100 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल में छिड़काव भी किया जा सकता है।

इस कीट की लटें (ग्रब्स), जो जड़ों को खाकर नुकसान पहुंचाती हैं, की रोकथाम के लिए 1.6 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. को सिंचाई के साथ लगाएं। तरबूज की फसल में 2 व 4 सच्ची पत्ती की अवस्था में जिबरैलिक एसिड 25 पी.पी.एम. के घोल का छिड़काव करने से प्रति एकड़ कुल उपज में बढ़ोत्तरी होती है। खरबूजे की फसल में भी 2 व 4 सच्ची पत्ती की अवस्थाओं में एथरिल 100 पी.पी.एम. घोल के छिड़काव द्वारा कुल उपज में बढ़ोत्तरी पाई गई है।

कद्दू जाति की अन्य सब्जियां

कद्दू जाति की अन्य सब्जियों की बिजाई इस माह में की जा सकती है।

अरबी

अरबी की बिजाई इस माह में भी की जा सकती है। एक एकड़ के लिए लगभग 320-400 किलोग्राम गांठों की आवश्यकता होती है। यदि बिजाई फरवरी माह में कर दी है तो फसल की निराई-गुड़ाई करें। खरपतवार निकालें तथा सिंचाई करें।

अन्य सब्जियां

ग्वार और लोबिया की बिजाई इस माह में भी की जा सकती है। शकरकन्दी की यदि खेती करनी हो तो इसकी बेलों (काट) का प्रबंध करें। शकरकन्दी की काट रोपण का मुख्य समय अप्रैल से जुलाई होता है। बेलें उगाने के लिए इनके कन्दों को फरवरी से अप्रैल के महीनों में बीजना चाहिए।

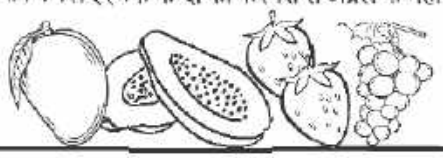

फलों में

संतरा, माल्टा, नींबू आदि

अगर अब तक सदाबहार एवं पतझड़ के फलदार नए पौधे नहीं लगाए हों तो दूसरे सप्ताह तक मिट्टी के साथ लगा सकते हैं। लगाए गए पौधों में हल्की सिंचाई अवश्य करें। अगर हो सके तो हर सिंचाई के बाद निराई-गुड़ाई करें ताकि घास-फूस न होने पाए। बड़े पौधों में भी सिंचाई 10 दिन के अंतराल पर अवश्य करें ताकि पानी की कमी से फूल-फल न झड़ें। जट्टी-खट्टी के पौधों की टी (T) तरीके से नर्सरी में प्योंद तैयार करें। अगर नए पौधे में जस्ते, व (कॉपर) की कमी दिखाई देती हो तो 500 ग्राम ज़िंक सल्फेट, 2 किलोग्राम कॉपर सल्फेट और 1-2 किलोग्राम यूरिया 100 लीटर पानी में मिलाकर पौधों पर छिड़काव करें।

यदि तेला, सिल्ला, पत्ती सुरंगी कीड़ा या सफेद मक्खी का आक्रमण हो तो 750 मि.ली. मैटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. या 625 मि.ली. रोगोर 30 ई. सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

आम

आम के पौधों में सिंचाई 8-10 दिन के अंतर पर अवश्य करें। इस तरह से नए बने फल कम झड़ेंगे। अगर पिछले महीने उर्वरक न डाले हों तो इस महीने के पहले सप्ताह तक अवश्य डालकर सिंचाई कर दें। अगर पत्तों में नाइट्रोजन की कमी दिखाई देती हो तो इस माह के आखिरी सप्ताह में 2 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव करें। ऐसा करने से छोटे बचे फल नहीं झड़ पाएंगे।

छाल खाने वाली सूण्डियां तनों में सुराख करती हैं। इनके नियंत्रण के लिए रूई के फोहों को दवा के घोल में डुबोकर किसी धातु के तार की सहायता से कीटों के प्रत्येक सुराख के अंदर डाल दें। इसके लिए एक लीटर पानी में 40 मि.ली. मैटासिड 50 ई.सी. दवा मिलाकर घोल बनाएं।

तेले की रोकथाम के लिए 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 1.5 कि.ग्रा. कार्बेरिल 50 घु.पा. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। गोभ छेदक कीट पेड़ की नई कोंपलों में छेद करता है जिससे वे सूख जाती हैं। इसलिए सूखी टहनियों को तोड़कर जला दें तथा नई कोंपलों पर 250 मि.ली. मिथाईल पैराथियान (मैटासिड) 50 ई.सी. या 125 मि. ली. डाईक्लोरवास (नूवान) या 400 मि.ली. रोगोर या 1.0 कि.ग्रा. कार्बेरिल 50 घु. पा. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ बाग में छिड़कें। आम में ब्लैक टिप (काला सिरा) रोग की रोकथाम के लिए बोरेक्स (0.6%) के 2 छिड़काव फूल आने से पहले करें। तीसरा छिड़काव फल बनने के बाद 0.3 प्रतिशत कॉपरऑक्साईड का करें। बाग में पानी की निकासी ठीक रखें ताकि ज़्यादा नमी न रहे।

अंगूर

पिछले साल लगाई गई नई बेलों की सिंचाई अच्छी तरह से करें। बेलों में थोड़ी-2 खाद 25-30 ग्राम यूरिया खाद प्रति पेड़ डालते रहें और सिंचाई भी महीने में कम से कम तीन बार करें और पुरानी बेलों में सिंचाई दो बार अवश्य करें। इस माह के आखिरी सप्ताह में सिंचाई आवश्यक है। बेलों की जाल पर सिधाई ठीक ढंग से करें।

अंगूर का थ्रिप्स (चूरड़ा) भूरे रंग के पतले लंबे कीट होते हैं जो पत्तों से रस चूसते हैं तथा नए निकल रहे पत्तों को कमज़ोर बना देते हैं। इसके भारी आक्रमण से पत्ते लाल पड़ जाते हैं तथा सूख जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 150 मि.ली. फेनवलरेट 20 ई.सी. को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़कें।

बालों वाली सूण्डियां बड़ी तेज़ी से पत्तों को खाती हैं। इनकी रोकथाम के लिए छोटी सूण्डियों को यांत्रिक विधि से नष्ट करें। इसके बाद यदि आवश्यकता हो तो 500 लीटर पानी में 400 मि.ली. डाइक्लोरवास 76 ई.सी. घोल कर एक एकड़ में छिड़काव करें।

आड़ू व अलूचा

नए लगाए गए पौधों की सिंचाई अच्छी तरह से करें। 8-10 दिन के अंतर पर सिंचाई करें और आधी नाइट्रोजन खाद की बची मात्रा इस माह के अंत तक अवश्य डाल दें। इन फलों पर अल या चेपा लगने पर पत्ते मुड़ जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 500 मि.ली. डाईमेथोएट (रोगोर) 30 ई. सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ पेड़ों पर नए फुटाव से पहले छिड़कें। जब फल मटर के दाने के बराबर हो जाएं तब दूसरा छिड़काव करें। रेतीली मिट्टी में गर्मी में प्राय: अलूचा में जस्ते की कमी देखी गई है। जिसे 3 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट व 1.5 किलोग्राम चूना 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने पर ठीक किया जा सकता है।

अमरूद

वर्षा ऋतु की फसल लेने के लिए पौधों में पानी एक सप्ताह के अंतराल पर लगाएं। थ्रिप्स (चूरड़ा) अमरूद के पत्तों पर भी काफी लगता है। जैसा अंगूर में बताया गया है उसी प्रकार इसका नियंत्रण करें।

बेर

पछेती किस्मों की इस माह के पहले सप्ताह में सिंचाई की जा सकती है। फल तोड़ने से पहले सिंचाई बंद कर दें। पके फलों को तोड़कर मण्डी में भेजने का प्रबंध करें। पौधों को दीमक से बचाने के लिए 1 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. प्रति एकड़ सिंचाई करते समय डालें।

अन्य फल

सिंचाई हर 8-10 दिन के बाद अवश्य करें। जुलाई-अगस्त में लगाए जाने वाले पौधों के लिए ज़मीन की उपयुक्तता जानने के लिए मिट्टी के नमूने लेकर मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला में भेजें। खाली ज़मीन को निशानदेही के लिए तैयार करवा लें। पपीते के पौधों को तैयार करने के लिए नर्सरी की बिजाई इसी माह में पूरी करें। 120 ग्राम बीज को केप्टान से उपचारित करके नर्सरी में लगाएं। यह नर्सरी एक एकड़ के लिए पर्याप्त है।

नोट : पानी की कमी को देखते हुए सिंचाई ठीक ढंग से करें। हर सिंचाई के बाद निराई-गुड़ाई करें। ज़मीन से नमी न उडने दें। गोड़ाई करने के बाद सरसों का तूड़ा या घास-फूस (मल्चिंग मैटीरियल) ज़मीन पर बखेर दें। इससे ज़मीन से पानी नहीं उड़ेगा।



पशुओं में

गाय-भैंस

- ग्रीष्म काल की शुरुआत होने वाली है, अत: पशु आवास में उचित प्रबंधन करें।
- दिन के गर्मी के तापमान और रात के तापमान से पशुओं को ज़्यादा नुकसान होता है, अत: मार्च मास में भी रात्रि में पशु-आवास में उचित प्रबंध रखें।
- यदि सूखी तूड़ी नई हो तो, यह पशु चारे में पुरानी तूड़ी के साथ मिश्रित करके इस्तेमाल करें। एकदम नई तूड़ी या सूखा चारा बदलाव से पशुओं में बंधा पड़ सकता है।
- मौसम बदलाव के साथ-साथ बीमारियों का प्रकोप बढ़ सकता है। विशेषकर परजीवी जनित व सांस की बीमारियां (गलघोंटू इत्यादि)। अत: पशु-चिकित्सक से सम्पर्क कर गलघोंटू, मुँह-खुर इत्यादि के टीकाकरण ज़रूर करें। नए खरीदे पशुओं का पशु-चिकित्सक से विशेष रूप से टीकाकरण करवाएं।

- इस माह में परजीवी (चीचड़, मक्खी, मच्छर आदि) का प्रकोप बढ़ सकता है, अत: पशुशाला में इनके बचाव के प्रावधान करें जैसे कि पशुशाला में पानी, कीचड़ का जमाव न होने देना, मच्छरदानी का प्रयोग करना, पशुओं पर खरहरा मारना, नियमित रूप से साफ-सफाई करवाना इत्यादि।
- पशुपालक मक्खी-मच्छर से बचाव के लिए कीटनाशक दवाओं के साथ-साथ नीम का तेल का प्रयोग पशु-शरीर पर कर सकते हैं। पशुपालक कीटनाशक दवाओं का प्रयोग करते समय सावधानी बरतें, छिड़काव करते समय शरीर (आँख-नाक, हाथ-पैर आदि) ढक कर रखें। छिड़काव से पहले सदैव पशुओं को पानी पिला लें अन्यथा पशु दवा चाट सकता है, पशु-शरीर के साथ-साथ पशुशाला के फर्श व दीवारों (कम से कम 4 फीट तक) ज़रूर छिड़काव करें ताकि परजीवी के अण्डे भी समाप्त हों। कीटनाशक दवा कभी-भी तूड़ी-घर में न रखें।
- पशुओं को हर साल ब्याने योग्य रहने के लिए अच्छे प्रजनन की आवश्यकता होती है जिसमें खनिज मिश्रण का महत्वपूर्ण योगदान है, अत: यह सुनिश्चित करें कि हर पशु को हर दिन खनिज-मिश्रण की उपलब्धता रहे।
- भेड़-बकरियों को रात्रि समय में छत के नीचे ज़रूर रखें व इनमें फड़कीया और पी.पी.आर. आदि रोगों का टीकाकरण करवाएं।
- हरे चारे (जई इत्यादि) का परिरक्षण साईलेज के रूप में करें।
- यदि फरवरी में मक्का की बिजाई न की हो तो मार्च में करें।

गृह विज्ञान

- गर्म कपड़ों की मुरम्मत करके, धोकर या ड्राईक्लीन करवाकर उचित स्थान या संदूक में रखें।
- गर्म कपड़ों को रखते समय उनमें फिनाइल की अच्छी किस्म की गोलियां रख दें या नीम की सूखी पत्तियां भी डाली जा सकती हैं।
- फिनाइल की गोलियां संदूक में इधर-उधर नहीं बिखेरनी चाहिएं। 3-4 गोलियां छोटे से कपड़े में लपेट कर बराबर दूरी पर डाल देनी चाहिएं।
- फल व सब्जियों को खाने से पहले अच्छी तरह धो लेना चाहिए।
- प्रतिदिन स्नान करना चाहिए और नाखून, बाल व शरीर को साफ रखना चाहिए।
- होली पर कांजी, नमकीन और मिठाइयां घर पर ही बनानी चाहिएं। क्योंकि घर पर बना सामान शुद्ध होने के कारण सर्वोत्तम माना जाता है।
- मौसम के अनुसार अचार व चटनी भी घर पर ही बनानी चाहिए।



बाल्यावस्था में मानसिक विकास एवं विकार

✍ रीना एवं बिमला ढांडा
मानव विकास एवं पारिवारिक अध्ययन
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जीवन के पहले तीन वर्षों में, मस्तिष्क का विकास हो चुका होता है। छह साल की उम्र तक बच्चे बोलना, चलना, बात करना, अपना पोषण करना, साथियों के साथ खेलना, जिज्ञासा प्रकट करना तथा भावनाओं को व्यक्त करना सीख चुके होते हैं । बाल्यावस्था का समय 6 से 12 वर्ष के बीच को कहा जाता है - शैक्षिक दृष्टिकोण से ये अवस्था जीवन की महत्वपूर्ण अवस्था है। इस अवस्था में बच्चे नई-नई चीज़ों को सीखते हैं इसलिए इसे अनोखा समय भी कहा जाता हैं क्योंकि इस अवस्था में बच्चों में मूर्त चिंतन, तर्क शक्तियों, वैचारिक क्रिया का विकास हो जाता है इसलिए इस अवस्था में सीखने तथा समझने की सबसे सर्वोत्तम अवस्था होती है। इस अवस्था को जीवन का निर्माणकारी समय भी कहा जाता है क्योंकि इसमें जो संस्कार प्राप्त होते हैं वो जीवन भर रहते हैं। इस अवस्था को झूठ परिपक्वता की अवस्था भी कहा जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो इस अवस्था के बच्चे अपने बड़ों की देखा-देखी नकल तो करते हैं परन्तु परिपक्व नहीं होते हैं। इसलिए इस अवस्था को मिथ्या परिपक्वता की अवस्था भी कहा जाता है। इसलिये ये अवस्था सीखने तथा समझने की सबसे सर्वोत्तम अवस्था होती है।

बाल्यावस्था में मानसिक विकार : ये जान कर शायद आपको आश्चर्य हो कि बच्चे भी मनोविकारों का शिकार हो जाते हैं। इस अवस्था में, आमतौर पर ये विकार पहली बार शैशवकाल, बाल्यावस्था या किशोरावस्था में पहचान में आते हैं। इन में से कुछ सावधान-अभाव अतिसक्रिय विकार पाए जाते हैं जिसमें बच्चा सावधान या एकाग्र नहीं रहता या वह अत्यधिक फुर्तीला व्यवहार करता है।

स्वलीन विकार (आत्मकेंद्रित) : यह मस्तिष्क के विकास के दौरान होने वाला विकार है जो बच्चे के सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करता है । जिसमें बच्चा अंतर्मुखी हो जाता है, बिल्कुल नहीं मुस्कुराता और देर से भाषा सीखता है ।

चिंता या घबराहट विकार : यदि कोई बच्चा बिना किसी विशेष कारण के डरा या भयभीत हो, चिंता महसूस करता है, तो इसे हम चिंता विकार कह सकते हैं कि वह बच्चा चिंता विकार से ग्रस्त है। चिंता विकार विभिन्न प्रकार के होते हैं, जिसमें चिंता की भावना विभिन्न रूपों में दिखाई देती है। जहां बच्चा बार-बार एक ही बात को सोचता रहता है और अपनी क्रियाओं को दोहराता रहता है।

मनोदशा विकार : मनोभाव (मूड डिसॉर्डर) लंबे समय से किसी से बात न करें, इस तरह के बच्चे किसी एक मनोभाव पर ठहरे (स्थिर) रहते हैं, या मन के भावों में अदल-बदल करते रहते हैं जैसे कि कोई बच्चा कुछ दिनों तक उदास रहे या किसी एक दिन उदास रहे और दूसरे ही दिन खुश रहे या उसके व्यवहार का तत्कालीन परिस्थिति से कुछ संबंध न हो, वे बच्चे मनोदशा विकार के शिकार हो सकते हैं।

बाल्यावस्था में मानसिक विकास और विशेषताएं :-

❖ **नई-नई चीज़ों को सीखने की प्रवृत्ति :** इस अवस्था में बालक के समझने, स्मरण करने, विचार करने, समस्या समाधान करने, तर्क चिन्तन व निर्णय लेने आदि की क्षमता का विकास हो जाता है। क्योंकि इस अवस्था में बच्चे स्कूल जाने लग जाते हैं और पढ़ने, लिखने व सीखने में अधिक रुचि लेते हैं।

❖ **संग्रह की प्रवृत्ति :** बच्चे समूह में रहना व कार्य करना पसन्द करते हैं। साथ ही अनुकरण, सहानुभूति व सहयोग आदि की सामान्य प्रवृत्तियों का विकास भी इस अवस्था में हो जाता है ।

❖ **रचनात्मक कार्यों में आनंद लेना :** वह रचनात्मक कार्यों में रुचि लेने लगता है। जैसे उसे लकड़ी, कागज़ व मिट्टी की वस्तुओं को बनाने में आनन्द मिलता है।

❖ **वास्तविक चीज़ों की पहचान :** बच्चे पर्यावरण की वास्तविकताओं को समझने लगते हैं और उनमें आत्मविश्वास विकसित हो जाता है। वह छोटी-छोटी घटनाओं और बातों का वर्णन करने लगता है।

❖ **नैतिक गुणों का विकास :** इसमें बच्चा किसी की नकल नहीं करता जैसे-बचपन में माँ-बाप को नाम से पुकारता था लकिन बाद में माँ-पापा कहने लग जाता है।

❖ **यथार्थवादी दृष्टिकोण :** यथार्थ का अर्थ है - सत्य जैसे-पहले उसको बताया जाता था कि वह चाँद मामा हैं परन्तु इस अवस्था में वह चाँद को चाँद न कह कर पृथ्वी का ग्रह कहने लग जाता है।

❖ **काम प्रवृति की निम्नता :** इस अवस्था के बच्चे लिंग भेद नहीं समझते हैं। वह सभी के साथ घुल-मिल कर रहते हैं।

विकास को प्रभावित करने वाले कारक :-

- ❖ घर एवं बाहर का वातावरण
- ❖ मां-बाप, भाई-बहन की संगति
- ❖ पड़ोस तथा स्कूल में संगति
- ❖ पौष्टिक भोजन
- ❖ परिपक्वता
- ❖ अभिरूचि
- ❖ शारीरिक स्वास्थ्य
- ❖ बौद्धिक-स्तर
- ❖ अन्त: स्त्रावी ग्रंथियाँ
- ❖ पारिवारिक परिस्थितियां
- ❖ भौगोलिक स्थिति
- ❖ वंशानुक्रम
- ❖ लिन्गीय भेद
- ❖ आकान्क्षा-स्तर

कुछ बातों को ध्यान में रख कर हम अपने बच्चों को मानसिक विकारों से बचा सकते हैं ।

- माँ-बाप को चाहिए कि उन्हें ज़्यादा से ज़्यादा हर काम के प्रति उत्साहित करें, उनका मनोबल बढ़ायें। उन्हें समझाएं कि तुम किसी से कम नहीं हो। तुम हर काम कर सकते हो। उनको खुद की पहचान करनी सिखाएं।
- उनके साथ खेलें, खेल-खेल में नए-नए शब्दों का प्रयोग करें, खिलौनों के साथ खेलने का सही तरीका सिखाएँ, बारी-बारी से खेलने की आदत डालें। (शेष पृष्ठ 22 पर)

गर्भवती महिला का आहार

✍ **अमृत चावला, वीना जैन एवं आशा बत्तरा**
कृषि विज्ञान केन्द्र, भिवानी
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

प्रत्येक मां की इच्छा होती है कि उसका शिशु स्वस्थ व सुन्दर हो। स्वस्थ बच्चे को जन्म देने के लिए मां का स्वस्थ होना ज़रूरी है। जैसे ही किसी महिला को पता चले कि वह मां बनने वाली है तो उसे प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में जांच करवाने के लिए जाना चाहिए।

अगर गर्भवती महिला को उचित आहार मिले तो गर्भावस्था में उसका भार 10-12 किलो बढ़ जाता है। जो स्त्रियां गर्भावस्था में उचित आहार नहीं ले पातीं, उनके बच्चों का जन्म के समय का भार संतुलित भोजन लेने वाली स्त्रियों के बच्चों के औसत भार से कम होता है।

गर्भवती महिला का आहार कैसा हो ?

गर्भावस्था के दौरान महिला को कैलोरी, प्रोटीन, कैल्शियम, विटामिन, खनिज एवं लौह तत्व की अतिरिक्त ज़रूरत होती है। गर्भवती स्त्री को अपने प्रतिदिन के भोजन में अतिरिक्त मात्रा में अनाज, दालें, दूध, हरी पत्तेदार सब्जियां, अन्य सब्जियां, सूखे मेवे, मूंगफली, तिल आदि काफी मात्रा में लेने चाहिएं।

गेहूं, बाजरा, चावल, मक्का आदि मिले-जुले अनाजों का प्रयोग करना चाहिए। अनाज से शक्ति तथा प्रोटीन के अतिरिक्त लोहा भी मिलता है। अनाज की तरह दालें भी कई प्रकार की होती हैं जैसे चना, मूंग, अरहर, उड़द आदि जोकि प्रोटीन से भरपूर हैं। दालों को साधारण ढंग से पकाने की अपेक्षा अंकुरित करके प्रयोग करें क्योंकि ये अधिक पौष्टिक व पाचनशील होती हैं।

गर्भवती स्त्री को अपने आहार में हरी पत्तेदार सब्जियां जैसे पालक, चौलाई, मेथी, सरसों, धनिया का प्रयोग दिन में कम से कम एक बार अवश्य करना चाहिए। सर्दियों मे हरी सब्जियां काफी मात्रा में मिलती हैं इन्हें सुखा कर रखें व गर्मियों में प्रयोग करें।

घीया, आलू, भिण्डी, तोरी आदि भी प्रयोग करनी चाहिए। लाल व पीले रंग की सब्जियां जैसे पेठा, टमाटर, गाजर प्रयोग करें क्योंकि ये आंखों के लिए गुणकारी हैं क्योंकि इनमें विटामिन 'ए' काफी मात्रा में पाया जाता है।

केला, पपीता, अमरूद, बेर आदि फल सस्ते और पौष्टिक हैं, जहां तक सम्भव हो इन्हें अपने आहार में शामिल करें।

दूध व दूध से बने पदार्थ जैसे दही, लस्सी व पनीर पौष्टिक तत्वों से भरपूर हैं। गर्भवती के आहार में चीनी, गुड़, तेल व घी स्वाद के साथ-2 शक्ति भी प्रदान करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि गुड़, चीनी से अधिक लाभदायक है, क्योंकि इसमें लोहा पाया जाता है।

ध्यान देने योग्य बातें:-

- आहार में मिर्च-मसालों का प्रयोग न करें। चटनी, अचार का प्रयोग भी कम करें।
- सन्तुलित आहार के साथ अधिक मात्रा में पानी व तरल पदार्थों का प्रयोग करें।

- भोजन थोड़ा-थोड़ा और कई बार लें।
- आयोडीन युक्त नमक का प्रयोग करें।
- भरपूर नींद व आराम लेना चाहिए। खुश व सन्तुष्ट रहना चाहिए।

गर्भवती महिला की एक दिन की आहार तालिका नीचे दी गई है:-

समय	आहार
6.00 बजे प्रात:	एक गिलास दूध/चाय, बिस्कुट
नाश्ता (8-9 बजे)	दो मिस्सी रोटी, एक कटोरी दही
मध्य दोपहर (10-11बजे)	मौसमी फल (केला,पपीता)/नींबू का शरबत
दोपहर (1 बजे)	चार रोटी, 1 कटोरी सब्जी,1 कटोरी दाल, टमाटर व खीरा का सलाद
तीसरे पहर (4 बजे)	पौष्टिक पंजीरी/लड्डू, दूध/चाय
शाम (7 बजे)	चार रोटी, पेठा सब्जी, अंकुरित दाल, सलाद
सोने पूर्व (9 बजे)	एक गिलास दूध

अंत मे यह कहना आवश्यक है कि गर्भवती महिला को अपने व अपने आने वाले बच्चे के लिए संतुलित भोजन का सेवन प्रतिदिन निश्चित समय पर करना चाहिए।

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक नि:शुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

स्वच्छता – रखे रोगमुक्त

✍ **कुसुम राणा, बी. पी. राणा एवं सुमन मलिक**
कृषि विज्ञान केन्द्र, झज्जर
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भोजन मानव शरीर के लिये अति आवश्यक तत्व है। भोजन सम्बन्धी स्वच्छता अतिआवश्यक होने के साथ-साथ आहार संबधी संदुषण के रोकथाम में परम सहायक है। भोजन में विषाक्तता आम तौर पर गंभीर नहीं होती परंतु कभी-कभी गंभीर हो जाती है। दो सौ से अधिक बीमारियाँ दूषित जल व खाने से होती हैं तथा प्रतिवर्ष लाखों बच्चे उल्टी व दस्त जैसी बीमारियों से मृत्यु को प्राप्त होते हैं। खाना बनाने व उनके भण्डारण में निम्नलिखित सावधनियां बरतकर हम रोग मुक्त जीवन जी सकते हैं।

1. अपने हाथों को खाना बनाने से पहले व बाद में, शौच के बाद, सफाई करने के बाद साबुन व स्वच्छ पानी से करीब 20 सेकेंड तक इस प्रकार धोयें कि हाथों से गंदे कीटाणु हमारे खाने में प्रवेश न कर पायें ।
2. सब्जी काटते व खाना बनाते समय ध्यान रखें कि आपके हाथ कहीं से कटे न हों व उनपर घाव न हो। ऐसी अवस्था में साफ तथा पानी रहित पट्टी लगाकर रखें ।
3. खाना बनाते समय छींकें व खांसें नहीं, ऐसी अवस्था में मुंह को ढक लें तथा हाथों को तुरंत धो लेवें ताकि इंफेक्शन न फैल सके।
4. इन विशेष बीमारियों जैसे पीलिया, उल्टी, दस्त,बुखार, गला खराब, आखों से पानी निकलने की अवस्था में खाना न बनायें इससे इंफेक्शन खाने वालों को लग सकता है ।
5. खाना बनाते समय रिमोट व मोबाईल का इस्तेमाल न करें। इन उपकरणों पर लगे कीटाणु खाने में प्रवेश कर सकते हैं।
6. नाखुनों को सदैव छोटा व साफ रखें। अगर खाना बना रहे हैं तो नेलपालिश का इस्तेमाल नाखूनों पर न करें इससे आपका खाना प्रदूषित हो सकता है ।
7. खाना बनाते समय साफ कपड़े पहनें व हाथों में आभूषण व खास करके अंगूठियाँ जब आप आटा गूंथ रहे हों, न पहनें।
8. रसोईघर में इस्तेमाल होने वाले कपड़ों को प्रतिदिन धोकर धूप में सुखायें। बरतन धोने के जूने को साबुन के घोल में डुबोकर न रखें। इसे बरतन धोने के बाद साफ पानी से धोकर धूप में रख दें।
9. गर्मियों के मौसम में खाना जल्दी खराब हो जाता है। खाना खराब होने की आशंका होने पर उसे तुरंत फेंक दें। खाना चैक करने के लिये थोड़ा सा भी प्रदूषित खाना, खाने से यह शरीर को नुकसान पहुँचा सकता है।
10. रसोईघर की दीवारों, अलमारी, भोजन का भण्डारण करने वाली जगह को दो सप्ताह में एक बार अवश्य गर्म पानी व साबुन से साफ करें। कूड़ादान को प्रतिदिन खाली करके अच्छी तरह से साफ करके रखें।
11. खाने को पैक करने के लिये कभी भी अखबार, कागज़ व प्लास्टिक का प्रयोग न करें। स्टेन लैस स्टील अथवा अच्छी क्वालिटी के प्लास्टिक में ही टिफिन पैक करें । *(शेष पृष्ठ 22 पर)*

आलू : मूल्य संवर्धन एवं फसलोपरांत प्रबंधन

✍ कनिका पंवार एवं इंदु पांचाल[1]
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, करनाल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गैर अनाज खाद्य फसलों में आलू का स्थान गेहूं, चावल और मक्का के बाद दुनिया में चौथे नंबर पर है। भारतीय आहार में आलू सबसे लोकप्रिय खाद्य पदार्थ माना जाता है एवं भारत देश आलू के सबसे बड़े उत्पादकों में से एक है। इसका उपयोग कई तरह से किया जाता है जैसे कि सब्जी, आलू वेफर्स/चिप्स पाऊडर, फिंगर चिप्स आदि। आलू कंद एक अत्यधिक पौष्टिक भोजन है। यह कार्बोहाइड्रेट, विटामिन सी, खनिज, उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन व फाइबर आहार प्रदान करता है। आलू स्टार्च का एक समृद्ध स्रोत है और इसका मुख्य रूप से सेवन अधिक कैलोरी मान होने के कारण किया जाता है। इसमें फॉस्फोरस, कैल्शियम, आयरन और कुछ विटामिन भी होते हैं। आलू उबालने से उनकी प्रोटीन की मात्रा बढ़ जाती है व कैल्शियम की मात्रा भी लगभग दोगुनी हो जाती है।

आलू का उपयोग सब्जी के रूप में किया जाता है व इसका उपयोग विभिन्न रूपों जैसे स्टार्च, आटा, शराब, डेक्सट्रिन व पशुधन चारा बनाने के लिए भी किया जाता है। यह अनुमान है कि लगभग 25% आलू जो कई कारणों से खराब हो जाता है प्रसंस्करण और संरक्षण की विधि द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रसंस्कृत उत्पादों के निर्माण से सुरक्षित किया जा सकता है। आलू को वेफर्स/चिप्स, पाऊडर, फ्लेक्स, ग्रैन्यूल्स, कैनिंग स्लाइस के रूप में संरक्षण और मूल्य संवर्धन के लिए संसाधित किया जाता है। आलू के ग्रैन्यूल्स का उपयोग विभिन्न व्यंजनों की तैयारी के लिए किया जाता है व सब्जी और गैर–व्यंजनों को बनाने एवं खाद्य मूल्य को समृद्ध करने के लिए भी इसका प्रयोग करते हैं। आलू के प्रति 100 ग्राम पोषक तत्वों में पानी, ऊर्जा, प्रोटीन, वसा एवं कार्बोहाइड्रेट की 79 ग्राम, 322 किलोजूल, 2 ग्राम, 0±09 ग्रा. व 17 ग्राम मात्रा होती है तथा आलू में कैल्शियम 12 मि. ग्रा., आयरन 0–78 मि.ग्रा., फॉस्फोरस 57 मि.ग्रा. व विटामिन सी 19–7 मि.ग्रा. होता है।

आलू के संभावित मूल्य वर्धित उत्पाद : भारत में आलू एक बहुत ही लोकप्रिय पारंपरिक मूल भोजन है। कई मूल्यवर्धित उत्पादों को भारतीय आहार में भी शामिल किया गया है। आलू की सब्जी, बटाटा वड़ा और समोसा उन में से एक है। आलू का प्रयोग फास्ट फूड आइटम जैसे कि आलू की चाट के रूप में एक प्रमुख रूप से किया जाता है। उत्तरी भारत में दम आलू व आलू का पराठा एक पसंदीदा आहार है। दक्षिण भारत में मसाला डोसा नामक व्यंजन पूरे भारत में बहुत उल्लेखनीय है। दक्षिण भारत में खास तौर पर तमिलनाडू में पूड़ी का सेवन मसालेदार आलू के साथ किया जाता है। अन्य पसंदीदा व्यंजन हैं आलू टिक्की और आलू का पकोड़ा। वड़ा पाव भारत में मुंबई और महाराष्ट्र के अन्य क्षेत्रों में एक लोकप्रिय शाकाहारी फास्ट फूड व्यंजन है। आलू पोस्तो (आलू और खसखस के साथ एक सब्जी) पूर्वी भारत, खासकर बंगाल में बहुत लोकप्रिय है। हालांकि आलू भारत का मूल निवासी नहीं है, लेकिन यह पूरे देश में खासतौर पर उत्तर भारतीय भोजन की तैयारी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। आलू के अन्य उत्पादों में फ्रेंच फ्राइज़, चिप्स और सनेक्स, निर्जलित आलू उत्पाद, आलू स्टार्च और अन्य आलू उत्पाद शामिल हैं।

मनुष्यों द्वारा खाने के अलावा आलू का उपयोग : आलू का उपयोग अल्कोहलयुक्त पेय जैसे वोडका, पोइटिन या अक्विविट का उपयोग करने के लिए किया जाता है। उनका उपयोग पशुओं के चारे के रूप में भी किया जाता है। पशुधन–श्रेणी के आलू जो बहुत छोटे आकर व धब्बे से युक्त होने की वजह से व जिन्हें मानव उपयोग के लिए बेचा नहीं जा सकता लेकिन चारे के उपयोग के लिए उपयुक्त माना जाता है, उन आलुओं को पशुओं के लिए चाट के रूप में इस्तेमाल करते हैं। उपयोग करने तक उन्हें डिब्बे में संग्रहीत किया जाता है। कुछ किसान आलुओं को कच्चा खिलाने के बजाय उन्हें भाप कर देना पसंद करते हैं। आलू के स्टार्च का उपयोग खाद्य उद्योग में सूप और सॉस के लिए थिकनेर व बाइंडर के रूप में, कपड़ा उद्योग में एक चिपकने वाले पदार्थ के रूप में और पेपर व बोर्ड बनाने में इसका प्रयोग किया जाता है। काफी कंपनियां प्लास्टिक उत्पादों में उपयोग के लिए अपशिष्ट आलू का इस्तेमाल पोलीलैक्टिक एसिड प्राप्त करने की संभावनाएं तलाश रही हैं। अन्य शोध परियोजनाएं बायोडिग्रेडेबल पैकेजिंग के आधार के रूप में आलू के स्टार्च का उपयोग करने के तरीकों को भी तलाश रही हैं। भारत में आलू की खाल को शहद के साथ लगाने से जले हुए को ठीक करने का उपचार किया जाता है। भारत में बर्न सेंटर ने उपचार करते समय जलने से बचाने के लिए आलू की पतली बाहरी त्वचा की परत का उपयोग किया है।

आलू का फसलोपरांत प्रबंधन : आलू में फसल के बाद के नुकसान का प्रबंधन करने के लिए कई चरणों का ध्यान रखना करना ज़रूरी है। कटाई से पहले का ऑपरेशन सही तरीके से करना व समय पर रसायन लगाकर फसल को रोग मुक्त किया जाना चाहिए। आलू की कटाई के बाद के प्रबंधन के लिए गुणात्मक और मात्रात्मक नुकसान को कम किया जाना चाहिए व उचित देखभाल के माध्यम से उपायों को अपनाना चाहिए। फसल की कटाई तथा खाद्य फसल को नुकसान से बचाने के लिए तैयार किए गए उपकरणों के साथ कटाई की जानी चाहिए। छंटाई और ग्रेडिंग समझदारी से की जानी चाहिए। भंडारण विशेष तापमान और आर्द्रता पर किया जाना चाहिए। अधिकतम आलू सीज़न के दौरान अंतराल से बचने के लिए विपणन उचित समय पर करना ज़रूरी है। प्रसंस्करण के लिए आलू के इस्तेमाल हेतु उनका पूर्व निर्धारण किया जाना चाहिए। आलू के उचित प्रबंधन के लिए इन उपरोक्त कदमों का ध्यान रखना आवश्यक है।

आलू के मूल्य संवर्धन से किसान सशक्तिकरण : किसानों को सशक्त बनाने के लिए उन आलू की किस्मों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है जो उत्पाद विकास को सबसे ज़्यादा बढ़ाने में मुख्य भूमिका निभाती हों। आलू कम लागत वाली सब्जी की फसल है, इस प्रकार मूल्यवर्धन को

(शेष पृष्ठ 26 पर)

[1]ला. ला. रा. पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।

पशुओं में रेबीज़ रोग : एक घातक बीमारी

✍ गौरी चंद्रात्रे, मनीश शर्मा एवं के. के. जाखड़
पशुचिकित्सा रोग विज्ञान विभाग
ला. ला. रा. पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

रेबीज़ एक भयानक व घातक रोग है जो विषाणु के कारण होता है। यह रोग मुख्यत: मांस खाने वाले पशुओं जैसे कि पागल कुत्ते, गीदड़, भेड़िये आदि में होता है। दूसरे पशुओं में यह रोग पागल कुत्ते, गीदड़, भेड़िये व नेवले के काटने से होता है। इस रोग को लेयासा व हाईड्रोफोबिया (hydrophobia–पानी का डर) के नाम से भी जाना जाता है। यह रोग मनुष्य के साथ–साथ सारे पशुओं में भी पाया जाता है। जैसे गाय, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़े, ऊंट एवं अन्य जीव भी इस रोग की चपेट में आकर मरते हैं। जिससे पशुपालकों में आर्थिक हानि होती है।

रेबीज़ का संक्रमण : पागल कुत्ते के काटने पर रोग के विषाणु पशु के शरीर में प्रवेश करते हैं और स्नायु तंत्र के द्वारा धीरे–धीरे मस्तिष्क में पहुँच जाते हैं तथा उसे प्रभावित करते हैं।

रेबीज़ के लक्षण :

कुत्तों में लक्षण

मूक अवस्था– कोने में बैठे रहना, लकवा हो जाना, मास्टर को न पहचानना व निर्देश न मानना, नीचे का जबड़ा लटकना व मुंह से लार टपकना तथा कुछ ही दिन के अंदर मृत्यु हो जाना।

उग्र अवस्था– चिड़चिड़ा हो जाना तथा लकड़ी, पत्थर ईंट आदि को काटने लगना। इधर–उधर दौड़ना। कुत्ता काटने को आने लगता है। मुंह से लार टपकने लगती है। पशु की मृत्यु हो जाती है। पीड़ित कुत्ते की खाली नज़र व न दिखाई देने वाली वस्तुओं पर बदली हुई आवाज़ में भौंकना।

अन्य पशुओं में रेबीज़ के लक्षण

1. पशुओं में उग्रता, पागलपन, लकवा तथा मृत्यु हो जाना।
2. पानी से डर का लक्षण नहीं होना।
3. गायों के मुंह से लार उत्पन्न होना।
4. पिछली टाँगें कमज़ोर होना।
5. घोड़े में पागलपन के साथ–साथ पेट दर्द होना।
6. गायें एवं भैंस लगातार रम्भाती हैं परन्तु आवाज़ बदल जाती है।
7. रोगी पशु दीवार एवं वृक्ष आदि से टक्कर मारने लगते हैं।
8. जंगली जानवर में भी इसी प्रकार के लक्षण दिखते हैं।

रोग से बचाव

1. कुत्ते के काटने पर तुरंत काटे गये स्थान पर साफ पानी डालें और 15–20 मिनट तक धोएं।
2. साबुन से घाव की सफाई की जानी चाहिए।
3. घाव पर रोगाणुरोधक (एंटीसेप्टिक) दवा लगाएं।
4. पालतू कुत्तों का रेबीज़ से बचाव के लिए प्रतिवर्ष टीका लगवाना चाहिए।
5. पालतू जानवर अगर दूसरे जानवर को काटता है तो पालतू जानवर की पशुचिकित्सक से तुरंत जांच करवानी चाहिए।
6. प्रभावित पशु व दूसरे काटने वाले पशुओं को दस दिन निगरानी में रखना चाहिए।
7. प्रभावित जानवर को दूसरे पशुओं से अलग रखना चाहिए।
8. दूध देने वाले पशुओं में रेबीज़ होने पर बीमारी के विषाणु दूध में आ सकते हैं इसलिए ऐसे दूध का प्रयोग न करें।

रोकथाम

1. कुत्ते व बिल्लियों का टीकाकरण करवाएँ।
2. पालतू पशुओं को आवारा कुत्तों से दूर रखें।
3. घर के बाहर गंदगी व खाना न छोड़ें इससे जंगली जानवर आकर्षित होते हैं।
4. यदि किसी जानवर में असामान्य लक्षण दिखते हैं तो पशुचिकित्सक विभाग को सूचित करें।
5. रेबीज़ रोग हो जाने पर उपचार असंभव है इसलिये इससे बचाव के लिए पूरी सावधानियां प्रयोग में लायें।

(पृष्ठ 20 का शेष)

12. गैस चूल्हे की पाईप पर खाने का सामान व घी लग जाता है जिस पर कीड़े–मकोड़े आ जाते हैं। पाईप को 15 दिन में एक बार बिना निकाले ऊपर से साबुन के पानी से धो दें व एक साल बाद पाईप अवश्य बदल दें।

इन विशेष बातों का ध्यान रखकर आप स्वयं व परिवार को रोगमुक्त स्वस्थ व खुशहाल रख सकते हैं।

(पृष्ठ 19 का शेष)

धीरे–धीरे खेल में बच्चों की संख्या को बढ़ाया जाये, जिससे बच्चा दूसरे बच्चों के साथ भी बोलना, बतलाना और अच्छे से व्यवहार करना सीख जायेगा।

- उनके साथ बिल्कुल प्यार से बातें करें, थोड़ा–सा धैर्य रखना सिखाएं। घर के अलावा अन्य लोगों से मिलने का मौका दें, बच्चों को तनाव मुक्त स्थानों जैसे कि पार्क में ले कर जायें, तथा उसके किसी भी प्रयत्न को प्रोत्साहित करना न भूलें।
- यदि बच्चा कोई एक व्यवहार बार–बार करता है तो उसे रोकने के लिए उस से कुछ ऐसी गतिविधियां कराई जाएं, जो उसे व्यस्त रखें ताकि वह व्यवहार दोहरा न सके, एक ही गतिविधि या व्यवहार को बार–बार न करने पर उसे तुरंत शाबाशी दें, और ध्यान खींचने वाली चीज़ों का इस्तेमाल करें।
- गुस्सा या अधिक चंचलता के लिए बच्चे को अपनी शक्ति को इस्तेमाल करने के लिए सही मार्ग दिखाएँ जैसे कि उसे व्यायाम करवाना, दौड़ना, तथा बाहरी खेलों में लगाएं, यदि परेशानी अधिक हो तो प्रशिक्षित, विशेष अध्यापक से सम्पर्क करें। प्रशिक्षण व परामर्श के द्वारा बच्चों को बहुत कुछ सिखाया जा सकता है।

पशुओं मे पेशाब के रुकने (यूरोलिथियासिस) की समस्या : कारण, उपचार व बचाव के उपाय

✍ प्रियंका[1], सतबीर शर्मा एवं प्रिया[2]
पशु शल्य चिकित्सा एवं रेडियोलोजी विभाग
ला. ला. रा. पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

मवेशी, भेड़ और बकरियों में पेशाब का रुकना आम बात है। यह छोटी आयु के जानवरों की एक महत्वपूर्ण बीमारी है लेकिन परिपक्व जानवरों में भी देखी जाती है। यह समस्या शरीर में पथरी (यूरोलिथ) बनने के कारण होती है। पथरी (यूरोलिथ) मूत्र पथ के भीतर कहीं भी पाई जा सकती हैं और पेशाब की रुकावट का कारण बनती है। यह अक्सर सर्दी के मौसम में होती है।

कारण :

1. यह मुख्य रूप से पोषण संबंधी बीमारी है।
2. पानी में उच्च खनिज पदार्थों जैसे मैग्नीशियम की अधिकता और आहार में कैल्शियम व फॉस्फोरस का सही अनुपात (2:1) में न होना।
3. पशु को राशन में अनाज (grain) की मात्रा ज़्यादा और चारा (roughage) कम देना।
4. सर्दी के मौसम में जानवर का कम पानी पीना।
5. यह समस्या ज़्यादातर नर में पाई जाती है, क्योंकि शारीरिक रूप से नर का मूत्रमार्ग 'S' आकृति का होने के कारण पथरी उस स्थान पर फंस जाती है और रुकावट का कारण बनती है।

लक्षण

1. यूरोलिथियासिस का प्रसार कम उम्र (3–4 महीने) के बछड़े, कटड़े व भेड़ के बच्चों में सबसे ज़्यादा होता है।
2. शुरूआती लक्षण : पशु का बार–बार और कम मात्रा में पेशाब का करना।
3. पशु बेचैन हो जाता है और बार–बार पेट पर पैर मारता है।
4. पशु पेशाब करते समय काफी देर तक झुका रहता है व पूंछ को ऊपर उठा के रखता है।
5. आंशिक मूत्रमार्ग बाधा से कई बार पता लगाने योग्य खनिज पूर्ववर्त्ती ग्रंथि के बालों पर जमा हो जाते हैं जिस से पेशाब की रुकावट का कारण पता लगाया जा सकता है।
6. पेशाब का पूरी तरह से रुक जाने पर मूत्राशय यानी पेशाब की थैली फट जाती है और पशु का पेट सामान्य से काफी फूला हुआ दिखता है।
7. शरीर में पानी की कमी से आँखों का अंदर धंसना।
8. पूर्ण मूत्रमार्ग बाधा से मूत्रमार्ग छिद्रण, हाइड्रोनफ्रोसिस या मूत्राशय फटने की सम्भावना बढ़ जाती है।
9. मूत्रमार्ग छिद्रण से पेट की त्वचा गल जाती है और समय पर इलाज न होने से पशु की यूरिमिया (uremia) से मौत भी हो सकती है।

उपचार

1. शुरुआती लक्षण में एंटीस्पाज्मोडिक्स और ट्रांक्विलाइज़र का उपयोग करके रूढ़िवादी थेरेपी से पशु को लाभ होता है। अधिकांश जानवरों में राहत आमतौर पर अस्थायी (<2 दिन) होती है, क्योंकि एक से अधिक पथरी की उपस्थिति के कारण पेशाब की रुकावट दोबारा हो जाती है।
2. कई मामलों में, बाधा का शल्य चिकित्सा प्रबंधन व तरल पदार्थ और इलेक्ट्रोलाइट असंतुलन को सुधारना आवश्यक होता है।
3. ट्यूब सिस्टोसटोमी आपरेशन से पशु को तुरन्त आराम मिलता है। यह बहुत ही आम, सफल और प्रचलित तकनीक है जो कि सरकारी अस्पताल में कम औज़ारों की सहायता से की जा सकती है।
4. अमोनियम क्लोराइड (नोशादर) का उपयोग 7–10 ग्राम प्रति पशु प्रति दिन हर 40–50 किलोग्राम तक के बच्चे के लिए किया जा सकता है जो खनिज घुलनशीलता को बढ़ाता है।

बचाव

1. मूत्रमार्ग पथरी के गठन को कम करने के लिए कुल राशन के 2% तक सोडियम क्लोराइड (नमक) मिलाना चाहिए। यह पानी का सेवन और पेशाब की वृद्धि करता है।
2. राशन में हरे चारे की मात्रा को बढ़ाकर और खल की मात्रा को कम कर देना चाहिए।
3. पशुओं के लिए हर समय उचित पानी की व्यवस्था होनी चाहिए।
4. शुरुआती लक्षण दिखने पर तत्काल पशु–चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए क्योंकि इलाज में देरी से पशु की मौत भी हो सकती है।



पेशाब की थैली फटने से पेट में फुलावट होना | पथरी का preputial बालो पर जमा होना

[1]पशु चिकित्सक, पशु पालन एवं डेयरी विभाग, हरियाणा।
[2]पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग, गुरू अंगद देव पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, लुधियाना।

जन संचार माध्यमों का बदलता स्वरूप

✍ प्रदीप कुमार चहल, भरत सिंह घणघस एवं राजेश कुमार[1]
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मनुष्य अपने मन के भावों को दूसरों तक पहुंचाने के लिए अनेक साधनों का प्रयोग आदिकाल से करता आया है। इन साधनों में समय के साथ-साथ अनेक परिवर्तन भी आते रहे हैं। पुराने संचार माध्यमों के स्थान पर विज्ञान और तकनीकी में हो रही सतत प्रगति का प्रभाव जन संचार माध्यमों पर भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इन संचार माध्यमों को हम दो भागों में बांट सकते हैं 1. लोक माध्यम; एवं 2. आधुनिक तकनीक माध्यम।

इससे पहले कि हम ज्ञान बढाएं यह जानना ज़रूरी है कि लोक क्या है लोक माध्यम क्या है और लोक माध्यमों का विकास किस प्रकार हुआ तथा जन संचार की आधुनिक तकनीक क्या है?

लोक शब्द का अर्थ साधारणत: जन सामान्य या आम आदमी होता है अंग्रेज़ी के शब्द फोक का हिन्दी अनुवाद लोक के रूप में स्वीकृत कर लिया गया है। लोकशब्द का प्रयोग इहलोक, परलोक, त्रिलोक आदि के अर्थ में भी किया जाता है। जहां तक लोक माध्यम की परिभाषा का प्रश्न है संचार का वह माध्यम जिसकी पहुंच आम जनमानस तक हो उसे लोक माध्यम कहते हैं। वैसे माध्यम शब्द को अनेक अर्थों में प्रयोग किया जाता है परन्तु यहां हम इसका अर्थ लोगों तक सूचना पहुंचाने या मनोरंजन के पारम्परिक साधनों की जानकारी प्राप्त करने के साधन के रूप में लेते हैं। डा. त्रिलोकचन्द पांडेय के अनुसार लोकमाध्यम न केवल संवेदनाओं, जीवन पद्धतियों और जीवन दर्शन की झलक दिखलाते हैं अपितु साथ ही जनमानस को आवश्यक निर्देश देते हैं तथा प्रेरणा स्त्रोत भी होते हैं।

यदि हम इस विषय पर गौर करें कि लोक माध्यमों का विकास किस प्रकार हुआ तो यह कहना उचित रहेगा कि लोक माध्यमों का विकास एक क्रमिक प्रक्रिया है। ये लोक माध्यम न केवल लोगों के समूह को सूचना देने में सफल रहे हैं वास्तव में ये लोगों के मन, कर्म और वचन को भी प्रभावित करते रहे हैं। यदि हरियाणा के संदर्भ में बात करें तो सांग (स्वाँग), रामलीला, रासलीला, भजन, उपदेश, तथा रागनी प्रतियोगिताएं जन संचार के प्रमुख लोक माध्यम रहे हैं जिनमें समयानुसार परिवर्तन के साथ वर्तमान में भी प्रचलित हैं। सांग के माध्यम से समाज में दया, क्षमा, दानशीलता, करुणा, उदारता, भक्ति, वीरता, तपस्या, कला तथा प्रेम इत्यादि दर्शकों को मिलते हैं। सांग में जन संचार के सभी तत्व मौजूद रहते हैं।

रामलीला के माध्यम से भगवान राम के त्याग, तपस्या, वीरता व न्यायप्रियता का परिचय तथा असत्य व अहंकार को नष्ट करने की शिक्षा प्राप्त होती है। रासलीला के माध्यम से अर्जुन का मोहभंग कर कर्मयोग का संदेश तथा धर्म की रक्षा हेतु सर्वस्व अर्पण कर देने की प्रेरणा मिलती रही है। लोक नृत्य भी जन संचार का सशक्त माध्यम रहे हैं खोड़िया, लहुर, बोकड़ा, खेड्डा, घोड़ी बाजा, घूँस्सा नृत्य आदि महिलाओं के परम्परागत मनोरंजन के साधन रहे हैं। इसी प्रकार रीछ का तमाशा, बन्दर-बन्दरिया का तमाशा, नट व बादी के करतब भण्डेलों बहूरूपियों का किन्नरों के प्रदर्शन भी प्रचलित रहे हैं।

प्रतीकों को भी जन संचार के माध्यम के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा है। जैसे स्वास्तिक या सतिए को धार्मिक कार्यों के प्रारंभ में अंकित करना वास्तव में ब्रह्मा जी के सत्य, अंहिसा, तप, दया तथा सभी दिशाओं की समृद्धि एवं विजय का प्रतीक माना जाता है। दीवारों पर बनाए गए थापे विवाह, पुत्रजन्म, स्वास्थ्य रक्षा आदि के प्रतीक होते हैं जबकि बैठक की छत में लगे कड़े में लटकी फूलझड़ी घर में नववधू के आगमन तथा मुख्यद्वार पर बंधी नीम या पीपल के पत्तों की बन्दनवार पुत्र जन्म या शुभ कार्य के सम्पन्न होने को दर्शाती है।

मुख्यद्वार की चौखट के साथ टंगा लकड़ी की अर्ध-गोलाकार तख्ती में हाथी, घोड़े गाय आदि की आकृतियुक्त तोरण लड़की के विवाह की सूचना देता है।

संस्कारों में भी जन संचार करने के कई तरीके प्रयोग में लाए जाते हैं जैसे पुरुष की मृत्यु हो जाने पर खाट (चारपाई) की पाँत ऊपर की तरफ करके खड़ी कर देना, पूरा गोस्सा (उपला) सुलगाकर रखना, स्त्री की मृत्यु हो जाने पर मटका मूंधा (उल्टा) रखना या मटके के ढक्कन में आटा रखकर उसमें एक रोटी की लोई बनाकर रखना। पहनावे में भी जनसंचार होता है : सफेद कोट - डाक्टर, काला कोट - वकील, फौजी की वर्दी व कंधे पर स्टार, पुलिस की वर्दी व स्टार, पायलेट, एयर होस्टस, नर्स, महिलाओं के गले का मंगलसूत्र, बुरका और टोपी विभिन्न देशों के झण्डे, धर्मों व सम्प्रदायों के झण्डे तथा अलग-अलग देवी-देवताओं के झण्डे हरियाणा में तो अब प्रत्येक राजनैतिक पार्टी के नेताओं व कार्यकर्त्ताओं ने पगड़ी के रंग को ही अपना पहचान (ट्रेड मार्क) बना लिया है। इसी प्रकार रंगों में भी जनसंचार होता है जैसे सड़क पर हरी बत्ती, पीली बत्ती व लाल बत्ती, तथा रेल के लिए हरी झण्डी व लाल झण्डी का विशेष महत्व है तो आवाज़ या वाद्य यन्त्रों की आवाज़ भी जन संचार करती हैं। मन्दिर का शंख, एम्बूलैंस का सायरन, फायर ब्रिगेड की घन्टी, रेल की सीटी, गाड़ी का हॉर्न, विवाह में शहनाई, इत्यादि।

बीसवीं शताब्दी में 'रेडियो व दूरदर्शन' संचार के सबसे महत्वपूर्ण साधन रहे तथा भारत में हरित क्रान्ति और कृषि तकनीक के प्रचार प्रसार में रेडियो ने अहम भूमिका निभाई। रेडियो कम से कम समय में कम से कम खर्च पर अधिक से अधिक जानकारी अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाने में सफलता प्राप्त करते हुए अपने आदर्श वाक्य बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय को चरितार्थ करता रहा है तथा स्थानीय बोलियों में इसके प्रसारण अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं। दूरदर्शन भारतीय संस्कृति खेल, कृषि तथा संगीत को जन-जन तक दृश्यों के माध्यम से पहुंचाता रहा है। आकाशवाणी व दूरदर्शन की विश्वसनीयता आज भी नि:संदेह है। समाचार पत्र भी सूचना प्रदान करने का सशक्त और विश्वसनीय माध्यम हैं।

(शेष पृष्ठ 27 पर)

[1]डी.टी.पी. ऑपरेटर, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

समाज में मीडिया एवं सोशल मीडिया : सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव

✍ जतेश काठपालिया, सुभाष चन्द्र एवं रश्मि त्यागी
समाज शास्त्र विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मीडिया आज के दौर में ज़िन्दगी का सबसे ज़रूरी हिस्सा बन गया है। बिना मीडिया के मानव सभ्यता का विकास सम्भव नहीं है, ऐसा माना जाने लगा है, इसमें सोशल मीडिया सबसे प्रमुख बन गया है। आज समाज का हर तबका इससे सीधे जुड़ा है।

आज़ादी से पहले अंग्रेज़ी शासन के नियन्त्रण में रेडिया प्रसारण का प्रारम्भ हुआ। आज़ादी मिलने के बाद मीडिया का एक नया दौर शुरू हुआ। यह दौर लगभग अस्सी के दशक तक चला। इस दौर में रेडियो के साथ-साथ टेलीविज़न, अखबार, पत्र-पत्रिकाएं बड़े पैमाने पर उभर कर आए। आज़ादी के बाद राष्ट्रीय स्तर पर एक राष्ट्रवाद की सहमति बनाने का लक्ष्य मीडिया के केन्द्र में था। मीडिया कहीं न कहीं लोगों में विश्वास का संचार करने में कामयाब रहा। अखबार, पत्रिकाओं में प्रकाशित विचार और समाचार को सत्य, निष्पक्ष और स्वीकार्य के रूप में देखा जाता था। इसी तरह रेडियो और दूरदर्शन (प्राइवेट चैनलों का उदय नहीं हुआ था) से प्रसारित समाचार और विचार को भी सच और उपयोगी मानकर स्वीकार किया जाता था। यहां तक कि कानून, पंचायत, न्याय और साहित्य के क्षेत्र में इसे प्रमाणिक और तथ्यपरक माना गया। इस समय तक रेडियो और टी. वी. सरकार के हाथ में और मुद्रित मीडिया निजी क्षेत्र में था। मीडिया का यह दौर कई मायनों में जीवन, समाज, संस्कृति, राजनीति, विज्ञान और शिक्षा को नई दिशा देने में रहा।

नब्बे के दशक में मीडिया के कई स्तरों पर बदलाव हुए। इन बदलावों के रूपों और स्तरों में बाज़ारीकरण को स्वीकारा गया और टी.वी. और रेडियो पर सरकारी नियंत्रण ढीला पड़ा। निजी क्षेत्र में, चौबीसों घण्टे चलने वाले चैनलों और एफ.एम. रेडियो चैनलों का सारे देश में बहुत बड़े स्तर पर विस्तार हुआ। उसी का प्रतिफल है कि आज देश में भारतीय भाषाओं में चलने वाले टी.वी. चैनलों ने अंग्रेज़ी चैनलों को पछाड़ दिया। करोड़ों लोग भारतीय भाषाओं में चलने वाले इन चैनलों से किसी न किसी रूप से जुड़े हुए हैं, इसे हमें मीडिया में आई नवक्रांति का दौर कह सकते हैं। इसे मीडिया का बहुबाज़ारीकरण भी कह सकते हैं। नई प्रौद्योगिकी के प्रयोग ने सोशल मीडिया की ताकत अजेय बना दी है। मीडिया का पहली बार इतना विशाल बाज़ार खड़ा हुआ है जिसने राजसत्ता और जनसत्ता दोनों को अपने नियंत्रण में ले लिया है। स्वदेशी और विदेशी, निजी पूंजी को खुले मन से शासन ने मीडिया में प्रवेश की अनुमति दी। इससे मीडिया पर निजी नियंत्रण का और भी विस्तार हुआ। शिक्षा, स्वास्थ्य, योग, मज़हब, रोज़गार, मनोरंजन, समाचार, विचार और विज्ञान को इस मीडिया ने आम जन तक अपनी पहुंच बनाने में बहुत मदद की। 'उपभोक्ता-क्रांति' के कारण विज्ञापन से होने वाली आमदनी कई गुणा बढ़ गई। प्रौद्योगिकी और उद्यमशीलता की दृष्टि से देखने पर हम ये पाते हैं कि प्रतिभा का ऐसा उपयोग सोशल मीडिया के कारण पहली बार किया गया। मीडिया का विज्ञापनी संस्कृति का यह दौर कई तरह से सामाजिक जीवन में असरकारी साबित हुआ।

इंटरनेट : भारत में 1995 में इंटरनेट का गांव, कस्बे और शहरों में बहुत तेज़ी के साथ विस्तार हुआ है। नई पढ़ी-लिखी पीढ़ी ने इसे हाथों-हाथ लिया है। जिस जानकारी, मनोरंजन, जीवन और मस्ती के स्तर की शायद कल्पना भी नहीं की जाती थी, उसे इंटरनेट के आते ही बहुत ही सहजता से हासिल हो गया है। इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के अन्त तक बहुत बड़ी संख्या में लोगों के निजी और व्यावसायिक जीवन का एक अहम् हिस्सा नेट के माध्यम संसाधित होने लगा। अब तो ऐसा लगता है कि बिना नेट के समाज के किसी भी वर्ग की ज़िन्दगी आधी अधूरी है। पूरी दुनिया से जुड़ जाने का सुख नई पीढ़ी के लिए किसी चमत्कार से कम नहीं है। सम्पूर्ण सोशल मीडिया एक टच-स्क्रीन पर बहुत कम व्यय करके प्राप्त कर लेना, नई पीढ़ी के लिए किसी स्वप्न के साकार होने की भांति है। आज नेट की सहज उपलब्धता मोबाईल फोन पर होने से दुनिया की कोई भी जानकारी, आविष्कार, खोज, शोध, परीक्षण, रोज़गार, साहित्य, मनोरंजन, खेल, संगीत, गीत, समाचार, लेख, बातचीत, संदेश और संवाद एक पल के मोबाईल टच-स्क्रीन पर अंगुलियों का स्पर्श पाते ही सामने उपलब्ध हो जाता है। यह उपभोक्ता के लिए जादू की भांति है जो तत्काल ही सब कुछ उपलब्ध करवा देता है।

टी.वी. एवं डी.टी.एच. : टी.वी. ने अपने विज्ञापनी संस्कृति के बल पर आम आदमी को अपने वश में कर लिया है। केबल और डी.टी.एच. सेवा ने गांवों तक बहुत सहजता से टी.वी. स्क्रीन पर कई बड़े चर्चित चैनलों को उपलब्ध करवा दिया है। मनोरंजन, खेल, संगीत, सीरियल, खोज, योग, धर्म, आध्यात्म, राजनीति की हर पल की धड़कन, विज्ञान के आविष्कार और अन्य अनेक क्षेत्रों की सहज जानकारी केबल और डी.टी.एच. सेवा के माध्यम से, टी.वी. के माध्यम से प्रत्येक घर में उपलब्ध है। हर पल की खबर, हर दिन के खेल, संगीत और खेती-किसानी जैसी अनेक जानकारियां टी.वी. के माध्यम से आमजन को सुलभ हैं।

सकारात्मक पक्ष : मीडिया के सकारात्मक पक्ष की बात करें तो पाते हैं कि स्वास्थ्य, शिक्षा, रोज़गार, बाज़ार, व्यापार और खेतीबाड़ी जैसे कार्यों में भी मीडिया की पहुंच गहरी हो गई है। बेहतर सेहत के देशी-विदेशी नुस्खे, घातक बीमारियों के सहज ईलाज और गुमशुदा की खोज, वर-वधू खोजने से लेकर भविष्यफल और वास्तुशास्त्र की जानकारी सोशल मीडिया के माध्यम से जितनी सुलभता से आज प्राप्त हो रही है, वैसी कभी नहीं हुई। यदि हम जीवन, परिवार और समाज की बेहतरी के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करें, तो अनेक लाभ घर बैठे भी प्राप्त कर सकते हैं। कृषि, बागवानी, उद्योग-धन्धे, बेहतर शिक्षा, बेहतर स्वास्थ्य, सुगम यात्रा, कानूनी जानकारी, अनेक समस्याओं के निदान, प्राकृतिक आपदा एवं

समस्त संसार के एक-एक कण और पल की स्थिति की जानकारी आज सोशल मीडिया के माध्यम से उपलब्ध कराई जाती है। पुस्तकों का स्थान धीरे-धीरे वेबसाईट ने ले लिया है। इन्हें डाउनलोड करके इनका बेहतर उपयोग किया जा सकता है।

सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र पर नकारात्मक प्रभाव : मीडिया के प्रभाव में आने से हमारे युवा विशेषकर गांव के, अपने गांव की मौलिकता, नूतनता और उत्तमता खोने लगे हैं। भारतीय संस्कृति, शिक्षा, स्वास्थ्य, भाषा, विज्ञान और अध्यात्म सभी कुछ विदेशी प्रभाव से विकृत होते जा रहे हैं।

ज़रूरी और गैर ज़रूरी किसी भी बात को सोशल मीडिया पर शेयर करने से नई पीढ़ी नहीं हिचकिचाती। युवा अधिकतर समय मित्रों के साथ बिताने में मशगूल दिखाई देते हैं। इससे उनके शारीरिक, मानसिक, और बौद्धिक विकास पर बुरा असर पड़ रहा है।

सोशल मीडिया के माध्यम से अश्लीलता, खुली व अनजान दोस्ती युवा पीढ़ी को अपराध की तरफ खींच रही है। इस तरफ गौर करने की आवश्यकता है।

रात-दिन नेट पर लगे रहने के कारण आंख, मस्तिष्क और अन्य अंगों पर बुरा असर पड़ रहा है।

कई बार नई जानकारियों के नाम पर निजी जानकारियां व फोटो और वीडियो मुफ्त में हासिल करके युवा कई प्रकार की समस्याओं का शिकार बन रहा है। बैंक खातों से पैसा निकल जाना इस तरह की आम समस्या है।

निजी जानकारी जैसे कि पूरा परिवार बाहर घूमने गया है, सोशल मीडिया पर डालने से चोरी, डकैती जैसी समस्याओं को न्योता देता है।

आतंकवाद, सांप्रदायिकता, नफरत, हिंसा, नई बीमारियों की चपेट में आने का डर, शराबखोरी, धूम्रपान, गन्दी लत और न जाने कितनी समस्याएं सोशल मीडिया के कारण तेज़ी से बढ़ रही हैं।

तो हमें ज़रूरत है सोशल मीडिया के अच्छे-बुरे प्रयोग पर गौर करने की। हमें मीडिया के नकारात्मक पक्ष को ध्यान में रखते हुए केवल सकारात्मक पक्ष के प्रयोग को बढ़ावा देना चाहिए। एक संतुलित जीवन, परिवार, समाज, संस्कृति और देश के लिए सोशल मीडिया के दोनों पक्षों पर हमें खुले मन से विचार करना चाहिए।

(पृष्ठ 21 का शेष)

शामिल करने से फसल के बाद के नुकसान (जो कि आलू में 25 प्रतिशत है) को कम किया जा सकता है। इस प्रकार मूल्यवर्धन के माध्यम से आलू के उत्पाद बनाकर और आलू की विशिष्ट किस्मों को उगाकर बढ़े हुए राजस्व से किसानों को लाभान्वित किया जा सकता है। इस तरह आलू में मूल्य संवर्धन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

सर्दी के मौसम में मुर्गीपालन : कैसे करें

✍ प्रियंका[1], सतबीर शर्मा एवं औम प्रकाश[1]
पशु शल्य चिकित्सा एवं रेडियालॉजी विभाग
ला. ला. रा. पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

सर्दी के मौसम में चूज़े आने से पहले विशेष तौर पर ध्यान रखने वाली बातें:

1. सबसे पहले सर्दी का मौसम आने से पूर्व पुराना बुरादा, पुराना आहार, पुराने बोरे और पुराने खराब पर्दे बदल देने चाहिएं।
2. फंगस का प्रवेश मुर्गीदाना गोदाम में रोकने के लिए कॉपर सल्फेट युक्त चूने के घोल से गोदाम की पुताई कर देनी चाहिए।
3. मुर्गी के खाने और पीने के बर्तनों को हर रोज़ विराक्लीन दवा से धोना चाहिए, यह दवाई संक्रामक रोगों से बचाती है।
4. सर्दी के मौसम में मुर्गीपालन करते समय चूज़ों की डिलीवरी सुबह के समय कराएँ, शाम या रात को बिलकुल नहीं कराएँ क्योंकि शाम के समय ठण्ड बढ़ती चली जाती है।
5. चूज़ों को ठंड से बचाने के लिए गैस ब्रूडर, बांस के टोकने के ब्रूडर, चद्दर के ब्रूडर, पैट्रोलियम गैस, सिगड़ी, कोयला, लकड़ी के गिट्टे, हीटर इत्यादि की तैयारी चूज़े आने के पूर्व ही कर लेनी चाहिए।
6. शेड के परदे चूज़ों के आने के 24 घंटे पहले से ही ढक कर रखें। चूज़ों के आने के कम से कम 2 से 4 घंटे पहले ब्रूडर चालू किया हुआ होना चाहिए।
7. जनवरी माह में अत्यधिक ठंड पड़ती है अत: इस माह में चूज़ा घर का तापमान 95 डिग्री फेरनहाईट होना अतिआवश्यक है। फिर दूसरे सप्ताह से चौथे सप्ताह तक 5-5 डिग्री तापमान कम करते हुए 85 डिग्री फारेनहाइट तक कर देना चाहिए।
8. मुर्गी आवास को गरम रखने के लिए मुर्गी आवास के ऊपर प्लास्टिक, बोरे, फट्टी आदि बिछा देना चाहिए और साथ-साथ एक अंगीठी या स्टोव मुर्गीघर में जला देना चाहिए, ताकि वे ठंड के प्रभाव से बच सकें। रात में जाली का लगभग 2 फीट नीचे का हिस्सा पर्दों से ढक दें।
9. तापमान को नियंत्रित करने के लिए दोहरे पर्दों का इस्तेमाल कर सकते हैं, परन्तु वेंटिलेशन का ध्यान रखना ज़रूरी है, नहीं तो पेट में पानी भरने की समस्या आ सकती है।
10. सही नमी (Humidity)-नमी लगभग 60 के आसपास होनी चाहिए।
11. ठण्ड के मौसम में सुबह के वक्त मुर्गीघर के अन्दर कम से कम दो घंटों तक धूप का प्रवेश वांछनीय है। अत: मुर्गीघर का निर्माण लम्बाई में पूर्व से पश्चिम की तरफ करना चाहिए।
12. सर्दी के मौसम में मुर्गियों के पास मुर्गीदाना हर समय उपलब्ध रहना चाहिए क्योंकि शीतकालीन मौसम में मुर्गीदाना की खपत बढ़ जाती है और यदि मुर्गीदाना की खपत बढ़ नहीं रही है तो इसका मतलब है कि मुर्गियों में किसी बीमारी का प्रकोप चल रहा है।

[1]पशु पालन एवं डेयरी विभाग, हरियाणा।

13. सर्दी में कम से कम 6 इंच की बिछाली मुर्गीघर के फर्श पर डालें, यह बिछाली मुर्गियों को फर्श की ठंड से बचाती है और तापमान को नियंत्रित किये रहती है।
14. मुर्गियों को बार-बार शुद्ध और ताज़ा पानी देते रहना चाहिए। पानी को शुद्ध और विषाणुरहित बनाने के लिए इसमें ऐक्वाक्योर मिलाना चाहिए।
15. वायरल बीमारियों से बचाने के लिए वैक्सीनेशन ज़रूर करें।

शुरुआत के कुछ दिन पोल्ट्री फार्म पर ही गुज़ारें ताकि तापमान या अन्य किसी गड़बड़ी को तुरंत सही किया जा सके। अत्यधिक सर्दी में थोड़ी सी लापरवाही से चूज़ों को वायरल हो जाता है तथा उनकी मौत हो जाती है। मुर्गियों को बीमारी से बचाने के लिए पशु-चिकित्सक की सलाह भी ली जा सकती है।

(पृष्ठ 24 का शेष)

संचार माध्यमों में बदलाव

पारम्परिक माध्यमों में से कुछ तो अपने-अपने कारणों से विलुप्ति के कगार पर हैं और कुछ अभी भी अपनी सार्थकता बनाए हुए हैं जिनमें समाचार पत्र, रेडियो, दूरदर्शन आदि शामिल हैं। इक्कीसवीं शताब्दी में मोबाइल फोन ने एक नई सूचना तकनीक क्रान्ति ला दी जिससे आधुनिक संचार तकनीक अत्यन्त सुलभ, सस्ती व तेज़ी से सूचना प्रदान करने में सक्षम हो गई है। इसका नाम सोशल मीडिया है जिसमें एस.एम.एस., व्हाटसएप, फेसबुक, यू-ट्यूब, फिल्में, लघु फिल्में, डाक्यूमैन्ट्रीज तथा रेडियो और टी. वी. पर प्रसारित होने वाले विज्ञापन, प्रदर्शनी किसान मेले, किसान दिवस आदि हैं।

आज लगभग 80 प्रतिशत किसानों के पास मोबाइल फोन उपलब्ध है तथा वे उनका लाभ कृषि की आधुनिकतम जानकारी प्राप्त करने, मौसम का हाल, मण्डियों के भाव जानने तथा खाद-बीज, दवाइयों के बारे में तुरन्त जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। संचार माध्यम कोई भी हो वह केवल सूचना पहुंचाने का साधन होता है। साधक तो वह संदेश होता है जो हमारे कार्य में बदलाव लाता है या नया कार्य करने की प्रेरणा देता है। अत: अब किसानों को न केवल सामाजिक या राजनैतिक मुद्दों पर सोशल मिडिया का प्रयोग करना चाहिए बल्कि कृषि, पशुपालन व अन्य सहायक व्यवसायों के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करके उसे प्रयोग में लाना चाहिए। जब हमने पुराने खाद बीज व दवाइयों में बदलाव कर लिया तो नए संचार माध्यमों का भी लाभ उठाना चाहिए ताकि समाज के अन्य वर्गों के साथ किसान भी कदम से कदम मिलाकर चल सके। कुछ युवा किसान तो गाय और भैंसों की बिक्री का कारोबार यू-ट्यूब के माध्यम से करके अच्छा पैसा कमा रहे हैं जो बदलते संचार माध्यमों का लाभ उठाने की एक अच्छी पहल है।

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951(ई) के तहत एक सूचना जारी की है कि 12 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स+फंजीसाइड्स+हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 8 अगस्त 2018 से ही बन्द कर दिया जाए। छः कीटनाशकों का प्रयोग 31 दिसम्बर, 2018 से बन्द कर दिया जाए। इनकी सूची इस प्रकार है:

8 अगस्त, 2018 से प्रतिबंधित कीटनाशक

1. **बेनोमाईल** (Benomyl)
2. **कार्बाराइल** (Carbaryl)
3. **डाय जिनॉन** (Diazinon)
4. **फेनारिमोल** (Fenarimol)
5. **फेन्थियॉन** (Fenthion)
6. **लिन्यूरॉन** (Linuron)
7. **मैथॉक्सी इथाइल मरकरी क्लोराइड** (Methoxy Ethyl Mercury Chloride)
8. **मिथाइल पैराथियॉन** (Methyl Parathion)
9. **सोडियम सायनाइड** (Sodium Cyanide)
10. **थियोमेटॉन** (Thiometon)
11. **ट्रायडमॉर्फ** (Tridemorph)
12. **ट्राइफ्लूरालिन** (Trifluralin)

31 दिसम्बर, 2020 से प्रतिबंधित होने वाले कीटनाशक

1. **एलाक्लोर** (Alachlor)
2. **डाइक्लोर्वास** (Dichlorvos)
3. **फोरेट** (Phorate)
4. **फास्फोमिडान** (Phosphamidon)
5. **ट्राइज़ोफॉस** (Triazophos)
6. **ट्राइक्लोर्फोन** (Trichlorfon)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

Integrated Farming System (IFS) – Need of an Hour

✍ **Anil Kumar Malik[1], Babu Lal Dhayal and Lokesh Yadav**
Directorate of Extension Education
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

In recent years, food-livelihood-water security as well as natural resources conservation and environment protection have emerged as major issues worldwide. Developing countries are struggling to deal with these issues and also have to contend with the dual burden of climate change and globalization. It has been accepted by everyone across the globe that sustainable development is the only way to promote rational utilization of resources and environmental protection without hampering economic growth. Developing countries around the world are promoting sustainable development through sustainable agricultural practices, which will help them in addressing socio-economic as well as environmental issues simultaneously. Within the broad concept of sustainable agriculture "Integrated Farming Systems" hold special position as in this system nothing is wasted, the by-product of one system becomes the input for other. It is an integrated approach to farming as compared to existing mono-culture approaches. It refers to agricultural systems that integrate livestock and crop production. Moreover, the system help poor small farmers, who have very small land holding for crop production and a few heads of livestock to diversify farm production, increase cash income, improve quality and quantity of food produced and exploitation of unutilized resources.

What is Integrated Farming System ?

Integrated Farming (IF) is a whole farm management system which aims to deliver more sustainable agriculture. Integrated farming systems has revolutionized conventional farming of livestock, aquaculture, horticulture, agro-industry and allied activities. It is sometimes called as Integrated Biosystems or Integrated Agriculture.

Concept of IFS : Basic concept behind IFS is that 'there is no waste' and 'waste is only a misplaced resource.' which become valuable material for another product.

Why IFS is needed ?

The need for integrated farming system in the present scenario is mainly due to high cost of farm inputs, fluctuation in the market price of farm produce, risk in crop harvest due to climatic vagaries and biotic factors. Environmental degradation, depletion in soil fertility & productivity, unstable income of the farmer, fragmentation of holdings and low standard of living add to the intensity of the problem.

Specific Objectives:

1. To integrate different production systems like dairy, poultry, livestock, fishery, horticulture, sericulture, apiculture, etc. with agricultural crops production as the base.
2. To increase farm resource use efficiency (land, labour and production/by- products) so as to increase farm income and gainful employment opportunity.
3. To promote multi-cropping, for multi-layered crops of economic value so as to sustain land productivity.
4. To maintain environmental quality and ecological stability.

Components of IFS:

In the integrated farming system, it is always emphasized to combine cropping with other enterprises/activities, many enterprises are available and these includes cattle maintenance sheep or goat rearing, poultry, piggery, rabbit rearing, bee keeping, horticulture, sericulture, etc. Any one or more can be combined with the cropping.

Benefits or Advantages :

1. **Productivity :** IFS provides an opportunity to increase economic yield per unit area per unit time by virtue of intensification of crop and allied enterprises.
2. **Profitability :** Use waste material of one component at the least cost. Thus reduction of cost of production and form the linkage of utilization of waste material, elimination of middleman interference in most input used. Working out net profit B/C ratio is increased.
3. **Potentiality or Sustainability :** Organic supplementation through effective utilization of byproducts of linked component is done thus providing an opportunity to sustain the potentiality of production base for much longer periods.
4. **Balanced Food :** We link components of varied nature enabling to produce different sources of nutrition.
5. **Environmental Safety :** In IFFS waste materials are effectively recycled by linking appropriate components, thus minimize environment pollution.
6. **Recycling :** Effective recycling of waste material in IFFS.
7. **Income Rounds the year :** Due to interaction of enterprises with crops, eggs, milk, mushroom, honey, cocoons silkworm, provides flow of money to the farmer round the year.
8. **Adoption of New Technology :** Resources farmer (big farmer) fully utilize technology. IFS farmers, linkage of dairy / mushroom / sericulture / vegetable. Money flow round the year gives an inducement to the small/ original farmers to go for the adoption technologies.
9. **Saving Energy :** To identify an alternative source to reduce our dependence on fossil energy source within short time. Effective recycling technique the organic wastes available in the system can be utilized to generate biogas. Energy crisis can be postponed to the later period.
10. **Meeting Fodder crisis :** Every piece of land area is

(Contd. on page 30)

[1]SRF, Directorate of Extension Education, CCSHAU, Hisar

Quality Improvement in Fruit Crops

✍ **Surender Singh, Mukesh Kumar[1] and R.S. Saini[2]**
SNIATTE
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Quality of fruits refers to their desirable colour, appearance, organoleptic taste, flavor, texture, nutritive and medicinal value and other beneficial biochemical composition such as presence of sufficient vitamins, minerals, organic acids, sugars, enzymes, etc. in fruits. Quality also refers to absence of pesticidal residues on fruit skin, freedom from infection causing microorganisms and absence of diseased/rotten fruit parts. Basically fruit quality is a genetic character of particular variety which can be expressed by adopting the improved practices of fruit cultivation.

Following points should be kept in mind for producing better quality fruits :

Varieties : Fruits of best recommended varieties are of good quality with higher yields. It is not proper to grow seedling trees. The plant material must be vegetatively propagated from healthy trees bearing good quality fruits. Recommended varieties of different fruit species may be practiced for better quality and higher yield.

Irrigation : Commonly used method of irrigation by flooding is not ideal for fruit crops. Tube-well irrigations should be light and more frequent. Sometimes canal is out of schedule and water is not available for longer periods resulting into prolonged draught which may cause drop of flowers and fruits. The remaining fruits are undersized and poor in quality. Prolonged draught followed by heavy food irrigation may cause cracking of fruits. Drip irrigation is most ideal for majority of fruit crops, particularly in dry areas where water is scanty. Drip system improves fruit quality, saves 30 to 80 percent water, increases yield tremendously, reduces fertilizer requirement by 30 to 45 percent by mixing the readily soluble fertilizers like urea in irrigation water. Filters must be used to avoid blockage of drip lines. Lesser soluble fertilizers should be dissolved in water separately and put around the roots of individual trees in solution form without the help of drip lines to avoid clogging of drippers.

Training and Pruning : Training of the fruit trees should be done in a manner that sufficient air and light gets penetrated inside the foliage to facilitate proper coloration and development of fruit of superior quality. Annual pruning for good quality fruits is must in deciduous crops like grape, peach, plum, apricot, pear, apple, almond, mulberry, fig, phalsa and also in ber. Annual pruning for quality improvement is not essential in citrus, papaya, sapota, mango, guava, aonla, karonda and lasora. On the other hand, pruning of green leaves in banana, coconut, papaya and date palm is detrimental to fruit quality.

[1]KVK Bawal (Rewari), CCSHAU, Hisar
[2]KVK Mandkola (Palwal), CCSHAU, Hisar

Manures and Fertilizers : Organic manure or compost and fertilizers must be applied in the recommended doses. The soil should be got tested for different nutrients. Deficient nutrients out of the 17 essential elements should be supplemented with the general recommended doses.

Macro element potassium is very important for improving fruit quality. Potassium deficiency leads to poor fruit size, poor colour development, pre-mature fruit drop, delayed and uneven maturity of fruits. Potassium deficiency may be overcome by spraying 1% potassium sulphate solution in addition to the application of potassic fertilizers in soil for better quality of fruits.

Zinc deficiency is common which can be overcome by application of solid $ZnSO_4$, in soil and also with spray of 0.5% $ZnSO_4$, solution mixed with lime. Quality of ber fruits was better at harvest when ber fruits were sprayed with 1.5% urea and 0.5 per cent zinc sulphate in July and November. Similarly, quality of peach and plum fruits was better when sprayed with 3 kg $ZnSO_4$ with1.5 kg lime mixed in 500 liters of water.

Control of Weeds, Pests and Diseases : For production of better quality fruits, weeds should also be kept under check because they compete fruit crops for macro and micronutrients. They also deplete soil moisture. Care should be taken to keep the orchard free from pests and diseases. However, spray of pesticides directly on mature fruits must be avoided. Disease free plant material should be selected for planting in field. Care should be taken not to allow the entry of disease in orchard. A pest or a disease should be immediately controlled when it enters an orchard. The diseased parts must be burnt away to avoid further spread of diseases.

Harvesting : Much attention is to be paid during harvesting of fruits. Improper harvesting causes bruising and injury to fruits which spoils the look of the fruits and makes susceptible for pathogen infection. Manual harvesting is most desirable but it is very expensive method. Fruits like citrus can be harvested by pulling, clipping and shaking : Mango and guava fruits are harvested mainly by hand plucking but harvesting by clipping with picking poles is also being used. Fruits from high branches can be harvested with the help of clipper fixed on the pole with a collecting bag attached to it. Care should be taken that the fruit should not fall on the ground with such a force which may cause injury to fruits. To avoid injury, make the ground soft or provide cushioning with soft grass.

Pre- and Post-harvest Treatments : Thinning of fruits just after fruit set is done in grape, pear, date, peach, plum and apricot. In grapes, one panicle per shoot is retained and the remaining are removed before fruit set. Application of ethephon at varied concentrations at veraison stage in grapes, dates, plums and several other fruits improves fruit colour and enhances ripening. Application of 40 ppm GA at berry set in Thompson Seedless grapes increases berry size significantly. Fruit quality of grapes is

improved by girdling done by the removal of 5 mm thick ring of bark on stem. Ber fruits should be sprayed with 500 ppm Captan or Dithane M-45 to maintain quality of fruits in storage upto eight days. Lemon fruits should be dipped in 200 ppm GA solution for 10 min before keeping in storage. Harvested peach fruits treated with 1000 ppm potassium permanganate solution could be kept longer in storage under good condition. Kinnow fruits after harvesting should be treated with 1% $CaNO_3$+0.1% Bavistin for better quality in storage.

Environmental Pollution : Certain environmental pollutions deteriorate fruit quality. Black tip of mango, which is physiological disorder, is caused by excess SO_2 gas in smoke emitted by brick kilns near orchards. The remedy lies in raising the height of kiln chimney to avoid environmental pollution.

Storage : Quality of fruits in storage at room temperature and in cold storage can be maintained for longer duration with the help of certain pre and post-harvest treatments as mentioned below and with controlled atmosphere (CA) storage where the product is packaged in a polymeric film so that actively respiring and metabolizing fruits cause reduction in oxygen and increase in CO_2 concentrations around the fruits providing changed micro-atmosphere inside the package.

(From page 28)

effectively utilized. Plantation of perennial legume fodder trees on field borders and also fixing the atmospheric nitrogen. These practices will greatly relieve the problem of non – availability of quality fodder to the animal component linked.

11. **Employment Generation** : Combing crop with livestock enterprises would increase the labour requirement significantly and would help in reducing the problems of under employment to a great extent IFS provide enough scope to employ family labour round the year.
12. **Agro-industries** : When one of produce linked in IFS are increased to commercial level there is surplus value adoption leading to development of allied agro – industries.

Conclusion : Sustainable development is the only way to promote rational utilization of resources and environmental protection without hampering economic growth and Integrated Farming Systems hold special position as in this system nothing is wasted, the by-product of one system becomes the input for other. India has a considerable livestock, poultry population and crop wastes. IFS is a promising approach for increasing overall productivity and profitability through recycling the farm by-products and efficient utilization of available resources.

Pregnancy Diagnosis and its Management in Bitch

✍ **Swati Ruhil, Puneet Zhandai and Devan Arora**
Referral Veterinary Diagnostic and Extension Centre, Uchani
LUVAS, Hisar

Females of most domestic species are sexually receptive only at estrus i.e. every 17 to 21 days. Failure to return to estrus after a successful breeding is often the earliest indication of pregnancy in these animals. In the bitch, the average interval between periods of estrus is seven months, regardless of whether she becomes pregnant or not. Therefore, non-return to estrus is not a reliable indicator of pregnancy in the canine because the animal may suffer with pseudopregnancy. Palpation and radiographic or ultrasonographic imaging of the abdomen are the most common and widely accepted methods of pregnancy diagnosis in the bitch. Breeding behavior differs between bitches and mating may take place from several days before to several days after ovulation. For this reason, intervals between breeding dates and expected pregnancy-related events can vary significantly. On the other hand, if the day of ovulation can be established, then the related gestational events can be more precisely timed (Table 1). Canine pregnancies range from 62 to 64 days and are similar in length for all breeds when measured from the time of ovulation.

Ovulation is estimated to occur five to six days prior to the first day of diestrus. Diestrus is the stage of the reproductive cycle that immediately follows estrus. The first day of diestrus is characterized by decrease of cornified cells by 10% of vaginal cytology. In addition to vaginal cytology, ovulation can be estimated by measuring serum progesterone levels. Serum levels are low prior to estrus, but elevate sharply about two days before ovulation. For understanding in his article, first ovulation has been considered as day 0 (zero).

This article emphasizes the methods of pregnancy diagnosis in bitches those are common and routine in use.

1. **Abdominal palpation** : This procedure allows the experienced clinician to feel normal as well as abnormal structures within the abdomen. While the dog is standing and depending on the size of the animal, one or two hands are used to palpate the abdominal organs. Gravid uterus enlarges and can be more easily palpated. An abnormal condition (pyometra, mucometra, torsion) may develop that can also cause the uterus to be enlarged. Such a condition would need to be distinguished from a pregnant uterus. Pregnancy can be determined by abdominal palpation during a relatively short period of time (20 to 32 days after ovulation). If breeding dates are used to estimate the stage of embryonic development, a second examination seven to 10 days after the first may be necessary to correctly identify a pregnancy.
2. **Radiography** : Radiographic imaging (X-ray) of the abdomen is most accurate and easy method for determining pregnancy during the last third of pregnancy (43 to 63 days after ovulation). After 42 days, the fetal skulls and spines are visible on

Table 1: Approximate time of canine pregnancy events in relation to the time of ovulation and potential fertile matings (Concannon, P. W., 1986)

Pregnancy-related event	Number of days after ovulation	Number of days after fertile mating
Onset of estrus	-6 to +3	-
First of multiple matings	-7 to +5	-12 to 0
Fertile mating	-5 to +5	0
Ovulation	0	-5 to +5
Fertilization	2 to 5	0 to 7
Vaginal cornification reduced	5 to 7	0 to 12
Embryo attachment to uterus	14 to 16	9 to 21
Vesicles visible with ultrasound	15 to 17	10 to 22
Palpable 1 cm swellings	20 to 22	15 to 27
Fetal heartbeat visible (ultrasound)	22 to 23	17 to 28
Uterine swelling visible on X-ray	28 to 30	23 to 35
Palpability of swellings reduced	30 to 32	25 to 37
Earliest X-ray pregnancy diagnosis	43 to 45	39 to 50
Fetal pelvis visible on X-ray	51 to 55	46 to 60
Fetal teeth visible on X-ray	56 to 61	51 to 66
Whelping	62 to 64	57 to 69

radiographs. As pregnancy advances, the bones of the front legs become visible, followed by the bones of the rear legs, the pelvis and the ribs. Finally, the fetal teeth become visible around 56 to 61 days after ovulation.

Prior to day 40, the enlarged uterus may be visible on radiographs, but it may appear very much like the surrounding intestines. The contents of the pregnant uterus may be difficult to distinguish before fetal skeletons develop. As the pregnancy nears its end, the number of fetuses can be determined radiographically by counting fetal skulls. Brachycephalic breeds (English bulldogs, Boston terriers, boxers, etc.) have an increased risk for difficult deliveries due to the size and shape of the fetal skulls. Radiographic evaluations late in pregnancy will determine if the fetuses are developed sufficiently (teeth visible) to survive and whether or not a cesarean section should be performed.

3. Ultrasonography : For the pregnancy diagnosis, high-frequency sound waves are transmitted into the abdomen consequently; different tissues reflect the waves back to the ultrasound machine, which creates a 2-dimensional gray and white picture of the abdominal contents on the screen.

For this procedure, the bitch is lied down in dorsal/lateral recumbency. The belly hairs must be removed. A water-based gel is applied and the ultrasound transducer (probe) is then positioned on the belly wall. Embryonic vesicles can be visualized 15 to 17 days after ovulation. They appear as black circles, approximately 1mm in diameter within the uterus. By 19 to 20 days after ovulation, the vesicles are approximately 3 mm in diameter. If the uterine wall is included in the measurement, the vesicle will appear as 1cm of diameter. An accurate count is not always possible because some vesicles may not be seen and others may be observed more than once during the examination. Ultrasonographic examinations commonly performed from 24 days after ovulation, when fetal masses and heartbeats (120 to 150 beats per minute) can be visualized within the vesicles. With the ultrasound, fetal heartbeats are visible from 22 days after ovulation through the end of pregnancy. Heartbeats are often used to evaluate fetal life when complications arise during a delivery.

4. Hormonal and Biochemical Tests

Pregnancy Hormones : Unlike humans and horses that produce a pregnancy-specific gonadotropic hormone that can be quantitated by assay and thus utilized as an indicator of pregnancy, no similar or such hormone has yet been found in the dog. Recently, however, a hormone, known as relaxin, which is secreted by the placenta of the dog and functions to relax the pelvis before whelping, has been evaluated as specific marker for canine pregnancy. Serum relaxin is not present in non-pregnant dogs; however, concentrations of relaxin increase to detectable levels in the pregnant bitch approximately 25 days following breeding and peak at day 40 to 50.

Synbiotics (Malvern, PA) has developed an ELISA test, called ReproCHEK for detection of serum relaxin for the purpose of pregnancy testing in the bitch. For routine testing, a blood sample is obtained from the bitch 25 days after breeding or between days 22 to 26 after the LH surge. The relaxin assay is quite effective for distinguishing pseudopregnancy from actual pregnancy since relaxin hormone is absent in pseudopregnant bitches. Other applications for this assay include pregnancy monitoring, since sudden decrease in relaxin is an indicator of spontaneous abortion in the bitch.

Plasma Proteins : Testing of plasma proteins as indicators of pregnancy in the bitch have included assessment of fibrinogen and C-reactive proteins, which are commonly elevated in pregnancy and some other conditions. Serono Diagnostic (United Kingdom) offers one test for measurement of fibrinogen, which is elevated 25 to 30 days after breeding and as such may be used as an indicator between days 30 and 50 of pregnancy, after which levels decline. Testing for C-reactive protein also has indications for ability to diagnose pregnancy in that levels of this protein also increase between days 30 and 50 of pregnancy. However, because inflammatory responses associated with infection as well as placental development within the uterus may also lead to elevation of these proteins; hence there is a high incidence of false-positives when utilizing these indicators for determination of pregnancy.

Summary

Progressive events related to pregnancy are listed in Table 1. By 28 days after ovulation, uterine swellings can be palpated or visualized on radiographs. An ultrasonogram at this stage would identify vesicles with embryonic tissue masses and heartbeats. Ultrasonography also is beneficial for distinguishing between abnormal uterine conditions and pregnancy. Radiographic examinations are most useful during the last third of pregnancy, when fetal development can be evaluated and fetal numbers can be determined.

बेरोज़गार युवक एवं किसानों के लिए सर्टिफिकेट कोर्स आरंभ

✍ संदीप आर्य[1] एवं मंजु दहिया
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के सायना नेहवाल कृषि प्रौद्योगिकी प्रशिक्षण एवं शिक्षा संस्थान को एग्रीकल्चर स्किल काउंसिल ऑफ इंडिया (एएससीआई) का अधिकृत केन्द्र बनाया गया है जहाँ विभिन्न विषयों में कौशल विकास के सर्टिफिकेट डिप्लोमा आरंभ किए गए हैं। यह सर्टिफिकेट प्राप्तकर्ता बेरोज़गार युवक एवं किसान स्वरोज़गार अपनाने, दूसरों को रोज़गार प्रदान करने, दूसरी संस्थाओं के लिए विशेषज्ञ बनने व अन्य संस्थाओं को सेवा देकर लाभांवित हो सकेंगे।

विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. के.पी. सिंह के अनुसार ये कोर्स किसी भी देश में कौशल विकास कार्यक्रम के लिए मुख्य रूप से बेरोज़गार युवाओं, किसानों एवं महिलाओं के लिए लाभपद्र साबित होंगे। साथ ही देश के आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए कौशल और ज्ञान दो प्रेरक बल हैं। यह सुनहरा अवसर हमें तभी लाभ देगा जब हमारे लोग विशेषकर युवा स्वस्थ, शिक्षित और कुशल होंगे। युवा किसी भी देश की रीढ़ की हड्डी होते हैं। इससे वे न केवल अपने जीवन में प्रगति की ओर अग्रसर होंगे बल्कि दूसरों के जीवन में भी बदलाव ला सकेंगे। विश्व में भारत युवाओं का देश माना जा रहा है जिसमें 18 से 35 साल के युवाओं की संख्या देश की जनसंख्या का 65 प्रतिशत है जोकि पूरे विश्व में उच्चतर स्तर पर मानी जा रही है, लेकिन बेरोज़गारी की समस्या भी देश में विद्यमान है और इन बेरोज़गार युवकों को ज़रूरी कौशल प्रशिक्षण देकर विकसित किया जा सकता है। इससे देश को आर्थिक विकास में अग्रणीय पायदान पर लाया जा सकता है।

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के तहत पाठयक्रमों में सुधार, बेहतर प्रशिक्षण और प्रशिक्षित शिक्षकों पर ज़ोर दिया गया है। प्रशिक्षण में अन्य पहलुओं के साथ व्यवहार कुशलता और व्यवहार में परिवर्तन भी शामिल हैं। इस दिशा में मिशन के तौर पर प्रयास किया जा रहा है। राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन की एक इकाई राष्ट्रीय कौशल विकास निगम एक गैर लाभ कंपनी है और गैर संगठित क्षेत्र समेत श्रम बाज़ार के लिए कौशल प्रशिक्षणों की ज़रूरतों को पूरा कर रही है जोकि मानव संसाधन और उद्योग विकास में एक नए युग की शुरूआत करेगी। नवगठित कौशल विकास और उद्यम मंत्रालय, राष्ट्रीय कौशल विकास निगम के माध्यम से 24 लाख युवाओं को प्रशिक्षण के दायरे में लाया जाएगा।

उल्लेखनीय है कि हाल ही में हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय , हिसार एवं एग्रीकल्चर स्किल काउंसिल ऑफ इंडिया के बीच समझौता हुआ है। समझौते के अनुसार हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय एवं एग्रीकल्चर स्किल काउंसिल ऑफ इंडिया द्वारा तैयार किए गए और नेशनल स्किल क्वालिफिकेशन फ्रेमवर्क द्वारा एप्रूव्ड क्वालिफिकेशन पैक्स के अनुसार प्रशिक्षणों का आयोजन करना, हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा प्रशिक्षित प्रशिक्षणार्थियों का एएससीआई द्वारा मूल्यांकन और सफल प्रशिक्षणार्थियों को प्रमाणित करना, एएससीआई द्वारा विश्वविद्यालय के मास्टर्ज़ ट्रेनर्ज़ तैयार करना, स्किल डिवेल्पमेंट कल्चर का विकास और कृषि के विभिन्न क्षेत्रों जैसे फार्म मैकेनाइज़ेशन, बागवानी, बीज, फसल उत्पादन में क्षमता एवं जागरूकता संवर्धन करना, हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय और एएससीआई के मानव बल और मूलभूत सुविधाओं का मिलकर प्रयोग तथा हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा संपर्क अधिकारी नियुक्त करना, एएससीआई के साथ गतिविधियों में सहयोग करना और कुशल एवं अर्धकुशल किसानों, कामगरों के लिए पूर्व लर्निंग कार्यक्रम संचालित करना शामिल हैं।

यह केन्द्र राष्ट्रीय आजीविका मानकों (एनओएस) तथा क्वालिफिकेशन पैक्स (क्यूपीएस) के अनुरूप होगा जिसमें 10 व 10+2 के बाद न पढ़ने वाले छात्र, बेरोज़गार युवक व किसान अपनी इच्छानुसार कोर्स का चयन करके प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं तथा प्रशिक्षण में प्राप्त ज्ञान को आय के साधन के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त किसान कृषि को न केवल खेती के रूप में बल्कि व्यवसाय के रूप में अपनाकर अपने सपनों को साकार कर सकते हैं।

एग्रीकल्चर स्किल काउंसिल ऑफ इंडिया द्वारा हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय में आने वाले प्रशिक्षणार्थियों के लिए विभिन्न कृषि विषयों जैसे मधुमक्खी पालन, माली, गेहूं उत्पादन, मशरूम उत्पादन, बीज उत्पादन, ट्रैक्टर मेकेनिक, कंद/बल्ब फसल उत्पादन, बीज संसाधन श्रमिक, फूलों की खेती (पॉलीहाऊस व खुले खेत में), सूक्ष्म सिंचाई टैक्नीशियन, ट्रैक्टर ऑपरेटर, जैविक खेती, कीटनाशक एवं खाद एप्लीकेटर, मिट्टी एवं पानी जांच विश्लेषक, सोलोनेसियस फसल उत्पादन में मास्टर ट्रेनर्स तैयार किए गए हैं जो उपरोक्त कोर्सों में प्रशिक्षण प्रदान करेंगे। इन कोर्सों से हरियाणा के किसानों, बेरोज़गार युवकों व महिलाओं का कौशल विकास करके लाभ होगा तथा ये लोग इस कौशल से आय उपार्जन कर सकेंगे व मास्टर ट्रेनर्स भी कहलाएंगे। विश्वविद्यालय के क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्रों व कृषि विज्ञान केन्द्रों में भी उपरोक्त विषयों पर कोर्स चलाए जाएंगे।

प्रशिक्षण में प्राप्त ज्ञान से किसान, महिलाएं व बेरोज़गार युवक, विशेषकर जो युवक अपनी पढ़ाई पूरी नहीं कर पाए, अपना लघु व्यवसाय शुरू करके रोज़गार प्राप्त कर सकते हैं। इससे वे अपने परिवार का पालन-पोषण करने के साथ-साथ देश में चल रही बेरोज़गारी की समस्या को भी काफी हद तक कम कर सकते हैं। संस्थान द्वारा विभिन्न विषयों में प्रशिक्षण, सर्टिफिकेट कोर्स व डिप्लोमा कोर्स की प्रवेश प्रक्रिया 10 जनवरी 2019 से आरंभ कर दी गई है।

[1]कृषि वानिकी विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती

वर्ष 52 अंक 03







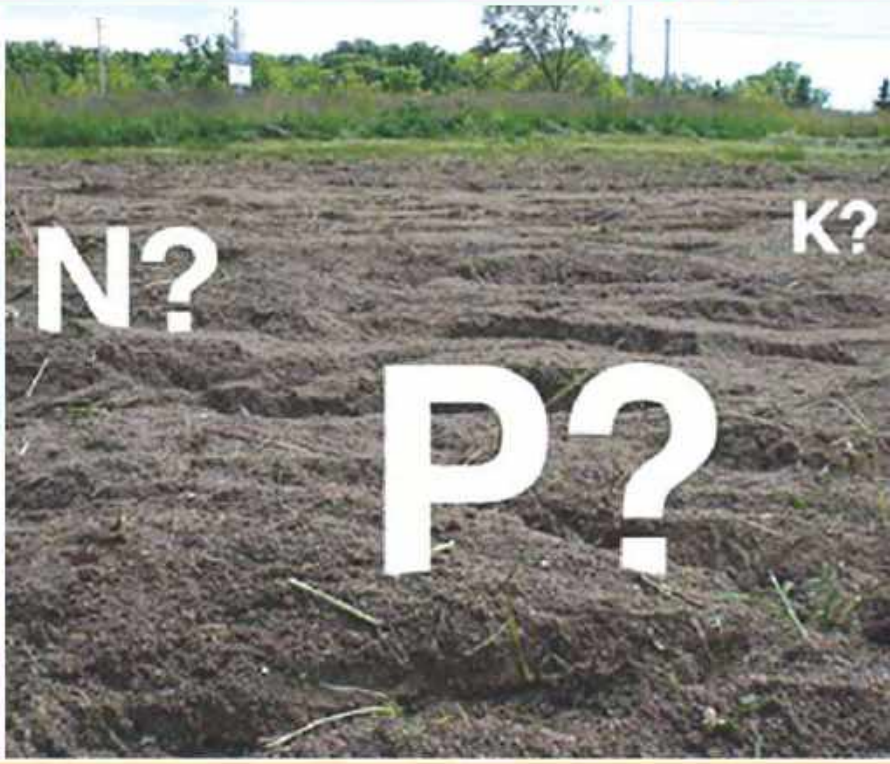

कृषि मेला (खरीफ)

दिनांक : 12-13 मार्च, 2019

स्थान : गेट नं. 3, विश्वविद्यालय फार्म, बालसमंद रोड़, हिसार

वार्षिक चंदा 150/- मार्च 2019 आजीवन सदस्यता 1500/-

प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु.(2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित © कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 52 | मार्च 2019 | अंक 03

इस अंक में

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ
धान-गेहूं फसल चक्र - ग्रीष्म कालीन मूंग की खेती	✍ विरेन्द्र सिंह हुड्डा, मीनाक्षी सांगवान एवं मीना सुहाग	2
चने में सूण्डी : समस्या और रोकथाम	✍ जयलाल यादव, रमेश कुमार एवं सुरेन्द्र सिंह यादव	3
सब्जी फसलों में - खरपतवार नियन्त्रण	✍ सतबीर सिंह पूनिया एवं विरेन्द्र हुड्डा	4
अमरूद के प्रमुख कीट एवं उनका समन्वित प्रबन्धन	✍ सुरेन्द्र सिंह यादव, सुनीता यादव एवं मनदीप राठी	7
फलवृक्षों की काट-छांट	✍ रणबीर सिंह सैनी, सुरेन्द्र सिंह एवं मुकेश कुमार	9
रबी की तिलहनी फसलों में सल्फर का महत्त्व	✍ मुकेश कुमार जाट, प्रमोद कुमार यादव एवं रामस्वरूप दादरवाल	11
मृदा को स्वस्थ रखने के विकल्प एवं प्रबंधन	✍ पूजा रानी, नरेंदर कुमार एवं विकास कुमार	12
किसान कॉल सैंटर : एक परिचय	✍ अशोक कुमार एवं राजेश कुमार	18
भूमि की उर्वरा शक्ति : हरी खाद	✍ धर्म प्रकाश, सुनीता श्योराण एवं देवराज	18
उर्वरकों की पहचान : कैसे करें	✍ सोनिया देवी, के. के. भारद्वाज एवं विशाल गोयल	20
बीज उत्पादन के आनुवांशिक सिद्धान्त	✍ सुनील कुमार एवं सतबीर सिंह जाखड़	21
पोर्टेबल वर्मीकम्पोस्ट किट	✍ रवीना कारगवाल, यादविका एवं एम. के. गर्ग	23
सौर ऊर्जा संचालित - टपका सिंचाई प्रणाली	✍ प्रमोद शर्मा, कनिष्क वर्मा एवं बाई. के. यादव	24
जल भराव : समस्या एवं समाधान	✍ नरेंद्र कुमार, प्रमोद शर्मा एवं संजय कुमार	25
केंचुओं पर धातुओं के प्रभाव	✍ शेफाली एवं आर. के. गुप्ता	26
पारंपरिक प्रथा से अनाज भण्डारण	✍ पूजा, एस. एस. ढांडा एवं दीपिका राठी	27
Rohida : Marwar Teak of Thar Desert	✍ Sandeep Arya, Neeraj Kumar and Naresh Kaushik	29
Low Cost Storage Facility for Fresh Fruits and Vegetables	✍ Sumit Deswal and Manender Singh	30
Physiological Disorders of Potato : Their Management	✍ Vinod Kumar, S.K. Tehlan and Vikash Kumar	31
स्याई स्तम्भ : अप्रैल मास के कृषि कार्य		13

हरियाणा खेती
सम्बन्धी
स्वामित्व विवरणी
फार्म-4 [देखिये नियम 8]

प्रकाशन स्थान	:	चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार।
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
मुद्रक का नाम	:	डॉ. आर. एस. हुड्डा
क्या भारत का नागरिक है ?	:	हां
(यदि विदेशी है तो मूल देश)	:	-
पता	:	निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय चौ. च. सिं. ह. कृ. वि., हिसार।
प्रकाशक का नाम	:	डॉ. आर. एस. हुड्डा
क्या भारत का नागरिक है ?	:	हां
संपादक	:	डॉ. सुषमा आनन्द
क्या भारत का नागरिक है ?	:	हां
(यदि विदेशी है तो मूल देश)	:	-
पता	:	संपादक हिन्दी, प्रकाशन अनुभाग, चौ. च. सिं. ह. कृ. वि., हिसार।
उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के सांझेदार या हिस्सेदार हों।	:	चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार।

मैं, आर. एस. हुड्डा, एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

हस्ताक्षर
आर. एस. हुड्डा
प्रकाशक

तकनीकी सलाहकार :
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
विस्तार विशेषज्ञ (विस्तार शिक्षा)
विस्तार शिक्षा निदेशालय

सह-निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह-निदेशक (हिन्दी)

सुनीता सांगवान
सम्पादक (अंग्रेजी)
प्रकाशन अनुभाग

आवरण एवं सज्जा
राजेश कुमार

लेखकों से अनुरोध : हरियाणा खेती के लेख में कृपया कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। अपना लेख हमें ई-मेल haryanakhetihau@gmail.com पर भी भेज सकते हैं।

धान-गेहूं फसल चक्र– ग्रीष्म कालीन मूंग की खेती

✍ विरेन्द्र सिंह हुड्डा, मीनाक्षी सांगवान एवं मीना सुहाग
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

धान–गेहूं फसल चक्र के लम्बे समय से प्रचलित होने के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति में कमी, भूमिगत जल स्तर में गिरावट, खरपतवारों में प्रतिरोधकता की समस्याओं के साथ–साथ धान व गेहूं की उत्पादकता भी स्थिर हो गई है जिसके कारण आज के संदर्भ में धान–गेहूं फसल चक्र में विविधीकरण की ओर प्रयास किये जा रहे हैं। लगातार कृषि लागत में वृद्धि से प्रति इकाई मुनाफा भी घट रहा है। इसके अलावा हमारे देश में कृषि पर निर्वहन करने वाली करोड़ से ज़्यादा जनसंख्या, लगातार घटी हुई जोत, सूखे व बाढ़ का प्रकोप, विश्व व्यापारीकरण की चुनौतियां आदि कारकों ने कृषकों व उनका हित सोचने वालों को नवीनतम व उन्नत कृषि तकनीकों के बारे में सोचने पर बाध्य कर दिया है जिसमें कम से कम संसाधनों का प्रयोग करके भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रख कर कम लागत में ज़्यादा मुनाफा कमाया जा सके। इन परिस्थितियों में अनाज वाली फसलों के साथ दलहनी फसलों को उगाना लाभदायक है।

धान–गेहूं फसल चक्र में ग्रीष्म कालीन मूंग को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है क्योंकि गेहूं की कटाई व धान की रोपाई के बीच में ज़्यादा दिन तक खेत खाली रहते हैं। इस दौरान किसान सांठी धान लगाने की कुप्रथा में लिप्त रहते हैं। ग्रीष्म कालीन मूंग की काश्त करने से न केवल सांठी धान लगाने की कुप्रथा कम होगी बल्कि भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ने के साथ साथ जल जैसे प्राकृतिक संसाधन को भी बचाया जा सकेगा। ग्रीष्म कालीन मूंग उगाने के कई लाभ हैं :

- ग्रीष्म में खरपतवारों का प्रकोप कम होता है।
- कम आर्द्रता के कारण बीमारियों व कीड़ों का प्रकोप कम होता है।
- जल्दी पकने से वर्षा आदि से बचाव हो जाता है।
- प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग हो जाता है।

किसान की अतिरिक्त आय के साथ–साथ देश की विदेशी मुद्रा की बचत होती है व भूमि सुधार होता है।

इस तरह ग्रीष्म कालीन मूंग प्रचलित धान–गेहूं के फसल चक्र में मूल्य संवर्धन का कार्य करती है। धान–गेहूं कृषि पद्धति के आलावा तोरिया, आलू, सरसों, मटर, गन्ना व कभी–कभी रबी की फसल खराब होने के कारण भी खेत मार्च महीने से अगली खरीफ की फसल लगने तक खाली रहते हैं। ऐसे खेतों में ग्रीष्म कालीन मूंग को उगाकर उनका सदुपयोग किया जा सकता है।

ग्रीष्म कालीन मूंग में कृषि क्रियाएं : ग्रीष्म कालीन मूंग की सफल खेती के लिए किसान भाई निम्न उन्नत तकनीक या कृषि क्रियाएं अपना कर अच्छी पैदावार ले सकते हैं।

उपयुक्त किस्म का चुनाव : ग्रीष्म कालीन मूंग के लिए कम अवधि तथा एक समय में पकने वाली किस्में उपयुक्त होती हैं। एमएच–421, एम एच– 318, बसंती, सत्या व एसएमएल–668 उन्नत शील किस्में हैं।

भूमि का चयन व तैयारी : मूंग के लिए दोमट मिट्टी या रेतीली दोमट मिट्टी उपयुक्त रहती है लेकिन भारी मिट्टी में भी इसकी सफल खेती की जा सकती है। अम्लीय या क्षारीय भूमि में मूंग को न उगायें।

बिजाई का समय : ग्रीष्म कालीन मूंग में बिजाई का समय ठीक होना अति आवश्यक है क्योंकि यह पैदावार के साथ–साथ आगामी फसल पर भी प्रभाव डालता है। मार्च का पूरा महीना मूंग की बिजाई हेतु उत्तम है लेकिन अप्रैल के पहले पखवाड़े तक भी इसकी बिजाई की जा सकती है। बिजाई ज़्यादा पछेती करने से अधिक तापमान, गर्म शुष्क हवा तथा अगेती मानसून आदि से उत्पादन पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है।

बीज दर व अंतरण : ग्रीष्म काल में खरीफ मौसम की अपेक्षा पौधों की बढ़वार कम होती है। इसलिए बीज की मात्रा खरीफ मौसम से ज़्यादा डालें। बीज की मात्रा 10–12 कि. ग्रा. प्रति एकड़ डालें तथा खुड से खुड का फासला 20–25 सैं.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 8–10 सैं.मी. रखें।

बीजोपचार : बीज को बोने से पहले पानी में भिगोयें। ऐसा करने से हल्का व खराब बीज पानी के ऊपर तैर जायेगा जिसे निकाल दें। बाकी बीज को तुरंत निकाल के सुखाएं। जड़ गलन रोग के बचाव के लिए प्रति कि.ग्रा. बीज का 4 ग्रा. थाइरम से सूखा उपचार करें। उसके कुछ घंटे बाद बीज का राइजोबियम के टीके से उपचार करें तथा बीज को छाया में सुखाएं। राइजोबियम के टीके हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से प्राप्त किये जा सकते हैं।

उर्वरक : बिजाई के समय 6–8 कि. ग्रा. शुद्ध नाइट्रोजन प्रति एकड़ व 16 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति एकड़ डालें। इसके लिए 13–17 कि.ग्रा. यूरिया व 100 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें। खेत में अगर ज़िंक कि कमी हो तो 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ की दर से डालें।

सिंचाई : ग्रीष्म कालीन मूंग की काश्त सिंचित क्षेत्रों में ही की जाती है। अच्छी नमी में बिजाई की गई फसल में पहली सिंचाई 20–22 दिन बाद लगायें व उसके बाद 10–15 दिन बाद आवश्यकतानुसार सिंचाई करें।

खरपतवार नियंत्रण : खरपतवारों की रोकथाम के लिए पहली निराई गोड़ाई 20–25 दिन बाद व दूसरी 35–40 दिन बाद करें। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए पेंडीमेथालिन (स्टॉम्प 30 ई.सी.) नामक खरपतवारनाशक की 1.25 लीटर मात्रा या ट्राईफ्लुरालिन (ट्रेफ्लान) की 1.0 लीटर मात्रा को 250–300 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई के तुरंत बाद छिडकें। इन खरपतवारों के छिड़काव के समय खेत में अच्छी नमी हो। इनका प्रयोग करने से सांठी, सांवक, मकड़ा

व कोंधरा की अच्छी रोकथाम हो जाती है।

पौध संरक्षण : वैसे तो ग्रीष्म कालीन मूंग में कीड़ों व बीमारियों का प्रकोप खरीफ फसल की अपेक्षा कम होता है, फिर भी विषाणु रोग का प्रकोप कम करने के लिए सफेद मक्खी व तेला की रोकथाम हेतु 400 मि.ली. मेलाथियान 50 ई.सी. या 250 मि.ली. डाईमिथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. या 350 मि.ली. ऑक्सीडेमेटोन मिथाइल (मेटासिस्टॉक्स) 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़कें। बालों वाली सूंडी की रोकथाम के लिए 250 मि.ली. मोनोक्रोटोफॉस (मोनोसिल या न्यूवाक्रोन) 36 एस. एल. या 500 मि. ली. क्विनलफास (एकालक्स) 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। यदि पत्तों पर, तनों पर या फलियों पर कोनदार भूरे लाल धब्बे दिखाई दें तो इंडोफिल एम.-45 या ब्लाईटॉक्स की 600-800 ग्राम मात्रा को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। पत्तों के जीवाणु रोग, जिसमें पत्तों की सतह के नीचे छोटे-छोटे जलसिक्त बिंदु नज़र आते हैं, की रोकथाम हेतु 600-800 ग्रा. कॉपरआक्सीक्लोराइड को 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें।

कटाई व गहाई : जब 70 से 90 प्रतिशत फलियां पक जाएं (फलियों का रंग काला या भूरा हो जाये) तब फसल की कटाई एक बार में कर लें तथा 7-8 दिन धूप में अच्छी तरह सुखा कर बीजों को निकालें।

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक नि:शुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

चने में सूण्डी : समस्या और रोकथाम

✍ **जयलाल यादव, रमेश कुमार एवं सुरेन्द्र सिंह यादव**
कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत की दलहनी फसलों में चना प्रमुख फसल है। चने का योगदान क्षेत्रफल तथा पैदावार के हिसाब से क्रमश: लगभग 40 प्रतिशत व 48 प्रतिशत है। हरियाणा के पश्चिमी क्षेत्रों में चने का विशेष महत्व है। चने के अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का लगभग 88 प्रतिशत क्षेत्र पश्चिमी ज़िलों में ही है। हरियाणा में 2015-2016 के आंकड़ों से चने का कुल क्षेत्रफल 58000 हैक्टेयर, पैदावार 49000 टन तथा औसत पैदावार 845 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर है। चने की पैदावार अपेक्षित पैदावर से काफी कम है। इस कम उत्पादन के लिए कीट भी ज़िम्मेदार हैं जिनमें चने की सूण्डी सबसे ज़्यादा नुकसान करती है। इस कीट के प्रकोप एवं नुकसान को ध्यान में रखते हुए किसानों की जानकारी हेतु इसका जीवन चक्र, नुकसान करने की विधि व उचित रोकथाम का वर्णन इस लेख में दिया गया है। इस कीट को चने की टाट की सूण्डी या लोई या फली छेदक सूण्डी भी कहते हैं। यह कीट 181 प्रकार के पौधों को नुकसान पहुँचाता हुआ पाया गया है जिसमें 60 के लगभग उपयोगी फसलें, पौधे तथा बाकी खरपतवार व जंगली पौधे हैं।

सूण्डी की पहचान : अण्डे से निकलने पर सूण्डी बहुत छोटी होती है और उसका रंग प्राय: लाल भूरा होता है। सूण्डी बड़ी होने पर 3.5 सैं.मी. लंबी हो जाती है और उस पर तीन लंबी धारियां दिखाई देती हैं। सूण्डी के अनेक रंग हो सकते हैं किंतु मुख्यत: हरे या पीले रंग में मिलती है।

जीवन चक्र : इस कीट की चार अवस्थाएं हैं - अण्ड़ा, सूण्डी, प्यूपा और तितली। प्रौढ़ मादा तितली हल्के भूरे रंग की है जो रात के समय लगभग 1000 अण्डे अपने जीवनकाल में पौधों की कलियों, फूलों, पत्तियों व फलियों पर प्राय: एक-एक करके देती है। इन अण्डों में से 2-4 दिन में सूण्डियां निकल आती हैं जो 2-4 सप्ताह में पूरी बड़ी होकर प्यूपा बन जाती हैं। प्यूपा जो कि भूरे रंग का होता है ज़मीन के भीतर 2.5 सैं.मी. की गहराई में मिलता है। प्यूपा में से तितली एक सप्ताह के अन्दर निकल आती है। अनुकूल मौसम में इसका जीवन चक्र 3-4 सप्ताह में पूरा हो जाता है। यह कीट साल में 5-7 पीढ़ियां पूरी करता है। विविध भक्षी होने के कारण यह कीट मनचाही फसलों पर वर्ष भर बढ़ता एवं प्रजनन करता है। दिसम्बर से अप्रैल तक यह कीट चना और मटर पर, मई से जुलाई के दौरान टमाटर, भिण्डी, बरसीम, सूरजमूखी और मक्का (चारा) पर, कभी-कभी अप्रैल के महीने में गेहूँ पर, अगस्त से अक्तूबर तक कपास, अरहर और भिण्डी इत्यादि पर तथा नवम्बर-दिसम्बर में अरहर तथा चना पर रहता है। सर्दी के मौसम में यह कीट प्यूपा के रूप में सुप्तावस्था में चला जाता है।

नुकसान : कब और कैसे : चने में इस कीट का प्रकोप मार्च के महीने में सबसे अधिक होता है। यह चने का भयानक शत्रु है। किसी-किसी वर्ष छोटी फसल को अक्तूबर से दिसम्बर में भी काफी हानि

हो जाती है। फसल को हानि केवल सूण्डी से होती है। छोटी अवस्था में सूण्डी पत्तियों, कलियों और फूलों को खाती है और बड़ी होने पर फली (टाट) में छेद करके बढ़ते हुए दानों को खाती है जिससे पैदावार बहुत कम हो जाती है। टाट के दानों को खाते समय बड़ी सूण्डी का अधिकतर भाग बाहर ही लटका रहता है। टाट खोखली होकर सूख जाती है। प्रयोगों के आधार पर देखा गया है कि एक सूण्डी अपने जीवनकाल में 30 से 40 फलियों (टाटों) को नष्ट कर देती है। पौधों पर काले रंग के मल-मूत्र के अवशेषों का मिलना सूण्डी होने का संकेत देता है। सर्दियों की वर्षा, अधिक तापमान व आकाश में बादल छाए हों तो यह कीट अधिक बढ़ता है व फसल में नुकसान भी ज़्यादा होने की संभावना होती है। देर से बीजी गई फसलों व जहां सिंचाई की सुविधा हो इस कीट का प्रकोप ज़्यादा होता है।

रोकथाम : कब और कैसे :

- फसल की बिजाई समय पर करें।
- अरहर की कटाई के बाद खेतों की गहरी जुताई करें ताकि सूण्डी की सुप्तावस्था में प्यूपा बाहर आने पर नष्ट हो जाए।
- इस कीट का प्रकोप कम करने के लिए चटरी-मटरी नामक खतपतवार के ऊंचे सिरों को मार्च के दूसरे सप्ताह में निकाल देना चाहिए क्योंकि मादा तितली चटरी-मटरी खतपतवार को चने की अपेक्षा अण्डे देने के लिए ज़्यादा उपयुक्त समझती है। इससे 30 से 35 प्रतिशत नुकसान को कम किया जा सकता है।
- चने की फसल के साथ गेहूं, लोबिया, सरसों और कुसुम की खेती करने से इस कीट द्वारा नुकसान रोका जा सकता है।
- समय-समय पर इस कीट के प्रकोप का पता लगाने के लिए चने की एक मीटर लंबी पौधों की कतार को कागज़ बिछाकर झाड़ने से लगाया जा सकता है। खेत में 8-10 स्थानों पर एक-एक मीटर में सूण्डियों की संख्या गिन लें। यदि एक मीटर में औसत एक या एक से अधिक सूण्डी हो तो नीचे लिखी कीटनाशकों में से किसी एक का प्रयोग करें।
- जब पौधों में करीब 50 प्रतिशत टाट बन गए हों या एक सूण्डी प्रति मीटर लंबे खूड़ में मिले तब 400 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. या 200 मि.ली. मोनोक्रोटाफास 36 एस.एल. या 80 मि.ली. फैनवालरेट 20 ई.सी. या 50 मि.ली. साइपरमैथरीन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. डैकामैथरिन 2.8 ई.सी. का 100 लीटर पानी में घोल बना कर या 150 मि.ली. नोवालूरॉन (रिमोन) 10 ई.सी. का 150 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। पानी की कमी वाले इलाकों में 10 किलोग्राम क्विनलफॉस 1.5 डी या कार्बेरिल 5 डी प्रति एकड़ धूड़ा करें। यदि ज़रूरी हो तो दूसरा छिड़काव या धूड़ा 15 दिन बाद फिर करें।
- बड़ी सूण्डियों को हाथ से इकट्ठा करके नष्ट करें।

सब्ज़ी फसलों में - खरपतवार नियन्त्रण

✍ सतबीर सिंह पूनिया एवं विरेन्द्र हुड्डा
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा के शहरी इलाकों या उनके साथ लगते गांवों में काफी मात्रा में सब्जियां उगाई जाती हैं। प्रान्त में मुख्यत: आलू, प्याज़, लहसुन, मटर, भिण्डी, टमाटर, हल्दी, बैंगन, पत्ता गोभी, मेथी व फूलगोभी की काश्त ज़्यादा की जाती है। ये फसलें शुरू की अवस्था में कम बढ़वार लेती हैं और अगर वातावरण अनुकूल हो तो खरपतवारों की समस्या और बढ़ जाती है। सब्जी की फसल बोने से पहले आमतौर पर खेत में गोबर की खाद डाली जाती है जिस की वजह से भी खरपतवार ज़्यादा उगते हैं। इस के अलावा, सब्जी की फसलों में ज़्यादा सिंचाई की ज़रूरत पड़ती है जिस कारण खेत में नमी रहती है और खरपतवारों की बढ़वार भी जल्दी होती है व खरपतवारों को फलने-फूलने के लिए अच्छा मौका मिल जाता है। इन सभी कारणों की वजह से कई बार खरपतवार सब्जी की फसल को शुरू की अवस्था में ही ढक लेते हैं। अगर खरपतवारों को समय पर न निकाला जाये तो पैदावार में औसत 25-55 प्रतिशत तक कमी आ जाती है। प्रयोगों द्वारा पता चला है कि खरपतवारों द्वारा गाजर की फसल में 28-78%, मूली में 86%, आलू में 62-82%, मटर में 70%, पत्तागोभी में 66%, टमाटर में 60 प्रतिशत तक नुकसान आंका गया है। इस के अलावा खरपतवार फसलों में कई बीमारियों व कीड़ों को भी आश्रय देते हैं। इसलिए ज़रूरी है कि फसलों में खरपतवारों का उचित समय पर नियंत्रण किया जाए।

खरपतवार निकालने का उचित समय : यह समय पौधे की पूर्ण उम्र में वह समय है जिस समय खेत में खरपतवार नहीं होने चाहियें और पैदावार में कमी न हो। अगर इस समय में फसल में खरपतवार नहीं होंगे तो पैदावार में कोई कमी नहीं आएगी। इस समय के बाद उगे हुए खरपतवार फसल में ज़्यादा नुकसान नहीं करते परन्तु इस समय के बाद खेत में अगर खरपतवार नियंत्रण करते हैं तो कटाई आसानी से हो जाती है व अगले साल के लिए खरपतवारों का बीज नहीं बन पाता। खरपतवार नियंत्रण का यह नाजुक समय सीधी बीज द्वारा लगाई गई फसलों में रोपाई की फसलों की अपेक्षा ज़्यादा होता है। आमतौर पर खरपतवारों की संख्या व मौसम के हालात पर इस समय की लम्बाई निर्भर करती है। विभिन्न फसलों को खरपतवार रहित रखने का नाजुक समय सारणी 1 में नीचे दिया गया है।

आमतौर पर सब्जी की फसल में ऋतु के अनुसार एक वर्षीय, दो वर्षीय व बहु वर्षीय डीला जाति वाले खरपतवार आते हैं। इस के इलावा कई जगह बैंगन व टमाटर की फसल में परजीवी खरपतवार मरगोज़ा का प्रकोप भी देखने को मिलता है। प्याज़ की फसल में अमर बेल भी काफी नुकसान करती है।

इसलिए खरपतवारों को समय पर निकालना बहुत ज़रूरी है। इन फसलों में खुरपे से गोड़ाई द्वारा या हाथ द्वारा खरपतवार नियन्त्रण काफी

सारिणी 1 : विभिन्न फसलों को खरपतवार रहित रखने का समय

फसल	खरपतवार रहित रखने का समय
गाजर	जमाव के 3-6 सप्ताह बाद तक
पालक	लगाने के 3 सप्ताह बाद तक
प्याज़	सारी अवधि
आलू	लगाने के बाद 15-45 दिन तक
टमाटर	रोपाई के 6 सप्ताह बाद तक
मिर्च	रोपाई के बाद 30-45 दिन तक
मटर	लगाने के बाद 30-60 दिन तक
हल्दी	लगाने के बाद 60-150 दिन तक

प्रचलित है परन्तु कई बार मज़दूर समय पर न मिलने या ज़्यादा बारिश के कारण निराई-गुडाई समय पर सम्भव नहीं हो पाती, अत: ऐसे हालात में खरपतवारनाशकों का प्रयोग करके भी खरपतवारों पर काबू पाया जा सकता है। खरपतवारनाशक का प्रयोग करके निम्नलिखित फसलों में समय पर व अच्छी तरह खरपतवार नियन्त्रण मिल सकता है।

प्याज़ : प्याज़ की फसल में खरपतवार की समस्या बहुत ज़्यादा होती है यह 67 प्रतिशत तक उपज को नुकसान पहुंचा सकते हैं क्योंकि इस में दो तरह के खरपतवार आते हैं। पहले सर्द ऋतु वाले खरपतवार जैसे कि मैणा, कृष्णनील, बायु, खड़बायु, गुल्लीडण्डा, जंगलीपालक, मालवा इत्यादि। फरवरी के महीने में उचित तापमान आने पर बसन्त ऋतु व गर्म ऋतु वाले खरपतवार जैसे कि चौलाई, सांठी, डीला, हिरणखुरी, कोंधरा, नूणिया, चिड़ियों का दाना इत्यादि काफी मात्रा में उगते हैं। इस फसल में खरपतवारों की रोकथाम के लिए स्टॉम्प 30 ई.सी. (पैंडीमिथेलिन) 1.3-1.7 लीटर प्रति एकड़ का छिड़काव रोपाई के 7-8 दिन बाद जब पौधे व्यवस्थित हो जाते हैं और खरपतवार निकलने शुरू हो जाते हैं, करना चाहिए। इस दवाई का घोल तैयार करने के लिए एक एकड़ फसल में छिड़काव करने हेतु 250 लीटर पानी की मात्रा प्रयोग करें। यदि 50-60 दिन बाद खरपतवार पुन: निकलते हैं तो एक निराई करना लाभप्रद है। प्याज़ में गोल का छिड़काव करने पर पत्तियों की नोक पर थोड़ा दुष्प्रभाव पड़ता है परन्तु 20 दिन बाद ठीक हो जाती हैं व पैदावार में कोई कमी नहीं आती। अगर स्टॉम्प का प्रयोग न करें तो छिड़काव तर बत्तर ज़मीन में एक सार होना ज़रूरी है। यह खरपतवार रोपाई के पहले या रोपाई के 10 दिन के अन्दर राफ्ट 667 मि.ली. या गोल नामक रसायन 340 मि.ली. प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करने या रेत में मिलाकर डालने से खरपतवारों का अच्छा नियंत्रण पाया जा सकता है तथा एक गुडाई रोपाई के 45 दिन बाद अवश्य करें। गोल व स्टॉम्प खरपतवारनाशक छिड़काव के 90 दिन के अन्दर-2 इस फसल में गल जाते हैं व हरी प्याज़ में उनका कोई अंश नहीं मिलता। ये खरपतवार नाशक मोथे या डीले के प्रति प्रभावशाली नहीं हैं।

लहसुन : इस फसल में आमतौर पर सर्दी ऋतु वाले खरपतवार जैसे बायु, कृष्णनील, मैणा, जंगलीपालक, खड़बाथु, पोआ, गुल्लीडण्डा व लोम्बड़ घास उगते हैं। इस फसल में खरपतवारों की रोकथाम के लिए स्टॉम्प 30 ई.सी. (पैंडीमीथालिन) या बासालिन 45 ई.सी. (फ्लूयक्लोरालिन) का प्रयोग किया जा सकता है। ये खरपतवारनाशक इस फसल के मोथे (डीले) को छोड़कर सारे खरपतवारों का नाश कर देते हैं। स्टॉम्प (1.3-1.7 लीटर प्रति एकड़) का फसल बिजाई के 48 घण्टे के अन्दर-2 (लहसुन उगने से पहले) 250 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए। जब कि बासालीन या ट्रैफलान (1.0 लीटर/एकड़) का खेत अच्छी तरह तैयार करके लहसुन बुवाई से पहले छिड़काव करना चाहिए। बासालीन व ट्रैफलान का छिड़काव करने के बाद कसोले या कस्सी से अच्छी तरह मिट्टी में मिलाना ज़रूरी है। इस के बाद लहसुन की कलियां खेत में लगाकर हल्का पानी दे दें। इसके इलावा राफ्ट 9 ई.सी. 667 मि.ली. या गोल 23.5 ई.सी. 340 मि.ली. को 250 लीटर पानी में घोल कर लहसुन के बाद 10 दिन के अन्दर-अन्दर छिड़काव कर सकते हैं। इसके बाद भी अगर खरपतवार उगते हैं तो 50-60 दिन बाद एक निराई-गुड़ाई आवश्यक है। फसल पकने से डेढ़ महीने पहले हिरणखुरी खरपतवार पुन: उग जाता है। इस अवस्था में राफ्ट नामक रसायन का 667 मि.ली. प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। उपर्युक्त दवाइयों का कच्ची व पकी हुई कलियों में कोई असर नहीं आता।

आलू : इस फसल में पतझड़, सर्दी व बहार ऋतु वाले तीनों तरह के खरपतवार पाये जाते हैं। अगर आलू की बिजाई सितम्बर माह में की जाती

सारणी 2: आलू की फसल में प्रयोग किए जाने वाले विभिन्न खरपतवारनाशक

खरपतवारनाशक	मात्रा/एकड़	छिड़काव का समय
स्टॉम्प 30 ई.सी.	1.6-2.0 लीटर	पहले पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
आइसोप्रोट्यूरान 75 डब्ल्यू. पी.	500 ग्राम	पहले पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
मैनकोर 70 डब्ल्यू. पी.	200 ग्राम	पहले पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
लासो 50 ई.सी.	2.0-2.4 लीटर	पहले पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
एट्राजीन 50 डब्ल्यू.पी.	200 ग्राम	पहले पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
लासो + राट्राजीन	1.0 लीटर + 100 ग्राम	पहले पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
ग्रमैक्सोन 24 डब्ल्यू.एस.सी.	1.0-1.20 लीटर	जब आलू के 5-10 प्रतिशत पौधे उग जायें।

है तो फसल उगने में तीन सप्ताह का समय ले लेती है व कई बार सांठी (ईटसिट) फसल को पूरी तरह ढक लेती है। अक्तूबर माह में बोई गई फसल में सांठी, बाथु, खड़बाथु, मैणा, घुई, कृष्णनील, जंगलीपालक, आदि खरपतवार पाये जाते हैं। नवम्बर दिसम्बर महीने में गुल्ली डण्डा (कनकी) खरपतवार धान के बाद बोई गई ज़मीन में पाया जाता है। अगर गोबर की खाद डालकर आलू की बिजाई की जाती है तो मालवा खरपतवार भी काफी मात्रा में दिखाई पड़ता है। इस फसल में खरपतवारों की रोकथाम सारणी–2 में दी गई जानकारी अनुसार करें।

जब खरपतवार छोटे हों तो ग्रमैक्सोन की 1.0 लीटर मात्रा व जब खरपतवार बडे हो जायें तो 1.20 लीटर मात्रा प्रति एकड़ का प्रयोग करें। अगर आलू के खेत में पोआ (फुई) का प्रकोप है तो ग्रेमक्सोन का प्रयोग न करें जब कि दूसरी खरपतवारनाशक दवाइयां इस खरपतवार को मारती हैं। अगर आलू की फसल के बाद कद्दू जाति वाली फसल की बिजाई करनी है तो आलू की फसल में स्टॉम्प या ग्रैमोक्सोन का ही प्रयोग करें। गोल दवाई का आलू की फसल में दुष्प्रभाव पड़ता है अत: इसका इस्तेमाल आलू में न करें।

टमाटर : टमाटर की फसल हरियाणा प्रदेश में ज़्यादातर अक्तूबर–नवम्बर महीने में लगाई जाती है। इस फसल में भी गर्मी, सर्दी व पतझड़ व बहार ऋतु वाले खरपतवार पाये जाते हैं। ज़्यादातर टमाटर की काश्त करनाल, कुरूक्षेत्र व मेवात के इलाकों में की जाती है। मेवात व दादरी (भिवानी) इलाकों में एक नया परजीवी खरपतवार (मरगोज़ा) जिसे गुल्ला, मरगोज़ी आदि नाम से जाना जाता है वह इस फसल में काफी नुकसान करता है। टमाटर में साधारणतया दो निराई गुड़ाई की आवश्यकता पड़ती है। पहली पौध रोपण के लगभग 20–25 दिन बाद व दूसरी पौध रोपण के 40–45 दिन बाद। इसी समय मिट्टी चढ़ाने का भी काम करना चाहिए। टमाटर की फसल में रासायनिक खरपतवार नियन्त्रण भी सम्भव है। इस के लिए स्टॉम्प 30 ई.सी. (पैंडीमिथालीन) नामक दवाई की 1.3 लीटर मात्रा 250 लीटर पानी में मिला कर प्रति एकड़ के हिसाब से पौध रोपण के लगभग 4–5 दिन बाद छिड़कें। स्टॉम्प या 300 ग्राम सैकोंर/एकड़ को 200 लीटर पानी में घोल कर, खेत तैयार करने के बाद टमाटर की पनीरी लगाने से 3–4 दिन पहले छिड़काव कर सकते हैं। इसके खेत को तैयार करके पनीरी लगानी चाहिए। अगर टमाटर में मरगोज़ा का प्रकोप हो तो रोपाई के 45 व 90 दिन बाद लीडर (सल्फोसल्फयूरान) की 66 ग्राम मात्रा/एकड़ या सनराईस 100 ग्राम मात्रा/एकड़ 150 लीटर पानी में मिलाकर दो बार छिड़काव करें।

फूलगोभी व पत्ता गोभी : ये फसलें हरियाणा प्रान्त में जून से अप्रैल तक उगाई जाती हैं। अगेती फसल में सांठी (ईटसिट), मकड़ा, मधाना, कोंधरा, चौलाई व मोथा आदि ज़्यादा उगते हैं जबकि सर्दी ऋतु की जो मुख्य फसल है में मेथा, बायु, घुई, खड़बायु, मैणा, जंगली पालक व कई बार कनकी (गुल्लीडण्डा) भी उग जाता है। इस फसलों में खरपतवार नियंत्रण हेतु स्टॉम्प 30 ई.सी. 1.3 लीटर या बासालिन 45% 1.0–1.3 लीटर या लासो 50 प्रतिशत 2.5 लीटर प्रति एकड़ प्रयोग करें। बासालिन का छिड़काव गोभी लगाने से पहले करना चाहिए। अगर खरपतवारनाशक का छिड़काव करने के 7–8 सप्ताह बाद खरपतवार उग जायें तो एक गुड़ाई करना बहुत ज़रूरी है। इन दवाइयों का गोभी की उगी हुई पनीरी पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। अगर बाद में गुल्लीडण्डा या जंगली जई का जमाव हो जाये तो क्लोडीनाफोप नामक रसायन की 160 ग्राम मात्रा का प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें।

गाजर : हरियाणा प्रान्त में गाजर की काश्त सितम्बर से नवम्बर माह तक प्रदेश के सभी इलाकों में की जाती है। सितम्बर में बोई गई फसल में गर्मी वाले खरपतवार सांठी, मकड़ा, कोंधरा, चौलाई व मोथा ज़्यादा उगते हैं। अक्तूबर–नवम्बर में बीजी गई फसल में बाथु, खडबाथु, मैथा, मैणा, कृष्णनील, जंगलीपालक व कनकी खरपतवार ज़्यादा पाये जाते हैं। गाजर की फसल थोड़ा धीरे बढ़ने की वजह से भी खास कर सांठी जैसे खरपतवार इसे शुरू में ही ढक लेते हैं। इसलिए बिजाई से पहले या तुरन्त बाद में खरपतवारनाशक का छिड़काव करने से काफी फायदा होता है। प्रयोगों द्वारा पाया गया है कि बिजाई करने के बाद हल्का पानी लगा दें व जब खेत बत्तर आ जाये तो गीले बत्तर में स्टॉम्प 30 ई.सी. की 1.3 लीटर मात्रा या गोल 23.5 ई.सी. की 150–200 मि.ली. मात्रा प्रति एकड़ का छिड़काव करने से बिजाई के 50 दिन तक 80 प्रतिशत खरपतवारों का नियंत्रण मिलता है। अगर उक्त खरपतवारनाशक का प्रयोग न करें तो ट्रैफलान 48 ई.सी. की 800–1000 मि.ली. मात्रा/एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर बिजाई से पहले छिड़काव करें और अच्छी तरह मिट्टी में मिला दें।

मूली शलगम में भी उपरोक्त तरीके से ही छिड़काव करें। तर्जुबों द्वारा सिद्ध हुआ कि खरपतवार नियंत्रण हेतु गोल, स्टाम्प व ट्रैफलान दवाइयां जब गाजर कट जाती है तो उसमें इनके अंश नहीं पाये जाते।

मटर : इस फसल में सर्दी वाले खरपतवार जैसे कि बायु, खड़बायु, मैणा, मैणी, कृष्णनील, जंगली पालक, लोम्बड़घास, पोआ, जंगली जई व गुल्लीडण्डा इत्यादि पाये जाते हैं। अगर मटर की फसल धान के बाद उगाई जाती है तो फसल में गुल्ली डण्डे का प्रकोप ज़्यादा होता है। मटर की फसल में बिजाई के बाद (2–3 दिन के अन्दर–अन्दर) तर बत्तर ज़मीन पर 1.3–1.7 लीटर स्टॉम्प 30 ई.सी. प्रति एकड़ के हिसाब से 200–250 लीटर पानी में मिला कर छिड़काव करें। प्रयोगों से पता चला है कि इमे–जेथापायर 10 ई.सी. की 250 मि.लीटर मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई के 45–50 दिन बाद प्रयोग उगे हुए खरपतवारों पर काफी प्रभावी है। अगर फसल कमज़ोर है तो 6–7 सप्ताह पर एक गुड़ाई ज़रूर कर दें। अगर मटर में गुल्लीडण्डा, जंगली जई व लोम्बड़ घास उग जायें तो एक्सियल 5 ई.सी. नामक खरपतवारनाशक की 400 मि.लीटर मात्रा प्रति एकड़ का पहले पानी के बाद उगे हुए खरपतवारों पर छिड़काव करना चाहिए। मटर की काश्त ज़्यादातर देसी खाद डाल कर की जाती है इस लिए इस फसल में मालवा (चौड़ी पत्ती वाला खरपतवार) की समस्या भी देखने को मिलती है। इन हालात में मटर की निराई गुड़ाई ही करें।

अमरूद के प्रमुख कीट एवं उनका समन्वित प्रबन्धन

✍ सुरेन्द्र सिंह यादव, सुनीता यादव एवं मनदीप राठी
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अमरूद अपनी व्यापक उपलब्धता, भीनी सुगंध एवं उच्च पोषक तत्वों के कारण गरीबों का सेब कहलाता है। भारत में आम, केला तथा नींबू वर्गीय फसल के बाद अमरूद चौथी मुख्य फसल है। इसका फल मीठा, मधुर, सुगन्ध वाला, पाचक एवं स्वादिष्ट होने के साथ विटामिन 'सी' विटामिन 'ए' एवं ल्यूकोपिन से भरपूर होता है। इसके फलों को ताज़ा खाने के अलावा जैम, जैली एवं स्वादिष्ट पेय बनाने में भी प्रयोग किया जाता है। अमरूद बहुत कम देखभाल से भी असानी से उगाया जा सकता है परन्तु अमरूद के सफल उत्पादन में कीट एक प्रमुख रुकावट हैं। अगर किसान अमरूद में लगने वाले कीटों की पहचान सही समय पर करके, उनका सही समय पर नियन्त्रण करें तो उत्पादन को काफी हद तक बढ़ाया जा सकता है। अमरूद में लगने वाले विभिन्न कीटों में फल मक्खी, तना बेधक कीट, छाल भक्षक इल्ली तथा स्केल कीट आदि प्रमुख हैं। अत: अमरूद की अच्छी उपज के लिए इन सभी कीटों की रोकथाम आवश्यक है। प्रस्तुत लेख में अमरूद में लगने वाले प्रमुख हानिकारक कीटों के बारे में विस्तृत जानकारी व नियंत्रण के उपाए दिये गए हैं :

1. **फल मक्खियां :** अमरूद के फलों पर जुलाई से सितम्बर के महीनों में इन मक्खियों का प्रकोप अधिक होता है। इसके प्रौढ़ घरेलू मक्खी के बराबर होते हैं और तेज़ उड़ते हैं। मादा मक्खी फलों में छेद करके छिलके के नीचे अण्डे देती हैं। जिन फलों पर अण्डे दिए जाते हैं, उन पर बहुत छोटे छिद्र (जो प्राय: गहरे हरे रंग के होते हैं) देखने को मिलते हैं। छोटे-छोटे जीवाणु छिद्रों से फलों में प्रवेश कर जाते हैं जिससे फल गलकर पकने से पूर्व गिर जाते हैं। अण्डों से बाद में सूण्डियां निकलती हैं, जोकि उबले हुए चावल के समान होती हैं और फल के गूदे को खाती हैं। क्षतिग्रस्त फलों में कीट की सूंडियां भरी रहती हैं। सूण्डियां 5 से 7 दिन में पूरी विकसित हो जाती हैं और प्यूपा बनने के लिए ज़मीन पर गिर जाती हैं। नवम्बर से मार्च तक यह कीट प्रौढ़ावस्था में शीतनिष्क्रिय रहता है।

रोकथाम :

- जहां तक सम्भव हो वर्षाकालीन फसल न लें क्योंकि इस समय फल-मक्खी द्वारा नुकसान अधिक होता है।
- पके हुए फलों को पेड़ पर न छोडें।
- ग्रसित फलों को प्रतिदिन इकट्ठा कर ज़मीन में 2 फुट गहरा दबा दें या भेड़-बकरियों को खिला दें।
- ग्रीष्मकाल में ज़मीन की खुदाई करें ताकि फल मक्खी के प्यूपा मर जायें।
- 500 मि.ली. मैलाथियान (सायथियान) 50 ई.सी. + 500 ग्राम गुड़ या चीनी को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड छिड़काव करें। अगर प्रकोप बना रहता है तो छिड़काव 7 से 10 दिन के अन्तर पर दोहराएं। दवाई छिड़कने के 5 दिन तक फलों को न तोड़ें।
- नर फल मक्खी को मिथाइल यूजोनिल नामक रसायन आकर्षित करते हैं। अत: इन्हें कीटनाशक के साथ मिलाकर कीटों को नष्ट किया जा सकता है। एक एकड़ क्षेत्र में 16 मिथाइल यूजोनिल ट्रैप पेड़ों पर 5 से 6 फीट ऊंचाई पर जुलाई के प्रथम सप्ताह से लगाएं। ट्रैप के मिश्रण को प्रति सप्ताह बदल दें। इसको कली से फल बनने के समय पर ही बगीचों में उचित दूरी पर लगा देना चाहिए।

2. **छाल खाने वाली सूण्डी :** अमरूद के साथ-साथ यह कीट प्राय: सभी फलदार, छायादार व अन्य पेड़ों को नुकसान पहुंचाता है। यह कीट प्राय: दिखाई नहीं देता परन्तु जहां पर टहनियां अलग होती हैं वहां पर इसका मल व लकड़ी का बुरादा जाले के रूप में दिखाई देता है। दिन के समय इस कीट की सूंडी तने के अन्दर सुरंग बनाती है एवं खुराक नली को खाकर नष्ट कर देती है, जिससे पौधों के दूसरे भागों में पोषक तत्व नहीं पहुंच पाते हैं। एक छिद्र में एक इल्ली या लट पायी जाती है। रात को यह सूंडी छेद से बाहर निकलकर रेशमी धागों के जाले से जुड़े हुए लकड़ी के टुकड़ों व अपने मल से बने रक्षक आवरण के नीचे रहकर छाल को खाती है। छोटे पौधे में प्रकोप होने से पौधा बीमार दिखाई देता है और बढ़वार रुक जाती है व बहुत तेज़ हवा चलने पर, प्रकोपित टहनियां एवं तने टूट कर गिर जाते हैं। एक वर्ष में इस कीट की एक ही पीढ़ी होती है जो जून-जुलाई से शुरू होती है।

रोकथाम :

- कटी-फटी छाल या ढीली छाल को हटा दें ताकि वयस्क अण्डे न दे पाएं और सूखी एवं ग्रसित शाखाओं को काटकर जला दें।
- बाग को साफ-सुथरा रखें व निर्धारित संख्या से ज़्यादा पेड़ न लगाएं।
- जाले हटाने के बाद निम्नलिखित कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग करें:

  सितम्बर-अक्तूबर में 10 मि.ली मोनोक्रोटोफॉस (नुवाक्रान) 36 डब्ल्यू. एस.सी. को 10 लीटर पानी में मिलाकर, सुराखों के चारों ओर की छाल पर लगाएं।

  फरवरी मार्च में 10 मि.ली. फैनिट्रोथियान (फोलिथियान/सुमिथियान) 50 ई.सी को 10 लीटर पानी में मिला कर घोल बनाएं व रूई के फोहों को घोल में डुबोकर किसी धातु की तार की सहायता से कीड़ों के सुराख के अन्दर डाल दें एवं सुराख को गीली मिट्टी से ढक दें।

  अथवा

  10 प्रतिशत मिट्टी के तेल का इमल्शन (1 लीटर मिट्टी का तेल + 100 ग्राम साबुन + 9 लीटर पानी) भी लगा सकते हैं।
- कम छिद्र हों तो लोहे के तार से ही छिद्र में लट को मार दें। आसपास के सभी वृक्षों के सुराखों में भी इन दवाइयों का प्रयोग करें।

3. **मिली बग :** दिसम्बर-जनवरी में अधिक संख्या में मिली बग के छोट-छोटे अखरोट की तरह भूरे शिशु ज़मीन के अन्दर अंडों से निकल कर

वृक्षों पर चढ़ते हैं तथा पत्तियों की सतह पर जमा हो जाते हैं। विकसित शिशु और प्रौढ़ मादा, चपटे, मोटे एवं अंडाकार होते हैं तथा इनके शरीर के ऊपर सफेद रंग का मोम जैसा चूर्ण जमा होता है। नये फुटाव आने पर, फरवरी में ये पतली डालियों पर जमा हो जाते हैं। इस कीट की ऊपरी सतह मोम जैसी होती है, इस कारण इन पर रसायनों का असर बहुत धीरे-धीरे होता है। इस कीट के निम्फ तथा वयस्क दोनों ही कोमल शाखाओं (टहनियों), कोमल पत्तियों व पंखुड़ियों से चिपककर रस चूसते हैं, जिससे पौधा पीला पड़ने लगता है। पत्तियां मुरझाकर सूख जाती हैं। अधिक प्रकोप होने पर तो फूल भी कम आते हैं तथा उनसे फल भी कम बनते हैं। यह कीट एक लसलसा मीठा पदार्थ स्रावित करता है, जिससे कवक (फफूंद) का आक्रमण भी शुरू हो जाता है। इस कीट का प्रकोप फरवरी-मार्च तक पाया जाता है।

रोकथाम :

- बगीचों में साफ-सफाई का पूर्णतया ध्यान रखें। प्रमुख खरपतवारों एवं गाजर घास को उखाड़कर नष्ट कर दें।
- पेड़ के आसपास की जगह साफ रखें तथा सितम्बर तक वृक्षों के नीचे ज़मीन की मिट्टी को प्रतिमाह पलटते रहें, जिससे कीट के अण्डे सूर्य की गर्मी एवं परजीवी शत्रुओं द्वारा नष्ट हो सकें।
- पेड़ की टहनियों को ज़मीन से न छूने दें।
- दिसम्बर के मध्य में कीट के शिशुओं को वृक्षों पर चढ़ने से रोकने के लिए भूमि से 0.5-1 मीटर की ऊंचाई पर तने पर 25-30 सैं.मी. चौड़ी चिकनी अल्काथीन (250-400 गेज़ पॉलिथीन) की पट्टी लगाएं। शीट लगाने से पहले वृक्ष की ऊपरी पुरानी छाल 5 से 8 सैंमी. चौड़ी पट्टी के बराबर कुल्हाड़ी से काटकर छील लें। इस समतल स्थान के ऊपर 5 सैं.मी. चौड़ी तारकोल (लुक) की तह किसी लकड़ी से लगाकर तुरन्त शीट के निचले भाग को अंगुलियों से अच्छी तरह से दबा दें जिससे शीट और लुक के बीच कोई खाली जगह न रहे। लुक की सहायता से शीट का ऊपरी हिस्सा भी तने पर 2-3 जगह चिपका दें।
- बाग में अन्य फलों, फूलों व जंगली वृक्षों पर भी बैंड (पट्टी) लगाएं।
- अप्रैल व मई में वृक्षों से नीचे उतरती बैंडों में फंसी हुई या नीचे गिरी हुई मादाओं को बाल्टी में एकत्रित कर सूखी पत्तियों के साथ जला दें।
- अल्काथीन पट्टी के नीचे एकत्रित कीटों को मारने के लिए 300 मि. ली क्विनलफॉस (एकालक्स) 25 ई.सी. को 50 लीटर पानी में मिलाकर प्रति 50 वृक्षों पर मध्य-जनवरी और फिर मध्य-फरवरी में छिड़काव करें। पूर्ण विकसित वृक्ष के लिए लगभग एक लीटर घोल की आवश्यकता पड़ती है।

  पत्तों, टहनियों आदि पर एकत्रित कीटों को नष्ट करने के लिए 1.5 लीटर क्विनलफॉस (एकालक्स) 25 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

4. प्ररोह एवं फल बेधक : इस कीट की इल्लियां अमरूद के फल, कलियों एवं प्ररोहों को क्षति पहुँचाती हैं। अण्डों से निकलने के बाद यह फलों के गूदों, बीज, कलियों एवं प्ररोहों के मुलायम उत्तकों को खाकर क्षति पहुँचाती है। क्षति ग्रस्त फलों से ये अपना मल निकालती हैं, जिससे फलों में सड़न पैदा हो जाती है। क्षति ग्रस्त प्ररोह एवं कलियाँ भी मुरझाकर सूख जाती हैं। कभी-कभी फल भी पकने से पूर्व गिर जाते हैं।

रोकथाम :

- बाग के आसपास मौजूद खरपतवारों को नष्ट कर दें।
- पौधों के क्षतिग्रस्त भाग को इकट्ठा कर नष्ट कर दें।
- मैलाथियान 50 ई.सी. 1 मि.ली. प्रति लीटर का प्रथम छिड़काव फूल आते समय तथा अगला फल बनते समय करें।
- एक लाईट ट्रैप प्रति हैक्टेयर लगाएं।

5. अनार की तितली : इस कीट की लटें (लारवा) फल के अन्दर घुसकर गूदे को खाती हैं। गूदे के अलावा यह बीजों को भी खा जाती हैं। क्षति ग्रस्त फलों में बदबू आने लगती है व फल पकने से पूर्व ही गिर जाते हैं। लटों के घुसने के स्थान पर फल अन्दर की तरफ दबा हुआ मालूम पड़ता है।

रोकथाम:

- बगीचों को खरपतवार मुक्त रखें व ग्रसित फलों को इकट्ठा कर नष्ट कर दें।
- गर्मियों में खुदाई अथवा गुडाई कर दें ताकि प्यूपा बाहर आ जाएं और सूर्य की किरणों व पक्षियों द्वारा नष्ट किये जा सकें।
- अमरूद के बाग के आसपास अनार की खेती न करें।
- मैलाथियान 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से पहला छिड़काव फूल बनते समय तथा अगला फल बनते समय करें। फूल आने वाली अवस्था पर नीम उत्पाद का 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।

6. स्केल कीट : किसी-किसी क्षेत्र अथवा बाग में कई तरह के नालीदार (फ्ल्यूटिड) कंटीले एवं नरम स्केल कीट अमरूद के पेड़ पौधों को कभी-कभी अधिक हानि पहुंचाते हैं। ये कीट छोटे, गोल एवं पीले भूरे या हल्के भूरे रंग के होते हैं तथा सफेद मोम जैसे चूर्णी पदार्थ से ढके रहते हैं। अण्डों से तुरन्त बाद शिशु, मुलायम टहनियों और पत्तियों की निचली सतह पर चिपककर रस चूसते हैं। क्षतिग्रस्त वृक्षों का विकास रुक जाता है। ये कीट मीठा रस (मधुस्राव) भी छोड़ते हैं जिससे काली चींटियां आकर्षित होती हैं और फफूंदी भी लग जाती है। फरवरी-मार्च से अक्तूबर-नवम्बर तक यह कीट सक्रिय रहता है तथा प्रौढ़ के रूप में शीत-निष्क्रिय होता है।

रोकथाम :

- स्केल कीटों से क्षतिग्रस्त वृक्षों पर 1.5 लीटर क्विनलफॉस (एकालक्स) 25 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ मार्च और सितम्बर में छिड़कें।
- क्षतिग्रस्त टहनियों को काटकर जला दें।

फलवृक्षों की काट-छांट

✍ रणबीर सिंह सैनी, सुरेन्द्र सिंह[1] एवं मुकेश कुमार[2]
कृषि विज्ञान केन्द्र, मण्डकौला
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

फलदार पौधों में काट-छांट का विशेष महत्व है विशेषकर पतझड़ी पौधों, फलवृक्षों में। सदाबहार पौधों में पतझड़ी पौधों की तरह काट-छांट का कोई विशेष नियम नहीं है सिवाय कुछ फल वृक्षों के जैसे-बेर, लीची आदि। इन फलवृक्षों में काट-छांट कार्य सूखी, रोगग्रस्त, नीचे झुकी व ज़मीन को छूती हुई टहनियाँ/शाखाओं को काटने तक सीमित है। यह कार्य फलों की तोड़ाई के तुरन्त बाद या फिर बसन्त ऋतु में नई बढ़वार शुरू होने से पहले किया जाता है। टहनियों को मुख्य शाखा के समीप से काटा जाता है व इसका कोई भाग शेष नहीं छोड़ा जाता। एक इंच से बड़े सभी कटे हुए सिरों पर बोर्डो पेस्ट का लेप करना चाहिए ताकि कटे सिरों को गलने या फफूंदी आदि के आक्रमण से बचाया जा सके। सदाबहार फलवृक्षों में काट-छांट की सिफारिशें इस प्रकार हैं :

आम : आमतौर पर आम के पौधों को प्राकृतिक रूप से बढ़ने दिया जाता है तथा काट-छांट की भी विशेष आवश्यकता नहीं होती। केवल सूखी, बीमार या गुच्छा-मुच्छा रोग से प्रभावित शाखाओं/टहनियों को काटा जाता है।

लीची और लौकाट : इनमें भी सूखी और रोगग्रस्त टहनियों को निकाला जाता है। इसके अतिरिक्त पके हुए फलों को शाखाओं के कुछ भाग के साथ तोड़ा जाता है जो काट-छांट का कार्य करती हैं और नई बढ़वार को प्रोत्साहन देती हैं।

अमरूद : अमरूद के पेबन्द पौधों से बाद में लगाने के बाद पेबन्द जोड़ के नीचे से फुटाव निकलते हैं जिन्हें निरन्तर काटते रहना आवश्यक है। प्रथम 1-2 वर्ष तक मुख्य तने से निकलने वाली शाखाओं को बढ़ने दिया जाता है और दूसरे या तीसरे साल इन्हें काट दिया जाता है। इसके बाद 4-5 नई शाखाओं को उचित दूरी पर रखा जाता है तथा शेष सभी को काट दिया जाता है। तीसरे से चौथे वर्ष मुख्य तने पर निकलने वाली शाखाओं को काट दिया जाता है ताकि प्रकाश पौधे के अन्दर तक प्रवेश कर सके। चार से पांच वर्ष की आयु तक मुख्य शाखाओं से निकलने वाली टहनियों को काटा जाता है। इसके अतिरिक्त सभी सूखी व टूटी टहनियों को निरन्तर काटते रहना चाहिए। यदि पौधे अचानक पैदावार कम देने लगें तथा ऊपर से सूखने लगें तो सभी मुख्य शाखाओं को मुख्य तने से 75-100 सैं.मी. ऊपर से काट दिया जाता है। यह कार्य फरवरी-मार्च के दौरान करना चाहिए। इसके बाद इन्हें पर्याप्त खाद, उर्वरक व सिंचाई देनी चाहिए। ऐसा करने पर ये फिर भरपूर पैदावार देना आरम्भ कर देते हैं।

नींबूवर्गीय फल : नर्सरी अवस्था से ही मूलवृन्त से निकलने वाली सभी शाखाओं को काटते रहना चाहिए। आरम्भिक अवस्था में लगने वाले फलों को तोड़ते रहना चाहिए। पौधे जल्दी से विकसित हो सकें। बड़े नींबूवर्गीय फलवृक्षों को काट-छांट की विशेष आवश्यकता नहीं होती। केवल बारामासी नींबू और किन्नो को काट-छांट की आवश्यकता होती है। क्योंकि इन दोनों में अनेक पतली-पतली कमज़ोर टहनियाँ निकलती हैं जो कोई फल नहीं देती और फलित टहनियों के साथ दखलअन्दाज़ी करती हैं। पौधों के केन्द्र में शाखाओं की भीड़ हो जाती है जिससे नीचे की टहनियों को धूप नहीं मिलती। इन शाखाओं का एक-तिहाई से दो-तिहाई भाग काट देना चाहिए। इसके अतिरिक्त सूखी, रोगी, टूटी तथा ज़मीन को छूती शाखाओं को फल तोड़ने के बाद दिसम्बर-जनवरी में निकाल देना चाहिए।

इसी तरह अन्य सदाबहार पौधों में भी काट-छांट का कार्य सूखी, रोगी, झुकी हुई व एक-दूसरे में उलझी टहनियाँ निकालने तक सीमित होता है।

पतझड़ी फलवृक्षों में काट-छांट

बेर : बेर में प्रतिवर्ष अत्यधिक बढ़वार होती है और शाखाओं के कमज़ोर होने के कारण वे झुककर ज़मीन पर टिक जाती हैं। इसलिए पहले 2-3 वर्ष में 4-5 मुख्य शाखाएं उचित दूरी पर ज़मीन से 90-100 सैं.मी. ऊपर मुख्य तने के चारों ओर रखनी चाहिएं ताकि पौधों का एक मज़बूत ढांचा तैयार हो सके। नर्सरी में पेबन्द पौधों को सहारा देना चाहिए क्योंकि बेर के अधिकतर फल नई टहनियों पर पत्तों के बगल में लगते हैं इसलिए वार्षिक काट-छांट अति आवश्यक है। काट-छांट का उत्तम समय उत्तरी भारत में 15-30 मई तथा दक्षिणी भारत में फरवरी-मार्च है। चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल पर किए गये शोध कार्य से यह निष्कर्ष निकला है कि बेर की एक वर्ष पुरानी टहनियों/शाखाओं को 6 द्वितीय के बाद काट देना चाहिए। इसके अतिरिक्त जहाँ कहीं भी शाखाओं की भीड़ हो तो कुछ शाखाओं को पूरी तरी तरह निकाल देना चाहिए।

फालसा : फालसा में ज़मीन की सतह से ही अनेक तने निकलते हैं और सभी फल देते हैं क्योंकि नई शाखाएं ही फल देती हैं अत: वार्षिक काट-छांट अनिवार्य है। फालसा में काट-छांट का उत्तम समय 15 दिसम्बर से 15 जनवरी है। फालसा की बौनी किस्म की कटाई ज़मीन से 30-40 सैं.मी. ऊपर से आधा काट देना चाहिए। इसके साथ-साथ 30-40 प्रतिशत शाखाओं को पूरी तरह निकाल दिया जाता है।

नाशपाती : आमतौर पर नाशपाती के पेड़ों की सिधाई मोडिफाईड लीडर विधि से की जाती है। इस विधि में सैन्ट्रल लीडर को 90-120 सैं.मी. की ऊँचाई पर काट दिया जाता है। द्वितीय वर्ष में पेड़ के केन्द्र से निकलने वाली सबसे बड़ी शाखा को रख लिया जाता है और इसके अतिरिक्त पेड़ के चारों ओर 10-15 सैं.मी. की दूरी पर 4-5 पार्श्व शाखाएं रखी जाती हैं। द्वितीय वर्ष में रखी गई पार्श्व शाखाओं से तृतीय व चतुर्थ वर्ष में और पार्श्व शाखाएं निकलेंगी जिनमें से दो को रखकर शेष सभी को

[1]सहायक निदेशक (बागवानी), विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।
[2]सहायक वैज्ञानिक (बागवानी), क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल

निकाल दिया जाता है। इस प्रकार तृतीय व चतुर्थ वर्ष में निकलने वाली पार्श्व शाखाएं द्वितीय शाखाएं कहलाएंगी। पाँचवें वर्ष की काट-छांट के समय सैंट्रल लीडर को बाहर की तरह बढ़वार प्रेरित करते हुए काट दिया जाता है।

फलित पौधों की काट-छांट

नाशपाती के फल छोटी-छोटी टहनियों पर लगते हैं जिन्हें स्पर कहते हैं। ये बहुत धीरे-धीरे बढ़ते हैं व परिपक्व होने में 2-5 वर्ष लेते हैं व 10-15 वर्ष तक फल देते हैं। अत: पहले 10-15 वर्ष पौधों को अधिक काट-छांट की आवश्कता नहीं होती। कमज़ोर, रोगी व एक-दूसरे में फँसी हुई शाखाओं को निरन्तर निकालते रहना चाहिए। पुराने वृक्षों को नवीकरण तथा अधिकतम फलित शाखाएं प्राप्त करने के लिए अधिक काट-छांट की ज़रूरत पड़ती है। इसके लिए बड़ी-बड़ी शाखाएं पूरी तरह निकाल दी जाती हैं जिससे सूर्य की रोशनी वृक्ष के केन्द्र में भी प्रवेश करती है और साथ ही नये स्पर भी निकलते हैं जो फिर 10-15 वर्ष तक फल देते हैं। काट-छांट व फल तोड़ते समय स्पर को नुकसान नहीं होना चाहिए। नाशपाती की काट-छांट का उत्तम समय फरवरी माह है।

आड़ू : आड़ू की सिधाई भी मोडिफाइड लीडर विधि से की जाती है जिससे सेन्ट्रल लीडर को करीब 1 मीटर की ऊँचाई पर काट दिया जाता है। साथ-साथ सभी शाखाएं भी काट दी जाती हैं। यह कार्य खेत में पौधे लगाते समय ही कर देना चाहिए। इसके बाद केवल 4-5 शाखाएं जो पेड़ के चारों ओर उचित दूरी पर रखी जाती हैं, शेष सभी शाखाओं को निकाल दिया जाता है। सबसे नीचे वाली शाखा ज़मीन से कम से कम 40-50 सैं.मी. ऊपर होनी चाहिए। द्वितीय वर्ष में सेंट्रल लीडर को बढ़ने दिया जाता है तथा पार्श्व शाखाओं की अत्यधिक संख्या को कम कर दिया जाता है। तृतीय वर्ष में सेन्ट्रल लीडर को पार्श्व शाखा के रूप में फिर काट दिया जाता है। आड़ू के फल एक वर्ष पुरानी शाखाओं पर लगते हैं। अत: वार्षिक काट-छांट अति अनिवार्य है। आड़ू की काट-छांट का उत्तम समय 25 दिसम्बर से 15 जनवरी है। एक वर्ष पुरानी शाखाओं में से 40 प्रतिशत को पूरी तरह निकाल दिया जाता है व शेष सभी शाखाओं का 30-40 प्रतिशत भाग काट दिया जाता है।

आलूबुखारा : आलूबुखारा की सिधाई भी आड़ू की तरह ही की जाती है। सेन्ट्रल लीडर को पौधे खेत में लगते समय ही ज़मीन से एक मीटर ऊपर काट दिया जाता है। द्वितीय वर्ष की काट-छांट के समय अनेक पार्श्व शाखाओं में से केवल चार शाखाएं रखकर शेष सभी को काट दिया जाता है ताकि पौधों का उचित ढ़ांचा तैयार हो जाये। तृतीय एवं चतुर्थ वर्ष में पार्श्व शाखाओं को सन्तुलित अनुपात में रखा जाता है और अनचाही शाखाओं को निकाल देना चाहिए। पाँचवे वर्ष में सेंट्रल लीडर को उचित स्थान से एक पार्श्व शाखा केक रूप में काट देना चाहिए। आड़ू की भांति आलूबुखारा भी एक वर्ष पुरानी शाखाओं व स्पर पर फल देता है। अत: जनवरी मास में प्रतिवर्ष हल्की कटाई करनी चाहिए। कमज़ोर, सूखी, रोगग्रस्त व एक दूसरे में फँसी सभी शाखाएं निकाल देनी चाहिएं। मुख्य तने से निकलने वाली सभी शाखाएं निरन्तर काटते रहना आवश्यक है।

फलदार पौधों की काट-छांट के समय सावधानियां

1. फलवृक्षों की काट-छांट केवल तेज़ धारदार/दांतेदार सकेटियर अथवा आरी से ही करनी चाहिए
2. फल वृक्षों में काट-छांट का कार्य सही समय पर करना चाहिए।
3. प्रत्येक फलवृक्ष की काट-छांट की तीव्रता का आवश्यकतानुसार विशेष ध्यान रखना चाहिए।
4. काट-छांट साफ होनी चाहिए व शाखाओं का छिलका नहीं उतरना चाहिए।
5. 2.5 सैं.मी. से मोटे सभी कटे सिरों को 2 किलोग्राम कॉपर सल्फेट, 3 किलोग्राम चूना, 15 लीटर पानी (बोर्डो मिश्रण) की पेस्ट से पोताई कर देनी चाहिए।

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951(ई) के तहत एक सूचना जारी की है कि 12 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स+फंजीसाइड्स+ हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 8 अगस्त 2018 से ही बन्द कर दिया जाए। छ: कीटनाशकों का प्रयोग 31 दिसम्बर, 2018 से बन्द कर दिया जाए। इनकी सूची इस प्रकार है:

8 अगस्त, 2018 से प्रतिबंधित कीटनाशक

1. **बेनोमाईल** (Benomyl)
2. **कार्बाराइल** (Carbaryl)
3. **डाय जिनॉन** (Diazinon)
4. **फेनारिमोल** (Fenarimol)
5. **फेन्थियॉन** (Fenthion)
6. **लिन्यूरॉन** (Linuron)
7. **मैथॉक्सी इथाइल मरकरी क्लोराइड** (Methoxy Ethyl Mercury Chloride)
8. **मिथाइल पैराथियॉन** (Methyl Parathion)
9. **सोडियम सायनाइड** (Sodium Cyanide)
10. **थियोमेटॉन** (Thiometon)
11. **ट्रायडमॉर्फ** (Tridemorph)
12. **ट्राइफ्लूरालिन** (Trifluralin)

31 दिसम्बर, 2020 से प्रतिबंधित होने वाले कीटनाशक

1. **एलाक्लोर** (Alachlor)
2. **डाइक्लोर्वास** (Dichlorvos)
3. **फोरेट** (Phorate)
4. **फास्फोमिडान** (Phosphamidon)
5. **ट्राइज़ोफॉस** (Triazophos)
6. **ट्राइक्लोर्फोन** (Trichlorfon)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

रबी की तिलहनी फसलों में सल्फर का महत्व

✍ मुकेश कुमार जाट, प्रमोद कुमार यादव एवं रामस्वरूप दादरवाल
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

फसलों को उपयुक्त बढ़वार व पैदावार के लिए मुख्यत: 17 तत्वों की कम या ज़्यादा रूप से आवश्यकता होती है। उन सभी आवश्यक पोषक तत्वों में सल्फर तत्व का एक महत्वपर्ण स्थान है तथा इसका स्थान द्वितीय पोषक तत्वों में सबसे पहले है। सल्फर मृदा में जिप्सम, पायराइट्स आदि खनिजों के रूप में पाया जाता है। मृदा में कुल सल्फर की औसत मात्रा 0.01-0.1 प्रतिशत होती है। वर्तमान समय में किसान अधिकतम उत्पादन हेतु पौधों को अधिकाधिक उर्वरक देने का प्रयास कर रहा है। प्रमुख उर्वरक यूरिया तथा डायअमोनियम फास्फेट में सल्फर नहीं होने से तथा कार्बनिक खादों के सीमित प्रयोग से मृदा में द्वितीय तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होती जा रही है। उसमें सल्फर की कमी एक वास्तविक समस्या है। तेल वाली फसलों जैसे सरसों, तारामीरा, सूरजमुखी व मूंगफली आदि के लिए संतुलित उर्वरक का प्रयोग आवश्यक है क्योंकि सल्फर तेलवाली फसलों में तेल की मात्रा व गुणवत्ता को बढ़ाने के साथ-साथ पौधों में रोग प्रतिरोधकता भी बढ़ाता है। अत: टिकाऊ तथा अधिक उत्पादन के लिए सल्फर तत्व की आपूर्ति आवश्यक है।

सल्फर का महत्व :

सल्फर कुछ महत्वपूर्ण ऐमिनो अम्लों-सिस्टाइन, सिस्टीन, मिथियोनीन तथा प्रोटीन संश्लेषण में आवश्यक होता है। प्रोटीन में पादप ऊतकों का अधिकांश नाइट्रोजन और सल्फर सन्निहित रहता है। पौधों में नाइट्रोजन और सल्फर एक निश्चित अनुपात में पाये जाते हैं। पौधों में आमतौर पर नाइट्रोजन की 1.5 प्रतिशत तथा सल्फर की 0.1 प्रतिशत मात्रा होती है। सल्फर क्लोरोफिल के निर्माण में भी सहायता करता है। सल्फर प्राय: तेल वाली फसलों में उत्पादकता और रोग प्रतिरोधकता को बढ़ाने में सहायता करती है।

सल्फर की कमी के लक्षण :

1. इसकी कमी के लक्षण सबसे पहले पुरानी पत्तियों में दिखाई देते हैं और धीरे-धीरे नयी पत्तियों पर भी इसका प्रभाव बढ़ता जाता है।
2. पौधों की ऊपरी पत्तियों का रंग हल्का पीला व आकार छोटा हो जाता है। पत्तियों का रंग तो हरा रहता है परन्तु बीच का शिरा पीला हो जाता है।
3. सरसों में या अन्य तेल वाली फसलों में इसकी कमी से नई पत्तियां प्यालेनुमा हो जाती हैं तथा पत्तियों का निचला भाग लालिमा लिये दिखाई देता है।
4. फसल की गुणवत्ता में भी कमी आ जाती है।
5. तेल वाली फसलों में तेल की गुणवत्ता कम हो जाती है।
6. तेल वाली फसलों में पत्तियों के पीलेपन की वजह से भोजन पूरा नहीं बना पाती हैं और उत्पादन में कमी आने से तेल का प्रतिशत कम हो जाता है।

सल्फर की कमी के कारण :

1. तेलवाली फसलों में बुवाई से पूर्व खेत में उचित मात्रा में कार्बनिक/जैविक खादों का प्रयोग न करना ।
2. भूमि में संतुलित उर्वरकों का प्रयोग न करना।
3. लगातार विभिन्न फसलों द्वारा सल्फर ज़मीन से लेते रहना व सल्फर रहित उर्वरकों का प्रयोग करना।
4. निक्षालन द्वारा सल्फर की कमी हो जाती है।
5. यूरिया तथा डी.ए.पी. के बढ़ते उपयोग ने अमोनियम सल्फेट तथा सुपर फास्फेट के उपयोग को बाधित किया है जो कि गंधकयुक्त उर्वरक है।
6. उच्च उत्पादन देने वाली किस्मों के आगमन से पूर्व (1960 से पूर्व) मृदा में इसकी कमी नहीं थी लेकिन अधिक उत्पादन के साथ सल्फर के बढ़ते उपग्रहण से इसकी कमी परिलक्षित होने लगी है।

कमी को सुधारना :

प्राय: तात्विक सल्फर क्षारीय मृदा को सुधारने के लिए प्रयोग की जाती है। मृदा में मिलाने पर यह कैल्शियम मैग्नेशियम आदि के सल्फेट में परिवर्तित हो जाती है। जिप्सम में 18 प्रतिशत सल्फर होती है। यह कैल्शियम तथा सल्फर प्रदान करता है। मृदा में सल्फर उर्वरक के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। सल्फर उर्वरकों जैसे अमोनियम सल्फेट, जिप्सम, सुपर फास्फेट, पोटेशियम सल्फेट, अमोनियम सल्फेट, नाईट्रेट द्वारा मृदा में मिलाया जाता है। इन उर्वरकों तथा खाद्यों के प्रयोग से मृदा में सल्फर की कमी दूर की जा सकती है।

उपयोग कब करें :

1. सामान्यरूप से तात्विक सल्फर का प्रयोग बुवाई से 21 दिन पूर्व नम मृदा में किया जाना चाहिए।
2. जिप्सम द्वारा पूर्ति करने पर इसका उपयोग बुवाई के समय भी किया जा सकता है, आवश्यक होने पर खड़ी फसल में भी किया जा सकता है।

सल्फर के स्रोत :

1. सुपर फास्फेट तथा जिप्सम सर्वाधिक उपयुक्त पाये जाते हैं।
2. तात्विक गंधक, पायराइट एवं अमोनिया सल्फेट भी प्रयोग किये जा सकते हैं।

सल्फर की मात्रा का निर्धारण :

1. खड़ी फसल में इसका निदान प्रकट होने वाले लक्षणों को देखकर किया जाता है। तेल वाली फसलों में अत्यधिक न्यूनता में 40, न्यूनता में 30 एवं मध्यम मृदा में 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर का प्रयोग लाभकारी है।

(शेष पृष्ठ 22 पर)

मृदा को स्वस्थ रखने के विकल्प एवं प्रबंधन

✍ पूजा रानी, नरेंदर कुमार एवं विकास कुमार
कृषि विज्ञान केंद्र, सदलपुर
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बीसवीं सदी की हरित क्रांति ने भारत में खाद्यानों का उत्पादन बढ़ाने में उल्लेखनीय योगदान दिया। उन्नत किस्में, उन्नत सस्य क्रियाएं, रासायनिक उर्वरक व पौध सुरक्षा के लिए रसायनों के उपयोग से प्रांरभ में फसल उत्पादन में तेज़ी से बढ़ोत्तरी हुई। परंतु विगत कुछ दशकों से उत्पादन एक स्तर पर रुक गया है तथा इसकी आगामी बढ़ोत्तरी होना मुश्किल है। इस रुके हुए उत्पादन स्तर का प्रमुख कारण रसायनों के अंधाधुंध उपयोग से मृदा की गुणवत्ता में आई गिरावट है।

मृदा एक जीवित निकाय है जिसके प्रभाषित जैविक, रासायनिक व भौतिक गुण धर्म होते हैं इस में से किसी भी एक गुण धर्म में हुआ परिवर्तन मृदा की उपजाऊ शक्ति को प्रभावित करता है। रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध उपयोग, लवणीय व क्षारीय पानी द्वारा सिंचाई व उद्योगों अथवा सीवरेज अपशिष्टों का खेतों में समावेश जैसे मुख्य कारक हैं जो मृदा के मूलभूत गुणों को परिवर्तित कर देते हैं तथा उपजाऊ क्षमता को क्षीण कर देते हैं। इसी के साथ किसानों द्वारा रासायनिक उर्वरकों को जैविक खादों पर प्रधानता देने से मृदा में उपस्थित लाभदायक सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या में भारी कमी आ गई है। उपरोक्त सभी कारणों से हरियाणा प्रदेश की मिट्टी अस्वस्थ श्रेणी में आ गई है।

मृदा स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक

1. औद्योगीकरण एवं शहरीकरण
2. कृषि रसायनों का अनियंत्रित उपयोग
3. सिंचाई के साधनों का अवैज्ञानिक प्रयोग
4. सघन खेती
5. जैविक खादों का अनुप्रयोग
6. रासायनिक उर्वरकों का असंतुलित मात्रा में प्रयोग

मृदा स्वास्थ्य में क्षरण से होने वाले दुष्प्रभाव

- मनुष्यों व जानवरों के स्वास्थ्य में गिरावट
- भूमिगत व सतहीजल की गुणवत्ता में नुकसान कारक बदलाव
- खाद्य श्रृखंला में विषाक्त तत्वों का प्रवेश
- फसल उत्पदान और उत्पादकता में गिरावट
- मृदा जैव विविधता में कमी

खेत की मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ (जैवकार्बन) मृदा के स्वस्थ होने के सूचक होते हैं। परंतु कृषि के रसायनों का अंधाधुंध प्रयोग, जैविक खादों की अनदेखी, अवैज्ञानिक तरीके से सिंचाई, एक ही रासायनिक उर्वरक का लगातार प्रयोग आदि कई कारण हैं जिसकी वजह से मृदा स्वास्थ्य बुरी तरह प्रभावित हुआ है।

मृदा को स्वस्थ रखने के विकल्प एवं प्रबंधन कार्यनीति

समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन : किसानों को एक ऐसी पादप पोषण व्यवस्था बनानी होगी जिस में पोषक तत्वों की उपलब्धता के लिए प्राकृतिक कार्बनिक पदार्थ, जैविक एवं कृत्रिम रूप से संश्लेषित रासायनिक स्त्रोतों का समुचित और संतुलित समन्वय किया जा सके। मृदा स्वास्थ्य एवं बढ़ती आबादी के भरण पोषण दोनों तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इन तीनों स्त्रोतों का उचित अनुपात में उपयोग अनिवार्य है। प्राकृतिक खादों से पौधों को पोषक तत्व के साथ मृदा में भी कार्बन उपलब्ध होता है जो सूक्ष्म जीवों के लिए ऊर्जा का स्त्रोत है। जैव उर्वरक या जीवाणु खाद जीवित उर्वरक हैं जिस में वांछित सूक्ष्म जीव विद्यमान होते हैं जो प्राकृतिक रूप से पौधों का पोषण करते हैं।

जीवाणु खाद के प्रकार :

1. **नाइट्रोजन यौगिकी करण करने वाले :** राइजोबियम (दलहनी फसलों में) एजोटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलम, एसीटोबैक्टर आदि (अनाज वाली फसलें)
2. **फास्फोरस घलनशीलता के लिए :** स्यूडोमोनास, एसर्पजिलस, पैनिसिलियम, बैसिलस आदि।
3. **पोटाश घुलनशीलता के लिए :** बेसिलस, एसीटोबैक्टर

इन्हीं दोनों स्त्रोतों के साथ-साथ रासायनिक उर्वरक आज भी पोषक तत्वों के मुख्य स्त्रोत हैं तथा बढ़ती आबादी को ध्यान में रखते हुए इनका दूसरा विकल्प भी नहीं है। अत: रासायनिक उर्वरकों का संतुलित व वैज्ञानिक तरीके से उपयोग भी समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन प्रणाली का अहम घटक है। समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य सही समय पर पोषक तत्वों को सही मात्रा में प्रदान करना है और साथ ही साथ कृषि लागत में उल्लेखनीय कमी लाना तथा मृदा स्वास्थ्य बनाए रखना है जिससे फसल उत्पादन ज़्यादा लाभकारी व टिकाऊ बन सके।

समन्वित कीट व खरपतवार प्रबंधन :

यह एक ऐसी व्यवस्था है जिससे कृषि से संबन्धित, विभिन्न परिस्थितियों तथा पर्यावरण के साथ सामंजस्य बनाते हुए नुकसानदायक कीटों, रोगों व खरपतवारों के नियंत्रण की तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। इस व्यवस्था में रसायनों पर निर्भरता कम करने पर बल दिया जाता है जिस के कारण पर्यावरण भी सुरक्षित रह सके तथा मृदा में रहने वाले सूक्ष्म जीवों का भी अस्तित्व कायम रहे।

सिंचाई व्यवस्था व पानी की गुणवत्ता :

हरियाणा में मुख्य तौर पर सतही सिंचाई पद्धतियां प्रचलित हैं जो कम प्रभावशाली व मृदा की उर्वरता के लिए नुकसान देह है। हल्की मिट्टी में टपका या फव्वारा विधियों को अपना कर पोषक तत्वों की लिचिंग होने से बचा जा सकता है। सिंचाई के पानी की गुणवत्ता भी मृदा स्वास्थ्य पर बुरा असर डालती है। अधिक लवणीय व क्षारीय पानी देने से मृदा में अवांछित तत्वों

(शेष पृष्ठ 22 पर)

अप्रैल मास के कृषि कार्य



फसलों में

गेहूं और जौ

गेहूं की बालों का रंग जब सुनहरा या ललाई लिए हो तो फसल को पकी समझें। ज़्यादा पकने से दाने झडने का डर रहता है। खेत में खड़े खरपतवार, सामान्यत: कनकी (मंडूसी), जंगली जई की कटाई पकने से 10-15 दिन पहले सावधानी से करके मुख्य फसल से अलग कर लें। इन फसलों की गहाई अच्छी तरह सूखने पर ही करें।

जिन खेतों में पत्तों पर कांगियारी का प्रकोप रहा हो उन खेतों के बीज को अगले वर्ष बिजाई के लिए प्रयोग में बिल्कुल भी न लाएं तथा रोगग्रस्त पौधों को जलाकर नष्ट कर दें।

थ्रैशर मशीन

थ्रैशर मशीन को समतल ज़मीन पर ही स्थापित करें ताकि चलते समय कम से कम कम्पन हो। मशीन को चलाने से पहले हाथ द्वारा एक चक्कर लगा कर देख लें कि कहीं रुकावट तो नहीं है। थ्रैशर मशीन के पहियों को ज़मीन में गाड़ कर खूंटियां लगा दें और आवश्यकता हो तो फ्रेम पर भार/वज़न आदि रखें। भूसे की निकासी हवा चलने की दिशा की ओर हो। थ्रैशर को सही चक्करों पर ही चलाएं। थ्रैशर सिलेंडर उसी दिशा में घूमना चाहिए जैसा कि निशान द्वारा दर्शाया गया हो वरना पट्टे क्रॉस करके इसकी दिशा ठीक करनी चाहिए ताकि थ्रैशर सही चक्करों पर ही चले।

घटिया किस्म का थ्रैशर कभी भी प्रयोग न करें। थके होने पर थ्रैशर पर काम न करें। नशे की हालत में भी थ्रैशर न चलाएं। खलिहान में हुक्का व बीड़ी-सिगरेट कदापि न पिएं। काम करते समय ढीले-ढाले कपड़े न पहनें। मंद रोशनी में काम न करें। रात को काम करते समय रोशनी का प्रबन्ध रखें। गीली फसल की गहाई न करें। ट्रैक्टर के धुआं निकलने वाली पाइप के ऊपर चिंगारी अवरोधक अवश्य लगाएं। बिजली के खंबों व तारों के नीचे कभी भी फसल का ढेर न रखें। कुछ पानी और रेत थ्रैशर के पास रखें ताकि आग लगने पर काबू पाया जा सके।

लेखक :

- अश्विनी कुमार, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
- एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (पादप रोग विज्ञान)
- वी. एस. हुड्डा, सहायक वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
- वी. के. बत्तरा (सब्जी विज्ञान)
- सरिता, विस्तार विशेषज्ञ (लुवास)
- सूबे सिंह, विस्तार विशेषज्ञ (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

चना

जहां पर अंगमारी देखने में आई हो वहां रोगग्रस्त पौधों को जलाकर अवश्य नष्ट कर दें। टौंट वाली सूंडी से फसल को बचाने हेतु मार्च मास में बताए गए कीटनाशकों में से किसी एक का छिड़काव करें।

गन्ना

गन्ने की बिजाई के लगभग 40 दिन बाद पहला पानी लगाएं। बत्तर आने पर गुड़ाई करें। यदि बिजाई के समय एट्राजीन नहीं डाल पाये हों तो पहली सिंचाई के बाद गोड़ाई करके 1.6 किग्रा. एट्राजीन-50 घु.पा. प्रति एकड़ की दर से 200-250 लीटर पानी में घोलकर खड़ी फसल में छिड़काव करें। इससे गन्ना फसल पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। अन्त: फसलीकरण में इस शाकनाशक का प्रयोग न करें। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का नियन्त्रण करने के लिए 1.0 किग्रा. 2,4-डी (80 प्रतिशत सोडियम नमक) 250 लीटर पानी में बिजाई के 7-8 सप्ताह बाद प्रति एकड़ छिड़काव करें। यदि फसल में मोथा घास (डीला) की समस्या हो तो घास उगने पर 2,4-डी ईस्टर का 400 मिली. प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। यदि मोथा घास दोबारा उग जाए तो दवाई की इसी मात्रा का फसल में छिड़काव करें। 2,4-डी मोथा घास को ऊपर से ही नष्ट करती है। मोथा घास (डीला) की रोकथाम के लिए सैम्प्रा (15 प्रतिशत हैलोसल्फ्युरान) का 36 ग्रा. प्रति एकड़ की दर से 200 लीटर पानी में घोलकर बिजाई के 35-45 दिन बाद (पहली सिंचाई के 2-3 दिन बाद) जब मोथा घास 3-5 दिन की हो तब फ्लैट फैन नोज़ल से छिड़काव करें। अन्त: फसलीकरण में इस शाकनाशक का प्रयोग न करें।

स्केल कीड़ा सोनीपत तथा फरीदाबाद ज़िलों के कुछ गांवों में गम्भीर रूप में आ गया है। इसके फैलाव को रोकने के लिए बीज ऐसी फसलों व क्षेत्रों से न लें जहां इस कीड़े का प्रकोप हो। कीड़ाग्रस्त क्षेत्रों से दूसरे क्षेत्र में गन्ना बिजाई के लिए नहीं ले जाना चाहिए। केवल स्वस्थ बीज बोएं एवं अच्छे जमाव के लिए बीज को 5-10 मिनट 250 ग्राम एमिसान या मैन्कोजेब दवा 100 लीटर पानी के घोल से उपचारित करें। काटने के बाद सभी पत्तियों व नए फुटाव को खेतों में नष्ट कर दें। कीटग्रस्त क्षेत्रों में एक से अधिक मोढ़ी फसलों में काली चींटी के नियंत्रण के लिए 400 मि.ली. क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. को 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। फरवरी व मार्च में बोई गन्ने की फसल में 45 किलोग्राम यूरिया खाद प्रति एकड़ डालें। गन्ने की मोढ़ी की फसल में अप्रैल के आखिर में 65 किलोग्राम यूरिया प्रति एकड़ डालें।

कपास

अच्छी उपज लेने के लिए कपास की सामान्य बिजाई अगले मास में करें परंतु भिवानी, महेन्द्रगढ़ व सिरसा जिलों के ऐसे क्षेत्रों, जहां रेतीली मिट्टी व रेतीले टिब्बे बनने की संभावना है, में कपास की बिजाई इस माह के

पहले पखवाड़े में कर दें। केवल उन्नत किस्में ही बोएं। बीकानेरी नरमा जैसी उन्नत किस्मों एच एस 6, एच 1098, एच 1117, एच 1226, एच 1098, एच 1236, एच 1300 व संकर किस्म एच एच एच 223 व एच एच एच 287 बोने की सिफारिश की जाती है। देसी कपास की बिजाई के लिए एच डी–107, एच डी 123, एच डी 324, एच डी–432 व संकर किस्म ए ए एच–1 बोएं। इसके अतिरिक्त केवल अनुमोदित की गई बी. टी. संकर किस्में ही लगाएं।

कपास से बढ़िया फुटाव के लिए पूरे खेत की तैयारी सही ढ़ंग से करनी ज़रूरी है। अत: खेत की तैयारी इस मास के अंत में शुरू करें। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए। इसके बाद आवश्यकतानुसार 3–4 जुताइयां करके खेत को अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिए। कपास की बिजाई के समय खेत में बत्तर का होना ज़रूरी है। इसके लिए खेत में अच्छा पलेवा करें। गीले बत्तर में दो जुताइयां करके सुहागा लगाएं व खेत को एकसार कर लें। खेत में पौधों की सही संख्या के लिए बीज की सही मात्रा प्रयोग में लाएं। बीज का उपचार करके ही बिजाई करें। एक एकड़ के लिए अमेरिकन कपास (नरमा) के लिए 6–8 किलोग्राम रोएं रहित बीज व 8–10 किग्रा. रोएंदार बीज पर्याप्त होता है। देसी कपास के लिए लगभग 5 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ डालें। ड्रिल द्वारा बीजने के लिए यदि रोएं उतारे बीज न मिलें तो 6 किलोग्राम प्रति एकड़ रोएंदार (साधारण) बीज को बोने से पहले बारीक मिट्टी, गोबर या राख में रगड़ लेना चाहिए जिससे ड्रिल में से बीज एकसार निकलें। बी. टी. संकर का 850 ग्राम बीज प्रति एकड़ प्रयोग करें। इसकी बिजाई कपास बीजने वाली एक खूड़ वाली ड्रिल से कतारों में करें। दो खूड़ों व पौधों का फासला लगभग 67.5–30 सैं.मी. रखें। ध्यान रहे कि बिजाई अच्छी नमी (आल) में की जाए व बीज 4–5 सैं.मी. की गहराई पर डालें। संकर कपास के लिए 1.2 से 1.5 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ 67.5–60 सैं.मी. के फासले पर बीजें। संकर व बी.टी. कपास की बिजाई के लिए कतार से कतार की दूरी 67.5 सैंमी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 60 सैं.मी. रखनी चाहिये या कतार से कतार की दूरी 100 सैंमी. व पौधे से पौधे की दूरी 45 सैंमी. रखनी चाहिए।

अमेरिकन कपास (नरमा) की उन्नत किस्म, यदि गेहूं काटने के बाद बोनी है तो बिजाई के समय खेत में 38 किलोग्राम यूरिया व 75 किलोग्राम सुपरफास्फेट प्रति एकड़ बो दें और रेतीली ज़मीन में 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट बिजाई के समय अवश्य डालें। इतनी ही यूरिया खाद बाद में पौधों को छिद्दा करते समय डालें। पोटाश की कमी वाले खेतों में 20 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश बिजाई के समय अवश्य बिखेर दें। यदि कपास खाली पड़ी ज़मीन में बोनी है तो बिजाई के समय सुपरफास्फेट तथा पोटाश ही डालें। बाद में पौधे छिद्दा करते समय व फूल आते समय ऊपर बताई यूरिया की मात्रा दें। देसी कपास में 22 किलोग्राम प्रति एकड़ यूरिया खाद 45 दिन बाद डालें। 22 किलोग्राम प्रति एकड़ यूरिया खाद 75 दिन बाद डालें। हाईब्रिड कपास में बिजाई के समय 50 कि.ग्रा. यूरिया, 150 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट, 40 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश व 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट ड्रिल करें। इसके बाद 50 किलोग्राम यूरिया बिजाई के 45 दिन बाद व 50 किलोग्राम यूरिया बिजाई के 75 दिन बाद डालें।

बिजाई के तुरन्त बाद स्टॉम्प 30 (पैण्डीमिथालीन) का प्रयोग 2 लीटर प्रति एकड़ के हिसाब से 250–300 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से सांठी, सांवक आदि किस्म के खरपतवारों पर अच्छा नियन्त्रण हो जाता है। स्टॉम्प का छिड़काव करते समय खेत में अच्छी नमी का होना ज़रूरी है। बीमारियां प्राय: उन खेतों में अधिक हानि पहुंचाती हैं जिनमें उपचारित बीज न बोया गया हो।

भूमि एवं बीजजनित बीमारियों से बचाव के लिए बोने से पहले बीज का उपचार कर लें। उपचार के लिए 10 लीटर पानी में 1 ग्राम स्ट्रैप्टोसाइक्लिन घोल लें। इस घोल में 5 किलोग्राम साधारण या 7.5 किलोग्राम रोएं उतारे हुए बीजों को लगभग 4 घंटे तक भिगोकर उपचारित करें। जिन खेतों में जड़ गलन का विशेष प्रकोप देखा गया है ऊपर वाले उपचार के साथ 2.5 ग्राम बाविस्टिन बोने से पहले बीज में लगाएं।

जहां दीमक की समस्या हो वहां पर 10 मि.ली. क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. व 10 मि.ली. पानी को मिलाकर फिर एक किलोग्राम बीज का उपचार करके ही बिजाई करें।

बिना रोएं उतारे बीज को बोने के काम में लें तो बुवाई से पहले अल्युमिनियम फास्फाईड की एक 3 ग्राम की टिकिया से प्रति घनमीटर स्थान के हिसाब से 48–72 घंटे तक धूम्रित करें। उससे बीज में छुपी गुलाबी सूण्डियां मर जाएंगी। कपास की पिछली फसल के ठूंठों से होने वाले फुटाव को नष्ट करें ताकि उन पर मीलीबग व चित्तीदार सूण्डी न पनप सके।

सूरजमुखी

सूरजमुखी की बिजाई के 3 से 6 सप्ताह बाद दो निराई–गोडाई करें एवं उगते बीज को पक्षियों से बचाएं। कटुआ सूण्डी रात में फसल को नुकसान करती है। इस कीट के नियंत्रण के लिए 10 कि.ग्रा. फेनवालरेट 0.4 प्रतिशत धूड़ा प्रति एकड़ खेत में ठीक से मिलाएं या हल्की सिंचाई कर दें। इसके अलावा 80 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. या 50 मि.ली. सायपरमेथरिन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. डैकामैथरीन 2.8 ई.सी. 100 लीटर पानी में प्रति एकड़ भी छिड़क सकते हैं। बीजोपचार 3 ग्राम थाइरम या कैप्टान प्रति किलोग्राम बीज की दर से अवश्य करें।

बैसाखी मूँग

जड़ गलन रोग से बचाव के लिए प्रति किलोग्राम बीज में 2 ग्राम कार्बेण्डाज़िम (बाविस्टिन) मिलाकर बोएं।

अरहर

अरहर की बिजाई मध्य–मार्च से मध्य जून तक करें, परंतु मानक व पारस को मध्य–जुलाई तक बोया जा सकता है। यद्यपि मध्य–अप्रैल की बिजाई से अधिक उपज मिलती है। अरहर की मुख्य उपयुक्त किस्में, यू पी ए एस 120 (मार्च से जुलाई के प्रथम सप्ताह), मानक व पारस (15 जून से 15 जुलाई) हैं। एक एकड़ के लिए 5 से 6 किलोग्राम बीज काफी होता है। बीजने से पहले अरहर के बीजों को अरहर के राईजोबियम के टीके से उपचारित करें। बिजाई पोरा विधि से दो खूडों का फासला 40 सैंटीमीटर रखकर करें। अरहर की पूरी पैदावार लेने के लिए 100 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट तथा 18 किलोग्राम यूरिया खाद प्रति एकड़ बिजाई के समय ही पोर दें।

ज्वार, बाजरा, लोबिया तथा संकर हाथी घास

चारे के लिए ज्वार की 20 मार्च से 10 अप्रैल तथा बाजरे व लोबिया की मार्च के अंत से अप्रैल के शुरू तक बिजाई समाप्त कर लें। ज्वार व बाजरा में 44 कि.ग्रा. यूरिया/एकड़ पोंरें। लोबिया में भी इतनी मात्रा में डी.ए.पी. पोंरें।

बरसीम व लूसर्न

बरसीम का शुद्ध बीज तैयार करने के लिए फसल से कासनी पौधों को निकाल देना चाहिए। दोनों फसलों में आवश्यकतानुसार पानी लगाएं तथा लूसर्न की कटाई करें।

दूसरी फसल कट जाने के बाद कभी-कभी बरसीम में टोका कीड़े का प्रकोप हो जाता है। चारे वाली फसल में 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

नोट : इस माह फसल बोने से पहले अपने खेतों की मिट्टी की जाँच अवश्य करवाएं। हरियाणा के हर ज़िले में एक-दो मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाएं हैं। अच्छा हो यदि अपने ट्यूबवैल के पानी का भी परीक्षण करवा लें।



सब्जियों में

टमाटर

टमाटर की फसल की सिंचाई हर सप्ताह करें। खेत में पौध रोपने के बाद 35 कि. ग्रा. नाइट्रोजन प्रति एकड़ आधी-आधी दो बार में दें (यदि न दी हो) प्रथम मात्रा रोपाई के लगभग तीन सप्ताह बाद तथा दूसरी मात्रा फसल में फूल आने के समय। किसान खाद देते समय सिंचाई करना न भूलें। खरपतवार निकालते रहें। विषाणु रोग (पत्तों का चुरड़ा-मुरड़ा, पत्ती लपेट, धारियों वाला मोजैक) लगे पौधों को निकाल कर नष्ट कर दें। सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए 400 मिलीलीटर मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर 10-15 दिन के अंतर पर प्रति एकड़ छिड़कें। यदि फल छेदक सूण्डी का आक्रमण हो तो 75 मि.ली. फैनवालरेट 20 ई.सी. या 200 मि.ली. डेल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी. या 60 मि.ली. साईपरमेथ्रिन 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। दवा प्रयोग से पहले ग्रसित फलों को तोड़कर नष्ट कर दें। इस माह फसल से फल मिलने शुरू हो जाएंगे। उन्हें तोड़कर बाज़ार बेचने के लिए भेजें।

बैंगन

फसल की नियमित रूप से सिंचाई करें। खरपतवार निकालें। खड़ी फसल में दो बार किसान खाद दें-प्रथम बार पौध रोपाई के लगभग 4 सप्ताह बाद, 80 किलोग्राम प्रति एकड़ की दर से (20 किलोग्राम नाइट्रोजन) तथा दूसरी बार पौधों में फूल आने के समय इतने ही उर्वरक और दें। नाइट्रोजन खाद देने के बाद सिंचाई करें। विषाणु रोग से बचाव के लिए रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें और नियमित रूप से छिड़काव करते रहें।

यदि बैंगन की फसल में रस चूसने वाले कीटों का आक्रमण हो तो 300-400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। जैसे ही फल लगने शुरू हों तो फल छेदक कीटों का प्रकोप शुरू हो जाता है। इनके नियंत्रण के लिए 75 ग्राम स्पाइनोसेड (ट्रेसर) 45 एस.सी. या 80 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. या 70 मि.ली. साईपरमैथ्रिन 25 ई.सी. या 200 मि.ली. डेल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी. को बदल-बदल कर 200 लीटर पानी में प्रति एकड़ 15 दिन के अंतर पर छिड़कें। दवा प्रयोग से पहले सब्जी बनाने वाले फलों को तोड़ लें तथा दवा प्रयोग के बाद फसल को 8-10 दिनों तक खाने के काम में न लें।

कीटनाशक दवाओं के प्रयोग से पहले टहनियों के ग्रसित भाग व काने फलों को तोड़कर नष्ट कर दें।

मिर्च

फसल की सिंचाई करें और खरपतवारों को निकालते रहें। खड़ी फसल में तीन सप्ताह के बाद तथा दूसरी बार फूल आने के समय 12 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति एकड़ की दर से दें तथा सिंचाई करें। फूल आने के समय प्लानोफिक्स के घोल का (1 मिलीलीटर प्लानोफिक्स को 4½ लीटर पानी में मिलाएं) छिड़काव करें तथा इसे तीन सप्ताह बाद दोहराएं। ऐसा करने से फल कम गिरते हैं तथा उपज अच्छी होती है। चुरड़ा और सफेद मक्खी से रक्षा के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। छिड़काव आवश्यकतानुसार 15-20 दिनों के अंतर पर करें। विषाणु रोग, जो सफेद मक्खी द्वारा फैलते हैं, का भी बचाव इस दवा के प्रयोग से हो जाता है। हरी तैयार मिर्चों को तोड़कर बाज़ार भेजें।

प्याज़ व लहसुन

फसल की सिंचाई करें तथा खुले कंदों पर मिट्टी चढ़ा दें। बीमारी व हानिकारक कीटों से रक्षा के लिए पहले बताई गई दवाओं का प्रयोग करें।

मूली

इस फसल में सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। गर्मी की मूली के लिए केवल पूसा चेतकी किस्म का ही प्रयोग करें। बाहर निकली हुई जड़ों पर मिट्टी चढ़ाएं। जड़ों को सख्त होने से पहले उखाड़ लें। मूली बिजाई के लगभग 40 दिनों के बाद उखाड़ने के योग्य हो जाती है। कीट-पतंगों से रक्षा के लिए 250 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

भिण्डी

कीटों के नियंत्रण के लिए 75-80 मि.ली. स्पाईनोसैड 45 एस. सी. या 400 से 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अंतर पर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

पालक

फसल की नियमित रूप से सिंचाई करें। आवश्यकतानुसार किसान खाद का प्रयोग करें जिससे कि पत्तियों की बढ़वार हो सके। नई फसल की बिजाई भी इस माह की जा सकती है।

तरबूज व खरबूजा

फसल की निराई-गुड़ाई करें तथा उचित सिंचाई का प्रबंध करें। फसल में फूल आने के समय लगभग 6 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति एकड़ की दर से दें तथा सिंचाई करें। लाल भूण्डी (लालड़ी) नामक कीट का

प्रकोप होने पर 25 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 30 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. को 100 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। जड़ों में लट (ग्रब) लगी हों तो 1.6 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. को बिजाई के एक माह बाद सिंचाई के साथ प्रति एकड़ लगाएं। चेपा, हरा तेला या माईट का प्रकोप होने पर 250 मिलीलीटर मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ खेत में छिड़काव करें तथा आवश्यकतानुसार दोहराएं। फल मक्खी लगने पर 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. और 1.25 किलोग्राम गुड़ को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ खेत में छिड़काव करें तथा एक सप्ताह के अंतर पर आवश्यकतानुसार दोहराएं। प्रयोग से पहले ग्रसित फलों को तोड़कर नष्ट कर दें। पाऊडरी मिल्ड्यू नामक रोग लगने पर 800 ग्राम घुलनशील गंधक (सल्फैक्स) का घोल बनाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। अधिक व भरपूर फसल प्राप्ति के लिए तरबूज में 25 पी.पी.एम. (आधा ग्राम जिबरैलिक एसिड) तथा खरबूजे में एथरिल 100 पी.पी.एम. (2 मि.ली. प्रति 20 लीटर पानी प्रति एकड़) का घोल बना कर दो व चार सच्ची पत्तियों पर छिड़काव करें। जिबरैलिक एसिड अल्कोहल में घुलनशील है।

कद्दू जाति की अन्य सब्जियां

कद्दू जाति की अन्य सब्जियों की फसलों की सिंचाई करें, खरपतवार निकालें तथा यूरिया (जैसा कि ऊपर तरबूज-खरबूजा में बताया गया है) दें। हानिकारक कीड़ों तथा बीमारियों से रक्षा के लिए ऊपर बताई गई दवाओं का प्रयोग करें। चप्पन कद्दू तथा टिण्डे की फसल के फलों को तोड़कर बाज़ार भेजें। अन्य सब्जियों में भी इस माह फल उतरने शुरू हो जाएंगे। उन्हें कच्ची ही तोड़कर बाज़ार भेजें।

अरबी

आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। बिजाई के लगभग एक माह बाद यूरिया खाद देकर सिंचाई करें।

शकरकन्दी

शकरकन्दी की काट को खेत में अप्रैल से जुलाई तक लगाते हैं। खेत तैयार करें। पूसा लाल व पूसा सफेद किस्मों को प्रयोग में लें। एक एकड़ में बिजाई के लिए 24,000 से 28,000 बेलों की काटों की आवश्यकता पड़ेगी। खेत तैयार करते समय 10 टन गोबर की सड़ी खाद, 16 किलोग्राम नाइट्रोजन, 225 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट (36 कि.ग्रा. फास्फोरस) तथा 55 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश (32 किलोग्राम पोटाश) प्रति एकड़ की दर से काटों को लगाने से पहले दें। खेत को क्यारियों में बांट लें तथा कतारों में 50-60 सैं.मी. की दूरी पर काटों को लगाएं। पौधे से पौधे की दूरी 30 सैं.मी. रखें। काट लगाते समय ध्यान रखें कि ऊपर तथा नीचे की दोनों गांठें दबी हों।

अन्य सब्जियां

ग्वार तथा लोबिया की फसलों की सिंचाई करें व खरपतवार निकालते रहें। कीट पतंगों से रक्षा के लिए मैलाथियान 50 ई.सी. या रोगोर 30 ई.सी. आदि दवाओं का प्रयोग करें। यह कीटनाशक 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें।

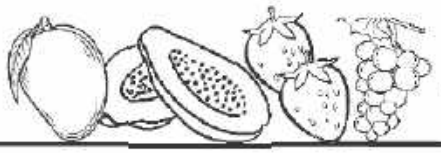

फलों में

इस महीने मौसम में काफी परिवर्तन होता है। तापक्रम बढ़ेगा और तेज़ हवाएं भी चलेंगी जोकि छोटे-2 बने हुए फलों को काफी नुकसान पहुंचा सकती हैं। फल उत्पादकों द्वारा समय पर सिंचाई करना, छोटे-छोटे फलों को गिरने से रोकना, छोटे पौधों के बीच में मूंग वगैरह की फसल लेना, घने लगे हुए फलों को छिद्रा करना, पौधों में बची आधी खाद की मात्रा डालना, छोटे पौधों को सहारा देना और फलों को ठीक ढंग से तोड़कर बाज़ार भेजना आदि बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

संतरा, माल्टा, नींबू आदि

सात साल से अधिक आयु के पौधों में आधी बची हुई 750 ग्राम यूरिया प्रति पौधा डालें और हल्की गुड़ाई करके सिंचाई करें। 1.5 किलोग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड को 500 लीटर पानी में घोल कर छिड़कें। 15 दिन बाद 1.5 किलोग्राम बुझा हुआ चूना व 3 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट को 500 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें। संतरा व माल्टा में फल गिरने की समस्या को कम करने हेतु 6 ग्राम 2,4-डी, 12 ग्राम ओरियोफंजीन व 3 किलोग्राम जस्ता और 1.5 किलोग्राम चूना को 550 लीटर पानी में मिलाकर पौधों पर इस माह के आखिर में छिड़कें।

नींबू जाति के पौधों को नींबू का तेला (सिल्ला), सफेद मक्खी तथा सुरंगी कीड़े, पत्तों, टहनियों तथा फलों में से रस चूसकर तथा टेढ़ी-मेढ़ी सुरंगें बनाकर भारी नुकसान करते हैं। इन कीड़ों के अधिक आक्रमण से पत्ते पीले पड़ जाते हैं। नींबू के तेला व सुरंगी कीट के नियंत्रण हेतु अप्रैल लगते ही 750 मि.ली. मैटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. या 625 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ बाग में छिड़कें। यदि सफेद मक्खी का आक्रमण हो तो 500 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 डब्ल्यू. एस.सी. प्रति एकड़ छिड़कें।

अंगूर

नए लगाए बाग में 25-30 ग्राम यूरिया प्रति बेल दूसरे सप्ताह डालें और सिंचाई करें। इसके अतिरिक्त मुख्य तने व पत्तियों के बीच से निकलने वाली टहनियों को तोड़ते रहें। बेलों के सीधा बढ़ने के लिए सीढ़ियों या बांस का सहारा दें।

पांच साल से ऊपर के फल दे रहे पौधों में 340 ग्राम यूरिया व 500 ग्राम पोटाशियम सल्फेट डालें और गुड़ाई करके सिंचाई करें। 15 अप्रैल के बाद सिंचाई हर सप्ताह करनी आवश्यक है। बीज रहित अंगूर की किस्मों से अधिक उपज लेने के लिए पूरी तरह फूल आ जाने की हालत में 20 पी. पी. एम. (20 कि.ग्रा./लीटर), जी. ए. व फल लगते समय 40 पी. पी. एम. (40 कि.ग्रा./लीटर) का छिड़काव करें।अंगूर की नई कोंपलों को, अंगूर के चुरड़ा, जो छोट-छोटे पतले शरीर वाले भूरे रंग के कीड़े होते हैं, भारी क्षति पहुंचाते हैं। कीड़े पत्तों की नसों के साथ-साथ चलते हैं व पत्तों की निचली सतह को कुरेद कर रस चूसते हैं। इससे पत्तियां पीली एवं तांबे जैसे रंग की हो जाती हैं। इनकी रोकथाम के लिए 150 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. या 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 500 लीटर पानी में

घोलकर प्रति एकड़ बेलों पर छिड़कें। कई बार बालों वाली सूण्डियां अंगूर की बेलों, पत्तों तथा फलों पर भी आक्रमण करती हैं। जो कीड़े पत्तों को खा जाते हैं, इनमें छेद कर देते हैं तथा फलों को भी खा जाते हैं। छोटी सूण्डियां, जो कुछ ही पत्तों पर समूह में एकत्र मिलती हैं, वाले पत्तों को तोड़कर नष्ट कर दें। लाल धब्बे वाली बीमारी के नियंत्रण के लिए बाविस्टीन 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करें।

अमरूद

पौधों की सिंचाई 10–15 दिन के अंतराल पर करें। फल मक्खी के नियंत्रण के लिए एक एकड़ बाग में 7–8 फीरोमोन्ज ट्रैप लगाएं।

आड़ू व अलूचा

आड़ू (450 ग्राम) व अलूचा (180 ग्राम) में बची हुई यूरिया डालें। आड़ू व अलूचे के बागों की सिंचाई करें। इनमें अल (चेपा) बहुत हानि पहुंचाता है जिसके कारण पत्ते पीले होकर मुड़ जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 500 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ बाग के पेड़ों पर छिड़कें व आवश्यकता हो तो 15 दिन बाद यही छिड़काव फिर करें।

बेर

बेर के पौधों में सिंचाई बिल्कुल न करें क्योंकि पौधे इस समय सुप्तावस्था में आने लगते हैं। आखिरी सप्ताह में पौधों की काट-छांट करनी ज़रूरी है ताकि अगले वर्ष पैदावार अच्छी मिले।

आम

आम के फल गिरने की समस्या काफी रहती है। इसके नियंत्रण के लिए 2 प्रतिशत यूरिया व 0.5 प्रतिशत ज़िंक तथा 20 पी. पी. एम. 2,4-डी (2 ग्राम 2,4-डी 100 लीटर पानी में) का पौधों पर छिड़काव अवश्य करें।

यदि अब भी आम पर तेला आक्रमण कर रहा हो तो 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़कें। इस छिड़काव में पत्तियों के काजली रोग का भी बचाव हो जाता है। 1½ से 2 किलोग्राम यूरिया का घोल 100 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कने से काफी लाभ संभव है।

काला सिरा (ब्लैक टॉप) का नियंत्रण के लिए 6 ग्राम बोरेक्स प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

लीची

फल लगने के बाद 875 ग्राम यूरिया प्रति पौधा डालकर गोड़ाई करके सिंचाई करें। फल फटने से रोकने के लिए प्राप्त मात्रा में नमी बनाए रखें।

नोट : जैसे ही आषाढ़ी फसलों से खेत खाली होंगे, जिन किसान भाइयों ने नए बाग लगाने हों वे ज़मीन की तैयारी, निशानदेही आदि शुरू करें व मिट्टी की जांच करवाएं।



पशुओं में

- गेहूं-कटाई के दौरान व बाद में नई तूड़ी आने के बाद पशुओं में पेट बंधे की समस्या बहुत आम है, अत: कोशिश करें कि पशु-आहार में कभी-भी एकदम से बदलाव न करें और इस समय में पशुओं के हाज़मे को स्वस्थ रखने के लिए उचित प्रबंध रखें। पशुओं को सेंधा नमक, हरड़, हींग इत्यादि पशु-चिकित्सक की सलाहनुसार दे सकते हैं।
- सुनिश्चित करें कि सभी पशुओं को गलघोंटू व मुँहखुर के टीकाकरण हो गए हों, विशेषकर वयस्क व नए खरीदे पशुओं का ज़रूर ध्यान रखें।
- दिन में तापमान की बढ़ोत्तरी हो जाती है, अत: पशुओं को दोपहर में सीधे गर्म हवाओं से बचाएं।
- गर्मियों में पशुओं का दूध न घटे, इसलिए ध्यान रखें कि पशुओं के शरीर में पानी की कमी न हो पाए। अत: ऐसा प्रबंधन करें कि पशुओं को 24 घंटे ताज़ा/ठण्डा पीने योग्य पानी उपलब्ध रहे यदि 24 घण्टे पानी उपलब्ध नहीं करवा सकते तो कम से कम 3-4 बार ठण्डा पीने योग्य पानी अवश्य उपलब्ध करवाएं और दिन में कम से कम 2-3 बार अवश्य नहलाएं व बीच-बीच में शरीर पर पानी भी डालें (विशेषकर भैंसों में)।
- नई तूड़ी को उपयुक्त मात्रा में यूरिया से उपचारित करके उसकी पौष्टिकता बढ़ाएं।
- हरे चारे में कमी के कारण पशुओं में खनिज तत्वों व लवणों की कमी हो सकती है, अत: हर पशु को खनिज मिश्रण ज़रूर दें।
- चारे के लिए बोई गई मक्का, बाजरा, ज्वार आदि की कटाई 45-50 दिन की अवस्था में करें।
- हर ब्यांत में पशुओं के दूध की एक बार ज़रूर नज़दीकी पशु-प्रयोगशाला में जांच करवाएं।
- ऐसे मौसम में कई बार पशु गर्मी के लक्षण दिन के बजाय रात को दिखाता है, अत: पशुपालक मादा पशुओं में गर्मी के लक्षण जैसे बार-बार रंभाना, बेचैन होना, बार-बार पेशाब करना इत्यादि का ध्यान रखें व गर्मी के लक्षण के 10-12 घण्टे बाद कृत्रिम गर्भाधारण करवाएं।



घर-आंगन में

पानी जीवन का आधार है अत: घरेलू स्तर पर पानी का शुद्धिकरण बहुत आवश्यक है। घरेलू स्तर पर पानी का शुद्धिकरण जनता वाटर फिल्टर के द्वारा किया जा सकता है जो कि एक बहुत ही सस्ती एवं स्थानीय तकनीक है।

अप्रैल के महीने में मौसम परिवर्तन के कारण शरीर के लिए पानी की ज़रूरतें भी बढ़ जाती हैं और थोड़ी देर के बाद ही कुछ ठण्डा पीने का मन करता है। इन दिनों बाज़ार में पेय पदार्थ बनाने वाले फलों एवं सब्जियों की बहुतायत होती है। अत: आप इनको घर पर बनाकर उपयोग में ला सकते हैं। उपर्युक्त जनता वाटर फिल्टर एवं पेय पदार्थ बनाने के लिए आप अपने ज़िले में कार्यरत कृषि विज्ञान केन्द्र में ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (गृह विज्ञान) से संपर्क स्थापित करें।

किसान कॉल सैंटर : एक परिचय

✍ अशोक कुमार एवं राजेश कुमार[1]
विस्तार शिक्षा निरदेशालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत की अधिकतर जनसंख्या अपनी जीविका के लिए खेती पर निर्भर है। आज भी इस आधुनिक और तकनीकी युग में भी देश के अधिकतर किसान पारंपरिक खेती की तकनीकों का प्रयोग करते हैं। इस आधुनिक युग में भारत के वैज्ञानिकों ने कृषि के क्षेत्र में नई-नई तकनीकों की खोज की है किन्तु किसान अभी भी कई नई तकनीकों से अनजान हैं या फिर जब किसान खेती के लिए इन नई-नई तकनीकों को अपनाते हैं तो उन्हें कई नई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

इन्हीं समस्याओं को दूर करने के लिए भारत सरकार ने 21 जनवरी 2004 को भारतीय कृषि मंत्रालय के सहयोग से 'किसान कॉल सैंटर' योजना का शुभारंभ किया था। यह सुविधा संपूर्ण भारत में एक साथ प्रारंभ की गई थी। किसान कॉल सैंटर का मुख्य उद्देश्य किसानों की खेती-बाड़ी व कृषि तकनीकी से जुड़ी समस्याओं का निवारण क्षेत्रीय भाषा में तुरंत किया जाता है।

देश का कोई भी किसान घर बैठे अपनी कृषि संबन्धित समस्याओं के विषय में कृषि विशेषज्ञों से किसान कॉल सेंटर के टोल-फ्री (निःशुल्क) नंबर 1551 या 1800-180-1551 पर कॉल करके समाधान प्राप्त कर सकता है। इस टोल-फ्री नंबर सेवा का लाभ किसान मोबाईल फोन और लैंडलाईन फोन के माध्यम से उठा सकते हैं। कॉल सेंटर की सेवाएं सप्ताह के सातों दिन प्रातः आठ बजे से रात दस बजे तक उपलब्ध रहती हैं। किसान कॉल सेंटर पर निम्नलिखित विषयों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं :

किसानों की कृषि से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करने हेतु कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र, राज्य सरकार एवं गैर-सरकारी संगठन भी विभिन्न प्रसार माध्यमों द्वारा अपने स्तर से भी प्रयासरत हैं।

इसी दिशा में चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार में भी किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक निःशुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह निःशुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह निःशुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

[1]डी.टी.पी. ऑपरेटर, विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

भूमि की उर्वरा शक्ति : हरी खाद

✍ धर्म प्रकाश, सुनीता श्योराण एवं देवराज
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आज के युग में फसल उत्पादन करने के लिए असंतुलित मात्रा में रासायनिक पदार्थों के इस्तेमाल करने से मिट्टी के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहे हैं जिनसे बचने के लिए पोषक तत्वों के अन्य स्त्रोतों का इस्तेमाल करना एक बहुत बड़ी ज़रूरत बनकर उभरा है। इन स्त्रोतों में हरी खाद का इस्तेमाल करना भी एक विकल्प माना गया है। फसल उत्पादन में हम हरी खाद का इस्तेमाल करके न केवल खेती की लागत को कम करते हैं, बल्कि मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को भी अगली पीढ़ियों के लिए प्रदान कर सकते हैं।

हरी खाद का उपयोग करने से मृदा स्वास्थ्य को हम जीवित दशा में लम्बे समय के लिए उत्पादन योग्य बना सकते हैं। पशुधन में आई कमी, गोबर का घरों में ईंधन के रूप में उपयोग तथा गुणवत्ता युक्त गोबर की खाद की अनुपलब्धता आदि समस्याओं को मद्देनज़र रखते हुए हरी खाद एक सबसे उत्तम एवम् सरल प्रयोग है।

हरी खाद एक ऐसा साधन है जो कि मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में बढोत्तरी करता है तथा फसलों के लिए विभिन्न पोषक तत्वों को जैविक माध्यम से प्रदान करता है। लम्बे समय से हो रहे प्रयोगों से भली भांति सिद्ध हो चुका है कि गुणवत्ता युक्त अच्छी फसल उत्पादन के लिए खेतों में हरी खाद देना अति लाभकारी है।

हरी खाद के प्रकार

1. खेत में उगाकर उसी खेत में हरी खाद लगाना : यह विधि सरल तथा अधिक लोकप्रिय है। इस विधि में जिस खेत में हरी खाद लगाना है उसी खेत में फसल उगाकर एक निश्चित समय के बाद (लगभग सात से आठ सप्ताह) जुताई करके मिट्टी में गलने-सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता है। आजकल रोटा वेटर से हरी फसल को खेत में मिला दिया जाता है। जिससे लागत तथा श्रम कम लगता है।

2. दूसरी जगहों से लाकर खेत में हरी खाद लगाना : यह विधि उत्तरी भारत में अधिक प्रयोग नहीं होती है। इससे हरी खाद वाली फसलें दूसरे स्थानों पर उगाई जाती हैं तथा एक निश्चित समय पर फसलों को काटकर जिस खेत में हरी खाद लगानी है उसमें फैलाकर, जोतकर मिट्टी में मिला दिया जाता है। इस विधि में पेड़-पौधों व झाड़ियों की पत्तियों, हरी टहनियों आदि को इकट्ठा करके खेत में मिलाया जाता है।

हरी खाद वाली फसलें

हरी खाद के लिए मुख्यतः दलहनी फसलें जिनकी जड़ों पर गांठें पाई जाती हैं तथा इन गांठों में विशेष प्रकार के सहजीवी जीवाणु व सूक्ष्म जीव उपस्थित रहते हैं आदि का प्रयोग किया जाता है। ये जीवाणु वायुमण्डल में उपस्थित नाइट्रोजन को जैविकी तरीकों से स्थिरीकरण कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। हरी खाद के लिए सनई व ढैंचा का विशेष रूप से

इस्तेमाल किया जाता है।

हरी खाद वाली फसलों की आवश्यक विशेषताएं

1. चयन की गई फसलों की जड़ें गहरी होनी चाहिएं ताकि जड़ें नीचे की मिट्टी में जाकर अधिक से अधिक पोषक तत्वों को खींच सकें, मिट्टी को भुरभुरी बना सकें, नीचे की मिट्टी के पोषक तत्व ऊपरी सतह में इकट्ठा हो सकें जो कि अगली फसल के काम आते हैं।
2. फसल में तेज़ी से तथा अधिक मात्रा में पत्तियां व कोमल शाखाएं निकल सकें जिससे प्रति ईकाई क्षेत्र में अधिक हरा पदार्थ मिल सके।
3. फसलों का वानस्पतिक भाग मुलायम और बिना रेशे वाला हो ताकि जल्दी से गल सड़ सकें।
4. फसलों में अधिक से अधिक वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को स्थिरीकरण करने की क्षमता होनी चाहिए।
5. फसल की जल व पोषक तत्वों की मांग कम से कम होनी चाहिए।
6. फसल का उत्पादन खर्च कम हो तथा प्रतिकूल अवस्था जैसे कि जलक्रान्ति, सूखा व अधिक ताप के प्रति सहनशील हो।

हरी खाद उगाने की विधि

गेहूं या रबी की अन्य कोई फसल की कटाई करके वर्षा आने के तुरन्त बाद या सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो एक सिंचाई करके हरी खाद की फसलों की बुवाई शुरू कर देनी चाहिए। खेत में पर्याप्त नमी की मात्रा के अलावा फसल की बुवाई के लिए विशेष तैयारी की ज़रूरत नहीं होती। इसके लिए 30-40 किग्रा प्रति हैक्टेयर के हिसाब से ढैंचा या सनई का बीज लेकर आठ घंटों के लिए पानी में डुबो कर रखना चाहिए। अगर आगामी धान की फसल लेनी हो तो मई माह के पहले सप्ताह में बुवाई कर देनी चाहिए। मिट्टी की जांच के आधार पर जिन खेतों में फास्फोरस की कमी हैं उनमें सिंगल सुपर फास्फेट खेत में डालनी पड़ती है तथा फिर अगली फसल जैसे धान में फास्फोरस देने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

इससे आगे जब ढैंचा या सनई की फसल सात-आठ सप्ताह की हो जाए तो उसको धान लगाने से दो-चार दिन पहले खेत में रोटा-वेटर चलाकर रला-मिला देना चाहिए। ढैंचा क्षारीय भूमि या बिल्कुल बलुई मिट्टी के सुधार हेतु प्रयोग किया जाता है। यह प्रयोग लगभग 35-45 कि. ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर की बचत करता है तथा ढैंचा की फसल का हरी खाद के रूप में प्रयोग करने से फसलों में लोहे की कमी को दूर करता है। ग्रीष्मकालीन मूंग की फसल भी हरी खाद के रूप में हम प्रयोग कर सकते हैं। लगभग 45-50 दिन की हरी खाद की फसल को मक्का की फसल को बोने से 10 दिन पहले खेत में मिला देना अच्छा बताया गया है। अच्छी मक्का की फसल लेने के लिए नाइट्रोजन की सिफारिश की गई मात्रा खेत में डालें।

हरी खाद देने के लाभ

1. हरी खाद केवल नाइट्रोजन व कार्बनिक पदार्थ ही नहीं बल्कि इनके साथ-साथ अन्य मुख्य व सूक्ष्म पोषक तत्व भी पौधों को प्रदान करता है।
2. हरी खाद के प्रयोग से मिट्टी भुरभुरी, वायुसंचार अच्छा, जलधारण क्षमता में बढ़ोत्तरी तथा मृदा की क्षारीयता में सुधार होता है।
3. हरी खाद देने से मृदा में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या में वृद्धि होती है जो कि मृदा की उपजाऊ शक्ति व फसलों की उपज में बढ़ोत्तरी करते हैं।
4. यह खेत में खरपतवारों की वृद्धि पर रोक लगाता है जिससे हमारी फसलों को अधिक पोषक तत्व व पानी उपलब्ध होता है तथा मृदा संरचना का सुधार होता है।
5. हरी खाद का प्रयोग करने से रासायनिक उर्वरकों के उपयोग में कमी आती है जिससे आय बढ़ती है तथा टिकाऊ एवम् स्वस्थ खेती को बढ़ावा मिलता है।

ध्यान देने योग्य बातें

1. खेत की मिट्टी की जांच अवश्य करवानी चाहिए। हरी खाद के लिए उपरोक्त विवरण अनुसार ढैंचा या सनई या ग्रीष्मकालीन मूंग आदि फसलों का चयन उत्तम रहता है।
2. फसलों को एक विशेष अवस्था पर ही खेत में मिलाएं। इस अवस्था से पहले या बाद में खेत में पलटने से अपेक्षित लाभ नहीं मिलता। यह अवस्था उस समय होती है जब फसल कुछ अपरिपक्व अवस्था में होती है तथा फूल निकलने लगते हैं। इस समय पौधों के वानस्पतिक भाग मुलायम होते हैं, कार्बन : नाइट्रोजन अनुपात कम होता है तथा पौधों के अपघटन में सुविधा रहती है जिससे आगामी फसलों को नाइट्रोजन शीघ्र ही उपलब्ध हो जाती है।
3. हरी खाद का प्रयोग फसलों को लगभग सभी पोषक तत्व थोड़ी मात्रा में धीरे-धीरे प्रदान करता है। इसलिए हरी खाद रासायनिक उर्वरक का विकल्प नहीं है, इसके अलावा पौधों को पोषक तत्वों की पूर्ति करने हेतु संतुलित मात्रा में रासायनिक उर्वरकों या अन्य पोषक तत्वों के स्त्रोतों जैसे-गोबर की खाद, केंचुए की खाद तथा कम्पोस्ट इत्यादि का भी प्रयोग कर सकते हैं।

लेखकों से अनुरोध

हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। लेख में अंग्रज़ी शब्दों का प्रयोग न करें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें**। अपना लेख हमें ई-मेल पर भी भेज सकते हैं :

haryanakhetihau@gmail.com

उर्वरकों की पहचान : कैसे करें

✍ सोनिया देवी, के. के. भारद्वाज एवं विशाल गोयल
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जैसा कि हम सब जानते हैं कि भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसकी आधी से ज़्यादा जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। भारत की जनसंख्या 125 करोड़ है जिनका पेट भरने के लिए कृषि ही एक मात्र साधन है। तेज़ी से बढ़ती इस जनसंख्या के लिए कृषि का विकास होना बहुत ही आवश्यक है। कृषि का विकास कई घटकों पर निर्भर है जैसे कि मिट्टी की प्रजननता, बीज की गुणवत्ता, उर्वरकों की गुणवत्ता, जलवायु परिवर्तन, आर्थिक व सामाजिक अनेक कारण हैं। उपर्युक्त घटकों में से उर्वरक एक बहुत ही महत्वपूर्ण कड़ी है। उर्वरक खेती में प्रयोग किए जाने वाले ऐसे रसायन हैं जिससे पौधों की वृद्धि होती है और जिसके परिणाम स्वरूप उपज बढ़ती है। इनका प्रयोग मिट्टी व पत्तियों पर किया जाता है। अगर इनका आवेदन मिट्टी पर किया जाए तो पौधे अपनी जड़ों द्वारा ज़रूरी पोषक तत्व ग्रहण कर लेते हैं। इनसे आवश्यक पोषक तत्वों की तत्काल पूर्ति होती है और यह मिट्टी में लम्बे समय तक बने रहते हैं।

इन रासायनिक उर्वरकों की कीमत बाज़ार में बहुत ज़्यादा है। इनकी महंगी कीमतों के कारण निर्माता कंपनियों ,उद्योगपतियों में मुनाफा कमाने की होड़ लगी हुई है। जिसके कारण उनकी मंशा रहती है कि मिलावटी उर्वरकों का उद्योग तेज़ी से बढ़ाएं। लेकिन दूसरी ओर गरीब किसान इससे अनजान हैं। इन नकली रसायनों के कारण फसल बर्बाद हो रही है। जिसका सीधा असर किसान व आम जनता पर हो रहा है। किसानों को असली और नकली उर्वरकों में कोई फर्क नज़र नहीं आता क्योंकि यह बिलकुल एक जैसे दिखाई देते हैं। इन मिलावटी उर्वरकों को बेचने के लिए विक्रेता द्वारा किसानों को लुभाया जा रहा है जिसमें किसानों को अनेक तरह की छूट, ऑफर, कम कीमत का लोभ और उपहार दिए जा रहे हैं।

इस समस्या से निपटने के लिए सबसे पहले किसान को ही कदम उठाना पड़ेगा। किसान उर्वरक खरीदते समय सतर्कता बरतें। वे उर्वरकों को देखकर, छूकर परख सकते हैं ।यदि किसानों को उर्वरक खरीदते समय कोई संदेह हो तो टेस्टिंग किट द्वारा उर्वरकों की शुद्धता की पुष्टि कर सकते हैं। इस कार्यवाही के लिए उन्हें जनपद के उप कृषि निदेशक तथा ज़िला कृषि अधिकारी या कृषि निदेशक, हरियाणा को सूचित करना होगा ।

उर्वरकों की गुणवत्ता की पहचान

किसानों द्वारा उपयोग किए जाने वाले प्रमुख उर्वरकों में यूरिया, डाई अमोनियम फॉस्फेट (डी ए पी, सुपर फॉस्फेट, ज़िंक सल्फेट,पोटाश खाद, म्यूरेट ऑफ पोटाश (एम ओ पी) आदि शामिल हैं।

नकली उर्वरकों का प्रभाव

नकली व मिलावटी उर्वरकों के कारण किसान को सिर्फ आर्थिक नुकसान ही नहीं बल्कि इसका स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है। इससे पर्यावरण का संतुलन भी बिगड़ रहा है। नकली रासायनिक खाद मिट्टी में ज़हर का काम कर रही है। इसके कारण मिट्टी के आवश्यक गुण भी विलुप्त हो रहे हैं जैसे कि ज़्यादातर फसलों की न्यूट्रल पी. एच. पर अच्छी पैदावार होती है लेकिन इस मिलावट के कारण मिट्टी की पी. एच में बदलाव आ रहा है जिससे उत्पादन घट रहा है। इन रासायनिक उर्वरकों के कारण मिट्टी के सूक्ष्म जीवाणु भी नष्ट हो रहे हैं जो कि आवश्यक पोषक तत्वों को प्रदान करने में सहायक हैं।

विकल्प

नकली उर्वरकों के प्रभाव से बचने के लिए वैज्ञानिकों द्वारा सिफारिश की गयी है कि किसानों को नकली रासायनिकों की जगह जैविक उर्वरकों और बायोफर्टिलाइज़र्स का इस्तेमाल करना चाहिए। जैविक उर्वरकों में एजोटोबेक्टर, राइजोबियम, फोस्फोटिका आदि शामिल हैं। जिनसे मिट्टी की प्रजननता व आवश्यक गुणों में सुधार आता है। इस विकल्प के साथ साथ किसानों को रासायनिक उर्वरक खरीदते समय जागरूक रहना चाहिए और विक्रेता द्वारा दिए गए लोभ में न आकर ध्यानपूर्वक उर्वरकों की गुणवत्ता की जाँच करनी चाहिए।

उर्वरक का नाम	पहचान का तरीका
यूरिया	रंग : सफेद व चमकीला आकार : एक ही आकार के गोल दाने यह पानी में घुलने की पूरी क्षमता रखता है और घोल के स्पर्श से ठंडक का अनुभव होता है। यदि गर्म तवे पर यूरिया रखा जाए और पिघल जाए, अधिक गरम करने पर अवशेष न बचे तो समझ लेना चाहिए कि यूरिया असली है अन्यथा नहीं।
डाई अमोनियम फॉस्फेट (डी ए पी)	रंग : काला, भूरा या बादामी, सख्त, दानेदार। इनका रंग नाखूनों में रह जाता है। यदि इसके दानों को हथेली पर रखकर चूना मिलाकर रगड़ा जाए तो इससे तीखी गंध आती है जो कि असहनीय होती है। इसके दानों को गर्म तवे पर रखा जाए तो फूलने लगते हैं।
सुपर फॉस्फेट	प्रमुख मिलावटी उर्वरक : डी ए पी तथा एन पी के का मिश्रण यह डी ए पी के जैसा ही होता है बस फर्क इतना है कि यह चूर्ण और दाने दोनों के रूप में उपलब्ध है और गर्म तवे पर रखने से फूलता नहीं है।
ज़िंक सल्फेट	प्रमुख मिलावटी उर्वरक : मैग्नीशियम सल्फेट यह मैग्नीशियम सल्फेट जैसा होता है। डी ए पी व ज़िंक सल्फेट को एक-एक चम्मच कांच के दो अलग गिलासों में डालकर घोल बना लें। ज़िंक के घोल को डी ए पी के घोल में मिला दें, यदि थक्केदार अवशेष बन जाए तो ज़िंक सल्फेट शुद्ध व ठीक है । ज़िंक सल्फेट में पतला कास्टिक डालने पर मटमैला मांड बनना चाहिए और मोटा कास्टिक डालने पर घोल मिल जाना चाहिए।
म्यूरेट ऑफ पोटाश (एम ओ पी)	रंग: सफेद, कणदार, पीसे हुए लाल मिर्च और नमक के मिश्रण जैसा यदि इस पर पानी की कुछ बूंदे डाली जाएं तो दाने आपस में चिपकने नहीं चाहिएं और पानी में घोलने पर लाल रंग सतह पर तैरना चाहिए। चखने पर इसका स्वाद तीक्ष्ण कसैला सा लगता है। यदि इसका स्वाद नमकीन लगे तो इसमें मिलावट पाई जा सकती है।

बीज उत्पादन के आनुवांशिक सिद्धान्त

✍ सुनील कुमार एवं सतबीर सिंह जाखड़
बीज विज्ञान एवं तकनीकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

खेती में काम आने वाले संसाधनों में बीज सबसे ज़रूरी है क्योंकि अगर किसान अच्छी किस्म का शुद्ध बीज नहीं डालेगा तो सभी संसाधनों पर लगाये हुये पैसे व मेहनत का पूरा मुनाफा कभी नहीं मिलेगा। उन्नतशील किस्मों की पूर्ण क्षमता का दोहन करने के लिए उत्तम बीज एक आधारभूत आवश्यकता हो जाती है। अन्यथा इन किस्मों के संचित गुणों में कमी आती जाती है तथा वह अपने गुणों को छोड़ देती है। अनुसंधानों से पता चला है कि अधिक उपज देने वाली किस्मों के बेहतर गुणवत्ता वाले बीज का उपयोग करके कृषि उत्पादन लगभग 15–20 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। उत्तम बीज के लक्षण निम्नलिखित हैं :

आनुवांशिक शुद्धता : बीज में अपनी किस्म/प्रजाति के अनुरूप आकार, प्रकार, रूप, रंग व भार के सभी लक्षण होने पर ही बीज को आनुवांशिक रूप से शुद्ध माना जाता है।

भौतिक शुद्धता : भौतिक रूप से शुद्ध बीज में खरपतवार व अन्य फसलों के बीज नहीं होने चाहिएं क्योंकि यह अशुद्धता कम पैदावार का कारण बनती है। सामान्य तौर पर भौतिक शुद्धता 98 प्रतिशत से कम नहीं होनी चाहिए।

जमाव क्षमता व ओज : उत्तम बीज का दूसरा लक्षण उसकी उच्च जमाव क्षमता व ओज का होना होता है जिसका खेत में उगे पौधों की संख्या, बढ़वार और अन्ततः पैदावार से सीधा सम्बन्ध होता है। बीज की जमाव क्षमता प्रतिशत निर्धारित मात्रा से कम नहीं होनी चाहिए।

नमी की मात्रा : बीज में नमी की उपयुक्त मात्रा का होना अति आवश्यक है। अगर बीज में नमी निर्धारित मात्रा से अधिक हो तो भण्डारण के दौरान बीज की जमाव शक्ति व ओज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

बीज स्वास्थ्य : रोग व कीटों से क्षतिग्रस्त बीज का जमाव व ओज घट जाता है तथा पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी क्षीण हो जाती है अन्ततः उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

किसानों को उच्च गुणवत्ता वाले बीज उपलब्ध कराने के उद्देश्य से बीज वृद्धि का कार्य निम्नलिखित तीन चरणों में किया जाता है :

प्रजनक बीज (ब्रीडर सीड) : यह बीज की वह श्रेणी है जो किस्म बनाने वाले प्रजनक (वैज्ञानिक) द्वारा थोड़ी मात्रा में ही पैदा की जाती है। इसे किस्म बनाने वाले वैज्ञानिक या उसी संस्थान जैसे कृषि विश्वविद्यालय या कृषि संस्थान द्वारा तैयार किया जाता है। इस श्रेणी का बीज आनुवांशिकता के आधार पर 100 प्रतिशत शुद्ध व सबसे महंगा होता है व आधार बीज (फाउंडेशन सीड) बनाने के काम आता है। इसकी थैली पर सुनहरे पीले रंग का लेबल होता है जिस पर फसल एवं किस्म के बीज परीक्षण के विवरण के साथ प्रजनक के हस्ताक्षर होते हैं। यह बीज प्रमाणीकरण संस्था द्वारा प्रमाणित नहीं किया जाता बल्कि एक उच्च स्तरीय विशेषज्ञों की टीम द्वारा इसका निरीक्षण (मोनीटरिंग) किया जाता है।

आधार बीज (फाऊंडेशन सीड) : यह श्रेणी प्रजनक बीज द्वारा तैयार की जाती है व आनुवांशिकता के आधार पर ज़्यादातर फसलों में 99 प्रतिशत शुद्धता होती है। राष्ट्रीय बीज निगम के विशेषज्ञों के कड़े निरीक्षण में सरकारी फार्मों, प्रयोग क्षेत्रों, कृषि विश्वविद्यालयों या निपुण बीज का उत्पादकों द्वारा आधार बीज को तैयार किया जाता है। आधार बीज का प्रमाणीकरण संस्थाओं द्वारा निरीक्षण एवं अनुमोदित किया जाता है। इसका रखरखाव इस प्रकार से किया जाता है कि बीज की आनुवांशिकी पहचान एवं शुद्धता प्रमाणीकरण मानक के ही अनुसार हो। आधार बीज की थैलियों पर इसकी उत्पादक संस्था का हरे रंग का लेबल एवं बीज प्रमाणीकरण का सफेद रंग का टैग लगा होता है जिस पर विवरण के साथ संस्था के प्रतिनिधि के हस्ताक्षर होते हैं।

प्रमाणित बीज (सर्टिफाइड सीड): प्रमाणित बीज आधार बीज की संतति से उत्पादित किया जाता है तथा इस प्रकार से देखरेख एवं रखरखाव किया जाता है कि बीज की आनुवांशिकी पहचान एवं शुद्धता प्रस्तावित प्रमाणीकरण मानक फसल के अनुसार हो जिसे प्रमाणित किया जाता है। यह बीज विभिन्न सरकारी संस्थानों, कृषि अनुसंधान संस्थानों, बीज निगमों तथा गैर सरकारी (प्राईवेट) बीज संस्थाओं द्वारा तैयार किया व बेचा जाता है। प्रमाणित बीज प्रमाणीकृत बीज की संतति भी हो सकती है यदि उसका जनन काल आधार बीज को मिलाकर तीन संतति से ज़्यादा न हो। प्रमाणित बीज की थैलियों पर बीज उत्पादक संस्था का हरे रंग का लेबल व बीज प्रमाणीकरण संस्था का नीले रंग का टैग लगा होता है। जिस पर विवरण के साथ संस्था के प्रतिनिधि के हस्ताक्षर होते हैं।

सच्चे नामपत्रित बीज (ट्रूथफुली लेबल्ड सीड) : बीज प्रमाणीकरण के लिए केवल वही किस्में योग्य होती हैं, जो कि बीज एक्ट 1966 की धारा 5 के अनुसार अधिसूचित होती हैं। लेकिन जो किस्में अधिसूचित नहीं होतीं तथा किसानों में जिनकी मांग होती है, उनका सच्चे नामपत्रित बीज (ट्रूथफूल सीड) का उत्पादन किया जाता है। इसका उत्पादन बीज प्रमाणीकरण संस्था की देखरेख के बिना ही बीज उत्पादन संस्था द्वारा किया जाता है। ऐसे बीज की पैकिंग पर बीज उत्पादन संस्था द्वारा हरे रंग का लेबल लगाया जाता है जिस पर बीज परीक्षण विवरण के साथ उत्पादक संस्था के प्रतिनिधि के हस्ताक्षर होते हैं।

बीज वृद्धि के दौरान किस्मों की आनुवांशिकी शुद्धता में गिरावट के लिए दोषी कारक व अनुरक्षण के उपाय :

- विकासात्मक परिवर्तन को कम करने के लिए बीज फसल को उस क्षेत्र में ही लगाना चाहिए जिस क्षेत्र के लिए उपयुक्त है।
- किस्मों की आनुवांशिकी शुद्धता की कमी के लिए यांत्रिक मिश्रण बहुत ही महत्त्वपूर्ण कारक होता है। मिश्रण को कम करने के लिए खेत से अन्य पौधों को निकालना (अन्य किस्म), कटाई एवं संग्रहण आदि के समय ध्यान रखना अत्यधिक आवश्यक है।

- किस्मों के ह्रास के लिए उत्परिवर्तन उतना महत्त्वपूर्ण कारक नहीं है क्योंकि सूक्ष्म (गौण) उत्परिवर्तन की अभिन्नता की पहचान करना बहुत ही मुश्किल है। ऐसा उत्परिवर्तन जो आंखों के द्वारा देखा जा सकता हो, उसको खेत से तुरन्त निकाल देना चाहिए। अवांछनीय पौधों का बीज खेत से निकालते रहने से बीज फसल में उत्परिवर्तन से होने वाले ह्रास को काफी हद तक रोका जा सकता है।
- पर-परागित फसलों में स्व-परागित फसलों की तुलना में प्राकृतिक संकरण प्राय: ज़्यादा पाया जाता है। प्राकृतिक संकरण के द्वारा बीज में कितनी आनुवांशिकी अशुद्धता हो सकती है यह निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है:
  1. किस्म की प्रजनन प्रणाली
  2. अलगाव दूरी
  3. किस्मों का समूह
  4. परागण करने वाले कारक

  वांछनीय अलगाव उपलब्ध करवाने से प्राकृतिक संकरण से संदूषण को नियंत्रित किया जा सकता है।
- नयी फसल किस्में कभी-कभी बीमारियों की अन्य कई प्रजातियों के लिए सुग्राही हो जाती हैं और इस प्रकार वह बीज उत्पादन कार्यक्रम से निकाल दी जाती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि बीज उत्पादन के समय बीमारी रहित बीजों का उत्पादन किया जाये।
- आवश्यक आनुवंशिकी गुणों से रहित किस्म कुछ लक्षणों के लिए भिन्नता दर्शाने लगती है। ये परिवर्तन वातावरण के अनुकूलन से समाप्त हो सकते हैं, फिर भी इनसे हानि या लाभ हो सकते हैं। अत: इनका विशेष ध्यान रखना ज़रूरी है।

बीज उत्पादन, बीज की अच्छी गुणवत्ता एवं अधिक उपज लेने के लिए आनुवंशिकी सिद्धान्तों को अपनाया जाना ज़रूरी है। किसी भी किस्म की उत्पादन क्षमता एवं अन्य गुण उस किस्म के जीनोटाइप के द्वारा नियंत्रित होते हैं। सभी व्ययों की सहायता से किसान की अच्छी या खराब फसल इस बात पर निर्भर करती है कि उसने कौन सी किस्म का चयन खेती के लिए किया है। इसलिए बीज की गुणवत्ता किसान के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यदि अच्छी किस्मों का शुद्ध बीज है इसका मतलब है कि अच्छी फसल की कटाई करना परन्तु यदि अशुद्ध बीज है तो इसके कारण फसल से अनुमानित उत्पादन प्राप्त नहीं होगा एवं उत्पादन क्षमता कम हो जायेगी तथा बीमारी और कीड़ों की भी समस्या होगी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि नई किस्मों का बीज किसानों के पास शुद्ध एवं स्वस्थ अवस्था में ही पहुंचना चाहिए एवं इसको निश्चित करने के लिए हमारे देश में राष्ट्रीय बीज विकास निगम, प्रादेशिक बीज विकास निगम एवं कृषि विश्वविद्यालय, बीज प्रमाणीकरण के रूप में संगठित बीज उत्पादन संस्थाएं कार्यरत हैं। ये संस्थायें मुख्य: रूप से बीज प्रमाणीकरण, उत्तम बीज का उत्पादन एवं वितरण के लिए ज़िम्मेदार होती हैं।

(पृष्ठ 11 का शेष)

2. सल्फर का प्रयोग स्रोत्र की उपलब्धता एवं लागत के अनुरूप करना चाहिए। अत: प्रसार कार्यकर्त्ता, उर्वरक विक्रेता और कृषक इस बात को अच्छी तरह जान लें कि खेतों में सल्फर की कमी एक वास्तविक समस्या है और संतुलित उर्वरक देते समय कम से कम एक सल्फरयुक्त उर्वरक का समावेश अवश्य कर लें। जिससे खेतों में सल्फर की कमी को दूर किया जा सके। कार्बनिक खाद भी गंधक के साथ अन्य तत्वों का एक अच्छा स्रोत है।

तालिका : सल्फर के स्रोत्र

क्र. सं.	उर्वरक	सल्फर की मात्रा (%)
1	अमोनिया सल्फेट	24
2	अमोनिया सल्फेट नाइट्रेट	12
3	नार्मल सुपर फास्फेट	10-12
4	अमोनियम फास्फेट सल्फेट	15-40
5	पोटेशियम सल्फेट	17-18
6	पोटेशियम मैग्नेशियम सल्फेट	22
7	जिप्सम	18.6
8	कॉपर सल्फेट	12.8
9	फैरस सल्फेट	18.8
10	ज़िंक सल्फेट	17.8

(पृष्ठ 12 का शेष)

का समावेश व एकत्रण हो जाता है तथा वांछित तत्व अघुलनशील अवस्था में पहुंच जाते हैं। अत: किसानों को ट्यूबवैल के पानी की जांच साल में एक बार अवश्य करवानी चाहिए तथा अनुमोदित की गई सलाह के अनुरूप ही खेतों में पानी देना चाहिए।

फसल चक्र

किसानों को मृदा स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए दाल वाली फसलों को फसल चक्र में अवश्य शामिल करना चाहिए। इन फसलों की जड़ों में गुलाबी गांठें होती हैं और उन गांठों में मौजूद राइजोबियम बैक्टीरिया वातावरण की नाइट्रोजन को मिट्टी में स्थापित करते हैं। धान-गेहूं फसल चक्र में ढैंचा या मूंग की फसल को फूल आने की अवस्था में खेत में ही मिला देने से मृदा के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों में वांछनीय सुधार होता है।

आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें। **- सह-निदेशक (प्रकाशन)**

पोर्टेबल वर्मीकम्पोस्ट किट

✍ रवीना कारगवाल, यादविका एवं एम. के. गर्ग
प्रसंस्करण एवं खाद्य अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वर्मीकम्पोस्ट की समस्या को दूर करने के लिए चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार के कृषि अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय के प्रसंस्करण एवं खाद्य अभियांत्रिकी विभाग ने पोर्टेबल वर्मीकम्पोस्ट किट का निर्माण किया है। दो पोर्टेबल वर्मीबैड अक्षय ऊर्जा प्रयोगशाला में स्थापित किए गये हैं। जोकि उच्च घनत्व वाले पोली इथिन (एचडीपीई) से बने हुए हैं। इनकी क्षमता 1000 कि.ग्रा. है ।

पोर्टेबल वर्मीकम्पोस्ट किट के विभिन्न भाग

निकास द्वार : वर्मीवॉस संग्रह के लिए किट के नीचे एक निकास द्वार भी उपलब्ध कराया गया है । इस वर्मीवॉस को खेतों में खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

पोर्टेबल वर्मीकम्पोस्ट किट के मापदण्ड : यह 3.60 मीटर लंबे, 1.20 मीटर चौड़े और 0.60 मीटर गहराई के आकार के हैं।



वेंटिलेटर : हवा के आवागमन के लिए इन वर्मीकम्पोस्ट किट में 0.30 x 0.30 मीटर आकार के 6 वेंटिलेटर उपलब्ध कराये गये हैं।

वर्मीकम्पोस्ट किट के लाभ :

- वेंटीलेटर बेहतर हवा प्रदान करते हैं।
- यह ऑक्सीजन और नमी बनाए रखने में सहायक हैं जो कि केंचुए के लिए लाभदायक होता है।
- यह ज़मीन के ऊपर स्थापित होने के कारण चींटियों और चूहों से सुरक्षा प्रदान करता है।
- यह पोर्टेबल होने के कारण आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है।
- इस पर कोई भी आसानी से काम कर सकता है।
- यह सरल प्रबंधन प्रदान करता है।
- इसमें जगह का समायोजन पारंपरिक विधि से बेहतर किया जा सकता है।

वर्मीबैड का परीक्षण

वर्मीबैड को 2 सैं.मी. की गहराई तक मिट्टी से भरा गया था, फिर नीम के पत्तों की एक परत मिट्टी पर फैल कर उस पर स्ट्रॉ की डाली गयी थी। फिर वर्मीबैड को 4:1 (800 किलोग्राम पशुओं का गोबर और 200 किलो एसएमएस) के अनुपात में पशुओं के गोबर से भरा गया था । इसी प्रकार दूसरा अनुपात 2:1 (665 किलो पशुओं का गोबर और 335 किलो एसएमएस) में भरा गया था। बाद में प्रत्येक किट में 1-1 किलो केंचुए डाल दिए गये। खाद को वायु प्रदान करने के लिए नियमित रूप पर उल्टाई की गई थी। सीधे सूर्य की रोशनी को रोकने के लिए दोनों वर्मीबैड हरे रंग की नेट से ढके गये थे। खाद तैयार हो जाने के बाद पानी डालना बंद कर दिया गया ।



तालिका

क्र. संख्या	मापदंड	वर्मीकम्पोस्ट किट (2:1)	वर्मीकम्पोस्ट किट (4:1)
1.	ऑर्गेनिक कार्बन (%)	19.0	15.60
2.	नाइट्रोजन (%)	1.32	1.90
3.	फास्फोरस (%)	0.16	0.57
4.	पोटेशियम (%)	0.19	1.54
5.	कार्बन : नाइट्रोजन	15.32	9.17

सौर ऊर्जा संचालित – टपका सिंचाई प्रणाली

✍ प्रमोद शर्मा, कनिष्क वर्मा एवं वाई. के. यादव
अक्षय ऊर्जा एवं जैव ऊर्जा अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत एक कृषि प्रधान देश है। हमारे देश की आधे से ज़्यादा आबादी कृषि व्यवसाय संबंधी गतिविधयों से जुड़ी हुई है। कृषि क्षेत्र में ऊर्जा और जल दो महत्वपूर्ण अंग हैं। एक सर्वेक्षण से पता चला है कि भारत में 22% गैर-अक्षय ऊर्जा (non-conventional energy) खपत और 80% पानी का उपयोग अकेले कृषि क्षेत्र में होता है। भारत में कृषि कार्यों में प्राय: डीज़ल या विद्युत पंप सेट का उपयोग किया जाता है जो कि आज के समय प्रतिदिन महंगा हो रहा है। डीज़ल या विद्युत संचालित पंप पर्यावरण में वायु और ध्वनि प्रदूषण को बढ़ाते हैं। जिसका नकारात्मक प्रभाव मनुष्यों के स्वास्थ्य पर पड़ता है। दूसरी ओर हम पाएंगे कि किसान अभी भी सिंचाई के लिये परम्परागत विधियों का उपयोग कर रहे हैं। जिससे पानी की क्षति अधिक व सिंचाई की दक्षता कम रहती है। भारत एक विकासशील देश होने के कारण ऊर्जा और जल के अपव्यय को रोकना बहुत ज़रूरी है। कृषि क्षेत्र में इन दोनों के अपव्यय को रोकने के लिये सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई प्रणाली एक बहुत ही अच्छी तकनीक है। इस तकनीक के प्रयोग से हम ऊर्जा के साथ-साथ जल के अपव्यय को भी कम कर सकते हैं।

सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई दो तकनीकों का मिलान है, अर्थात सौर ऊर्जा संचालित पंप और टपका सिंचाई प्रणाली। सौर ऊर्जा संचालित पंप उन कृषि क्षेत्रों में बहुत ही उपयोगी है, जहाँ पर विद्युत् के जाल स्थापित नहीं हैं। दूसरी ओर टपका सिंचाई प्रणाली का उपयोग हम उन क्षेत्रों में भी कर सकते हैं, जहाँ पर भू-जल में नमक या क्षार की मात्रा हो। टपका सिंचाई प्रणाली में पानी और उर्वरक की बूँद-बूँद सीधे पौधों की जड़ों में जाती है, जिससे पानी व उर्वरक का अपव्यय कम होता है। यह प्रणाली कृषि की पैदावार को भी बढ़ाती है।

सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई प्रणाली के मुख्य घटक

सौर पेनल : सौर पेनल बहुत छोटी-छोटी सौर सैलों से मिलकर बना है। इसमें अर्धचालक (सेमीकंडक्टर) लगे होते हैं। अर्धचालक फोटोवोल्टिक प्रभाव उत्पन्न करके प्रकाश ऊर्जा को विद्युत् ऊर्जा में परिवर्तित करता है। सौर पेनल के लिये मोनोक्रिस्टलाइन सिलिकॉन, पॉलीक्रिस्टलाइन एवं कैडमियम टेलुराइड आदि का प्रयोग किया जाता है।

मॉउंटिंग संरचना : सौर ऊर्जा प्रणाली में सौर पेनल को दो प्रकार से लगा सकते हैं : (1) निश्चित संरचना (2) ट्रैकिंग संरचना

निश्चित संरचना में सौर पेनल फिक्स होते हैं। निश्चित संरचना वाले पेनल कम महंगे तथा उच्च वेग वाली वायु को भी सहन कर लेते हैं। दूसरी ओर ट्रैकिंग संरचना में सौर पैनल को आसानी से सूरज की दिशा में कर सकते हैं। ट्रैकिंग संरचना निश्चित संरचना की तुलना में 25% ज़्यादा पानी देती है। लेकिन ट्रैकिंग संरचना थोड़ी महंगी होती है।

पंप : सौर ऊर्जा से चलाने के लिये आल्टरनेट करंट या डायरेक्ट करंट पंप का उपयोग किया जाता है। सौर ऊर्जा चलित पंप तीन प्रकार के होते हैं : (1) विस्थापन पंप (2) केन्द्रापसारक पम्प (3) पनडुब्बी पंप। जिसमें पनडुब्बी पंप सबसे ज़्यादा इस्तेमाल किए जाते हैं।

फिल्टर यूनिट : इस यूनिट में पानी को छानने की व्यवस्था होती हैं, जिससे कि टपका सिंचाई प्रणाली के कार्यकलाप में कोई बाधा उत्पन्न न हो।

फर्टिगेशन यूनिट : सिंचाई वाले पानी में तरल खाद मिलाने की व्यवस्था। जिससे सिंचाई के साथ-साथ ही खाद का प्रयोग सम्भव है।

दाबमापी : टपका सिंचाई प्रणाली पानी के दाब को दर्शाता है, क्योंकि टपका सिंचाई के लिए दाब का महत्वपूर्ण योगदान है।

मैन लाइन : मैन लाइन द्वारा पंप से सबमैन में पानी की सप्लाई की जाती है।

सबमैन : सबमैन द्वारा लेटरल में पानी की सप्लाई की जाती है।

लेटरल : लेटरल कम व्यास वाली पाइप होती है जो कि एमिटर या ड्रिपर को पानी की सप्लाई करती है।

ड्रिपर : ड्रिपर पानी को पौधों के जड़ क्षेत्र में बूँद-बूँद पानी सप्लाई करते हैं तथा इसी से पानी की काफी बचत भी होती है।

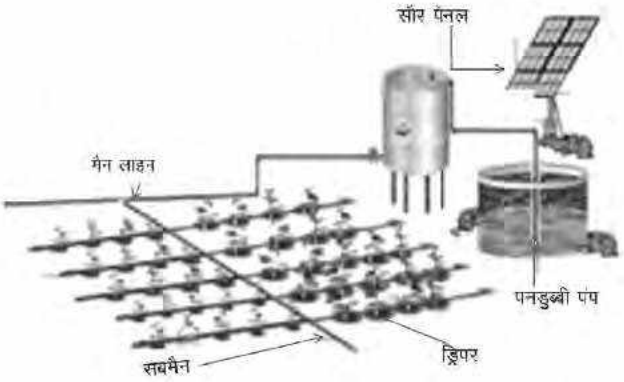

सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई प्रणाली

सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई प्रणाली के लाभ

1. सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई में जल उपयोग दक्षता 90-95% तक होती है।
2. सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई में उतने ही जल एवं उर्वरक की आपूर्ति की जाती है जितनी फसल के लिए आवश्यक होती है। अत: इस सिंचाई विधि में जल के साथ-साथ उर्वरकों की अनावश्यक बर्बादी को रोका जा सकता है।
3. इस सिंचाई विधि से सिंचित फसल की तीव्र वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप फसल शीघ्र परिपक्व होती है।
4. सौर ऊर्जा संचालित टपका विधि खर-पतवार नियंत्रण में अत्यन्त ही

(शेष पृष्ठ 28 पर)

जल भराव : समस्या एवं समाधान

✍ नरेंद्र कुमार, प्रमोद शर्मा एवं संजय कुमार
कृषि अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जल स्तर का पौधों की जड़ों तक ऊपर आ जाना जल भराव कहलाता है। इसका पौधों के विकास पर सीधा प्रभाव पड़ता है। मृदा में उपस्थित ऑक्सीजन की कमी के कारण पौधों का विकास रुक जाता है। यदि जल स्तर 3 मीटर से नीचे हो तो सुरक्षित माना जाता है। 1.5 मीटर तक मध्यम व इससे ऊपर गंभीर समस्या के रूप में माना जाता है। इसमें जल 0-30 सैंटी मीटर तक या सतह पर एकत्रित हो जाता है । भारत में 700000 हैक्टेयर क्षेत्र जल भराव की समस्या से ग्रसित है। जल भराव भूमि को बंजर बना देता है। मानसून के समय बारिश इतनी अधिक हो जाती है कि खेतों में जल भराव की स्थिति हो जाती है। जिस से फसलों को भारी नुकसान पहुंचता है। इस के कारण उत्पादन में भारी गिरावट आती है। जिस से किसानों की आय पर सीधा असर पड़ता है। जल भराव के कारण किसानों की खेतों में रखी हुई तूड़ी एवं जानवरों के लिए संरक्षित किया हुआ भूसा भी खराब हो जाता है। बहुत सी फसलें जल भराव के प्रति बहुत संवेदनशील होती हैं।

जल भराव के कारण

1. जल संसाधनों से रिसाव : किसी क्षेत्र के पास से जाने वाली नहर या नदी के जल रिसाव के कारण आस-पास के क्षेत्रों का जल स्तर ऊपर आ जाता है। यह जल स्तर पौधों की जड़ों तक या सतह तक आ जाता है। इसका एक अच्छा उदाहरण इंदिरा गाँधी नहर परियोजना है। नहर परियोजना शुरू होने से पहले जल स्तर 15 से 40 मीटर था। परियोजना खत्म होने के बाद यह 6 से 1.5 मीटर तक आ गया। 1.5 मीटर जल स्तर को हम गंभीरता से लेते हैं। इस नहर के कारण, 1980 में 742 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र जल भराव से ग्रसित था। 2000 में यह 3960 वर्ग किलोमीटर हो गया।

2. प्राकृतिक संरचना : किसी भी क्षेत्र की संरचना, मृदा एवं ढाल, उस क्षेत्र में जल भराव को निर्धारित करते हैं। यदि क्षेत्र की संरचना कटोरे के आकार की है, तो वहाँ आस-पास के क्षेत्रों से जल एकत्रित होगा। चिकनी मिट्टी में केपिलरी राइज़ के कारण जल ऊपरी सतह तक आ जाता है। यदि ढाल कम होगा तो पानी की निकासी भी कम होगी।

3. कठोर सतह का होना : यदि मिट्टी के नीचे कोई कठोर सतह होगी तो, बरसात एवं सिचाई का जल ऊपरी सतह तक ही रहेगा। यह कठोर सतह पानी के बहाव में अवरोध पैदा करेगी। जल इस कठोर सतह पर एकत्रित हो जायेगा। जिससे जल भराव की समस्या पैदा होगी।

4. बार-बार एवं अधिक सिंचाई करना : किसी भी क्षेत्र में बार-बार व अधिक सिंचाई करने से जल स्तर ऊपर आता है। बार-बार सिंचाई करने से जल मृदा की प्रोफाइल में इकट्ठा हो जाता है। यह पौधों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

5. आवश्यकता से अधिक पानी लगाना : किसी वर्ष में मानसून की अच्छी बरसात के बाद भी क्षेत्र में पानी लगाना जल भराव का कारण हो सकता है। बरसात की वजह से पहले ही मिट्टी पानी से तर होती है, ऊपर से सिंचाई करने से पानी सतह पर खड़ा ही रहता है। यह जल भराव की समस्या को जन्म देता है।

6. कृषि प्रबंधन व फसलों का चुनाव : फार्म प्रबंधन के गलत तरीके व गलत फसलों के चुनाव के कारण भी जल भराव की समस्या जन्म लेती है। किसी सीज़न में किसान ने अधिक पानी की ज़रूरत वाली फसल उगाई हो और उसके बाद फिर से वह अधिक पानी की ज़रूरत वाली फसल लेता है तो यह एक गलत प्रबंधन का उदाहरण है। इससे जल स्तर ऊपर आयेगा और जल भराव की समस्या होगी।

7. ऊँची जगहों से पानी का नीचे वाली जगहों में रिसाव : कोई क्षेत्र यदि किसी ऊँची जगह के पास हो, जहाँ कृषि की जाती हो। उस जगह का पानी रिस कर नीचे वाले क्षेत्र के जल स्तर को बढ़ाता है।

8. जल निकासी तंत्र का न होना : ऐसा क्षेत्र जहां पानी की कोई समस्या न हो, जल निकासी तंत्र ज़रूर होना चाहिये। इसकी अनुपस्थिति के कारण वहाँ सिंचाई का व बरसात का जल इकट्ठा हो जाता है।

जल भराव के नुकसान

जल भराव कई तरह के तरीकों से भूमि व पैदावार को प्रभावित करता है :

1. रूट ज़ोन में एनोरोबिक हालत : मृदा में कई तरह की बायोलॉजिकल क्रियाएं होती हैं। इन क्रियाओं के कारण मृदा में नाइट्रोजन बनती है। अत्यधिक नमी के कारण ये क्रियाए नहीं हो पातीं। जिससे पौधों को आवश्यक भोजन नहीं मिल पाता। जिसके कारण पौधों की वृद्धि बुरी तरह से प्रभावित होती है।

2. जंगली पौधों का उगना : कुछ जंगली पौधे अधिक पानी में उगते हैं। जल भराव उनको एक बेहतर वातावरण देता है। जिसके कारण खेत में कई तरह के जंगली पौधे उग जाते हैं। ये पौधे हमारी फसलों के लिए हानिकारक होते हैं। इससे हमारी पैदावार में भी गिरावट होती है।

3. टिलेज में कठिनाई : जलभराव की समस्या वाले क्षेत्रों में टिलेज ऑपरेशन में कठिनाई होती है। मिटटी में अत्यधिक नमी के कारण मशीनें उस में अच्छे से नहीं चल पातीं। इस तरह से खेत बुवाई व अन्य गतिविधियों के लिए अच्छे से तैयार नहीं हो पाते।

4. नमक का संचय : जलभराव के कारण रूट ज़ोन में विषाक्त लवण आ जाते हैं। इसकी वजह से मिट्टी क्षारीय हो जाती है, जो कि फसल की वृद्धि में बाधा डालती है।

5. मृदा तापमान को कम करना : अत्यधिक नमी के कारण मृदा का तापमान कम हो जाता है। कम तापमान बायोलॉजिकल क्रियाओं को कम कर देता है जिससे मृदा में नाइट्रोजन कम बनता है और पौधों का विकास कम होता है।

6. परिपक्वता समय का जल्दी आना : फसलों की समय से पहले परिपक्वता जल प्रबंधित भूमि की विशेषता है। फसलों के समय से पहले परिपक्व होने के कारण पैदावार में कमी होती है।

7. फसलों में बीमारी आना : जल भराव की स्थिति में पौधों की जड़ें सदा पानी में डूबी रहती हैं। जिससे वे सड़ जाती हैं या दीमक लग जाती है। जल भराव में पौधों पर तरह-तरह के कीट पतंगे लग जाते हैं। जो पौधों के विकास और पैदावार को बुरी तरह प्रभावित करते हैं।

8. सीमित फसलों का चुनाव : जल भराव वाले क्षेत्रों में फसलों का चुनाव बहुत ही सीमित हो जाता है। हमें केवल उन फसलों का चुनाव करना पड़ता है, जिनकी जड़ें कम गहरी हों और इस तरह के वातावरण में जीवित रह सकें।

जल भराव रोकने के तरीके

1. रिसाव को रोकना : नहरों की सतहों को पक्का करके व नहर और खेतों के बीच में इंटरसेप्टर बना कर, नहरों से रिसने वाले पानी को खेतों में पहुंचने से रोका जा सकता है। नहरों के साथ-साथ खेतों में आने वाली छोटी माइनरों को भी पक्का करना चाहिए। नहरों के किनारों पर ऐसे पौधे लगाने चाहिएं जो उनके किनारों को मज़बूती देने के साथ-साथ जल स्तर को भी नीचे बनाए रखें।

2. खेतों में सिंचाई का उचित प्रबंधन : खेतों मे पानी उचित मात्रा में लगाना चाहिए। इस से पानी नीचे नहीं जायेगा और जल स्तर में वृद्धि नहीं होगी। कम मात्रा में जल और कई बार सिंचाई करना भी एक उचित प्रबंधन है। खेत को छोटे- छोटे क्षेत्रों में बांटकर सिंचाई करनी चाहिए। इस से सिंचाई में कम पानी लगेगा और जल भराव की समस्या भी नहीं होगी।

3. बरसात के पानी को जल्दी निकालना : बरसात के पानी को निकालने का उचित प्रबंध होना चाहिए। लम्बे समय तक पानी खड़ा रहने से जल स्तर में वृद्धि होगी। बरसात का पानी अधिक समय तक खड़े रहने के कारण फसलों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

4. जल निकासी तंत्र : जल निकासी तंत्र जल भराव की समस्या से निजात पाने में बहुत अहम् भूमिका अदा करता है। यह खेतों से पानी को सुरक्षित तरीके से निकाल देता है। जल निकासी तंत्र ने बहुत सी जल भराव ज़मीनों को सुधार कर फसल लेने योग्य बना दिया है।

5. ट्यूब वेल से सिंचाई : उन क्षेत्रों में जहां पानी का स्तर ऊपर हो वहाँ ट्यूब वेल से सिंचाई को बढ़ावा देना चाहिए। लोगों को ट्यूब वेल से सिंचाई के फायदे बताकर, उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। इस से जल स्तर नीचे होगा।

6. बायो ड्रेनेज : कई पौधों को दिन में कई लीटर पानी की आवश्यकता होती है। सफेदा भी उनमें से एक है। सफेदा एक दिन में कई लीटर पानी का उपयोग करता है। इस तरह के पौधों को बड़े पैमाने पे लगा कर जल स्तर को नीचे किया जा सकता है।

केंचुओं पर धातुओं के प्रभाव

✍ शेफाली एवं आर. के. गुप्ता
प्राणी विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मृदा एक गतिशील और जटिल प्रणाली है जो सूक्ष्मजीवों, पौधों, जानवरों और मनुष्यों को आवास प्रदान करती है। आजकल दूषित मिट्टी एक प्राथमिक समस्या बन गयी है जो भूजल प्रदूषण और रासायनिक यौगिकों के बायोमैग्निफिकेशन के माध्यम से खाद्य जल और कभी-कभी मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। प्राकृतिक और मानववंशीय गतिविधियों दोनों के कारण होने वाली धातु संदूषण, दुनिया भर में प्रमुख चिंता का विषय है। धातु सामग्री में वृद्धि मिट्टी के पारिस्थितिक तंत्र की गतिविधियों को बाधित करके मिट्टी की पारिस्थिति तंत्र के कामकाज पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है।

स्थलीय अपरिवर्तक के 80% से अधिक बायोमास केंचुओं से बना है। केंचुओं का मिट्टी के साथ विशेष रूप से घनिष्ठ संपर्क हैं, और वे कार्बनिक पदार्थ का अपघटन करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन कारणों से, केंचुओं का व्यापक रूप से उपयोग किया गया है पारिस्थितिकीय मिट्टी के अध्ययन में। अपने प्राकृतिक आवास में केंचुआ धातुओं के बढ़ते स्तर के संपर्क में आ जाता है जिसके स्रोत औद्योगिक और ऑटोमोबाइल उत्सर्जन हैं। केंचुए धातु प्रदूषण निगरानी में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त हैं। उनके क्लोरागोजेन्स ऊतकों में धातुओं के जैव संचय के लिए एक निहित क्षमता है और मिट्टी के प्रदूषण के पारिस्थितिक संकेतक के रूप में उपयोग किया जा सकता है। कई अध्ययन आयोजित किए गए और उनके अनुसार विभिन्न धातुओं के नकारात्मक प्रभावों की सूचना इन केंचुआ प्रजातियों पर दी गयी है : ईसेनिया फेतिदा, लुम्ब्रिकुस रूबेलस, फेरेतिमा गिलेल्मी, ड्राइडा रामनादन और लैम्पिटो मॉरीति।



खाद्य शृंखला के भीतर धातुओं का जैव संचय हो सकता है जिससे केंचुओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव न हो, लेकिन उच्च उष्णकटिबंधीय स्तर पर गंभीर नुकसान हो सकता है। इसलिए, केंचुओं के विषाक्तता अध्ययन का उपयोग पर्यावरण में रसायनों के लिए सुरक्षा दहलीज प्रदान करने के लिए

(शेष पृष्ठ 28 पर)

पारंपरिक प्रथा से अनाज भण्डारण

✍ पूजा, एस. एस. ढांडा एवं दीपिका राठी
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत में अनाज और तिलहन की फसलों में 10 से 20 प्रतिशत तक का नुकसान अनुमानित है। सरकारी रिकॉर्ड के अनुसार, अकेले साल 2010 में सरकारी गोदामों में 11,700 टन भण्डारित खाद्यान्न सड़ जाने से भारत को भारी आर्थिक नुकसान पहुँचा है। अनाज की खपत की भारी माँग और उसके महत्व को ध्यान में रखते हुए अनाज के उचित भंडारण को नकारा नहीं जा सकता। सुरक्षित भण्डारण के लिये कई पारम्परिक प्रथाएँ काफी किफायती और वातावरण के अनुकूल हैं। घरेलू स्तर पर सुरक्षित भण्डारण एक ज़रूरी प्रक्रिया है, क्योंकि कीटों एवं सूक्ष्म जैविक कारक खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता एवं पौष्टिकता में भारी कमी का मुख्य कारण है। इसके साथ-साथ ये कारक अनाज की मात्रा में भी भारी कमी लाते हैं। कीटों और जैविक कारक अपने विषाक्त पदार्थों को उत्पादित कर और अपने मल-मूत्र से लोगों के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव डालते हैं।

अनाज भंडारण कीटों के प्रकार

कवक : कवक एक कोशिकीय बीजाणु है जिनमें जनन स्वत: ही होता है। इसलिए इनके बीजाणुओं को पर्यावरण की पहुंच से दूर रखा जाना चाहिए ताकि ये भंडारित अनाज को संक्रमित न कर सकें। भंडारित अनाजों में कवक संक्रमण की अवस्था को पहचानना मुश्किल है। संक्रमण का फैलाव बीजाणुओं द्वारा होता है जो वातावरण में मौजूद हवा और कीटों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलते है। दाने का कालापन और तीखी गंध, कवक संक्रमण से मुख्य पौष्टिकता में भी भारी कमी आती है। भण्डारित स्थान पर उमस और नमी का होना कवक संक्रमण का प्रमुख कारण है। अनाज को कवक के संक्रमण से बचाने के लिए पूरी तरह सुखा कर भंडारण करना ही उचित माना जाता है।

कीट : भृंग और पतंग दो मुख्य प्रकार के कीट होते हैं जो भण्डारित दालों और अनाजों को नुकसान पहुंचाते हैं। कीटों को ज़िंदा रहने के लिए आवश्यक सभी शर्तें भंडार गृह में अच्छी तरह से मौजूद होती हैं। दोनों के बच्चों को पहचानना बहुत ही मुश्किल होता है क्योंकि ये बहुत छोटे बीज के समान आकृति वाले होते हैं जो कि बीजों के अंदर रहकर नुकसान पहुंचाते हैं। टूटे हुए बीजों को भण्डारित करने से कीटों व कीड़ों को बुलावा मिलता है। इसलिए कभी भी साबुत बीजों के साथ टूटे हुए बीजों को भण्डारित न करें।

चूहे : भंडारित अनाज को नुकसान पहुंचाने में चूहे भी एक प्रमुख कारण हैं। चूहे जूट के बने हुए थैलों में आसानी से छेद करके बीजों को काफी नुकसान पहुंचा देते हैं जिससे खाद्य पदार्थ की गुणवत्ता में कमी आने से अनेक प्रकार की हानिकारक बीमारियां फैलती हैं। चूहों की रोकथाम पिंजरों का प्रयोग कर व रासायनिक उपचार दोनों प्रकार से किया जा सकता है परन्तु पिंजरे का प्रयोग करना अधिक सार्थक माना जाता है।

परंपरागत तरीकों द्वारा अनाज का किफायती व सुरक्षित भंडारण : स्थानीय रूप से उपलब्ध पौधे और उनके उत्पादों से अनाजों का सुरक्षित भंडारण पुराने समय से इस्तेमाल में लाया जाता रहा है। आधुनिक तौर तरीकों की तुलना में परंपरागत तौर तरीके अधिक सस्ते एवं आसानी से उपलब्ध हैं। प्रकृति ने मानव को कई औषधि व निरोगी गुणवाली जड़ी बूटियां वनस्पति के रूप में प्रदान की हैं। जैसे - नीम, हल्दी, तुलसी इत्यादि। यहां उन्हीं उत्पादों का उपयोग अनाज के सुरक्षित भंडारण के लिए किया गया है।

1. धूप में सुखाकर : यह भंडारण की बहुत आसान एवं टिकाउ विधि है। लंबे समय से इसका प्रयोग अनाज में नमी, कीटों के प्रजनन में रोकथाम के लिए किया जाता रहा है। इस विधि में कटाई के बाद अनाज को धूप में सुखाकर लंबे समय के लिए उसे भंडारित कर देते हैं। इससे कीटों में होने वाली प्रजनन किया रुक जाती है। यह विधि बड़े एवं छोटे दोनों स्तर के किसानों के लिए बहुत लाभदायी व प्रभावी है। यह प्रकिया अप्रैल, मई व जून के महीने में एक करने से किसी भी प्रकार के कीड़ों और कीटों पर काबू पाया जा सकता है।

2. नीम की पत्तियों का इस्तेमाल कीटों व कीड़ों की रोकथाम के रूप में : नीम की पत्तियों का इस्तेमाल कीटों व कीड़ों को भंडारित अनाज से दूर भगाने के लिए किया जाता रहा है। इसके लिए पेड़ से ताज़ी पत्तियों को जमा कर उन्हें छाया में सुखाकर रखा जाता है। सीधे अनाज के साथ मिलाकर, अनाज की पेटी को बंद कर दिया जाता है। यह विधि बहुत ही सस्ती, सुरक्षित एवं प्रभावी है। रागी को भण्डारित करने के लिए दक्षिणी भारतीय किसानों द्वारा नीम की पत्तियों का इस्तेमाल कर कीटों व कीड़ों से सुरक्षा के लिए किया जाता है।

3. हल्दी : एक किलो अनाज में 40 ग्राम हल्दी का चूर्ण का भी उपयोग एक अच्छे विकल्प के रूप में किया जाता है। भंडारण में पहले अनाज को हल्दी के चूर्ण के साथ हल्के हाथ से रगड़ कर आधे घंटे के लिए धूप में सुखा देते हैं। कच्ची हल्दी का इस्तेमाल भी कीटों से सुरक्षा के लिए किया जाता है। इसकी तेज़ गंध एवं नाशकजीव रोधीगुण के कारण कीट अनाज से दूर रहते हैं। यह उपचार कीटों से लम्बे समय तक सुरक्षा प्रदान करता है और खाने की दृष्टि से भी सुरक्षित है।

4. चूना का प्रयोग कर उपचार करना : चूना नाशकजीवों को नियंत्रित करने के लिए बहुत पहले से ही प्रयोग में लाये जाने वाली विधि है। यह बहुत ही सस्ता एवं आसान उपाय है। नाशकजीवों को नियंत्रित करने के लिए इस विधि में चूने का चूर्ण बनाकर उसे चावलों के साथ मिला दें। फिर जूट से बने थैले में डालकर सूखे स्थान पर रख दें। इसकी महक से कीड़े दूर भाग जाते हैं और उसकी प्रजनन प्रक्रिया को भी रोक देते हैं। साधारणत: 10 ग्राम चूने का इस्तेमाल 1 किलोग्राम अनाज को उपचारित करने में किया जाता है। यह उपचार नाशकजीवों के आक्रमण से लंबे समय तक बचाता है।

5. राख द्वारा नाशकजीवों का नियंत्रण : यह विधि नियमित रूप से किसानों द्वारा पुराने समय से इस्तेमाल में लाई जा रही है। इस विधि में दालों को भण्डारित करने के लिए मिट्टी से बने घड़े के अंदर 3/4 भाग राख व बाकी बचे एक चौथाई भाग में गाय का गोबर और लकड़ी की राख से भरकर बंद कर दें। छ: महीने के बाद यह विधि फिर से दोहराएं। अनाज को भी इसी प्रकार गाय के गोबर की राख के साथ मिलाकर भण्डारित करते हैं जो कीटरोधी है।

6. कीटों व कीड़ों से बचाव के लिए माचिस की डिब्बियों का उपयोग : ग्रामीण महिलाओं द्वारा अनाज को भण्डारित करने में यह विधि बहुत पहले से इस्तेमाल मे लाई जा रही है। इस विधि में सामान्यत 6 से 8 माचिस की डिब्बियों को अनाज की पेटी की सतह में, बीच में व ऊपरी हिस्से में रखकर उसे अच्छे से बंद कर देते हैं। माचिस की तीलियों में फास्फोरस होता है जो कीड़ों के संक्रमण की रोकथाम में सहायक होता है।

6-8 माचिस से अधिक मात्रा प्रयोग में हानिकारक है।

7. नीम के घोल द्वारा उपचारित जूट से बने थैलों का उपयोग : अनाज का सुरक्षित भण्डारण करने के लिए जूट से बने थैले बड़ी मात्रा में उपयोगी हैं। भण्डारण से पहले थैलों को नीम के घोल से उपचारित किया जाता है।

भंडारण : कीड़ों की रोकथाम के लिए फसल उत्पादों का इस्तेमाल

नीम के बीज द्वारा प्राप्त उत्पाद : 10 प्रतिशत नीम के बीज से घोल तैयार करने के लिए 1 कि.ग्राम. या नीम के बीजों का चूर्ण एवं 10 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। कपड़े की पोटली में 1 ग्राम नीम के बीज का चूर्ण बनाकर उसे 10 लीटर पानी में सारी रात डूबो कर रखें। अगले दिन पोटली को निचोड़ कर पानी का इस्तेमाल नीम के घोल के रूप में करें। जूट से बने थैले को उपचारित करने के लिए उसे आधे घंटे के लिए नीम के घोल में डाल दें। थैलों को हमेशा छाया में ही सुखायें।

नीम के तेल का उपयोग : घरेलू एवं परंपरागत तौर पर नीम के तेल का उपयोग किसानों द्वारा बीजों को उपचारित करने में किया जाता है। एक कि.ग्रा. अनाज को उपचारित करने के लिए 20 मि.ली. नीम का तेल काफी है। नीम का तेल भृंग, घुन, लाल सुरी, सफेदलंबे सिरवाली सुरी और पतंगे इत्यादि की रोकथाम में सहायक है।

भंडारण कीटों की रोकथाम के अन्य उपाय

ढाँचे को साफ एवं मुरम्मत रखें : ढाँचे को हमेशा साफ एवं सही तरीके से ही उपचार करें। गर्मी के महीनों में कीड़े ठण्ड की तुलना में ज़्यादा क्रियाशील होते हैं। इसलिए भण्डारण से पूर्व गर्मी के मौसम में सही तरीके से इसे पूरी तरह से उपचारित करें। भंडारण में होने वाली दरारों एवं छिद्रों की पूरी तरह से तुरन्त मुरम्मत या बंद करवा देना ही सही होता है। पुराने अनाज को स्थान परिवर्तन करते समय उसे सही तरीके से जांचना चाहिए। यदि अनाज सर्वंमित है तो उसे जल्द ही उपचारित करें।

केवल साफ एवं सूखे अनाजों का ही भण्डारण करें : अनाज के टुकड़े, धूल एवं भूसा, कीड़ों को अपनी तरफ आकर्षित करते हैं एवं कीड़ों के प्रजनन में सहायक होते हैं। लम्बे समय तक भण्डारण को देखते हुए अनाज को सही एवं समुचित तरीके से धूप में सुखाकर, साफ करके ही भण्डारित करें।

विशेष स्वच्छता : इस बात का विशेष ध्यान रखें कि भंडारण से पहले भण्डारण ढांचा तथा यंत्र जैसे ट्रंक आदि विशेष रूप से साफ हो। कोई भी पहले से पड़ा हुआ अनाज इत्यादि न हो।

अनाजों का नियमित निरीक्षण : नियमित देख-रेख भण्डारण प्रकिया का अति महत्वपूर्ण प्रयास और सही दिशा में कदम है।

निष्कर्ष : खाद्य पदार्थों की सही गुणवत्ता को घरेलू स्तर पर बनाए रखने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि भण्डारण के विभिन्न वैज्ञानिक तरीकों को अपनाया जाए। ये सभी प्रयास सामग्री एवं विधि केवल भण्डारण के उद्देश्य से है परंतु प्रति वर्ष उपलब्ध होने वाला खाद्य सामग्री भण्डारण तभी संभव है जब भण्डारण घरेलू स्तर पर सही तरीके से हो और उनका भविष्य में इस्तेमाल वाणिज्यिक उद्देश्य से हो। इसलिये पर्यावरण अनुकूल, सुरक्षित और प्रभावी भण्डारण को प्रोत्साहित किये जाने की आवश्यकता है। उपयुक्त सारे प्रयास को पुन: नये सिरे से अपनाकर उन्हें और प्रभावी बनाने की आवश्यकता है जिससे भविष्य में आने वाली पीढ़ी लाभान्वित हो।

(पृष्ठ 24 का शेष)

सहायक होती है क्योंकि सीमित नमी सतह के कारण खरपतवार कम उगते हैं।

5. जल की कमी वाले क्षेत्रों के लिए यह सिंचाई विधि अत्यन्त ही लाभकर होती है।
6. टपका सिंचाई में अन्य सिंचाई विधियों की तुलना में जल दक्षता अधिक होती है।
7. इस सिंचाई विधि से जल के भूमिगत रिसाव एवं सतह बहाव से हानि नहीं होती है।
8. सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई प्रणाली प्रदूषण से मुक्त तथा अक्षय ऊर्जा का उपयोग है।
9. सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई प्रणाली में रखरखाव की लागत बहुत कम है।

निष्कर्ष

सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई प्रणाली किसानों के लिये एक बहुत ही श्रेष्ठ विकल्प है, जो बिजली व पानी दोनों की बचत करता है। व साथ ही अक्षय ऊर्जा का भी उपयोग करता है। यह प्रणाली दूर दराज गांवों के लिये बहुत उपयोगी व धूप वाले दिनों के दौरान सबसे प्रभावी है। यह प्रौद्योगिकी किसान की आय के साथ-साथ प्रदूषण से होने वाली बीमारियों के खर्चों को बचाने में भी मदद करती है। 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने का जो लक्ष्य हमारे देश की वर्तमान सरकार ने रखा है,सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई प्रणाली प्रौद्योगिकी उपर्युक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये मील का पत्थर साबित होगी।

(पृष्ठ 26 का शेष)

किया जा सकता है। मिट्टी में धातुओं की उच्च सांद्रता केंचुओं की घनत्व, व्यवहार्यता, कोकून उत्पादन, यौन विकास को प्रभावित कर सकते हैं। धातुएं केंचुओं की मृत्यु दर का कारण बनती हैं और जनसंख्या के आकार, बचाव और प्रजातियों की विविधता को प्रभावित करती हैं। प्रदूषण की बहुत कम सांद्रता में एक्सपोज़र केंचुओं में व्यवहार प्रतिक्रिया कर सकते हैं। मिट्टी और जल मीडिया में धातुओं के लिए केंचुओं की विभिन्न प्रजातियों के संपर्क में प्रतिक्रिया के जवाब में व्यावहारिक प्रतिक्रियाएं और आकार के लक्षण निम्नानुसार हैं: शरीर का घुमाव, कोइलिंग, धीमी और तेज़ गति, शरीर को छोटा करना, शरीर की लम्बाई, कोलोमिक तरल पदार्थ का बाहर निकलना, प्रीक्लिटलर सूजन और शरीर का कसना।

धातु बायोडिग्रेडेबल नहीं है और लगभग असीमित जीवनकाल और असीमित पुनर्नवीनीकरण की संभावना रखता है। हालांकि, धातु प्रदूषण, जो सार्वजनिक स्वास्थ्य और टिकाऊ विकास के लिए भी अधिक जोखिम पैदा करता है, हम जानते हैं कि धातुओं का केंचुओं पर इतना नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, इसलिए हमें इसका सावधानी से उपयोग करना चाहिए ताकि धरती के साथ-साथ पर्यावरण को नुकसान न पहुंचे।

Rohida : Marwar Teak of Thar Desert

✍ **Sandeep Arya, Neeraj Kumar[1] and Naresh Kaushik**
Department of Forestry
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Tecomella undulata (Smith) Seeman, a member of the family *Bignoniaceae*, is one of the co-dominant species in the desert forests of western Rajasthan and adjoining lands of Haryana alongside *Prosopis Cineraria* (Khejri).

It is commonly known as rohida and rugtora in Hindi, ammora in English, rohira or luar or lahura in Punjabi and is locally known as honey tree, desert teak, white cedar, marwar teak or Rajasthan tak.

It is widely distributed in Arabia, southern Pakistan and north-west India upto an elevation of 1200 meters. In India, it occurs naturally in Rajsthan, Punjab, Haryana, Gujarat and Maharashtra. It is also distributed in sub-Himalyan tract from gonad (Uttar Pradesh), eastward to Bengal, Sikkim and Assam west, in western ghat and Andmans.

In western Rajasthan, it occurs in areas of Sikar, Churu, Jhunjhunu, Rattangarh, Chappar, Bidhasar, Nokha, Jasrasar, Nagaur, Sadulpur, and Bikaner. It has also been reported in the Mogra and Harikhala localities of Jodhpur, Devabas of Jalore and Kasthari, Sivana Faludi, Rawatsar, Chohtan, Porarian and Kharia Kalan areas of the Barmer district. Rohira occurs in various localities of southern Haryana, namely, Bhiwani, Tosham, Dadri, Kanina, Mohindergarh and Bawal.

It occurs on flat and undulating areas including gentle hill slopes and sometimes also in ravines. It is well adapted to drain loamy to sandy loam soil having pH 6.5- 8.0. The species thrives very well on stabilized sand dunes, which experience extreme low and high temperatures. It grows in areas of scanty rainfall (annual 150-500 mm) and high temperature (35° to 48°C). It can withstand extreme low temperature (0° to - 2°C) during winter and high temperature (48° to 50°C) in summers. The tree is a strong light demander. It is drought, frost, fire and wind hardy.

It is noted among the desert dwellers for its high quality timber and medicinal value. Indiscriminate felling for timber and fuel coupled with poor regeneration have severely depleted the natural population of this valuable tree.

Morphology: Rohira is an evergreen large shrub or small tree with dropping branches and curved trunk. It attains a height of 4 to 8 m, a circumference of 50-87 cm and is extremely slow growing with a deep root system. The leaves are thick, greyish, coriaceous, alongwith a prominent mid rib and obtuse to refuse apex. Defoliation occurs from the first week of November and continues until the end of March. New leaves appear from February onwards and there is never complete leaf shed. At the time of flowering (December-February), it produces beautiful showy large, pale yellow to deep orange or red flowers born in axillary racemes, on short lateral branches, each inflorescence having 8-12 buds. It is both, a self and a cross pollinated species, and the flowering period extends from December to mid April. The wood is greyish or yellowish brown, close grained and mould with light streaks and is tough, strong and durable. Fruit is capsule, matures during May to June and 15-20 cm long pods, slightly curved and brownish grey. The seeds are light, narrowly winged, 2 cm long and 8 mm broad and are dispersed by the wind. Seed viability is greatest immediately post-harvest and is reported to decline to zero after one year.

Silviculture : This species regenerates easily from seed and requires no pre-treatment although soaking the seed in cold water for three to four hours has been effective in producing uniform germination. The seedlings are raised in polythene bags filled with soil, sand and farm yard manure in equal proportion. The best time of seed sowing is immediately after collecting the seeds in June-July. About 8-9 months old seedlings are transplanted. The seedlings can be transplanted at 5×5 m or more spacing.

It is a slow growing species. However, tissue culture techniques have been developed for the rapid propagation of Rohira. Multiple shoot formation was obtained from 8 to 10 mm bud explants taken from a plus tree and placed in Murashige and Sloog's (MS) medium, rooting was achieved on a medium containing NAA or IBA 0.5-1.0 mgl-1), whilst and 2,4-D and IAA it produced callus. The tree coppice well.

Uses

Rohira is an important and valuable timber tree. The wood is very hard, close grained strong greyish to yellow brown in colour and is used for making toys, fine carving work, furniture and agricultural implements. The twigs and branches are used as fuelwood. The leaves and raw fruits provide fodder for cattle. The leaves are rich in protein and minerals and provide mainly supplemental feed with protein and crude fiber contents of 12.20 and 15.8%, respectively. The flowers are rich in nectar and pollen and are a potential source of honey.

Rohira is a true agroforestry species for arid climates. Generally, guar, sorghum, wheat, gram and mustard are grown in association with this species. Grass and other perennial provide a high air dry forage yield under its canopy.

The population of soil microorganism was also found to be high under its canopy. Soil physio-chemical investigations revealed generally high N.P and K levels beneath the canopy and increased soil fertility status with respect to organic carbon, total nitrogen, phosphorus and available macro and micro nutrients.

Phyto-chemical studies of plant parts of rohira have lead to identification of pharmacologically relevant compounds such as, Iridoid glucoside, naphthoquinone, phytosterols, flavonoid glycoside, flavonol, fatty alcohol, fatty acid and triterpenoids. It is reputed to be of considerable medicinal value in Ayurveda and traditionally, it is extensively used for treatment of several diseases like liver, spleen, internal tumours, diseases of abdomen, wound healing, conjunctivitis, hepatosplenomegaly, blood purifier, syphilis, gonorrhea and rewarding in hepatitis. Pharmacological studies have also reported its anti-HIV, antibacterial activity, analgesic and anti inflammatory, anti-oxidants and hepatoprotective.

[1]Department of Botany and Plant Physiology, CCSHAU, Hisar

Low Cost Storage Facility for Fresh Fruits and Vegetables

✍ **Sumit Deswal and Manender Singh**
Department of Horticulture
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

One of the most important period for fruits and vegetables is from the time it is picked/harvested until it is disposed to the consumer. The period is commonly referred as post-harvest life. Fruits and vegetables are highly perishable commodities. These are affected by number of internal and external factors which lead to the post-harvest losses. Horticultural products are stored at lower temperature because of their highly perishable nature. There are many methods to cool the storage environment. Hence, storage of these types of foods in their fresh form demands that the chemical, bio-chemical and physiological changes are restricted to a minimum by close control of space temperature and humidity. The high cost involved in developing cold storage or controlled atmosphere storage is a pressing problem in developing countries like India. Evaporative cooling is a well-known system to be an efficient and economical means for reducing the temperature and increasing the relative humidity in an enclosure and the evaporative cooler has prospect for use for short term preservation of vegetables and fruits soon after harvest. Zero energy cooling system could be used effectively for short-duration storage of fruits and vegetables. It not only reduces the storage temperature but also increases the relative humidity of the storage which is essential for maintaining the freshness of the commodities and increase shelf life.

Zero energy cool chamber (ZECC) is a immovable cooling chamber developed by S. K. Roy and D. S. Khurdiya, Indian Agricultural Research Institute (IARI), New Delhi, for short duration storage of fruits and vegetables on the farm. It is a double walled structure and the gap of about 75 mm (3") between the two walls is filled with sand. It is covered by a cover made of cane or sack. The sand is saturated with water to keep it moist. As the water evaporates, it removes the heat from within the chamber through the process of evaporative cooling. The chamber can keep the temperature 10-15°C cooler than the outside temperature and maintain about 90 per cent relative humidity. It is suitable for almost all fruits and vegetables except onion, garlic, ginger, potato, etc. as these crops require lower relative humidity (65-80 per cent). The principle of ZECC is based on evaporative cooling, *i.e.* cooling effect created due to evaporation of water. The ZECC maintains the relative humidity inside the cooling chamber relatively higher than that outside the chamber which helps in lowering the temperature inside the cool chamber as compared to ambient temperature. The temperature variations inside the cool chamber happen to be very low as compared to outside fluctuation in mercury.

The main advantages of this on-farm low cost cooling technology are :

1. It does not require any electricity or power to operate
2. Materials required like bricks, sand, bamboo, etc. are easily available.
3. Even unskilled labour can build the chamber, as it does not require any specialized skill.
4. Cool chambers can reduce temperature by 10-15°C and maintain high humidity of about 95 per cent. It can increase shelf life and retain quality of horticultural produce.

Materials Required

1. Bricks 2. Sand 3. Bamboo 4. Gunny bags 5. Straw

Site Selection

1. It should be cool and shady area
2. The area should be raised with proper drainage
3. It should be near the water source

Construction

1. Select an-upland having a nearby source of water supply.
2. Make floor with brick 165 x 115 cm.
3. Erect the double wall to a height of 67.5 cm leaving a cavity of 7.5 cm.
4. Drench the chamber with water. Soak the fine river bed sand with water.
5. Fill the 7.5 cm cavity between the double walls with this wet sand.
6. Make top cover with bamboo (165 x 115 cm) frame and '*sirki*' straw or dry grass.
7. Cover tin shed made over chamber to protect from direct sun, rain or snow.

Approximate cost of cool chamber (100 kg capacity)

Brick (400 Nos.)	Rs. 1000.00
Sand	Rs. 100.00
Bamboo, khas khas, etc. for top cover	Rs. 300.00
Thatched shed	Rs. 500.00
Water tank, pipes, tubes poly sheet, etc.	Rs. 600.00
Plastic crates (6 Nos.)	Rs. 1200.00
Labour	Rs. 300.00
Total cost	**Rs. 4000.00**

Operation

- Keep the sand, bricks and top cover of the chamber wet with water.
- Water twice daily (morning and evening) to achieve desired temperature and relative humidity. Alternatively fix a drip system for watering with plastic pipes and micro tubes connected to an overhead water source.
- Store the fruits and vegetables in perforated plastic crates.
- Cover crates with thin polyethylene sheet.
- Cool chamber should be reinstalled once in three years with new bricks.
- Utilize the old bricks for other purposes.



Physiological Disorders of Potato : Their Management

✍ **Vinod Kumar, S.K. Tehlan and Vikash Kumar**
Department of Vegetable Science
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Internal Brown Fleck/Spot

Symptoms : Affected tubers do not normally display external symptoms of brown spot.

- Typical symptoms are irregular brown flecks that primarily occur in the vascular bundle ring.
- Brown fleck often occurs in large tubers.
- Brown fleck occurring near the apical section of the tuber is formed at the end of the season, while brown fleck near the stolon end is formed when the tubers are small.

Causes

- The primary cause of brown flecks localized shortages in calcium. Shortages in Ca causes the loss of the integrity of cell membranes and cell walls under stress conditions.
- Environmental factors that lead to brown fleck include air and soil temperature, soil types and moisture.
- Calcium uptake and transportation in the plant occur almost exclusively through the transpiration stream from the roots to stems, leaves and tubers.

Management : Ensure that sufficient Ca is available for uptake where and when tubers are formed. Where granular fertilizer is used, the Ca must be available in the whole tuber zone.

Opting for planting times to avoid high temperatures during tuber formation and harvesting, reduces the risk associated with brown fleck.

- Avoid cultivars that are prone to brown fleck, especially if it is planted during warm periods of the year.
- Avoid stress conditions at the beginning of the growing season through proper fertilization and irrigation practices.
- Ensure that Ca uptake is not limited by an imbalance between nutritional elements or unfavorable pH.

Brown Core and Hollow Heart

Symptoms : Cultivars differ in their susceptibility to brown core and hollow heart.

- Under specific conditions, brown core and hollow heart are regarded as two different stages of the same disorder and are most probably caused by the same conditions.
- Hollow heart, however, can develop independent of brown core and tends to occur in large tubers.
- The cavities can appear lengthwise or diagonal in the tuber and also have irregular shapes.
- The tissue lining the cavities can be white or brown and skin tissue is sometimes formed.
- Cavities can appear at different places in the tuber, depending on the time in the season it develops.
- If small tubers with brown cores develop slowly and consistently, the dead brown cells spread in between the normal living cells.

Causes

- Brown core develops when tubers are very small and temperature is low (<15°C), especially during tuber initiation up to the tuber reaching 50g. Cells die, turn brown and can easily tear apart.
- If small tubers with brown core grow fast and/or inconsistently, the cells in the brown core can tear apart and as the tuber enlarges, hollow heart develops.
- Hollow heart, that is not preceded by brown core, is associated with high growth tempo of tubers, fluctuating soil moisture and sometimes with high levels of nitrogen and/or insufficient calcium.

Management : Prevention of brown center and hollow heart is difficult, but measures below can reduce the risk of these defects.

- Select cultivars that are less prone to the disorder
- Avoid over-irrigation
- Avoid a low plant population
- If brown center occurs regularly in early plantings, consider planting later when temperatures are slightly higher
- Endeavour to maintain uniform conditions throughout the season by managing fertilization and irrigation

Cold Damage

Symptoms : Cold damage can occur on the surface of tubers exposed to sub-zero temperatures, but symptoms of cold damage are mostly inside the tubers, often in the vascular tissue and the stem end of the tuber.

- Exposure for short periods to temperatures around 2°-0°C can result in grey or reddish tissue. The tissue can also turn dark grey or black.
- The ability of seed potatoes with cold damage to sprout, are often affected negatively.
- If tubers with cold damage are fried, the chips turn dark in color. If tubers are cooked, the tissue of such tubers goes grey or black.

Causes : Exposure of tubers to temperatures that vary from just above (2°C) or below freezing-point.

- Tubers close to the soil surface, especially after foliage die-off, are exposed to cold damage.
- Seed potatoes that are transported in the winter without the necessary protection are exposed to the risk of cold damage.
- Seed potatoes that are stored under conditions of insufficient protection against low temperatures and cold winds, e.g. stacked under trees.
- If the temperature drops too low during cold storage.

Management : Do not leave harvested tubers on the land overnight, especially if low temperatures are expected.

- Avoid cultivars that tend to bear shallow in regions with low temperatures at the end of the growing season.
- Do not store seed potatoes on the farm if the correct conditions are not available.
- If seed potatoes must be transported in winter, the consignment must be properly covered and it must be done during the day.
- Ensure that mechanisms are in place for proper temperature control during cold storage.
- Harvest plantings with tubers close to the soil surface before the first cold front is expected.

Black Heart

Symptoms :

- The inside of the tubers are greyish black to black and the affected tissue is normally well defined.
- A cavity can form inside the black heart. The affected tissue is hard and leathery.
- Because the symptom is not a result of rotting, no bad odour is present.
- Black heart often occurs in large tubers.

Causes : Develops as a result of an oxygen shortage or an over supply of CO_2 whizzch causes the tissue to die, especially if the oxygen shortage is accompanied by high temperatures.

- Black heart can develop during storage and transportation if oxygen is insufficient as a result of poor ventilation, especially at high temperatures (32°C).
- Black heart can also occur in the potato field if high temperature follows excessive rain which causes an oxygen shortage in the soil.
- When seed planted by hand lie in furrows for a long time before being covered by soil, especially when it is very hot.

Management : After harvesting do not leave tubers in the sun on trailers under tarpaulins.

- Ensure sufficient ventilation during storage and transportation.
- Avoid fields with poor drainage if rain is received in the after season.
- Make sure that lifted tubers are picked up as soon as possible.
- Cover seed tubers in furrows as soon as possible after planting.

Management : Irrigation prior to foliage die-off decreases the incidence of vascular browning, irrespective of the method of foliage die-off.

Greening

Symptoms : Greening of the tissue immediately under the skin.

- The intensity may differ and may also be accompanied by sunburn.

Causes : Greening occurs when tubers are exposed to light (sun or artificial). Chlorophyll then forms in cells immediately under the skin.

- Tubers appearing near the soil surface, whether through planting too shallow, soil cracks, erosion, or cultivars prone to form long stolons or carrying shallowly are exposed to sunlight.
- Greening may also occur when tubers are exposed to light after harvesting during storage or display in stores.
- Excessive nitrogen application, early in the season, may cause stolons to grow longer than normal.

Management : Avoid cultivars that are prone to bear shallowly.

- Plant in well prepared soils.
- Avoid high nitrogen application, especially with cultivars that are prone to form long stolons.
- If possible, irrigate to prevent cracks occurring during dry weather conditions.
- If tubers are exposed after foliage die-off, it can be ridged to cover it with soil.
- Do not expose tubers to light for long periods after harvesting.
- Use packaging materials that provide sufficient protection against light transmission if potatoes are exposed to light for more than a few days. White paper transmits more light than brown.

Growth Cracks

Symptoms : Growth cracks vary in depth and length, but normally occur in the length of the tuber.

- Initially, the tuber tissue is exposed, but a thin skin is later formed.
- Some cultivars are more inclined to crack, *e.g.* mondial.

Causes : Growth cracks occur during varying soil moisture conditions.

- Tubers crack when a dry period is followed by heavy rains or over-irrigation. Moisture uptake causes a quick increase in tuber moisture and growth and consequently an increase in tuber size.
- Uneven plant population, over-fertilization with nitrogen and nutrient imbalances contribute to the occurrence of growth crack.
- Application of large amount of nitrogen at one time after tuber formation.

Management : Avoid cultivars that are prone to crack if growth cracks regularly occur and causes loss in income.

- Where possible ensure uniform growing conditions, even plant population, good irrigation scheduling and good fertilization practices.

Enlarged Lenticels

Symptoms : Raised, white callus-like tissue on the surface of the tubers. The size may vary from inconspicuous to large.

- When tubers are removed from wet soil, the raised tissue is white, but it desiccates under dry conditions.
- When tubers with enlarged lenticels are brushed, the white tissue is removed and the underlying tuber tissue is exposed. Under favorable conditions, the exposed tissue is later covered by wound healing.

Causes: Under normal conditions, the lenticel is a small opening lined by cork cells that allows gas exchange between tuber tissue and the environment.

- Enlarged lenticels are formed under conditions of oxygen shortage and excessive moisture in the soil surrounding the tubers, or in storage as the cells beneath the lenticels expand and the cell mass breaks through the corky layer.

Management : Avoid fields that are prone to water-logging.

- Reduce irrigation two weeks prior to harvesting by irrigating when the plant available water is 40 -50%. • If tubers with enlarged lenticels are harvested, it must be dried as soon as possible.
- Seed potatoes from waterlogged sections must be kept separately from other seed potatoes when warm moist conditions prevail.

Sprouting

Symptoms : Potatoes start to sprout when it is harvested, especially when tubers have been left in the soil for long.

- Normally, it is only the apical eyes that sprout.
- Roots can also form at the basal part of the sprout.

Causes : Sprouting on the land is normally an indication that the cultivar is not adapted to the cultivation practices of a specific area.

- Normally, it is cultivars with a short dormant period that sprout on the land.
- Sprouting is promoted by high temperature before harvesting.

Management : Evaluate new cultivars for at least three years in the production area and follow normal cultivation practices to identify cultivars that are not totally adapted.

Loose Skin

Symptoms : Loose skin occurs when tubers are handled.

- The skin is totally or partially removed from the tubers leading to the underlying tuber tissue being exposed.
- Loose skin causes the tubers to be more prone to weight loss and infection by post-harvest pathogens.
- The underlying tissue browns after a few hours to cause browning.

Causes: Loose skin is common when young tubers are handled.

- Excessive application of nitrogen, late in the season and wet soil, may delay ripening and promote loose skin.

Management : Top-growth must be completely dead 14 to 21 days prior to harvesting to promote skin setting.

- Ensure that the harvester is properly set to prevent tuber damage.

ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती

150 YEARS OF CELEBRATING THE MAHATMA

वर्ष 52 अंक 04











अप्रैल 2019

वार्षिक चंदा ₹ 150

आजीवन सदस्यता ₹ 1500

प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित

© कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 52 | अप्रैल 2019 | अंक 04

इस अंक में

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ
गेहूँ का शुद्ध बीज कैसे तैयार करें	यशपाल सिंह सोलंकी, मीना सिवाच एवं नीरज पवांर	1
कठिया गेहूँ के उत्पाद : महत्व	राजेश कुमार आर्य, एस.के. सेठी एवं प्रीति	2
फसलों में उर्वरक प्रयोग विधि एवं समय	प्रमोद कुमार यादव, मुकेश कुमार जाट एवं आभा टिक्कू	3
पॉली टनल में सब्जी उत्पादन और उसके लाभ	मुकेश कुमार एवं राजेश कुमार	4
बी टी रहित कपास के हानिकारक कीट एवं प्रबन्धन	अरुण जानूँ, कृष्णा रोलानियां एवं करमल सिंह मलिक	5
भंडारित बीज का कीटों से बचाव	हेमेंद्र, सुषमा शर्मा एवं वी एस मोर	6
किसान – बीज प्रमाणीकरण को जानें	सुनील कुमार, अनिल कुमार मलिक एवं सतबीर सिंह जाखड़	7
अरण्ड की खेती से बदलाव की लहर : सफलता की कहानी	नरेन्द्र कुमार, सुरेन्द्र यादव एवं सुनीता यादव	8
तिलहनी फसलों में परागण घटकों का महत्व	सुधांशुबाला नायक, शेफाली एवं विनय कुमार बी के	9
गन्ने की उत्तम बीज उत्पादन तकनीक	मेहर चन्द, सुधीर शर्मा एवं लोकेश यादव	10
कैर : शुष्क क्षेत्रों का जीवनदायक पौधा	विरेन्द्र दलाल, के. एस. अहलावत एवं राजेश कथवाल	12
आंवला – एक गुणकारी फलदार पौधा	राजेश कथवाल, अमित कुमार एवं सुलेमान मोहम्मद	18
सफल डेयरी फार्मिंग के मूल-मंत्र	अमित, गुलाब सिंह एवं सूबे सिंह	19
उर्वरक की आवश्यकता व भारत में उपलब्धता	अमनदीप सिंह एवं नरेंद्र कुमार	19
पराली से जैविक खाद निर्माण : प्रदूषण पर नियंत्रण	कमला मलिक, शिखा महता एवं यादविका	20
घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा	पूनम मलिक	21
बच्चों की अनुकूल परवरिश : सुझाव	सुमित श्योराण, सुधा चिकारा एवं शीला सांगवान	22
कृषि मेला (खरीफ)-2019 : एक झलक	सूबे सिंह, अशोक कुमार एवं राजेश कुमार	24
केंचुआ खाद : मृदा स्वास्थ्य एवं किसानों के लिए एक वरदान	उमा देवी, पवन कुमार एवं धीरज पंघाल	25
बुजुर्गों में अल्ज़ाइमर्स – भूलने की बीमारी	रेनू बाला, पूनम रानी एवं संगीता चहल	26
मानसिक तनाव का स्वास्थ्य पर असर	पूनम रानी, रेनू बाला एवं बिमला ढांडा	27
Healthy Seed Production – Free From Pathogens	Sunil Kumar, Manjeet Singh and S. S. Jakhar	28
Microbes as Biocontrol Agent	Jagdish Parshad, Rajesh Gera and Sushil Kumar Singh	30
Current Options for Managing Nematode Pest of Crops in Haryana	Vinod Kumar, Anil Kumar and K. K. Verma	31
स्थाई स्तम्भ : मई मास के कृषि कार्य		**13**

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)
विस्तार शिक्षा निदेशालय

सह-निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह-निदेशक (हिन्दी)

सुनीता सांगवान
सम्पादक (अंग्रेजी)
प्रकाशन अनुभाग
आवरण एवं सज्जा
राजेश कुमार

लेखकों से अनुरोध : हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। टाईपिंग के लिए कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें। अपना लेख हमें ई-मेल पर भी भेज सकते हैं haryanakhetihau@gmail.com

गेहूँ का शुद्ध बीज कैसे तैयार करें

✍ **यशपाल सिंह सोलंकी, मीना सिवाच एवं नीरज पवांर**[1]
कृषि विज्ञान केन्द्र, रोहतक
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कृषि पैदावार बढाने के लिए शुद्ध बीज का होना अति आवश्यक है। अनुसंधानों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि किसानों के अपने रखे हुए बीज की अपेक्षा शुद्ध बीज से अधिक पैदावार मिलती है । लेकिन किसानों को हर वर्ष शुद्ध बीज प्राप्त करने के लिए बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उनको या तो शुद्ध बीज प्राप्त नहीं होता या इसके लिए बहुत-सा समय व धन खर्च करना पड़ता है। इन परेशानियों से बचने के लिए किसान एक बार किसी प्रमाणित संस्था जैसे कृषि विश्वविद्यालय, राज्य बीज विकास निगम व राष्ट्रीय बीज निगम आदि से शुद्ध बीज लाकर अपने खेत में बीज लें तो उसी से वह शुद्ध बीज तैयार करके, उसकी शुद्धता को कई वर्षों तक कायम रख सकते हैं।

शुद्ध बीज

शुद्ध बीज कम से कम 98 प्रतिशत साफ-सुथरा होना चाहिए अर्थात इसमें कचरा 2 प्रतिशत, खरपतवार 0.10 प्रतिशत व अन्य फसलों के बीज 0.10 प्रतिशत से अधिक नहीं होने चाहिएं। इस बीज की जमाव शक्ति कम से कम 85 प्रतिशत होनी चाहिए तथा बीज में नमी 10-12 प्रतिशत तक होनी चाहिए।

शुद्ध बीज तैयार करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

खेत का चुनाव

शुद्ध बीज तैयार करने के लिए किसान ऐसा खेत चुनें जिसकी जमीन उपजाऊ हो व सिंचाई की सुविधाएं पर्याप्त हों। साथ ही इस खेत में दूसरी फसलों के पौधे व खरपतवार नहीं होने चाहिएं।

बीज उपचार

बीज यदि पहले से उपचारित नहीं है तो 2 ग्राम वीटावैक्स या बाविस्टिन प्रति किलोग्राम बीज की दर से मिला लें ताकि खुली कांगियारी नामक बीमारी की रोकथाम हो सके।

बिजाई का तरीका

शुद्ध बीज तैयार करने के लिए इसकी बिजाई समय पर व कतारों में करनी चाहिए, जिससे गैर पौधे निकालने का काम करने के लिए चलने में आसानी रहे। यदि सम्भव हो सके तो खेत के बीच-बीच में एक या दो रास्ते भी छोड़ दें तो अच्छा रहेगा। खेत में खाद व पानी किस्म के अनुसार दिया जाए। ध्यान रहे कि फसल गिरने न पाये।

फसल की छंटाई

शुद्ध बीज तैयार करने के लिए छंटाई का काम अति महत्वपूर्ण है। शुद्ध बीज वाली फसल में अगर कोई अन्य किस्म का पौधा या खरपतवार हो तो उसको भी निकाल देना चाहिए। खुली कांगियारी से प्रभावित पौधों को पॉलीथीन के थैले से ढक कर सावधानी पूर्वक निकाल कर खेत से दूर मिट्टी में दबा देना चाहिए ताकि बीमारी के कण खेत में न बिखरें। कुछ खरपतवार जैसे जई, हिरनखुरी आदि अंत तक आते रहते हैं। इनको भी निकालना बहुत आवश्यक है।

कटाई व मढ़ाई

जो खेत शुद्ध बीज तैयार करने के लिए चुना गया है अगर उसके आस-पास गेहूँ की अन्य किस्मों की बिजाई नहीं की गई है तो सारे खेत को काट लेना चाहिए। लेकिन यदि खेत के किसी तरफ भी गेहूँ की अन्य किस्म की बिजाई की गई हो तो खेत के उस ओर से 3 मीटर चौड़ी पट्टी फसल काट कर अलग से साफ मशीन द्वारा मढ़ाई कर लेनी चाहिए।

बीज का रख-रखाव

इस बीज को झारने से छान लें ताकि खरपतवार के बीज व छोटे सिकुड़े हुए दाने नीचे रह जाएं। मोटे दानों में अगर कोई दूसरी तरह का दाना भी दिखाई दे तो उसको भी निकाल देना चाहिए। इस साफ व शुद्ध बीज को अच्छी तरह सुखाकर लोहे की टंकी आदि में भरकर अलग से रख दें। कीड़ों से बचाने के लिए सल्फास का प्रयोग करना चाहिए।

यदि उपर्युक्त परामर्शों को ध्यान में रखा जाए तो किसान अपने खेत पर ही कम खर्च में गेहूं का शुद्ध बीज तैयार कर सकते हैं।

[1]क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, रोहतक

आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें।

- सह-निदेशक (प्रकाशन)

कठिया गेहूँ के उत्पाद : महत्व

✍ **राजेश कुमार आर्य, एस.के. सेठी एवं प्रीति**
अनुवांशिकी पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आधुनिक सामाजिक परिवेश में, कठिया गेहूँ अपने खास गुणों, पौष्टिक तत्त्वों तथा अनेक प्रकार के उत्पाद बनाने में प्रयुक्त होने से अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। कठिया गेहूँ के दाने साधारण गेहूँ के मुकाबले अधिक कठोर, बड़े, अर्द्ध-पारदर्शी, सुनहरे होते हैं तथा इसमें ग्लूटन की सबलता भी अधिक होती है।

आज, भारत की सामाजिक व्यवस्था बदल रही है। संयुक्त बड़े परिवार की जगह एकल छोटा परिवार ले रहा है। इसके अतिरिक्त, अब पति-पत्नी दोनों नौकरी करते हैं, इसलिए उनके पास भोजन बनाने के लिए अधिक समय नहीं होता। ऐसी परिस्थितियों में कठिया गेहूँ उत्पाद जैसे पास्ता, नूडल्स, कॉसकस, बुलगुर, मैक्रोनी आदि को कम समय में पकाकर स्वादिष्ट, पौष्टिक तथा सुपाच्य भोजन तैयार किया जा सकता है। यही कारण है कि आधुनिक समय में कठिया गेहूँ का मूल्य एवं सर्वाधिक भोज्य वस्तुओं का उपयोग दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा है।

हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार ने कठिया गेहूँ से बनने वाले उत्पादों को ध्यान में रखते हुए कठिया गेहूँ की अधिक पैदावार देने वाली अनेक किस्में तैयार की हैं। जो प्रांतीय/राष्ट्रीय स्तर पर व्यापारिक खेती के लिए अनुमोदित की गई हैं। जिसमें डब्ल्यू एच डी 943, डब्ल्यू एच डी 946, डब्ल्यू एच डी 948, पी डब्ल्यू डी 231 सी, पी डब्ल्यू डी 291 सी, पी डब्ल्यू डी 314 आदि प्रमुख किस्में हैं। वैसे तो कठिया गेहूँ के उत्पाद बहुत अधिक हैं। सभी का वर्णन करना सम्भव नहीं है। इसलिए कुछ विशेष उत्पादों का वर्णन किया जा रहा है जो इस प्रकार से हैं :

पास्ता पदार्थ : आजकल पास्ता उत्पाद पौष्टिक गुणों से भरपूर विभिन्न आकार तथा प्रकार में बाज़ार में साधारण कीमत पर शुष्क अवस्था में उपलब्ध हैं। जिसमें एल्बो मैक्रोनी, लम्बी स्पेगेती, वर्मीसिली, लीनमुईन, रिगटोनी आदि की लम्बी भण्डारण क्षमता होने के कारण उपयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है।

पास्ता पदार्थ विभिन्न आकृतियों में उपलब्ध है जिसमें मक्रोनी (खाली ट्यूब) स्पेगेती (भरमा डंडी), नूडल्ज (चपटी/अण्डाकार स्ट्रिप) आदि प्रमुख हैं। वर्तमान में जन साधारण स्वास्थ्य के प्रति सचेत हो रहे हैं तथा भाग-दौड़ भरी ज़िन्दगी में आम लोगों के पास खाना बनाने का समय जुटाना मुश्किल होता जा रहा है इसलिए लगातार कठिया गेहूँ के पास्ता उत्पादों की ज़रूरत दिनों दिन बढ़ रही है।

कॉसकस : यह एक प्रकार का पास्ता है जो सेमोलिना के पाना के साथ मिलाने से बनता है। उत्तम कॉसकस बनाने हेतु दानों की कठोरता तथा सेमोलिना का रंग, कण का आकार, प्रोटीन की मात्रा तथा ग्लूटन की सबलता महत्वपूर्ण होती है। सेमोलिना के कण का आकार तथा स्टार्च (कार्बोहाईड्रेट्स) का बनाने/पकाते समय टूटना, पानी की मात्रा को प्रभावित करता है। स्टार्च का अधिक टुकड़ों में तथा छोटे कणों में टूटने से पानी का अवशोषण जल्द तथा अधिक होता है। सबल ग्लूटन तथा प्रोटीन की अधिकता कॉसकस की गुणवत्ता तथा उत्पादन दोनों बढ़ाती है। परम्परागत रूप से इसे कम मात्रा में घर पर हाथ से भी बना सकते हैं। भाप से पकाए हुए कॉसकस के पोषक तत्व बेकार नहीं जाते। यह भाप तथा चटनी से और अधिक फूलता है। आमतौर पर कॉसकस को भाप के साथ पकाया जाता है तथा सब्जी/मांस के साथ परोसा जाता है।

बुलगुर : बुलगुर एक प्राचीन उत्पाद है। इसे कठिया गेहूँ के दानों को उबालकर बनाया जाता है। बुलगुर बनाने के लिए दानों की कठोरता तथा सुनहरी रंग को अधिक महत्व दिया जाता है। इसे तुर्की, सीरिया, जार्डन, लेबनान, इजिप्ट आदि देशों में मुख्य दावत के रूप में प्रयोग किया जाता है।

मोटे बुलगुर को चावल की तरह पानी में उबालकर खाया जाता है तथा बारीक को मीट के साथ मिला कर पकाया जाता है। किबेअ (बुलगुर व मीट) को अलग-अलग तरह से पकाया जाता है जो कि मध्य-पूर्व का सुप्रसिद्ध भोजन है।

फ्रकेट : इसको फरीक भी कहा जाता है। यह उत्तरी अफ्रीका तथा मध्य-पूर्व में प्रचलित है तथा सीरिया में इसका विशेष स्थान है। फ्रकेट बिन पही हर गेहूँ के दानों को सुखाकर बनाया जाता है। इसका उपयोग भी चावल, बुलगुर, कॉसकस की तरह ही होता है। सबसे हरे गेहूँ के लम्बे/बड़े तथा कठोरतम् दानों से सबसे अच्छा फ्रेकेह भूनकर/उबालकर बनाया जाता है। इसे पकाने के लिए डालकर 20 मिनट तक गर्म करें तथा पांच मिनट ठण्डा हाने दें। इसे चावल की तरह ही खाया जाता है।

सेमोलिना उत्पाद : मध्य पूर्व क्षेत्र में, सेमोलिना से कई प्रकार के पकवान बनाए जाते हैं। अच्छी तरह से तला हुआ सेमोलिना डफ (मुशाबक), परिपक्व सेमोलिया डफ (हरीकेह) और परिपक्व सूजी, वनस्पति घी, चीनी और बादाम (हल्वा) आदि का प्रचलन भी कई देशों में है।

अन्य उत्पाद : गेहूँ में अतृप्त वसा, अम्ल, कुल वसा अम्ल का 80 प्रतिशत होता है। इसके अतिरिक्त विटामिन ई तथा ओक्टज़कोसैनोल भी होता है। इस का भ्रूण तेल प्राकृतिक भोजन तथा सौंदर्य प्रसाधनों जैसे शैम्पू, लोशन, त्वचा रक्षक आदि में प्रयुक्त होता है।

फसलों में उर्वरक प्रयोग विधि एवं समय

✍ **प्रमोद कुमार यादव, मुकेश कुमार जाट एवं आभा टिक्कू**
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल।
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

उर्वरकों का प्रयोग

उर्वरकों से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए उनका सही चयन व प्रयोग विधि एक आवश्यक कदम है।

नाइट्रोजन वाले उर्वरक

अधिकतर नाइट्रोजन यूरिया के रूप में आसानी से उपलब्ध हो जाता है। यूरिया नाइट्रोजन का एक अच्छा स्त्रोत है जो अधिकतर हर प्रकार की भूमि में व फसलों में उपयोग किया जाता है। गंधक (सल्फर) की कमी वाले क्षेत्रों में अमोनियम सल्फेट अधिक प्रभावशाली सिद्ध होता है जबकि असिंचित क्षेत्रों में किसान खाद एक लाभदायक उर्वरक है।

फास्फोरस वाले उर्वरक

अधिकतर फास्फोरसधारी उर्वरक पानी में घुलनशील है जैसे सिंगल सुपर फास्फेट (एस.एस.पी.), डाई अमोनियम फास्फेट (डी.ए.पी.) आदि जो फसलों की आवश्यकता व कीमत के आधार पर चुने जा सकते हैं। अम्लीय भूमि में रॉक फास्फेट, गंधक की कमी वाले भूमि में सिंगल सुपर फास्फेट (एस.एस.पी.) या अमोनियम फास्फेट सल्फेट (ए.पी.एस.) का प्रयोग लाभदायक होता है।

पोटाश वाले उर्वरक

पोटेशियम क्लोराइड (एम.ओ.पी.) एक अच्छा स्त्रोत है जो अधिकांश भूमि में सफलतापूर्वक प्रयोग किया जाता है परन्तु जो फसलें क्लोरीन को नहीं सह पातीं जैसे तम्बाकू, आलू, कुछ फल वृक्ष आदि उनके लिए पोटाशियम सल्फेट (एस.ओ.पी.) उपयुक्त रहता है परन्तु यह पोटाशियम क्लोराइड से महंगा है। इसलिए जिन फसलों में गुणवत्ता का विशेष महत्व है उसे वहाँ ही प्रयोग करना चाहिए।

गंधक वाले उर्वरक

गंधक की आवश्यकता जिप्सम, सिंगल सुपर फास्फेट, अमोनियम, सल्फेट, सल्फेट ऑफ पोटाश से पूरी की जा सकती है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों का चयन

ज़िंक के लिए ज़िंक सल्फेट, लोहे के लिए फैरस सल्फेट, तांबे के लिए कॉपर सल्फेट, मैंगनीज़ के लिए मैंगनीज़ सल्फेट प्रयोग करें। बोरॉन के लिए बोरेक्स व मोलिबिडनम के लिए अमोनियम मोलिबिडेट का प्रयोग करें।

उर्वरक प्रयोग की विधि

उर्वरक चयन करने के बाद उसका सही समय पर प्रयोग आवश्यक होता है। उर्वरक का प्रयोग तीन प्रकार से किया जाता है :

1. **भूमि में प्रयोग:** इस विधि में उर्वरक बुवाई के समय ड्रील या पोरे द्वारा दिया जाता है। यदि किसान के पास कोई यंत्र नहीं है तो वह उर्वरक को हाथ से आखिरी जुताई से पहले बिखेर (छिट्टा लगाना) सकता है। उर्वरक की भूमि की सतह पर न छोड़ें और अच्छी तरह मिट्टी में मिला दें।

2. **खडी फसल में प्रयोग :** खड़ी फसल में उर्वरक ऊपर से (छोटी फसल में) या पौधों की कतारों के बीच में हाथ से बिखेरा जाता है। उर्वरक को गुड़ाई द्वारा भूमि में मिलाया जाता है या हलकी सिंचाई की जाती है।

3. **फसल पर छिड़काव :** उर्वरक को पानी में घोला जाता है और स्प्रेयर यंत्र से पत्तों पर छिड़काव किया जाता है। यह आमतौर पर तब किया जाता है जब किसी खड़ी फसल में किसी विशेष पोषक तत्व की कमी आ जाती है जैसे नाइट्रोजन या सूक्ष्म तत्वों की।

उर्वरक देने का उपयुक्त समय

उर्वरक का प्रयोग बुवाई के समय और खडी फसल में किया जाता है। किसी भी फसल की भरपूर पैदावार के लिए आवश्यक है कि प्रारम्भ से ही पौधों की अच्छी बढ़वार हो जिसके लिए बुवाई के समय 1/2 या 1/3 भाग नाइट्रोजन खाद, पूरी फास्फोरस, पोटाश, ज़िंक व गंधक की मात्रा खेत में डालें। नाइट्रोजन की बीज अंकुरण के समय कम मात्रा में आवश्यकता होती है परन्तु बढ़ोतरी व फल-फूल आने के समय अधिक आवश्यकता होती है साथ ही नाइट्रोजन पानी में घुल कर नीचे गहराई में भी चला जाता है। इसलिए नाइट्रोजन खाद का आधा भाग बुवाई के पूर्व और शेष आधा दो या तीन बार में खड़ी फसल में देना चाहिए।

फास्फोरस जड़ वाली और दानों वाली फसलों के लिए आवश्यक है जिसे पौधा उपयुक्त मात्रा में अपनी बढ़वार के समय लेता है। यह नाइट्रोजन की तरह ज़मीन में कम चलायमान नहीं होता इसलिए इसकी पूरी मात्रा बुवाई से पहले देनी आवश्यक है। खडी फसल में फास्फोरस की कमी दूर करना असम्भव है। क्षारीय तथा उदासीन भूमि में घुलनशील फास्फोरस जैसे सुपरफास्फेट का प्रयोग करें। पोटाश पौधे का प्रयोग प्रारम्भ से अंत तक करता है और बढ़वार की अवस्था में पोटाश का उपयोग नाइट्रोजन व फास्फोरस की अपेक्षा अधिक करता है और यह भूमि में कम चलायमान है अत: पोटाश का भी प्रयोग बुवाई से पूर्व करें। ज़िंक की कमी के क्षेत्रों में बुवाई से पूर्व ज़िंक सल्फेट डाल देना चाहिए। खडी फसलों में शेष नाइट्रोजन पौधों में फुटाव के समय और फूल आने से पूर्व दिया जाना लाभदायक होता है।

उर्वरक डालने का तरीका

नाइट्रोजन वाले उर्वरकों को छिड़ककर या पोर कर देना चाहिए। यदि उर्वरक यूरिया है तो छिड़कने के बाद सुहागा लगा देना चाहिए ताकि उर्वरक मिट्टी की परत से ढक जाये अन्यथा इसे मिट्टी में पोर देना चाहिए। फास्फोरस और पोटाश वाले उर्वरकों को ज़मीन में 7 से 10 सैं.मी. (3-4 इंच) की गहराई पर बिजाई से पहले पोर देना चाहिए ताकि मिट्टी के कणों के साथ कम से कम संपर्क में आएं, भूमि में बंध नहीं पाएं और पौधों की जड़ों को आसानी से उपलब्ध हों। ज़िंक की पूरी मात्रा बिजाई से पूर्व अथवा बिजाई के समय पोर देनी चाहिए।

खड़ी फसलों में नाइट्रोजन दो बार छिड़का जाता है। भारी भूमि में सिंचाई से पहले तथा हल्की भूमि में सिंचाई के बाद, छिड़क कर हल्की गोड़ी कर देनी चाहिए जिससे वाष्पीकरण द्वारा उर्वरक का नुकसान न हो। सुबह के समय जब फसल पर ओस पड़ी हो या पत्ते गीले हों, उस समय नाइट्रोजन खाद फसल पर न छिड़कें अन्यथा फसल को झुलसने का डर

(शेष पृष्ठ 6 पर)

पॉली टनल में सब्जी उत्पादन और उसके लाभ

✍ **मुकेश कुमार एवं राजेश कुमार**
सब्जी विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

'पॉली टनल' छोटे ग्रीन हाऊस जैसी संरचनाएं होती हैं। ये टनल आधार से 18 इंच ऊंची 30 इंच चौड़ी होती हैं और तार की हुप्स के साथ खड़ी होती हैं और पूर्णतया प्लास्टिक से ढकी होती हैं। टनल सूरज से गर्मी का उपयोग करते हुए, पौधों के आस-पास की हवा को गर्म कर के शुरुआती विकास को बढ़ावा देती हैं। टनल पौधों को ठंड से भी बचाते हैं जो उन्हें नष्ट या क्षति ग्रस्त कर सकते हैं। सब्जियों का अगेती होना और अधिक पैदावार के इस संयोजन से उत्पादकों के लिए मुनाफा बढ़ जाता है।

फसलों का चयन

टनल के नीचे उगने वाली फसलों के प्रकार का चयन एक महत्वपूर्ण निर्णय होता है। फील्ड परीक्षण और अनुभव से पता चला है कि कई फसलों की खेती टनल में सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसमें शामिल हैं: मिर्च, खीरे और टमाटर, तरबूज, हरी बीन्स, चीनी लंबी बीन्स। बेल पेपर्स और बैंगन को टनल के नीचे विकसित करना मुश्किल है और केवल इसको अनुभवी किसानों द्वारा ही उगाया जाना चाहिए।

टनल के प्रकार

पॉली टनल कई प्रकार की होती हैं जिसको कृषक अपनी सुविधा के अनुसार उपयोग कर सकते हैं। प्लास्टिक टनल दो प्रकार के ऊपर निर्भर करते हैं एक तो उसमें हम कौन सी फसल उगाना चाहते हैं और दूसरा आप कितनी पूंजी लगा सकते हैं।

1. **पॉली टनल लम्बी फसलों के लिए :** लम्बी बढ़ने वाली फसलों के लिए 2-3 फुट चौड़ी प्लास्टिक शीट्स को ऊपर की तरफ आपस में जोड़कर उपयोग किया जाता है ताकि उनकी बढ़वार सही तरीके से हो सके। ये टनल अपेक्षाकृत अधिक महंगी होती हैं, परन्तु इसमें हम ज़्यादातर काम हाथों से कर सकते हैं।
2. **पॉली टनल बिना ट्रेलिस फसलों के लिए :** इस तरह के टनल अमूमन पौधे के आकर के ही होते हैं यानि काफी छोटे। इसी वजह से इनकी लागत काफी कम आती है। अमूमन इनमें मिर्च, टमाटर और बैंगन आदि फसलें उगाई जाती हैं।
3. **स्पेनिश टनल :** ऐसे उत्पादक जो शिमला मिर्च, मिर्च, झाड़ी टमाटर, बैंगन, हरी बीन्स, स्ट्रॉबेरी और इसी तरह की अन्य फसलें उगाने की योजना बनाते हैं, वे स्पेनिश टनल का उपयोग कर सकते हैं। यह टनल एक उच्च बेड (7 इंच से 10 इंच) और एक ही 6 इंच चौड़ी प्लास्टिक शीट, 1,500 माइक्रो इंच मोटी का उपयोग किया जाता है। प्लास्टिक शीट में आमतौर पर वेंटिलेशन और तापमान नियंत्रण के लिए छिद्रित होती है।

प्लास्टिक टनल का निर्माण

1. मिट्टी तैयार करें जैसा कि आप आमतौर पर सब्जी की फसल लगाने के लिए करते हैं। मिट्टी को समतल करने पर विशेष ध्यान दें, क्योंकि बिना समतल मिट्टी उपकरण की विफलता और समय बर्बाद होने की सबसे बड़ी वजह होती है।
2. कुछ खरपतवार नियंत्रण विधियों के लिए आपको अपनीट नल के अंदर खरपतवार को बनने से रोकने के लिए कार्य करना होता है। इसके लिए प्लास्टिक मल्च, स्ट्रिप फ्यूमिगेशन, ब्रॉड कास्ट फ्यूमिगेशन, हर्बिसाइड्स और सोलराइज़ेशन का उपयोग करके खरपतवार नियंत्रण किया जा सकता है।
3. अपनी फसल की सिंचाई और खाद देने के लिए टपका विधि का उपयोग करें या नहीं, परन्तु 1/3 नाइट्रोजन और लगभग सभी फॉस्फोरस और पोटेशियम को ज़रूर शामिल करें, जोकि अधिकतम उत्पादन के लिए अति आवश्यक है। प्रत्येक फसल के लिए सामान्य निषेचन आवश्यकताओं का पालन करें ।
4. कुछ प्रणालियों के लिए, चाहे बेड बनाना हो या प्लास्टिक बिछाना हो सभी एक ही बारी में पूरा कर लेना चाहिए। (यदि एक टनल बनाने वाली मशीन का उपयोग किया जाएगा, तो इस समय पौधा प्रत्यारोपण करें, क्योंकि यह मशीन एक साथ में हुप्स और प्लास्टिक स्थापित करती है)।
5. हुप्स को हमेशा 7 फीट पर स्थापित करें।
6. इसके बाद पौधे की रोपाई या बीज डालें।
7. आखिर में टनल को बंद कर दें।

शीर्ष दस पॉली टनल लाभ

1. पॉली टनल विधि से साल के किसी भी समय चाहे वो ज़्यादा गर्मी का मौसम हो या सर्दी का या फिर वर्षा का पौध को सफलता पूर्वक तैयार किया जा सकता है। जिससे उत्पादकों को एक स्वस्थ पौध और अच्छी पैदावार मिल सकती है।
2. अगर इस तकनीक से पौध को तैयार किया जाये तो बीज का जमाव अच्छा होता है। ये इसलिए होता है क्योंकि बीज के जमने में जो आदर्श वातावरण चाहिए वो पॉली टनल में आसानी से मिल जाता है।
3. अच्छे जमाव की तरह ही पौधे की बढ़वार पर भी पॉली टनल के आदर्श वातावरण का उस पर उचित प्रभाव पड़ता है जिससे पौधा स्वस्थ बनता है।
4. बीज जमाव के कुछ दिन बाद अगर धूप निकलती है तो पॉलीटनल के पॉलीथीन को दिन में हटा दिया जाता है ताकि पौधे की हार्डनिंग हो सके ताकि जब पौध को प्रत्यारोपण किया जाए तो वो कम से कम मरें।
5. पॉलीटनल में बीज का जमाव और उसकी बढ़वार में समय खुले में पौध लगाने से कम लगता है।
6. पॉलीटनल में पौध को उगाने से पौध स्वस्थ होती है जिस की वजह से पौधे में कीटों और बीमारियों का प्रकोप कम होता है जो सीधे फसल की उत्पादकता पर असर डालती है।

(शेष पृष्ठ 8 पर)

बी टी रहित कपास के हानिकारक कीट एवं प्रबन्धन

✍ **अरुण जानूँ, कृष्णा रोलानियां एवं करमल सिंह मलिक**[1]
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कपास किसानों के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण नकदी फसल है। पिछले कई सालों से बी टी कपास का क्षेत्र ज़्यादा रहा है। परन्तु पिछले चार-पाँच सालों से बी टी कपास में रस चूसक कीटों का प्रकोप बढ़ रहा है जिससे किसानों की लागत में बढोत्तरी हुई है और उत्पादन में कमी आई है। इसलिए किसानों को बी टी कपास के साथ-साथ देसी व अमेरिकन कपास भी लेनी चाहिए। देसी व अमेरिकन कपास में विभिन्न प्रकार की सूंडियों का प्रकोप होता है। अत: किसानों को जानकारी होनी चाहिए की फलीय भाग में कौन-कौन-सी सूंडियां आती हैं और उनका प्रबन्धन कैसे होता है।

चित्तीदार सूंडी : इस सूंडी के अंडे गोलाकार व नीले हरे रंग के होते हैं। यह सूंडी अपने अंडे फूलों की कलियों, पंखुड़ियों व टिण्डों पर एक-एक कर देती है। सूंडी हल्की भूरी व 1.3-1.8 सैं.मी. लंबी होती है। इसका प्यूपा पौधों या गिरी हुई कलियों या टिण्डों में मिलता है। पतंगा दिखने में हल्का हरा व शरीर सफेद होता है।

नुकसान व लक्षण : इस कीट की सूंडियाँ फसल की वृद्धि के शुरूआती चरणों के दौरान तने के ऊपरी भाग (कोमल प्ररोह के नीचे) में छेद करके पौधे में प्रवेश करती हैं और कोमल भाग को खाती हैं, जिसके कारण ऊपर की शाखा मुरझा कर नीचे की ओर लटक जाती है। तने को क्षतिग्रस्त करने के बाद, यह सूंडियाँ कोंपलों, फूलों की कलियों व टिण्डों में छेद करके अंदर प्रवेश कर जाती हैं और उसके मुलायम भाग तथा बीजों को खाती हैं। टिण्डों में छेद अक्सर नीचे से करती हैं। एक सूंडी, कई टिण्डों को नुकसान पहुँचा सकती है। क्षतिग्रस्त टिण्डे अक्सर जीवाणु और कवक रोगजनकों द्वारा माध्यमिक संक्रमण के शिकार हो जाते हैं।

गुलाबी सूंडी : इस सूंडी के अंडे अकेले या चार से पांच के समूह में मिलते हैं, वह सफ़ेद और अंडाकार होते हैं। पहली दो अवस्था में शिशु सफ़ेद होते हैं, जबकि तीसरी अवस्था गुलाबी रंग से विकसित होती है व इसका सिर गहरे भूरे रंग का होता है। इसका पतंगा भी भूरे रंग का होता है।

नुकसान व लक्षण : यह सूंडी फूलों की कोंपलों में घुसकर, बढ़ते हुए नर व मादा अंगों को नष्ट कर देती है। यह फूलों के विकास को रोकती है जिससे पंखुड़ियां पूरी विकसित नहीं होती, उसे गुलाबनुमा फूल भी कहते हैं। यह सूंडी पंखुड़ियों के निचले भाग में सुराख करती हैं। इसका सुराख बहुत बारीक होता है। प्रवेश के बाद छोटे टिण्डों का सारा अंदरूनी भाग नष्ट कर देती हैं व बड़े टिण्डों में यह बीजों को खाती हैं। खिले टिण्डों के लोक्यूल के बीच सेप्टा पर छोटे गोल छेद देखे जाते हैं। सूंडी जब टिण्डे में प्रवेश करती है तो प्रवेश द्वार को ऊपर से बंद कर देती है फलत: उपर से देखने पर यह बताना कठिन होता है कि ये टिण्डा क्षतिग्रस्त है या नहीं।

अमेरिकन सूंडी : यह सूंडी कोंपलों और पौधों के तने पर अंडे देती है जो गोलाकार होते हैं। सूंडी का सिर भूरा या काला होता है। इसका प्यूपा पृथ्वी की सतह से 2.5-12.5 सैं.मी. गहराई पर गठित होता है। नर पतंगा हल्का भूरा, जबकि मादा का रंग नारंगी-भूरा होता है।

नुकसान व लक्षण : अमेरिकन सूंडी का प्रकोप प्रारम्भ में पत्तों पर होता है उसके बाद वह कलियों, फूलों व टिण्डों को खाती है। प्रवेश छेद टिण्डे के आधार पर बड़े और गोलाकर होते हैं। इस सूंडी का सिर टिण्डे के अंदर घुसा रहता है और शेष शरीर टिण्डे से बाहर रहता है। यह एक बहुभक्षी कीट है जो वर्ष भर सक्रिय रहता है।

सूण्डियों का आर्थिक कगार

सूंडी	अवस्था	आर्थिक कगार	आधार
चित्तीदार सूंडी	(1) प्रभावित टहनी	एक प्रतिशत प्रभावित टहनियां	30 पौधों की सभी टहनिया देखें
	(2) फलीय भाग	5 प्रतिशत प्रभावित फलीय भाग (गिरे हुए एवं पौधों पर)	20 पौधों के (गिरे हुए एवं पौधों पर) फलीय भागों का निरीक्षण करें
अमेरिकन सूंडी	(1) फलीय भाग	5 प्रतिशत फल प्रभावित	20 पौधों के सभी फलीय भाग देखें
	(2) सूंडी	0.5 सूण्डी प्रति पौधा	20 पौधों पर देखें
गुलाबी सूंडी	(1) प्रौढ़	5 प्रौढ़ प्रति ट्रैप/रात (जून से मध्य-अगस्त) 8 प्रौढ़ प्रति ट्रैप/रात (मध्य-अगस्त से अक्तूबर)	4-5 फीरोमोन ट्रैप प्रति हैक्टेयर (60 x 60 मीटर की दूरी पर) लगायें और तीन रातों की पकड़ की औसत निकालें

प्रबन्धन

1. अप्रैल-मई में गहरी जुताई करें तथा पिछली फसल की जड़ों एवं डंठलों को एकत्रित कर नष्ट करें।
2. जल्दी तैयार होने वाली सिफारिश की गई किस्में बोयें।
3. बिजाई सम्भवत: 25 मई तक पूरी करें। लम्बी अवधि वाली किस्मों की बिजाई कभी भी 15 मई के बाद न करें।
4. खेतों में निराई-गोड़ाई आवश्यकतानुसार करें ताकि घास-फूस नष्ट हो जाएं क्योंकि घासफूस पर कई कीड़े आश्रित रहते हैं।
5. चित्तीदार सूंडी लगी, झुकी व सूख रही टहनियों तथा गुलाबनुमां फूलों को सप्ताह में दो बार काटें तथा इकट्ठा करके नष्ट कर दें ताकि

[1]सस्य विज्ञान विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

निम्नलिखित कीटनाशकों को आवश्यकतानुसार बदल-बदल कर 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

कीटनाशक	मात्रा एकड़
1. थायोडिकार्ब (लार्विन) 75 डबल्यू.पी.	250-300 ग्राम
2. क्विनलफॉस (एकालक्स) 25 ई.सी.	800-1000 मि.ली.
3. स्पाईनोसेड (ट्रेसर) 45 एस.सी.	75 मि.ली.
4. प्रोफेनोफॉस (क्यूराकॉन/प्रोफेक्स) 50 ई.सी.	800 मि.ली.
5. ट्राइएजोफॉस (होस्टाथियान) 40 ई.सी.	500-600 मि.ली.
6. साइपरमैथ्रिन (साइपरकिल) 25 ई.सी.	80-100 मि.ली.
7. डेकामैथ्रिन (डेसिस) 28 ई.सी.	160-200 मि.ली.

नोट: 1. एक ही वर्ग के कीटनाशकों का लगातार प्रयोग न करें।

2. छिड़काव करने के 24 घंटे के अंदर बरसात हो जाने पर दोबारा छिड़काव करें।

कलियों व टिण्डों पर चित्तीदार सूंडी व गुलाबी सूंडी का आक्रमण कम हो। चित्तीदार व गुलाबी सूंडी से प्रभावित कलियों, फूलों व टिण्डों (गिरे व पौधों पर लगे हुए) को इकट्ठा कर गहरा दबा दें या नष्ट कर दें। अमेरीकन सूण्डियों को इकट्ठा करके कीटनाशक मिश्रित पानी में नष्ट करें।

6. हर खेत में नियमानुसार (15 अगस्त तक हर सप्ताह तथा बाद में सप्ताह में दो बार) 10 पौधों का निरीक्षण करें तथा देखें कि वे कौन-कौन से तथा कितनी सूंडियां एवं परजीवियों से प्रभावित हैं। चुने हुए पौधों पर सूंडियों की गिनती करें और संख्या के आर्थिक कगार पर पहुंचते ही सिफारिश की गई कीटनाशकों का विधिवत छिड़काव करें तथा बाद में भी फसल पर कीड़ों का सर्वेक्षण जारी रखें।

(पृष्ठ 03 का शेष)

रहता है। नाइट्रोजन की खाद को हवा में खुला न छोड़ें। बारानी क्षेत्रों में नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश व ज़िंक उर्वरकों की पूरी मात्रा बिजाई से पूर्व खेत में पोर देनी चाहिए। जिस खेती में नमी कम हो उनमें नियमित मात्रा में ही उर्वरकों का प्रयोग करें। अगर बारानी फसल में नाइट्रोजन की कमी के लक्षण दिखाई दें तो 2.5 प्रतिशत यूरिया (2.5 कि.ग्रा. यूरिया प्रति 100 लीटर पानी में) के घोल के रूप में दो या तीन बार पौधे के फुटाव के समय या फूल आने से पूर्व छिड़क देना चाहिए।

उर्वरकों के प्रयोग के लिए कुछ विशेष ध्यान देने योग्य बातें :

1. पोषक तत्वों को मिट्टी परीक्षण पर आधारित संतुलित मात्रा में दें।
2. खाद को उचित समय व उचित तरीके से दें।
3. बीज व खाद को साथ न मिलायें।
4. खडी फसल में नाइट्रोजन उर्वरक देने के बाद खुला न छोड़ें और तुरन्त हल्की गोड़ाई करें।
5. जब फसल पर ओस पड़ी हो तो नाइट्रोजन खाद न डालें।

भंडारित बीज का कीटों से बचाव

✍ **हेमेंद्र, सुषमा शर्मा एवं वी एस मोर**
बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बीजों का उचित भंडारण एक बहुत बड़ी चुनौती है। अनुचित भंडारण के कारण लगभग 2000 करोड़ रुपये का नुकसान प्रतिवर्ष हो रहा है। पुराने भण्डारण तरीकों, उपकरणों व बर्तनों के उपयोग के कारण भण्डारित बीज में नमी व ताप का स्तर सही नहीं रह पाता। कारणवश, अधिक नमी वाले बीजों में कीड़ों का प्रकोप भी जल्द ही बढ़ने लगता है।

गोदामों में मुख्यत: सूंडवाली सुरसुरी, अनाज छिद्रक, खपरा, अनाज का पतंगा आदि कीट अनाज के बीजों को तथा ढ़ोरा नामक कीट दलहन वाले बीजों को नुकसान पहुंचाते हैं। भण्डारण में इन कीटों के कारण बीज की गुणवत्ता व मात्रा में कमी आना शुरु हो जाता है। यद्यपि इस गिरावट को पूर्ण रूप से रोका तो नहीं जा सकता परन्तु निम्नलिखित उपायों को अपना कर इसे कम किया जा सकता है।

सुरक्षित बीज भंडारण के उत्तम तरीके

भंडारण से पहले :

1. फसल को पूरी तरह से पकने के बाद शुष्क मौसम में काटें।
2. बीज में से कूड़ा-करकट निकाल दें।
3. बीजों में नमी का स्तर 12 प्रतिशत से कम रखें।
4. भण्डारगृह की दीवारें, फर्श व छत अच्छी तरह साफ करें तथा चूहे के बिलों, दरारों आदि को सीमेंट अथवा मिट्टी से बंद करें।
5. सफाई व धुलाई के बाद भण्डारगृह को अच्छी तरह सुखा कर उसमें 0.5 प्रतिशत मैलाथियान दवाई का छिड़काव कोठी, कुठलों, बुखारियों, दीवारों, छत तथा फर्श पर करें।
6. नई बोरियों का प्रयोग करें। अगर बोरी या थैली पुरानी है तो उसे पहले 0.1 प्रतिशत मैलाथियान 50 ई.सी. या 0.01 प्रतिशत साइप्रमैथ्रिन 25 ई.सी. या 0.01 प्रतिशत फैनवलरेट 20 ई.सी के घोल में भिगोएं तथा छाया में सुखाकर प्रयोग करें।
7. पुराने बीज को नए बीज में कभी न मिलाएं।

भण्डारण के समय :

1. बीज में नमी की मात्रा 10 प्रतिशत से कम होनी चाहिए।
2. बोरियों के नीचे लकड़ी के फट्टों का प्रयोग करें ताकि हवा का संचार होता रहे।
3. बोरी के ढेर व दीवार तथा बोरी के दोनों ढ़ेरों के बीच 30 सैं.मी. का अंतर अवश्य रखें जिससे निरीक्षण करने में सुविधा रहे तथा हवा का संचार भी सुचारू रूप से हो।
4. भण्डारित बीज में मैलाथियान 5 प्रतिशत धूड़ा 250 ग्रा. प्रति क्विंटल बीज के हिसाब से मिलाएं। *(शेष पृष्ठ 10 पर)*

किसान – बीज प्रमाणीकरण को जानें

✍ **सुनील कुमार[1], अनिल कुमार मलिक[2] एवं सतबीर सिंह जाखड़**
बीज विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बीजोत्पादन की विभिन्न अवस्थाओं पर बीज गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले सभी कारकों पर प्रभावी ढंग से नियन्त्रण करने की प्रक्रिया को ही बीज प्रमाणीकरण कहते हैं। बीज प्रमाणीकरण का मुख्य उद्देश्य आनुवंशिक रूप से शुद्ध व अन्य प्रकार से अच्छे बीज किसानों को सुलभ करवाना है।

बीज के पंजीकरण की प्रक्रिया : बीज उत्पादक किसी भी बीज उत्पादक संस्था से प्रजनक एवं आधार बीज खरीदकर सीधे बीज प्रमाणीकरण संस्था में पंजीकरण के लिए आवेदन कर सकता है।

इस आवेदन पत्र के साथ फसल व किस्म की जानकारी, बोये गये बीज की श्रेणी, टैग का क्रंमाक, उत्पादन संस्था का चलान/बिल क्रंमाक की पूरी जानकारी देनी चाहिए।

फसल बिजाई के 20 दिन के अन्दर निर्धारित निरीक्षण व पंजीयन शुल्क का डिमाण्ड ड्राफ्ट, निदेशक, हरियाणा राज्य बीज प्रमाणीकरण संस्था के नाम बनवाकर संस्था के संभागीय कार्यालय में जमा करना चाहिए।

क्षेत्र एवं इकाई : बीज प्रमाणीकरण के लिए प्रस्तावित क्षेत्र की अधिकतम सीमा निश्चित नहीं है।

बीज प्रमाणीकरण के अंग : बीज प्रमाणीकरण के पांच मुख्य अंग माने जाते हैं :

1. बीज प्रमाणीकरण के लिए आवेदन : बीज उत्पादक को अपना बीज प्रमाणित करवाने के लिए बीज प्रमाणीकरण संस्था को एक आवेदन देना होता है। इस आवेदन पत्र में बीज उत्पादक को अपना नाम व पता, प्रमाणीकरण के लिए आवेदित बीज की किस्म, क्षेत्रफल, बीज का प्रकार– आधार बीज/प्रमाणित बीज, बीज का स्रोत, टैग संख्या, पृथक्करण दूरी एवं बोने की सही या प्रस्तावित तिथि बतानी होती है। बीज प्रमाणीकरण संस्था द्वारा इस आवेदन पत्र की जाँच की जाती है कि:

किस्म/फसल अधिसूचित है या नहीं? बीज अधिनियम के तहत केवल अधिसूचित किस्मों के बीजों का ही प्रमाणीकरण किया जा सकता है।

बीज का स्रोत उपयुक्त प्रकार का है या नहीं ?

बीज फसल की खेत संबंधी अपेक्षाएं प्रमाणीकरण मानकों के अनुरूप हैं अथवा नहीं।

यह सब जाँच कर ही प्रमाणीकरण संस्था उक्त आवेदन को स्वीकार या अस्वीकर करती है।

2. बीज फसल का निरीक्षण : जब बीज उत्पादक का पत्र स्वीकृत हो जाता है तो फिर प्रमाणीकरण संस्था द्वारा बीज फसल के खेत का निम्नलिखित अवसरों पर निरीक्षण किया जाता है:

- बीज बोने के समय
- फूल आने से पहले
- फूल आने पर
- फसल पकने पर व
- कटाई के समय

अगर बीज फसल बीज उत्पादन के निर्धारित मानकों पर खरा उतरती है, तो बीज फसल को पास किया जाता है अन्यथा फेल। फसल के अच्छी तरह पकने पर कटाई करके खेत में ही अच्छी तरह सुखा कर गहाई करनी चाहिए। कटाई व गहाई के समय बीज में दूसरी किस्म, खरपतवार व मिट्टी इत्यादि की मिलावट न होने पाए।

3. संसाधन के दौरान बीज का निरीक्षण : संसाधन का अर्थ है साफ करना, सुखाना, उपचारित करना, वर्गीकरण करना एवं अन्य कार्य जो कि बीज की गुणवत्ता को बढ़ाते हैं। ऐसे खेत के बीज, जो कि प्रमाणित मानकों को खेत में फसल की अवस्था में निश्चित करते हों, कटाई व गहाई के बाद जितनी जल्दी हो सके, उनको प्रोसेसिंग प्लांट में प्रोसेसिंग के लिए लाना चाहिए एवं निर्दिष्ट छेदवाली छलनी के द्वारा निर्दिष्ट फसल के अनुसार सफाई एवं वर्गीकरण (ग्रेडिंग) करना चाहिए, जिससे कि खराब बीज, घासफूस मिट्टी, पत्थर के टुकड़े, बीज के टुकड़े एवं अन्य अवांछनीय वस्तुएं निकल जायें।

4. बीज परीक्षण : संसाधन के दौरान बीज निरीक्षण के बाद लिए गए नमूने का परीक्षण प्रयोगशाला में किया जाता है। बीज परीक्षण प्रयोगशाला में बीज की आनुवंशिकी व भौतिक शुद्धता की जांच की जाती है। अंकुरण, परीक्षण एवं नमी की जांच की जाती है। बीज का अनुमोदन प्रयोगशाला परीक्षण रिपोर्ट के पश्चात ही किया जा सकता है।

बीज उपचार : यदि किसी किस्म का बीज बीजजनित रोग के रोगाणुओं के लिए सुग्राही है तो बीज प्रमाणीकरण संस्थाओं के लिए यह आवश्यक है कि प्रमाणीकरण से पहले बीज उपचारित होना चाहिए। यदि बुवाई से पहले बीज को उपचारित करना आवश्यक हो तो सिफारिश की गई मात्रा के अनुसार दवा को माप करके प्लास्टिक थैली में बीज की थैलियों के अन्दर रखना चाहिए। बीज की थैली में भी स्पष्ट रूप से उपचार से सम्बन्धित जानकारी होनी चाहिए। यदि बीज को उपचारित किया गया हो तो निम्नलिखित जानकारी देनी चाहिए:

उपचारित बीज

दवा का नाम

यदि उपयोग में लाई गई दवा मनुष्यों या जानवरों के लिए नुकसानदायक है तो स्पष्ट रूप से लिख देना चाहिए कि खाने या तेल के लिए उपयोगी नहीं है।

मरकरीयुक्त या ज़हरीले पदार्थ के लिए स्पष्ट रूप से लाल बड़े अक्षरों में 'ज़हर' लेबल पर लिखा होना चाहिए।

5. प्रमाणीकरण : बीज उत्पादकों द्वारा बीज प्रमाणीकरण के लिए दिए गए आवेदन पत्र की जांच से लेकर सभी तरह के निरीक्षणों व परीक्षणों में बीज के पास होने पर ही बीज को प्रमाणित किया जाता है तथा बीज प्रमाणीकरण संस्था द्वारा अपना प्रमाणपत्र (टैग) लगाया जाता है जो उक्त संस्था द्वारा प्रमाणित किए जाने का प्रतीक होता है। बीज प्रमाण पत्र (टैग) पर परीक्षण का विवरण लिखा होता है व इसकी वैधता नौ महीने की होती है।

[1]शोध छात्र, बीज विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी विभाग

[2]शोध छात्र, विस्तार शिक्षा विभाग

अरण्ड की खेती से बदलाव की लहर : सफलता की कहानी

✍ **नरेन्द्र कुमार[1], सुरेन्द्र यादव एवं सुनीता यादव**
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा के संदर्भ में यदि अरण्ड की खेती की बात करें तो शायद आपने आज से पांच वर्ष पहले हरियाणा में बड़े पैमाने पर अरण्ड की खेती का कोई ज़िक्र भी नहीं सुना होगा। लेकिन पिछले तीन-चार सालों से दक्षिण- पश्चिम हरियाणा के किसानों का इस फसल की तरफ रूझान बढ़ा है कारण साफ है - कम खर्चा - ज़्यादा मुनाफा।

अरण्ड एक महत्वपूर्ण एवं व्यावसायिक अखाद्य तिलहन फसल है। इसकी खेती मुख्यत: गुजरात, राजस्थान एवं आंध्र प्रदेश में होती है। भारत का अरण्ड उत्पादन व क्षेत्रफल में विश्वभर में प्रथम स्थान है। चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल (रेवाड़ी) एवं समस्त कृषि विज्ञान केन्द्रों के अथक प्रयास की वजह से इस फसल का दायरा पूरे दक्षिण-पश्चिम हरियाणा में बढ़ा है तथा बढ़ता ही जा रहा है। कम खर्चा व ज़्यादा मुनाफा देने की वजह से यह फसल दक्षिण-पश्चिम हरियाणा में फसल विविधीकरण एवं उच्च उत्पादकता के लिए उपयुक्त मानी गई है। कम उपजाऊ भूमि, बारानी खेती एवं फसल उत्पादन के आदानों का कम उपयोग कम पैदावार के प्रमुख कारण हैं। समय पर बिजाई, बीज उपचार, उन्नत बीज, कुशल खेत प्रबन्धन, पोषण प्रबन्धन, खरपतवार नियंत्रण, जल प्रबन्धन, समन्वित कीट व रोग प्रबन्धन द्वारा किसान बेहतर उपज व ज़्यादा मुनाफा कमा सकते हैं। उचित तकनीक अपनाकर कई किसानों ने प्रति एकड़ 50 से 60 मण पैदावार व 80,000 रुपये प्रति एकड़ तक लाभ कमाया है।

हिसार ज़िले के सदलपुर गांव में रहने वाले श्री रमेश खिचड़ एक युवा किसान होने के साथ-साथ व्यवसायी भी हैं जो खेती के साथ अपने आदमपुर मंड़ी स्थित किसान एग्रीकल्चर स्टोर के माध्यम से किसानों को उच्च क्वालिटी की खाद, बीज व दवा उपलब्ध करवाते हैं। श्री रमेश जी पुश्तैनी तौर से पिछले 25 सालों से खेती से जुड़े हैं और 50 एकड़ ज़मीन पर कपास, मूंग, ग्वार, बाजरा, गेहूं, सरसों आदि की खेती करते रहे हैं लेकिन पिछले तीन सालों से इन्होंने अरण्ड की खेती को अपनाया है। वर्ष 2015 में इन्होंने सिर्फ 4 एकड़ में अरण्ड की बिजाई की थी जिसकी औसत पैदावार 20.5 क्विंटल प्रति एकड़ (51 क्विंटल प्रति हैक्टेयर) प्राप्त हुई। जिससे उत्साहित होकर उन्होंने खरीफ 2016 में 18 एकड़ में अरण्ड की बिजाई की। कुशल प्रबन्धन व उन्नत तकनीक के सहयोग से इस बार की औसत पैदावार 50.5 क्विंटल प्रति हैक्टेयर प्राप्त हुई। पुन: वर्ष 2017 में इन्होंने फसल का क्षेत्रफल बढ़ाकर 45 एकड़ में बिजाई की जिसमें 20 एकड़ ठेके पर लेकर की तथा प्रति हैक्टेयर औसत पैदावार 45.5 क्विंटल प्राप्त की। पिछले तीन वर्षों के दौरान उन्हें फसल का अच्छा भाव (3500 से 4400 रुपये प्रति क्विंटल) मिला जिससे उन्हें प्रति एकड़ औसत 70,000 से 80,000 रुपये की आमदनी हुई तथा प्रति एकड़ खर्चा सिर्फ 15,000 रुपये आया। उन्होंने सदलपुर गांव में खरीफ 2018 में 33 एकड़ में बिजाई की है व इसके अलावा राजस्थान में भी ठेके पर 16 एकड़ में बिजाई की है।

उनकी इस सफलता से प्रेरित होकर आसपास के गांवों सदलपुर, आदमपुर, चूली, किशनगढ़, कोहली, महोबतपुर, भोड़िया, भाना, खैरमपुर व सारंगपुर के किसान भी उनसे जुड़े और उन्होंने भी इसे अपनाया है। श्री रमेश जी मेहनती किसान व व्यापारी होने के साथ एक प्रतिष्ठित समाज सेवक भी हैं। आसपास के गांवों के 500 से भी ज़्यादा किसान इनसे सीधे तौर पर जुड़े हुए हैं। ये हमेशा नई व उन्नत तकनीक अपनाते हैं तथा किसानों को भी इसे अपनाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। श्री रमेश का जुड़ाव कृषि विज्ञान केन्द्र, सदलपुर से काफी पुराना है। ये समय-समय पर आयोजित प्रशिक्षण व कार्यक्रमों में भाग लेते रहते हैं। खेती के अलावा पशु पालन में भी इनकी गहरी रूचि है व उनके पास 25 से 30 दुधारू गाय व भैंस हैं।

कृषि विज्ञान केन्द्र सदलपुर से कीट विशेषज्ञ डा. नरेन्द्र कुमार ने बताया कि यह केन्द्र पिछले 3 सालों से अरण्ड की खेती को बढ़ावा देने के लिए हर वर्ष 100 से ज़्यादा अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन लगा कर किसानों को उन्नत तकनीक द्वारा प्रोत्साहित कर रहा है। वर्ष 2014-15 से अरण्ड फसल विविधीकरण के तौर पर एक अच्छा विकल्प बन कर उभर कर आई है। किसानों को भी चाहिए कि वे उन्नत किस्मों व उन्नत तकनीकों को वैज्ञानिक विधि से अपनाकर तथा उचित फसल-चक्र अपनाकर फसलों का चयन समयानुसार करें तथा खेती को लाभकारी बनाएं।

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, सदलपुर।

(पृष्ठ 04 का शेष)

7. पॉली टनल से अगेती और पछेती फसल आसानी से ली जा सकती है इससे फसल का काल/मियाद को बढ़ाया जा सकता है इसका सब से बड़ा असर ये होता है कि उत्पादन एक साथ मार्किट में नहीं आता और उस फैसले के भाव गिरने और फसल न बिकने की समस्या का सामना किसान को नहीं करना पड़ता। इसके अतिरिक्त अगेती और पछेती फसलों के भाव भी अच्छे मिलते हैं।
8. पॉली टनल की कीमत पॉली हाऊस के मुकाबले काफी काम होती है और इसको एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से बदला जा सकता है जबकि ये हम पॉली हाऊस के साथ नहीं कर सकते।
9. पॉली टनल को पॉली हाऊस के मुकाबले लगाना आसान होता है।
10. इसको हम अपनी-अपनी सुविधा और ज़रूरत के मुताबिक से छोटा भी कर सकते हैं।

तिलहनी फसलों में परागण घटकों का महत्व

✍ **सुधांशुबाला नायक, शेफाली[1] एवं विनय कुमार बी के[2]**
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

प्राचीन तिलहनी फसले भारत की कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी रही हैं और कृषि उद्योगों और व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। दुनिया के तिलहन मानचित्र पर, भारत कृषि और उत्पादन के संबंध में एक प्रमुख स्थान पर है।तिलहन भारत में अनाज के बाद दूसरी सबसे बड़ी कृषि वस्तु का निर्माण करते हैं, देश के सकल फसल वाले क्षेत्र का 14 प्रतिशत साझा करते हैं और सकल राष्ट्रीय उत्पाद का लगभग 5 प्रतिशत और सभी कृषि उत्पादों के मूल्य का 10 प्रतिशत हिस्सा देते हैं।

भारत वैश्विक तेलबिया परिदृश्य में 12–15 फीसदी क्षेत्र, वनस्पति तेल उत्पादन का 6–7 फीसदी और कुल खाद्य तेल खपत का 9–10 फीसदी और वनस्पति तेल आयात के 13.6 प्रतिशत के साथ वैश्विक तिलहनी परिदृश्य में एक प्रमुख स्थान पर है। नौ वार्षिक तिलहन, जिनमें सात खाद्य तिलहन शामिल हैं, रैपिसेड-सरसों (ब्रासिका एसपीपी।), सोयाबीन (ग्लाइसीन अधिकतम), मूंगफली (अरचिशिपोगिया), सूरजमुखी (हेलियनथस एन्युस), तिल (सेसममुंडिकम), भगवा (कार्थमास्टिनक्टरिस) और नाइजर और दो गैर खाद्य खाद्य फसलों जैसे कि, कास्टर और अलसी देश में उगाए जाते हैं। इनमें से कई पौधे कीट परागण पर निर्भर या लाभान्वित हैं। हालांकि, परागणक की यात्रा या तो बढ़ जाती है: (क) फल सेट का अनुपात या (ख) फल सेट की गुणवत्ता, क्योंकि फल का आकार बीज सेट की संख्या, या बीज के आकार पर निर्भर करता है।परागण के परिणाम में बढ़े हुए उत्पादन, तेल सामग्री में उपज में सुधार और यहां तक कि स्व-संगत फसलों को पार परागणित होने पर बढ़ी हुई पैदावार दिखाई देती है। क्रॉस परागण के बाद बीज का आकार कभी-कभी अधिक होता है, जिसे केवल कीट यात्राओं से ही प्राप्त किया जा सकता है। वैश्विक स्तर पर, परागणक जो मुख्य रूप से कृषि उत्पादन में वृद्धि करने में कामयाब होता है वह शहद मधुमक्खी (अपिस्मिलेफेरा, ए डोरसाटा, ए फ्लोरिया) है, हालांकि मधुमक्खी की अन्य प्रजातियों का उपयोग विशेषज्ञ संदर्भों में किया जाता है, उदाहरण: लीफकटर मधुमक्खी. कुल परागण गतिविधियों में से 80 प्रतिशत से अधिक कीड़े और मधुमक्खियों को कुल कीट परागण का लगभग 80 प्रतिशत योगदान दिया जाता है, और इसलिए, उन्हें सर्वश्रेष्ठ परागणक माना जाता है।

रैपिसेड और सरसों : कीड़ों की कुल 19 प्रजातियों में सरसों को परागित किया गया, और तीन प्रजातियां, यानी एपिसर्साना, सेरातिना एसपी, और अपिसडोरसाटा ने एक उच्च बहुतायत दिखायी। परागणकों की उच्च बहुतायत और प्रजाति समृद्धि सुबह 08.30–10.30 बजे होती है और विविधता फूल पौधों की संख्या से संबंधित है। मधुमक्खी परागण के कारण सरसों की फसल में औसत उपज में वृद्धि 61.71 प्रतिशत थी।

तिल : यह देखा गया है कि ए. तिलतास तिल की फसल का एक महत्वपूर्ण परागक है। आदेश में शहद मधुमक्खी की बहुतायत: ए मेलिफेराझएसरनाझए फ्लोरियाझएदोर्सता. अन्य कीट आगंतुकों में एन्ड्रेना लीन्स, ए इल्डेडा, तितलियों, हाउसफ्लियों, सिरिफिड मक्खियों और कुछ बीटल जैसे अकेले मधुमक्खियों को घोंसले में शामिल किया गया। एपिसिलेनिफरविजेशन 9.00 बजे से शाम 5.00 बजे तक चोटी गतिविधि के साथ देखा गया था।दोपहर में मधुमक्खियों की गतिविधि सबसे कम पहुंच जाती है । मधुमक्खी परागण तिल उपज में 25 प्रतिशत की वृद्धि का कारण बनता है।

सूरजमुखी: शहद मधुमक्खियों को दुनिया के अधिकांश हिस्सों में सूरजमुखी के मुख्य परागणकों के रूप में जाना जाता है। इस फसल में, मधुमक्खियों को अंक के अंकुरण के लिए उच्च संख्या में बीज बढ़ाने में प्रभावी पाया जाता है।एपिस मेलिफेरा परागण बीज की पैदावार को 30 प्रतिशत और तेल सामग्री को हाइब्रिड किस्मों में 6 प्रतिशत से अधिक बढ़ा देता है। सूरजमुखी की फसलों का दौरा कई कीड़ों द्वारा किया जाता है जिनमें हाइमेनोपटेरा, लेपिडोप्टेरा, कोलोप्टेरा और डिप्टेरा शामिल हैं। शहद मधुमक्खी, जंगली शहद मधुमक्खियों, बम्बेबीस और अकेले मधुमक्खी सबसे महत्वपूर्ण समूह हैं।सूरजमुखी के पराग और अमृत दोनों दिन भर में मधुमक्खियों के लिए काफी आकर्षक होते हैं जहां कीट आगंतुकों के पास भूखंडों की तुलना में औसत 53 प्रतिशत अधिक बीज उपज का उत्पादन होता है जहां कीट आगंतुकों को बाहर रखा गया था।

कास्टर : कैस्टर के मामले में परागणकों की बहुतायत में हेमेनोपटेरा (85.13%) लेपिडोप्टेरा (10.16%) और हेमिप्टेरा (4.80%) और विभिन्न परिवार जैसे एपिडे (75.57%) प्रमुख परिवार थे, इसके बाद पिरिडे (5.36%) , फॉर्मिसिडे (5.20%), निम्फालिडे (4.80%) और हेलिक्टिडे (4.36%)। कुल परागणकों में से, त्रिकोणप (70.35%) सबसे अधिक बार और प्रमुख प्रजातियां सी सी संपीड़न (5.20%), एन विरिडुला (4.80%), हेलिक्ट्सप (4.36%), ई ब्लंडा (3.18%), एच मिसिपस (2.90%), ए फ्लोरिया (92.61%), पी ब्रैसिका (2.18%), ए टेर्सीकोर (1.90%), एक्स फेनेस्ट्रेट (1.45%) और सेराटिनस्प (1. 16%)।

सफ्फ्लोवेर: सभी परागण एजेंटों में से, ह्यमेनोप्तेरा (मधुमक्खियों), लेपिडोप्टेरा (तितलियों) और डिप्टेरा (मक्खियों) सफ्फ्लोवेरफसल के परागण में एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं। यह देखा गया था कि ए सेराना, ए डोरसाटा और ए फ्लोरबेगन 10.00 एच पर फोर्जिंग, और पराग कलेक्टरों ने फूलों की अवधि के दौरान 15.00 बजे तक अमृत संग्राहक 14.00 बजे तक काम किया। इस फसल में मधुमक्खियों (ए सेराना) ने प्राकृतिक रूप से प्रदूषित फसल पर 54.8 प्रतिशत की उपज में वृद्धि की।

[1]प्राणी एवं मत्स्य पालन विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।
[2]सूत्रकृमि विभाग, आई.सी.ए.आर.-आई.ए.आर.आई, नई दिल्ली।

मूंगफली : यह देखा गया है कि हेलिक्टिड मधुमक्खियां मूंगफली के फूलों के प्रमुख आगंतुक थे और यह भी ध्यान दिया कि मेगाचिल, बमबसंद अप्सिपीसी ने मूंगफली के फूलों का काम किया था। मूंगफली के मामले में मधुमक्खी परागण के कारण उपज में 6-11 प्रतिशत की वृद्धि की रिपोर्ट है।

सोयाबीन : सभी परागण एजेंटों में से, ए मिलिफर इस फसल में परागण में एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं। आत्म-परागणित पौधों के खिलाफ मधुमक्खी-परागित पौधों की तुलना करते समय सोयाबीन में 10- 40 प्रतिशत के बीच पैदावार दर्ज की गई है।

नाइजर : नाइजर के मामले में उच्च तेल सामग्री के साथ उच्च पैदावार पैदा करने के लिए, एपिस मेल्लिफेरा और एपिस सराना जैसे परागण एजेंट एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और मधुमक्खी परागण के कारण 38-42 प्रतिशत फसल उत्पादन बढ़ने की रिपोर्ट है।

लिंसेड : शहद मधुमक्खी फूलों के लगातार आगंतुक सुबह 7 बजे से शाम 1 बजे तक होते हैं, जिसमें 8 -11 बजे के बीच सबसे गहन यात्रा होती है। फाइबर फ्लेक्स के मधुमक्खी परागण के प्रभाव से पता चला है कि मधुमक्खियों में बीज उत्पादन में 22.5-38.5 प्रतिशत, 19 प्रतिशत प्रति कैप्सूल के बीज की संख्या में वृद्धि और बीजों के कुल वज़न में 22 प्रतिशत की वृद्धि और प्रति बीज वज़न में 2.2 प्रतिशत की वृद्धि पाई गयी है ।

(पृष्ठ6 का शेष)

5. बोरियों के ढेर की ऊंचाई 3 मीटर से अधिक न रखें।
6. बोरियों के ढ़ेर का आकार 9 मीटर-6 मीटर से अधिक न रखें।
7. भण्डारगृह को ठंड़ा एवं शुष्क रखें।
8. रोशनदानों को हमेशा खुला न रखें तथा उन्हें तभी खोलें जब बाहर शुष्क मौसम हो।
9. भण्डारगृह के अन्दर व बाहर स्वच्छता का विशेष ध्यान रखें।
10. दवाइयों, पशु-आहार, खाद आदि को बीज भण्डारगृह में न रखें।
11. भण्डारित बीज का नियमित रूप से निरीक्षण करें।



एक कदम स्वच्छता की ओर

गन्ने की उत्तम बीज उत्पादन तकनीक

✍ **मेहर चन्द, सुधीर शर्मा एवं लोकेश यादव**
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, करनाल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

चीनी उत्पादन के लिए गन्ना मुख्य फसल है तथा हरियाणा में इसे एक प्रमुख नकदी फसल के रूप में उगाया जाता है। हरियाणा प्रांत में गन्ने की औसत पैदावार 280 किंवटल प्रति एकड़ है जो अभी भी अनुसंधान प्रयोगों एवं अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन के मुकाबले काफी कम है जिसका मुख्य कारण गन्ने की उन्नत किस्मों का उच्च गुणवत्तायुक्त बीज का उपलब्ध न होना है। गन्ने का उत्पादन इसके तने की गांठों से किया जाता है इसलिए प्रति एकड़ बीज की आवश्यकता भी अधिक होती है और वह भी बीजजनित बीमारियों से मुक्त एवं अच्छे फुटाव वाला होना चाहिए। उपर्युक्त समस्याओं को ध्यान में रखते हुए गन्ना बीज उत्पादन करते समय निम्नलिखित जानकारी आवश्यक है :

बीज उत्पादन : बीज उत्पादन के लिए गन्ने का बीज किसी भी प्रमाणित संस्था से प्राप्त करें।

आधार बीज उत्पादन : इसके लिए सिफारिश की गई किस्म का शुद्ध एवं रोग मुक्त फसल से केन्द्रक बीज लिया जाता है। इस बीज को तापशोधित विधि से गर्म-नम हवा संयंत्र में 54 डिग्री सैं. पर ढाई घंटे या गर्म जल में 50 डिग्री सैं. पर 2 घंटे, गर्म वाष्प युक्त हवा में 50 डिग्री सैं. पर व एक घंटे उपचारित करने से गन्ना रोग मुक्त हो जाता है। बीज वाले खेत का निरीक्षण 3 बार (40-60 दिन, 120-130 दिन तथा 15 दिन कटाई पूर्व) आवश्यक है। दूसरी किस्मों के पौधे तथा बीमारी व कीड़े से ग्रसित पौधों को जड़ से उखाड़कर खेत से बहार करें।

प्रमाणित बीज उत्पादन : प्रमाणित बीज उत्पादन के लिए आधार बीज को प्रयोग में लिया जाता है। प्रमाणित बीज के लिए फसल बिना ताप शोधन किये, अच्छी देखरेख में रोग मुक्त फसल उगाई जाती है। फसल बिल्कुल रोग मुक्त रहे इसके लिए फसल का 3 बार निरीक्षण किया जाता है। अवांछनीय/रोगी पौधों को जड़ समेत उखाड़कर निकाल देना चाहिए।

व्यावसायिक बीज उत्पादन : इसके उत्पादन के लिए प्रमाणित बीज को प्रयोग में लाया जाता है। फसल का 3 बार निरीक्षण किया जाता है। रोगी पौधों को जड़ से उखाड़ दिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त शुद्ध व्यावसायिक बीज किसानों को उपलब्ध कराया जाता है। जिससे किसान भाई 5-6 वर्षों तक अच्छी उपज ले सकते हैं।

खेत का चुनाव : जिस खेत में गन्ने का बीज उत्पादन करना हो, वह समतल एवं उपजाऊ हो। बीज के लिए गन्ना उसी खेत में बोएं जहां पहले गन्ना न बोया गया हो। ताकि आपका बीज शुद्ध एवं रोग मुक्त रहे। इसके साथ-साथ पानी का उचित प्रबंध एवं जल निकासी की उचित व्यवस्था हो।

बीज के मापदण्ड : गन्ना बीज की शुद्धता 100 प्रतिशत, जमाव 85 प्रतिशत व 65 प्रतिशत नमी होनी चाहिए। प्रत्येक गांठ में स्वस्थ आंख हो। यदि 5 प्रतिशत से ज़्यादा आंखें ठीक न हों तो बीज के लिए उपयोग न करें। बीज वाली फसल की अवधि 10 महीने अच्छी मानी जाती है। बीज के लिए गन्ने का ऊपरी 2/3 स्वस्थ, कीट व रोग मुक्त भाग ही प्रयोग करें।

गन्ना बीज फसल निरीक्षण (आधार/प्रमाणित/व्यापारिक बीज)

प्रथम निरीक्षण : बिजाई के 40-60 दिन के उपरांत होता है। इस समय लाल सड़न व अन्य रोग व कीड़े बिल्कुल नहीं होने चाहिएं। केवल कंडुवा रोग अधिकतम 0.01 प्रतिशत तक हो सकता है।

द्वितीय निरीक्षण : बिजाई के 120-130 दिन के बाद होता है। इस समय भी लाल सड़न बिल्कुल नहीं होनी चाहिए, केवल कंडुवा (0.01%), घासीय प्ररोह (0.05%), पर्णदाह (0.01%) व शीर्ष बेधक (5%) अधिकतम तक हो सकता है।

तृतीय निरीक्षण : कटाई से 15 दिन पूर्व किया जाता है। इस दौरान लाल सड़न, कंडुवा व पर्णदाह शून्य होना चाहिए। घासीय प्ररोह (0.01%), उकठा (0.01%), शीर्ष बेधक (5%), इंटरनोड बेधक (10%), तना बेधक (20%) तक हो सकता है।

बीज उपचार : बिजाई से पूर्व गन्ने के बीज (पोरियों) को मैन्कोज़ेब (एम-45 या मैन्ज़ेब) या कार्बेनडाज़िम (0.1%) घोल में 10-15 मिनट डुबोएं। एक एकड़ के बीज के लिए 100 लीटर पानी का घोल पर्याप्त है। बीज उपचार रबड़ के दस्ताने पहन कर करें।

बीज एवं बिजाई : एक एकड़ की बिजाई के लिए दो आंखों वाली 35000 या तीन आंखों वाली 23000 पोरियों की आवश्यकता होती है। जिनका भार लगभग 35-40 क्विंटल होता है। गन्ने की बिजाई 90 सैं. मी. की दूरी पर कतारों में करें या जुड़वां कतारों 60-60 : 120 सैं.मी. में बिजाई करें।

बीज के लिए बसंतकालीन बिजाई 15 मार्च से 30 मार्च, तक करें। सी ओ 1148, सी ओ एच 110 किस्म की बिजाई गेहूं के उपरान्त अप्रैल से मई के पहले सप्ताह तक अवश्य कर लें। दीमक व कनसुआ के लिए क्लोरपाईरीफॉस 2.5 लीटर प्रति एकड़ पोरियों पर खुड्डों में डालने के बाद छिड़कें। बिजाई सूखे खुड्डों में करके पोरियों को हल्की मिट्टी से ढक दें तथा आधे खुड्ड की ऊंचाई तक पानी लगाएं और खुड्डों की ऊपरी मिट्टी सूखी ही रखें। इसके 2-3 दिन बाद जब बत्तर आ जाए, तब खुड्डों को पूरा भरकर सुहागा लगाएं, इससे नमी संरक्षण भी होगा तथा जमाव भी अधिक होगा।

गन्ना बीज भण्डारण एवं रख-रखाव

गन्ना बीज के लिए उत्पादित फसल की सूखी पत्तियां व अंगोला को तेज़ धार वाले गंडासे से काटें तथा गन्ना बीज को पत्तियों समेत गट्ठड़ में बांध कर रखें। ध्यान रहे आंख से पत्तियां न हटाई जाएं।

गन्ना बीज उत्पादन के लिए निम्नलिखित बातें ज़रूरी हैं :

1. **बिजाई का सही समय :** अगर गन्ना बीज के लिए रखना है तो उसकी बिजाई गेहूं काटने के बाद करें इससे गन्ने का फसल काल 10 महीने तक रहेगा और वह कच्चा रहेगा जिससे उसका जमाव भी ज्यादा होगा।
2. **खाद की मात्रा एवं समय :** बीज फसल के लिए आम फसल के लिए सिफारिश खाद से 25 प्रतिशत ज़्यादा नाइट्रोजन खाद डालें तथा इसको 4 बार में (मई आखिरी, जून, जुलाई एवं अगस्त के पहले सप्ताह) डालें, इससे गन्ने में चीनी कम बनेगी और गन्ना कच्चा रहेगा और उसका जमाव ज़्यादा होगा।
3. **सिंचाई प्रबन्धन :** बीज फसल में आम फसल की बजाय ज़्यादा सिंचाई देनी चाहिए और जैसे आम फसल में सर्दियों के महीनों में 25 दिन में सिंचाई की सिफारिश है। मगर बीज फसल में 15 दिन के अन्तराल पर पानी देते रहें और जब भी उस खेत से बीज काटना हो तो उससे एक सप्ताह पहले पानी अवश्य लगायें, उससे गन्ने में पानी की नमी अच्छी बनी रहेगी जो ज़्यादा जमाव बढ़ाने के लिए ज़रूरी है।
4. **मिट्टी चढ़ाना एवं बंधाई :** गन्ना फसल के गिरने से उसकी पैदावार एवं गुणवत्ता दोनों ही कम हो जाती हैं। गन्ना गिरने से आंखें फूट जाती हैं और गन्ना बीज के लिए उपयुक्त नहीं रहता। इसलिए मई के महीने में हल्की एवं जुलाई में भारी मिट्टी चढ़ानी चाहिए। अगस्त एवं सितम्बर के महीने में गन्ना फसल की बंधाई अवश्य करें।

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक नि:शुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

कैर : शुष्क क्षेत्रों का जीवनदायक पौधा

✍ **विरेन्द्र दलाल, के. एस. अहलावत एवं राजेश कथवाल**[1]
वानिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कैर सूखे क्षेत्रों में मध्यम व छोटे आकार का पाया जाने वाला पौधा है जिसका वैज्ञानिक नाम *कैपेरिस डैसीडुआ* है। यह दक्षिण और मध्य एशिया, अफ्रीका और थार के मरूस्थल में प्राय: प्राकृतिक रूप से मिलता है। यह भारतीय उपमहाद्वीप में रेगिस्तान व शुष्क क्षेत्रों का बहुउद्देशीय पौधा है। राजस्थान में इसे 'कैर', उत्तर प्रदेश में 'करील', गुजरात में 'केर', हरियाणा में 'टींट', दिल्ली में 'डिल्ला' और महाराष्ट्र में इसे 'नेप्ती' के नाम से जाना जाता है। यह समुद्र तल से 300 से 1200 मी. की ऊंचाई, जहां बरसात 100 से 750 मि.मी. व तापमान 25 से 41° सैंटीग्रेड हो, पर पाया जाता है। यह पौधा क्षारीय, बालू और कंकड़ वाली ज़मीन पर अच्छे से बढ़ोत्तरी लेता है। इसके लिए ज़मीन का पी.एच. 9.0 से कम होना चाहिए। ई. एस. पी. का मान 35 प्रतिशत से कम होनी चाहिए। ई. सी. (विद्युत चालकता) का मान 4.0 डैसी साईमन प्रति मीटर होना चाहिए।

यह अक्सर गांव की पंचायती व बंजर ज़मीन पर बहुतायत में हुआ करता था। परन्तु इन दिनों यह पौधा बहुत कम देखने को मिलता है, क्योंकि इसके कच्चे फल की उपयोगिता बहुत ज़्यादा है। इसके कच्चे फलों का प्रयोग सब्जी और अचार बनाने में किया जाता है, जिसकी वजह से इसका बीज परिपक्व नहीं हो पाता, जिस वजह से नए पौधे तैयार नहीं हो पाते। आज यह पौधा विलुप्त होने की कगार पर है, इसलिए इस पौधे को सरंक्षण दिए जाने की आवश्यकता है।

फलोद्गदिकी (फीनोलॉजी)

कैर में पत्रण साल में तीन बार होता है। जून-जुलाई में होने वाले पत्रण को ग्रीष्म पत्रण, अक्तूबर माह में होने वाले पत्रण को पूर्व-सर्दी पत्रण और जनवरी-फरवरी माह में होने वाले पत्रण को सर्दी-पत्रण कहते हैं। लोगों की धारणा है कि जब सूखा और गर्मी ज़्यादा बढ़ती है, तब इस पेड़ पर फूल और फल बहुत ज़्यादा लगते हैं और जब अच्छा मानसून आता है, तब पैदावार औसत दर्जे की होती है।

पुनरूत्पादक जैविकी

इस पौधे में फूलों की शुरूआत ग्रीष्म ऋतु में होती है और यह पुष्पण तीन ऋतुओं में हो सकता है। फरवरी से मार्च महीने में होने वाले पुष्पण को 'अम्बे-बहार', जुलाई से अगस्त में होने वाले पुष्पण को 'मृग-बहार' और अक्तूबर से नवम्बर में होने वाले पुष्पण को 'हस्त-बहार' कहते हैं। पुष्पण पौधे की नई और पुरानी दोनों तरह की शाखाओं पर होता है, परन्तु ज़्यादा पुष्पण एक साल पुरानी शाखा पर होता है। अम्बे बहार की अवस्था में पुष्पण अप्रैल के पहले सप्ताह तक होता है और अधिकतम पुष्पण 20 मार्च से 25 मार्च के बीच होता है। कुछ पौधों में पुष्पण मार्च महीने से नवम्बर महीने तक अलग-अलग सघनता से होता है। पौधों में पुष्पकली की शुरूआत फरवरी माह के दूसरे पखवाड़े में हो जाती है। इसके एक गुच्छे में 3 से 4 फूल होते हैं।

औषधीय उपयोग

यह एक एंटी-ऑक्सीडेंट जड़ी बूटी है जो मधुमय, गैर चिकित्सा घाव, परजीवी कीड़े, अस्थमा, खांसी, सूजन आदि में उपयोगी है । इसके कच्चे फलों का उपयोग पेट की समस्याओं, जैसे कब्ज को ठीक करने के लिए किया जाता है। फलों में एंटीबायोटिक गतिविधि होती है। फलों एवं बीज से काजा, पेचिश का इलाज किया जाता है और इसके पुष्प का इस्तेमाल मूत्र सम्बन्धी रोगों के इलाज में किया जाता है। ग्रीक में प्रसिद्ध हर्बल चाय कैर की जड़ों से बनती है। इसके तने का उपयोग गठिया रोग को ठीक करने में होता है। कैर की जड़, तना, छाल तथा पत्ते का उपयोग कैंसर के इलाज में किया जाता है, क्योंकि इसमें से लेनियम की मात्रा अन्य वनस्पतियों की तुलना में अधिक होती है।

इसके फलों में वसा (5 मिलीग्राम/100 ग्राम), प्रोटीन (17 मिलीग्राम/100 ग्राम), रेशा (42.88%) और खनिज लवण होते हैं जोकि स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभदायक हैं। खनिज लवणों में विशेषत: लोहा (6 मिलीग्राम/100 ग्राम), कैल्शियम (210 मिलीग्राम/100 ग्राम), विटामिन-सी (119 मिलीग्राम/100 ग्राम) व ज़िंक (4 मिलीग्राम/100 ग्राम) मात्रा में पाया जाता है। इसके अलावा बीटा केरोटीन अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है जोकि आंखों के लिए स्वास्थ्यवर्धक है।

परिपक्वता

कैर के पौधे में फल 4 से 5 वर्ष की आयु में आना शुरू हो जाता है। यह सुझाव दिया जाता है कि कैर को फल बनने की अवधि में 7 से 10 दिन के अन्दर तोड़ लेना चाहिए। उस समय फल का व्यास लगभग 5 से 8 मिलीमीटर का हो जाता है। मार्च-अप्रैल के महीने में कच्चे फलों का बाज़ार भाव अच्छा मिल जाता है, क्योंकि पकने पर बीजों में कठोरता आ जाती है जोकि उपयोग के लिए सही नहीं माना जाता। सितम्बर-अक्तूबर माह में लगने वाले फलों की गुणवत्ता सही न होने की वजह से कच्चे फलों को तोड़ा नहीं जाता।

इन सभी बातों के अलावा कैर को चारे, ईंधन, इमारती लकड़ी (क्योंकि इसकी लकड़ी में दीमक नहीं लगती) व बीजों से तेल निकाला जाता है जिसमें 68.60 प्रतिशत असंतृप्त फैटी एसिड और 31.4 प्रतिशत संतृप्त फैटी एसिड होता है। मृदा अपरदन को रोकने में भी यही पौधा काफी उपयोगी है। अत : आज इस पौधे को आर्थिक दृष्टि से देखने के साथ-साथ वैज्ञानिक दृष्टि कोण से देखने की भी आवश्यकता है।

[1]क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र (बागवानी), बूड़िया, यमुनानगर।

मई मास के कृषि कार्य



फसलों में

धान

भारी व स्वस्थ बीज के चुनाव के लिए 10 किलोग्राम बीज को 10 लीटर नमक के घोल (10 लीटर पानी में एक किलोग्राम नमक) में डुबोएं और हाथ से धीरे-धीरे चलाएं। हल्के रोगग्रस्त बीज तथा आभासी कंडुआ के पिण्ड ऊपर तैरने लगते हैं जिन्हें निकाल कर नष्ट कर दें और नीचे बैठे हुए भारी बीज को स्वच्छ पानी से 3-4 बार अच्छी तरह धो लें तथा तदुपरांत फफूंदनाशक दवा के घोल से उपचारित करें। बीजजनित रोगों से बचाव के लिए 10 लीटर फफूंदनाशक घोल (10 ग्राम कार्बेन्डाज़िम, एक ग्राम स्ट्रैप्टोसाइक्लिन व 10 लीटर पानी) में 10 किलोग्राम धान को 24 घंटे भिगोकर उपचारित करके ही बिजाई करें। धान की नर्सरी उगाने के लिए 10-12 गाड़ी गोबर की खाद, 22 कि.ग्रा. यूरिया, 65 कि.ग्रा. एस. एस. पी. तथा 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ डालें। फिर 2 सप्ताह बाद 22 कि.ग्रा. यूरिया प्रति एकड़ नर्सरी में डालें।

धान की नर्सरी में खरपतवार नियन्त्रण के लिए बिजाई के 1-3 दिन बाद 600 ग्राम सोफिट (प्रेटिलाक्लोर 30 ई.सी.+सेफनर) प्रति एकड़ को 60 किग्रा. सूखी रेत में मिलाकर प्रयोग करें या 1.2 लीटर ब्यूटाक्लोर ई.सी. (मचैटी/डेलक्लोर/हिल्टाक्लोर) या थायोबेनकार्ब (सैटर्न ई.सी.) या पेन्डीमैथलीन (स्टॉम्प 30 ई.सी.) को 60 कि.ग्रा. सूखी रेत में मिलाकर अंकुरित धान के बोने के 6 दिन बाद एक एकड़ नर्सरी में डालें अथवा नर्सरी में मिले-जुले खरपतवारों के नियन्त्रण के लिए 100 मि.ली. बिस्पाइरी बैक सोडियम (नोमिनी गोल्ड) 10 एस.एल. को 200 लीटर पानी में मिलाकर बिजाई के 15 दिन बाद प्रति एकड़ छिड़काव करें।

लेखक :

अश्विनी कुमार, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (पादप रोग विज्ञान)
अनिल गोदारा, विभागाध्यक्ष (बागवानी)
हंस राज, सहायक वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान)
तरुण वर्मा, सहायक वैज्ञानिक (कीट विज्ञान)
डी. पी. मलिक, विभागाध्यक्ष (कृषि अर्थशास्त्र)
वी. एस. हुड्डा, सहायक वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
सरिता, विस्तार विशेषज्ञ (लुवास)
सूबे सिंह, सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कम अवधि वाली बौनी किस्में : आई आर 64, एच के आर 46, एच के आर 47 व गोबिन्द की नर्सरी 15 मई से 30 जून तक लगाएं।

मध्यम अवधि वाली किस्में : जया, पी आर 106, एच के आर 120, एच के आर 126, एच के आर 127 एवं हरियाणा संकर धान-1 की नर्सरी 15 मई से 30 मई तक लगाएं।

गेहूं

खुली कांगियारी के निवारण के लिए गेहूं के बीज को सौर ताप से उपचारित करें। मई-जून के महीने में जिस दिन मौसम साफ व खुला हो उस दिन 8 बजे प्रात: बीज को पानी में भिगो दें; ऊपर तैरते हुए पदार्थों को निकाल कर नष्ट कर दें और 4 घण्टे तक भीगने के बाद नीचे बैठे गेहूं के बीज को दोपहर 12 बजे निकाल लें और किसी पक्के फर्श या तिरपाल आदि पर फैलाकर शाम तक सुखाएं।

कपास

बिजाई इस माह के अंत तक पूरी कर लें। नरमा की उन्नत किस्में तथा देसी कपास की सिफारिशशुदा किस्में ही बोएं।

कपास से बढिया फुटाव के लिए पूरे खेत की तैयारी सही ढंग से करनी ज़रूरी है। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए। इसके बाद आवश्यकतानुसार 3-4 जुताइयां करें। बिजाई के समय खेत में तर बत्तर (गीली आल) का होना ज़रूरी है। इसके लिए खेत में अच्छा पलेवा करें। गीले बत्तर में दो जुताइयां करके सुहागा लगाएं व खेत को एकसार कर लें। खेत में पौधों की सही संख्या के लिए बीज की सही मात्रा प्रयोग में लाएं व बीज का उपचार करके ही बिजाई करें। नरमे का रोयें रहित 6-8 किलोग्राम व रोएं-युक्त 8-10 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ प्रयोग करें। देसी कपास में 5 कि.ग्रा. बीज काफी रहता है। संकर किस्मों का रोएं उतरा बीज 1.2 से 1.5 कि.ग्रा. प्रति एकड़ प्रयोग करें। बी.टी. संकर किस्मों का 850 ग्राम बीज प्रति एकड़ प्रयोग करें। बीज को 4 से 5 सैं.मी. गहरा बोएं। नरमा की मुख्य किस्में एच एस 6, एच 1117 व एच 1226, एच 1098 संशोधित, एच 1236, एच 1300; नरमा की संकर किस्में एच एच एच 223, एच एच एच 287; देसी कपास की एच डी 107, एच डी 123, एच डी 324 व एच डी 432 तथा संकर नरमा में देसी की ए ए एच 1 प्रमुख हैं। बी.टी व संकर किस्मों को 67.5-60 सैं.मी. के फासले पर बीजें या कतार से कतार की दूरी 100 सैं.मी. व पौधे से पौधे की दूरी 45 सैं.मी. रखें व अन्य किस्मों में कतार से कतार की दूरी 67.5 सैं.मी. व पौधे से पौधे की दूरी 30 सैं.मी. रखें।

बीजने के लिए यदि रोएं उतारे हुए बीज न मिलें तो रोएंदार (साधारण) बीज को बोने से पहले बारीक मिट्टी, गोबर या राख से रगड़

लेना चाहिए ताकि ड्रिल में से बीज एकसार निकलें। बिजाई कपास बीजने वाली एक खूड वाली ड्रिल से कतारों में करें।

अमेरिकन कपास की बिजाई करते समय हिसार तथा सिरसा जिलों में, जहां ज़मीन काफी रेतीली है, 37 किलोग्राम यूरिया तथा 75 किलोग्राम सुपरफास्फेट और 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ बिजाई के समय ड्रिल करें। यूरिया की शेष आधी मात्रा (37 कि.ग्रा.) बौकी आने पर डालें। यदि ज़मीन भारी है और कपास गेहूं के बाद ले रहे हैं तो भी खाद बिजाई के समय डालें। यदि कपास बोने से पहले ज़मीन खाली थी और ज़मीन भारी किस्म की है तो सिर्फ फास्फोरस और ज़िंक की मात्रा ही बिजाई से पहले डालें। सुपर फास्फेट हमेशा ड्रिल द्वारा डालनी चाहिए।

कपास की देसी किस्मों के लिए फास्फोरस की मात्रा की सिफारिश तभी की जाती है जब मिट्टी परीक्षण में फास्फोरस की कमी हो। यदि देसी कपास रेतीली व कमज़ोर भूमि में बो रहे हैं तो बिजाई के समय 45 किलोग्राम यूरिया प्रति एकड़ अवश्य डालें। जस्ता कपास में तभी डालें यदि इससे पहले फसल में जस्ता नहीं डाला गया।

संकर कपास में नत्रजन और फास्फोरस की दुगुनी मात्रा डालें तथा पोटाश भी 40 किलोग्राम प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें।

मृदाजनित एवं बीजजनित रोगों से बचाव के लिए बीज का उपचार करके ही बिजाई करें। इसके लिए 10 लीटर फफूंदनाशक दवा के घोल (10 लीटर पानी में एक ग्राम स्ट्रैप्टोसाइक्लिन व 1 ग्राम सक्सीनिक तेज़ाब) में 5 किलोग्राम रोएंदार बीज या 7½ कि.ग्रा. रोएं उतारे हुए (डिलिंटेड) बीज को भिगोएं। रोएं वाले बीज को 6-8 घंटे तक तथा रोएं उतारे गए बीज को केवल 2 घंटे तक ही भिगोएं। जिन क्षेत्रों में पिछले वर्षों में जड़ गलन की गंभीर समस्या देखी गई हो उन खेतों में कपास की बिजाई न करके ज्वार या बाजरे की खेती करें या 2.5 ग्राम बाविस्टिन प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचार अवश्य करें। नरमा कपास का पत्ती मरोड़ रोग जहां पर पिछले साल देखा गया हो वहां देसी कपास या नरमा की प्रतिरोधी किस्म एच 1117, एच एच एच 223 की ही काश्त करें।

जिन खेतों में पिछले वर्षों में दीमक का प्रकोप देखा गया हो वहां बिजाई से पहले प्रति किलोग्राम बीज को 10 मि.ली. क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. व 10 मि.ली. पानी के घोल से उपचारित करें। बीज को भिगोने के बाद ही इसे कीटनाशक के घोल से उपचारित करें। खरपतवार नियन्त्रण हेतु ट्रैफलोन (ट्राईफ्लूरालिन) की 0.8 लीटर मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से या बासालीन की 0.8 लीटर मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से 200-250 लीटर पानी में मिलाकर बिजाई से पहले छिड़काव करें व मृदा में मिलाएं अथवा कपास की बिजाई के तुरन्त बाद पेन्डीमैथलीन (स्टोम्प 30 ई.सी.) की 2 लीटर मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से 200-250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। इन खरपतवारनाशकों के प्रयोग के समय मृदा में उचित नमी का होना ज़रूरी है। मीलीबग के नियंत्रण के लिए बंजर भूमि पर व खेतों के आस-पास, मेढ़ों, खालों व रास्तों आदि पर उगने वाले खरपतवारों जैसे गाजर (कांग्रेस) घास, कांगी बूटी तथा कपास की पिछली फसल के ठूंठों से उगने वाले पौधों को नष्ट करें। कपास की छंट्टियों के ढेरों के नीचे गिरे टिण्डों, पत्तों आदि को जला दें।

गन्ना

गर्मियों में 10 दिन के अंतर पर सिंचाई करें। मोढ़ी में आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। खरपतवार नियंत्रण के लिए ऐट्राजीन 50% घु. पा. 1.6 कि.ग्रा. प्रति एकड़ का छिड़काव 250-300 लीटर पानी में घोलकर करें। इसके बाद चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के लिए 2,4-डी (सोडियम साल्ट) 1.0 कि.ग्रा. प्रति एकड़ की दर से 250 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। पहला छिड़काव बिजाई के 3 सप्ताह बाद करें, गन्ने की बीजू या नौलफ फसल में इस माह के अंत तक नाइट्रोजन वाली खाद की दूसरी मात्रा (45 किलोग्राम यूरिया) प्रति एकड़ खेत से घास-फूस निकालकर छिट्टे द्वारा डालें व ऊपर से हल्की सिंचाई करें। मोढ़ी फसल में उपर्युक्त खादों की डेढ़ गुनी मात्रा का प्रयोग करें।

मोढ़ी फसल में दीमक और कनसुआ की रोकथाम के लिए 2.5 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. प्रति एकड़ सिंचाई के साथ लगाएं।

अगर गन्ने में पाइरिल्ला (अल) का आक्रमण हो व इसे मारने वाले परजीवी न हों तो 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

कभी-कभी काली बग (काली कीड़ी) के आक्रमण के कारण भी फसल पीली पड़ जाती है। अत: इस कीट के नियंत्रण के लिए 160 मि.ली. डाइक्लोरवास 76 ई.सी. या 400 मि.ली. फेनिट्रोथियान 50 ई.सी. को 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। छिड़काव गोभ पर करें ताकि दिन के समय बच्चे तथा प्रौढ़ नष्ट हो जाएं। कभी-कभी अष्टपदी (माईट) का आक्रमण होने से पत्तों पर लाल रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। इसके लिए 600 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. या 500 मि.ली. मैटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।



सब्जियों में

टमाटर

नाइट्रोजन वाली खाद खड़ी फसल में दो बार दें-पहली पौधरोपण के लगभग 3 सप्ताह बाद व दोबारा पहली मात्रा के एक महीने बाद। हर बार 12.5 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (27 कि.ग्रा. यूरिया) प्रति एकड़ की दर से दें। खाद देने के बाद सिंचाई करना न भूलें। सामान्यत: गर्मी के दिनों में 6 से 7 दिनों के अंतर पर सिंचाई करने की आवश्यकता होती है। रस चूसने वाले कीटों को मारने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। इस छिड़काव से टमाटर के वायरस रोगों की रोकथाम भी हो जाएगी। फल छेदक के लिए 500 ग्राम कार्बेरिल 50 घु.पा. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

बैंगन

गर्मी के महीनों में सिंचाई का ध्यान रखें तथा खरपतवार निकालें। फलों को कच्ची व नरम अवस्था में तोड़ें तथा तोड़ते समय यह उचित होगा

कि किसी तेज़ चाकू या ऐसे अन्य औज़ार को प्रयोग में लाएं जिससे कि टहनियां न टूटें। खड़ी फसल में 2 बार में 28 किलोग्राम नाइट्रोजन (14+14) प्रति एकड़ की दर से दें। पहली मात्रा रोपाई के 30 दिन बाद और दूसरी मात्रा 60 दिन बाद लगाएं।

मिर्च

प्लानोफिक्स या पौध वर्धक रसायन 40 मि.ली. दवा को 150 लीटर पानी में मिलाकर फूल आने के समय छिड़काव करें। इस दवा के प्रयोग से फल-फूल गिरने की समस्या काफी हद तक रुक जाती है। थ्रिप्स, अल और सफेद मक्खी से रक्षा करने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई. सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़कें। छिड़काव 15-20 दिन के बाद दोहराएं। इस छिड़काव से मिर्च के वायरस रोगों की भी रोकथाम हो जाएगी।

मूली

मूली की गर्मी की फसल के लिए सिर्फ पूसा चेतकी किस्म को ही प्रयोग में लाएं।

भिण्डी

कीटों (हरा तेला और चित्तीदार सूण्डी) से बचाव के लिए 300-500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। दवाई छिड़कने के बाद 8-10 दिन तक फल खाने के प्रयोग में न लें।

तरबूज व खरबूजा

चेपा, हरा तेला, माईट का प्रकोप होने पर 250 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। आवश्यकता पडने पर फिर दोहराएं। यदि फलों में मक्खी का आक्रमण हो गया हो तो खराब फलों को तोड़कर नष्ट कर दें तथा 250 मि. ली. फैनिट्रोथियान 50 ई.सी. या 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 500 ग्राम कार्बेरिल 50 घु.पा. को 1.25 किलोग्राम गुड़ और 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। सफेद चूर्णी नामक रोग होने पर 500 ग्राम घुलनशील गंधक (सल्फैक्स) को 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

कद्दू जाति की अन्य सब्जियां

सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। यदि खाद की दूसरी मात्रा न दी हो तो प्रति एकड़ 6 कि.ग्रा. नाइट्रोजन दें तथा सिंचाई करें।

वृद्धि नियामकों का प्रयोग

घीया (लौकी) की फसल में इथ्रैल नामक दवा के प्रयोग से अधिक उपज प्राप्त होती है। इस दवा से उपचार के लिए फसल का दो सच्ची पत्ती और चार सच्ची पत्ती की अवस्था पर उपचार करने की आवश्यकता होती है। इथ्रैल नामक दवा के प्रयोग के लिए 100 पी. पी. एम. का घोल बनाएं (4 मि.ली. इथ्रैल 50 प्रतिशत को 20 लीटर पानी में घोलकर एक एकड़ फसल पर प्रयोग करें) तथा ऊपर बताई 2 और 4 पत्ती की अवस्थाओं पर छिड़काव करें। इन दवाओं के प्रयोग से मादा फूल अधिक संख्या में आते हैं जिससे उपज में वृद्धि हो जाती है। ध्यान रखें कि घोल में चिपचिपाहट लाने वाला पदार्थ (जैसे कि सेल्वेट-99, टिट्रान या अन्य) भी मिला लें।

अरबी

नाइट्रोजन की खाद खड़ी फसल में दो बार दें - पहली बिजाई के लगभग 3-4 सप्ताह बाद और इतनी ही मात्रा लगभग इतने ही दिनों के बाद।

शकरकन्दी

अप्रैल से जुलाई माह तक शकरकन्दी की काट खेत में लगाते हैं। शकरकन्दी की किस्में पूसा लाल व पूसा सफेद प्रयोग में लें। बिजाई के लिए 24,000 से 28,000 बेलों की कटिंग की एक एकड़ में आवश्यकता होती है। 60 सैं.मी. के फासले पर बनी डोलों में काट लगाएं। एक पौधे से दूसरे पौधे की दूरी 30 सैं.मी. रखें। खेत तैयार करते समय 10 टन गोबर की गली-सड़ी खाद, 16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 200 कि.ग्रा. सिंगल सुपरफास्फेट तथा 55 कि. ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति एकड़ की दर से काटें लगाने से पहले दें।

अगेती फूलगोभी

फूलगोभी की किस्म पूसा कातकी लगाएं। इसकी अगेती खेती के लिए नर्सरी में बिजाई की जा सकती है। एक एकड़ खेत के लिए लगभग 300-500 ग्राम बीज की आवश्यकता होगी। इसके बीज का उपचार कैप्टान नामक दवाई से (ढाई ग्राम दवा प्रति किलो बीज की दर से) करें। बिजाई पंक्तियों में करें तथा नर्सरी उठी हुई बनाएं।

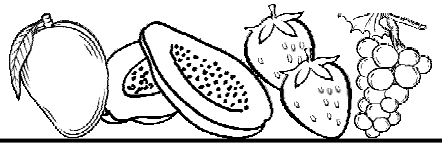

फलों में

नींबू वर्गीय फल

नए पौधों की हर सप्ताह सिंचाई करें। फलों को गिरने से बचाने के लिए महीने के शुरू में ही 6 ग्राम 2,4-डी, 12 ग्राम आरियोफन्जिन व 1500 ग्राम ज़िंक सल्फेट को 550 लीटर पानी में घोल बनाकर पौधों पर छिड़कें। फल देने वाले पौधों की सिंचाई 10-15 दिन के अंतराल पर करते रहें। कीड़ों व बीमारियों के नियंत्रण के लिए अप्रैल माह के लिए दी गई विधि अपनाएं। जब नींबूवर्गीय पौधों में कपास या सूरजमुखी की फसल खड़ी हो तो 2,4-डी की जगह 20 मि.ग्रा. प्रति लीटर एन.ए.ए. दवाई का प्रयोग करें।

आम

आम के फलों को गिरने से बचाने के लिए 1½ से 2% यूरिया का घोल छिड़कें।

आड़ू व अलूचा

बागों की सिंचाई नियमित रूप से करते रहें। फ्लोरेडासन व सनरेड

किस्में पकने लगेंगी। यदि चेपा (माहू) का आक्रमण हो तो 200 मि.ली. डाइमिथोएट 30 ई.सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

बेर

एक साल पुरानी टहनियों को 6 सेक्डरी तक काटें। बेर के पौधों की इस माह में कटाई-छंटाई पूरी करें। पूर्ण विकसित पौधों में 100 किलोग्राम प्रति पौधा गोबर की खाद डालकर गहरी जुताई करें व सिंचाई करें।

नोट : सदाबहार फलदार पौधों को गर्मी से बचाने का प्रबंध करें। पौधों के मुख्य तनों पर ब्लाईटॉक्स या बोर्डो मिश्रण का लेप लगाना चाहिए। छोटे पौधों को गर्मी से बचाने के लिए पौधे से 2 इंच की दूरी पर ढैंचा की बिजाई चारों तरफ करें।



पशुओं में

गाय-भैंस

मई मास में अधिक तापमान की संभावना रहती है या कहीं-कहीं आंधी-तूफान भी आ सकते हैं। अत: पशुओं का इस प्रकार से प्रबंधन करना चाहिए कि गर्मी के मौसम में होने वाले रोग, हीट स्ट्रोक (तापघात), पानी व नमक की कमी, भूख या पाचन कम होना या उत्पादन कम होने जैसी समस्याओं का सामना पशुपालकों को न करना पड़े। इन बातों को ध्यान में रखते हुए ही कुछ महत्वपूर्ण प्रबंधन संबंधी सुझाव इस प्रकार हैं :-

- मई मास (या अप्रैल में) गलघोंटू व मुंह-खुर के टीकाकरण हो जाने चाहिएं। ध्यान रहे ये रोग पशुओं के लिए प्राणघातक साबित हो सकते हैं, अत: किसी भी भ्रम में न पड़कर (विशेषकर दूध-उत्पादन संबंधी) इन रोगों के टीकाकरण अपने पशु-चिकित्सक की सलाहानुसार करें।
- मई मास में लू एवं सीधी गर्म हवाओं से पशुओं का बचाव करें। पशुओं के लिए ऐसी व्यवस्था रखें कि जिससे पशुओं को छाया भी मिले व सीधी लू भी न लगे। आमतौर पर पशुपालक अच्छी छाया के बाद इस तथ्य को नज़रंदाज़ कर देता है व पशु तापघात का शिकार हो जाते हैं।
- तापघात के लक्षण व पहचान-पशु का मुंह खोलकर तेज़ सांस लेना, बढ़ी हुई हृदय गति अत्यधिक शारीरिक तापमान (106-108 डिग्री फार्नहाइट) इत्यादि।
- तापघात (हीट स्ट्रोक) से बचाने हेतु प्रबंधन : पशुओं को (विशेषकर भैंसों को) तापघात से बचाने हेतु पशुपालक कई प्रबंधन उपाय कर सकता है, जैसे कि 24 घण्टे ताज़ा पानी की व्यवस्था, पानी के साथ-साथ नमक भी उपलब्ध कराना (पोटाशियम की कमी रोकने हेतु) दोपहर की बजाय, सांय/रात्रि काल में भोजन की व्यवस्था, कम रेशे, उच्च ऊर्जा व सुपाच्य भोजन की उपलब्धता, पशु-आहार में बाई-पास प्रोटीन (मछली-चूरा इत्यादि) का इस्तेमाल, फार्म या पशु आवास में ताज़ा हवा के आवगमन की व्यवस्था, पंखे/कूलर आदि का प्रबंध, भीगी बोरी इत्यादि से तापमान नियंत्रण करना, फव्वारों का इस्तेमाल व दिन में 2-3 बार नहलाने की व्यवस्था आदि करके पशुपालक बिना किसी उत्पादन के नुकसान के इस मौसम में पशुओं को स्वस्थ रख सकता है। कई बार पशुपालक गर्मियों में दूध कम होने की समस्या रखता है। ध्यान रहे कि यदि पशु के शरीर में पानी की कमी होगी तो दूध भी कम होगा। अत: प्रयास करें कि हर पशु को 24 घण्टे ताज़ा पानी की उपलब्धता रहे और यदि किसी कारणवश ऐसा नहीं कर सकते तो कम से कम पशुओं को दिन में 4-5 बार नमक या लवणों-युक्त पानी ज़रूर पिलाएं व दिन में दो बार ज़रूर नहलाएं या उन पर पानी डालें। केवल मात्र इस प्रबंधन से ही किसान गर्मी में कम दूध के होने के नुकसान से बच सकता है व इस मौसम में अच्छे भाव से अपनी आय नियमित रख सकता है।
- हर मौसम में व हर पशु को खनिज मिश्रण (मिनरल मिक्चर) अवश्य दें, पशुपालक इसे हल्के में न लें। यह पाऊडर पशुओं के लिए 'रामबाण' साबित हो सकता है।
- पशु-आहार में गेहूं का चोकर और जौ की मात्रा बढ़ाएं।
- चारे के लिए बोई गई चरी, मक्का आदि की कटाई करें।
- भेड़ों में ऊन कतरने का कार्य करें।

यदि आप अपने पशुओं को मई मास में गलघोंटू रोग से बचाव का टीका लगवा लें तो बरसात में यह रोग नहीं होगा। गाय व भैंसों में फड़ सूजने या पुट्ठे सूजने का रोग बरसात के मौसम में हो जाता है। पुट्ठे सूजन रोग के बचाव का टीका पशुओं को लगाने से यह रोग नहीं होता। यह टीका पशु चिकित्सालय में मुफ्त लगता है। चार मास से 3 वर्ष तक की आयु के सभी गो-जाति के पशुओं को यह टीका अवश्य लगवा लेना चाहिए।

पशुओं में मुंह व खुरपका रोग से बचाव का टीका अपने नज़दीकी पशु चिकित्सालय से लगवा लें। यदि रोग हो जाए तो रोगी पशु को दूसरे पशुओं से अलग कर दें। ध्यान रहे कि एक रोग का टीका लगवाने के बाद दूसरे रोग का टीका 15 दिन बाद ही लगवाएं।

इस माह पशुओं को लू लगने से दूध की क्षमता घट जाती है और वे बीमार हो सकते हैं। उन्हें छायादार पेड़ों के नीचे रखें और पीने के साफ पानी की कमी न आने दें। भैंसों को पानी के छिड़काव व नहलाने से उनकी दूध देने की क्षमता बनी रहती है। पशुओं की खुराक में खनिज मिश्रण (मिनरल मिक्सचर) का लगातार प्रयोग करें। प्रत्येक पशु को 50 ग्राम खनिज मिश्रण रोज़ाना देना चाहिए। पशुओं के राशन में बिनौले की बजाय, बिनौले की खल तथा ग्वार की बजाय ग्वार की चूरी देनी चाहिए तथा पशुओं को संतुलित आहार देने से उनकी उत्पादन क्षमता बनी रहती है तथा इन्हें अन्य रोगों से बचाया जा सकता है तथा भैंसें इस मौसम में गर्मी में भी आती रहती हैं।

भेड़ें

इस मास भेड़ों की ऊन काटी जाती है। ऊन काटने से पहले भेड़ों में पुट्ठे सूजने के रोग से बचाव का टीका नज़दीकी पशु चिकित्सालय से

अवश्य लगवाएं। भेड़ के पेट में कीड़े होने के कारण उनकी वृद्धि कम होती है और उनसे ऊन की प्राप्ति कम होती है। अपने पशु चिकित्सक की सलाह से भेड़ों को कृमिनाशक दवाई दें।

अब भेड़ों का प्रजनन काल आरंभ होने वाला है। अपनी भेड़ों में आप प्रजनन के लिए अच्छी नस्ल के मेढ़े का प्रयोग करें। अच्छी नस्ल के मेढ़े आप अपने क्षेत्र के भेड़ व ऊन केन्द्र, पशुधन फार्म हिसार एवं केन्द्रीय भेड़ प्रजनन फार्म, हिसार से ले सकते हैं।

कुक्कुटों में

मुर्गियों को रानीखेत एवं चेचक का टीका लगवाएं। छत पर सफेदी करें। मुर्गीघर पूर्व-पश्चिम दिशा में हो। मुर्गी आहार में लगभग 2 प्रतिशत प्रोटीन अधिक दें। दोपहर में जब खूब गर्मी पड़ती है तो खिड़कियों को गीली बोरी आदि से ढक कर रखें। मुर्गियों को ठण्डे पानी में इलैक्ट्रोलाइट पाऊडर डालकर पिलाएं। बिछावन को दिन में चार बार पलटें और आहार को भी फीडर में दिन में पांच-छः बार डालें। मुर्गीघर के बाहर शहतूत के पेड़ लगाएं। छत पर भी फूस डालें। पिलाने के लिए पानी घड़े में रखें और पानी की पाइप को चारों तरफ से टाट लपेट कर रखें। प्रत्येक 15 दिन बाद मुर्गी आहार बनाएं।



घर-आंगन में

अप्रैल के महीने में मौसम परिवर्तन के कारण शरीर के लिए पानी की ज़रूरतें भी बढ़ जाती हैं और थोड़ी देर के बाद ही कुछ ठण्डा पीने का मन करता है। इन दिनों बाज़ार में पेय बनाने वाले फल एवं सब्जियां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं। अतः आप इनसे प्रचुर मात्रा में घर पर ही पेय पदार्थ बनाकर उपयोग में ला सकते हैं एवं इन्हें आय उपार्जन के रूप में भी अपना सकती हैं। पेय पदार्थों को घर पर बनाने के लिए आप अपने ज़िले में स्थित ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (गृह विज्ञान) या ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (बागवानी) से संपर्क कर सकते हैं।

फार्म प्रबन्ध

इस माह किसानों के फसल उत्पाद बिक्री के लिए तैयार होते हैं। किसानों को सलाह दी जाती है कि अपने अन्न उत्पाद गांव के व्यापारी या घुमन्तु व्यापारियों को न बेचकर केवल नियमित मण्डी एवं इलेक्ट्रॉनिक बाज़ार के माध्यम से बेचें। मण्डी में बिक्री के लिए ले जाने से पहले निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें :

1. मण्डी में ले जाने से पहले अनाज की भली प्रकार सफाई कर लें तथा अनाज को अच्छी तरह सुखा लें।
2. अलग प्रकार के अनाज को अलग-अलग बेचें। बढिया किस्म के अनाज की कीमत हमेशा ज़्यादा मिलती है।
3. फसल उत्पाद को ग्रेड करा लेने के बाद उसकी उचित कीमत लगती है। कृषि विभाग द्वारा प्रमुख मण्डियों में कपास व खाद्यान्नों की ग्रेडिंग के लिए केन्द्र स्थापित किए गए हैं। इन केन्द्रों पर किसानों की उपज की निःशुल्क ग्रेडिंग की सहूलियत उपलब्ध है।
4. कटाई के बाद किसान अपनी उपज को एक साथ ही मण्डियों में न लाकर उसे धीरे-धीरे लाएं जिससे कठिनाई न उठानी पड़े तथा उनकी उपज का सही मूल्य उन्हें मिल सके।
5. फसल उत्पाद को जहां तक संभव हो सहकारी संस्था अथवा सहकारी सोसाइटी के माध्यम से बेचें तथा यह ध्यान रखें कि उपज का समर्थन मूल्य प्राप्त हो। फसल बेचने में यदि कोई कठिनाई आए तो स्थानीय बाज़ार (मार्केट) के कर्मचारियों से संपर्क करें।
6. अपनी फसल खुली बोली पर ही बेचें व अपनी उपस्थिति में तोल करवाएं।
7. किसान से मण्डी में उतराई/अराई/सफाई के खर्च काटे/वसूल किए जाते हैं।
8. किसान अपनी फसल उत्पाद बिक्री का हिसाब करके 'जे' फार्म अवश्य लें।
9. किसान आने वाली खरीफ फसलों के बीजों की खरीद सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थानों के बिक्री केन्द्रों से ही करें।
10. किसान गुणवत्ता बीजों की ही बिजाई करें।

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951(ई) **के तहत एक सूचना जारी की है कि 12 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स+ फंजीसाइड्स+हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 8 अगस्त 2018 से ही बन्द कर दिया गया है। अन्य छः कीटनाशकों का प्रयोग 31 दिसम्बर, 2020 से बन्द कर दिया जाएगा। इनकी सूची इस प्रकार है:**

8 अगस्त, 2018 से प्रतिबंधित कीटनाशक

1. **बेनोमाईल** (Benomyl)
2. **कार्बाराइल** (Carbaryl)
3. **डाय जिनॉन** (Diazinon)
4. **फेनारिमोल** (Fenarimol)
5. **फेन्थियॉन** (Fenthion)
6. **लिन्यूरॉन** (Linuron)
7. **मैथॉक्सी इथाइल मरकरी क्लोराइड** (Methoxy Ethyl Mercury Chloride)
8. **मिथाइल पैराथियॉन** (Methyl Parathion)
9. **सोडियम सायनाइड** (Sodium Cyanide)
10. **थियोमेटॉन** (Thiometon)
11. **ट्रायडमॉर्फ** (Tridemorph)
12. **ट्राइफ्लूरालिन** (Trifluralin)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

आंवला - एक गुणकारी फलदार पौधा

✍ **राजेश कथवाल, अमित कुमार[1] एवं सुलेमान मोहम्मद**
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बूड़िया (यमुनानगर)
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आंवला या इंडियन गूस बैरी भारत उपमहाद्वीप का स्थानीय फलदार वृक्ष है। यह यूफोरबिएसी परिवार से संबंध रखता है और इसकी 350 से 500 के करीब प्रजातियां पाई जाती हैं। इस फल को इसकी गुणकारी विशेषताओं के लिए 'सेहत के लिए विस्मयकारी फल' का दर्जा प्राप्त है। यह फलदार पौधा अपने व्यवहार में मौसम की घोर परिस्थितियों को झेलने में सक्षम, बंजर भूमि के लिए उपयुक्त और ज़्यादा उत्पादकता (15-20 टन प्रति हैक्टेयर) देने वाला एक औषधीय पौधा है। इसके फल विटामिन 'सी' का प्रमुख स्त्रोत हैं। यह स्थानीय औषधियों में प्रयोग किया जाने वाला प्रमुख फल है। यह तीखा, ठण्डा रखने वाला, मूत्रवर्धक व रेचकता प्रदान करने वाला फल है। इसके सूखे फल रक्तस्राव, दस्त, पेचिश, अरक्तता, पीलिया, अपच और खांसी में लाभकारी पाए गए हैं। त्रिफला और च्यवनप्राश आदि स्थानीय औषधियों में मुख्य रूप से आंवले का प्रयोग किया जाता है। इसके फलों के अलावा, पत्ते, छाल और बीजों का प्रयोग भी विभिन्न प्रकार के उद्देश्यों के लिए किया जाता है।

आंवला फलदार वृक्ष के लिए उपयुक्त क्षेत्र

1. पूर्वी खंड

क. शिवालिक पहाड़ी क्षेत्र (अर्द्ध-नमी अधिक वर्षा वाले भाग) : कालका, नारायणगढ़, जगाधरी, करनाल, पानीपत, लाडवा और इन्द्री का कुछ भाग।

ख. अल्लूवीइल मैदानी क्षेत्र (अर्द्ध-शुष्क मध्यम वर्षा वाले भाग) : फरीदाबाद, पलवल, बल्लबगढ़, गुरूग्राम, नूह, पटौदी, सोनीपत, करनाल, पानीपत, कुरूक्षेत्र, कैथल, गुहला, पेहवा, रोहतक और जींद का कुछ हिस्सा।

2. पश्चिमी खंड

क. अल्लूवीइल मैदानी क्षेत्र (अर्द्ध-शुष्क मध्यम से कम वर्षा वाले भाग) : हिसार, रोहतक, सिरसा व भिवानी ज़िले के कुछ क्षेत्र, सारा महेन्द्रगढ़ ज़िला।

ख. रेतीले टिब्बे वाले क्षेत्र (शुष्क क्षेत्र कम और बिल्कुल कम वर्षा वाला भाग) : हिसार, सिरसा, फतेहाबाद, भिवानी, रेवाड़ी, महेन्द्रगढ़ (नारनौल) ज़िलों के दक्षिणी-पश्चिमी हिस्से, राजस्थान सीमा के साथ लगने वाले क्षेत्र।

बाग के लिए उपयुक्त भूमि

बाग के लिए गहरी जल निकास वाली, दोमट व उपजाऊ भूमि होनी चाहिए। भूमि में दो मीटर की गहराई तक किसी प्रकार की सख्त तह नहीं होनी चाहिए। पानी की सतह तीन मीटर गहराई पर होनी चाहिए। दलदली, अत्यधिक लवणीय या अम्लीय भूमि में जहां तक हो सके, फल वाली फसलें न बोएं। मृदा का 2 मीटर की गहराई तक नमूना लें। मिट्टी का परीक्षण करवाएं।

मिट्टी के नमूने लेने की विधि

1. मिट्टी के सात नमूने लेने की आवश्यकता होती है। ऊपरी 15 सैं.मी., 15 से 30 सैं.मी., 30 से 60 सैं.मी., 60 से 90 सैं.मी., 90 से 120 सैं.मी., 120 से 150 सैं.मी. और 150 से 200 सैं.मी. की तह से नमूना लें।
2. मिट्टी का नमूना लेते समय ज़मीन में पाई जाने वाली कंकर की तह की गहराई व मोटाई अवश्य नोट करें व इसका नमूना अलग से लें।
3. प्रत्येक नमूने को अलग-अलग साफ-सुथरे कपड़े की थैलियों में रखें। मिट्टी के प्रत्येक नमूने पर नमूना नम्बर व गहराई अवश्य लिखें।

तालिका 1 : आंवला के बाग लगाने के लिए भूमि की उपयुक्त भौतिक व रासायनिक गुणवत्ता

गुण*	मान
1. विद्युत चालकता (मि.ली. म्होज/सैं.मी.) (1 मिट्टी : 2 पानी)	1.0
2. कैल्शियम कार्बोनेट (%)	10
3. चूना कंकर (%)	20
4. क्षारीयमान (पी.एच.)	8.7**

*2 मीटर की गहराई तक

**अधिकतम, अगर विद्युत चालकता 0.5 मि.ली. म्होज से नीचे है

आंवले पौधे की लवणीय सहनशीलता : आंवला मध्यम लवण सहनशील पौधा है।

बाग लगाने का समय

आंवले का बाग लगाने के लिए अगस्त से सितम्बर और 15 जनवरी से 15 फरवरी का समय उपयुक्त रहता है।

गड्ढे खोदना

बाग लगाने से पहले ज़मीन को अच्छी तरह तैयार करना ज़रूरी है। गड्ढे खोदने के लिए 35 से 45 हॉर्स पॉवर ट्रैक्टर चालित गड्ढे खोदने वाली मशीन का प्रयोग करें। इस मशीन से 90 सैं.मी. चौड़े तथा 90 सैं.मी. गहरे गड्ढे खोदे जा सकते हैं। इस मशीन की क्षमता 40 से 50 गड्ढे प्रति घण्टा है और 1 एकड़ का खर्च लगभग 500 रुपये आता है। इस मशीन में गड्ढा खोदते समय ज़मीन में नमी होनी चाहिए। इस विधि द्वारा खोदे गए गड्ढे में पौधों के मरने की संख्या लगभग 5 प्रतिशत तक पाई गई है। एक मीटर गहराई व एक मीटर व्यास के गड्ढे खोदें और गड्ढों में ऊपर की 1/2 मीटर सतह की मिट्टी व गली-सड़ी गोबर की खाद को बराबर हिस्सों में व 2 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट को अच्छी तरह मिलाकर भरें। पौधे लगाने से पहले गड्ढों को खुला पानी दें ताकि गड्ढों की मिट्टी अच्छी तरह बैठ जाएं। पौधे लगाने के बाद पौधों को 30 मि.ली. क्लोरपाइरीफॉस प्रति गड्ढे पानी मिलाकर दें।

कतार से कतार व पौधे से पौधा लगाने पर फासला

8 से 10 मी. कतार से कतार व पौधे से पौधा लगाने पर एक एकड़ में 72 से 42 पौधे लगाए जा सकते हैं। *(शेष पृष्ठ 23 पर)*

[1]शोध छात्र, सस्य विज्ञान विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

सफल डेयरी फार्मिंग के मूल-मंत्र

✍ **अमित,गुलाब सिंह[1] एवं सूबे सिंह[2]**
पशु उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग
ला. ला. रा. पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

डेयरी फार्मिंग को सफल बनाने के लिए निम्न बातों का अवश्य ध्यान रखें :

1. पशुओं की अच्छी नस्ल का चुनाव करना सफल डेयरी फार्मिंग का महत्वपूर्ण सूत्र है। भैंसों में मुर्राह, गायों में होलिस्टिन, साहीवल आदि उत्तम नस्लें हैं जो डेयरी फार्मिंग में अधिक उत्पादन देती हैं।
2. पशुओं का उत्पादन उनकी खुराक पर निर्भर करता है। इसलिए यदि उनके आहार में पोषक तत्वों की कमी होगी तो उनका उत्पादन भी कम हो जाएगा। इस कमी को पूरा करने के लिए पशु को प्रतिदिन 50 से 60 ग्राम खनिज व पोषक तत्वों का मिश्रण ज़रूर दें।
3. डेयरी फार्मिंग को सफल व्यवसाय बनाने के लिए पशुओं के रहने के स्थान का बहुत महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसलिए पशुओं के आवास स्थान को बनाने से पहले पशु-विशेषज्ञ की सलाह ज़रूर लें। पशुओं की गर्मी व सर्दी से रक्षा करें। गर्मी के मौसम में पीने के पानी का उचित प्रबंध होना चाहिए।
4. पशुओं की नस्ल सुधारने तथा उत्पादन को बढ़ाने के लिए अच्छी नस्ल के सांड या झोटे से कृत्रिम गर्भाधान सही समय पर करवाना आवश्यक है। कृत्रिम गर्भाधान विशेषज्ञ की देख-रेख में ही करवाना सही रहता है।
5. पशुओं को संक्रामक रोग जैसे गलघोंटू, मुंह-खुर आदि से बचाने के लिए समय पर टीकाकरण करवाना बहुत ज़रूरी होता है। पशुओं का टीकाकरण सही समय पर सरकारी पशु-चिकित्सालय में ही करवाएं।
6. पशुओं को पेट के कीड़ों से बचाने के लिए नियमित रूप से दवाई देनी बहुत ज़रूरी है। कीड़ों के कारण पशुओं का उत्पादन कम हो जाता है और उनकी प्रजनन क्षमता पर भी बुरा असर पड़ता है।
7. डेयरी फार्मिंग में नवजात पशुओं की अच्छी देख-रेख बहुत आवश्यक है। क्योंकि इनमें रोगों से लड़ने की क्षमता कम होती है और मृत्युदर ज़्यादा होता है इसलिए उनके खान-पान और साफ-सफाई का विशेष ध्यान रखें। प्रतिरक्षा बढ़ाने के लिए उनको जन्म के एक घंटे बाद व 2-3 दिन बाद तक खीस अवश्य खिलाएं और उनके पैदा होते ही नाल को साफ ब्लेड या कैंची से काट कर रोग-रोधक दवा लगा दें।
8. सफल डेयरी फार्मिंग के लिए फार्म का लेखा-जोखा रखना बहुत ज़रूरी है। पशुपालक को सभी पशुओं का पूर्ण लेखा-जोखा जैसे उसके जन्म का स्रोत या माता-पिता, नंबर, पहचान, खान-पान, टीकाकरण, ब्याने तथा फार्म की सभी गतिविधियों का लेखा-जोखा रखना चाहिए।

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, भिवानी।
[2]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

उर्वरक की आवश्यकता व भारत में उपलब्धता

✍ **अमनदीप सिंह एवं नरेंद्र कुमार**
कृषि अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इसकी आबादी तेज़ी से बढ़ रही है। शायद हम अगली जनगणना में 150 करोड़ का आँकड़ा छू लें। इतनी बड़ी आबादी के लिए भोजन उपलब्ध करवाना एक बहुत बड़ी चुनौती है। औद्योगीकरण, शहरीकरण व संसाधनों के अनुचित इस्तेमाल से कृषि योग्य भूमि कम होती जा रही है। किसानों के लिए सबसे बड़ी चुनौती ये है, कि कम भूमि पर अधिक उत्पादन लेना है। इसके लिए किसान पूरी तरह से उर्वरकों पर निर्भर रहता है।

उर्वरक के उत्पादन में भारत ने पिछले कुछ दशकों में बड़ी सफलता पाई है। उर्वरक के उत्पादन में संसार में भारत तीसरे स्थान पर है। उत्पादन के साथ भारत उपभोक्ता भी बहुत बड़ा है। विश्व में भारत दूसरा बड़ा उपभोक्ता है। नाइट्रोजन युक्त, उर्वरकों के उत्पादन में भारत दूसरे व फोस्फोरस के उत्पादन में भारत तीसरे स्थान पर है। पोटाश भारत आयात करता है। फॉस्फेट के मामले में, घरेलू कच्चे माल की कमी में आत्मनिर्भरता की प्राप्ति में एक बाधा रही है। भारत में कुल 56 बड़े उर्वरक प्लांट है। इनमें से 30 यूनिट यूरिया, 21 यूनिट डीएपी और 5 यूनिट दूसरे जटिल उर्वरकों के हैं।

उर्वरक एक रासायनिक उत्पाद है। इसे या तो खदानों से खोदा जाता है या फैक्ट्रियों में तैयार किया जाता है। उर्वरकों का खेतों में इस्तेमाल करना हमारी मज़बूरी है। इसके इस्तेमाल के बिना हम खेतों में पोषक तत्वों की उपलब्धता को तुरंत पूरी नहीं कर सकते। उर्वरक शीघ्रता से पानी में घुल कर मिट्टी में मिल जाते हैं। इन पोषक तत्वों को आसानी से पौधे ले सकते हैं। फसलों के उत्पादन को बढ़ाने में उर्वरक का विशेष योगदान रहा है। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि हम बहुत सारा फर्टिलाइज़र खेतों में डाल दें। इसका ज़रूरत से ज़्यादा इस्तेमाल खेतों की मिट्टी, पानी व वातावरण के लिए हानिकारक है।

फसलों के विकास के लिए 16 पोषक तत्व आवश्यक हैं। इन सभी पोषक तत्वों की पौधों को अलग-अलग मात्रा में आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन, फास्फरोस और पोटाश मुख्य तत्व हैं जिनकी पौधे को अधिक आवश्यकता होती है। भारत में मुख्यत: यूरिया, डी ए पी और एम ओ पी उर्वरकों का उपयोग किया जाता है। एक रिपोर्ट के अनुसार 2016-17 में कुल 423.24 मीट्रिक टन उर्वरक का उत्पादन किया गया। इस उत्पादन का 60 प्रतिशत हिस्सा यूरिया का था। भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा यूरिया उपभोक्ता है। इसलिए हमारी सरकार भी इसके उत्पादन की तरफ अधिक ध्यान दे रही है। यूरिया के बाद डी ए पी का उत्पादन की दृष्टि से हमारे देश में दूसरा स्थान है।

(शेष पृष्ठ 23 पर)

पराली से जैविक खाद निर्माण : प्रदूषण पर नियंत्रण

✍ **कमला मलिक, शिखा महता एवं यादविका**
सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जैविक खाद लिग्नो सैलुलोसिक पदार्थों के जैविक अपघटन की प्रक्रिया से बनती है। इसे समृद्ध जैविक खाद के स्रोत के रूप में जाना जाता है। यह मिट्टी की उर्वरक शक्ति और गुणवत्ता में सुधार करने वाला उत्पाद है। कृषि अवशेषों में चावल की पराली मुख्य है। चावल दक्षिण एशिया के देशों में प्रचुर मात्रा में उगाया जाता है और इस क्षेत्र में रहने वाली जनसंख्या का यह मुख्य खाद्यान्न है। चावल की झाड़ के बाद बचे अवशेष पराली को किसान आने वाली बिजाई फसल-गेहूं के दवाब में खेतों में ही जला देते हैं और इन अवशेषों के जलने से वातावरण प्रदूषित होता है जो वर्तमान में एक विकट समस्या बन गयी है। उत्तरी भारत में यह समस्या राष्ट्रीय राजधानी के साथ-साथ सम्बधित चावल क्षेत्र को भी प्रदूषण के द्वारा अत्यधिक मात्रा में प्रभावित कर रही है। इसका मानवहित में समाधान यह है कि इसके अवशेषों से जैविक खाद का निर्माण किया जाए जिससे प्रदूषण को कम करने और खाद के रूप में इसका प्रयोग करके मिट्टी की गुणवत्ता को संवारा जा सकता है। चावल की पराली और कृषि के अन्य अवशेषों से जैविक खाद बनाना सरल है, यह सस्ती है और इस खाद में नाइट्रोजन और फॉस्फोरस अक्ष कम पाये जाते हैं परन्तु इसमें सूक्ष्म पोषक तत्व, इन्जाईम्स, सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं और ये जैविक खाद की गुणवत्ता में वृद्धि करते हैं। पराली में पोटाशियम भी काफी मात्रा में पाया जाता है।

कृषि अवशेषों/पराली से खाद निर्माण की प्रक्रिया

चावल निकालने के बाद पराली और चावल का भूसा खाद के लिए बनाए गए गड्ढ़े में डाल दें।

खाद के उपयुक्त नाइट्रोजन और नमी की मात्रा बनाए रखनी चाहिए, सूक्ष्म जीवियों की वृद्धि को भी नियन्त्रित रखना चाहिए।

खाद बनने की प्रक्रिया में जगह की समतलता, पानी का समुचित निकास का प्रबन्धन भी आवश्यक है।

सम्भवत: उच्च कार्बन और कम नाइट्रोजन सम्बन्धित सामग्री को 2:1 के अनुपात में मिलाकर खाद का ढेर परत-दर-परत बनाना चाहिए।

खाद के ढेर में नमी की उचित मात्रा रखनी चाहिए। वह न अधिक गीला हो और न अधिक सूखा रखना चाहिए।

जैविक खाद बनाने की प्रक्रिया और अपघटन की प्रक्रिया के सहयोग के लिए ढेर को अच्छी तरह सड़ाने के लिए उसमें गाय का गोबर, गोमूत्र और यूरिया आदि मिलाया जा सकता है या सूक्ष्मजीवों से युक्त घोल का प्रयोग किया जा सकता है।

कुछ किसान खाद के ढेर को कई दिनों तक ऐसे ही पड़ा रहने देते हैं जबकि दो सप्ताह के अन्तराल पर इस खाद के ढेर को फेरबदल कर देना चाहिए और अच्छे से मिला देना चाहिए।

यदि नमी और तापमान उपयुक्त रहे तो 4-8 सप्ताह में अच्छी खाद बन कर तैयार हो जाती है।

खाद की उपयोगिता:

बड़ी मात्रा में कृषि अवशेषों का पुन: प्रयोग खेत में हो जाता है।

खाद में बहुत सारे सूक्ष्म जीव और सूक्ष्म खाद्य जीव होते हैं जो भूमि की उर्वरा शक्ति और फसल वृद्धि के लिए लाभदायक होते हैं।

खाद के द्वारा ही हम अवशेषों का भी सार्थक प्रयोग कर सकते हैं।

खाद भूमि में पोषक तत्वों को धीरे-धीरे छोड़ती है जिससे भूमि में लीचिंग की स्थिति बनी रहती है।

खाद में 55° सैंटीग्रेड से ऊपर में उत्पन्न उच्च तापमान से हारिकारक सूक्ष्म जीव समाप्त हो जाते हैं। साथ ही साथ खाद सामग्री में निहित खरपतवार के बीजों की क्षमता भी घट जाती है और उनके उगने की सम्भावना नगण्य हो जाती है।

जब खाद तैयार हो जाती है तो इसका प्रयोग आसान है।

खाद बनाने के लिए कृषि अवशेष काफी मात्रा में खेत पर ही उपलब्ध हो जाते हैं।

अच्छी फसल किसान की आय में तुरन्त वृद्धि करती है और यह जैविक खाद से सम्भव है। जैविक खाद के प्रयोग से भूमि की उर्वराशक्ति लम्बे समय तक बनी रहती है। मिट्टी की संघटना और बनावट मज़बूत होती है। पानी को ग्रहण करने की क्षमता बढ़ती है। भूमि उपजाऊ होती है और उसकी लवणता घटती है। इसलिए किसानों को पराली नहीं जलानी चाहिए अपितु खाद बनानी चाहिए जिससे वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड कम पहुँचेगी और प्रदूषण पर रोक लगेगी। जैविक खाद रासायनिक खाद की जगह ले लेगी तो हमारी पर्यावरण प्रणाली मज़बूत होगी, कृषि लागत कम होगी। जैविक खाद बनाने की प्रक्रिया यदि हम अपना लें तो हमारी कृषि उपज में आश्चर्यजनक वृद्धि और सकारात्मक परिणाम मिलेंगे।

लेखकों से अनुरोध

हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। लेख में अंग्रज़ी शब्दों का प्रयोग न करें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें**। अपना लेख हमें ई-मेल पर भी भेज सकते हैं :

haryanakhetihau@gmail.com

घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा

✍ **पूनम मलिक**
मानव विकास व पारिवारिक अध्ययन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वैसे तो भारतवर्ष में नारी को देवी समझा जाता है, उसकी पूजा की जाती है, परन्तु दुर्भाग्यवश हमारे समाज में कई जगह महिलाओं की स्थिति काफी दयनीय है, उनका कई प्रकार से उत्पीड़न किया जाता है। कई बार तो उन पर घर में ही जुल्म किया जाता है। घर जो कि सबसे सुरक्षित जगह मानी जाती है वहीं पर महिलाएं असुरक्षित महसूस करती हैं। महिलाओं को घरेलू हिंसा का सामना करना पड़ता है। आखिर घरेलू हिंसा से क्या अभिप्राय है? आमतौर पर महिला के साथ पति द्वारा की गई मारपीट को घरेलू हिंसा समझा जाता है। परंतु वास्तव में घरेलू हिंसा की परिभाषा काफी विस्तृत है। घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 के तहत घरेलू हिंसा में शारीरिक हिंसा, यौन हिंसा, मौखिक व भावनात्मक हिंसा तथा आर्थिक हिंसा को शामिल किया गया है। आइए इनके बारे में विस्तार से जानते हैं :

शारीरिक हिंसा : महिला को शारीरिक दर्द या चोट पहुंचाना; धमकी देना; महिला की जान को खतरा पहुंचाना; शारीरिक अंग या स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाना; महिला की जान पर हमला या जान ले लेना, आदि। उदाहरण - मारपीट, थप्पड़ मारना, दांत से काटना, ब्लेड या चाकू से वार करना, लात मारना, धक्का देना आदि।

यौन हिंसा : ऐसा यौन व्यवहार जो महिला के लिए अपमानजनक हो या उसकी गरिमा को ठेस पहुंचाता हो; महिला के साथ बलपूर्वक शारीरिक संबंध बनाना; महिला को अश्लील फिल्म, चित्र या साहित्य देखने के लिए मज़बूर करना एवं बाल यौन हिंसा।

मौखिक व भावनात्मक हिंसा : महिला का अपमान करना; महिला का उपहास करना; महिला को गाली देना या नीचा दिखाना; बच्चे या लड़का पैदा न होने पर अपमान करना व ताने मारना; महिला पर दहेज के लिए अत्याचार करना; महिला के किसी करीबी रिश्तेदार या उसके बच्चों को नुकसान पहुंचाने की धमकी देना; महिला को आत्महत्या करने की धमकी देना; महिला को उसकी इच्छा के विरुद्ध शादी करने को मज़बूर करना एवं महिला को उसकी पसन्द के व्यक्ति से शादी करने पर रोक लगाना।

आर्थिक हिंसा : महिला को आर्थिक या धन संबंधी संसाधन देने से इंकार करना जैसे खाना, कपड़े, दवाइयां व अन्य घरेलू वस्तुओं की पूर्ति नहीं करना, स्त्रीधन व भरण-पोषण नहीं देना; महिला की सम्पत्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध बेचना या किसी और के नाम करना; महिला को बेघर कर देना या उसको घर के किसी भाग को इस्तेमाल करने से रोकना; महिला के कार्यक्षेत्र में दखलअंदाज़ी करना जैसे कि महिला को नौकरी न करने देना, काम की जगह पर जा कर परेशान करना व उसका वेतन ले लेना।

सुरक्षा : घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 के अंतर्गत घरेलू हिंसा में शारीरिक हिंसा, यौन हिंसा, मौखिक हिंसा व भावनात्मक हिंसा तथा आर्थिक हिंसा शामिल हैं। इस अधिनियम के अंतर्गत घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं को कुछ कानूनी राहत प्रदान करने का प्रावधान है। आइए जानते हैं कि कानून किस प्रकार महिलाओं की सहायता कर सकता है।

घरेलू हिंसा की शिकार महिला अदालत में मदद की अर्ज़ी दायर कर सकती है। महिला की मदद के लिए जज निम्नलिखित आदेश पारित कर सकते हैं :

सुरक्षा आदेश : महिला के साथ हिंसा करने वाले पर (जो कि आम तौर पर पति होता है परन्तु पिता, भाई, ससुर, देवर, जेठ या कोई अन्य पुरुष रिश्तेदार हो सकता है) अदालत निम्न तरह की रोक लगा सकती है :

महिला के साथ किसी प्रकार की घरेलू हिंसा पर रोक लगाना।

महिला के साथ बातचीत करने तथा अन्य तरीकों जैसे फोन, पत्र, संदेश आदि से संपर्क करने पर रोक लगाना।

महिला के काम के स्थान पर या बच्चों के स्कूल/कॉलेज में जाकर मिलने पर रोक लगाना।

महिला की संपत्ति को बेचने, उसके बैंक खाते तथा लॉकर को इस्तेमाल करने तथा उसके स्त्रीधन या अन्य किसी भी प्रकार की संपत्ति को इस्तेमाल करने या बेचने पर रोक लगाना।

अभिरक्षा आदेश : अदालत यदि सही समझे तो महिला को उसके बच्चे अपने पास रखने की अनुमति का आदेश जारी कर सकती है। ऐसा तब आवश्यक हो जाता है जब बच्चे की सुरक्षा खतरे में हो।

आवास आदेश : अदालत घरेलू हिंसा करने वाले व्यक्ति को आदेश दे सकती है कि वो महिला के रहने के लिए किसी दूसरे सुविधाजनक घर की व्यवस्था करे। इसके अलावा महिला हिंसा करने वाले पुरुष पर अदालत निम्न प्रकार की रोक लगा सकती है :

महिला को घर से बेघर करने पर रोक लगाना।

घरेलू हिंसा करने वाले पुरुष को घर के किसी भाग में प्रवेश करने पर रोक लगाना।

घर को बेचने या किसी और के नाम करने पर रोक लगाना।

मुआवज़ा देने का आदेश : घरेलू हिंसा सहन करने के कारण महिला को जो भी शारीरिक चोट, मानसिक प्रताड़ना या अन्य नुकसान होता है उसके लिए अदालत मुआवज़े का आदेश दे सकती है।

आर्थिक राहत : इन सब के अलावा अदालत हिंसा करने वाले पुरुष को आदेश दे सकती है कि वो महिला को उसके भरण पोषण का खर्चा दे।

घरेलू हिंसा कानून के इन प्रावधानों से पीड़ित महिला को काफी हद तक राहत मिल सकती है।

बच्चों की अनुकूल परवरिश : सुझाव

✍ **सुमित श्योराण, सुधा चिकारा एवं शीला सांगवान**
मानव विकास और पारिवारिक अध्ययन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

किसी भी बच्चे के लिए उसके माता-पिता ही उसके पहले शिक्षक होते हैं, जिनसे वो बोलना, चलना और व्यवहार की अन्य आदतें सीखता है। अगर आप चाहते हैं कि आपका बच्चा हर क्षेत्र में बेहतर प्रदर्शन करे तो कुछ आदर्श आपको खुद भी प्रस्तुत करने होंगे।

अक्सर माता-पिता बच्चों पर ज़ोर ज़बरदस्ती कर उन्हें आदर्श और शिष्टाचार की बातें सिखाने की कोशिश करते हैं, लेकिन यह भूल जाते है कि बच्चे व्यवहार संबंधी सारी बातें घर से ही सीखते हैं इसलिए अगर आप चाहते हैं कि आपका बच्चा आपकी सुने और उसमें अच्छे गुण आएं तो आपको उसके सामने खुद की एक मिसाल पेश करनी होगी। बच्चे सामाजिकता, व्यवहारिकता और नैतिकता की बातें घर से ही सीखते हैं बच्चों में यदि आप आदर्श मूल्य स्थापित करना चाहते हैं, तो उसकी शुरूआत नीचे बताए गए कार्य से करें :

बच्चों के बीच प्रतियोगिता न करें : कई बार माता-पिता अपने ही बच्चों के बीच प्रतियोगिता विकसित कर देते हैं। एक-दूसरे की तुलना करने लगते हैं। कभी बच्चों को जल्दी स्कूल का काम करने में प्रतियोगिता करवाते हैं तो कभी जल्दी खाने-पीने की चीज़ों में। आपके इस व्यवहार से बच्चे में हीनभावना आ जाती है और आपको पता भी नहीं चलता। उसके आत्मविश्वास में कमी आने लगती है, जिससे बच्चा बाहर भी मिलने-जुलने और लोगों से बात करने से कतराने लगता है।

बच्चों के साथ समय बिताना : चाहे आप नौकरी पेशा हों या व्यवसायी, बच्चों के साथ समय बिताना बहुत ज़रूरी होता है। बच्चे भी चाहते है कि उनको माँ-बाप का ज़्यादा से ज़्यादा सान्निध्य मिले। ऐसा नहीं होने पर भी बच्चे चिड़चिड़े हो जाते हैं।

बच्चों के साथ देखें टी.वी. : बच्चे छोटे हों या बड़े, मां बाप को चाहिए कि बच्चों के साथ बैठकर टी.वी. देखें। इससे आप जान सकेंगे कि बच्चा टी.वी. से क्या अच्छा-बुरा सीख रहा है। बच्चा किन चीज़ों से सीख रहा है। उनको वही टी.वी. प्रोग्राम देखने दें जो ज्ञानवर्धक हों।

बातचीत बढ़ाएं : बच्चों को भी अपनी बातचीत में शामिल करें। उनसे स्कूल की बातें करें और वहां की गतिविधियों के बारे में पूछें। बातचीत का दायरा जितना बढ़ेगा उतना ही बच्चे खुलकर हर मुद्दे पर आपसे बात कर सकेंगे। क्योंकि किशोर होते कई बच्चे अपने अंदर हो रहे हार्मोनल परिवर्तन के बारे में बता नहीं पाते, वे इससे संकोच करने लगते हैं। ऐसे में ज़रूरी है कि आप उनको इससे संबंधित कुछ बातें पहले ही बता दें ताकि वे भटक न सकें। कई बार बच्चों को जब इनसे संबंधित जवाब नहीं मिलता तो वे इंटरनेट, टीवी और दोस्तों की मदद लेने लगते हैं जो बेहद खतरनाक है। इससे बच्चा अवसाद में जा सकता है और कुंठा से बच्चे का मानसिक और शारीरिक विकास सही तरह से नहीं हो पाता। इसलिए उनकी जो भी समस्या हो, गौर से सुनें और सुलझाने में मदद करें। अगर विशेषज्ञ की ज़रूरत हो तो उसकी भी मदद लें।

अपने बच्चे को समझें : आपका बच्चा क्या चाहता है, उसकी रूचि किन चीज़ों में हैं, इसे जानने की कोशिश करें। पड़ोसी का बच्चा क्या कर रहा है और क्या नहीं, इस बात से ज़्यादा ज़रूरी है कि आपका बच्चा क्या चाहता है, जिस चीज़ में उसकी रूचि है, उसी को बढ़ावा दें।

मीठा बोलें अच्छा बोलें : बच्चे मासूम हैं इसीलिए सही और गलत में फर्क नहीं कर पाते। ऐसे में माता-पिता की ज़िम्मेदारी बनती है कि वे उनको सही और गलत में फर्क समझाएं। अक्सर देखा गया है कि बच्चे अपने अभिभावक या परिवार की शह पर ही अभद्र भाषा का इस्तेमाल करते हैं। यही नहीं, यदि आप भी अपनी बोलचाल में अभद्र भाषा का इस्तेमाल करते हैं तो संभव है कि बच्चा भी आपकी नकल करे। इसलिए बच्चों से कभी भी कड़ी भाषा न बोलें। साधारण बातचीत में भी अच्छे शब्दों का ही इस्तेमाल करें। इसी तरह आप उनको सही तरीके से बातचीत करना भी सिखा सकते हैं मगर इसके लिए आपको एक अच्छा श्रोता बनना पड़ेगा। इससे बच्चे को लगेगा कि आप उसमें रूचि ले रहे हैं। फलस्वरूप उसका आत्मविश्वास बढ़ेगा और वो अपनी हर बात आपसे शेयर करेगा।

शिष्टाचार भी है ज़रूरी : अच्छी आदतें और व्यवहार की कुछ बातें बच्चे बिना सिखाए ही आपसे सीख लेते हैं। जैसे रोज़मर्रा की ज़िंदगी में यदि आप उनके साथ व्यवहार करते हुए सम्मान व आदर सूचक संबोधन करेंगे तो वे भी प्रतिक्रिया देंगे। इसलिए कृपया और धन्यवाद जैसे शब्द हमेशा अपने बच्चों के सामने बोलें। आपकी इस तरह की प्रतिक्रिया निश्चित रूप से बच्चे को प्रभावित करेगी और इस तरह आप अपने बच्चे के लिए रोल मॉडल बन जाएंगे।

कहीं अंतर्मुखी ना बना दे रिश्तों का सीमित दायरा : संयुक्त परिवार का आधार धीरे-धीरे खत्म हो रहा है और लोग अब अपने आप में सिमटने लगे हैं ऐसे माहौल में पले-बढ़े बच्चे आत्मकेन्द्रित हो रहे हैं। इसके लिए वे दोषी भी नहीं हैं क्योंकि आपने उन्हें माहौल ही ऐसा दिया है। वे दादा-दादी, नाना-नानी की कहानियों से महरूम तो हो ही रहे हैं, साथ ही साथ वे अन्य रिश्तों से भी दूर हो रहे हैं। शोध में यह बात सामने आई है कि जो बच्चे पूरी तरह से पढ़ाई में समर्पित हो जाते हैं वे परिवार और समाज से दूर होते जाते हैं, उनकी बुद्धि लब्धि तो ठीक होती है पर संपूर्ण विकास नहीं हो पाता।

बच्चों को अगर आप सही रूप से पारिवारिक स्तर पर विकसित करना चाहते हैं तो आपको परिवार के अन्य सदस्यों से मधुर रिश्ता बनाना होगा। पर्व त्यौहार के मौके पर उनसे मिलें। बच्चो को भी उनसे घुलने मिलने दें। झगड़ा होने पर बच्चे को इधर से उधर संदेश पहुंचाने का माध्यम न बनाएं। ऐसी स्थिति में उसके लिए सही-गलत तय करना मुश्किल हो जाता है। यह चीज़ उसके अंदर असुरक्षा की भावना भर देती है, जिससे उसका व्यक्तित्व प्रभावित होता है। इसलिए बच्चे को अपने झगड़ों से दूर ही रखें।

अच्छा होगा भोजन तो होगा आदर्श विकास : अक्सर मां-बाप की शिकायत होती है कि उनका बच्चा कुछ खाता ही नहीं। चलो मान लेते हैं कि कुछ बच्चे ऐसे होते हैं पर प्रयास तो आपको करना ही पड़ेगा। बच्चो में खाने की अच्छी आदत विकसित करना चाहते हैं, तो उनमें खाने की नकल करने की प्रवृत्ति डालें। पौष्टिक भोजन और उससे होने वाले लाभ को कहानियों के माध्यम से बताएं। खाने का प्रस्तुति बेहतर रखें। जो भी खाना हो, उनके साथ टेबल पर बैठ कर खाएं। खाने के दौरान उन्हें टीवी बिल्कुल न देखने दें। खाने के लिए उनके पीछे-पीछे भागें भी नहीं।

सिखाएं बच्चे को साफ सफाई की अच्छी बातें : सफाई की बात अत्यंत महत्वपूर्ण आदत है, जो बच्चों को स्वच्छ, निरोग और प्रसन्नचित रखती है। समय से उठना, शौचालय जाना, दांतों की सफाई करना, नित्य स्नान करना, अपने शरीर व आसपास के वातावरण को साफ रखना व्यायाम करना आदि अच्छी आदतें हैं जो बच्चों में डालनी अत्यंत आवश्यक हैं और ऐसा माहौल आपको ही तैयार करना होगा। अगर आप इन सारी आदतों पर ध्यान देंगे तो आपका बच्चा भी इसके लिए प्रेरित होगा। हर काम के लिए एक उचित दिनचर्या बनाएं और कड़ाई से उसका पालन करें। क्योंकि ज़्यादा सख्ती बच्चे को उदंड भी बना सकती है, इसलिए कभी-कभी उसको छूट देने की गुंजाइश भी रखें।

कैसा है स्कूल में आपका बच्चा : बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा की शुरूआत नर्सरी से होती है जहां वे अपने मां-बाप से दूर टीचर से संबंध बनाते हैं। टीचर के साथ उनका संबंध दोस्ताना होता है, आप बच्चों के सामने किसी शिक्षक के बारे में अपमानजनक भाषा में बात न करें। आपको यह समझना चाहिए कि शिक्षक आपके बच्चे को अच्छी बातें ही सिखाते हैं। इसलिए कभी भी शिक्षक की क्षमता पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगाना चाहिए। शिक्षक के प्रति सद्व्यवहार को विकसित करें और उनके प्रति अपनी शुभकमानाएं पेश करें। अगर बच्चे में शिक्षक के प्रति सम्मान की भावना होगी तभी वह शिक्षक की सुनेगा।

(पृष्ठ 19 का शेष)

यूरिया, नाइट्रोजन प्राप्ति का सबसे सस्ता तरीका है। ये बाज़ार में सबसे कम कीमत पर उपलब्ध है। भारत सरकार यूरिया पर सब्सिडी भी देती है। यूरिया के अंदर 46 प्रतिशत नाइट्रोजन होती है। यूरिया का इस्तेमाल बड़ी समझदारी से करना चाहिए। इसके अधिक इस्तेमाल से भूमि अम्लीय हो जाती है। डी ए पी में नाइट्रोजन व फास्फरोस मुख्य अवयव हैं। यह बुवाई से पहले इस्तेमाल किया जाता है। डी ए पी का उत्पादन हमारे देश में कम है। इसकी कमी को पूरा करने के लिए हमें यह दूसरे देशों से आयात करना पड़ता है। भारत इसे कनाडा, चीन, जॉर्डन, मोरक्को और अमेरिका से आयात करता है। एम ओ पी पोटेशियम का मुख्य स्त्रोत है। पूरे विश्व में पोटाश की कमी को पूरा करने के लिए 95 प्रतिशत एम ओ पी का इस्तेमाल किया जाता है। एम ओ पी में 50 प्रतिशत पोटेशियम व 46 प्रतिशत क्लोराइड होता है। इसकी मांग भी आयात से पूरी होती है। इसका आयात रूस, कनाडा , जर्मनी, जॉर्डन से होता है। एस एस पी एक वाणिज्यिक उर्वरक है। दूसरे फास्फरोस के उर्वरकों ने एस एस पी की जगह काफी हद तक ले ली है। एस एस पी में फास्फरोस कम होता है। 16 प्रतिशत फॉस्फेट, 11 प्रतिशत सल्फर , 16 प्रतिशत कैल्शियम व कुछ अन्य सूक्ष्म तत्व भी होते हैं। सरल उत्पादन तकनीक के कारण ये एक सस्ता रासायनिक उर्वरक है।

(पृष्ठ 18 का शेष)

तालिका 2 : हरियाणा के वातावरण के अनुसार आंवला की अनुमोदित किस्में

किस्म	फल का आकार (सैं.मी.)	पैदावार (कि.ग्रा./पौधा)	विटामिन सी (मि.ग्रा/100 ग्राम)	कुल घुलनशील तत्व (मिठास) (%)	उपयोग	अन्य विशेषता
बनारसी	50	200	417	13.2	–	–
चकइया	34	–	523	10.9	अचार बनाने के लिए	फल का रंग पकने पर हरा जैसा
हाथीझूल (फ्रांसिस)	बडा आकार	–	690	–	मुरब्बा बनाने के लिए	हरे रंग के फल, थोड़े से बीच में दबे हुए, फलों पर 6 धारियां
कृष्णा	मध्यम आकार	–	584-783	9.58	सामान्य उपयोग	6-8 धारियों वाले फल, लाल रंग के छोटे- छोटे धब्बे।
कंचन (एन. ए. 4)	छोटे फल	–	404-711	9.23	परिरक्षण हेतु	मध्यम अवधि (मध्यम नवम्बर -मध्य दिसम्बर)
नीलम (एन. ए. 7)	बडा आकार	–	624-767	9.49	सामान्य उपयोग	मध्यम अवधि (मध्यम नवम्बर -मध्य दिसम्बर)
बलवन्त (एन. ए. 10)	मध्यम आकार	–	721	–	सामान्य उपयोग	शीघ्र पकने वाली (मध्य अक्तूबर -मध्य नवम्बर)

कृषि मेला (खरीफ)-2019 : एक झलक

✍ **सूबे सिंह, अशोक कुमार एवं राजेश कुमार**[1]
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

देश में कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य यही रहा है कि कैसे ग्रामीण क्षेत्र में जीवन-यापन कर रहे लोगों का जीवन स्तर ऊंचा हो। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार अपने शोध कार्यों को किसानों के खेतों तक पहुंचाना अपनी अहम् ज़िम्मेदारी मानते हुए हर वर्ष, एक साल में दो कृषि मेले (खरीफ व रबी) आयोजित करता आ रहा है। मेलों के आयोजनों से किसानों की समस्याओं को समझकर उनका समाधान करने और भविष्य में वैज्ञानिकों को समस्यामूलक शोधकार्य करने का आधार मिलता है। कृषि मेले का यह भी उद्देश्य होता है कि किसान केवल उत्पादन बढ़ाने तक सीमित न रहकर दुनिया के दूर-दराज क्षेत्रों में हुई प्रगति की झलक का प्रत्यक्ष अवलोकन कर सकें ताकि वह खुद ऐसे मेलों से प्रेरणा लेकर अपने सीमित साधनों से इस बहुमुखी प्रगति की दौड़ में सजग रहकर प्रतिस्पर्धा में भागीदार बन सकें।

कृषि मेले एक विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर आयोजित किये जाते हैं ताकि ज़्यादा से ज़्यादा किसानों को कृषि व कृषि से सम्बंधित व्यवसायों के बारे में जानकारी मिल सके। इस बार कृषि मेले का मुख्य विषय 'फसल अवशेष प्रबंधन की नई पद्धतियां' रहा। इसका उद्घाटन माननीय कुलपति प्रोफेसर के. पी. सिंह, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार ने अपने कर कमलों से किया व किसानों से आह्वान किया कि वे अपने खेतों में फसल अवशेषों को न जलाकर उनका वैज्ञानिक तरीकों से प्रबंधन करके अपनी आय बढ़ाएं एवं प्रदूषण को कम करें। उन्होंने कहा कि आज के समय फसल अवशेष प्रबंधन की बहुत आवश्यकता है। उन्होंने यह भी कहा कि किसान भाई फसल पकने के बाद अपनी उपज तो ले लेता है पर उनके अवशेष खेत में जला देता है यह वातावरण को तो प्रदूषित करता ही है साथ ही साथ किसान के खेत की उपजाऊ ज़मीन को भी खराब कर देता है। इस समस्या के समाधान के लिए आज इस मेले का आयोजन किया जा रहा है। मैं आज इस मेले के आयोजक, डॉ. आर. एस. हुड्डा, निदेशक विस्तार शिक्षा का धन्यवाद करता हूं कि इन्होंने समय को समझते हुए इस मेले का आयोजन किया व किसानों को फसल अवशेष प्रबंधन की नई-नई पद्धतियों के बारे में जानकारी दी।

मेले के संयोजक एवं विस्तार शिक्षा निदेशक डॉ. आर. एस. हुड्डा ने किसानों से कृषि तकनीकों की व्यावहारिक जानकारी अपनाने के लिए कृषि वैज्ञानिकों से तालमेल बढ़ाने की अपील की तथा बताया कि कुलपति महोदय द्वारा विश्वविद्यालय के अन्तर्गत गुरुग्राम में कृषि व्यवसाय प्रबन्धन महाविद्यालय (College of Agri Business Management), हिसार में पं. दीन दयाल उपाध्याय जैविक खेती उत्कृष्ट केन्द (Pt. Deen Dayal Upadhyay Centre of Excellence on Organic Farming) व कृषि पर्यटन केन्द्र (Agri Tourism Centre) व कृषि व्यवसाय ऊष्मायन केन्द्र (Agri Business Incubation Centre) की स्थापना की गई। यह पहला विश्वविद्यालय है जहां भारतीय कौशल विकास परिषद् के द्वारा कौशल विकास केन्द्र स्थापित किया गया है। इस केन्द्र के तहत 19 विषयों जैसे-बेकरी एवं कन्फेक्शनरी उत्पाद, फल एवं सब्जी प्रसंस्करण, फल एवं सब्जी मूल्य संवर्धन, मछली पालन, केंचुआ खाद एवं जैविक खाद उत्पादन इत्यादि में 'करके सीखो' प्रणाली के अन्तर्गत प्रमाण पत्र पाठ्यक्रम प्रारम्भ किए गए हैं। फसल अवशेष प्रबंधन स्कीम के तहत 12 कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा करोड़ों रुपए के 111 कृषि यन्त्रों जैसे- ज़ीरो टिल बीज-सह-उर्वरक ड्रिल, रोटरी स्लेशर, रिवर्सिबल मोल्ड बोर्ड प्लो, धान चॉपर, हैप्पी सीडर व रोटरी मल्चर आदि की फसल अवशेष प्रबन्धन हेतु खरीद की गई जिनका किसान भाई ज़्यादा से ज़्यादा फायदा उठाएं।

विश्वविद्यालय परिसर में लगने वाले इस कृषि मेले में मुख्य रूप से निम्न आकर्षण के केंद्र रहे :

1. किसानों की भागीदारी; 2. कृषि औद्योगिक प्रदर्शनी; 3. विश्वविद्यालय के अनुसन्धान फार्म का भ्रमण; 4. बीज बिक्री; 5. प्रश्नोत्तरी सभा; 6. फसल प्रतियोगिताएं; 7. मिट्टी एवं पानी जांच; 8. विशेष पुरस्कार एवं 9. सांस्कृतिक कार्यक्रम, इत्यादि।

किसानों की भागीदारी : कृषि मेले में किसानों की भारी भीड़ देखने को मिली जिसमें महिला किसानों की भागीदारी भी सराहनीय रही। मेले में लगभग 51000 किसानों ने भाग लिया। किसानों ने नए उन्नत बीजों, कृषि विधियों, सिंचाई के तरीकों, कृषि मशीनरी तथा ट्रैक्टरों आदि के बारे में एवं महिला किसानों ने गृह विज्ञान सम्बंधित जानकारियां हासिल कीं। मेले में फसलों को लेकर किसानों की दिलचस्पी देखने को मिली।

कृषि औद्योगिक प्रदर्शनी : मेले में लगाई गई कृषि औद्योगिक प्रदर्शनी किसानों के लिए आकर्षण का विशेष केन्द्र रही। प्रदर्शनी में किसानों ने सरकारी व गैरसरकारी एजेंसियों द्वारा प्रदर्शित की गई कृषि प्रौद्योगिकी, मशीनों, यंत्रों आदि को देखा व उनकी जानकारी हासिल की।

विश्वविद्यालय के अनुसन्धान फार्म का भ्रमण : मेले में आए किसानों को मेले के दौरान दोनों दिन विश्वविद्यालय के अनुसन्धान फार्म का भ्रमण करवाकर उन्हें वैज्ञानिक विधि से उगाई गई फसलों के प्रदर्शन दिखाए गए तथा कृषि में प्राकृतिक संसाधन तकनीकी, जल संरक्षण, कृषि उत्पादन व गुणवत्ता बढ़ाने सम्बंधित महत्वपूर्ण जानकारियां दी गईं।

बीज बिक्री : कृषि मेले में किसानों ने करीब 890000 रुपये के उन्नत बीज, सब्जी एवं फलदार पौधों की पौध, व लगभग 60000 रुपये मूल्य की विश्वविद्यालय की पत्रिका एवं अन्य प्रकाशन खरीदे।

(शेष पृष्ठ 32 पर)

[1]डी.टी.पी. ऑपरेटर, विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

केंचुआ खाद : मृदा स्वास्थ्य एवं किसानों के लिए एक वरदान

✍ **उमा देवी, पवन कुमार एवं धीरज पंघाल**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

केंचुओं द्वारा गोबर, गली-सड़ी पत्तियां व अन्य जैविक पदार्थ इत्यादि खाने के बाद जो मल त्यागा जाता है, उसे केंचुआ खाद कहते हैं। इस खाद में सूक्ष्म कार्बनिक पदार्थ, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश के अलावा सूक्ष्म पोषक तत्व, एंजाइम एवं वृद्धि करने वाले हारमोन इत्यादि होते हैं जो फसलों के लिए उपयोगी होते हैं। मिट्टी को आवश्यक पोषक तत्त्व उपलब्ध करवाने में इस खाद की उपयोगिता को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता है। रासायनिक खाद के प्रयोग से होने वाले नुकसान को रोकने तथा जैविक खेती को बढ़ावा देने की दृष्टि से केंचुआ खाद बहुत ही महत्वपूर्ण है।

केंचुआ खाद यूनिट की स्थापना : केंचुआ खाद यूनिट छायादार स्थान पर ही बनानी चाहिए। यह यूनिट सीमेंट या लोहे की टिन को शेड या फूस की झोंपड़ी या धान की पराली या बांस की लकड़ियों या सरकंडों इत्यादि की मदद से बनाई जा सकती है। शेड की आधा से एक फुट ऊंची दीवार बनानी चाहिए और फालतू पानी को निकालने के लिए 1-2 सुराख़ छोड़ने चाहिएं। बैड की चौड़ाई तीन फुट व लम्बाई सुविधानुसार रखी जा सकती है।

केंचुआ खाद के लिए ज़रूरी सामग्री : केंचुआ खाद बनाने के लिए हमें निम्नलिखित चीज़ों की आवश्यकता होती है :

1. मिट्टी (10%): केंचुआ खाद के लिए उपयोग में आने वाली मिट्टी में जैविक अंश होने चाहिएं, इसलिए यह मिट्टी उपजाऊ खेत से लेनी चाहिए।

2. गोबर (30%): ताज़ा गोबर से निकलने वाली मिथेन गैस व गर्मी केंचुओं को नुकसान पहुंचा सकती है इसलिए केंचुआ खाद में उपयोग होने वाला गोबर 2 से 3 सप्ताह पुराना होना चाहिए।

3. कार्बनिक सामगी (60%): इसमें फसल अवशेष, खरपतवार, भूसा, पशुओं का छोड़ा हुआ चारा, घरेलू कूड़ा-कर्कट इत्यादि शामिल हैं।

सामग्री डालने की विधि : अगर बैड कच्चा हो तो सबसे नीचे भूसा या धान की पराली या कड़बी की 4 से 5 इंच मोटी परत और अगर बैड पक्का हो तो एक इंच मोटी खेत की मिट्टी की परत बिछानी चाहिए। इसके ऊपर 4 इंच गोबर की परत बिछाएं, उसके बाद एक फुट फसल अवशेष तथा उसके ऊपर 2 इंच गोबर की परत बिछाएं। हर एक परत के बाद पानी ज़रूर डालें। इस विधि द्वारा तैयार बैड पर कम से कम 500 केंचुए प्रति वर्ग मीटर या 250 केंचुए प्रति 100 किलोग्राम सामग्री के हिसाब से छोड़ने चाहिएं।

बैड प्रबंधन : सामग्री डालने के कुछ समय बाद केंचुए बैड के अंदर चले जायेंगे जिसके बाद इसे बोरी या पुलाव आदि से ढक कर पानी डालना चाहिए। इसके बाद आवश्यकतानुसार फव्वारे से गर्मी के मौसम में प्रतिदिन 2-3 बार, सर्दियों में प्रतिदिन एक बार व बारिश के मौसम में आवश्यकतानुसार पानी का छिड़काव करते रहें। पानी की अधिकता व कमी दोनों ही परिस्थितियां केंचुओं के लिए घातक होती हैं।

केंचुआ खाद निकालना : केंचुआ खाद 60 से 70 दिन में बनकर तैयार हो जाती है। जब बैड की ऊपरी सतह पर चाय की पत्ती जैसी दानेदार खाद नज़र आने लगे तब पानी डालना बंद कर देना चाहिए ताकि केंचुए नीचे चले जायें। इसके बाद ऊपर से सूखी खाद हाथ से या खुरपी से खुरचकर हर रोज़ इकठ्ठा करते रहें। इस प्रकार सारे केंचुए सबसे नीचे मिट्टी वाली परत में चले जायेंगे। इसके ऊपर दोबारा सारी सामग्री डालकर पहले वाली प्रक्रिया दोहराएं। केंचुआ खाद अगर बहुत ज़्यादा गीली हो तो धूप में सुखा लें लेकिन पूरी तरह सूखने न दें।

केंचुआ खाद का महत्व

1. इस खाद में देसी खाद की तुलना में मुख्य पोषक तत्व अधिक मात्रा में होते हैं।

खाद	नाइट्रोजन (%)	फॉस्फोरस (%)	पोटाश (%)
देसी खाद	0.5 से 1.5	0.5 से 1.0	0.5 से 2.0
केंचुआ खाद	1.0 से 2.5	0.5 से 1.5	1.5 से 3.0

2. इस खाद को पर्यावरण में फैली सभी प्रकार की गंदगी, कूड़ा करकट, सब्जियों व फसल अवशेषों का प्रयोग करके बनाया जाता है व जिन फसल अवशेषों को बड़े स्तर पर जलाया जाता है उनका प्रयोग केंचुआ खाद बनाने में करके वातावरण को स्वच्छ व प्रदूषण मुक्त रखा जा सकता है।

3. एक ओर शहरीकरण, औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण की वजह से कृषि योग्य भूमि व प्रति व्यक्ति औसत जोत घट रही है वहीं दूसरी ओर लगातार बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए बढ़ती हुई खाद्यान की मांग को पूरा करने के लिए उत्पादन बढाने हेतु रासायनिक खादों का प्रयोग ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ रहा है। इन रासायनिक उर्वरकों के माध्यम से एक या दो आवश्यक पोषक तत्वों का लगातार दोहन होने की वजह से ज़मीन में इनकी कमी हो रही है। केंचुआ खाद इन तत्वों की पूर्ति के साथ-साथ जल धारण क्षमता व भौतिक गुणों में वृद्धि लाती है। यह भूमि के पी एच को भी संतुलित रखने में सहायक होती है।

4. इसे किसान के मित्र के रूप में जाना जाता है। सामान्यत: केंचुए की महत्ता मिट्टी को खाकर उलट-पुलट कर देने के रूप में जानी जाती है, जिससे कृषि भूमि की उर्वरकता बनी रहती है। केंचुए भूमि में उपलब्ध फसल अवशेषों को भूमि के अंदर तक ले जाते हैं और सुरंग में इन अवशेषों को खाकर खाद के रूप में परिवर्तित कर देते हैं तथा अपने मल को रात के समय भू-सतह पर छोड़ देते हैं, जिससे मिट्टी का वायु संचार बढ़ता है। विशेषज्ञों के अनुसार केंचुए 2 से 250 टन मिट्टी प्रतिवर्ष उलट-पलट कर देते हैं जिसके फलस्वरूप भूमि की 1 से 5 मि.मी. सतह प्रतिवर्ष बढ़ जाती है।

5. यह रोग व कीटों से बचाव के लिए पौधों की प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाती है।

6. उपभोक्ताओं को पौष्टिक भोजन की प्राप्ति होती है।

7. केंचुआ खाद के उत्पादन से ग्रामीणों के लिए रोज़गार की संभावनाएं उपलब्ध हो सकेंगी।

बुजुर्गों में अल्ज़ाइमर्स – भूलने की बीमारी

✍ **रेनू बाला, पूनम रानी एवं संगीता चहल**
मानव विकास और पारिवारिक अध्ययन विभाग,
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आप अपना चश्मा रखकर भूल सकते हैं, किसी का नाम भूल सकते हैं लेकिन अगर कहीं जाकर आप ये भूल जाएं कि आप यहां क्यों आए हैं, तो सचेत हो जाएं। खासकर अगर आपकी उम्र 50 से कम है तो ये खतरे की घंटी है। अल्ज़ाइमर ज़्यादातर 65 वर्ष की उम्र के आसपास होने वाली दिमाग से जुड़ी बीमारी है, जिसमें दिमाग की कोशिकाएं नष्ट होने लगती हैं। ये बीमारी शुरुआत में हल्के-फुल्के भूलने की आदत से शुरू होती है लेकिन धीरे-धीरे खतरनाक होती जाती है, जिससे मरीज़ की स्मरण शक्ति और निर्णय लेने की शक्ति भी धीरे-धीरे कमज़ोर होती जाती है। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती रहती है, वैसे-वैसे यह बीमारी भी बढ़ती रहती है।

अल्ज़ाइमर के मरीज़ के लिए शुरुआती दौर में तुरंत घटी घटनाओं को भी याद करना मुश्किल हो जाता है, साथ ही पुरानी यादें भी धीरे-धीरे खत्म हो जाती हैं। इसकी आखिरी स्टेज डिमेंशिया काफी खतरनाक होती है। डिमेंशिया से ग्रस्त व्यक्ति को किसी परिचित स्थान तक पहुंचने में परेशानी हो सकती है, अथवा वह इस बात को लेकर व्याकुल महसूस कर सकते हैं कि वह कहां है, या हो सकता है कि वह ऐसा सोचें कि वह अपने जीवन के किसी पुराने समय मे हैं और व्यक्ति को कार चलाते हुए दूरी या दिशा के बारे में निर्णय लेने में कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है।

ज़्यादातर लोगों को ऐसा लगता है कि अल्ज़ाइमर्स यानी भूलने की बीमारी सिर्फ बुजुर्गों को होती है। लेकिन ऐसा नहीं है, बच्चों और किशोरों को होने वाली बीमारी निएमन-पिक डिज़ीज़ टाइप-सी का निक-नेम 'चाइल्डहुड अल्ज़ाइमर्स' है। यह एक लिपिड स्टोरेज डिज़ीज़ है, एक तरह का मेटाबॉलिक डिसऑर्डर है जिसमें अतिरिक्त कलेस्ट्रॉल शरीर की कोशिकाओं और टिशूज़ में जमा हो जाता है। यह मस्तिष्क की कोशिकाओं और टिशूज़, पेरिफेरल नर्वस सिस्टम और बोन मैरो को धीरे-धीरे स्थायी रूप से डैमेज कर देता है। इसमें मरीज़ को नियमित रूप से दौरे पड़ने, बोलने, खाने व कुछ निगलने में भी परेशानी महसूस होती है। यह बीमारी डेढ़ लाख में से किसी 1 को होती है, और आमतौर पर यह बेहद असामान्य होती है, लेकिन जिसको भी होती है उस मरीज़ और उसके परिवार के सदस्यों को बहुत ज़्यादा परेशानी में डाल देती है। इससे प्रभावित बच्चे को ऊपर-नीचे देखने के लिए आंखों को घुमाने में भी तकलीफ होती है और वह पलकों को अधिक झपका सकता है या गर्दन को झटक सकता है। इस अनोखी बीमारी में जन्म के समय यह पता लगा पाना लगभग नामुमकिन होता है कि उसमें कोई समस्या है। इस बीमारी से पीड़ित बच्चे तब तक पूरी तरह से सामान्य दिखाई देते हैं जब तक कि वे स्कूल जाने कि उम्र में नहीं पहुंच जाते। स्कूल जाने के बाद उन्हें सीखने में समस्या होती है।

अल्ज़ाइमर के लक्षण : अल्ज़ाइमर में याददाश्त कमज़ोर होने के साथ-साथ कुछ और भी लक्षण दिखाई देने लगते हैं, जैसे : तुरंत घटी घटनाओं को भी याद न रख पाना; खुद ही चीज़ों को रखकर भूलना; एक ही बात को बार-बार दोहराना; खुद से बात करना; जानी पहचानी जगहों या अपने ही घर में खो जाना; बात करते वक्त सामने वाले व्यक्ति को घूरना; देर रात को निकल कर घूमना; ध्यान लगाने में कमी होना; उदासीनता और अवसाद (डिप्रेशन); रोज़ाना के आसान कामों को करने में भी दिक्कत महसूस होना; काम न करने पर भी ऐसा लगना कि वह काम हमने कर दिया है; छोटी-छोटी बातों पर चौंक जाना, आदि।

बढ़ती उम्र के लोगों की समस्या को यह कह कर टाल देते हैं कि उम्र बढ़ेगी तो यह सब तो होगा ही, कुछ तो हंस कर मज़ाक भी उड़ा देते हैं या अगर व्यक्तित्व में बदलाव है तो उसे घर का अंदरूनी मामला कह देते हैं या मानसिक रोग का निदान दे देते हैं। इस गंभीर बीमारी से बचने के लिए कोई दवा टीका नहीं है। अगर आपको इससे बचना है तो ज़रूरी है कि आप एक संतुलित जीवनशैली अपनाएं।

बचाव : परिवार में यदि किसी को अल्ज़ाइमर है, तो मरीज़ को खूब प्यार और देखभाल की ज़रूरत है और व्यक्ति की सहायता का काम समय के साथ बढ़ता जाता है। देखभाल कई साल करनी होती है, और इस के लिए परिवार को सही जानकारी, सलाह और सेवाओं की ज़रूरत होती है जैसे कि घर और वातावरण में बदलाव, और देखभाल और बातचीत के बेहतर तरीके इस्तेमाल करना। यह माना जाता है कि स्वस्थ जीवन शैली से, व्यायाम से, सक्रिय जीवन बिताने से कुछ बचाव होगा। मरीज़ को बौद्धिक गतिविधियों में शामिल करना जैसे नई चीज़ें सीखते रहें शारीरिक रूप से सक्रिय रहें। दिमागी खेल (शतरंज, कैरम आदि) या म्यूज़िक में व्यस्त रखना चाहिए। मेल-जोल और दोस्ती बनाए रखें, सामाजिक गतिविधियों में भाग लें। कुछ स्वास्थ्य समस्याओं से खास तौर से बचना, जैसे कि मधुमेह, उच्च रक्तचाप, उच्च कोलेस्ट्रोल, और हृदय रोग। इन से बचने की कोशिश करें, और यदि यह हों, तो इन्हें दवा और जीवन शैली के बदलाव से नियंत्रण में रखें। तंबाकू सेवन बंद करना, मद्यपान सीमित रखना। शारीरिक रूप से सक्रिय रहें, रोज़ाना व्यायाम करने की आदत डालें जैसे कि पैदल चलना, तैरना और दौड़ना कर सकते हैं। ऐसे मरीज़ों के आस पास दवाई न रखें। न ही इन्हे किचन में कोई काम न करने दें। वज़न को नियंत्रित रखें, और पौष्टिक भोजन लें, अच्छी मात्रा में ताज़े फल और सब्जी खाएं, मोटापे से बचें, शरीर में पौष्टिक पदार्थों की कमी न होने दें (जैसे कि विटामिन बी-12)। सिर को चोट से बचाए रखें (सिर पर गंभीर चोट से भी भूलने की बीमारी हो सकती है)

अगर आपके घर में किसी बुजुर्ग इंसान में अल्ज़ाइमर के कोई भी लक्षण नज़र आते हैं तो कृपया इसे नज़रअंदाज़ न करें। उन पर गुस्सा करने या उन्हें कोई दोष देने की बजाय उन्हें खूब प्यार और देखभाल दें। क्योंकि समय निकलने के साथ-साथ यह बीमारी घातक रूप लेती रहती है और अंत मे जान भी जा सकती है। इस लेख को पढ़ने के बाद ज़रूर सांझा करें ताकि अधिकतम व्यक्तियों को इसके बारे में पता चले और उनका मनोवैज्ञानिक बीमारियों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण बदले।

मानसिक तनाव का स्वास्थ्य पर असर

✍ **पूनम रानी, रेनू बाला एवं बिमला ढांडा**
मानव विकास और पारिवारिक अध्ययन विभाग,
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आज हमारे देश में हर कोई किसी न किसी तरीके से तनाव का शिकार है। जिसका सीधा असर उनके स्वास्थ्य पर पड़ता दिखाई दे रहा है। रोज़ाना की भागदौड़ भरी जिंदगी, अपने लिए टाईम न निकाल पाना ही इसका सबसे बड़ा कारण है। यह एक ऐसी समस्या है जो हर किसी को हो सकती है। तनाव हमारे जीवन का एक हिस्सा है। इसका मतलब है कि आप जब भी किसी काम को करना चाहते हैं और बार-बार आपका उसके बारे में सोचना, एक ऐसी चिंता को पैदा करता है जो आपके दिमाग पर हावी हो जाती है। मानसिक तनाव उन बीमारियों में से है जो कई और बीमारियों को जन्म देती है। हम सभी मानसिक तनाव के दुष्प्रभाव से तो परिचित हैं पर मानसिक तनाव के साथ कई शारीरिक लक्षण भी जुड़े होते हैं। दरअसल, तनाव से पीड़ित कई लोग तेज़ दर्द और अन्य कई शारीरिक परेशानियों से चिंतित रहते हैं।

तनाव के कारण स्वास्थ्य समस्या

नीचे कुछ स्वास्थ्य समस्याएं दी गई हैं जो तनाव के कारण होती हैं:

सिर का दर्द : तनावग्रस्त लोगों को सिरदर्द रहना सामान्य लक्षण है। यदि आप पहले से माइग्रेन से ग्रस्त हैं तो तनाव के कारण इसके लक्षण और भी बुरे हो सकते हैं अर्थात् तनावग्रस्त रहना सिरदर्द के लक्षणों को भी ज़्यादा बढ़ा देता है।

कमर का दर्द : मानसिक तनाव के इस असर के बारे में कम सोचा जाता है, लेकिन मानसिक तनाव आपको कमर और पीठ दर्द भी दे सकता है।

जोड़ों का दर्द : यदि आपके जोड़ों और मांसपेशियों में लगातार दर्द रहता है और ईलाज कराने के बाद भी अगर आपको परिणाम न मिल रहा हो, तो यह भी संभव है कि आपके दर्द का कारण मानसिक तनाव ही हो।

सीने में दर्द : कभी भी सीने में दर्द की शिकायत होने पर जल्द से जल्द किसी कुशल चिकित्सक से संपर्क करना चाहिये। यह दिल, पेट, फेफड़े या किसी अन्य समस्या का संकेत भी हो सकता है और कभी-कभी मानसिक तनाव भी सीने में दर्द व असहजता का कारण हो सकता है।

पाचन संबंधी समस्या : मानसिक तनाव का दुष्प्रभाव आपकी पाचन क्रिया पर भी पड़ सकता है। इससे आपको जी मिचलाना या उबकाई आने की भी शिकायत हो सकती है। इसके साथ ही आपको डायरिया और कब्ज़ की भी शिकायत हो सकती है।

थकान : पूरी नींद लेने के बाद भी अगर आपको थकान और आलस महसूस हो या सुबह बिस्तर से उठने में असहजता होती है तो यह मानसिक तनाव के अधिक प्रभाव के कारण भी हो सकता है।

अनिद्रा : मानसिक तनाव के शिकार लोग ज़्यादातर अच्छी नींद नहीं ले पाते हैं। वे रात को करवट बदलते रहते हैं और सुबह भी बहुत जल्दी उठते हैं। तनाव में रहने के कारण वे दिन में भी थके-थके से ही रहते हैं।

भूख या वज़न में परिवर्तन : मानसिक तनाव से पीड़ित कुछ लोगों के वज़न और भूख में परिवर्तन होने लगता है। उनकी भूख और शरीर का वज़न कम हो जाता है। कुछ लोगों को कोई खास आहार अधिक पसंदीदा लगने लगता है। ऐसे लोग कार्बोहाइड्रेट और मीठे का सेवन अधिक करते हैं, जिससे उनके शरीर का भार बढ़ जाता है।

चक्कर आना और सिर घूमना : हालांकि यह लक्षण कई स्वास्थ्य समस्याओं के कारण हो सकता है, इसलिए अधिकतर तनावग्रस्तग्रस्त व्यक्तियों को कोई सहायता नहीं मिल पाती। दरअसल वे समझ ही नहीं पाते कि तनावग्रस्तता के कारण शरीर पर कौन से प्रभाव पड़ते हैं। कई बार डॉक्टर भी इन लक्षणों की पहचान नहीं कर पाते।

ऐसे कम करें तनाव

समय पर काम पूरा करें : कामकाजी लोगों के लिए तनाव का एक सबसे बड़ा कारण है अधूरा काम करना, यदि किसी कारण से आपका समय पर काम पूरा नहीं हो पाता है तो इससे तनाव होता है। इस तरह के तनाव से बचने का सबसे आसान तरीका यही है कि आप अपना काम समय पर पूरा करें।

मोबाइल से दूरी : वर्तमान समय में मोबाइल और इंटरनेट से दूर रहना शायद संभव नहीं है। लेकिन इससे कुछ हद तक बचा जा सकता है। क्योंकि तनाव के लिए सबसे अधिक ज़िम्मेदार कारणों में यह एक मुख्य कारण है। इसलिए कोशिश करें कि कम से कम समय ही मोबाइल पर व्यतीत करें।

योग करें : तनाव से बचने के लिए योग भी अच्छा व्यायाम है। आप इसे अपने जीवन में अपना सकते हैं, योग से तनाव को कम कर सकते हैं।

नियमित दिनचर्या : नियमित दिनचर्या अपनाएं। सुबह उठने का और रात को सोने का समय निर्धारित करें और पूरी नींद लें। अपने काम को समयबद्ध और तरीके से करें।

व्यायाम : मानसिक तनाव से बचने के लिए नियमित रुप से व्यायाम अति आवश्यक है। स्वस्थ मस्तिष्क के लिए व्यायाम करना बहुत ज़रूरी है। इससे आप हमेशा स्वस्थ रहेंगे और शरीर में रक्तसंचार सुचारू होगा।

स्वस्थ खानपान : हमेशा अपने खानपान का ध्यान रखना बहुत ज़रूरी है। ऐसे खाद्य पदार्थों का सेवन न करें, जिससे आपका स्वास्थ्य बिगड़ जाए। हरी सब्जियाँ, रेशेदार भोजन, अधिक पानी पीना, घर का खाना खाना, बासी खाना न खाना आपको तनावरहित रहने में मदद करते हैं।

खुद को समय दें : ध्यान रखें अगर आपको अपना साथ ही अच्छा नहीं लगता है तो लोगों को भी आपका साथ पसंद आने की कम ही सम्भावना है। ऐसे में ज़रूरी है आप अपनी ज़रूरतों और ज़िन्दगी के लक्ष्य के लिए सजग हों और आपको पता होना चाहिए आपको क्या चाहिए। इसके लिए आप शाम में दिन खत्म होने के साथ ही 20-25 मिनट शांत बैठें और गहरी सांसें लेते हुए विचार करें कि आप क्या चाहते हैं और क्या माध्यम है उसे पाने का। इससे आपको तनाव कम करने में मदद मिलेगी।

(शेष पृष्ठ 32 पर)

Healthy Seed Production – Free From Pathogens

✍ Sunil Kumar[1], Manjeet Singh[2] and S. S. Jakhar
Department of Seed Science & Technology
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

The aim of disease management is to prevent economic losses and to increase the value of seed crop. Control of seed-borne pathogens and diseases is attained through integrated disease management system directed against the pathogen, in favour of the host and for modification of the environment.

1. Selection of seed production areas

The first opportunity for management of seed-borne diseases is selection of areas where the pathogens of major concern of seed crops are unable to establish or maintain themselves at critical levels during periods of seed development. Areas with low rainfall and low relative humidity are generally favourable for production of high quality seed with low inoculum level. The incidence of smut and ergot diseases of pearl millet and Karnal bunt of wheat can be reduced to the great extent by growing these crops in dry areas. Infection of cotton seed by *Alternaria alternata, Fusarium oxysporum* and other fungi is reduced by growing cotton in low rainfall coastal plains in Georgia, U.S.A.

Selection of site/field: Within small areas, selection of plant field is important. Many seed-borne fungi can be avoided by proper selection of field. The field infested with pathogens like wilt of arhar, smut and ergot of pearl millet and ear cockle of wheat should not be selected for seed production.

In Denmark, crucifer seed crops are grown on certain small islands and coastal areas, where ample ventilation provided by wind reduces the development of *A. brassicicola.* Karnal bunt disease free seed can be produced in the fields of dry districts of Haryana.

2. Eradicatiion or reduction of soil borne pathogens

It can be achieved through the following practices :

(i) Crop rotation : Crop rotation is essential to avoid soil-borne inoculum because many seed-borne fungi survive between crops, on or in crop debris for a limited number of years.

Example **:** Three years crop rotation against *Phomopsis vexans* in eggplant (USA); 3-4 years crop rotation Karnal bunt of wheat and three years for downy mildew of pearl millet.

[1]Research Scholar, [2]Sr. Research Fellow
Central Insecticide Board & Registration Committee, Directorate of Plant Protection, Quarantine & Storage, Faridabad

(ii) Fallow : Fallow helps in reduction of inoculum of soil invaders in absence of host. In India, summer fallow decreases Fusarium wilt of cumin.

(iii) Burning : Now a day's cereal crops are generally harvested by combine. By burning the straw and stubble of crops, the inoculum of the fungi can be destroyed.

(iv) Water management : Irrigation time and amount of water influence disease development.

In Florida soils, sclerotia of *Sclerotinia sclerotiorum* in rice can be destroyed by flooding continuously or at 3 days intervals for a period of 3-6 weeks. The incidence of covered smut of barley and millet smut decreases to a lowest level, if flooding of soil is followed by broadcasting of the seed one hour later.

3. Modification of cultural practices

(i) Preparation of the seed bed : Preparation of seed bed plays a vital role in controlling diseases of various crops. Seed should be sown in well airated soil not in packed soil. Packed soil reduces the emergence of seedlings/plants. In barley crops, packed soil causes a significant reduction in emergence of seedlings and an increase in the amount of blight and stunting produced by *Drechslera sorokiniana*.

(ii) Date of sowing : The selection of the sowing date depends upon the prevailing temperature and humidity requirements of the host and parasite. In Madhya Pradesh, soybean seed quality in some cultivars is improved by planting the crop from June 1 to September 2. In Haryana incidence of downy mildew and ergot of pearl millet is negligible or less if crop is sown in the end of June or Ist week of July. Disease severity of smut can be reduced by sowing the crop in the last week of July. Similarly, less disease severity of Stemphylium blight of onion was observed by sowing the crop on 30th October as compared to 20th September. In cotton crop, low seedling mortality (7.77%) caused by root rot was observed in early sowing (last week of April) as compared to normal (11.26%) in mid May and late sown (9.63%) in first week of June.

(iii) Depth of sowing : Depth of sowing influences germination of seedling and transmission of disease. Shallow sowing gives rapidly growing vigorous plants and susceptible phase is shortened. Heavy soils require shallow sowing. Shallow sowing usually decrease the incidence of loose smut. (*U. avenae*) in oats and covered smut (*U. hordei*) of barley.

(iv) Rate of seedling : The seedling rate may be cardinal factor, where it adversely affects the plant growth and favours development and spread of the pathogen in the field which ultimately can result in higher disease incidence and seed infection. In flax crop, damping off caused by

Colletotrichum lini is increased by thick sowing.

(v) Proper dose of fertilizers : Adequate and balanced dose of fertilizers is important in reduction of seed infection, improving the seed quality and maximizing yield. Plants are more susceptible to diseases in soils with excessive or deficient nutrients than those grown in soil with well-balanced fertility. Excessive application of nitrogenous fertilizer increases the susceptibility of rice plants to Pyricularia blast (*P. oryzae*). Cotton wilt, *F. oxysporum* f. sp. *vasinfectum* is known often to be more serious in potassium deficient soils.

(vi) Selection of disease resistant/tolerant varieties : The use of disease resistant or tolerant cultivars is the most economical and efficient way of controlling diseases. However, resistance to a pathogen may not be available in all crops. If resistance is not available, cultivars that escape infection should be considered. In Denmark, early maturing cultivars of cauliflower escape from attack of Alternaria blight *(A. brassicicola)*, while late cultivars often are severely attacked because of prevailing humidity.

5. Reduction or elimination of seed-borne inoculum

(i) Certification and field inspection of seed crops: Certification ensures that seed lots meet certain quality standards and that the history of each lot. Through certification, certain seed-borne pathogens have been controlled and spread to new areas, has been checked. Loose smut of wheat and barley is controlled through seed certification programme in India and Sweden. Seed crops are periodically inspected for the presence of diseases and diseased plants are removed. Field inspections also indicate the initiation of chemical spray programme.

Insufficient phosphorus or potash in soybean can increase losses due to charcoal rot, pod and stem blight and several root and stem decay pathogen.

(ii) Biological control : The pearl millet smut infection occurs through young emerging stigma. The pollination plays a vital role in reducing smut. The priority of pollen or sporidium entry determined that either grain setting or heavy smut infection. The pollen being natural to plant is preferred and consequently there is little scope for sporidium to invade and create infection in inflorescences. Similarly, infection of ergot in this crop can be reduced through pollen management.

(iii) Seed treatment : Seed treatment is usually given as a precautionary measure in seed production. The main aim of seed treatment is to control unnoticed infections or contamination, particularly in breeder and foundation seed, to keep the inoculum to lowest level or zero. Seed treatment of basic seed is less expensive, less hazardous, more effective and causes less pollution as compared to bigger quantities of seed in subsequent generations. Raxil, vitavax and bavistin seed treatment gives 98-100 % disease control for loose smut of wheat and barley. Seed treatment with Dithane M-45 gives complete control of brown spot and stack burn of rice. Carbendazim (Bavistin) and carboxin (Vitavax) gave between 72-76% disease control of root rot of cotton.

(iv) Isolation distance : Proper isolation distance between seed production plots and commercial plots should be maintained for production of disease free seeds. It varies from region to region depending upon weather conditions. In Germany, minimum isolation distance for wheat and barley seed crop against loose smut is 50 m whereas, in Holland, it is 100 m and in India 150 m.

(v) Eradication of other hosts : Many diseases perpetuate on weed hosts or wild plants in the absence of the main cultivated host. Eradication of such hosts from the field or locality is helpful in preventing perpetuation and spread of diseases. In India, eradication of collateral hosts such as, *Panicum antidotale, Cenchrus ciliaris and Seteria verticillata* around pearl millet crop is recommended for reducing the incidence of ergot.

6. Chemical protection of seed crops

Chemical protection is inseparable from integrated control planning against seed-borne diseases unless true resistance in the crop is assured. The aim of the use of chemical in plant disease control is to create a toxic barrier between the host surface or tissues and the pathogen, present at a particular site on the host.

For effective spray, selection of fungicides, time of spray and weather conditions are important. Spraying rice crop with the fungicides like Kitazin, Zineb and Mancozeb reduces seed infection of *Alternaria padwickii*, *Curvularia lunata, Drechslera oryzae, Phoma* spp. and *Sclerotium* spp. Application of chlorothalonil (1.5 kg/ha), carboxin (2.5 kg/ha) reduce *A. padwickii* and *D. oryzae*, when applied before dough stage in rice crop. Foliar spray of copper oxychloride in maize reduces seed borne infection of *Fusarium moniliforme* and *Curvularia pallescens*. Three sprays of iprodione (50% a.i.) at 0.5 to 1 kg a.i./ha on cabbage (*Brassica oleracea*) seed crops at 3 week intervals from the young green pod stage until cutting, control pod and seed infection and seed quality is improved. Stemphylium blight of onion was controlled by spraying dithane M45 (0.2%) effectively when 6 sprays were given starting from 20th October to 10th May on seed crop.



Microbes as Biocontrol Agent

✍ Jagdish Parshad, Rajesh Gera and Sushil Kumar Singh[1]
Department of Microbiology
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

The complete outlook of agriculture has changed over the years with a massive utilization of agro-chemicals to enhance crop production. These agro-chemicals are intrinsically toxic for several biological targets, deliberately spread in to the environment and their toxicity has limited species selectivity. So, instead of trying to eradicate pests and pathogens of plants through chemicals, which also act toxic and biocide, it is better to use biological agents for controlling them. The way by which we can adopt the natural method of pest and pathogen control involving use of viruses, bacteria and other insects are known as biological control or biocontrol. The most commonly used biocontrol agents includes bioinsecticides, bioherbicides, biofungicides and few plant products. Such examples are incorporation of chitinases, lectinases, *Bt* gene and protease inhibitors into plant genomes so that transgenic plant synthesizes its own substance that destroys the targeted pathogen and pests. There are some examples such as, dragonflies prey upon mosquitoes, while lady bird beetle feeds on aphids. *Beauveria bassiana* is effective against spider mites and is compatible with the use of predators. In a similar way, Biopesticides are those biological agents that are used for control of weeds, insect pathogens, viruses, bacteria, protozoa, fungi and mites, etc. *Bacillus thuringiensis* can be introduced in order to control butterfly caterpillars. These are available in sachets which are mixed with water and sprayed on vulnerable plants such as, *brassica* and fruit trees, when these are eaten by insect larvae, the toxin is released in the gut of the larvae and the larvae get killed. The bacterial disease will kill the caterpillars, but leave other insects unharmed. Now a days, the scientists have introduced *Bacillus thuringiensis* toxin genes by method of genetic engineering into plants. Such plants are resistant to attack by insect pests. The fungus has also been developed for control of locust and grasshopper pests. Microbial antagonists, including bacteria ,single celled eukaryotic fungi such as, yeast, are also used as control agents of post-harvest diseases, mainly against *Botrytis* and *Penicillium* in vegetables and fruits. *Trichoderma* species are free living fungi that are very common in the root ecosystems and a biological control being developed for use in the treatment of plant diseases. They are effective agents for several plant pathogens. *Baculoviruses* are pathogens that attack insects and other arthropods. The majority of *baculoviruses* used as biological control agents are in the genus Nucleo polyhedro viruses.

The biocontrol agents have no negative impact on plants, mammals, birds or even on target insects. This is especially desirable when beneficial insects are being conserved to aid in overall integrated pest management programme. It is estimated that despite our best efforts and use of chemical pesticides, 30% of the produce is lost to pathogen and pests due to reason that the latter continues to develop resitance against them. Chemical pesticides kill even usefull organisms, harm human beings and animals, pollute soil ,water, fruits, vegetables and crop plants.It is better to use biological agents for controlling pests and pathogens.Here pests and pathogens are not eradicated but kept at manageable level by a system of checks and balances as operating in ecosystem. The eradication of pests is undesirable because without them the beneficial predatory and parasite organisms, which depend upon them for food, would also be annihilated .

Biopesticides are being used on a commercial scale. Most important example is the soil bacterium, *Bacillus thuringiensis (Bt),* as the spores of this bacterium have insecticidal cry protein which kills larvae of certain insects. The commercial preparations of *Bacillus thuringiensis (Bt)* contain a mixture of spores, cry protein and inert carrier. These information will give us new insights into the ecological interactions of pathogens or pests and biocntrol and lead to new possibilities for improving biopesticide efficacy. The increasing interest in biocontrol is based on the advantages associated with such products which are eco-friendly, effective only in small doses and decomposes quickly, cost effective and designed to affect only target organisms and even used as a component of Integrated Pest Management programmes.



[1]Department of Agronomy, CCSHAU, Hisar

Current Options for Managing Nematode Pest of Crops in Haryana

✍ **Vinod Kumar, Anil Kumar and K. K. Verma**
Department of Nematology
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Plant parasitic nematodes (PPNs), the hidden enemies of crops are one of the many groups of harmful organism which depend on plants for their survival. Nematodes cause damage to almost all crops, however, due to their subterranean habit, microscopic size (from 0.3 to 10 mm length), they are invisible to the naked eye. At least 2,500 species of PPNs have been described, characterized by the presence of a stylet, which is used for penetration of host plant tissue. The PPNs are quite destructive in nature and cause both qualitative (size of the fruit is reduced) and quantitative losses to the crops. PPNs not only cause damage individually but form disease-complexes with other micro-organism and increased the crop loss. Overall an average yield loss in Haryana was estimated to 20-25 per cent. In the recent surveys, it has been observed that more than 50% of the polyhouses of Haryana are infested with root-knot nematodes.

The changes in agricultural situations have tremendous effects on the emergence of new nematode problems in Haryana. Damage is more in vegetable and horticultural crops as compared to the cereals' crops. Symptoms produced by nematodes closely resemble to that of other pathogens and abiotic diseases such as, deficiency of water and nutrients. The major nematode problems, crops grown under Haryana conditions, are described as follows :

Major nematode problems encountered

Molya disease in wheat and barley, root-knot nematode in vegetables (tomato, brinjal and okra), pulses (mungbean and chickpea) and fruits (grapevine, peach, papaya and guava), citrus nematode in citrus, rice root nematode in rice and pigeonpea cyst nematode in pigeonpea are major nematode problems.

Rice root-knot nematode, *Meloidogyne graminicola* : It was first reported in Haryana in 1993. Its occurrence is noticed in Kaithal (Kaul), Karnal, Kurukshetra, Sonepat, Jhajjar,Rewari, Bhiwani, Sirsa, Fatehabad and Hisar districts. It causes 10-80% yield loss, particularly in Sirsa, Bhiwani and Rewari districts which are having light-textured soil and non-traditional rice growing areas.

Rotylenchulus reniformis : occurrence has been reported on cowpea.

Pratylenchus spp. : occurrence is reported on mentha, citrus and guava.

Ectoparasites : *Hoplolaimus, Tylenchorhynchus, Helicotylenchus* spp. - occurrence reported on various other crops.

Mushroom nematode (*Aphelenchoides* spp.) in mushroom houses.

Reason for increasing nematode pest of crops in Haryana

Nematode management here must be considered primarily as exclusion or avoidance. Once nematodes are introduced it is difficult to manage them.

Continuous growing of same crop increases the problem of soil borne pest and diseases including PPNs.

Lack of nematode control interventions and most importantly, lack of technical knowledge and advice by the vegetable growing farmers.

Symptoms

General above ground symptoms of nematodes damage are-stunted plant growth in patches, yellowing of foliage, wilting, poor tillering in field/annual crops; and dieback, defoliation type of symptoms in perennial crops, most of them resembling nutrient deficiency symptoms.

The below-ground symptoms include galls or knots on the roots of crops. These galls vary in size from pin-head to large size which in case of heavy infection may coalesce to form large secondary galls. Gall shape and size depend on *Meloidogyne* spp. and host crop, sometimes many galls and produce compound gall.

Source of nematode infection

Infested soil Water Seed

Infected planting material

Source of nematode spread

Implements used in polyhouses

Footwear of workers Agricultural machinery

Technology developed/recommended for specific nematode problems

For the management of nematode problems, preventive measures can be taken up to keep the population of PPNs below economic threshold level. With the increasing concern on environment, various alternative pest control methods like cultural, physical and biological control methods and botanicals are being tried to reduce the nematode damage of crops. However, judicious use of chemical nematicides could be applied for protection of many crops. Therefore, current options for nematode management are cultural practices, physical methods, biointensive nematode suppression, botanicals and sensible use of chemical nematicides.

In rice, for the control of rice root-nematode (*Hirschmanniella oryzae*), use of carbofuran (Furadan 3G) @ 33Kg/ha at nursery sowing.

Two-three deep summer ploughings of the nematode infested field at 10-15 days interval during May-June, helps in controlling root-knot nematodes in vegetable crops and *Heterodera avenae* in wheat and barley.

In vegetable crops, application of carbofuran @ 7 g/m^2 in nursery beds at sowing time.

Growing of root-knot nematode resistant tomato variety, Hisar Lalit and SL 120.

In fruits, use of carbofuran @ 13 g/m^2 against citrus nematode (*Tylenchulus semipenetrans*) in citrus in 9 m^2 area around tree trunk before flowering followed by flood irrigation.

Application of carbofuran @ 7 g/m^2+1 kg neem cake/tree in 9 m^2 area around tree trunk before flowering for the control of citrus nematode in citrus.

Use of carbofuran @ 13 g/m^2 against *Meloidogyne javanica* in grapevine in 9 m^2 area around vine trunk three weeks after pruning followed by flood irrigation.

Application of carbofuran @ 7 g/m^2 in combination with garlic (*Allium sativum*) as an intercrop between vine rows for the control of *Meloidogynejavanica* in grapevine.

In wheat, use of Bioteeka (*Azotobactor chroococcum*, strain HT-54) as seed treatment.

In cotton, seed treatment with *Gluconacetobactor diazotrophicus* strain 35-47 (Biotica) @ 50 ml per 5 kg seed for the control of *Meloidogyne incognita*. Dry in shade.

Crop rotation with non-host crops like gram, mustard, use of carbofuran @ 1 kg a.i./ha at sowing time against cereal cyst nematode was found effective.

In button mushroom, for the control of *Aphelenchoide* spp., apply 4% (w/v) Neem Seed Kernel Extract (NSKE) at spawning @ 7.5 litre per q compost as prophylactic measure.

In bottlegourd, for the control of root-knot nematode, application of neem cake @30g/spot + seed treatment with *Gluconacetobacter diazotrophicus* strain 35-47 @ 50 ml/2 kg seed.

In protected cultivation, for the control of *Meloidogyne* spp.

Soil solarization by 2-3 deep summer ploughings in the month of May-June at 15 days interval followed by light irrigation and covering of soil with 25 micron transparent polythene sheet for 30 days during June-July in Polyhouses.

Soil application of *Trichodermaviride*@ 20g/m^2, mixed with neem cake/FYM/Vermicompost @ 100g/m^2 in the tomato beds.

(पृष्ठ 24 का शेष)

प्रश्नोत्तरी सभा : मेले में आये हुए किसानों ने दोनों दिन प्रश्नोत्तरी सभा में भाग लेकर वैज्ञानिकों से कृषि व पशुपालन सम्बन्धी अपनी समस्याओं एवं शंकाओं को दूर किया।

फसल प्रतियोगिता : किसानों ने अपनी फसल के नमूने लाकर फसल प्रतियोगिता में भाग लिया जिसके तहत किसानों को विभिन्न फसलों के अंतर्गत प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार प्रदान किये गए।

मिट्टी एवं पानी जांच : मेले में आये किसानों के लिए विश्वविद्यालय द्वारा मिट्टी व पानी जांच की व्यवस्था करवाई गई, जिसमें किसानों ने मिट्टी -पानी जांच सुविधा का भी लाभ उठाया तथा मिट्टी के 56 व पानी के 112 नमूनों की जांच करवाई।

विशेष पुरस्कार : इस मेले में हरियाणा के 19 प्रगतिशील किसानों (18 पुरुष व 1 महिला किसान) को कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान के लिए पुरस्कृत किया गया। इसके साथ-साथ मेले में विश्वविद्यालय, सरकारी व गैर-सरकारी संस्थानों द्वारा प्रदर्शित की गई स्टालों की प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार दिए गए।

सांस्कृतिक कार्यक्रम : जहां मेला हो वहां मनोरंजन कैसे छूट सकता है इस बात को ध्यान में रखते हुए इस मेले में भी किसानों के लिए मनोरंजन का विशेष प्रबंध किया गया जिसमें किसानों ने रागनी और रंगारंग कार्यक्रम का भरपूर आनंद उठाया।

कृषि मेला में किसानों के लिये नि:शुल्क आर ओ पानी की व्यवस्था की गई व उचित रेट पर जल-पान का प्रबंधन भी किया गया। हम आशा करते हैं कि इसी तरह प्रत्येक वर्ष हमारे किसान अधिक से अधिक संख्या में पहुंच कर कृषि मेलों का लाभ उठाते रहेंगे, ताकि विस्तार शिक्षा निदेशालय आपकी सेवा में कार्य करता रहे।

(पृष्ठ 27 का शेष)

म्यूज़िक थेरेपी : जैसा कि आम तौर पर कहा जाता है कि संगीत हमें दूसरी दुनिया में ले जाता है. चूँकि तनाव मानसिक भटकाव की तरफ ले जाता है और संगीत हमें एकाग्रचित होने में मदद करता है इसलिए संगीत के माध्यम से हम तनाव का सफल उपचार कर सकते हैं। इससे हमें नींद भी गहरी आती है और हमारा शरीर पूरी तरह से रिचार्ज हो जाता है।

जीवन से तनाव को कम करने के लिए कभी भी खुशियों से दूरी नहीं बनानी है। आपको ये बात भी अपने दिमाग में रखनी होगी कि खुशियां आपके पास चलकर नहीं आयेंगीं, आपको उनके पास खुद जाना पड़ेगा या उन्हें ढूंढना पड़ेगा। इसके लिए आपको ये पता होना ज़रूरी है कि आपको क्या करना अच्छा लगता है और क्या नहीं ? आपको जिस काम को करने पर खुशी मिले आपको उस काम को करने से शर्माना नहीं चाहिए।

ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती

वर्ष 52 अंक 05

स्वर्ण-जयंती वर्ष
2 फरवरी 2019 - 1 फरवरी 2020

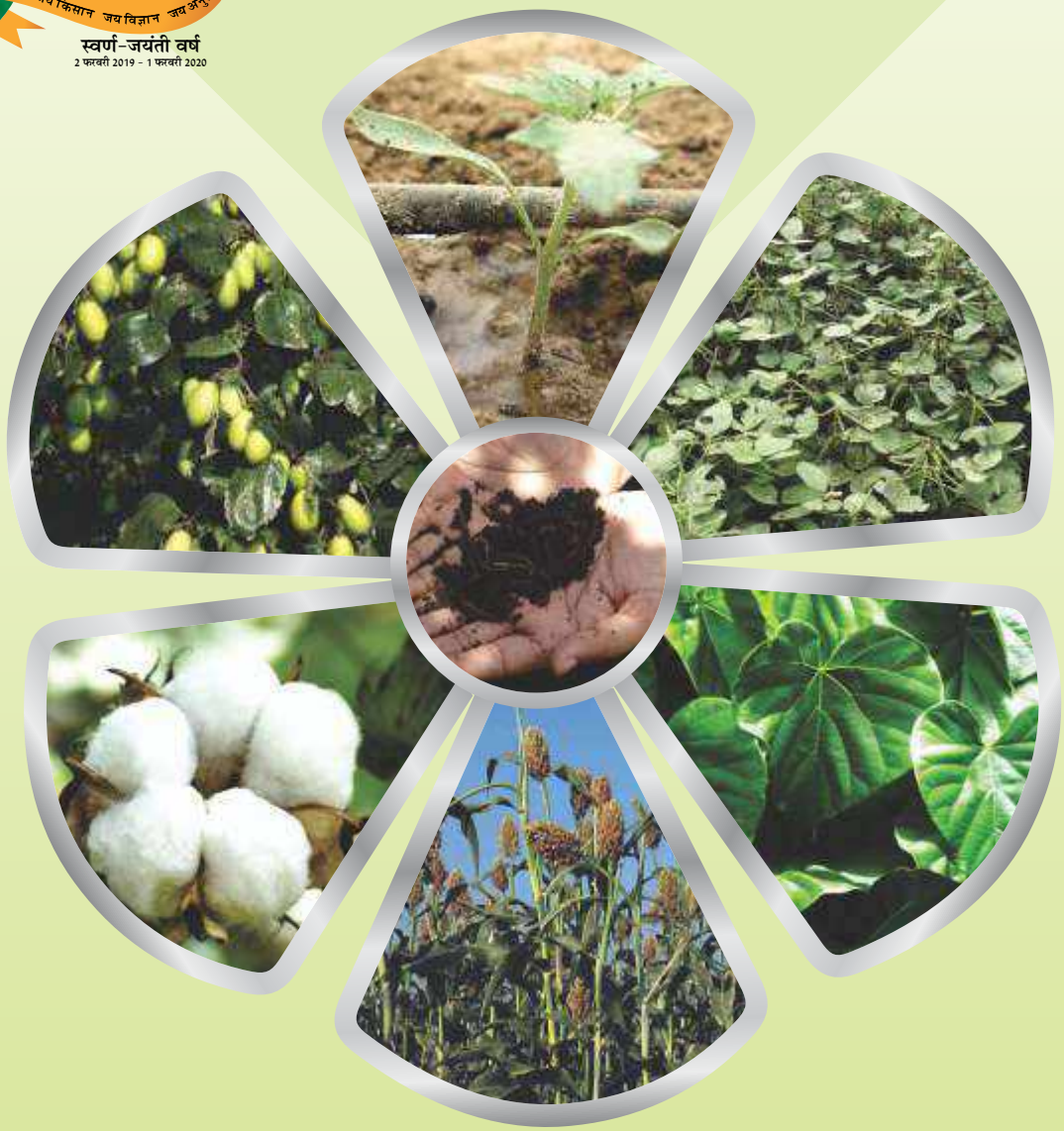

वार्षिक चंदा 150/- मई 2019 आजीवन सदस्यता 1500/-

प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित

ã कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 52 | मई 2019 | अंक 05

इस अंक में

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ
जायद में मूंग की उन्नत खेती	- अमित कुमार, कौटिल्य चौधरी एवं सुशील कुमार सिंह	1
अनाज का सुरक्षित भण्डारण	- भूपेन्द्र सिंह, नरेन्द्र सिंह एवं सूबेसिंह	2
ज्वार– एक आदर्श चारा फसल	- सतपाल, पी. कुमारी एवं बी. एल. शर्मा	3
उत्तम बीज : महत्व तथा विशेषताएं	- सुषमा शर्मा, हेमेंद्र एवं वी. एस. मोर	5
बेर की उन्नत बागवानी	- रणबीर सैनी, सुरेन्द्र सिंह एवं मुकेश कुमार	5
गिलोय की खेती	- राजेश कुमार आर्य एवं आई. एस. यादव	7
जैविक उर्वरक: आधुनिक कृषि प्रणाली की व्यापक आवश्यकता	- कविता रानी, लीला वती एवं कविता	8
जैव उर्वरक (माईकोराइज़ा) : भूमि की सेहत का वरदान	- जगदीश प्रसाद एवं दिनेश कुमार	9
वैज्ञानिक विधि द्वारा – कपास के मुख्य रोगों का उपचार	- मनमोहन सिंह, अनिल कुमार एवं राजबीर सांगवान	10
कृषि में पोटाश का महत्त्व	- सुशीला सिंह, सीमा सांगवान एवं जयन्त सिंधु	11
कृषि में माइकोराइज़ा की भूमिकाएं	- कविता रानी, कविता एवं कृष्ण यादव	11
कपास में खरपतवारों की रोकथाम	- विरेन्द्र सिंह हुड्डा, मीनाक्षी सांगवान एवं सतबीर पूनिया	12
फलों द्वारा निर्मित : मुरब्बा एवं कैण्डी	- एकता, राकेश गहलौत एवं तनु मलिक	21
पोपलर आधारित कृषि वानिकी में औषधीय पौधों का रोपण	- बिमलेन्द्र कुमारी एवं तरूण कुमार	21
थ्रैशर प्रयोग के समय होने वाली दुर्घटनाओं से बचाव	- विनोद कुमार, मुकेश जैन एवं नरेन्द्र	23
सौर ऊर्जा संयंत्र से अधिकतम लाभ : कैसे प्राप्त करें	- विनोद कुमार एवं मुकेश जैन	25
सिंचाई : साधन, आवश्यकता एवं विधियाँ	- नरेंद्र कुमार, अमनदीप सिह एवं प्रमोद शर्मा	26
गांवों को प्रदूषण से बचाने के उपाय	- दिवेश चौधरी, ममता एवं अनिल कुमार	27
Drip Irrigation for Horticultural Crop Production	- Sumit Deswal and Manender Singh	28
Peri-urban Agriculture in Haryana : Need, Strategies and Challenges	- Rajesh Lather, Vandna and Gurnam Singh	30
Giloy : Role of Herbs in Feeding Poultry	- Swati Ruhil, Vikas Khichar and Vijayata Choudhary	31

स्थाई स्तम्भ : जून मास के कृषि कार्य 13

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

सह–निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह–निदेशक (हिन्दी)

सुनीता सांगवान
सम्पादक (अंग्रेजी)
प्रकाशन अनुभाग

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)
विस्तार शिक्षा निदेशालय

आवरण एवं सज्जा
राजेश कुमार

लेखकों से अनुरोध : हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट** का ही प्रयोग करें। अपना लेख हमें ई–मेल पर भी भेज सकते हैं **haryanakhetihau@gmail.com**

जायद में मूंग की उन्नत खेती

- **अमित कुमार, कौटिल्य चौधरी एवं सुशील कुमार सिंह**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मूंग जायद की एक प्रमुख दलहनी फसल है व इसका वानस्पतिक नाम विगना रेडिएटा है। इसके दानों में 25 प्रतिशत प्रोटीन पाई जाती है। मूंग की खेती सरसों व आलू की कटाई के बाद करने पर अतिरिक्त लाभ होता है। मूंग के पौधों की फली तोड़ने के बाद फसल के अवशेषों को भूमि में मिला दिया जाता है। यह हरी खाद की पूर्ति करती है, जिससे मृदा की भौतिक एवं रासायनिक दशा में सुधार होता है और मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है। मूंग की खेती की उपज बढ़ाने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये।

मूंग की खेती के लिए दोमट भूमि उपयुक्त रहती है। पलेवा करके खेत तैयार कर ट्रैक्टर से बीज बुवाई करें व दो जुताई करने पर खेत तैयार हो जाता है तथा इसकी बुवाई का उपयुक्त समय 1 मार्च से 10 अप्रैल के बीच है। बीज दर 25-30 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर रखनी चाहिए।

बीज हमेशा उपचारित (बीज शोधन) करके बोना चाहिए। यदि बीज उपचारित नहीं है तो बीज को 2.5 ग्राम थाइरम या एक ग्राम कार्बेनडाज़िम से या 5 ग्राम ट्राइकोडर्मा प्रति किलोग्राम की दर से उपचारित करना चाहिये।

बीज को शोधन के बाद राइजोटीका 50 मि.ली. प्रति 10 किलोग्राम बीज के लिए प्रयोग करना चाहिए तथा टीके को 50 ग्राम गुड़ एवं 250 मि. ली. पानी में घोल कर बीज पर डालते हैं। यदि किसी रसायन से बीज उपचार करना हो तो टीके से उपचार करने से 12-24 घण्टे पहले करना चाहिये।

हरियाणा के लिए मूंग की प्रमुख प्रजाति इस प्रकार है:

प्रजाति का नाम	फसल अवधि	उपज क्विंटल प्रति हैक्टेयर
मुस्कान (एम एच 96-1)	70-75 दिन	10-12
सत्या	70 दिन	10-12
एम एच 421	60 दिन	10-12
एम एच 318	60 दिन	10-12

नोट : इसके अतिरिक्त मूंग की प्रजाति का चयन चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालयए आई.आई. पी.आर. कानपुर, दलहन विकास निदेशालय, भोपाल एवं क्षेत्र अनुसार अनुमोदित प्रजाति का चयन करें।

पलेवा के बाद पहली सिंचाई बिजाई के 20-22 दिन बाद करें तथा इसके बाद की सिंचाई 10-12 दिन बाद आवश्यकता अनुसार करते रहें।

बिजाई के समय 20 किलोग्राम नत्रजन 40 किलोग्राम फास्फोरस एवं 20 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टेयर डालें। साथ ही नत्रजन को यूरिया, फास्फोरस को सिंगल सुपर फास्फेट एवं पोटाश को म्यूरेट ऑफ पोटाश के रूप में डाला जा सकता है। उच्च पोटाश वाली मृदा में पोटाश नहीं डाला जाना चाहिये।

खरपतवार नियन्त्रण के लिए मृदा में पहली निराई-गुड़ाई पहले पानी के बाद 20-25 दिन पर करने पर मूंग में खरपतवार नष्ट हो जाते हैं, साथ ही मृदा में वायु संचार बढ़ जाता है। यदि आवश्यकता हो तो दूसरी निराई-गुड़ाई 40-45 दिन पर करनी चाहिये। यदि खेत में निराई-गुड़ाई सम्भव न हो तो खरपतवारों का रासायनिक नियन्त्रण करना चाहिए। नियन्त्रण के लिए पेण्डीमैथालीन 30 ई.सी.. के 3.3 लीटर को 600-700 लीटर पानी प्रति हैक्टेयर में घोल कर बुवाई के 72 घण्टे के अन्दर फ्लैट फैन नोज़ल से छिड़काव करें। उन फसलों के लिए जो कतारों में बोई गई हों उनमें खरपतवार नियन्त्रण के लिए वीडर का प्रयोग आर्थिक दृष्टि से लाभकारी होता है।

पौध सुरक्षा : इन फसलों में इस समय कीड़ों का प्रकोप कम होता है मगर निम्न बालों वाली सूण्डी, पत्ताछेदक (फली बीटल), हरा तेला और सफेद मक्खी हानि पहुंचाते हैं। बालों वाली सूण्डी का समाधान 625 मि. ली. मोनोक्रोटोफॉस 36 ई.सी. या 1250 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. को 600 लीटर पानी में मिला कर छिड़काव करें। इसी से पत्ती छेदक (फली बीटल) का समाधान हो जायेगा।

हरा तेला और सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए 1000 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 625 मि.ली. डाइमेथोएट 30 ई.सी. (रोगोर) या 625 मि.ली. ऑक्सीडेमेटान मिथाइल 25 ई.सी. (मैटासिक्टॉक्स) को 600-700 लीटर पानी में मिला कर 2-3 सप्ताह के अन्दर प्रति हैक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करें। इससे मोजैक का फैलाव भी रुक जाता है।

रोग नियन्त्रण : मूंग की फसल में पीले चित्रवर्ण (मोजैक) रोग का प्रकोप होता है। इस रोग के विषाणु सफेद मक्खी द्वारा फैलते हैं और इसके नियन्त्रण के लिए अवरोधी प्रजातियों का चयन करना चाहिए। यदि रोग किसी पौध में दिखाई दे तो उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए। बिजाई के 20-25 दिनों के बाद 10-15 दिनों के अन्तर पर डाईमेथोएट 30 ई.सी. (रोगोर) या 625 मि.ली. ऑक्सीडेमेटॉन मिथाईल 25 ई.सी.. (मैटासिस्टॉक्स) या 625 मि.ली. फार्मेथियान 25 ई.सी. (एंथियो) या 1000 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 600-700 लीटर पानी में घोल कर प्रति हैक्टेयर छिड़काव करें।

पत्तों का धब्बा रोग : इसके नियन्त्रण के लिए ब्लाईटॉक्स 50 या इण्डोफिल एम-45 को 1.5 किलोग्राम 500 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

पत्तों का जीवाणु रोग : इसकी रोकथाम के लिए फसल पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड की 600-800 ग्राम मात्रा को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

फसल चक्र : अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए एवं भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने हेतु उचित फसल चक्र का होना आवश्यक होता है। जहां पर वर्षा आधारित खेती होती हो वहां पर मूंग-बाजरा-गेहूं और सिंचित क्षेत्रों में मूंग-गेहूं एवं सरसों का फसल चक्र अपनाना चाहिए, फसल चक्र में मूंग के होने से भूमि की उर्वता क्षमता अधिक हो जाती है।

अनाज का सुरक्षित भण्डारण

- भूपेन्द्र सिंह, नरेन्द्र सिंह[1] एवं सूबेसिंह[2]
सायना नेहवाल कृ. प्रौ. प्र. एवं शि. संस्थान
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हमारे देश में अनाज का उचित भण्डारण न होने से कुल पैदावार का लगभग 10-12 प्रतिशत नुकसान फसल की कटाई से लेकर इसके उपयोग तक हो जाता है जो कि प्रतिवर्ष लगभग 2500 करोड़ रुपए तक पहुंचता है। यह नुकसान मुख्यत: विभिन्न अवस्थाओं में कीट प्रकोप, चूहे, पक्षी, फफूंद जनित संक्रमण, अन्य जीव जन्तु और अत्यधिक नमी द्वारा आंका गया है। भण्डारित अनाज को सबसे अधिक हानि विभिन्न प्रकार के कीटों द्वारा ही होती है। भण्डार कीटों में कुछ कीट आंतरिक प्राथमिक तो कुछ बाह्य गौड़ भक्षी होते हैं। ऐसे कीट जो स्वयं दाने को सर्वप्रथम क्षति पंहुचाते हैं वे प्राथमिक कीट कहे जाते हैं। इनमें सूंड वाली सुरसरी, अनाज का छोटा छिद्रक व ढोरा प्रजातियां प्रमुख हैं। गौड़ कीट वे हैं जो बाहर रहकर भ्रूण या अन्य भाग को क्षति पंहुचाते हैं। इनमें आटे का कीट, खपरा बीटल, चावल का पतंगा आदि प्रमुख हैं। ये कीट दाने को खाकर खोखला कर न केवल अनाज की पौष्टिकता को प्रभावित करते हैं अपितु बिजाई के अनुपयुक्त बना देते हैं तथा प्रकोपित अनाज मनुष्य व पशुओं के उपयोग योग्य भी नहीं रहता है।

अनाज संक्रमण के प्रमुख कारण

1. अनाज में नमी की मात्रा का अधिक होना।
2. अनाज को खुले व नमी युक्त स्थान पर रखना।
3. अनाज ढोने वाले वाहन तथा रखने वाली जगह की सफाई न होना।
4. अनाज का उचित भण्डारण न होना (पुरानी बोरियां व स्थान को संक्रमण रहित न करना)।
5. भण्डारण के बाद उचित देखभाल न करना।

भण्डारण कक्ष एवं भण्डारण पात्र को कीट मुक्त रखने हेतु समुचित उपाय करना आवश्यक है जो निम्न हैं:

अनाज भण्डारण से पहले सावधानियां

- भण्डारण से पहले अनाज को भलीभान्ति सुखा लें तथा सुनिश्चित करें कि नमी की मात्रा 10 प्रतिशत से कम रहे। दांतों के बीच दाना रखकर दबाने से यदि कड़क की आवाज़ के साथ दाना टूटे तो प्राय: नमी 10 प्रतिशत से कम रहती है।
- अनाज को कभी भी खुले में न रखकर किसी कमरे या गोदाम या टंकी में भण्डारित करें ताकि वर्षा या नमी से बचाया जा सके।
- अनाज ढोने वाले वाहनों की अच्छी तरह से सफाई कर लें ताकि उनमें कोई कीटग्रसित पुराना अनाज न रहे।
- अनाज भण्डारण के लिए प्रयोग होने वाले कमरे, गोदाम या पात्र जैसे कुठला इत्यादि के सुराखों और दरारों आदि को सीमेंट से बन्द कर दें।
- यदि इनमें पुराना अनाज पड़ा है तो उसे निकाल कर इन्हें अच्छी तरह साफ कर लें। यदि अनाज की टंकी में पुराना अनाज पड़ा है तो उसे निकाल कर टंकी को तेज़ धूप में रखें ताकि इसमें जो भी कीट हों मारे जाएं।
- भण्डारण कमरे या गोदाम को अच्छी तरह साफ करने के पश्चात् उसे 0.5 प्रतिशत मैलाथियान 50 ई.सी. (10 मी.ली. दवाई एक लीटर पानी में) का फर्श, दीवारों और छत पर छिड़काव करें। इस काम के लिए एल्यूमिनियम फास्फाईड की 7-10 गोलियां (3 ग्राम प्रति गोली) का प्रति 1000 घनफुट (28 घन मीटर) की दर से प्रद्युमन भी किया जा सकता है।
- यदि अनाज का भण्डारण बोरियों में करना है तो यथासंभव नई बोरियों का उपयोग करें।
- यदि पुरानी बोरियों को ही प्रयोग करना है तो 0.01 प्रतिशत फैनवलरेट 20 ई.सी. (1 मि.ली. दवाई दो लीटर पानी में) या साईपरमैथ्रिन 25 ई.सी. (1 मि.ली. दवाई ढ़ाई लीटर पानी में) या 0.1 प्रतिशत मैलाथियान 50 ई.सी. (2 मि.ली. दवाई एक लीटर पानी में) के घोल में 10-15 मिनट तक उपचारित कर इन्हें छाया में सुखाने के बाद ही भण्डारण हेतु प्रयोग करें।

भण्डारण के दौरान सावधानियां

- बोरियों में भण्डारित अनाज को गोदाम की दीवारों से कुछ दूरी बनाकर ही रखें तथा सीधे फर्श पर न रखकर लकड़ी के बने फ्रेम इत्यादि पर रखें जिससे विशेषकर मौनसून के समय अधिक नमी अनाज तक न पहुंच पाए।
- केवल बीज हेतु अनाज को कीड़ों से बचाने के लिए 250 ग्राम मैलाथियान 5 प्रतिशत धूड़ा प्रति क्विंटल अनाज की दर से मिलाकर भण्डारण करें तथा ऐसे अनाज को किसी भी अवस्था में खाने के काम न लें।
- दालों का भण्डारण मुख्यत: छोटे स्तर पर होता है जो कि घरों में भण्डारित होते हैं। इन्हें प्राय: ढोरा कीट के संक्रमण से सुरक्षित रखने के लिए अनाज के ऊपर व नीचे कोठियों में या भण्डारित स्थानों पर 7 सैं.मी. (3 इंच) मोटी रेत की तह बनाएं।
- ढोरा के प्रकोप से बचाव के लिए चना व दालों आदि पर 7.5 मि. ली. सरसों या मूंगफली का तेल या 4 मि.ली. सरसों या मूंगफली के तेल के साथ 1.75 ग्राम हल्दी प्रति कि.ग्रा. दानों की दर से अच्छी प्रकार मिलाकर लगाएं। उपचार के बाद इन्हें किसी प्लास्टिक या एल्युमिनियम या स्टील के डिब्बे में बंद करके रखें।

कीटग्रसित होने पर अनाज का बचाव

भण्डारित अनाज पर कीट आक्रमण प्राय: तभी रहता है जब वातावरण में नमी अधिक हो जो कि प्राय: मौनसून के समय होती है। इसलिए जुलाई-अक्तूबर के माह तक 15 दिनों के अंतराल पर समय-समय पर निरीक्षण कर उचित नियंत्रण हेतु कदम उठाये जा सकते हैं। जब अनाज में नमी की मात्रा 10 प्रतिशत से अधिक हो जाए तो ऐसी स्थिति में किसी एक प्रद्युमननाशक द्वारा अनाज को उपचारित करें।

- एल्युमिनियम फास्फाईड की 1 गोली (3 ग्राम) को एक टन (10 क्विंटल) अनाज में या 7-10 गोलियां प्रति 1000 घनफुट (28 घनमीटर) की दर से कोठियों या गोदामों में प्रयोग करें तथा उपचार करने के 7 दिन तक पूर्ण रूप से हवा रहित सुनिश्चित करें।

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, सदलपुर (हिसार)
[2]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

- अनाज में गोली रखते समय इस बात का विषेश ध्यान रखें कि गोली को हमेशा नीचे से 2 या 3 फीट ऊंचाई पर रखें क्योंकि इसमें से निकलने वाली गैस (फास्फीन) हवा से भारी होती है जो ऊपर से नीचे की ओर जाती है।
- एल्युमिनियम फास्फाईड की उपलब्धता न होने पर एक लीटर ई.डी.सी.टी. मिश्रण प्रति 20 क्विंटल अनाज के लिए या 35 लीटर ई.डी.सी.टी. मिश्रण प्रति घन मीटर के हिसाब से प्रयोग करके भी कमरे/गोदामों में कीड़ों को नष्ट किया जा सकता है।
- प्रद्युमन कीटनाशक केवल उन्हीं स्थानों पर प्रयोग करें जो कि भलीभान्ति बंद कर हवा रहित कर सके। ऐसा करने के लिए गोदाम/कोठी/टंकी व अन्य भण्डारण इत्यादि का वायुरोधी रहना अत्यंत आवश्यक है जो कि गीली/चिकनी मिट्टी के लेप से किया जा सकता है।

नोट:

- अब गोलियों के स्थान पर एल्युमिनियम फास्फाईड पाऊडर के रूप (पाऊच/सैशे) में भी विभिन्न मात्राओं (1.5, 5, 10 व 34 ग्राम) में उपलब्ध है। चूंकि गोलियों व पाऊडर दोनों में ही फास्फीन गैस की मात्रा 56 प्रतिशत ही रहती है। इसलिए पाऊडर वाली कीटनाशक भी इसी दर से प्रयोग कर सकते हैं।
- खपरा लगे गोदाम में एल्युमीनियम फास्फाईड और ई.डी.सी.टी. मिश्रण से प्रद्युमन करना आवश्यक है परन्तु ई.डी.बी. का प्रयोग बीज के लिए उपयोग हेतु अनाज में नहीं करना चाहिए।

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक नि:शुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

ज्वार- एक आदर्श चारा फसल

- **सतपाल, पी. कुमारी एवं बी. एल. शर्मा**
चारा अनुभाग, आनुवंशिकी व पौध प्रजनन विभाग,
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत जैसे कृषि प्रधान देश की अर्थव्यवस्था में पशुधन एवं पशुपालकों का महत्तवपूर्ण स्थान है। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहे 70-80 प्रतिशत् ग्रामीणों के लिए पशुपालन आज भी उनकी आजीविका का आधार है। पशुओं के अच्छे स्वास्थ्य व अधिक पशु उत्पादन (मांस, दूध इत्यादि) प्राप्त करने के लिए गुणवत्तापूर्ण हरे चारे की उपलब्धता अत्यावश्यक है। चारा फसलों में ज्वार गर्मी व खरीफ मौसम की एक महत्वपूर्ण फसल है। हरे चारे के रूप में ज्वार पशुओं की पहली पसन्द है। हरा व मीठा चारा, शीघ्र बढ़ने की क्षमता और अधिक चारा उत्पादन का गुण ज्वार को आदर्श चारा फसल बनाता है। ज्वार का पौधा कठोर होने के कारण प्रतिकूल परिस्थितियां जैसे अधिक तापमान और सूखे को सहन करने की क्षमता रखता है। इसीलिए इसे कम पानी या शुष्क क्षेत्रों में भी हरे चारे के लिए लगाया जाता है। हरे चारे के अलावा इसे सूखा चारा (कड़वी), साइलेज व 'हे' के रूप में भी पशु चारे के लिए उपयोग किया जाता है। ज्वार के हरे चारे में पौष्टिकता की दृष्टि से प्रोटीन (7 से 10 प्रतिशत), फाइबर (30 से 32 प्रतिशत) और लिग्निन (6 से 7 प्रतिशत) पाए जाते हैं जो अन्य चारों की अपेक्षा इसकी पाचन क्रिया, स्वादिष्टता एवं पशु स्वास्थ्य को बनाए रखने में अधिक उपयोगी होते हैं।

ज्वार की उन्नत किस्में

एच जे 541: यह लम्बी, मीठी व हरे चारे और बीज उत्पादन के लिए उपयुक्त तथा एक-कटाई वाली किस्म है। इस किस्म की हाइड्रोसायनाइड विषाक्तता भी कम है। अधिक प्रोटीन व अधिक पाचनशील शुष्क पदार्थ होने के कारण इसकी गुणवत्ता अच्छी है। इसमें रोगों से लड़ने की अधिक क्षमता है। इसके हरे चारे की औसत पैदावार 200-225 क्विं./एकड़ है। यह पकने तक हरी रहती है। यह 80 से 90 दिन में (50 प्रतिशत फूल आने पर) हरे चारे के लिए तैयार हो जाती है।

एच जे 513: यह किस्म कड़वी के लिए भी बहुत उपयोगी है। इसके पत्ते चौड़े और लम्बे हैं। यह लम्बी, बिना मिठास वाली तथा एक-कटाई के लिए उपयुक्त किस्म है जिसकी हरे चारे की पैदावार 190-210 क्विं./एकड़ है। यह पकने तक हरी रहती है व पत्ते के रोगों व कीड़ों की प्रतिरोधी है। यह 80 से 85 दिन में (50 प्रतिशत फूल आने पर) हरे चारे के लिए तैयार हो जाती है।

एच सी 308: यह लम्बी, रसदार, पत्तेदार एवं एक-कटाई के लिए उपयुक्त किस्म है। इसके हरे चारे की औसत पैदावार 215 क्विं./एकड़ है। यह 85 से 95 दिन में हरे चारे के लिए तैयार हो जाती है।

एच सी 260: यह लम्बी, बिना मिठास वाली तथा एक-कटाई के लिए उपयुक्त किस्म है जिसे सूखे चारे के लिए अधिक उपयोग में लाया जाता है। इसके पत्ते लम्बे व चौड़े होते हैं और यह पत्ता रोग रोधी किस्म है। इस किस्म की हरे चारे की औसत पैदावार 180 से 200 क्विं./एकड़ है। यह 65 से 70 दिन में हरे चारे के लिए तैयार हो जाती है।

एच सी 171: यह एक मध्यम ऊंचाई वाली मीठी, रसदार, चौड़े पत्ते तथा एक-कटाई के लिए उपयुक्त वाली किस्म है। यह लाल पत्ती रोग रोधी है। इस किस्म से हरे चारे की औसत पैदावार 180-185 क्विं./एकड़ है।

एच सी 136: यह किस्म लम्बी, मीठी, रसदार तथा दो कटाइयां देने में सक्षम है और देर से पकती है। इसके पत्ते अधिक लम्बे व चौडे होते हैं जो पकने तक हरे रहते हैं। हरे चारे की औसत पैदावार 200-220 क्विं./एकड़ है। यह 90 से 95 दिन में हरे चारे के लिए तैयार हो जाती है।

एस एस जी 59-3: यह हरियाणा के सिंचित व मैदानी क्षेत्रों के लिए सिफारिश की गई है। यह मीठी व अच्छे गुणों वाली किस्म है जिससे लम्बे समय तक हरा चारा मिलता रहता है, विशेषकर जब दूसरे चारों की कमी रहती है। यह किस्म मई से नवम्बर तक 3-5 कटाइयों में 300 क्विं./एकड हरे चारे की पैदावार देती है।

भूमि व खेत की तैयारी

ज्वार की खेती वैसे तो सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती है परन्तु अच्छे जल निकास वाली दोमट मिट्टी इसकी खेती के लिए बढ़िया है। खरपतवार नष्ट करने तथा फसल की अच्छी पैदावार के लिए खेत को खूब अच्छी तरह तैयार करना चाहिए। सिंचित इलाकों में मिट्टी पलटने वाले हल से एक जुताई और उसके बाद भी देसी हल से 2 जुताइयां (एक दूसरे के आर-पार) बिजाई से पहले अवश्य करनी चाहिएं।

बिजाई का समय

ज्वार की गर्मी की फसल 20 मार्च से 10 अप्रैल तक बो देनी चाहिए। यदि सिंचाई व खेत उपलब्ध न हो तो बिजाई मई के पहले सप्ताह तक की जा सकती है। बहु-कटाई वाली किस्में जैसे कि एस एस जी 59-3 किस्म इस मौसम में लगाने से अधिक गर्मी वाले समय में भी पशुओं को हरा चारा उपलब्ध हो जाता है और यह किस्म अन्य किस्मों की तुलना में हरा चारा लम्बे समय तक उपलब्ध कराती है। खरीफ की फसल की बिजाई का सही समय 25 जून से 10 जुलाई है। जिन क्षेत्रों में सिंचाई उपलब्ध नहीं है वहां खरीफ की फसल मानसून में पहला मौका मिलते ही बो देनी चाहिए।

बीज की मात्रा और बिजाई का तरीका

ज्वार के लिए 20-24 किलोग्राम व सुडान घास के लिए 12 से 14 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ के हिसाब से 25 सैं.मी. के फासले पर कतारों में ड्रिल या पोरे की मदद से बीजें। बीज को बिखेरकर न बोएं। यदि किसी कारणवश छिड़काव विधि द्वारा बुवाई करनी पड़े तो बीज की मात्रा में 15-20 प्रतिशत की वृद्धि आवश्यक है।

उर्वरक प्रबन्धन

कम वर्षा वाले व बारानी इलाकों में बिजाई के समय 20 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति एकड दें। सारी खाद बिजाई से पहले कतारों में ड्रिल करें। अधिक वर्षा वाले या सिंचित इलाकों में 20 किलोग्राम नाइट्रोजन बिजाई के समय तथा 10 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति एकड़ बिजाई के एक महीने बाद भी डालें। सुडान घास के लिए हर कटाई के बाद 10 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति एकड़ देनी चाहिए। जिन खेतों में फास्फोरस की कमी हो वहां 6 किलोग्राम शुद्ध फास्फोरस प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई से पहले डालें।

खरपतवार प्रबन्धन

ज्वार उगने के 15-20 दिन बाद या पहली सिंचाई के बाद - बत्तर आने पर एक बार निराई-गुड़ाई करें, दूसरी गुड़ाई बरसात में जब खरपतवारों का प्रकोप बढ़ जाए तब करें। इससे खरपतवार नियन्त्रण में रहते हैं तथा भूमि में नमी भी बनी रहती है। ज्वार में खरपतवारों की रोकथाम के लिए बिजाई के 7-15 दिन के अन्दर-अन्दर 200 ग्राम एट्राज़ीन (50 प्रतिशत घु.पा.) प्रति एकड़ 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें ऐसा करके खरपतवारों को काफी हद तक रोका जा सकता है।

सिंचाई प्रबन्धन

मार्च-अप्रैल में बीजी गई फसल में पहली सिंचाई बिजाई के 15-20 दिन बाद तथा आगे की सिंचाइयां 20-25 दिन के अन्तर पर करें। इस प्रकार लगभग 4-5 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। वर्षा ऋतु में बोई गई फसल में आमतौर पर सिंचाई की आवक्यकता नहीं होती। यदि बरसात का अन्तराल बढ़ जाए तो आवश्यकता अनुसार सिंचाई करें। अधिक कटाई वाली फसल में हर कटाई के बाद सिंचाई अवश्य करें इससे फुटाव जल्दी व अधिक होता है।

हानिकारक कीट प्रबन्धन

। चारा ज्वार की फसल में मुख्यत: गोभछेदक मक्खी, तना छेदक एवं टिड्डे का प्रकोप अधिक होता है। गोभ छेदक मक्खी फसल को मार्च से मध्य मई और मध्य जुलाई से सितम्बर तक हानि पहुंचाती है। इसलिए फसल को मध्य मई से लेकर जून तक बो दें। बीज की 10 प्रतिशत अधिक मात्रा प्रयोग में लाएं।

। तनाछेदक का आक्रमण फसल उगने के 15 दिन बाद आरम्भ हो जाता है। छोटी फसल में पौधों की गोभ सूख जाती है। बड़े पौधों में इसकी सूंडियां तने में सुराख बनाकर फसल की पैदावार व गुणवत्ता को काफी कम कर देती हैं। इन कीड़ों की रोकथाम के लिए 400 ग्राम कार्बेरिल 50 प्रतिशत घु.पा. को 200 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ फसल पर बिजाई के 20 दिन के बाद 10-12 दिन के अन्तर पर दो छिड़काव करें। इसका चारा पशुओं को छिड़काव के 21 दिन तक न खिलाएं।

। टिड्डे, ज्वार की फसल को छोटी अवस्था से लेकर पूरे वृद्धिकाल तक हानि पहुंचाते हैं। शिशु और प्रौढ़ पत्तों को किनारों से खाते हैं जिससे भारी प्रकोप की अवस्था में केवल पत्तों की मध्य शिराएं और कभी-कभी तो केवल पतला तना ही रह जाता है। फसल छोटी रह जाती है। फसल पर इन कीड़ों की संख्या बहुत होती है जिससे इनके मलमूत्र की बहुतायत के कारण फफूंद आ जाती है और प्रकोपित फसल चारे के योग्य नहीं रहती। इस कीड़े की रोकथाम के लिए 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. का छिड़काव 250 लीटर पानी में प्रति एकड़ करें। इसका चारा पशुओं को छिड़काव के 21 दिन तक न खिलाएं।

कटाई प्रबन्धन

एक-कटाई वाली किस्मों की कटाई फूल आने पर करें। बहु-कटाई वाली चारा फसल में पहली कटाई बुवाई के 55-60 दिन बाद करें और तत्पश्चात प्रत्येक कटाई 40-45 दिन के अन्तराल पर करें। बहु कटाई वाली किस्मों की कटाई ज़मीन से 10-12 सैं.मी. ऊपर से करें ताकि फुटाव जल्दी हो।

विषैले तत्वों का प्रबन्धन

धूरिन (हाइड्रोसाइनिक अम्ल)-ज्वार में धूरिन की अधिक सांद्रता पशुओं के लिए हानिकारक होती है। धूरिन अगर 200 माईक्रोग्राम/ग्राम से अधिक हो तो यह पशुओं के लिए घातक होता है। 30 दिन की फसल में इसकी सांद्रता अधिक होती है। इसलिए फसल को बिजाई के 50 से 60 दिन बाद ही काटना चाहिए, अगर बहुत आवश्यक हो तो एक सिंचाई करने के बाद ही कटाई करें और अन्य चारे के साथ उचित अनुपात में मिलाकर पशुओं को खिलाएं। अधिक सूखा एवं अधिक नत्रजन उरर्वकों का प्रयोग भी धूरिन की सांद्रता को बढ़ाता है। इसलिए इसकी विषाक्तता को कम करने और पशुओं को इसके दुष्प्रभाव से बचाने के लिए ज्वार के हरे चारे को सूखे चारे के साथ मिलाकर पशुओं को खिलाएं।

उत्तम बीज : महत्व तथा विशेषताएं

- सुषमा शर्मा, हेमेंद्र एवं वी. एस. मोर
बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सामान्य बीज की बिजाई के साथ कितनी भी खाद, सिंचाई, उर्वरक आदि क्यों न दी जाए पर उत्तम बीज के मुकाबले पैदावार कम ही रहेगी। उत्तम गुणों वाले शुद्ध बीज के उपयोग से निम्न गुणवत्ता वाले बीजों की तुलना में 8 से 25 प्रतिशत अधिक उत्पादन लिया जा सकता है। उत्तम बीज के इन्हीं महत्वों को ध्यान में रखते हुए इन्हें सम्पूर्ण बीज कार्यक्रम की धुरी में रखा गया है। अधिक उत्पादन क्षमता, कीट एवं रोग प्रतिरोधकता, वातावरणीय प्रतिकूलताओं के प्रति सहनशक्ति, गुणवत्ता और दक्षता एवं उपयुक्त मात्रा में नमी एवं अंकुरण क्षमता आदि उन्नत बीजों की विशेषताएं होती हैं। उचित शब्दों में उन्नत और शुद्ध बीज की परिभाषा में बीज की भौतिक एवं अनुवांशिक शुद्धता तथा अंकुरण क्षमता का उचित मापदंड पर खरा उतरना आवश्यक है। विभिन्न फसलों के लिए उचित मानक स्तर या मापदंड निर्धारित किए गए हैं।

उत्तम बीज के गुण

अंकुरण क्षमता : अंकुरण क्षमता बीज का मूल्यांकन करने में सबसे अहम है। बीज मात्रा निर्धारण में भी यह अहम् भूमिका निभाता है। बीज परीक्षण प्रयोगशाला द्वारा फसल की अंकुरण क्षमता को प्रतिशत में मापा जाता है और सभी फसलों के लिए पूर्व निर्धारित स्तर पर खरा उतरना आवश्यक है और बुवाई के लिए अधिक अंकुरण प्रतिशत वाले बीज को चुना जाता है।

भौतिक शुद्धता : बीज अक्रिय मिश्रण मुक्त होना चाहिए। बीजों में किसी अन्य फसल या खरपतवारों के बीजों का पाया जाना बीज की भौतिक अशुद्धता को दर्शाता है। कंकड़, पत्थर, धूल, मिट्टी, भूसा, डंठल आदि से मुक्त बीज ही भौतिक रूप से शुद्ध होता है। कई अन्य फसलें जिनके बीजों का रंग व आकार प्रकार एक तरह के होते हैं उन्हें पहचानना कठिन कार्य है।

जीवन क्षमता : बीज के अंदर उसका भ्रूण ही एकमात्र जीवित भाग है और भ्रूण अगर क्षतिग्रस्त हो जाए तो बीज का जीवन समाप्त हो जाता है। बीज का सही भंडारण उसे जीवित रखता है लेकिन वहीं अगर कीट, नमी, ताप व अन्य भंडारण दोषों पर ध्यान न दिया जाए तो बीज की जीवन क्षमता समाप्त हो जाती है। बीज की आयु व परिपक्वता का ज्ञान भी बहुत आवश्यक है। चमकीले, साफ तथा भरे हुए बीज को परिपक्व बीज की परिभाषा दी जाती है। बीजों में चमक समय के साथ कम हो जाती है और परिपक्वता में कमी होने के कारण अंकुरण व जीवन में भी कमी आ जाती है।

बीज स्वास्थ्य : हर जीव के लिए स्वास्थ्य का महत्व बहुत बड़ा है। स्वास्थ्य से हमारा तात्पर्य रोग मुक्त जीवन से होता है। बीज रोगों के रोगाणु, बीजों पर आक्रमण करके उन्हें बुवाई योग्य नहीं छोड़ते और भंडारण समय में वे बीज की जीवन शक्ति नष्ट कर देते हैं। बीजों को रासायनिक एवं भौतिक विधियों द्वारा उपचारित करके इन्हें रोगाणु मुक्त किया जाता है।

बीज प्रसुप्ति: कुछ फसलों के बीज प्रसुप्तावस्था में रहते हैं। यह वह अवस्था है जब बीज को आवश्यक और अनुकूल परिस्थितियां प्रदान करने पर भी वह अंकुरित नहीं हो पाता। आलू, खीरा, टमाटर, बैंगन आदि ऐसी फसलों के उदाहरण हैं। ऐसे बीजों को उपचार के बाद ही खेत में बोना चाहिए वरना उनका अंकुरण नहीं हो पाता तथा किसान को नुकसान उठाना पड़ता है। प्रसुप्ति तोड़ने के लिए अनेक उपचार जैसे तापमान, प्रकाश, रसायन एवं भौतिक तत्वों का इस्तेमाल किया जा सकता है। अधिकतर फसलों में यह समस्या भंडारण के कुछ समय बाद स्वत: ही दूर हो जाती है।

बेर की उन्नत बागवानी

- रणबीर सैनी[1], सुरेन्द्र सिंह[2] एवं मुकेश कुमार
क्षेत्रीय अनुसन्धान केन्द्र, बावल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बेर रहमनेसी कुल का भारतीय मूल का फलवृक्ष है। एक मूसला जड़धारी पौधा होने के कारण अत्यधिक सूखा सहनशील है। यह ज़मीन की गहरी परतों से पानी लेने में सक्षम है। इसके अतिरिक्त इसके पत्तों में क्यूटीकल परत मोटी होती है जिसके फलस्वरूप पत्तों से वाष्पोर्त्जन बहुत कम होता है। यही कारण है कि यह शुष्क क्षेत्रीय बागवानी के लिए उत्तम फलवृक्ष हैं। हरियाणा में इनकी बागवानी मुख्यत: झज्जर, रोहतक, जीन्द, रेवाड़ी, भिवानी, महेन्द्रगढ़, गुरुग्राम, नूंह, हिसार व फतेहाबाद में की जाती है। अधिक उत्पादन व सर्वोत्तम गुणवत्ता के लिए निम्नलिखित सस्य क्रियाएं अपनानी चाहिएं :

किस्में

पकने के समय के अनुसार बेर की किस्मों को तीन वर्गों में बाटा गया है जो निम्न हैं:

क. अगेती किस्में (फरवरी में पकने वाली) : गोला, सेब, सन्धूरा नारनौल

ख. मध्य मौसम में पकने वाली (फरवरी अन्त से मार्च के तृतीय सप्ताह तक पकने वाली) : कैथली, मुड़िया मुरहारा, बनारसी कड़ाका, छुहारा

ग. पछेती किस्में : उमरान, काठाफल, इलायची

भूमि का चुनाव

बेर की बागवानी के लिए अनेक प्रकार की भूमि जैसे रेतीली, दोमट, चिकनी, कुछ हद तक लवणीय आदि उपयुक्त है। परन्तु अधिक पैदावार व उत्तम गुणवत्ता के लिए अच्छी जल निकासी वाली दोमट ही मिट्टी उत्तम है। भूमिगत जल स्तर तीन मीटर से ऊपर न हो। खारी अंग 8.7 (9.4 तक सहनशील) हो। लवण सहनशीलता स्तर 11.3 मि. म्होज/सैं.मी. तक है।

फासला

बेर में पौधे से पौधा व पंक्ति से पंक्ति 8 मीटर दूर रखी जाती है। बारानी बागवानी की अवस्था में पौधों के बीच दूरी बढ़ा देनी चाहिए। इस दूरी पर प्रति एकड़ 72 पौधे लगेंगे।

गड्ढे तैयार करना व पौधारोपण

इसके बाद जून के प्रथम सप्ताह या दिसम्बर के अन्त में 3 फुट लम्बे, चौड़े व गहरे गड्ढे खोदें। खोदते समय गड्ढे की ऊपर की आधी मिट्टी एक तरफ व नीचे की आधी दूसरी ओर डालें। 15-20 दिन बाद ऊपर की आधी मिट्टी में बराबर मात्रा में गली-सड़ी देसी खाद, एक कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट व 50 ग्राम लिण्डेन पाऊडर (2 प्रतिशत) मिलाकर गड्ढों को भर दें व बाकी बची मिट्टी भी भर दें। एक अच्छी वर्षा की प्रतीक्षा करें या गड्ढों की सिंचाई करें और मिट्टी बैठ जाने के बाद पौधारोपण करें।

नये पौधों की आरम्भिक देखभाल

पौधारोपण के तुरन्त बाद सभी पौधों को बाँस अथवा लकड़ी की सोटी/छड़ी से सहारा देना चाहिए।

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, मण्डकौला।
[2]ए.डी.टी., चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

सिंचाई

पौधों को आवश्यकतानुसार सिंचाई दें। अधिक गर्मी व सर्दी के समय जल्दी-जल्दी सिंचाई दें। चिकनी मिट्टी की तुलना में रेतीली मिट्टी में पानी कहीं अधिक जल्दी-जल्दी देना पड़ता है। सिंचाई के पानी के साथ 10-20 मिलीमीटर क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. 10 लीटर पानी में घोलकर प्रति पौधा 30-45 दिन में एक बार अवश्य डालें।

निराई-गुड़ाई

फलित बागों में वर्ष में तीन-चार बार थावलों में निराई-गुड़ाई करें व बीच की भूमि की ट्रैक्टर अथवा पॉवर टिल्लर से जुताई करें विशेषकर आरम्भ के वर्षों में।

सिधाई एवं काट-छांट

प्रथम दो-तीन वर्षों में ज़मीन से 60-75 सैं.मी. ऊंचाई तक मुख्य तने से कोई फुटाव नहीं निकलने दें। इसी तरह मूलवृन्त से निकलने वाले सभी फुटाव समय-समय पर निकालते रहें। करीब 2-2½ फुट बढ़ने के बाद चारों दिशाओं में नई शाखाओं को प्रोत्साहन देना चाहिए ताकि पौधे का पक्का ढांचा तैयार हो सके।

बेर में नियमित अच्छी गुणवत्ता एवं भरपूर उत्पादन के लिए प्रति वर्ष सुप्तावस्था में काट-छांट अनिवार्य है। इसके लिए 1-30 मई के बीच चालू वर्ष की बढ़वार को छः द्वितीय शाखाओं के बाद काट देना चाहिए।

पौध प्रर्वधन: टी-बडिंग द्वारा

खाद एवं उर्वरक

खाद व उर्वरक की मात्रा निम्न तालिका अनुसार देनी चाहिए।

पौधे की आयु (वर्ष)	देसी खाद	यूरिया	सिंगल सुपर फास्फेट
	कि.ग्रा./प्रति पौधा/प्रतिवर्ष		
1	10	0.2	0.3
2	15	0.4	0.6
3	20	0.6	0.9
4	25	0.8	1.2
5	30	1.0	1.5
6	40	1.2	2.0
7 एवं अधिक	50	1.25	2.5

सारी देसी खाद व सिंगल सुपर फास्फेट तथा आधी यूरिया प्रथम वर्षा के साथ ही जून-जुलाई में डालनी चाहिए। यूरिया की शेष मात्रा नवम्बर में जब बेर मटर के दाने समान हों, तब डालें। खाद व उर्वरक मुख्य तने से 2-3 फुट दूर डालें। पौधों में खाद डालने के बाद तुरन्त सिंचाई देनी चाहिए।

सिंचाई

बेर के फलित पौधों को वर्ष भर में तीन से चार सिंचाइयों की आवश्यकता होती है।

निराई-गुड़ाई एवं खरपतवार नियन्त्रण

बेर के फलित बागों में वर्ष भर में तीन बार निराई-गुड़ाई अनिवार्य है। पहली जून-जुलाई में खाद व उर्वरक डालते समय, दूसरी अगस्त में व तीसरी वर्षा ऋतु के उपरान्त सितम्बर में।

फल गिरने व फटने की समस्या एवं रोकथाम

फल गिरने व फटने के अनेक कारण हो सकते हैं जैसे-पोषक तत्वों की कमी, कीट व बीमारियों का प्रकोप, काट-छांट न करना, फूल-फल आने के समय सिंचाई करना, ज़मीन में नमी की कमी होना आदि। जब बेर गिरने की समस्या दिखाई दे तो 1.5 प्रतिशत यूरिया (15 ग्राम यूरिया प्रति लीटर पानी) व 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट (5 ग्राम ज़िंक सल्फेट प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें। फल फटने की समस्या पर नियन्त्रण हेतु पौधों को प्रचुर मात्रा में देसी खाद दें। लम्बे सूखे अन्तराल के बाद गहरी सिंचाई न करें। समस्या दिखाई देने पर 0.3 प्रतिशत (3 ग्राम बोरैक्स प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए।

आय

बेर की बागवानी से प्रति एकड़ 40000-75000 रुपये तक शुद्ध आय ली जा सकती है।

कीट, बीमारियां एवं रोकथाम

यद्यपि बेर की फल-मक्खी तथा सफेद चूर्णी रोग ही सबसे अधिक हानिकारक हैं तथापि अन्य कीट जैसे दीमक, लाख का कीड़ा, छाल खाने वाली सूण्डी तथा बीमारियां जैसे रतुआ, क्लैडोस्पोरियम लीफ स्पॉट, आल्टरनेरिया हानि पहुँचा सकते हैं।

क. कीट

1. फल-मक्खी : यह घरेलू मक्खी जैसी ही होती है। इसकी मादा मक्खी फलों के छिलके के नीचे अण्डे देती है। प्रभावित फल टेढ़े-मेढ़े होकर काने हो जाते हैं और मण्डीकरण योग्य नहीं रहते। साधारण फलों की तुलना में ऐसे फल पीले होकर गिर जाते हैं।

नियन्त्रण एवं सावधानियां

1. नवम्बर माह में जब 75-80 प्रतिशत फल बन चुका हो और बेर मटर के दाने समान हो जाएं तो पेड़ों पर 500 मि.ली. डायमेथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें व आवश्यकता पड़ने पर 15 दिन बाद दोहराएं। जनवरी मास में (यदि प्रकोप हो) 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई. सी व 5 किलो ग्राम गुड़ को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़कें।
2. मक्खी ग्रस्त फलों को प्रतिदिन इकट्ठा करें व ज़मीन में 2 फुट गहरा दबा दें या भेड़-बकरियों को खिला दें।
3. मई-जून व दिसम्बर-जनवरी में बाग में गहरी गुड़ाई या जुताई करें।

2. दीमक : जड़, छाल व तनों के क्षतिग्रस्त होने के फलस्वरूप पेड़ सूखकर मर जाते हैं। पौधारोपण के बाद 2-3 साल तक 30-45 दिन में एक बार आवश्यकतानुसार 10-20 मि.ली. क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. प्रति पौधा सिंचाई के साथ डालें।

3. सफेद चूर्णी रोग : इसे पाऊडरी मिल्ड्यू के नाम से भी जाना जाता है। इस का प्रकोप पत्ते व फल दानों पर होता है परन्तु पत्तों पर प्रकोप कभी-कभी ही देखा जाता है। प्रकोपित फल अथवा पत्तों पर सफेद पाऊडर-सा जमा हो जाता है। फलों की सतह खुरदरी व भूरे-काले रंग की हो जाती है। प्रभावित फल या तो गिर जाते हैं अन्यथा मण्डीकरण के लायक नहीं रहते और बागवानों को भारी आर्थिक हानि होती है।

नियन्त्रण

1 ग्राम केराथेन या 2 ग्राम सल्फैक्स प्रति लीटर पानी के हिसाब से प्रथम छिड़काव बेर मटर के दाने समान होने पर करें। आवश्यकता अनुसार एक-दो छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर और करें।

गिलोय की खेती

- **राजेश कुमार आर्य एवं आई. एस. यादव**
आनुवंशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गिलोय एक बहुवर्षीय उपयोगी लता है। इसका वनस्पति कुल मेनीस्परमेसी है। यह भारत के विभिन्न जंगलों में प्राकृतिक रूप में पाई जाती है। बाज़ार में यह गुडुची या गिलोय के नाम से जानी जाती है। इसे गुरबेल, अमृता, मधुपर्णी नामों से भी जानते हैं। जो बेल नीम वृक्ष पर बढ़ती है उसे नीम गिलोय कहते हैं। इस लता की विविध उपयोगिताओं को देखते हुए इसकी खेती न केवल व्यावसायिक रूप से अति लाभकारी पाई गई है अपितु औषधीय रूप से भी बहुत लाभकारी है। इसके वृक्ष की छाल भूरी अथवा पीलापन लिए सफेद रंग तथा पत्ते चौड़े आगे से नुकीले होते हैं। ग्रीष्म ऋतु में छोटे-छोटे फूल लगते हैं। फल शीत ऋतु में आता है। इसकी पत्तियाँ व शाखाएँ औषधि के रूप में काम में आती हैं। इसे सजावटी एवं सुन्दर बेल के रूप में बागों में भी लगाते हैं। यह 3000 मीटर ऊँचाई तक प्राकृतिक रूप से मिलती है।

औषधीय उपयोग: इसकी जड़ तथा पत्तियों का विभिन्न औषधियों के निर्माण में उपयोग किया जाता है।

1. इसकी जड़ वमनकारी होती है। इसका क्वाथ सांप के विष को दूर करता है।
2. सूखे फल के पाऊडर को घी या शहद के साथ मिलाकर एक टॉनिक का काम करता है। यह पीलिया व गठिया रोग में भी लाभ देता है।
3. इसकी पत्तियों में प्रोटीन की मात्रा काफी होती है। फास्फोरस व कैल्शियम भी विद्यमान है। इसके पत्तों का रस गठिया रोग में लाभदायक होता है।
4. गिलोय, सौंठ तथा वृहतपंचमूल क्वाथ प्रसूति ज्वर को ठीक करता है।
5. गिलोय, रस तथा कूष्माण्ड रस मिश्री के साथ लेने से अम्लपित्त में लाभ होता है।
6. गिलोय तथा सतावरी का क्वाथ पीने से श्वेतप्रदर रोग में लाभ होता है।
7. गिलोय तथा ब्राह्मी लेने से दिल की धड़कन नियंत्रित होती है।
8. गिलोय ब्राह्मी तथा शंखपुष्पी चूर्ण को आंवले के साथ लेने से रक्त चाप ठीक रहता है।

भूमि तथा जलवायु: इसकी खेती दोमट मिट्टी पर सफलता पूर्वक की जा सकती है। यह रेतीली, बंजर व पथरीली भूमि में भी उग आती है। इसके लिए पानी का निकास अच्छा होना चाहिए। क्षारीय, अम्लीय तथा दलदल वाली भूमि इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं है। ज़मीन का पी. एच. 6.5 से 7.5 तक होना चाहिए। इसके लिए सामान्य वर्षा होनी चाहिए। अधिक ठण्ड व गर्म जलवायु पौधे की बढ़वार पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

खेत की तैयारी: एक बार मिट्टी पलटने वाले हल से खेत की जुताई करनी चाहिए। इसके बाद 2-3 जुताइयां ट्रैक्टर से करनी चाहिएं। खेत समतल व ढेले रहित होना चाहिए।

खाद: 4-6 टन गोबर की खाद प्रति एकड़ पर्याप्त रहती है।

बीज की मात्रा: इसकी खेती कलम द्वारा की जाती है। लगभग 6-7 इंच लंबी 10,000-12,000 कलमें प्रति एकड़ में काफी होती है।

कलम लगाने की विधि: कलमों को नर्सरी में मई जून में लगाते हैं तथा 4-6 सप्ताह में जड़ें निकल आती हैं। लगाने से पहले कलमों को रूटेक्स नामक हार्मोन से उपचारित कर लेना चाहिए। गिलोय की बेल दक्षिणावृती कुण्डल द्वारा पेड़ पर चढ़ती है। इसके लिए नीम का पेड़ अति उत्तम माना जाता है। इसके अलावा जटरोफा व संहजना भी लगाया जा सकता है। इसको खेत में लगा दिया जाता है। एक वर्ष के बाद इन पौधों के पास गिलोय की कलम लगाई जाती है। कलम की मोटाई उंगली की मोटाई जितनी होनी चाहिए। नीम, जटरोफा, सहजन के वृक्षों के पास गिलोय की कलम फरवरी-मार्च या जुलाई-अगस्त में लगाते हैं।

सिंचाई: कलम लगाने के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए। बाद में 15-20 दिन के अंतर पर सिंचाई लगाएँ। जब कलम से लता चल जाए फिर आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए।

पौध संरक्षण: अब तक गिलोय पर कीड़े व बीमारियों का प्रकोप नहीं पाया गया है। अत: किसी विशेष दवाई की आवश्यकता नहीं है।

कटाई: इसकी पत्तियां नवम्बर-दिसम्बर में झड़नी शुरू हो जाती हैं। इसकी बेल सरलता से सूखती नहीं है। बेल की कटाई भूमि की सतह से 1 फुट ऊपर अप्रैल-मई महीने में करनी चाहिए। जल्दी सुखाने के लिए बीच में से चीर कर छोटे-छोटे टुकड़े कर तेज़ धूप में सुखाना चाहिए। सुखाकर बोरियों में भंडारण कर लें। गिलोय जितनी पुरानी होती है उसका उतना ही महत्व होता है। इसलिए 4-5 साल पुरानी बेल को ही काटना चाहिए।

पैदावार: पाँच वर्ष बाद एक पौधे से लगभग 10 किलो ताज़ी बेल का उत्पादन मिलता है। अत: 100 से 120 क्विं/एकड़ हरी गिलोय मिलती है। शुष्क बेल की पैदावार लगभग 8-10 क्विं प्रति एकड़ हो जाती है और मण्डी में इसका मूल्य लगभग 10-15 रु. प्रति कि.ग्रा. है। इसके अलावा सहारा देने वाले पौधों से भी अतिरिक्त आय होती है।

आय: कुल मिलाकर 5 वर्ष बाद एक एकड़ से लगभग 1 लाख रुपए तक की आमदनी हो सकती है।

आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें।

- सह-निदेशक (प्रकाशन)

जैविक उर्वरक: आधुनिक कृषि प्रणाली की व्यापक आवश्यकता

- **कविता रानी, लीला वती एवं कविता**[1]
सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के नित्य नवीन आविष्कारों ने मनुष्य के जीवन को सुगम एवं सरल बनाने में विशेष योगदान निभाया है। यद्यपि कृषि रसायनों में निरंतर उन्नति ने वर्तमान भारतीय कृषि उत्पादन को नए आयाम दिए हैं किन्तु उनके अत्यधिक प्रयोग से उत्पन्न दुष्प्रभावों को भी नकारा नहीं जा सकता। रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग के बहुसंख्य दुष्प्रभाव हैं, जैसे पर्यावरण प्रदूषण, जिसमें मुख्य रूप से मृदा प्रदूषण, वायु प्रदूषण, और जल प्रदूषण हैं। किसानों की रासायनिक कीटनाशकों पर निरंतर निर्भरता ने मृदा के स्वास्थ्य पर प्रचंड प्रभाव डाले हैं। मृदा स्वास्थ्य से समझौता करना भोजन के पोषक मान से खिलवाड़ करने जैसा है। रासायनिक कीटनाशक भोजन के पोषक मान को ही कम नहीं करते अपितु इसको दूषित भी कर देते हैं। निरंतर नए शोधों ने यह सिद्ध कर दिया है कि रासायनिक कीटनाशकों के अवशेष भोजन में पाए जाते हैं जिसके माध्यम से यह हमारे शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। अत: जैविक खेती को एक अच्छे विकल्प के रूप में तलाशा जा सकता है जो मृदा एवं मनुष्य दोनों की सेहत के लिए महत्वपूर्ण है। जैविक खेती का परम उद्देश्य स्थायी कृषि की कार्यप्रणाली विकसित करना होता है ताकि वातावरण संरक्षण, मृदा अवकर्माण, भूरक्षण, मृदा की जैविक विविधता के संरक्षण जैसी समस्याओं पर संज्ञान लेते हुए इनका यथासंभव समाधान विकसित करना है।

सूक्ष्मजीवों (जीवाणु, कवक और शैवाल) की विभिन्न प्रजातियां प्राकृतिक उत्पादों को उपलब्ध कराने की अनूठी क्षमता रखते हैं जो खतरनाक रसायनों के स्थान पर कृषि में उपयोग करने के लिए बेहतर विकल्प हैं। इन सूक्ष्मजीवों को ''जैविक उर्वरक'' कहा जाता है जिन्हें नाइट्रोजन फिक्सिंग, फॉस्फोरस की घुलनशीलता और लामबंदी, कार्बनिक सामग्री में वृद्धि, संतुलित सी/एन अनुपात, पोषक अवशोषण में वृद्धि, पौधों के रोगाणुओं के खिलाफ विरोधी गतिविधि और पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने वाले हार्मोन के उत्पादन में उपयोग किया जाता है। जैविक उर्वरक कृषि रसायन के स्थान पर एक बेहतर विकल्प का प्रतिनिधित्व करते हैं क्योंकि वे सस्ते और पर्यावरण के अनुकूल होते हैं।

जैविक उर्वरकों को उनकी प्रकृति और कार्य के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में समूहीकृत किया जा सकता है।

ये जैविक उर्वरक पौधों की वृद्धि और फसल उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जैविक उर्वरकों के विभिन्न लाभ इस प्रकार हैं:

- पौधों में अजैविक तनाव सहनशीलता।
- पौधों के उत्थान के लिए पोषक उपलब्धता में वृद्धि।
- पौधों के विकास नियामकों का उत्पादन।
- हार्मोन का उत्पादन।
- सिडरोफोर का उत्पादन जो राइजोस्फियर में हानिकारक जीवाणुओं के विकास को रोकते हैं।
- अस्थिर कार्बनिक यौगिकों का उत्पादन जो रोगाणुरोधी होते हैं और पौधों के विकास को बढ़ावा देने में मदद करते हैं।
- एंजाइमों का उत्पादन जो राइजोस्फियर में रोगजनक जीवाणुओं को मारते हैं।
- फॉस्फेट, सल्फर, लौह और तांबा जैसे अन्य पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि।
- राइजोस्फियर में फायदेमंद जीवाणु और कवक जोड़ने में मदद करते हैं।

जैविक उर्वरकों के अच्छे प्रभाव को ध्यान में रखते हुए कृषि में उनके कार्यान्वयन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

समूह	सूक्ष्मजीव
नाइट्रोजन फिक्सिंग सूक्ष्मजीव	
मुक्त जीवी	एजोटोबैक्टर, अनाबेना, नोस्टोक
सहजीवी	राइजोबियम, फ्रैंकिया, अनाबेना अजोले
सहयोगी	एजोस्पाइरिलम
फॉस्फोरस की घुलनशीलता बढ़ाने वाले सूक्ष्मजीव	
जीवाणु	बेसिलस अमाइलोलिक्विफेसिन्स, बेसिलस सरकुलन्स, बेसिलस पोलिमिग्जा, बेसिलस मेगाटिरिअम, बेसिलस पुल्विफेसिन्स, बेसिलस सबटिलीस, सिटरोबैक्टर, स्यूडोमोनास स्ट्रिएटा, राइजोबियम
कवक	एस्परजिलस अवामोरी, एस्परजिलस नाइजर, फ्युजेरिअम , पेनिसिलियम ओग्जेलिकम , पेनिसिलियम इटेलीकम
फॉस्फोरस लामबंदी बढ़ाने वाले सूक्ष्मजीव	
आरबसकुलर माइकोराइजा	अकौलोस्पोरा, गीगास्पोरा, ग्लोमस
एक्टोमाइकोराइजा	एमानिटा, खुमी, लैकेरिया, पिजोलिथस
अरिकोइड माइकोराइजा	पेजिजेलेरेसी
आर्किड माइकोराइजा	राइजोक्टोनिया सोलेनी
पौधों के विकास को बढ़ावा देने वाले सूक्ष्मजीव	
हार्मोन स्रावित करने वाले सूक्ष्मजीव	एसीटोबैक्टर डाइएजोटरोफिकस, एजोस्पाइरिलम ब्रेसिलेन्स, एजोस्पाइरिलम लिपोफेरम, हरबोस्पिरिलम, राइजोबियम
रोगाणुरोधी	स्यूडोमोनास फलोरिसेन्स, एजोस्पाइरिलम, बेसिलस

[1]कृषि अर्थशास्त्र विभाग, चौ चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जैव उर्वरक (माईकोराइज़ा) : भूमि की सेहत का वरदान

- **जगदीश प्रसाद एवं दिनेश कुमार**
सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जैव उर्वरक को जीवाणु खाद कहते हैं क्योंकि यह एक जीवित उर्वरक है, जिसमें सूक्ष्म जीव विद्यमान होते हैं। जैव उर्वरक के प्रयोग करने से पौधों को नाइट्रोजन, अमोनिया के रूप में व मिट्टी में पहले से उपस्थित अघुलनशील पोषक तत्व आसानी से घुलनशील अवस्था में परिवर्तित हो कर पौधों या फसलों को उपलब्ध होते हैं। जीवाणु प्राकृतिक अवस्था में पाये जाते हैं व इनके प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति, भूमि का स्वास्थ्य और इसमें पाये जाने वाले जीवों का स्वास्थ्य ठीक रहता है एवं पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता। जैव उर्वरक रासायनिक उर्वरकों के पूरक हैं, परन्तु विकल्प नहीं है। रासायनिक उर्वरकों के लगातार प्रयोग से आज हमारी भूमि और वातावरण पर प्रतिकूल प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। अनेक प्रकार के जैव उर्वरकों के साथ माइकोराइज़ा का अपना ही महत्वपूर्ण स्थान है। यह संतहनी पौधों को जड़ों के साथ कवक के साथ सह-सम्भव संयोजन है, यह फास्फोरस को तेज़ी से बढ़ाने में उपयोगी है, यह फल वाली फसलों की पैदावार के लिए बहुत ही लाभदायक है, इसको बीज उपचार, कंद उपचार, पौध जड़ उपचार और मिट्टी उपचार विधि के द्वारा किसी भी प्रकार प्रयोग किया जा सकता है।

माइकोराइज़ा किसी कवक तथा वाहिक पादपों की जड़ों के बीच परस्पर सहजीवी सम्बन्ध को कहते हैं, इस प्रकार के सहजीवी सम्बन्ध में कवक, पौधे की जड़ों पर आश्रित होते हैं तथा मृदा जीवन का एक महत्वपूर्ण घटक होते हैं।

माइकोराइज़ा का अर्थ कवक मूल होता है इनका जीवन मृतोपजीवी की भांति होता है, इनकी जड़ों में अनेक कवक पाये जाते हैं जो पादपों में कार्बनिक पदार्थों के अवशोषण में सहायक होते हैं। एक ही पादप मूल जड़ पर कवकों की कई जातियां पाई जाती हैं या फिर एक ही जाति की कवक अनेक पादप जातियों की मूल जड़ों पर पाया जाता है।

माइकोराइज़ा मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है :

1. एक्टोट्रोपिक माइकोराइज़ा : इसमें कवक तन्तु पोषक पौधे की जड़ की सतह पर एक परत बना लेते हैं। कवक तन्तु बाद में पौधे की जड़ की एपीब्लेमा में प्रवेश करके एक जाल बना लेते हैं जो कवक तन्तु जड़ की सतह पर होते हैं वो फिर कार्बनिक पदार्थ युक्त मिट्टी में प्रवेश करके कुछ एन्जाइम्स व एसिड का स्त्रावरण करके अघुनशील कार्बनिक पदार्थों को घुलनशील बना कर अवशोषित कर लेते हैं और पौधों की जड़ों तक पहुंचा देते हैं व पौधे इनका पोषण करते हैं। इस प्रकार के पौधों की जड़ों पर मूल रोम नहीं पाये जाते हैं, जैसे पाइनस (कोनीफरेस) ओक (फगेसी) आदि। कुछ पौधों की जड़ों में पूर्ण मृतोपजीवी माइकोराइज़ा पाया जाता है जैसे कि मोनोट्रोपा तथा सारकोडूस। क्योंकि इन पौधों में क्लोरोफिल का अभाव होता है व सम्पूर्ण पोषण कवक के माध्यम से होता है। इस प्रकार पोषक एवं कवकों का सम्बन्ध बहुत ही लाभकारी होता है, क्योंकि माइकोराइज़ा वाले पादपों में खनिज लवणों को अवशोषित करने की क्षमता में भी वृद्धि हो जाती है।

2. एण्डोट्रोपिक माइकोराइज़ा : इसमें कवक तन्तु पोषक पौधों की जड़ पर परत नहीं बनाते हैं अपितु जड़ की सतह पर फैले रहते हैं। कवक तन्तु जड़ की कार्टेक्स की कोशिकाओं में भीतर तक प्रवेश कर जाते हैं और अन्तराकोशिकीय अवकाशों में वृद्धि करते हैं किन्तु कुछ कवक तन्तु मिट्टी में भी प्रवेश कर जाते हैं। ये कवक तन्तु मृदा से कार्बनिक पदार्थों, खनिजों तथा नाइट्रोजनी पदार्थों का अवशोषण करके पोषक पौधों तक पहुंचाते हैं और कवकों को पोषक पौधे से शर्कराएं तथा पोषक तत्व प्राप्त होते हैं व कवकों से पौधों को कोई हानि भी नहीं होती है। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि यदि पोषक पौधों को तथा इनमें मिलने वाले कवकों को अलग-अलग विकसित किया जाये तो दोनों की वृद्धि अत्यधिक धीमी हो जाती है। यह भी देखा गया है कि हरे आर्किड्स के बीज को यदि कवक से उपचारित न किया जाए तो उनका अंकुरण भी नहीं होता है ऐसा भी अनुमान है कि शिशु नवोद्भिद इन कवकों द्वारा अपना पोषण ग्रहण करते हैं किन्तु पौधों की परिपक्वता के बाद इन कवकों की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं होती।

माइकोराइज़ा गोबर अथवा मल पदार्थों में अघुलनशील कार्बनिक अथवा अकार्बनिक रूपों में कार्बोनिक फास्फोरस जो पौधों को अप्राप्त होता है, प्राय: अकार्बनिक फास्फोरस में बदल जाता है। अधिकतर मूत्र में पोटाश पाया जाता है। अविलेय कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा पोटेशियम के लवण विच्छेदन के बाद घुलनशील अवस्था में बदल जाते हैं, जो पौधों द्वारा अवशोषित कर लिये जाते हैं।

माइकोराईज़ा का प्रयोग वानिकी कृषि में किया जाता है। यह भूमि में पाया जाता है और इसको मृदा से पृथक कर लिया जाता है। इसको पौधों की जड़ों के प्रभावी क्षेत्र से अलग किया जाता है इसमें प्राथमिक मोकुलम के रूप में इसके बीजाणु कवक जाल, सवंमित जड़ों का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार पृथक किये गये प्रारम्भिक संबधों को संवहनी परपोषी पादप के साथ गमलों में बर्धि किया जा सकता है। गमलों में प्राय सबस्ट्रेट बालू भूमि जिसमें थोड़ी मात्रा में नमी हो को 1:1 w/w में लिया जाता है। हाल ही के वर्षों में कृत्रिम रूप से निर्मित माइकोराइज़ा के प्रयोग ने इसके महत्व को इसकी बहुउद्देशीय भूमिका जैसे कि पौधों में वृद्धि, पर्यावरण प्रतिरोधकता, रोगाणु, हानिकारक जीवों व मिट्टी सम्बन्धी प्रतिरोधकता इत्यादि और अधिक बढ़ा दिया है।

जैव उर्वरक माइकोराइज़ा के लाभ

1. पौधों की पोषक जड़ों की लम्बाई क्षेत्रफल व पोषक तत्वों के अवशोषण को बढ़ाता है। अचलायमान पोषक तत्व जैसे कि फास्फोरस, ज़िंक, कॉपर व चलायमान पोषक तत्व जैसे कि सल्फर, कैल्शियम, पोटाश, लोहा, मैंगनीज़ व नाइट्रोजन तत्वों की उपलब्धता बढ़ाता है।
2. माइकोराइज़ा पौधों की पानी अवशोषित करने की क्षमता को बढ़ाता है।
3. क्षारीय भूमि में पौधों को भली प्रकार वृद्धि करने में मदद करता है।
4. भूमि में उर्वरा शक्ति को बढ़ाता है।
5. इससे बीज का अंकुरण अच्छा व जल्दी होता है।
6. पौधों की टहनियों में फुटाव जल्दी व अधिक होता है।
7. मिट्टी में ह्यूमस की मात्रा में वृद्धि होती है व मिट्टी की भौतिक व रासायनिक ढांचे में सुधार लाता है।
8. इनके प्रयोग से 15-20 प्रतिशत तक अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।
9. मिट्टी की क्षारीय स्थिति में सुधार होता है

प्रयोग में सावधानियां

1. जैव उर्वरक को हमेशा छायादार स्थान पर रखें।
2. फसल के अनुसार चुनाव करें।
3. दी गई हिदायतों के अनुसार उचित मात्रा में प्रयोग करें।

[1]बागवानी विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

वैज्ञानिक विधि द्वारा – कपास के मुख्य रोगों का उपचार

- **मनमोहन सिंह, अनिल कुमार एवं राजबीर सांगवान**
कपास अनुभाग, आनुवंशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

पत्तों एवं जड़ पर लगने वाले रोग मुख्यत: कपास में लगने वाले रोग हैं। पत्तों पर लगने वाले रोगों में पत्ता मरोड़ रोग मुख्य है। इसके पश्चात् कोणदार धब्बों का जीवाणु रोग भी महत्वपूर्ण है। जड़ में लगने वाले रोगों में जड़ गलन तथा झुलसा रोग मुख्य है। इसके अतिरिक्त टिण्डा गलन जोकि फफूंद, जीवाणु तथा कीड़ों द्वारा उत्पन्न होता है, अधिक बरसात में एक महत्वपूर्ण समस्या का रूप धारण कर लेता है। इसलिए यह अतिआवश्यक है कि इन रोगों की सही पहचान कर उचित रोकथाम की जा सके।

पत्तों के मुख्य रोग व उनकी रोकथाम

पैराविल्ट : यह वर्तमान समय में कपास का मुख्य रोग है। यह समस्या आमतौर पर अगस्त से अक्तूबर माह के बीच आती है। इसका मुख्य कारण लम्बे समय तक सूखा रहने के पश्चात् सिंचाई देना व वर्षा का होना है। रेतीली भूमि में इसका अधिक प्रकोप होता है। इस समस्या के कारण पौधों के पत्ते अचानक मुरझा जाते हैं और पौधे शीघ्र सूखने लगते हैं लेकिन पौधे की जड़ें सामान्य रहती हैं और इसमें कोई रोगाणु संलिप्त नहीं होता। इस समस्या के लक्षण दिखाई देने के 48 घंटों के अन्दर कोबाल्ट-क्लोराइड 2.0 ग्राम/200 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

जीवाणु अंगमारी या कोणदार धब्बों का रोग : यह रोग पौधे के सभी भागों पर अपने लक्षण दिखाता है। इसके मुख्य लक्षण हैं : टहनियों पर धब्बे, पत्तों पर कोनेदार धब्बे व टिण्डों पर भी धब्बे पाए जाते हैं। इस रोग के लक्षण पत्तों पर कोणदार जलसिक्त (पानीदार) धब्बों के रूप में दिखते हैं। ये गहरे-भूरे होकर किनारों से लाल या जामुनी रंग के हो जाते हैं व कभी-कभी आपस में मिले हुए होते हैं व तनो पर लम्बे या अण्डाकार काले रंग के धब्बे बनते हैं। प्रकोप की अवस्था में कोणदार धब्बे शिराओं के पास सिमट जाते हैं और इस प्रकार शिराएं काली पड़ जाती हैं जिससे कि पत्ता सिकुड़ जाता है और पीला पड़ कर गिर जाता है।

पत्ता मरोड़ रोग : यह कपास का सबसे मुख्य रोग है। सबसे पहले ऊपर की कोमल पत्तियों पर इसका असर दिखाई पड़ता है, पत्तियां ऊपर की तरफ मुड़ कर कप जैसी आकृति की हो जाती हैं और कहीं-कहीं पर पत्तियों की निचली तरफ नसों पर पत्ती की आकार की बढ़वार भी दिखायी देती है। ऐसे पौधे छोटे रह जाते हैं, इन पर फूल, कली व टिण्डे नहीं लगते, इनकी बढ़वार एकदम रुक जाती है और इसका उपज पर बहुत विपरीत असर पड़ता है। यह रोग एक जैमिनी विषाणु द्वारा होता है। सफेद मक्खी इस रोग को फैलाने में सहायक है। बीज, भूमि या छुआछूत द्वारा यह रोग नहीं फैलता है। यह रोग पौधे की किसी भी अवस्था में आ सकता है इस रोग से 80-90 प्रतिशत तक फसल में नुकसान हो सकता है यदि यह रोग फसल की प्रारम्भिक अवस्था में आ जाये तो अधिक नुकसान होता है और फसल की पछेती अवस्था में आये तो पैदावर पर लगभग कोई फर्क नहीं पड़ता।

जब यह रोग अधिक हो वहां पर देसी कपास बोई जाए क्योंकि देसी कपास में यह रोग नहीं लगता। सफेद मक्खी का पूर्ण रूप से नियन्त्रण रखें। कई प्रकार के खरपतवार भी इस रोग को फैलाने में सहायक हैं। इसलिए खेतों को, आसपास के क्षेत्रों को तथा नालियों आदि को बिल्कुल साफ रखना बहुत आवश्यक है। भिण्डी पर भी यह रोग पाया जाता है। इसलिए जहां पर यह रोग लगता हो वहां पर भिण्डी की काश्त न करें। इस रोग की रोकथाम के लिए कोई फफूंदीनाशक उपयोगी नहीं है इसके बचाव के लिए कुछ सावधानियां रखनी आवश्यक हैं :

- फसल की अगेती बिजाई।
- रोगरोधी किस्मों का प्रयोग।
- सफेद मक्खी को नियंत्रण में रखना।
- खेत के आसपास खरपतवार को नहीं पनपने देना।

माइरोथिसियम पत्ता छेदक धब्बा रोग : यह रोग *माइरोथिसियम रोडीडम* नामक फफूंद से होता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण रोगी पत्तों पर लाल बैंगनी झलक लिए हल्के-भूरे रंग की फफूंद की बिन्दियों वाले धब्बे दिखाई पड़ते हैं। आरम्भ में इन धब्बों का आकार पिन के सिर जैसा होता है। प्रकोप की अवस्था में धब्बे आपस में मिल जाते हैं। प्राय: रोगग्रस्त भाग पत्तों से गिर जाते हैं। इससे पत्तों में छेद हो जाता है। ऐसे ही लक्षण फल (टिण्डे) के नीचे की छोटी पत्ती और कभी-कभी टिण्डों पर दिखाई देते हैं।

एन्थ्रैक्नोज़ : यह बीमारी पौधे के हर भाग पर पौधे की किसी भी अवस्था में आती है। शिशु पौधे पर लाल-लाल धब्बे बनते हैं और सारे तने पर छा जाते हैं जिससे पौधे मर जाते हैं। जलसिक्त, अन्दर धंसे धब्बे बनते हैं जिससे किनारे लाल रंग के होते हैं और बाद में नारंगी रंग का फफूंद बीजाणु इन पर छा जाता है। रोगग्रस्त टिण्डों पर धब्बे अन्दर तक फैल जाते हैं और डोडियों पर गुलाबी पिण्ड दिखाई देते हैं।

ग्रेमिल्ड्यू व दहिया रोग : यह रोग देसी कपास में लगता है जब फसल लगभग पक जाती है और अधिकतर कपास पहले ही चुन ली जाती है। मिल्ड्यू के धब्बे पुराने पत्तों की निचली सतह पर छोटे, अनियमित व सफेद कोनेदार दिखाई पड़ते हैं। रोग ग्रस्त पत्ते जल्दी ही गिर जाते हैं।

कपास के रोगों की सामूहिक रोकथाम

बीज उपचार : पौधों को भूमि से उत्पन्न बहुत से फफूंदों से तथा बीज में रहने वाले जीवाणु से बचाव के लिए फफूंदनाशक दवाइयों से उपचारित करें।

छिड़काव कार्यक्रम : बिजाई के 6 सप्ताह बाद अथवा जून के अन्तिम या जुलाई के पहले सप्ताह में स्ट्रैप्टोसाइक्लिन (6-8 ग्राम प्रति एकड़) व कॉपर ऑक्सीक्लोराईड (600-800 ग्राम प्रति एकड़) को 150-200 लीटर पानी में मिलाकर 15-20 दिन के अन्तर पर लगभग चार छिड़काव करें।

यदि गन्धक 10 कि.ग्रा./एकड़ धूड़ें या बाविस्टिन (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें तो देसी कपास के ग्रैमिल्ड्यू रोग पर नियन्त्रण पाया जा सकता है।

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

कृषि में पोटाश का महत्त्व

- **सुशीला सिंह, सीमा सांगवान[1] एवं जयन्त सिंधु**
रसायन विज्ञान विभाग, मौलिक विज्ञान एवं मानविकी महाविद्यालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कृषि उपज बढ़ाने के लिए उर्वरक एक उपयुक्त रसायन है। बार-बार फसल लेने से मृदा में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है इसलिए उर्वरक, पौधों के लिए आवश्यक तत्वों की तत्काल पूर्ति के साधन हैं। पौधों में प्रयुक्त तीन पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटेशियम) में पोटाश बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि पोटाश में उपलब्ध पोटेशियम जल में आसानी से घुल जाता है। देश-विदेश में विभिन्न स्थानों में कृषि के क्षेत्र में पोटाश पर किए गए शोध से इसकी निम्न उपयोगिता का पता चला है :

1. पोटाश फसलों की वृद्धि में अन्य पोषक तत्वों की क्षमता बढ़ाता है।
2. यह पौधों की जड़ों में समुचित वृद्धि करके, फसलों को उखड़ने से बचाता है।
3. पोटाश के प्रयोग से फसलों में प्रोटीन निर्माण में वृद्धि होती है।
4. पोटेशियम साठ से अधिक उत्प्रेरकों की क्रियाशीलता को बढ़ाता है।
5. यह फलों में विटामिन सी की मात्रा बढ़ाता है।
6. यह फसलों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व ज़िंक की उपयोग क्षमता बढ़ाता है।
7. यह फसलों को सूखा, पाला की व्याधि से बचाव में मदद करता है।
8. यह फसल उत्पाद की गुणवत्ता में वृद्धि के अलावा भण्डारण अवधि में भी वृद्धि लाता है।
9. यह फलों के आकार, रंग व चमक में सुधार लाता है जिससे किसान को बाज़ार में उनका अधिक मूल्य मिलता है।
10. यह सरसों, मूंगफली जैसी फसलों में तेल निर्माण में सहायक है।

पौधों में पोटाश की कमी के प्रमुख लक्षण :

1. खड़ी फसलों में पत्तियों का आकार छोटा होना।
2. पौधों की पत्तियों का किनारों से पीला पड़ना व सूख कर गिरना।
3. रोगों का प्रकोप बढ़ना।
4. पौधों की वृद्धि में कमी होना।
5. पौधों की जड़ों के विकास में कमी और सड़न जैसे लक्षण।
6. सिकुड़े दाने व कम उपज।
7. फलों, सब्जियों की गुणवत्ता में कमी।

फसलों में पोटाश का प्रयोग खेत की तैयारी के समय यानि बुवाई से ठीक पहले करना चाहिए। लेकिन बलुई मिट्टी में उगाई जाने वाली कम अवधि की फसलों में पोटाश की हानि रोकने के लिए किसानों को बुवाई के तीन चार सप्ताह बाद पोटाश का आंशिक प्रयोग करना चाहिए।

बाज़ार में पोटाश की उपलब्धता:

1. पोटाशियम क्लोराईड (KCl) /म्यूरिपेट ऑफ पोटाश (MOP)
2. पोटाशियम नाइट्रेट (KNO_3)
3. पोटाशियम सल्फेट (K_2SO_4)
4. पोटाशियम थायोसल्फेट ($K_2S_2O_3$)

अत: फसलों के उचित उत्पादन के लिए खेती में मिट्टी जाँच के आधार पर पोटाश की अनुशंसित मात्रा का प्रयोग करना चाहिए जिससे 20-25 प्रतिशत तक अधिक उपज लेकर आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

[1]सूक्ष्मजीवी विज्ञान विभाग, मौलिक विज्ञान एवं मानविकी महाविद्यालय

कृषि में माइकोराइज़ा की भूमिकाएं

- **कविता रानी, कविता[1] एवं कृष्ण यादव[2]**
सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

माइकोराइज़ा कवक और पौधों की जड़ों के बीच एक सहजीवी सम्बन्ध है। माइकोराइज़ा पौधों की जड़ों के आस-पास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। माइकोराइज़ल सम्बन्ध में, कवक मुख्य पौधे से मूल ऊतकों का उपनिवेश करता है। पौधे प्रकाश संश्लेषण द्वारा शर्करा जैसे कार्बनिक अणुओं को बनाते हैं और उन्हें कवक को स्थानांतरित करते हैं। फलस्वरूप, कवक पौधे के लिए आवश्यक पानी और खनिज पोषक तत्वों, जैसे कि फास्फोरस को मृदा से अवशोषित करके पौधे को स्थानांतरित करते हैं। माइकोराइज़ा कुछ ऐसे एन्जाइम्स भी स्रावित करते हैं जो हानिकारक रोगाणुओं को मार कर पौधों को रोगों से बचाते हैं। परिणामस्वरूप, माइकोराइज़ा विभिन्न तरीकों से पौधों के पोषण और मृदा स्वास्थ्य के कायाकल्प में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। माइकोराइज़ा की विभिन्न भूमिकाएं निम्नलिखित हैं:

शर्करा-पानी / खनिज विनिमय : शर्करा को उनके स्रोत (आमतौर पर पत्तियों) से जड़ ऊतक और पौधे के कवक भागीदारों तक स्थानांतरित किया जाता है। बदले में पौधे, पानी और खनिज पोषक तत्वों के लिए माइसेलियम की उच्च अवशोषक क्षमता का लाभ प्राप्त करते हैं। कवक माइसेलियम का सतह क्षेत्र बड़ा होता है एवं ये पौधों की जड़ों के बाल की तुलना में अधिक लंबे और अधिक महीन होते हैं जिसके परिणामस्वरूप ये मृदा की अधिक गहरी परतों में से भी पानी और खनिज लवणों को अवशोषित करने में पौधों की सहायता करते हैं।

रोग, सूखा और लवणता प्रतिरोध में सहायक : माइकोराइज़ा ऐसे एंजाइमों को उत्सर्जित करने के लिए जाना जाता है जो मृदा में पैदा होने वाले जीवों जैसे कि हानिकारक बैक्टीरिया, नेमाटोड आदि के लिए विषाक्त हैं। इसलिए माइकोरिज़ल पौधे अक्सर रोगों के प्रति अधिक प्रतिरोधी होते हैं। विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि माइकोरिज़ल संघों का परिणाम पौधों के प्राइमिंग प्रभाव में पड़ता है जो अनिवार्य रूप से प्राथमिक प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया के रूप में कार्य करता है। परिणामस्वरूप, माइकोरिज़ल संघों से पौधों में रक्षा प्रतिक्रियाएं मज़बूत होती हैं। इसके अलावा, माइकोराइज़ा में पौधों की तुलना में गहरी जड़ प्रणाली होती है जो गहरी मृदा से पानी को अवशोषित कर सकती है। इसलिए, ये सूखा और लवणता के प्रतिरोध में भी सहायता प्रदान करते हैं।

कीड़ों का विरोध : माइकोराइज़ल पौधे वाष्पशील कार्बनिक यौगिक (वीओसी) उत्सर्जित करते हैं जो कीट के शिकारियों को आकर्षित करते हैं, जिससे यह पौधों को कीट के हमले से बचाने में सहायता करता है। यह माइकोराइज़ल पौधों को समान वाष्पशील कार्बनिक यौगिकों का उत्पादन करने के लिए प्रेरित करता है जो असंक्रमित पौधों को कीट द्वारा लक्षित होने से बचाते हैं।

बंजर मृदा का उपनिवेशीकरण : बंजर मृदा में उगाए जाने वाले पौधे अक्सर पानी और खनिज लवणों के अभाव में नियमित रूप से वृद्धि नहीं कर पाते हैं। कवक के बीजाणु या माइसेलियम गहरी मृदा से पानी और खनिज पोषक तत्वों के अवशोषण में सहायता करते हैं। अत: पोषक तत्वों की कमी वाले पारिस्थितिक तंत्र में माइकोराइज़ा के बीजाणु या माइसेलियम प्रयोग करने से बंजर मृदा में आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति होती है जो पौधों की नियमित वृद्धि के लिए आवश्यक है।

अत: वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध हुआ है कि माइकोराइज़ा पौधों एवं मृदा के पोषण में और पौधों की रोगों से रक्षा करने में सक्षम है इसलिए इसका उपयोग अनाज की फसलों एवं फल-फूल वानिकी में सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

[1]कृषि अर्थशास्त्र विभाग, चौ. च. सि. ह. कृ. वि., हिसार।
[2]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ. च. सि. ह. कृ. वि., हिसार।

कपास में खरपतवारों की रोकथाम

- **विरेन्द्र सिंह हुड्डा, मीनाक्षी सांगवान एवं सतबीर पूनिया**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कपास हरियाणा प्रान्त के दक्षिणी पश्चिमी क्षेत्रों में उगाई जाने वाली खरीफ की मुख्य नकदी फसल है। कपास की फसल, खासकर बी. टी. कपास, में खूड से खूड व पौधे से पौधे का फासला अधिक होने व शुरू की अवस्था में कपास के पौधों की बढ़वार कम होने के कारण, खरपतवारों को उगने व पनपने का अनुकूल वातावरण मिलता है जिसके कारण कपास की फसल को भारी नुकसान पहुंचता है। यह खरपतवार केवल कपास की बढ़वार को ही नुकसान नहीं पहुंचाते अपितु मिलीबग, सांटा सूंडी व सफेद मक्खी जैसे कीड़ों को आश्रय दे कर फसल को नुकसान पहुंचाते हैं।

कपास के मुख्य खरपतवार

संकरी पत्ती वाले : मकड़ा, छोटा सांवक, बड़ी सांवक, मधाना, तकड़ी घास, कुत्ता घास, चिड़ियों का दाना आदि।

चौड़ी पत्ती वाले : सांठी (इटसिट), कोंधरा, भाखड़ी, हजारदाना, मकरू बेल, चौलाई, पलपोटण, कागारोटी, जल भंगड़ा, कुकर भंगड़ा, झिरणीया, गंधेली, कनकुआ, चिलमिल आदि।

सदाबहार: हिरणखुरी, डीला (मोथा), मोथा, बरु, कांस, बुई, ढाब आदि।

उपर्युक्त सभी खरपतवारों में सांठी, कोंधरा, डीला (मोथा), मकड़ा व सांवक सबसे अधिक नुकसानदायक खरपतवार हैं। सांठी खरपतवार कपास की फसल में 2-3 बार उगता है और उगने के 15 दिन बाद ही इस पौधे में फूल आ जाते हैं। इसका एक पौधा बढ़कर ज़मीन पर गलीचा-सा बना देता है और एक पौधे से लगभग 20 हज़ार बीज पैदा होते हैं जो कि ज़मीन पर गिरने के तुरन्त बाद भी उगने की क्षमता रखते हैं।

खरपतवारों की रोकथाम

- कपास की फसल में पहली सूखी गुड़ाई बिजाई के 20-25 दिन बाद व दूसरी पहला पानी लगाने के बाद करें।
- जब फसल 50- 60 दिन की हो जाये तो बैलों वाली त्रिफाली से या ट्रैक्टर के पीछे कल्टीवेटर लगाकर हलौड़ दें।
- बिजाई से पहले ट्रैफ्लान 48 ई. सी. (ट्राईफ्लुरालिन) की 800 ग्राम मात्रा या बिजाई के तुरन्त बाद 2-3 दिन के अन्दर स्टॉम्प 30 ई. सी. (पेंडीमेथालिन) की 1.5 लीटर मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से सांठी, कोंधरा, सांवक व मकड़ा खरपतवारों का अच्छा नियन्त्रण हो जाता है।
- कपास में खरपतवारों के नियन्त्रण हेतु, बिजाई के 40-45 दिन बाद सूखी गोड़ाई के पश्चात् ट्रैफ्लान 48 ई. सी. (ट्राईफ्लुरालिन) की 800 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ या स्टॉम्प 30 ई. सी. (पेंडीमेथालिन) की 1.5 लीटर मात्रा प्रति एकड़ को 250-300 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें तत्पश्चात् फसल में सिंचाई लगायें।
- जुलाई-अगस्त महीने में अधिक बरसात होने पर सांठी व सांवक जैसे खरपतवार उगने पर ग्रेमक्सान 0.3 प्रतिशत यानि 3 मि. ली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से या राउंड अप या ग्लाईसल (ग्लाईफोसेट) 0.5 प्रतिशत यानि 5 मि. ली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से नोज़ल पर हुड (प्रोटेक्टर) लगाकर छिड़काव करें।

सावधानियां

- खरपतवारनाशक की सिफारिश की गई मात्रा को पानी की सिफारिश की गई मात्रा (250 से 300 लीटर) में मिला कर शाम के समय पर ही छिड़काव करें। अगर ज़मीन में नमी की थोड़ी कमी हो तो पानी की मात्रा बढ़ा लें।
- ट्रैफ्लान (ट्राईफ्लुरालिन) या स्टॉम्प (पेंडीमेथालिन) के छिड़काव के समय खेत में अच्छी नमी अवश्य हो।
- ट्रैफ्लान (ट्राईफ्लुरालिन) का छिड़काव करने के बाद उसे हैरो, रोटावेटर या कल्टीवेटर चला कर ज़मीन की 2-4 सैं. मी. ऊपर वाली सतह में मिला कर ही कपास की बिजाई करें।
- फसल बड़ी होने पर की जाने वाली खरपतवारनाशक का प्रयोग केवल तब करें जब खेत में नमी हो।

अगर छिड़काव पम्प गेहूं की फसल में 2,4-डी के छिड़काव हेतु प्रयोग किया गया है तो कपास की फसल में छिड़काव करने से पहले पम्प को अच्छी तरह साबुन से धो कर ही प्रयोग में लाएं।

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951(ई) के तहत एक सूचना जारी की है कि 12 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स+ फंजीसाइड्स+हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 8 अगस्त 2018 से ही बन्द कर दिया गया है। अन्य छः कीटनाशकों का प्रयोग 31 दिसम्बर, 2020 से बन्द कर दिया जाएगा। इनकी सूची इस प्रकार है:

8 अगस्त, 2018 से प्रतिबंधित कीटनाशक

1. **बेनोमाईल** (Benomyl)
2. **कार्बाराइल** (Carbaryl)
3. **डाय जिनॉन** (Diazinon)
4. **फेनारिमोल** (Fenarimol)
5. **फेन्थियॉन** (Fenthion)
6. **लिन्यूरॉन** (Linuron)
7. **मैथॉक्सी इथाइल मरकरी क्लोराइड** (Methoxy Ethyl Mercury Chloride)
8. **मिथाइल पैराथियॉन** (Methyl Parathion)
9. **सोडियम सायनाइड** (Sodium Cyanide)
10. **थियोमेटॉन** (Thiometon)
11. **ट्रायडमॉर्फ** (Tridemorph)
12. **ट्राइफ्लूरालिन** (Trifluralin)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

जून मास के कृषि कार्य



फसलों में

कपास

कपास की फसल को पहला पानी देने से पहले एक गोड़ी अवश्य कर लें। इससे घास-फूस नष्ट हो जाते हैं तथा नमी कुछ और समय तक बनी रहती है। जहां तक संभव हो सिंचाई देर से करें। फसल की छंटाई करके फालतू पौधों को कतारों से निकाल दें। कतारों में पौधों की दूरी कम से कम 30 सैं.मी. व संकर कपास में 60 सैं.मी. रखें। साधारणत: कपास में पहला पानी बिजाई के 45-50 दिन बाद लगायें। कपास में बिजाई के 40-45 दिनों के बाद सूखी गुड़ाई के बाद स्टोम्प 1.25 लीटर प्रति एकड़ के 200-250 लीटर पानी में घोल से उपचार के पश्चात् सिंचाई करने से भी वार्षिक खरपतवारों का उचित नियन्त्रण हो जाता है।

2, 4-डी इस फसल के लिए अत्यंत घातक है। इसलिए ध्यान रखें कि जिन छिड़काव यंत्रों से 2, 4-डी पहले प्रयोग में लाया गया हो उन्हें फफूंदनाशक या कीटनाशक दवाओं के छिड़काव के लिए प्रयोग में न लायें। 2, 4-डी का संपर्क कपास के प्रयोग में लाए जाने वाले उर्वरकों, कीट व फफूंदनाशक दवाओं के साथ भी न होने दें। समस्या हो जाने पर प्रभावित कोंपलों (बन्दरपंजा) को 15 सैं.मी. काट दें तथा फसल में नत्रजन वाली खाद डालें एवं 2.5 प्रतिशत यूरिया तथा 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट के घोल का छिड़काव करें। कोंपलें काटने तथा यूरिया+ज़िंक सल्फेट के छिड़काव का काम एक सप्ताह बाद दोबारा करें।

चूरड़ा (थ्रिप्स) या माईट का प्रकोप होने पर 250 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 150 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। कोणदार

लेखक :

- एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
- अनिल गोदारा, विभागाध्यक्ष (बागवानी)
- धर्मबीर दुहन, सहायक वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान)
- तरुण वर्मा, सहायक वैज्ञानिक (कीट विज्ञान)
- रोहतास कुमार, सहायक वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
- वी. एस. हुड्डा, सहायक वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
- देवेन्द्र सिंह बिढान, सहायक प्राध्यापक (पशु उत्पादन प्रबन्धन)
- लीलावती, प्राध्यापक (सूक्ष्मजीव विज्ञान)
- राजेश दहिया, सहायक प्राध्यापक (गृह विज्ञान)
- सूबे सिंह, सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

धब्बों से बचाव के लिए प्रति एकड़ फसल पर 6 ग्राम स्ट्रैप्टोसाईक्लिन व 600 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराईड प्रति एकड़ 150 लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें। मीलीबग से बचाव के लिए नदी-नालों, सड़कों, मेढ़ों, खालों आदि के किनारों पर उगने वाले खरपतवारों, विशेषकर कांग्रेस घास को जलाकर नष्ट करें।

गन्ना

समय-समय पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें व खरपतवारों को नलाई करके निकाल दें।

गन्ने की फसल में नाइट्रोजन की तीसरी मात्रा इस महीने के अंत तक अवश्य डाल दें। गन्ने के खेत में चौथा पानी लगाने के बाद जब खेत में बत्तर आ जाए तो 45 कि.ग्रा. यूरिया प्रति एकड़ के हिसाब से डालकर ऊपर से गोड़ी कर दें या फिर यही मात्रा खरपतवार रहित खेत में पानी लगाने से पहले डालें और बाद में हल्का पानी लगा दें। मोढ़ी फसल में उपर्युक्त खादों की डेढ़ गुनी मात्रा डालें।

कांगियारी के प्रकोप को रोकने के लिए कांगियारीयुक्त दुमों के ऊपर बोरी चढ़ाकर सावधानी से काट लें और बाद में रोगी पौधों को जड़ से उखाड़ कर नष्ट कर दें। कांगियारीयुक्त दुमों से भरी बोरी को दस मिनट तक उबलते हुए पानी में रखकर कांगियारी के बीजाणुओं को नष्ट कर दें। इस कार्यक्रम को अभियान के रूप में अपनाएं।

यदि मोढ़ी फसल हो व कनसुआ का प्रकोप हो, तो 2.5 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. प्रति एकड़ फसल में सिंचाई के साथ दें। काली कीड़ी व पाइरिल्ला का आक्रमण होने पर 400 मि.ली. क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. या 160 मि.ली. डाईक्लोरवास 76 ई.सी. को 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। परजीवियों द्वारा पाइरिल्ला की रोकथाम करें। अधिक जानकारी के लिए समीप के कृषि विज्ञान केन्द्र या गन्ना अनुसंधान केन्द्र, जी. टी. रोड, करनाल या गन्ना विभाग के अधिकारियों से मिलें। माईट (अष्टपदी) को मारने के लिए 600 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। कुछ क्षेत्रों में चोटी बेधक (टॉप बोरर) काफी नुकसान पहुंचाता है। इसके लिए जून के अंतिम सप्ताह में 13 किलोग्राम कार्बोफ्यूरान 3 जी (फ्यूराडान) या 8 किलोग्राम फोरेट (थिमेट) 10-जी दानेदार कीटनाशक प्रति एकड़ डालकर तुरंत सिंचाई कर दें। यह उन्हीं खेतों में डालें जिनमें अप्रैल-मई में 5 प्रतिशत से अधिक पौधे कीटग्रस्त थे या फिर पिछले वर्ष 15 प्रतिशत से अधिक हानि थी। इन कीटनाशकों को यूरिया खाद में मिलाकर भी डाल सकते हैं।

बैसाखी मूंग

मूंग में 70-80 प्रतिशत फलियां पकने पर फसल की कटाई कर लें ताकि सावनी फसलों की बिजाई के लिए खेत खाली हो सकें।

गर्मियों में ली जाने वाली फसलों में हरा तेला, सफेद मक्खी और छोटी-छोटी सूण्डियों की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 250 मि.ली. डाईमेथोएट 30 ई.सी. या 250 मि.ली. ऑक्सीडेमिटोन मिथाईल 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

धान

धान की रोपाई इस माह से शुरू कर दें। इसके लिए खेत के चारों ओर डोलों को मज़बूत करें, खेत में अच्छी तरह पौध पनपने के लिए व पानी बनाए रखने के लिए खेत को अच्छी तरह कद्दू करके एकसार कर लें। यदि खेत में हरी खाद वाली फसल खड़ी हो तो जुताई करके पहले इसे दबा दें व फिर रोपाई करें। पौध को पंक्तियों में रोपें। लंबी किस्मों की रोपाई 20 ×15 सैं.मी. की दूरी पर करें। बौनी किस्मों की व पछेती हालत में लंबी बढने वाली किस्मों की रोपाई 15 सैं.मी. फासले की कतारों में व पौधों में भी 15 सैं.मी. की दूरी रखकर करें। ध्यान रखें कि पौध 2-3 सैं.मी. से अधिक गहरी न रोपें।

यदि पनीरी गारा किए खेत में लगाई जा रही है तो ऐसे खेतों में लगाने से पहले 20 कि.ग्रा. यूरिया और 60 कि.ग्रा. सुपरफास्फेट या 22 कि.ग्रा. डी. ए. पी. तथा 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ का छींटा लगाएं। 15 दिन की पनीरी होने पर 25 कि.ग्रा. यूरिया का छींटा देकर ऊपर से हल्का पानी लगाएं।

बौनी मध्यम अवधि वाली किस्में जैसे एच के आर 127, एच के आर 126, एच के आर 120, हरियाणा संकर धान 1, जया व पी आर 106 एवं मध्यम कम अवधि वाली किस्मों जैसे एच के आर 47, आई आर 64, एच के आर 46 में 130 कि.ग्रा. यूरिया, 150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट, 40 कि.ग्रा. म्युरेट ऑफ पोटाश तथा 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ तथा ज़िंक, फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की 1/3 मात्रा लेव बनाते समय शेष दो बार बराबर-बराबर मात्रा में रोपाई के 3 व 6 सप्ताह बाद दें। जबकि बौनी, कम अवधि वाली किस्मों, जैसे एच के आर 48 व गोबिन्द आदि में 105 कि.ग्रा. यूरिया, 150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट, 40 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश व ज़िंक सल्फेट की ऊपर बताई गई मात्रा प्रति एकड़ प्रयोग करें। नत्रजन की 1/3 मात्रा तथा फास्फोरस, पोटाश व ज़िंक सल्फेट की पूरी मात्रा खेत तैयार करते समय प्रयोग करें तथा 1/3 नत्रजन की मात्रा बिजाई के 21 दिन बाद व 1/3 मात्रा रोपाई के 42 दिन बाद प्रयोग करें। अगर खेत में ढैंचे की हरी खाद लगाई गई हो तो ऊपर बताई गई नत्रजन की 1/3 मात्रा कम कर दें।

लंबी बासमती धान में 50 कि.ग्रा. यूरिया, 75 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ प्रयोग करें जबकि बौनी बासमती में 80 कि.ग्रा. यूरिया, 75 कि.ग्रा./एकड़ सिंगल सुपर फास्फेट व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रयोग करें। फास्फोरस व ज़िंक सल्फेट की पूरी मात्रा खेत तैयार करते समय प्रयोग करें। लंबी बासमती में नत्रजन की आधी मात्रा रोपाई के 21 दिन बाद व शेष आधी मात्रा 42 दिन बाद डालें। जबकि बौनी बासमती में 1/3 नत्रजन खेत की तैयारी करते समय, 1/3, 21 दिन बाद व 1/3, 42 दिन बाद प्रयोग करें। ध्यान रहे कि नत्रजन उर्वरक उस समय दें जब खेत में पानी खड़ा न हो।

खरपतवारों की प्रारंभ से ही रासायनिक ढंग से रोकथाम के लिए पौध लगाने के 1-3 दिन बाद खड़े पानी में (4-5 सैं.मी. गहरा) प्रति एकड़ 12 कि.ग्रा. मचैटी दानेदार या बासालीन दानेदार सारे खेत में छिड़क दें या सैटर्न दानेदार केवल 6 किलोग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से रोपाई के 2-3 दिन बाद खड़े पानी में एकसार बिखेर दें या ब्यूटाक्लोर 50 ईसी (मचैटी, डेलक्लोर ई.सी., मिलक्लोर, नर्वदाक्लोर, कैप क्लोर, ट्रैप, तीर, हिल्टाक्लोर) या सैटर्न ई.सी. या स्टोम्प 30 ई.सी. में से किसी एक को प्रति एकड़ 1.2 लीटर के हिसाब से या अनिलोफॉस 30 ई.सी. (एरोजीन, अनिलोगार्ड, कन्ट्रोल एच) की 530 मिली. मात्रा या अनिलोफॉस 50 ई.सी. (अनिलोगार्ड) 325 मि.ली. या अनिलोफॉस 18 ई.सी. (रिको) 900 मि.ली. या प्रेटिलाक्लोर 50 ई.सी. (रिफिट इरेज) 800 मिली. या प्रेटिलाक्लोर 40 ई. डब्ल्यू (एरिजान) 1000 मिली. या प्रेटिलाक्लोर 6.0 प्रतिशत + पायरोजोसल्फयूरोन ईथाईल 0.15 प्रतिशत जी.आर. (इरोज 6.15 प्रतिशत दानेदार) 4.0 किग्रा. या ओक्साडायर्जिल (टोपस्टार 80 प्रतिशत घु.पा.) 50 ग्रा. मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से 60 किग्रा. सूखी रेत में मिलाकर रोपाई के 2-3 दिन बाद खड़े पानी में छिड़क दें। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियन्त्रण हेतु मेटसल्फ्यूरोन + क्लोरीम्यूरान (एलमिक्स 20 घु. पा.) का 8 ग्राम तैयारशुदा मिश्रण + 0.2 प्रतिशत सरफेक्टेन्ट या ईथाक्सी सल्फ्यूरान (सनराईस 15 घु. दाने) 50 ग्राम या 2, 4-डी एस्टर की 400 ग्राम (प्रोडेक्ट) का पौध रोपण के 20-25 दिन बाद 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें अथवा पिनोक्सुलाम (ग्रेनाईट 24 प्रतिशत एस.सी.) की 37.5 मिली. मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से 120 लीटर पानी में मिलाकर पौध रोपाई के 8-12 दिन बाद छिड़काव करें। छिड़काव करने से एक दिन पहले व एक दिन बाद खेत में पानी खड़ा न हो। धान में मिले जुले खरपतवारों के लिए 100 मिली. बिस्पाइरी बैक सोडियम (नोमिनी गोल्ड/तारक) 10 प्रतिशत एस एल को 200 लीटर पानी में घोलकर पौध रोपण या सीधी बिजाई के 15-25 दिन बाद प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़कें। छिड़काव करने से एक दिन पहले व एक दिन बाद खेत में पानी खड़ा न हो। ध्यान में रखें कि उपर्युक्त खरपतवारनाशकों में से केवल एक ही का प्रयोग एक बार ही करना होता है।

बीजजनित रोगों से बचाव के लिए बीजोपचार अवश्य करें। भारी व स्वस्थ बीज के चुनाव हेतु 10 प्रतिशत नमक के घोल (10 लीटर पानी में 1 कि.ग्रा. नमक) में बीज को थोड़ा-थोड़ा करके डालें। ऊपर तैरते हुए बीज तथा अन्य पदार्थों को बाहर निकालकर नष्ट कर दें। नीचे बैठे भारी बीज को साफ पानी में 3-4 बार धो लें ताकि बीज की सतह पर नमक का अंश न

रहने पाए और फिर बीजगत फफूंद व जीवाणुओं के निवारण के लिए फफूंदनाशक उपचार करें। इसके लिए 10 लीटर पानी में 10 ग्राम कार्बेन्डाज़िम (बाविस्टिन) व 2.5 ग्राम पौसामाईसिन या 1 ग्राम स्ट्रैप्टोसाइक्लिन घोल लें और इस घोल में 8 कि.ग्रा. लंबी किस्मों के व 12 कि.ग्रा. बौनी किस्मों के बीज को 24 घण्टे तक भिगोकर उपचारित करें। धान की पनीरी को उखाडने से 7 दिन पहले कार्बेन्डाज़िम 1 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से रेत में मिलाकर पनीरी में एक साथ बिखेर दें। ध्यान रहे पनीरी में उथला पानी हो। धान की पनीरी खड़े पानी में ही उखाड़ें। पौध शय्या में यदि पौध पीली पड़कर सफेद हो जाए तो 0.5 प्रतिशत हरा कसीस या फैरस सल्फेट के घोल का छिड़काव करें।

धान में जड़ की सूंडी की समस्या हो तो सेविडाल 4-जी या कार्बोफ्यूरान 3-जी या 4 कि.ग्रा. फोरेट 10-जी प्रति एकड़ डालें। दवाई एक सार डालने के लिए इनमें यूरिया खाद मिला दें।

बाजरा

बाजरा के बीजने का समय आ ही गया है। उन्नत संकर किस्मों, एच एच बी 50, 60, 67 (संशोधित), एच एच बी 94, 117 व एच एच बी 146, 197, 216, 223, 226, 234, 272 तथा मिश्रित एच सी 10 व 20 के बीज का अपने साधनों के हिसाब से प्रबंध कर लें। संकर बाजरे का बीज हर साल नया लेकर ही बोएं। वैसे तो 1-15 जुलाई तक का समय बाजरे की बिजाई का उत्तम समय है परंतु बारानी इलाकों में मानसून की पहली वर्षा पर ही बिजाई शुरू करें। खेत को 2 या 3 बार जोतकर फौरन सुहागा लगाकर अच्छी तरह तैयार करें ताकि घास-फूस न रहे व नमी बनी रहे। बारानी क्षेत्रों में वर्षा से पहले खेत के चारों तरफ खूब मज़बूत डोलें बनाएं ताकि खेत में पानी जमा हो जाए तो आगामी फसल के काम आए। एक एकड़ के लिए 1.5 से 2 कि.ग्रा. बीज चाहिए। खेत में सही उगाव के लिए बिजाई खूड़ों में इस तरह से करें कि बीज के ऊपर 2.0 सैं.मी. से अधिक मिट्टी न पड़े। दो खूड़ों का फासला 45 सैं.मी. रखें। वर्षा के मौसम में मेढ़ों पर बिजाई करना अच्छा होता है। इस तरीके की बिजाई के लिए विश्वविद्यालय के शुष्क खेती अनुसंधान केन्द्र द्वारा निर्मित मेढ़ों पर बीजने वाले हल का प्रयोग करें।

यदि असिंचित संकर बाजरा इस माह के अंत में बोने जा रहे हैं तो उसमें 16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, जोकि लगभग 35 कि.ग्रा. यूरिया से प्राप्त हो सकती है, बिजाई के समय डालें। यदि खेत में फास्फोरस की मात्रा मध्यम दर्जे से कम है तो इस ज़मीन में 50 कि.ग्रा. सुपरफास्फेट प्रति एकड़ के हिसाब से भी डालें। रेतीली व हल्की ज़मीन में 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट बिजाई के समय प्रति एकड़ अवश्य डालें।

सिंचित क्षेत्रों में संकर बाजरे में बिजाई के समय 25 कि.ग्रा. नत्रजन, 25 कि.ग्रा. फास्फोरस व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ डालें। इसके लिए बिजाई के समय 55 कि.ग्रा. यूरिया व 150 कि.ग्रा. सिंगल सुपरफास्फेट प्रति एकड़ डालें। बाकी नत्रजन को दो बार बराबर मात्रा में पौधों की छंटाई के बाद व सिट्टे निकलते समय डालें।

बिजाई से पूर्व बीजोपचार करना न भूलें। बीजोपचार के लिए 10 प्रतिशत नमक के घोल (10 लीटर पानी में 1 कि.ग्रा. नमक) में बाजरे के बीज को थोड़ा-थोड़ा डालकर हाथ से हिलाएं। चेपा के पिंड तथा तैरते हुए पदार्थों को निकाल कर नष्ट कर दें तथा नीचे बैठे हुए भारी बीजों को साफ पानी से 3-4 बार अच्छी तरह धोकर छाया में सुखा लें ताकि बीज पर से पानी सूख जाए और पुन: प्रति किलोग्राम बीज का 4 ग्राम थाइरम या मैटालैक्सिल 6 ग्राम से सूखा उपचार करके बोएं, जो किसी बीजोपचारी ड्रम या मिट्टी के घड़े आदि में किया जा सकता है। घड़े या ड्रम में दो-तिहाई बीज और आवश्यक अनुपात में दवा डाल देते हैं। यदि उपचार घड़े से करें तो घड़े के मुंह को पॉलिथीन या मोटे कपड़े से बांध लें और फिर बीज व दवा से भरे हुए घड़े या ड्रम को लगभग 10 मिनट तक अच्छी तरह हिलाएं ताकि दवा अच्छी तरह मिल जाए। अगेती बोई फसल, यानि जून के अंतिम या जुलाई के शुरू में बोई गई फसल में अरगट या चेपा का प्रकोप कम होता है।

बाजरे में खरपतवारों की रोकथाम रसायनों द्वारा भी की जा सकती है। बिजाई के तुरन्त बाद 400 ग्राम एट्राजीन 50 प्रतिशत घु.पा. प्रति एकड़ 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें। यदि बिजाई के तुरन्त बाद एट्राजीन का प्रयोग न कर सकें तो बिजाई के बाद 10-15 दिन के बीच में भी उतनी ही मात्रा प्रयोग कर सकते हैं।

अरहर

अरहर की कम समय में पकने वाली मानक (एच 77-216), यू पी ए एस-120, पारस (एच 82-1) अच्छी किस्में हैं जोकि 130-140 दिन में पक कर तैयार हो जाती हैं। इन सभी की बिजाई इस माह में पूरी कर लें। एक एकड़ के लिए लगभग 5-6 कि.ग्रा. बीज डालें। इन सभी किस्मों की बिजाई कतारों में 40 सैं.मी. की दूरी रखकर करें। यह और भी अच्छा रहेगा कि अरहर की दो कतारों के बीच के हिस्से में मूंग या उड़द की कम समय में पकने वाली किस्म की एक-एक कतार उगाई जाए। यदि ऐसा करना हो तो खूड़ों का फासला 50 सैं.मी. रखकर अरहर की बिजाई करें। बीज को राईजोबियम के टीके से उपचारित करके ही बोएं। जिन खेतों में गत वर्ष अंगमारी का प्रकोप रहा हो उनमें अरहर की खेती न करें।

अरहर की बिजाई करते समय 18 कि.ग्रा. यूरिया और 100 कि.ग्रा. सिंगल सुपरफास्फेट या इनके अभाव में 35 कि.ग्रा. डाइअमोनियम फास्फेट (डी. ए. पी.) प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई के समय ड्रिल करें। बीज को बोते समय राईजोबियम का टीका लगाने से पैदावार में वृद्धि की संभावना रहती है। इसके लिए एक एकड़ के बीज में एक टीका राइजोबियम का व एक टीका फास्फोबैक्टीरिया का बिजाई से पहले लगाना चाहिए।

मूंगफली

मूंगफली की बिजाई इस माह के अन्तिम सप्ताह से शुरू कर देनी चाहिए तथा जुलाई के प्रथम सप्ताह तक पूरी कर लें। इसकी उन्नत किस्मों, मुख्यत: गुच्छेदार किस्मों, एम एच-4 व पंजाब मूंगफली नं. 1 बोने की

सिफारिश की जाती है। बुवाई कतार से कतार का फासला 30 सैं.मी. रखकर करनी चाहिए। कतारों में बुवाई इस प्रकार करें कि बीज लगभग 15 सैं.मी. के फासले पर पड़े जबकि पंजाब मूंगफली नं. 1 के लिए यह फासला 22.5 सैं.मी. रखें। एम एच 4 के लिए 32 कि.ग्रा. गिरी व पंजाब मूंगफली नं. 1 के लिए 34 किलोग्राम गिरी प्रति एकड़ की दर से डालें।

मूंगफली बोते समय एक एकड़ भूमि में बिजाई के समय 13 कि.ग्रा. यूरिया व 125 कि.ग्रा. सुपरफास्फेट, 16 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट मिलाकर ड्रिल करें। मूंगफली में जिप्सम का प्रयोग लाभदायक पाया गया है।

दीमक व सफेद लट के प्रकोप से फसल को बचाने के लिए 15 मि. ली. क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. या क्विनलफॉस 25 ई.सी. प्रति कि.ग्रा. बीज में बिजाई से दो-तीन घंटे पूर्व मिला लें।

जून में वर्षा होते ही सफेद लट के प्रौढ़ों (भूण्डों) को अभियान चलाकर नष्ट करें। बीज गलन व पौध गलन से बचाव के लिए रोगमुक्त गिरियों को बोने से पूर्व कैप्टान या थाइरम (3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) से उपचारित अवश्य कर लें।

तिल

तिल की बिजाई अगले महीने या मानसून की पहली वर्षा पर की जा सकती है। इसके लिए उन्नत किस्म हरियाणा तिल नं. 1 व एच टी 2 की सिफारिश की जाती है। हल्की ज़मीन में एक एकड़ के लिए लगभग 2 कि. ग्रा. बीज इस्तेमाल करें और पंक्तियों में एक फुट के फासले पर बिजाई करें। पौधे से पौधे का फासला 15 सैं.मी. रखें। हल्की ज़मीन में बिजाई के समय 33 कि.ग्रा. यूरिया प्रति एकड़ पोरें। खुडों का फासला 30 सैं.मी. रखें। जड़गलन व तना गलन के बचाव के लिए बीज का उपचार थाइरम 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से करें।

मक्का

मक्का की बिजाई इस माह के अंत में शुरू कर लें। केवल उन्नत किस्में एच एच एम-1, एच एच एम-2, एच एम-4, एच एम-5, एच एम-10, एच एम-11, एच क्यू पी एम-5, एच क्यू पी एम-4 व एच क्यू पी एम-1 बीजें। एक एकड़ में बिजाई के लिए 8 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता पड़ती है। खेत को अच्छी तरह तैयार करके बिजाई कतारों में 75 सैं.मी. व पौधे से पौधे की 22 सैं.मी. की दूरी पर करें। मक्का की किस्मों में 135 कि.ग्रा. यूरिया, 150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ डालें। निम्न व मध्यम पोटाश स्तर वाली ज़मीन में 20 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश, फास्फोरस, पोटाश व ज़िंक सल्फेट बिजाई पर डालें व 1/3 नत्रजन की मात्रा बिजाई पर, 1/3 जब फसल एक फुट की लंबाई की हो जाए व 1/3 मात्रा जब सिट्टे निकलने वाले हों तब डालें। संकर बाजरा (बारानी क्षेत्रों में) के लिए 35 कि.ग्रा. यूरिया व 50 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट का प्रयोग करें।

बीज गलन व पौध अंगमारी से बचाव हेतु बोने से पहले बीज को थाइरम (4 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) से उपचारित करें। मक्की में होने वाले खरपतवारों के नियंत्रण के लिए एट्राजीन 50 प्रतिशत घु.पा. की 400-600 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई के तुरन्त बाद 200-250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें। मक्की में सभी तरह के खरपतवारों के नियन्त्रण के लिए टेम्बोट्रायोन (लोडिस 34.4 प्रतिशत घु.पा.) का 115 मिली. + 400 मिली. चिपचिपे पदार्थ को 200 लीटर पानी में मिलाकर बिजाई के 10-15 दिन बाद या खरपतवार की 2-3 पत्ती की अवस्था पर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

गेहूँ

बीज हेतु रखने वाले गेहूँ का यदि आप सौरताप या सूर्य की गर्मी से बीजोपचार कर लें तो आप अगले वर्ष इन्हीं बीजों से खुली कांगियारी रहित गेहूँ की फसल ले सकते हैं। बीजोपचार के लिए मई-जून के महीने में किसी शांत व धूप वाले दिन गेहूँ को 8 बजे प्रात: से 12 बजे दोपहर तक पानी में भिगोयें। ऊपर तैरते हुए पदार्थों को बाहर निकालकर नष्ट करें। चार घण्टे बाद भीगे हुए बीज को किसी पक्के फर्श या तिरपाल पर दिन भर सुखाकर अगले वर्ष बोने के लिए प्रयोग में लाएं। धूप उपचार के बाद किसी दवा उपचार की आवश्यकता नहीं।

सोयाबीन

जून के अंत से जुलाई के आरंभ तक बिजाई करें। अच्छे जमाव के लिए बिजाई के समय ज़मीन में नमी पूरी मात्रा में होनी चाहिए। 30 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़, कतार से कतार का फासला 45 सैं.मी. रखकर 2.5 सैं. मी. गहरी बिजाई करें। पी के 416, 564 और 472 किस्में ही बोएं। 22 किलोग्राम यूरिया और 200 कि.ग्रा. एस.एस.पी. प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें। फसल की नाइट्रोजन की ज़रूरत पूरी करने के लिए बीज का सोयाबीन के राइजोबियम टीके से उपचार अवश्य करें।

ज्वार

एस एस जी 59-3, एच सी 136, 171, 308 एच जे 541 व एच जे-513 किस्मों की जून 25 से 10 जुलाई तक बिजाई करें। 20-24 कि. ग्रा. बीज व सुडान घास के लिए 12-14 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़, 25 सैं. मी. कतार से कतार की दूरी पर बिजाई करें। कम वर्षा वाले व बारानी इलाकों में बिजाई के समय 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति एकड़ डालें। सारी खाद बिजाई के समय कतारों में ड्रिल करें। अधिक वर्षा वाले व सिंचित इलाकों में 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति एकड़ बिजाई के समय तथा 10 कि. ग्रा. नाइट्रोजन प्रति एकड़ बिजाई के एक महीने बाद भी डालें। ज्वार में खरपतवारों की रोकथाम के लिए बिजाई के 7-15 दिन के अन्दर-अन्दर 200 ग्राम अट्राजीन 50 घु.पा. प्रति एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें।



सब्जियों में

टमाटर

टमाटरों को अधपका ही तोड़ें तथा पकाकर बाज़ार में बेचने के लिए

भेजें। फसल की नियमित रूप से सिंचाई करें तथा ज़रूरत पड़ने पर कीटनाशक दवाओं का प्रयोग करें। विषाणु रोग से ग्रसित पौधों को निकालकर नष्ट कर दें।

खरीफ की फसल के लिए टमाटर के बीज की नर्सरी में बिजाई करें। टमाटर की फसल के लिए उन्नत किस्मों को ही प्रयोग में लें, जैसे कि हिसार अरुण, हिसार ललित और हिसार लालिमा। एक एकड़ खेत के लिए लगभग 200 ग्राम बीज की ज़रूरत होगी। नर्सरी को लगभग 20 सैं. मी. ऊंचा बनाएं जिससे कि अधिक वर्षा से पौध को हानि न हो। बिजाई से पहले बीज का उपचार करें। थाइरम या कैप्टान नामक दवा एक ग्राम प्रति 400 ग्राम बीज की दर से प्रयोग करें। नर्सरी में पौध की देखरेख करें।

इस फसल में हरा तेला, सफेद मक्खी और माईट जैसे रस चूसने वाले कई कीड़े लग जाते हैं। इनकी रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। फल छेदक कीड़े के लिए 75 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. या 200 मि.ली. डेकामेथ्रिन 2.8 ई.सी. या 60 मि.ली. साईपरमेथ्रिन 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिला कर प्रति एकड़ खेत पर छिड़काव करें। दवा प्रयोग करने से पहले ग्रसित फलों को तोड़ कर नष्ट कर दें।

बैंगन

बैंगन के कच्चे फलों की तुड़ाई करें और बाज़ार में बेचने के लिए भेजें। ध्यान रखें कि किसी तेज़ धार वाले चाकू से फलों को पौधे से काटें। ज़रूरत पडने पर फसल की सिंचाई करें तथा विषाणु रोग से बचाव करें। रोगी पौधों को उखाड़कर फेंक दें। फल व गोभ छेदक सूण्डी से ग्रसित फल व गोभ को काटकर ज़मीन में दबा दें तथा 60 मि.ली. स्पाइनोसेड (ट्रेसर 45 एस.सी.) को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिन के अंतर पर तीन छिड़काव करें।

खरीफ की फसल के लिए नर्सरी में बिजाई करें। उन्नत किस्मों को प्रयोग में लाएं, जैसे बी आर 112, हिसार श्यामल (एच 8), हिसार प्रगति, एच एल बी-25 तथा हिसार बहार।

एक एकड़ खेत में बिजाई के लिए लगभग 200 ग्राम बीज की मात्रा की आवश्यकता होगी। बिजाई से पहले बीज का थाइरम या कैप्टान नामक दवा से (एक ग्राम दवा प्रति 400 ग्राम बीज) उपचार करें। समय से खेत की तैयारी शुरू कर दें। इसमें हरा तेला, सफेद मक्खी तथा माईट के नियंत्रण के लिए 300-400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. का 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ में छिड़काव करें।

मिर्च

फसल में तैयार मिर्चों की तुड़ाई करें तथा उन्हें बेचने के लिए बाज़ार भेजें। ज़रूरत पडने पर सिंचाई करें। हानि पहुंचाने वाले कीड़ों, थ्रिप्स, अल और सफेद मक्खी तथा माईट से फसल के बचाव के लिए 400 मि. ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 300 मि.ली. प्रेमप्ट 20 ई.सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें तथा ज़रूरत पड़ने पर 15 दिन के अंतर पर फिर दोहराएं। कीटनाशक दवाओं के छिड़काव से विषाणु रोगों का भी नियंत्रण हो जाता है। विषाणु रोगग्रस्त पौधों को निकालकर नष्ट कर दें। खरीफ की फसल के लिए टमाटर में बताए तरीके से मिर्च की भी नर्सरी में बिजाई करें। इनकी उन्नत किस्में एन पी 46ए, पंत सी-1, पूसा ज्वाला हैं। इसके लिए 400 ग्राम बीज की प्रति एकड़ आवश्यकता होगी।

अगेती फूलगोभी

इस माह अगेती फूलगोभी (किस्म पूसा कातकी) की बिजाई नर्सरी में करें तथा पौध तैयार करें। अगेती फूलगोभी के लिए लगभग 400-500 ग्राम बीज एक एकड़ खेत के लिए काफी है। नर्सरी लगभग 20 सैं.मी. ऊंची बनाएं तथा बिजाई से पहले बीज का उपचार करें (एक ग्राम थाइरम या कैप्टान प्रति 300 ग्राम बीज की दर से)। यदि बिजाई पिछले माह में की गई है तो उसकी उचित देखभाल करें। आर्द्रगलन रोग से बचाने के लिए नर्सरी में पौध को 0.3 प्रतिशत कैप्टान के घोल से सींचें। समय पर खेत की तैयारी करें। नर्सरी में वर्षा का पानी न रुकने दें।

भिण्डी

भिण्डी के नर्म फलों को नियमित रूप से तोडें व बाज़ार में बेचने के लिए भेजें। आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। हरे तेले व चित्तीदार सूण्डी से बचाव के लिए पहले बताई गई दवाइयों का इस्तेमाल करें। दवा के प्रयोग के बाद 8-10 दिनों तक फलों को काम में न लें। दवा के छिड़काव से पहले, सभी तैयार फलों को तोड़ लें।

खरीफ की फसल के लिए खेत की तैयारी करें। एक एकड़ खेत में 10 टन गोबर की खाद डालकर जुताई करें तथा बिजाई से पहले 12 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (50 कि.ग्रा. किसान खाद) तथा 25 कि.ग्रा. फास्फेट (150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) प्रति एकड़ की दर से दें। पोटाश खाद मिट्टी की जांच के आधार पर दें। खेत को क्यारियों में बांट लें। भिण्डी की विषाणु रोगरोधी किस्मों, वर्षा उपहार या हिसार उन्नत का चुनाव करें। एक एकड़ के लिए लगभग 6 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होगी। जड़ गलन नामक रोग की रोकथाम के लिए बिजाई करने से पहले बीजोपचार कैप्टान या बाविस्टिन नामक दवा से (एक ग्राम दवा प्रति 400 ग्राम बीज) कर लें। बिजाई कतारों में करें। कतारों की दूरी 45-60 सैं.मी. रखें तथा पौधों में दूरी 30 सैं.मी. रखें। कीड़ों की रोकथाम के लिए बैंगन के लिए बताई गई दवा का प्रयोग करें।

तरबूज व खरबूजा

तरबूज व खरबूजा के पके फलों को तोड़कर बाज़ार में बेचने के लिए भेजें। इस महीने दोनों फसलें पककर तैयार हो जाती हैं तथा तुड़ाई का काम भी पूरा कर लिया जाता है। फलों के पकते समय सिंचाई न करें। जल्दी वर्षा होने पर इन फलों का मीठापन कम हो जाता है। फसल पूरी हो जाने के बाद खेत को खरीफ की अन्य फसलों के लिए तैयार करें।

कद्दू जाति की अन्य सब्जियां

कद्दू जाति की अन्य सब्जियां, जैसे लौकी, तोरी, करेला, टिण्डा आदि कच्चे फलों को तोड़कर नियमित रूप से बाज़ार भेजें। खरीफ की बेल

वाली सब्जियों को लगाने के लिए इस महीने खेत तैयार करें। खेत तैयार करते समय 6 टन गोबर की खाद, 6 किलोग्राम नाइट्रोजन (25 किलोग्राम किसान खाद), 10 कि.ग्रा. फास्फोरस (60 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) व 10 कि.ग्रा. पोटाश (16 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश) प्रति एकड़ की दर से दें। खाद को नालियों में दें।

कद्दू जाति की फसलों में लाल भुण्डी (लालड़ी) से बचाव के लिए 25 मि.ली. साईपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 30 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. को 100 लीटर पानी में मिलाकर भी प्रति एकड़ छिड़काव कर सकते हैं। इस कीट की लटों से बचाव के लिए 1.6 लीटर क्लोरपाईरिफॉस 20 ई.सी. को बिजाई के एक महीने बाद सिंचाई के साथ लगाएं।

सफेद चूर्णी रोग से बचाव हेतु 8-10 किलोग्राम प्रति एकड़ बारीक गंधक के धूड़े का भुरकाव या धूड़ा करें, धूड़ा सुबह या शाम के समय करें या 500 ग्राम घुलनशील गंधक (सलफैक्स) को 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। खरबूजे की फसल पर गंधक का धूड़ा न करें।

इन फसलों में अल, माईट, सफेद मक्खी और हरा तेला की रोकथाम के लिए 250 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। यदि फसल में फल मक्खी का प्रकोप हो तो 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. व 1.25 किलोग्राम गुड़ को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

शकर कन्दी

शकरकन्दी की काटों को इस माह भी लगाया जा सकता है। खेत की तैयारी पिछले माह बताए गए तरीके से करें तथा खरपतवार निकालें।

खरीफ प्याज़

खरीफ प्याज़ (किस्म एन-53 एवं एग्रीफाउण्ड डार्क रैड) के बीज की नर्सरी में बिजाई करें। इसके लिए लगभग 5-6 किलोग्राम बीज की एक एकड़ के लिए आवश्यकता होगी। इसके लिए जून का दूसरा पखवाड़ा उचित समय है। नर्सरी ऐसे स्थान पर बनाएं जहां वर्षा का पानी न रुकता हो। अधिक गर्मी से बचाव के लिए नर्सरी की देखभाल आवश्यक है। खरपतवार निकालें, नियमित सिंचाई करें तथा बीमारी से बचाएं।

अरबी

फसल की नियमित सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। खड़ी फसल में नाइट्रोजन वाली खाद दो बार देने की आवश्यकता होती है- प्रथम बार बिजाई के लगभग 3-4 सप्ताह बाद तथा दूसरी मात्रा इतने ही दिनों के अंतर पर। अरबी की नई बिजाई भी की जा सकती है। खेत की तैयारी व लगाने की विधि पहले बता दी गई है।

पालक

पालक की फसल की नियमित सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें और कटाई लायक होने पर काटें। पालक की नई बिजाई भी तैयार क्यारियों में की जा सकती है।

मूली

पूसा चेतकी मूली की किस्म को गर्मी में लगाया जा सकता है। यदि आपने इसकी बिजाई पहले कर रखी है तब फसल की सिंचाई करें, निराई करें तथा जड़ों पर मिट्टी चढ़ा दें। इसकी फसल बिजाई के बाद लगभग 40 दिनों में तैयार हो जाती है। कीड़ों आदि का आक्रमण होने पर मैलाथियान या कार्बेरिल जैसी दवाओं का छिड़काव करें। जड़ों को नर्म अवस्था में, कड़ी होने से पहले उखाड़ लें तथा धोकर बाज़ार भेजें। नई बिजाई भी इसी महीने की जा सकती है।

अन्य सब्जियां

अन्य सब्जियों, जैसे ग्वार व लोबिया, की फसलों की नियमित रूप से सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। नर्म फलियों को तोड़कर बाज़ार में भेजें। कीट व बीमारियों से बचाव के लिए कीटनाशक व फफूंदनाशक दवाओं का प्रयोग करें तथा प्रयोग के 8-10 दिन बाद तक फसल को खाने के काम में न लाएं। ग्वार व लोबिया की खरीफ की फसल लेने के लिए खेत की तैयारी करें तथा बिजाई करें।

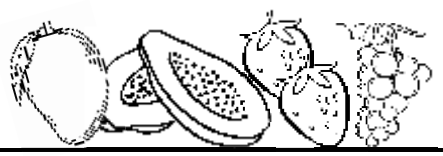

फलों में

नींबूवर्गीय फल

नये पौधों को गर्मी से बचाएं। पुराने पौधों के तनों पर 3 कि.ग्रा. चूने में 2 कि.ग्रा. नीला थोथा को 30 लीटर पानी में अलग-अलग भिगोकर और छानकर मिलाकर लेप करें ताकि सूर्य की तेज़ रोशनी से तने को क्षति न पहुंचे। यह घोल हर बार ताज़ा बनाकर ही प्रयोग में लाएं। इसके अतिरिक्त सिंचाई भी करते रहें व सिंचाई के पश्चात मल्चिंग अवश्य करें। जस्ते की कमी व फल गिरने से बचाने के लिए 5 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट और 2.5 कि.ग्रा. बुझा हुआ चूना 1000 लीटर पानी में घोल कर पौधों पर छिड़काव करें। इसी प्रकार नाइट्रोजन की कमी को पूरा करने के लिए 1-2 कि.ग्रा. यूरिया 100 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। पत्तों में लीफ माईनर के नियंत्रण के लिए 750 मि.ली. मेटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। नए व छोटे पौधों को लू से बचाएं, नियमित सिंचाई कर उचित नमी बनाए रखें।

अंगूर

नई या एक साल पुरानी बेलों में 25-30 ग्राम यूरिया प्रति बेल हर दूसरी सिंचाई पर देते रहें, सिंचाई भी करते रहें व फालतू बढ़वार रोकते रहें। बेलों की सिंचाई 10 दिन के अंतर पर करते रहें लेकिन जब फल तोडना शुरू करें तो सिंचाई करना बंद कर दें और फल खत्म होने पर सिंचाई ज़रूर करें। पुरानी बेलों में लगे फलों को चिड़ियों से बचाएं और पके फलों के गुच्छों को सावधानी से तोड़कर बाज़ार भेजें।

बालों वाली सूण्डी व अन्य कीटों की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. डाइक्लोरवास 76 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़

छिड़कें। थ्रिप्स के लिए 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 150 मि. ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

बेर

इस महीने के दूसरे सप्ताह तक बेर की कटाई-छंटाई का काम समाप्त कर लें और पौधों की छतरी तक गुड़ाई करें। प्रति पेड़ लगभग 100 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद व सिंगल सुपर फास्फेट 2.5 कि.ग्रा. अच्छी तरह मिलाकर गहरी सिंचाई करें। बत्तर आने पर गहरी जुताई करें।

अमरूद

नए पौधों को गर्मी व लू से बचाएं और सिंचाई सप्ताह में एक बार अवश्य करें। पौधों की सूखी शाखाओं को निकाल दें। फल मक्खी के लिए फिरोमोन ट्रैप का प्रयोग करें।

आड़ू

इस महीने के पहले सप्ताह तक शरबती और मैचलैस किस्म के फल पकने शुरू हो जाएंगे इसलिए उनकी तुड़ाई का प्रबंध करें और हल्की सिंचाई भी करते रहें और तुड़ाई से पहले सिंचाई बंद कर दें। नए पौधों के तनों के साथ मिट्टी चढ़ाएं।

आम

बागों की सिंचाई नियमित रूप से करते रहें। छोटे पौधों को गर्मी व लू से बचाएं। नाइट्रोजन की बाकी बची मात्रा अगर पिछले महीने नहीं डाली है तो इस महीने डालें। पके हुए फलों की ग्रेडिंग करके बाज़ार में भेजें।



पशुओं में

गाय-भैंस

- पिछले माह के अनुसार पशुओं को अत्यधिक तापक्रम, धूप व लू से बचाने के उपाय करें व इस महीने में भी पशुपालकों को विशेष रूप से गर्मी प्रबंधन के उपाय करने चाहिएं।
- जैसा कि मई मास के कार्य में बताया गया था कि पशुओं को उच्च ऊर्जा के साथ-साथ सुपाच्य भोजन, बाई-पास प्रोटीन का उपयोग, गेहूँ चोकर व जौ का पशु-आहार में बढ़ाना, दिन में कम से कम 4-5 बार स्वच्छ पानी देना, 2-3 बार नहलाना, खनिज मिश्रण का उपयोग, हवादार आवास, शेड़ में फव्वारों वाले पंखे/कूलर आदि का इस्तेमाल, रात्रिकाल/सांयकाल में भोजन व्यवस्था आदि कार्य पशुपालक कर सकते हैं।
- 'पाइका' ग्रस्त पशुओं को पेट के कीड़े मारने की दवा देकर लवण-मिश्रित आहार प्रदान करें, ताकि 'पाइका' रोग के लक्षणों से छुटकारा प्राप्त हो।
- पशुओं को हरा चारा नहीं मिल रहा हो तो साईलेज एवं 'हे' का उपयोग किया जाए।
- पशुओं को विटामिन एवं लवण-मिश्रित आहार दें।
- ग्रीष्मकाल में पशुओं की भूख कम हो सकती है व पशु कम भोजन खाते हैं। अत: उन्हें कम भोजन में अधिक ऊर्जा की ज़रूरत हो सकती है। अत: उन्हें तेल इत्यादि भी दे सकते हैं। इसके साथ-साथ पशुओं का पाचन तंत्र भी बिगड़ सकता है, अत: उन्हें सुपाच्य भोजन एवं पर्याप्त मात्रा में पानी भी दें।
- गेहूँ की कटाई के बाद नई तूड़ी आने से पशुओं के पेट में बंधा पड़ सकता है। अत: पशुओं का आहार एकदम से न बदलें और बंधा पड़ने पर चिकित्सीय सलाह से हींग, हरड़, सेंधा नमक, मोटी सौंफ इत्यादि दें।
- गलघोंटू व मुँह-खुर के टीकाकरण सुनिश्चित करें।
- पशुओं को पेट में कीड़े मारने की दवा दें।
- गर्मियों के मौसम में पैदा की गई ज्वार में ज़हरीला पदार्थ हो सकता है, जो पशुओं के लिए हानिकारक है। अप्रैल में बिजाई की गई ज्वार के खिलाने से पहले खेत में 2-3 बार पानी अवश्य लगाएं।

भेड़ें

- पिछले माह में भेड़ के ऊन कतरने का कार्य न किया हो तो इस माह में कर लें।
- भेड़ के शरीर को ऊन कतरने के 21 दिन बाद, बाह्य परजीवियों से बचाने के लिये कीटाणुनाशक घोल से भिगोएं। इसके लिए अपने पशु चिकित्सक की सलाह से उन्हें समय-समय पर दवाई पिलाएं।
- भेड़ों में रोगों से बचाव के लिए टीकाकरण नज़दीकी पशु चिकित्सालय से करवाएं।
- भेड़ तथा ऊन विकास केन्द्र में बने डिपिंग टैंक में अपनी भेड़ों को नहलाएं।
- इस माह में भेड़ों का प्रजनन चलेगा। अत: अच्छी नस्ल के बच्चे उत्पन्न कराने हेतु अच्छी नस्ल के मेंड़े भी भेड़ तथा ऊन विकास केन्द्र से प्राप्त हो सकते हैं।

फार्म प्रबन्ध/विस्तार शिक्षा

कृषि उत्पादों का अधिक मूल्य प्राप्त करने के लिए उचित ढंग से मण्डीकरण करें। रबी फसलों की जिन्सों का अच्छा भाव लेने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें।

1. कटाई के बाद किसान, अपनी उपज को एक साथ ही मण्डियों में न लाकर उसे धीरे-धीरे लाएं, जिससे उन्हें कठिनाई न उठानी पड़े तथा उनकी उपज का सही मूल्य उन्हें मिल सके।
2. फसल को जहां तक संभव हो सरकारी संस्था अथवा सहकारी सोसायटी द्वारा बेचें तथा यह ध्यान रखें कि उपज का न्यूनतम मूल्य प्राप्त हो।
3. अच्छी कीमत प्राप्त करने के लिए उपज को साफ-सुथरा करके तथा अच्छी बोरियों में भरकर मण्डी में लाएं। इससे मण्डी में भराई-सफाई का अतिरिक्त खर्चा नहीं लगेगा।

4. किसान को अधिक कीमत प्राप्त करने के लिए बढिया और घटिया किस्म की फसलों को अलग-अलग बेचना चाहिए।
5. किसानों को चाहिए कि वह अपनी फसल मण्डी में तोलकर ले जाएं और बाद में पड़ताल के लिए तोल कराएं।
6. फसल को ग्रेड करा लेने के बाद उसकी उचित कीमत लगती है। कृषि विभाग द्वारा प्रमुख मण्डियों में कृषि उत्पादों की ग्रेडिंग के लिए केन्द्र स्थापित किए गए हैं। इन केन्द्रों पर किसानों की उपज की नि:शुल्क ग्रेडिंग सुविधा उपलब्ध है।
7. विभिन्न जिन्सों (फसलों) के मिश्रण को मण्डी में नहीं ले जाना चाहिए। उनको अलग-अलग बेचने पर ही अधिक लाभ होता है। जैसे गेहूँ व जौ के मिश्रण की बजाय उन्हें अलग-अलग बेचने पर ही अधिक लाभ होता है।
8. फसल बेचने से पहले मण्डी के भाव की जानकारी लेना अति आवश्यक है। किसान को विभिन्न मण्डियों के भाव की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। यह जानकारी अखबार, रेडियो का कृषि कार्यक्रम अथवा व्यक्तिगत संपर्क के माध्यम से प्राप्त हो सकती है।
9. जो किसान भाई अपनी जिन्स को रोककर देर से बेचने की क्षमता रखते हैं तथा जिनके पास जिन्स के भण्डारण की उचित व्यवस्था है उन्हें फसल काटते ही मण्डी लेकर नहीं पहुंचना चाहिए। जिन्स की कम आवक होने पर बेचने से भाव अच्छे मिल जाते हैं व परेशानी भी कम उठानी पड़ती है।



घर-आंगन में

गर्मी के मौसम में बच्चों के शरीर से दस्त एवं उल्टियों के रूप में लगातार पानी निकलने से निर्जलन हो जाता है जिससे बच्चे की आंखें धंस जाती हैं तथा निर्जलन के गम्भीर मामलों में सिर का तालू गिरने लगता है। बच्चा पेशाब कम करता है तथा सुन्न पड़ जाता है तथा बेहोश हो जाता है। बच्चा श्वास भी जल्दी-जल्दी तथा कठिनाई से लेता है। माँ को ऐसी स्थिति आने ही नहीं देनी चाहिए। अगर बच्चे को चार-पांच पतले दस्त आ गए हों तो शीघ्र ही उसे नमक एवं चीनी का घोल बनाकर देना चाहिए। इससे उसमें पानी की कमी नहीं आएगी तथा बच्चे की हालत भी सुधरेगी। नमक व चीनी का घोल बनाने के लिए तीन चुटकी भर नमक, एक मुट्ठी भर चीनी, उबला और ठंडा किया हुआ पांच कप पानी में अच्छी तरह मिलाएं। यदि उपलब्ध हो तो आधे खट्टे नींबू का रस भी मिलाएं।

अतिसार में बच्चों को खिलाना-पिलाना जारी रखना बहुत आवश्यक है। खाना-पिलाना जारी रखने से बच्चे जल्दी अच्छे हो जाते हैं और कुपोषण का शिकार नहीं होते। नमक और चीनी के घोल के साथ-साथ छोटे बच्चे का स्तनपान भी जारी रखें। बड़े बच्चे जो गाय-भैंस का दूध पीते हैं उन्हें बिना पानी मिलाए दूध देना जारी रखें। इसके अतिरिक्त चावल का पानी, दाल का पानी, मूंग की धुली हुई दाल, ताज़ा बना हुआ खाना जैसे खिचड़ी, दलिया आदि थोड़ा-सा घी अथवा तेल डालकर ही पकाएं। दही, केला, और उबला हुआ आलू भी दें। यदि इतना कुछ करने पर भी बच्चे की स्थिति में सुधार नहीं आता तो आप नज़दीकी हस्पताल से संपर्क स्थापित करें।

इस महीने में अत्यधिक गर्मी होने के कारण ज़्यादा से ज़्यादा शुद्ध जल का प्रयोग करें। ताकि आप अपने आपको दूषित जल से होने वाली बीमारियों से बचा सकें। शुद्ध जल के लिए आप जनता वाटर फिल्टर का प्रयोग कर सकते हैं। इसको कैसे बनाया जाए, इसके लिए आप अपने क्षेत्र में कार्यरत ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (गृह विज्ञान) से संपर्क स्थापित करें। इसके अतिरिक्त आप पानी को साफ करने के लिए क्लोरीन की गोलियां नज़दीकी हस्पताल से भी ले सकते हैं।

- कच्चे आम के पन्ने का प्रयोग करके आप अपने आपको एवं परिवार को लू से बचा सकते हैं।
- सिरके में प्याज़ का प्रयोग करके आप अपने आपको एवं परिवार को लू से बचा सकते हैं।
- गर्मी में सूती वस्त्रों का प्रयोग करें तथा खेती के कार्यों में सुरक्षात्मक वस्त्रों का उपयोग करें। लू से बचाव के लिए हमेशा घर से पानी का सेवन करके निकलें।

लेखकों से अनुरोध

हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। लेख में अंग्रज़ी शब्दों का प्रयोग न करें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें**। अपना लेख हमें ई-मेल पर भी भेज सकते हैं :

haryanakhetihau@gmail.com

फलों द्वारा निर्मित : मुरब्बा एवं कैण्डी

- **एकता, राकेश गहलौत एवं तनु मलिक**
खाद्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

शरीर के स्वास्थ्य के लिए फलों का नियमित सेवन आवश्यक है। जिससे शरीर विकार रहित सुचारू रूप से चले। साथ ही फलों से आवश्यक विटामिन व खनिज पदार्थ भी प्राप्त होते रहें।

फल पक जाने के बाद कुछ ही समय तक खाने योग्य रहते हैं। ताज़े फलों की जीवन अवधि कम होने के कारण इन्हें परिरक्षण द्वारा सुरक्षित रखा जा सकता है। इससे उनके गुण, शुद्धता एवं लागत मूल्य में भी बचत होती है। इन्हें सुखाने से यह कम जगह लेते हैं। इनमें आवागमन में भी कम खर्च होता है। सर्दी के फलों द्वारा अनेक खाद्य पदार्थ बनाए जा सकते हैं, जैसे: मुरब्बा व कैण्डी। इन्हें बनाने की विधि कुछ इस प्रकार है:

मुरब्बा

मुरब्बा एक पौष्टिक एवं आकर्षक खाद्य पदार्थ है। सेब का मुरब्बा दिल और जिगर के लिए लाभदायक है। बेल एवं आंवले का मुरब्बा भी औषधीय गुणों से भरपूर होता है।

सेब का मुरब्बा:

1. मध्यम आकार के फल लें, काटें, गोदें व 2 प्रतिशत नमक के घोल में डालें।
2. अब फलों को नमक के घोल से निकालें, साफ पानी में धोएं। मलमल के कपड़े में बाँध कर उबलते पानी में 2 से 3 मिनट डालकर थोड़ा नर्म करें।
3. चाशनी बनाने के लिए 1 कि.ग्रा. फल में 1.3 से 1.5 कि.ग्रा. चीनी, 400 मि.ली. पानी और 2 से 3 ग्राम सिट्रिक अम्ल का प्रयोग करें। सर्वप्रथम नर्म किए फल टुकड़े को 40 से 50 प्रतिशत चीनी के शरबत में डाल दें।
4. अगले दिन फलों का घोल निकाल लें और चाशनी में थोड़ी चीनी मिलाकर एक मिनट उबाल दें और फलों पर डाल दें।
5. दो दिन बाद चाशनी को फलों से निकाल लें, चीनी मिलाकर एक उबाला दें ताकि दो-तीन तार की चाशनी बने। अब 4-5 दिन तक चाशनी न छोड़ें।
6. चाशनी के शहद जितना गाढ़ा होने की प्रतीक्षा करें। अब इसे कीटाणुरहित बर्तन में डालकर सील बन्द करें।

आंवले का मुरब्बा :

1. बड़े-बड़े आंवले (बनारसी किस्म) छांटें (बिना रेशे वाले) और धोएं।
2. आंवले को दो दिन तक साफ पानी में भिगो लें और फलों को अच्छी तरह कांटे से गोद लें। फिर 20 प्रतिशत नमक के घोल में एक दिन तक रखें।
3. इसके बाद आंवले को साफ पानी में धोएं। नमक का ताज़ा घोल फिर तैयार करें और फलों को फिर एक दिन इस घोल में डालें। इस क्रिया को 2 से 3 दिन तक दोहराएं।
4. अब आंवले को साफ पानी में 4 से 5 बार धोएं। फिर इन्हें 2 प्रतिशत फिटकरी के घोल में डालकर एक दिन के लिए रखें।
5. अगले दिन फलों को फिटकरी के घोल से निकाल लें। 3 से 4 बार साफ पानी में धोएं। फिर इसे मलमल के कपड़े में बांधें और उबलते

(शेष पृष्ठ 24 पर)

पोपलर आधारित कृषि वानिकी में औषधीय पौधों का रोपण

- **बिमलेन्द्र कुमारी एवं तरूण कुमार**
कृषि वानिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वर्तमान समय में पौध अवशेषों से प्राप्त औषधियां सामान्य प्रकार के रोगों के उपचार के लिए बहुत प्रचलित हो रही हैं। विश्वभर में लोग अधिकतर घरेलू उपलब्ध औषधियों पर निर्भर रहते हैं। जिनका स्त्रोत पेड़-पौधे ही हैं, व जिनका कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता। चीन विश्व में 5000 औषधीय पौधों की प्रजातियों का इस्तेमाल करता है। जबकि भारत लगभग 7000 प्रकार की औषधियां पौधों की प्रजातियों का उपयोग करता है। डब्लयूएचओ के अनुसार विश्व की 80 प्रतिशत आबादी प्राथमिक उपचार हेतु औषधीय पौधों पर निर्भर है। औषधीय पौधों का मुख्य भण्डार प्राकृतिक वनों में ही पाया जाता है, वहां की प्राकृतिक संरचना व विविधता इन पौधों के लिए वरदान स्वरूप है, क्योंकि औषधीय पौधे वृक्षों के नीचे पनपने वाले व छाया सहनशील होते हैं। परन्तु भारत जैसे देश में हमारे प्राकृतिक वन विकास व बढ़ती हुई आबादी के कारण बहुत सीमित रह गए हैं, इसके अतिरिक्त हर दिन बढ़ती हुई जनसंख्या की औषधीय ज़रूरतों को पूरा करने हेतु इन बहुउपयोगी व अतिआवश्यक संसाधन को संजोने व उत्पादन करने की आवश्यकता है। इन पौधों का संरक्षण करने के लिए औषधीय पौधों को जलवायु व वातावरण के अनुसार चयन कर, विभिन्न प्रकार के कृषि वानिकी सिस्टमस् से स्थान देने की आवश्यकता है।

हमारे देश के उत्तर पश्चिमी भागों में (पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश इत्यादि) पोपलर आधारित कृषि वानिकी बहुत प्रचलित है, व पोपलर के स्थानीय कृषि वानिकी में लगाने से कृषकों की आय लगभग दोगुनी हो जाती है। पोपलर के साथ रबी व खरीफ की मुख्य फसलों (गेहूं, गन्ना व चारा फसलों इत्यादि) को वृक्ष की प्रारम्भिक बढ़त के दौरान (प्रथम 3-4 वर्षों) तक ज़्यादा असर नहीं पड़ता, हालांकि, वृक्षों की आयुकाल के अगले 3-4 वर्षों में फसलों की उत्पादकता पर वृक्षों की छाया के कारण काफी (50 प्रतिशत से अधिक) कमी आ जाती है। परन्तु 6-8 वर्षों के बाद पोपलर का हर वृक्ष किसान की अतिरिक्त आय में कम से कम 3500-4000 रुपये जोड़ता है। जिसके कारण कृषक वर्ग को काफी लाभ मिल रहा है। पोपरल आधारित कृषि वानिकी में यदि हमारे किसान कुछ औषधीय फसलें जिनकी पैदावार छायादार स्थान पर अधिक होती है, को सम्मिलित करते हैं। तो उनका लाभ तीन से चार गुना हो सकता है।

खासतौर पर औषधीय फसलों को यदि पोपलर लगने के 3-4 वर्ष बाद रोपित किया जाता है, तो पहले तीन-चार वर्ष तक किसानों को बिना किसी ज़्यादा नुकसान के मुख्य स्थानीय फसलों के द्वारा लाभ अर्जित हो जाता है, व जब बाद के वर्षों में छाया का विपरीत प्रभाव पड़ता है, तो किसानों के लिए औषधीय फसलें, जो छाया सहनशील हैं उन्हें पोपलर वाले खेतों में रोपित कर अधिक लाभ उठाना चाहिए।

कृषि वानिकी में सम्मिलित की जाने वाली मुख्य औषधीय फसलें :

1. अदरक : अदरक की खेती (समुन्द्र तल से 1500 मी. तक) अपेक्षाकृत नमी वाले व ऊष्ण भागों में की जा सकती है। पौधे की सफलता के लिए मध्यम वर्षा वाले व 20° से 35° C तापमान पाने वाले क्षेत्र उपयुक्त हैं। परन्तु पौधे को नियमित नमी की आवश्यकता है। इसलिए अधिक आर्द्रता वाले व अधिक तापमान वाले भागों में पोपलर आधारित कृषि में किसान लगाकर अधिक मुनाफा ले रहे हैं।

औषधीय गुण :

1. अदरक में कैंसर जैसी भयानक बीमारी से बचाए रखने का गुण होता है। यह कैंसर पैदा करने वाले सेल्स को खत्म करता है।
2. अदरक में खून पतला करने का नायाब गुण होता है और इसी वजह से यह ब्लड प्रेशर जैसी बीमारी में अति लाभदायक है।
3. अदरक पाचन, गैस और सभी तरह के पेट दर्द से भी निजात दिलाता है।
4. अदरक के ज्यूस में गठिया रोग को ठीक करने की क्षमता होती है। और थायराईड से ग्रस्त मरीजों के लिए भी फायदेमंद हैं।
5. अदरक के ज्यूस के नियमित इस्तेमाल से कोलेस्ट्रॉल की मात्रा कम होती है। रक्त के थक्कों को जमने नहीं देता और खून के प्रवाह को बढ़ाता है साथ ही हृदयघात की आशंका से बचाए रखता है।

2. हल्दी : हल्दी की खेती के लिए अधिक नमी व कम तापमान वाले इलाके उपयुक्त हैं, इसलिए इस फसल को ऊष्ण व शुष्क भागों में नहीं लगाया जा सकता। हल्दी भी अदरक के परिवार की फसल है व किसानों को बहुत लाभ पहुंचा सकती है, परन्तु हर इलाके में इस फसल को कृषि वानिकी में शामिल नहीं किया जा सकता।

औषधीय गुण :

1. हल्दी को कच्चे दूध में मिलाकर उबटन लगाने से त्वचा चमकदार एवं बेदाग़ हो जाती है।
2. हल्दी के पाऊडर को गुलाब जल में मिलाकर मुंहासों पर लगाने से मुहांसे जल्दी ठीक हो जाते हैं।
3. कच्ची हल्दी के रस में चुकंदर की पत्तियों का रस मिलाकर बालों में लगाने से बालों का झड़ना बंद हो जाता है।
4. हल्दी में मोटापा कम करने व रोग-प्रतिरोधक क्षमता भी होती है।

3. मुलैहठी : मुलैहठी की फसल कम आर्द्रता वाले व अपेक्षाकृत ऊष्ण भागों में भी ली जा सकती है, व छाया का प्रभाव लाभकारी होने के कारण, फसल के 3-4 वर्षों में उत्पादन देने के कारण, यह औषधीय पौधा पोपलर आधारित कृषि वानिकी के लिए अति उत्तम है क्योंकि वृक्ष के लगभग आधी अवधि के बाद रोपण करने के पश्चात् इसका परिपक्व अवस्था में पहुंचना वृक्ष की उत्पादन अवस्था में पहुंचने पर ही होता है व लगाने के पश्चात् अधिक देखभाल की आवश्कता नहीं रहती। अर्थात् एक बार रोपण करने के पश्चात् सिर्फ इसका उत्पादन ही प्राप्त करना है।

औषधीय गुण :

1. मुलैहठी की जड़ों से एक औषधीय गुणों युक्त रसायन प्राप्त होता है। जिसका वैज्ञानिक नाम ग्लाइसीरहाज़िन है। इसकी मिठास चीनी से 30-50 गुणा अधिक होती है। एक और रसायन सैपोनिक ग्लाइकोसाईड, जो विभिन्न प्रकार के औषधीय गुण प्रदान करता है, भी पाया जाता है।
1. विभिन्न प्रकार के पेट से संबधित रोगों के उपचार में मुलैहठी का उपयोग किया जाता है।
2. हृदय सम्बन्धी रोग जैसे उच्च रक्तचाप, उच्च कोलेस्ट्रोल इत्यादि के कंट्रोल के लिए इसका इस्तेमाल होता है।
3. विभिन्न श्वास-तन्त्र के रोगों जैसे खांसी, दमा, इत्यादि के उपचार में भी प्रयुक्त होता है।
4. इसके अतिरिक्त गंजेपन को ठीक करने व अन्य त्वचा सम्बन्धी रोगों के उपचार में भी मुलैहठी उपयोगी है।

4. शतावरी : शतावरी का पौधा लता स्वरूपी होता है व अपेक्षाकृत शुष्क व ऊष्ण भागों में लगाया जा सकता है, इस पौधे की विशेषता भी यही है, कि यह मुलैहठी की भांति बहुवर्षीय है व एक बार लगाने के उपरान्त 3-4 वर्ष बाद ही उत्पादन देता है।

औषधीय गुण :

1. इस औषधीय पौधे में स्त्री रोगों को दूर करने की अद्‌भुत क्षमता है, बांझपन के इलाज में भी उपयोग होता है।
2. कैंसर जैसे रोगों का नाश करने की क्षमता भी होती है।
3. तनाव, मुक्ति, डिप्रेशन जैसे हालात में आराम पहुंचाता है।
4. माताओं में अधिक दूध उत्पन्न करने के लिए भी उपयोग होता है।

5. गिलोय : यह पौधा भी लता प्रकार का है व बहुवर्षीय भी है एवं अपेक्षाकृत कम आर्द्र व अधिक ऊष्ण भागों में लगाया जा सकता है इसलिए इसे भी किसान निसंकोच अपने पोपलर आधारित कृषि वानिकी में स्थान दे सकते हैं व अधिक से अधिक लाभ उठा सकते हैं।

औषधीय गुण :

1. बुढ़ापे को दूर रखने के गुण भी गिलोय में पाये जाते हैं।
2. लीवर सम्बन्धित रोगों, पीलिया, हेपेटाइटिस इत्यादि में भी लाभकारी है।
3. कैंसर रोग को समाप्त करने के गुण भी इस पौधे में पाये जाते हैं।
4. हर प्रकार के ज्वर को दूर करने के लिए गिलोय का काढा बहुत लाभकारी है। इसके अतिरिक्त यह पाचन क्रिया को तेज़ करता है। तनाव इत्यादि से मुक्ति प्रदान करता है। बहुत से श्वास संबंधित रोगों में अति लाभकारी है, व जोड़ों के दर्द से निजात दिलाता है।
5. यह एक प्रकार का टॉनिक का कार्य करता है व शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।

6. ग्वार पट्ठा : आज के समय में ग्वार पट्ठा के औषधीय गुणों के बारे में सभी अवगत हैं व इस पौधे का सरल रोपण व छाया सहनशीलता, इस पौधे को कृषिवानिकी में लगाने के लिए अति उत्तम बनाते हैं। इस पौधे से किसानों को अर्जित लाभ पत्तियां का आकार बढ़ने पर मिलना शुरू हो जाता है व, इस पौधे के बहुवर्षीय गुण के कारण 3-4 वर्ष तक पौधा आय देता रहता है।

औषधीय गुण :

1. ग्वार पट्ठा का गुद्‌दा औषधीय गुणों से भरपूर है।
2. यह पेट संबधित रोगों में बहुत लाभकारी है।
3. मधुमेह रोग में अतिउत्तम औषधि है।
4. इसमें त्वचा सम्बन्धी रोगों को दूर करने की क्षमता भी है।

थ्रैशर प्रयोग के समय होने वाली दुर्घटनाओं से बचाव

✎ **विनोद कुमार, मुकेश जैन एवं नरेन्द्र**
फार्म मशीनरी और ऊर्जा अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कुछ ही समय में हरियाणा में रबी की मुख्य फसलों – गेहूं या चना की कटाई और गहाई का समय प्रारम्भ हो जाएगा। गेहूं या चने की गहाई मुख्यत: थ्रैशर से की जाती है। थ्रैशर चूँकि एक मशीन है और इसका प्रयोग करते समय थोड़ी-सी लापरवाही बरतने से इससे होने वाली दुर्घटनाओं की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। प्रत्येक वर्ष थ्रैशरों की संख्या में भी वृद्धि हो रही है, इसलिए इससे होने वाली दुर्घटनाएं भी लगातार बढ़ रही हैं।

हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के एक सर्वेक्षण के अनुसार, हर साल 1000 मशीनों के प्रयोग पर औसत 25 दुर्घटनाएं हो जाती हैं। यद्यपि भारत सरकार द्वारा इन दुर्घटनाओं से बचाव हेतु 'खतरनाक मशीन अधिनियम, 1983' जैसे कानून लागू किए हुए हैं, फिर भी प्रतिवर्ष इनसे होने वाली दुर्घटनाओं की औसत संख्या 20 प्रतिशत से अधिक है। इन दुर्घटनाओं में, लगभग 73 प्रतिशत मानवीय असावधानी से, 13 प्रतिशत मशीनी कारणों से तथा शेष 14 प्रतिशत अन्य कारणों से होती हैं। इन दुर्घटनाओं से बचाव के लिए किसानों को जागरूक होने की आवश्यकता है।

थ्रैशर से होने वाली अधिकतर घटनाओं को थोड़ी-सी सावधानी बरतने से टाला जा सकता है। किसानों को थ्रैशर प्रयोग के समय निम्नलिखित सावधानियां रखनी चाहिएं:

1. सही थ्रैशर का चुनाव करें : किसानों को भारतीय मानक 'शक्ति चालित गहाई मशीन (थ्रैशर)-सुरक्षा सम्बन्धी अपेक्षाएं, 2002' के अनुसार बने थ्रैशरों को ही खरीदना चाहिए। इस मानक से बने थ्रैशर में संभावित दुर्घटनाओं से बचने के लिए पर्याप्त प्रबन्ध होते हैं। यद्यपि इस मानक में थ्रैशर के लिए प्रचुर संख्या में नियम दिए हुए हैं, फिर भी सुरक्षा की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण नियम इस प्रकार हैं :

क. 24 हॉर्स पॉवर से अधिक क्षमता वाले थ्रैशर के भरण नाली (गाला) की लम्बाई कम से कम 900 मिलीमीटर और चौड़ाई (ड्रम के मुंह पर) कम से कम 220 मिलीमीटर और ऊपर से ढके हुये भाग की लम्बाई कम से कम 550 मिलीमीटर होनी चाहिए (चित्र 1), जिससे कि हाथ गहाई करते समय धुरे तक आसानी से न पहुँच सके। ढके हुए भाग का उठाव 10-30 डिग्री होना चाहिए। भरण नाली को थ्रैशर के क्षैतिज से 5-10 डिग्री के कोण पर ऊपर की ओर उठा देने से फसल आसानी से थ्रैशर में पहुँच जाती है।

ख. भरण नाली में कहीं भी नुकीले किनारे नहीं होने चाहिएं।

ग. थ्रैशर के घूमने वाले कलपुर्ज़े जैसे पुली व पट्टे सही तरीके से आवरण या लोहे की मोटे तार की जाली से ढके होने चाहिएं।

इन मानकों के अतिरिक्त किसान को थ्रैशर खरीदते समय दुर्घटना की स्थिति में प्राथमिक उपचार के लिए प्राथमिक चिकित्सा बॉक्स आवश्यक दवाओं के साथ अवश्य खरीद लेना चाहिए और यह सदैव मशीन के पास रखना चाहिए।

2. अत्यधिक थकान की दशा में काम न करें : जैसा कि पहले बताया जा चुका है, थ्रैशर पर 73 प्रतिशत दुर्घटनाएँ थकान के कारण होती हैं, इसलिए थकावट होने पर कुछ देर के लिए गहाई को रोक दें। विशेषकर फसल को भरण नाली में डालने का कार्य तो कदापि न करें। इसके अतिरिक्त थ्रैशर भरण नाली की ऊंचाई कोहनी की ऊँचाई के बराबर होनी चाहिए। भरण नाली की ऊंचाई अधिक होने पर हाथों को ऊपर उठाना पड़ता है तथा कम होने पर शरीर को झुकाना पड़ता है और इन दोनों ही दशाओं में शारीरिक थकान अधिक होती है। अविराम काम करने के लिए प्रत्येक 3-4 घंटे के बाद थोड़ा आराम करना चाहिए।

3. थ्रैशर को चलाते समय ध्यान रखने योग्य सावधानियां : खेत में थ्रैशर को चलाते समय निम्नलिखित सावधानियाँ रखनी चाहिएं :

क. किसान अक्सर गहाई के समय धूल-मिट्टी से बचने के लिए गमछा, चुन्नी या अन्य कपड़ा सिर या हाथों पर पर बांध लेते हैं। यह कपड़ा थ्रैशर की धुरों में लिपट सकता है और व्यक्ति को अंदर खींच सकता है और इससे उसकी जान भी जा सकती है। इसलिए ऐसा कदापि नहीं करना चाहिए। अगर ऐसा करने की आवश्यकता पड़े तो सिर पर टोपी और हाथों में रबर या चमड़े के दस्तानों का प्रयोग कर सकते हैं। गहाई करते समय हाथों या गले में चेन या माला आदि पहनने से भी बचना चाहिए। किसान को ढीले कपड़े जैसे कि धोती, साड़ी आदि नहीं पहनने चाहिएं। महिलाएं भी अपने बाल या साड़ी को कस कर बांधें अथवा लपेटें।

ख. फसल में नमी की मात्रा अगर अधिक हो तो भी गहाई नहीं करनी चाहिए। अधिक नमी की मात्रा में ट्रैक्टर के तेल की खपत तो अधिक

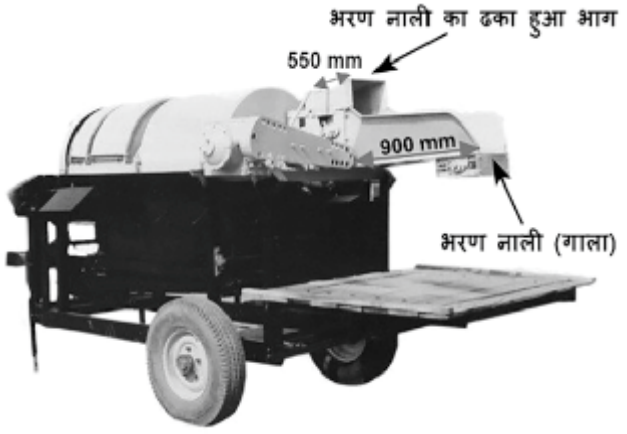

चित्र 1: सुरक्षित भरण नाली (गाला) की माप

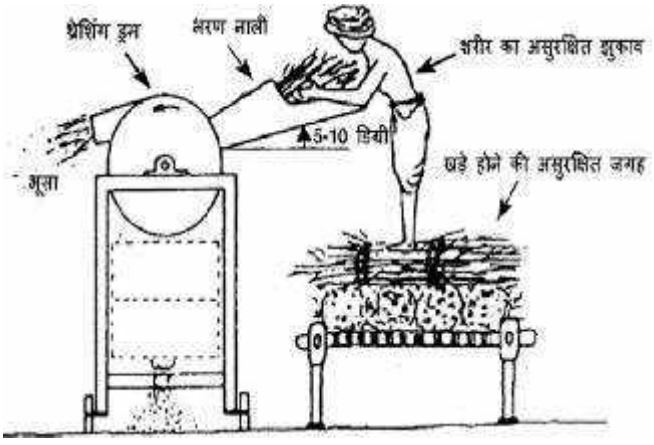

फसल को थ्रैशर में डालने का गलत तरीका

होती ही है, इसके अतिरिक्त फसल के भरण नाली में फंसने की संभावना भी बढ़ जाती है। इसलिए उचित नमी होने पर ही फसल की गहाई करें। यदि फसल भरण नाली में फंस जाए तो फसल को ताकत लगाकर अंदर धकेलने की जगह पहले बाहर खींचें और फिर थोड़ा-थोड़ा करके फसल अंदर डालें। अगर थ्रैशर पर रिवर्स गियर बॉक्स लगा है तो फसल को रिवर्स गियर लीवर का प्रयोग करके भी वापिस निकला जा सकता है।

ग. थ्रैशर पर या नीचे खड़े रहने की जगह समतल और साफ होनी चाहिए। फसल की गठरियों, अनाज के बोरों, थ्रैशर के पहिये आदि पर खड़े होने से शरीर का संतुलन बिगड़ सकता है और मशीन पर गिरने की प्रबल संभावना बनी रहती है इसलिए स्थाई और भार उठाने में सक्षम जगह पर खड़े होकर ही फसल को थ्रैशर में डालें।

घ. फसल को थ्रैशर में डालने का काम कम से कम दो व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए। एक व्यक्ति फसल को नीचे से उठाए और दूसरा उसे भरण नाली में डाले। एक ही व्यक्ति द्वारा दोनों काम किए जाने पर फसल को उठाने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिलता और जल्दबाजी में दुर्घटना की संभावना बनी रहती है।

ड़. गेहूं के अलावा झाड़ीदार फसलों जैसे कि चना आदि की गहाई करते समय विशेष सावधानी रखनी चाहिए।

च. चलते थ्रैशर के समय बातें करने से बचना चाहिए। थ्रैशर पर काम करने वाला प्रत्येक व्यक्ति शराब या किसी अन्य प्रकार के नशे से मुक्त होना चाहिए।

छ. अगर थ्रैशर को रात में चलाया जाता है तो दृश्यता के लिए प्रकाश का उचित प्रबंध होना चाहिए।

ज. थ्रैशर के सभी घूमने वाले कलपुर्ज़ों से उचित दूरी बनाए रखें। इन कलपुर्ज़ों को लकड़ी के फ्रेम या लोहे की जाली से ढका भी जा सकता है।

झ. चलते समय थ्रैशर में किसी भी तरह का समायोजन नहीं करना चाहिए। समायोजन करने के लिए थ्रैशर को पहले स्थिर अवस्था में लाना चाहिए।

ञ. भूसा निकासी की दिशा हवा की दिशा के समानांतर होनी चाहिए। भूसे के महीन कणों से बचाव के लिए मुंह और नाक पर मास्क का प्रयोग भी किया जा सकता है।

ट. केवल कुशल और प्रशिक्षित श्रमिकों को ही थ्रैशर पर कार्य करने की अनुमति दें। बच्चों, बूढ़ों और बीमार व्यक्तियों को थ्रैशर पर कदापि काम न करने दें।

ठ. अगर थ्रैशर को चलाने के लिए बिजली की मोटर का प्रयोग किया जा रहा है तो मोटर को सीधे स्टार्ट करने की बजाय स्टार्टर का प्रयोग करें। स्टार्टर, थ्रैशर पर काम करने वाले व्यक्ति की सीधी पहुंच में होना चाहिए ताकि ज़रूरत पड़ने पर मोटर को तुरंत बंद किया जा सके।

4. गहाई के दौरान आग से बचाव : गहाई के समय फसल सूखी हुई होती है इसलिए थोड़ी सी चिंगारी भी भीषण आग का रूप ले सकती है। अत: थ्रैशर को चलाने से पहले यह जांच लेना चाहिए कि इसके कलपुर्ज़े ढीले न हों और इनमें किसी तरह का घर्षण न होता हो। घर्षण के कारण फसल में आग लग सकती है। ट्रैक्टर के धुंआ निकलने वाले पाइप पर भी चिंगारी अवरोधक लगा होना चाहिए। किसानों को खलिहान में हुक्का-बीड़ी का प्रयोग भी नहीं करना चाहिए। चाय-भोजन आदि बनाने के बाद बची आग पर पानी या रेत छिड़क देनी चाहिए।

आग लगने की स्थिति में उसके फैलाव को रोकने के लिए बालू रेत से भरी बाल्टियां साथ में रखें।

दुर्घटना होने की स्थिति में सरकारी आर्थिक सहायता कैसे प्राप्त करें?

अगर दुर्भाग्यवश दुर्घटना हो जाए तो किसान या मज़दूर 'प्रधानमंत्री किसान एवं खेतिहर मज़दूर जीवन सुरक्षा योजना, 2013' के अंतर्गत सरकारी आर्थिक सहायता प्राप्त कर सकता है। यह योजना हरियाणा एग्रीकल्चर प्रोड्यूस मार्केट्स एक्ट, 1961 के अंतर्गत चलाई जा रही है। इस योजना में खेती-बाड़ी से संबंधित कार्यों में, खेतों में, गांव में, मंडियों में और ऐसे स्थानों से आवागमन के दौरान हुई दुर्घटनाओं में विशेष आर्थिक सहायता का प्रावधान है।

किसान, खेतिहर मज़दूर और मंडियों में काम करने वाले मज़दूर इस योजना से आर्थिक सहायता प्राप्त कर सकते हैं। यह योजना 10 साल से ज़्यादा और 65 साल से कम उम्र वाले व्यक्तियों पर ही लागू होती है। इस योजना में अधिकतम 5 लाख रुपए तक क्षतिपूर्ति का प्रावधान है। इस योजना के अंतर्गत सरकारी सहायता प्राप्त करने के लिए इस योजना का निर्धारित फॉर्म जो कि हरियाणा स्टेट एग्रीकल्चर मार्केटिंग बोर्ड की वेबसाइट पर भी उपलब्ध है, भर कर आवश्यक दस्तावेजों के साथ उस ज़िला से संबंधित मार्केट कमेटी में जमा करवाया जा सकता है। यह कार्य दुर्घटना होने के 2 माह पूरे होने से पहले किया जाना आवश्यक है।

(पृष्ठ 21 का शेष)

पानी में 4 से 5 मिनट तक रखें। फलों को फटने से बचाएं। फिर आंवले के फलों को साफ मलमल के कपड़े पर फैलाएं। जिससे फालतू पानी बाहर आ जाए। इन्हें अब स्टील के पतीले में डालें।

6. चाशनी बनाने के लिए एक किलोग्राम फल में सवा किलो चीनी, 600 से 700 मि.ली. पानी और 2 से 4 ग्राम सिट्रिक एसिड डालें और उबालें। फिर चाशनी में जमी मैली परत को मलमल के कपड़े से छान लें।
7. चाशनी को अगले दिन 15 से 20 मिनट तक गाढ़ा कर लें और फलों पर डालें।
8. दो दिन बाद चाशनी को फलों से निकालें। 10 से 15 मिनट उबालने के बाद दो तीन तार की चाशनी तैयार हो जाएगी। फलों को इसी चाशनी में 4-5 दिन तक रहने दें।
9. चाशनी को शहद जितना गाढ़ा होने दें। अब इसे कीटाणुरहित बर्तन में डालकर सील बन्द करें।

कैण्डी

- मुरब्बा और कैण्डी एक ही श्रेणी के खाद्य पदार्थ हैं, जिन्हें शक्कर द्वारा परिरक्षित किया जाता है।
- कैण्डी को शक्कर के गाढ़े घोल से निकाल कर सुखाया जाता है, वहीं मुरब्बा 70 प्रतिशत शक्कर के घोल में परिरक्षित किया जाता है।
- सेब, आंवला और बेलगिरी के मुरब्बे को चाशनी में दो सप्ताह तक रखें। उसके बाद चाश्नी से निकाल कर ट्रे में फैला दें व 50 से 60 डिग्री तापमान पर सुखाएं। कैण्डी तैयार होने पर एल.डी.पी.ई. की थैलियों में सीलबन्द कर भण्डारण करें।

सौर ऊर्जा संयंत्र से अधिकतम लाभ : कैसे प्राप्त करें

✎ **विनोद कुमार एवं मुकेश जैन**
फार्म मशीनरी और पावर इंजीनियरिंग विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सौर ऊर्जा संयंत्र तकनीक दिन-प्रतिदिन सुगम सुलभ होने के कारण न केवल लोकप्रिय होती जा रही है अपितु किसानों के लिए फसल की लागत कम करने का महत्वपूर्ण साधन बन गयी है। किसान अपने खेत में सौर ऊर्जा संयंत्र लगा कर भविष्य के लिए एक सुरक्षित निवेश भी कर सकते हैं। हरियाणा सरकार समय-समय पर किसानों को यह संयंत्र लगवाने के लिए उचित सब्सिडी भी प्रदान करती है। सब्सिडी और सस्ती होने के कारण बहुत सारे किसानों ने यह संयंत्र लगवा लिया है।

जिन किसानों ने सौर ऊर्जा संयंत्र लगवा लिया है, उनके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे इस संयंत्र को खरीदने में किये गए निवेश पर अधिकतम लाभ प्राप्त करें। इसके लिए सौर ऊर्जा संयंत्र की उचित स्थापना और रख-रखाव बहुत महत्वपूर्ण कार्य है। खेत में सौर संयंत्र स्थापित करने की अवधि में थोड़ा सा ध्यान रखने से 20 से 35 प्रतिशत तक अधिक सौर बिजली प्राप्त की जा सकती है। यह सौर ऊर्जा संयंत्र की लागत भी कम कर देता है।

सौर पैनलों को स्थापित करते समय अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

1. सोलर पैनलों की दिशा और झुकाव

अधिकतम बिजली प्राप्त करने के लिए इस प्रणाली की दिशा और झुकाव ऐसा होना चाहिए कि यह अधिकतम सूर्यताप प्राप्त करें। यही कारण है कि सूरज की किरणों को सौर पैनल पर लंबवत (90 डिग्री कोण पर) पड़ना चाहिए।

सौर पैनलों की दिशा : सामान्य तौर पर हरियाणा में, जो कि पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में स्थित है, सौर पैनल की दिशा दक्षिण की तरफ होनी चाहिए। हालांकि, सौर पैनलों को उनकी बिजली उत्पादन क्षमता कम किये बिना, दक्षिण के 45 डिग्री पूर्व या पश्चिम की तरफ तक भी लगाया जा सकता है। दक्षिण दिशा का सही पता करने के लिए आप दिशा सूचक यंत्र का भी प्रयोग कर सकते हैं। अगर दिशा सूचक यंत्र उपलब्ध नहीं है तो आप आजकल हर किसी के पास उपलब्ध स्मार्टफोन का भी प्रयोग कर सकते हैं।

सौर पैनलों का झुकाव : झुकाव वह कोण है जो सौर पैनल क्षैतिज के साथ बनाता है। दिशा के बाद यह दूसरा सबसे महत्वपूर्ण कारक है जो सौर ऊर्जा संयंत्र से पैदा होने वाली बिजली की मात्रा को प्रभावित करता है। कोई भी सौर पैनल ज़मीन के समानान्तर नहीं होना चाहिए। सौर पैनलों को अपने सौर ऊर्जा संयंत्र के डिज़ाइन के अनुसार निम्नलिखित नियमानुसार झुकाव देना चाहिए :



स्थिर सौर ऊर्जा संयंत्र में पैनलों का झुकाव

क. स्थिर सौर ऊर्जा संयंत्र का झुकाव : यदि आप एक स्थिर सौर ऊर्जा संयंत्र स्थापित कर रहे हैं तो सौर पैनल को क्षैतिज दिशा के साथ एक कोण बनाना चाहिए जो उस स्थान के अक्षांश के बराबर हो।

हरियाणा राज्य में अक्षांश का मान 29 डिग्री होता है। इसलिए आप यह सुनिश्चित कर लें कि आपका सौर पैनल क्षैतिज के साथ 29 डिग्री का झुकाव बनाता हो।

ख. लचीले सौर ऊर्जा संयंत्र का झुकाव : अपने सौर ऊर्जा संयंत्र से अधिकतम बिजली प्राप्त करने के लिए, आपको सलाह दी जाती है कि आप खेत में एक लचीली सौर ऊर्जा प्रणाली स्थापित करें। इस प्रणाली में, आप मौसम के अनुसार सौर पैनलों के झुकाव को बदल सकते हैं। आमतौर पर सर्दियों में, गर्मियों की तुलना में सौर पैनलों के झुकाव को अधिक रखा जाता है। लचीले सौर ऊर्जा संयंत्र में आप झुकाव को निम्नलिखित दो तरह से बदल सकते हैं :

वर्ष में दो झुकाव विधि : यदि आप अधिक सौर ऊर्जा प्राप्त करने के लिए वर्ष में दो बार सौर पैनलों के झुकाव को समायोजित करने जा रहे हैं, तो इसे इस प्रकार करें :

ऋतु	झुकाव बदलने की तिथि	क्षैतिज के साथ झुकाव
ग्रीष्मकाल	30 मार्च	7 डिग्री
शरदकाल	12 सितम्बर	45.5 डिग्री

साल में चार झुकाव विधि : अगर आप साल में चार बार सोलर पैनलों का झुकाव बदल सकते हैं तो आप इससे अधिक मात्रा में अपने सौर पैनलों से बिजली पैदा कर सकते हैं। साल में चार बार आप सोलर पैनलों के झुकाव को इस तरह से बदल सकते हैं :

ऋतु	झुकाव बदलने की तिथि	क्षैतिज के साथ झुकाव
ग्रीष्मकाल	18 अप्रैल	3 डिग्री
वसंत	24 अगस्त	27 डिग्री
शरदकाल	7 अक्तूबर	50 डिग्री
पतझड़	5 मार्च	27 डिग्री

2. सौर ऊर्जा संयंत्र का छाया से दूर होना

सौर पैनलों पर किसी भी प्रकार की कोई छाया नहीं पड़नी चाहिए। अगर सौर पैनल के एक छोटे से हिस्से पर भी कोई छाया पड़ती है तो इससे इसका बिजली उत्पादन कम हो जाता है। सौर पैनल पर छायादार हिस्से में तार की प्रतिरोधकता में वृद्धि हो सकती है। परिणामस्वरूप, यह गर्म हो सकता है और अंततः उन क्षेत्रों को जला सकता है। इस तरह के नुकसान को वारंटी के तहत भी कवर नहीं किया जा सकता है। इसलिए सौर ऊर्जा संयंत्र स्थापित करते समय छाया के बारे में पूर्ण सावधान रहना चाहिए। यदि छाया को टाला नहीं जा सकता है तो सौर ऊर्जा संयंत्र लगवाते समय आवश्यकता अनुसार सौर पैनलों के आकार या संख्या को बढ़ाया जाना चाहिए।

3. सौर पैनलों के आसपास वायु संचालन (तापमान नियमन)

सौर पैनलों के आसपास वायु संचालन एक महत्वपूर्ण कारक नहीं है, जब तक तापमान 25 डिग्री सेल्सियस से कम रहता है। लेकिन भारत जैसे देशों में, जहां गर्मियों में तापमान बढ़ता है, यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक बन जाता है। उच्च तापमान पर, सौर संयंत्र का बिजली उत्पादन कम हो जाता है। 25 डिग्री सेल्सियस से ऊपर के तापमान में, प्रत्येक डिग्री वृद्धि के लिए, संयंत्र का उत्पादन लगभग 0.25 प्रतिशतसे 0.5 प्रतिशत



सौर पैनलों की साफ-सफाई

तक कम हो जाता है।

विशेषकर दक्षिण हरियाणा में, जहां गर्मियों में सामान्य तापमान 40 डिग्री सेल्सियस तक होता है, इसके बिजली उत्पादन में 4 से 8 प्रतिशत तक की कमी हो जाती है। इसलिए सौर पैनलों को स्थापित करते समय इस कारक को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। तापमान कम रखने के लिए, सौर मंडल के आसपास वायु का संचालन अच्छा होना चाहिए। हवा के अच्छे आवागमन के लिए ऊंचे भवन, पेड़, बिजली के खम्बे आदि के पास सौर संयंत्र कदापि स्थापित न करें।

4. विद्युत केबल की धातु, मोटाई और लंबाई

बिजली केबल, जो सभी पैनलों को पानी पंप से जोड़ती है, की गुणवत्ता को अनदेखा नहीं करना चाहिए। जैसा कि हम सभी जानते हैं, तांबा बिजली का सबसे अच्छा सुचालक है, इसलिए हमें एल्यूमीनियम या लोहे के तार के अतिरिक्त शुद्ध तांबे से बनी विद्युत केबल का उपयोग करना चाहिए।

विद्युत् केबल का अगला महत्वपूर्ण बिंदु उसकी मोटाई और लंबाई है। जहां तक संभव हो, केबल की मोटाई अधिक से अधिक और लंबाई कम से कम होनी चाहिए। इससे तार में बिजली की क्षति कम होती है। अगर संभव हो तो बिजली की केबल जिसमें बड़ी संख्या में पतली तार हो, को ही खरीदना चाहिए। केबल में एकल तार या कम संख्या वाले तारों से बिजली की क्षति अपेक्षाकृत अधिक होती है।

5. नियमित साफ-सफाई

सौर पैनलों की नियमित रूप से साफ-सफाई करना भी बहुत आवश्यक है। अगर आपके क्षेत्र में धूल अधिक उड़ती है तो पैनलों की सफाई लगातार करते रहना चाहिए। यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सौर किरणों का अवशोषण गंदगी, पक्षियों के मल इत्यादि द्वारा कम न हो।

कुछ तौर-तरीके हैं जिनसे आप अपने पैनलों को साफ कर सकते हैं। सबसे पहले (और सबसे आसान) तरीका है- साफ पानी द्वारा धुलाई। यदि पैनलों को अधिक सफाई की आवश्यकता हो तो एक लंबे बांस की लकड़ी पर एक नरम मखमली या सूती कपडा बांध लें और हल्के साबुन के पानी के साथ साफ करें। सौर पैनल के काँच पर कोई खरोंच न पड़ने दें। अगर सफाई के लिए सीढ़ी का प्रयोग करना पड़े तो पहले इसे अच्छे से स्थापित करें।

सिंचाई : साधन, आवश्यकता एवं विधियाँ

✎ **नरेंद्र कुमार, अमनदीप सिंह एवं प्रमोद शर्मा**
कृषि अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत की जनसंख्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। इस बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन उपलब्ध करवाना ही हमारी सबसे बड़ी प्राथमिकता है। अच्छी पैदावार के लिये फसलों में समय पर सिंचाई करना अनिवार्य है। सिंचाई के लिये जल का प्रमुख स्त्रोत वर्षा है। किन्तु वर्षा पर निर्भर रहना बुद्धिमानी नहीं है। क्योंकि हमारे देश में वर्षा बड़ी अनिश्चित है। इसलिए सिंचाई हेतु कृत्रिम साधनों का उपयोग किया जाता है। कृत्रिम साधनों में कुएं, तालाब, झरने एवं नहरें इत्यादि प्रमुख हैं। हमारे देश की भौगोलिक सरंचना एक-सी नहीं है। सभी प्रदेशो में सिंचाई के साधन अलग हैं। उदाहरण के लिये उतरप्रदेश और पंजाब में वर्ष भर बहने वाली नदियां हैं। तो इन जगहों में सिंचाई का प्रमुख साधन नहरें हैं। मध्यप्रदेश और राजस्थान में सिंचाई कुओं से की जाती है। दक्षिण भारत में सिंचाई तालाबों से की जाती है।

सिंचाई के साधन

तालाब : तालाब दो प्रकार के होते हैं : कृत्रिम तालाब एवं मानव निर्मित तालाब तथा प्राकृतिक तालाब। कृत्रिम तालाब मानव निर्मित होते हैं। इन तालाबों की पानी संचयन की क्षमता आवश्यकतानुसार निर्धारित की जाती है। इन्हें मशीनों के उपयोग से खोदा जाता है। वर्षा का बहाव जिस तरफ होता है, वो जगह इन तालाबों को बनाने के लिये उपयुक्त होती है। दक्षिण भारत में अधिकतर सिंचाई तालाबों से की जाती है। भोपाल, ग्वालियर, अलवर तथा उदयपुर में बड़े-बड़े तालाब हैं। प्राकृतिक तालाब वो तालाब होते हैं जो भौगोलिक सरंचना में अपने आप ही तैयार होते हैं। इन तरह के तालाबों की संचयन क्षमता कम या अधिक नहीं कर सकते। ये तालाब उन क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहाँ भूमि ऊबड़-खाबड़ और पथरीली हो।

नलकूप : आजकल कुओं और तालाबों की तुलना में अब लोग नलकूपों को अधिक महत्व देने लगे हैं। आज लगभग हर गांव में सरकारी और गैर सरकारी नलकूप पाये जाते हैं। ये बिजली या डीज़ल इंजनों द्वारा चलते हैं। ये सिंचाई के लिए सुगम और सरल साधन हैं। सरकार इन नलकूपों को देश में लाखों की संख्या में लगा रही है।

कुएं : कुओं को प्राचीन काल से ही सिंचाई के साधन रूप में प्रयोग किया जाता है। पथरीले क्षेत्रों में कुएं खुदवाने में धन का अधिक खर्चा होता है। कुओं के माध्यम से अधिक सिंचाई गंगा के क्षेत्रों में की जाती है। कुओं से पानी किसी ईजन या किसी और माध्यम से निकाल कर खेतों में लगाया जाता है।

नहरें : नहरें सिंचाई का प्रमुख साधन हैं। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में नहरों का विशेष महत्व है। भारत में मुख्यत: तीन प्रकार की नहरों का इस्तेमाल किया जाता है :

स्थाई नहरें : स्थाई नहरों में साल भर पानी रहता है तथा इसका उपयोग साल भर किया जाता है। इन नहरों का स्त्रोत वे नदियां हैं जो पूरे वर्ष पानी से भरी रहती हैं।

बरसाती नहरें : ये नहरें सिंचाई के लिए विशेष लाभकारी नहीं होती क्योंकि इनमें बरसात के समय ही पानी रहता है। शेष समय ये नहरें सूखी रहती हैं।

(शेष पृष्ठ 32 पर)

गांवों को प्रदूषण से बचाने के उपाय

- **दिवेश चौधरी, ममता एवं अनिल कुमार**
कृषि मौसम विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

प्रदूषण की समस्या मनुष्य के भौतिकवादी दृष्टिकोण, विज्ञान और तकनीक की निरंतर प्रगति, बढ़ते औद्योगीकरण और शहरीकरण, मोटर वाहनों की बढ़ती संख्या, वनों के काटे जाने, जनसंख्या में हो रही बेतहाशा वृद्धि, गरीबी और अशिक्षा आदि के कारण अति विकराल होती जा रही है जिससे वनस्पतियों, जीव जन्तुओं और यहां तक कि स्वयं मनुष्य का जीवन भी संकटग्रस्त होता जा रहा हैं। यद्यपि प्रदूषण की समस्या अभी बड़े शहरों तक ही अधिक विकराल रूप में फैली है। ग्रामीण क्षेत्रों में यदि अभी से कुछ सावधानियां बरती जाएं तो निश्चित ही इसका प्रकोप कम करने में सहायता मिल सकती है, जैसे : प्लास्टिक की थैली, पाऊच आदि का प्रयोग बहुत बढ़ गया है। इसके कारण पाईप/नालियां आदि रुक जाती हैं। ये खेतों, कूड़े एवं खाद के ढेरों में दब जाने पर भी गल नहीं पातीं तथा मिट्टी को प्रदूषित करती हैं। अत: यथासम्भव इनका कम से कम प्रयोग करना चाहिए।

कुंओं, तालाबों, नदियों आदि को दूषित होने से बचाने के प्रयास होने चाहिएं। कुंओं के पानी को जल प्रदूषण से बचाने के लिए उसमें कूड़ा करकट नहीं पहुंचे, उसका ऐसा प्रबंधन किया जाना चाहिए। माह में एक बार उसमें पोटैशियम परमैंगनेट अथवा ब्लीचिंग पाऊडर डालने से कुएं के पानी को शुद्ध रखा जा सकता है।

घर/गांवों से निकलने वाले दूषित जल, मलमूत्र आदि को नदियों में बहाने और उसी जल को गांववासियों अथवा पशुओं द्वारा प्रयोग किये जाने पर बीमारियों को बढ़ावा मिलता है। अत: इस प्रकार की गंदगी को सीधे नदियों एवं तालाबों में नहीं बहाना चाहिए। घरों से निकलने वाले पानी को गलियों, सड़कों पर फैलने के लिए नहीं छोड़ना चाहिए। यथासम्भव उसे गांव से बहार निकालने के प्रयास किये जाने चाहिएं। प्रत्येक घर में ऐसे पानी के निस्तारण के लिए सोखने वाला गड्ढा बनवाया जाना चाहिए।

आटा चक्की, अन्य छोटे एवं घरेलू उद्योगों में काम आने वाली मशीनें जो विशेष रूप से अधिक आवाज़ करती हैं को आवासीय क्षेत्रों से दूर लगाया जाना चाहिए अन्यथा इनसे निकलने वाली तीव्र ध्वनि से ध्वनि प्रदूषण होगा जो संबंधित लोगों को प्रभावित करेगा। त्योहार, उत्सवों, पूजापाठ में अधिक शोर करने वाले लाऊड स्पीकरों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इससे भी ध्वनि प्रदूषण को बढ़ावा मिलता है।

मृत पशुओं के शव आदि गांव के आसपास नहीं डालने चाहिएं बल्कि गांव से यथासंभव दूर डालने की व्यवस्था की जानी चाहिए, अन्यथा इनके सड़ने से फैलने वाली दुर्गन्ध से गांव में बीमारियां फैल सकती हैं।

उत्सवों एवं त्योहार आदि पर विशेष रूप से अधिक ध्वनि वाले पटाखों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इनकी तीव्र ध्वनि से लोग बहरे तक हो सकते हैं। किसी भी प्रकार की आतिशबाजी ध्वनि एवं वायु प्रदूषण दोनों का कारण बनती है। रेडियो, टी. वी. और रिकॉर्ड प्लेयर्स आदि को ऊंची आवाज़ मे नहीं चलाना चाहिए। मोटर साइकिल, ट्रैक्टर आदि में तीव्र ध्वनि वाले हॉर्न नहीं लगवाने चाहिएं। इससे भी ध्वनि प्रदूषण बढ़ता है।

खाना बनाने में गोबर के कंडों का प्रयोग काफी प्रदूषणकरी होता है इनके जलने से कई हानिकारक गैसें निकलती हैं। इनके बदले आजकल छोटे गोबर गैस संयंत्रों को गांवों में बनवाया जा सकता है। ये कम कीमत में बनकर तैयार हो जाते हैं और इन पर सरकारी अनुदान की भी व्यवस्था है। इनमें खाना पकाने के लिए गैस, खेती के लिए कम्पोस्ट खाद तथा रोशनी की सुविधा भी मिलती है। घरों में खाना पकाने के लिए उपयोग किये जाने वाले साधारण चूल्हे के स्थान पर धुआं रहित चूल्हे का प्रयोग करना चाहिए। सरकार इसे रियायती दरों पर उपलब्ध भी करवाती है।

गांवों में प्रयोग किये जाने वाले ट्रैक्टर, मोटर, साइकिल, स्कूटर और डीज़ल पम्प आदि को समय-समय पर जांचना चाहिए जिससे उनसे निकलने वाले धुएं की मात्रा और ध्वनि को कम किया जा सके। सस्ते डीज़ल व पेट्रोल की बचत करने के साथ-साथ वायु एवं ध्वनि प्रदूषण को भी कम किया जा सकता है।

अपने घरों के आसपास कूड़ा-कचरा नहीं फैलाना चाहिए। घरों के कूड़ा-करकट को घरों के सामने या सड़कों पर न डालकर उपयुक्त स्थान पर डालने की व्यवस्था की जानी चाहिए। गांव के आसपास खुले में शौच करने की प्रवृत्ति को भी रोका जाना चाहिए। इनसे वायु प्रदूषण होता है। वर्तमान में कम खर्च में स्वच्छ शौचालय बनवाए जा सकते हैं। अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए ग्रामीण विकास अधिकारी एवं ग्राम पंचायत अधिकारी से सम्पर्क किया जा सकता है।

पैदावार बढ़ाने, भंडारण के समय अन्न खराब होने से बचाने की दृष्टि से खेतों में प्रयोग किये जाने वाले खाद, उर्वरक एवं कीटनाशकों का निर्धारित मात्रा अनुसार प्रयोग किया जाना चाहिए। इनके अत्यधिक प्रयोग से मिट्टी तो दूषित होती ही है, इससे अतिरिक्त पैदा होने वाले खाद्यान, फल, सब्जियां आदि भी प्रदूषित हो जाते हैं। जिनके प्रयोग से लोगों को कैंसर, श्वांस रोग, अल्सर एवं त्वचा रोग जैसी भयंकर बीमारी हो सकती है।

प्रदूषण रोकथाम में वृक्ष विशेष रूप से सहायक होते हैं। अत: वृक्ष की सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। 'अखिल भारत विज्ञान कांग्रेस' के अनुसार एक वृक्ष से उसकी 50 वर्ष की औसत आयु में ऑक्सीजन, प्रोटीन, वायु शुद्धिकरण, भूमिरक्षा, छाया, जलवायु से नियमितीकरण के रूप में प्रत्यक्ष रूप में लगभग 16 लाख रुपये के लाभ प्राप्त होते हैं।

जब तक सम्भव हो, धूम्रपान की आदत से बचना चाहिए और यदि इसकी लत पड़ भी गयी है तो इससे बच पाना सम्भव नहीं है तो अपने परिवार के सदस्यों तथा दूसरे लोगों के समक्ष धूम्रपान नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे धूम्रपान न करने वालों के स्वास्थ्य को भी खतरा होता है। वैज्ञानिकों के अनुसार धूम्रपान न करने वाले व्यक्ति के पास धूम्रपान करने से भी उसे धुएं से 30 प्रतिशत हानि होती है क्योकि सांस से बीड़ी, सिगरेट और तम्बाकू का धुआं, धूम्रपान नहीं करने वाले व्यक्ति के शरीर में भी प्रवेश करता है।

वायु, भूमि, जल एवं ध्वनि आदि के प्रदूषण से रोकथाम के उपायों को यथासम्भव अधिक से अधिक लोगों को अवगत कराने का प्रयास किया जाना चाहिए और इसे कम करने के लिए तथा लोगों को जागरूक करने के लिए सम्बंधित लोगों तथा सम्बंधित संस्थानों का यथासम्भव सहयोग प्राप्त किया जाना चाहिए। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में भी उक्त सावधानियां अपनाई जाएं तो वायु, जल, ध्वनि और भूमि प्रदूषण को बहुत अच्छी तरह से रोका जा सकता है। यह सत्य है कि अभी तक ग्रामीण क्षेत्रो में प्रदूषण की समस्या उत्पन नहीं हुई है, लेकिन जिस अनियंत्रित तथा अनियमित तरीके से गांवों का विकास हो रहा है और शहरों जैसी चकाचौंध को फैलाने के लिए जो सरकारी संस्थागत एवं व्यक्तिगत प्रयास हो रहे हैं, उनमें ऐसा आभास हो रहा है कि अब गांव भी बहुत जल्द प्रदूषण की भयंकर बीमारी से ग्रस्त हो जाएंगे। अत: यह आवश्यक है कि अब सरकारी तथा संस्थागत प्रयासों के साथ-साथ पंचायतों द्वारा सामुहिक रूप से तथा व्यक्तियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से इस दिशा में प्रयत्न किये जाने चाहिएं। इस संबंध में लोगों को शिक्षित करने के लिए जन साधारण, जन सहयोग, जन चेतना और जन सहभागिता विकसित करनी आवश्यक है तभी गांवों को निकट भविष्य में संभावित प्रदूषण की विभीषिका से बचाना संभव हो सकेगा।

Drip Irrigation for Horticultural Crop Production

- **Sumit Deswal and Manender Singh**
Department of Horticulture
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Irrigation's most basic function is to provide water where and when it is needed. Irrigation is not provided directly to plants, but to the root zone of the soil. The root zone functions as a reservoir and is highly dependent on plant type, soil type, soil compaction and other factors. Precise and regulated application of irrigation water and plant nutrients at low pressure and frequent intervals through drippers/emitters directly into the root zone of the plant with the help of a close network of pipes is known as drip irrigation system. Drip irrigation is one of the advanced methods of irrigation by which only required amount of water can be supplied to root zone. It is a very efficient method of applying water and nutrients to crops. Thus, an optimum soil-water-air proportion can be maintained for a good growth, yield and quality of plant and fruit of vegetables. In early 1940's, drip irrigation was initiated by an Israeli engineer Syncha Blass to apply water in small quantities - drop by drop. Drip irrigation is gaining popularity due to the diminishing water resources. It's highly useful for vegetables such as; tomato, pepper, cucumber, okra, garden pea, cauliflower, cabbage, and also other horticultural crops. The horticultural crops suitable for drip irrigation are given in Table 1.

In this method, water is dripped on to the soil at a very low rate (2-20 liters/hour) from ma system of small diameter plastic pipes fixed with outlets called emitters or drippers. Water is applied close to the plants so that only part of the soil in which the roots grow is drenched. This will allow the watering to be restricted close to the consumptive use of the plants. The application of water in drip irrigation is more frequent (every 1-4 days) than with other methods. This provides a favourable moisture level in the soil in which plants can flourish. For the successful production of drip irrigation system, it is necessary to design the layout of the system technically feasible and economically viable. In designing of the system, the parameters regarding the agro-climatic conditions like soil, water, and climate should be considered for accurate monitoring of drip irrigation system as and when required. Crop yields can be increased through improved water and fertility management and reduced disease and weed pressure. When drip irrigation is used with polyethylene mulch, yields can increase even further. In vegetable crops, a surface method of drip irrigation is used as it can be rolled back when irrigation is not required.

Table 1: Horticultural Crops Suitable for Drip Irrigation System

Orchard crops	Grapes, banana, pomegranate, orange, citrus, mango, lemon, custard apple, sapota, guava, pineapple, coconut, cashewnut, papaya, aonla, litchi, watermelon, muskmelon, etc.
Vegetables	Tomato, chilly, capsicum, cabbage, cauliflower, onion, okra, brinjal, bitter gourd, ridge gourd, cucumber, peas, spinach, pumpkin, etc.
Cash crops	Sugarcane, cotton, arecanut, strawberry, etc.
Flowers	Rose, carnation, gerbera, anthurium, orchids, jasmine, dahilia, marigold, etc.
Plantation	Tea, rubber, coffee, coconut, etc.
Spices	Turmeric, cloves, mint, etc.
Oil seed	Sunflower, oil palm, groundnut, etc.
Forest crops	Teakwood, bamboo, etc.

Advantages of drip irrigation

- Lower-volume water sources can be used because trickle irrigation may require less than half of the water needed for sprinkler irrigation.
- Lower operating pressures mean reduced energy costs for pumping.
- High levels of water-use efficiency are achieved because plants can be supplied with more precise amount of water.
- Disease pressure may be less because plant foliage remains dry.
- Labour and operating costs are generally less and extensive automation is possible.
- Water applications are made directly to the plant root zone. No applications are made between rows or other non-productive areas, resulting in better weed control and significant water savings.
- Field operations, such as harvesting, can continue during irrigation because the areas between rows remain dry.
- Fertilizers can be applied efficiently.
- Irrigation can be done under a wide range of field conditions.
- Compared to sprinkler irrigation, soil erosion and nutrient leaching can be reduced.

Response of Different Crops to Drip Irrigation System

Crops	Water saving (%)	Increase in yield (%)
Banana	45	52
Cauliflower	68	70
Chilly	68	28
Cucumber	56	48
Grapes	48	23
Sugarcane	45	45
Sweet lime	50	99
Tomato	61	50
Watermelon	42	60

Disadvantages and limitations of drip irrigation

- Initial investment costs per acre may be higher than those of other irrigation options.
- Management requirements are somewhat higher. Delaying critical operation decisions may cause irreversible crop damage.
- Frost protection is not possible with drip systems; if it is needed, sprinkler systems are necessary.
- Rodent, insect and human damage to drip lines are potential sources of leaks.
- Water filtration is necessary to prevent clogging of the small emitter holes.
- Compared to sprinkler irrigation, water distribution in the soil is restricted.

Because vegetables are usually planted in rows, drip tape with pre-punched emitter holes is used to wet a continuous strip along the row. Most vegetables are grown for only one season, so thin-walled disposable tape (8 to 10 mil thick) is generally used for only one season. Less emphasis is placed on buried mainlines and sub-mainlines to allow the system to be dismantled and moved from season to season. Costs may be high, so you should develop a functional system that allows for maximum production with minimal costs. You may purchase an entire system from a drip irrigation dealer or adapt your own components. Proper system design will help you avoid problems later. Irrigation water may come from wells, ponds, lakes, rivers, streams or municipal water suppliers. Groundwater is fairly clean and may only require a screen or disk filter to remove particles that can clog emitters. However, a water quality test should be conducted to check for precipitates or other contaminants before a drip system is installed.

Major components of drip irrigation system

The drip irrigation system consists of a network of pipes with a suitable emitting device. These benefits are only possible when a drip irrigation system is properly designed, managed and maintained. Irrigation system design is complex and is beyond the scope of this publication. You should consult with a qualified agricultural engineer or irrigation equipment dealer to design your drip irrigation system. However, by understanding the various design factors, you can help ensure that your drip irrigation system is properly designed and operated. A large typical drip irrigation system is presented in Figure 1.

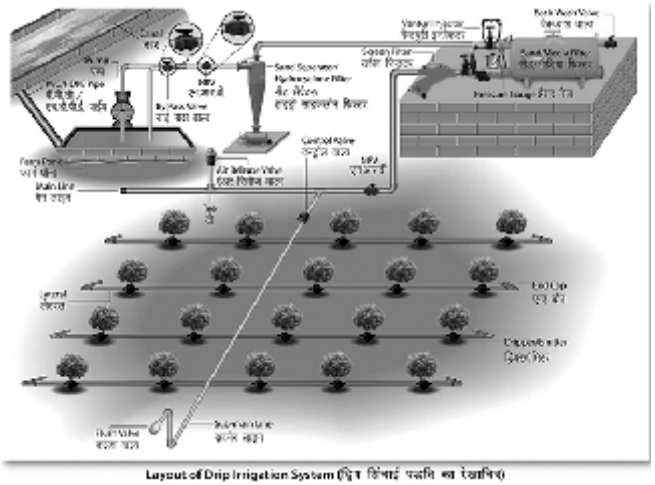

Layout of Drip Irrigation System (ड्रिप सिंचाई पद्धति का रेखाचित्र)

The pump front unit takes water from the source and provides the right pressure for delivery into the pipe system.

The control head consists of valves to control the discharge and pressure in the entire system. It may also have filters to clear the water.

Filtration system : Some control head units contain a fertilizer or nutrient tank to clean the water. Common types of the filter include screen filters and graded sand filters which remove fine material suspended in the water.

Fertilizer tank/venturi slowly add a measured dose of fertilizer into the water during irrigation. This is one of the major advantages of drip irrigation over other methods.

Mainlines, submains and laterals supply water from the control head into the fields. They are usually made from PVC or polyethylene hose and should be buried below ground because they easily degrade when exposed to direct solar radiation. Lateral pipes are usually 13-32 mm diameter.

Emitters or drippers are devices used to control the discharge of water from the lateral to the plants. They are usually spaced more than 1 metre apart with one or more emitters used for a single plant such as a tree. For row crops, more closely spaced emitters may be used to wet a strip of soil. Many different emitter designs have been produced in recent years. The basis of design is to produce an emitter which will provide a specified constant discharge which does not vary much with pressure changes and does not block easily.

Fertigation : Fertigation is a method of fertilizer application in which fertilizer is incorporated within the irrigation water by the drip system. In this system, fertilizer solution is distributed evenly in irrigation. The availability of nutrients is very high therefore the efficiency is more. In this method, liquid fertilizer, as well as water soluble fertilizers, are used. By this method, fertilizer use efficiency is increased from 80 to 90 percent.

Most plant nutrients can be applied through irrigation systems. Nitrogen is the most commonly used plant nutrient. Naturally occurring nitrogen (N_2) is a diatomic molecule which makes up approximately 80% of the earth's atmosphere. Most plants cannot directly consume diatomic nitrogen, therefore nitrogen must be contained as a component of other chemical substances which plants can consume. Commonly anhydrous ammonia, ammonium nitrate, and urea are used as bioavailable sources of nitrogen. Other nutrients needed by plants include phosphorus and potassium. Like nitrogen, plants require these substances to live but they must be

contd. on page 32

Peri-urban Agriculture in Haryana : Need, Strategies and Challenges

- **Rajesh Lather, Vandna and Gurnam Singh**
Krishi Vigyan Kendra, Panchkula
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Peri-urban Agriculture may also be known as peri-urban farming or gardening. It is a practice of doing agriculture in or around a town or city indicating areas along the urban-rural continuum. The fruit, vegetable, aromatic and medicinal herbs, ornamental plants, beekeeping, dairy and fishery production may easily be carried out in the adjoining areas of National Capital and State Capital regions especially in response to the daily demand of consumers within cities like Chandigarh, Panchkula, Delhi, Faridabad, Gurugram, etc. Often the more perishable and relatively high-valued products and by-products are favoured. The importance of peri-urban agriculture is increasingly being recognized by international organizations like UN-Habitat and FAO (World Food and Agriculture Organization) due to contributions of peri-urban agriculture to urban food security and nutrition.

Need and importance : The rapid urbanization in the past years in Haryana and increasing population with exponential rate resulted into the decreased cultivable land. The demand for fresh vegetables, fruits, aromatic and medicinal herbs, ornamental plants and milk products is constantly increasing in urban areas and peri-urban agriculture can fulfill this demand ensuring food security and can contribute to price stabilization through the development of important local food production centres of the diversified food system. This will prevent the conversion of agricultural land near urban areas into cities and towns. Degraded open spaces and vacant land adjacent to the cities are often used as informal waste dumpsites and are a source of health problems. Peri-urban agriculture contributes to disaster risk reduction and adaptation to climate change by reducing runoff, keeping flood plains free from construction, reducing urban temperatures, capturing dust and carbon dioxide. Growing fresh food close to consumers reduces energy spent in transport, cooling, processing and packaging. This will reduce the burden on transport and help in reducing greenhouse gas emissions from cold storage by increasing carbon sequestration. Peri-urban agriculture may be an integral part of the urban ecological system and can play an important role in the urban environmental management system. For most of the cities, the disposal of wastes has become a serious problem. The urban waste may be used as compost and sewerage water after treatment as irrigation for this peri-urban agriculture, which otherwise increasing air and water pollution in densely populated cities. This will also help in creating attractive employment option for poor urban residents and slum dwellers as labourers. In addition, compost-making initiatives create employment and provide income for the urban poor. Next to food security, peri-urban agriculture contributes to local economic development, poverty alleviation and social inclusion of the urban poor and women in particular.

Economic impacts : Growing food reduces the load on food import and saves household expenditures on food and poor people in these cities generally spend a substantial part of their income on food. Beside this, peri-urban agriculture stimulates the development of related micro-enterprises, the production of necessary agricultural inputs and the processing, packaging and marketing of outputs. Special attention is needed for the strengthening of the linkages between various types of enterprises in clusters or chains. The municipality and urban authority can play a crucial role in stimulating micro-enterprise development related to peri-urban agriculture like providing marketplaces for peri-urban growers, etc.

Social impacts: Peri-urban agriculture may function as an important strategy for poverty alleviation and social integration particularly, among the groups such as orphans, disabled people, women, recent immigrants without jobs, or elderly people, with the aim to integrate them more strongly into the urban network and to provide them with a decent livelihood so that they may feel enriched by the possibility of working constructively.

Challenges : There are chances of competition for resources with other urban sectors, aspects of agriculture that may be unpleasant for city dwellers and quality of inputs must be monitored. Wise resource allocation is a quintessential struggle for agriculture, and is especially greater for peri-urban agriculture than rural agriculture due to its proximity to greater number of people and to existing stresses on the urban environment. Peri-urban agriculture uses land, water, labour and energy that might be used by other urban economic sectors.

- Some aspects arisen due to peri -urban agriculture may be unpleasant for urban residents, including smells, pollution and disease.
- If dairy is promoted in proximity of cities, the management of animal waste can be challenging, since manure may contain chemicals and heavy metals unsuitable for use as fertilizer and may even be hazardous.
- Pathogens may be harmful from live animals in close proximity to dense human populations.
- Sewerage water, if not treated properly before application, this wastewater can contaminate crops or surrounding vegetation with pathogens that make them unsafe for human consumption. This is a food safety concern.
- The disposal of manure is a concern as well, since manure from industrial livestock systems may contain levels of chemicals such as nitrogen, phosphorus and heavy metals which characterize it as a solid waste when used in excess. This is not only

contd. on page 32

Giloy : Role of Herbs in Feeding Poultry

✎ **Swati Ruhil, Vikas Khichar[2] and Vijayata Choudhary[3]**
Department of Veterinary Gynaecology
Lala Lajpat Rai Univ. of Vety. & Animal Sciences, Hisar

Poultry farming plays an important role in improving the socio-economic status of the rural people who largely depend on the mixed farming system. Among the various feed additives, antibiotics and chemotherapeutic drugs are most frequently used as performance enhancer for inhibition of pathogenic bacteria, hence, improving the health and production of poultry. But now, it has been proved that antibiotics have residual effects, their prolonged use has developed resistant strains of bacteria. Hence, phytogenic feed additives came into the focus as non-antibiotic growth promoters. They have wider spectrum of action, no problem of developing resistant strains, they balance the gut flora and stimulate the feed intake, moreover, they are safe and environment friendly. Phytogenic feed additives may be used either as herbs, spices, essential oils or in the form of oleoresins. Different herbs can be incorporated in the poultry feed like bael, geloy, neem, aloe, ginger, asparagus, garlic, tulsi, pepper, cinnamon essential oil, etc. Geloy (*Tinospora cordifolia*) is the most exploited plant in pharmaceuticals. It is also known as gulvel, guduchi, geloi, gulancha and extensively used in ayurvedic preparations. It possesses multiple ethnomedicinal, pharmacological and medicinal activities. It is a popular herbal remedy in India, south-east Asia and other parts of the world. Giloy possesses various medicinal properties which are elaborated as below :

Anti-stress property : In poultry, heat stress is a major stress during hot summer months when the body heat load exceeds its dissipation. When temperature exceeds 30˚C there is reduction in feed intake, reduced feed conversion efficiency. Birds start panting leading to acid base imbalance and respiratory alkalosis due to bicarbonate deficiency. It also causes oxidative stress by realizing reactive oxygen species more than threshold level. Addition of dried geloy stem powder in diet @ 0.1% of growing broilers improves the growth rate, feed utilisation efficiency during extreme summer months.

Hepatoprotective property : Stem and roots of geloy have found to be rich in hepatoprotective agents like tinosporine and tinosponone which improves the growth rate and performance index of poultry. Commercial herbal preparation containing *T. cordifolia* is available as LIVOMYN by Charak Pharmaceuticals which can be used for hepatoprotection in poultry.

Anti oxidant property : *T. cordifolia* has an antioxidant and free radical scavenging activity. Stem extract of *T. cordifolia* has high amount of phenol, flavonoids, alkaloids and tannin which stimulates GSH and vitamin C.

Antibacterial activity : *T. cordifolia* is effective against *Salmonella typhi, Pseudomonas aeruginosa*, *Proteus mirabili*, *E. coli* and *Staphylococcus aureus*. When cow urine ark and *T. cordifolia* are used together in combination they have much better antibacterial effect against *E. coli* in broilers due to presence of certain alkaloids and resin. Cow urine ark @ 1 ml/broiler/day and *T. cordifolia* @ 0.5g/100g feed.

Immunomodulatory : *T. cordifolia* reduces and prevents the infectious diseases like flu, bacterial, viral infections, hepatitis and skin infections, etc. by multiple immunomodulatory actions like histamine release, immunoglobulin production, proliferation of lymphocytes, promotion of phagocytosis.

Effects on production : Inclusion of bael and geloy @ 1% as feed additives to broiler ration for six weeks resulted in increase in body weight gain, performance index and growth rate.

Commercial Preparation

- Geriforte (herbal powder of *T. cordifolia*) by Dabur ltd.
- Immu Plus R. has combination of four herbs : *T.cordifolia, Withonia somnifera, Ocimum sanctum,* and *Emblica officinalis*.

Herbs can be adopted as a new class of feed additives. They may provide a good alternative to replace the antibiotic growth promoters. But herbs are difficult to standardise due to their complex composition as well as the composition of plants may vary depending on the location, soil type, weather conditions, season during which the plant is grown, harvesting procedure and storage conditions. Moreover, our knowledge is still limited regarding the mechanism of actions of herbs. So, further research and development is required in this field to explain the efficacy and mode of action for each type and dose of active compound, as well as its possible interactions with other feed ingredients.

[2]Government Veterinary Hospital, Dhab Dhani, Bhiwani, Harayana
[3]Dept. of Vety. Parasitology, College of Vety. and Ani. Scs., RAJUVAS, Bikaner (Rajasthan)

150 YEARS OF CELEBRATING THE MAHATMA

from page 30 ..

a concern in urban and peri-urban areas, but also faces rural farms as well.

- The main challenge to the viability of both urban and peri-urban agriculture is land availability due to changing land rights, uses and values. High population densities lead to competition and conflicts over land and natural resources as land is converted from agricultural to residential and business uses.

Strategies : Urban policy makers and authorities can substantially contribute to the development of safe and sustainable peri-urban agriculture by creating a conducive policy environment and formal acceptance of peri-urban agriculture as an urban land use by integration of peri-urban agriculture in urban land use planning and zonification. Secondly, there should be provision of training and extension services to peri-urban producers, strengthening & supporting farmer organizations, development of adequate technologies for peri-urban agriculture, enhancing access to water inputs and basic infrastructure, enhancing access of urban farmers to credit and finance, facilitate (direct)marketing, supporting micro-enterprise development. Thirdly, by taking measures that prevent/reduce health and environmental risks associated with peri-urban agriculture. Improved coordination between health, agriculture and environmental departments, farmers' education on the management of health and environmental risks and training of food vendors and consumers.

from page 29 ..

contained in other chemical substances such as monoammonium phosphate or diammonium phosphate to serve as bioavailable nutrients. A common source of potassium is muriate of potash which is chemically potassium chloride. A soil fertility analysis is used to determine which of the more stable nutrients should be used. Nutrients and water are supplied near the active root zone through fertigation which results in greater absorption by the crops. As water and fertilizer are supplied evenly to all the crops through fertigation there is a possibility for getting 25-50 percent higher yield. Fertilizer use efficiency through fertigation ranges between 80-90 percent, which helps to save a minimum of 25 percent of nutrients. By this way, along with less amount of water and saving of fertilizer, time, labour and energy use is also reduced substantially.

Profitability of drip irrigation system

The initial investment in drip irrigation system mainly depends upon the spacing of crops. The drip irrigation technology has been found quite beneficial in several respects. It has provided higher yields per acre to the besides savings in the total cost of cultivation per acre. It also produced much higher benefit-cost ratios. There has been a considerable saving in labour cost in the application of irrigation water in the case of drip irrigation technology besides facilitating fertigation.

(पृष्ठ 26 का शेष)

बाँध की नहरें : कुछ स्थानों पर तालाब बनाकर पानी एकत्रित किया जाता है और फिर नहरें निकाली जाती हैं। मध्य और दक्षिणी भारत में इस तरह की नहरें पायी जाती हैं।

सिंचाई की आवश्यकता

सिंचाई की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से होती है :

1. ठण्डे मौसम में जलवायु का तापमान बहुत कम होता है, तब पाला पड़ने का डर रहता है। इस तरह की स्थिति में खेतों में सिंचाई कर देने से पाले का प्रभाव कम हो जाता है।
2. सिंचाई के खेतों में आवश्यक नमी की पूर्ति हो जाती है।
3. भूमि में रहने वाले कीटाणुओं से फसलों की रक्षा हेतु पानी की आवश्यकता होती है। पानी के द्वारा खेतों के बिलों में रहने वाले कीड़े एवं जंतु दीमक, छछूँदर, चूहे आदि खेतों से बाहर चले जाते हैं।
4. सिंचाई के द्वारा अनावश्यक लवणों को बहार निकाला जा सकता है।
5. पौधों में होने वाली क्रियाओं जैसे – प्रकाश संश्लेषण, श्वसन, वाष्पोत्सर्जन आदि में जल का होना बहुत आवश्यक है।
6. पौधों में खाद्य पदार्थ एवं खनिज लवण पानी के द्वारा ही पहुंचते हैं।
7. पौधों में 90 प्रतिशत तक जल पाया जाता है, इसकी कमी से पौधे सूख जाते हैं। अत: इनकी सिंचाई अनिवार्य है।
8. खरीफ की फसल में पानी की पूर्ति वर्षा के जल से हो जाती है, लेकिन रबी व जायद की फसल के लिए पानी की पूर्ति सिंचाई द्वारा की जाती है।
9. भूमि पर पड़े हुए मृत पौधों एवं जंतु पानी के अभाव में सड़ नहीं पाते। इन्हें सड़ाने के लिए सिंचाई आवश्यक है।
10. जिन स्थानों पर वर्षा अपर्याप्त होती है या उस मृदा में जहाँ वर्षा का सारा जल रिसकर भूमि की निचली सतह में चला जाता है, वहां पौधों की सिंचाई की आवश्यकता होती है।
11. रबी और जायद की फसल में विभिन्न फसलें लेने के लिए पानी की मांग सिंचाई के द्वारा ही पूरी की जाती है।

सिंचाई की विधियाँ

सिंचाई की दो प्रमुख विधियां हैं :

1. धरातलीय सिंचाई विधि : इस विधि में पानी भूमि की ऊपरी सतह पर दिया जाता है। नहर तथा बाँध के पानी का इसमें प्रयोग होता है। धरातलीय सिंचाई के लिए प्रवाह सिंचाई विधि, क्यारी सिंचाई विधि, कुण्ड सिंचाई विधि, पाला सिंचाई विधि, अँगूठी सिंचाई विधि का प्रयोग किया जाता है।

2. बौछारी या छिड़काव विधि : इस विधि द्वारा सिंचाई उन क्षेत्रों में की जाती है जहाँ की भूमि में ढाल व रेतीली होती है। मृदा अपरदन वाले क्षेत्रों में भी इसी प्रकार की सिंचाइयां की जाती हैं। बाग-बगीचों व छोटे क्षेत्रों में हज़ारा नामक यन्त्र से पानी छिड़का जाता है, जिससे भूमि में नमी बनी रहती है। यह कोमल एवं मूल्यवान पौधों के लिए उपयोगी है। शोभाकारी उद्यानों एवं शाक भाजी की पौधों के लिए उपयोगी है। बड़े क्षेत्रों में छिड़काव विधि द्वारा सिंचाई हेतु लोहे के या रबर के पाइप भूमि के अंदर नीचे दबा दिए जाते हैं। सहायक पाइप एक दूसरे के समानान्तर रखते हुए उनमें आवश्यकतानुसार दूरियों पर नॉज़िट लगा इनका सम्बन्ध नल और नल का सम्बन्ध जल स्त्रोत से कर दिया जाता है। मरुस्थलीय क्षेत्रों में यह सिंचाई के लिए विशेष रूप से उपयोग होती है।

ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती

वर्ष 52 अंक 06

स्वर्ण-जयंती वर्ष
2 फरवरी 2019 - 1 फरवरी 2020

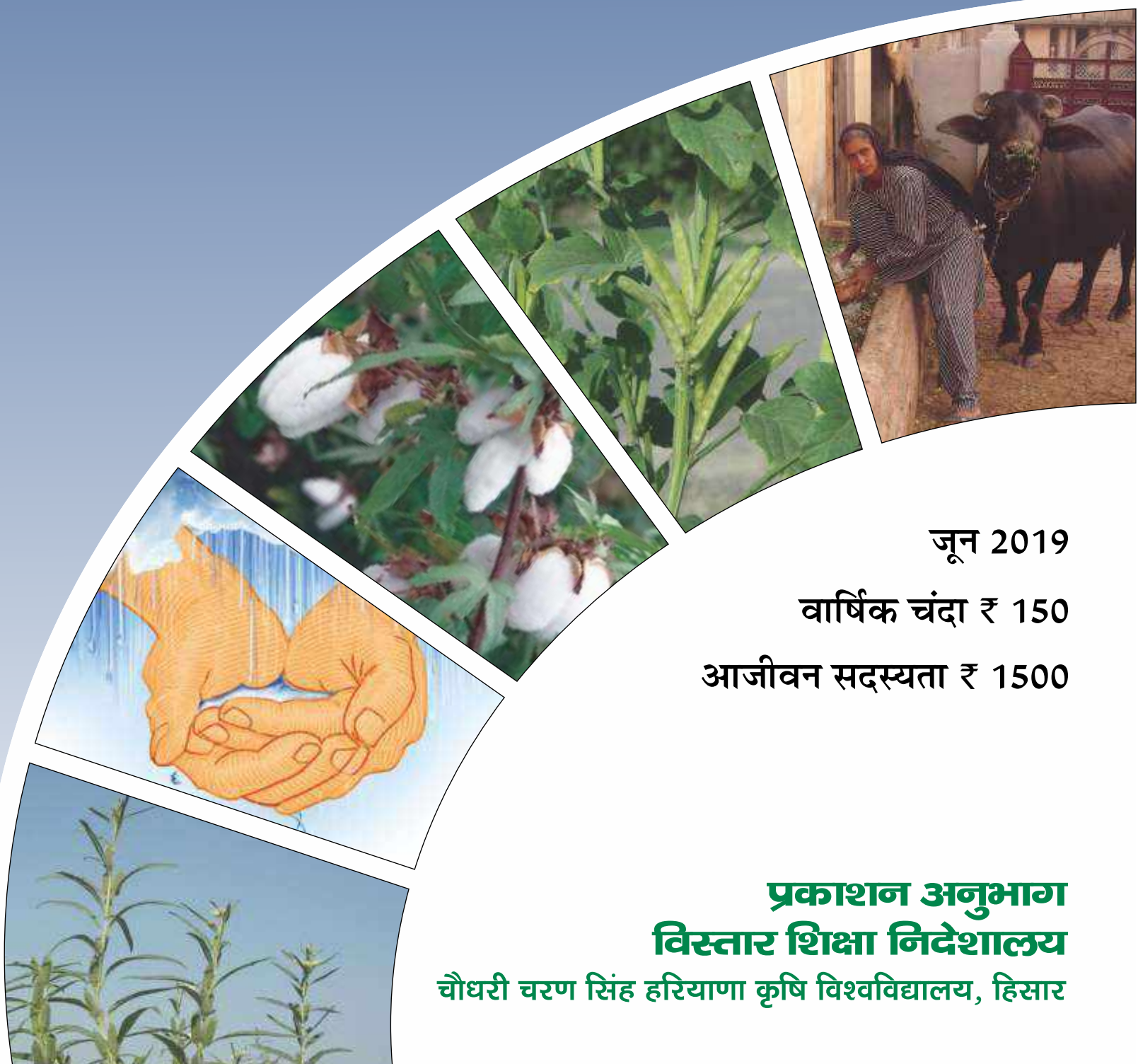

जून 2019

वार्षिक चंदा ₹ 150

आजीवन सदस्यता ₹ 1500

प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित

ã कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 52 | जून 2019 | अंक 06

इस अंक में

लेख का नाम		लेखक का नाम	पृष्ठ
तिल की फसल- कम लागत अधिक लाभ	-	सत्यजीत, एस. पी. यादव एवं उमेश कुमार शर्मा	1
गुणों से भरपूर - हरी खाद	-	उमा देवी, पवन कुमार एवं धीरज पंघाल	2
कपास में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण व उनका निवारण	-	पूजा रानी, विकास हुड्डा एवं मनोज कुमार	3
कृषि में रासायनिक पदार्थों का बढ़ता प्रयोग : सूक्ष्मजीवों एवं प्राकृतिक स्थिरता पर प्रभाव	-	सीमा सांगवान, सुशीला सिंह एवं मीना	4
मूंगफली की फसल : बीमारियों तथा कीड़ों से बचाव	-	नरेंद्र सिंह यादव, बलबीर सिंह एवं एस. पी. यादव	5
फलदार पौधों को गर्मी व लू से बचाएं	-	सुलेमान मोहम्मद एवं विरेन्द्र सिंह	6
लोबिया : एक पौष्टिक चारे वाली दलहनी फसल	-	सतपाल, डी.एस. फोगाट एवं दलविंदर पाल सिंह	7
क्षारीय एवं लवणीय मृदा की पहचान एवं सुधार	-	राकेश कुमार, मनोज कुमार शर्मा एवं विकास	8
एलोवेरा : एक चमत्कारिक पौधा	-	राजेश लाठर, वंदना एवं गुरनाम सिंह	9
ज़ायकेदार अचार	-	तनु मलिक, राकेश गहलोत एवं एकता	10
असिंचित क्षेत्रों में खरीफ फसलों की उत्पादकता - कैसे बढाएं	-	सुरेंद्र कुमार शर्मा, सरिता रानी एवं अमित कुमार	11
कृषि शिक्षा में चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय का योगदान	-	अशोक कुमार, राजेश कुमार एवं सूबे सिंह	20
मानसून पूर्वानुमान और उसका कृषि पर प्रभाव	-	योगेश कुमार, राज सिंह एवं अनिल कुमार	21
नलकूप : भारतीय कृषि की जान	-	नरेंद्र कुमार एवं अरविन्द	22
फलों और सब्जियों का कचरा : संरक्षण	-	कनिका पंवार एवं विजय कुमार	23
टपका सिंचाई प्रणाली में बहाव अवरोधन से बचाव : अम्ल प्रक्रिया द्वारा	-	प्रमोद शर्मा, संजय कुमार एवं नरेंद्र कुमार	24
एकाधिक प्रकार की बुद्धिमता	-	सुमित श्योराण, बिमला ढांडा एवं कृष्णा दुहन	25
अपना पोषण अपने हाथ - पोषण वाटिका : एक आसान उपाय	-	पूनम, अशोक ढिल्लों एवं संतोष रानी	26
हाइड्रोजेल: कम पानी में अधिक उपज	-	श्वेता एवं मनु	28
जागरूक उपभोक्ता - समय की आवश्यकता	-	कुसुम राणा व सुमन मलिक	28
Care of Newborn Calf	-	Swati Ruhil and Vikas Khichar	29
Micro-propagation : A Tissue Culture Approach in Sugarcane	-	Sudhir Sharma, Upender Balyan and Lokesh Yadav	29
Water in Agricultural Development and Food Security	-	Vijay and Sube Singh	31
ग्वार : एक गुणकारी फसल	-	यश पाल सिंह सोलंकी, बी. पी. राणा एवं मीनाक्षी सांगवान	32
स्थाई स्तम्भ : जुलाई मास के कृषि कार्य			**13**

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

सह-निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह-निदेशक (हिन्दी)

सुनीता सांगवान
सम्पादक (अंग्रेजी)
प्रकाशन अनुभाग

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)
विस्तार शिक्षा निदेशालय

आवरण एवं सज्जा
राजेश कुमार

लेखकों से अनुरोध : हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। टाईपिंग के लिए कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें। अपना लेख हमें ई-मेल पर भी भेज सकते हैं haryanakhetihau@gmail.com

तिल की फसल- कम लागत अधिक लाभ

- **सत्यजीत, एस. पी. यादव[1] एवं उमेश कुमार शर्मा**
कृषि विज्ञान केन्द्र, झज्जर
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

तिलहनी फसलों में तिल एक महत्वपूर्ण खरीफ की फसल है। इसकी खेती राज्य में कम उपजाऊ भूमि, बारानी क्षेत्रों में, कतारों में बिजाई न करना, मिश्रित खेती करना, खाद प्रबन्धन, खरपतवार नियन्त्रण तथा पौध संरक्षण की ओर ध्यान न देने से पैदावार कम आती है। तिल का क्षेत्रफल हरियाणा प्रांत में लगभग 3 हज़ार हैक्टेयर है। हरियाणा की औसत पैदावार 400 किलोग्राम प्रति एकड़ है। यह एक कम लागत में अधिक लाभ देने वाली फसल है। इस फसल में निम्न उन्नत तकनीकों को अपनाने से और भी अधिक लाभदायक बनाया जा सकता है।

उन्नत किस्मों का चुनाव

हरियाणा तिल नं. 1 : इस किस्म की ऊंचाई मध्यम, पत्ते गहरे हरे रंग के तथा बीज सफेद व सुड़ौल होते हैं। यह 80-85 दिन में पककर तैयार हो जाती है। यह किस्म पत्ती मरोड़ व फायलोड़ी बीमारियों की प्रतिरोधी है। इसमें तेल की मात्रा 49 प्रतिशत व औसत उपज 2.9 क्विंटल प्रति एकड़ होती है।

हरियाणा तिल नं. 2 : इस किस्म की हरियाणा, पंजाब, जम्मू और हिमाचल प्रदेश (ज़ोन-1) में काश्त करने की सिफारिश की गई है। यह 87 दिनों में पककर तैयार हो जाती है तथा पत्तों का मोजैक वायरस व फायलोड़ी रोग के लिए अवरोधी किस्म है। इसका दाना सफेद होता है व तेल की मात्रा 48.2 प्रतिशत होती है। हरियाणा में इसकी औसत पैदावार 4.0 क्विंटल प्रति एकड़ है।

उत्पादन तकनीक

खेत की तैयारी: अच्छे जल-निकास वाली रेतीली-दोमट मिटट्री में तिल की फसल अच्छी फलती-फूलती है। बिजाई से पहले भूमि की अच्छी तैयारी आवश्यक है। दो या तीन बार जुताई करके ज़मीन तैयार करनी चाहिए तथा प्रत्येक जुताई के बाद सुहागा अवश्य लगाएं।

बिजाई का समय व बीज मात्रा : तिल की अच्छी पैदावार लेने के लिए फसल की बिजाई मानसून की पर्याप्त वर्षा के पश्चात् या बिजाई से पहले खेत की सिंचाई करके जुलाई के प्रथम पखवाड़े में करनी चाहिए। यदि इसकी बिजाई 10-15 जुलाई के बाद की जाए तो फसल में कीड़ों व बीमारियों का प्रकोप कम होता है तथा पैदावार भी अधिक होती है।

बीज उपचार व बिजाई विधि : बीज की मात्रा 1.5 से 2 कि.ग्रा. प्रति एकड़ पर्याप्त रहती है। बिजाई से पहले बीज का उपचार कैप्टान या थाइरम (2 ग्राम प्रति कि. ग्रा. बीज) से करें। इससे जड़ गलन व तना गलन बीमारी से बचाव रहता है। बीज को केरा, पोरा या ड्रिल मशीन से 30 सैं.मी. कतार से कतार के फासले पर 4.0 से 5.0 सैं.मी. पर बिजाई करें।

खाद की मात्रा : बारानी फसल होने के कारण इस फसल को प्राय: खाद देने की अवश्यकता नहीं पड़ती। यदि 10 टन गोबर की खाद प्रति एकड़ बिजाई से 15 दिन पहले डालें तो अच्छा रहता है। कम उपजाऊ एवं हल्की भूमि में 15 किलो ग्राम शुद्व नत्रजन (33 किलो ग्राम यूरिया) प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई से पहले डालें। इस फसल में अधिक खाद देने से पत्तों की वृद्धि ही अधिक होती है।

निराई व गुड़ाई : निराई-गुड़ाई कसोले से या ''व्हील हैण्ड़ हो'' से करके खरपतवारों पर नियंत्रण किया जा सकता है। पौधों की संख्या अधिक हो तो उन्हें 20-25 दिन की अवस्था पर विरला करके पौधे से पौधे की दूरी 15 सैं. मी. रखें।

सिंचाई : आमतौर पर जुलाई में बीजी गई फसल को सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती। अगर वर्षा बिल्कुल न हुई हो तो एक सिंचाई फलियां बनते समय अवश्य करें।

कीड़े एवं समन्वित प्रबन्धन

हरा तेला : यह कीड़ा पत्ते में से रस चूसता है और फायलोडी रोग (फलियों के स्थान पर हरी पत्तियों के गुच्छे) फैलाता है। इसकी रोकथाम के लिए 200 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर दो बार, 2 से 3 सप्ताह के अन्तर पर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

तिल की पत्ती लपेट तथा फली बेधक सूण्ड़ी : आक्रमण के शुरू में सूण्ड़ियां पत्तों को लपेट कर खाती हैं जिससे पत्ते गिर जाते हैं तथा बाद में सूण्ड़ियां फलियों में छेद करके अन्दर ही अन्दर खाकर हानि पहुंचाती हैं। इसकी रोकथाम के लिए 600, 650 तथा 725 ग्राम कार्बेरिल 50 घु. पा. को क्रमश: 200, 220 तथा 240 लीटर पानी में घोलकर बिजाई के 25, 40 व 55 दिन के अन्तराल पर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें।

बीमारियों के लक्षण व रोकथाम

फायलोडी : फलियों की जगह हरी पत्तीयों के गुच्छे बन जाते हैं। यह बीमारी फूल आने पर ही दिखाई देती है। इसकी रोकथाम के लिए अगेती बिजाई न करें। फसल को 15 जुलाई के लगभग बीजें। रोगी पौधों को आरम्भ में ही निकाल कर नष्ट कर दें। कीट नियन्त्रण रोगोर या मैटासिस्टॉक्स से करें।

झुलसा रोग : यह रोग फफूंदी के कारण होता है। पत्तों तथा फलियों पर गहरे-भूरे रंग के दाग पड़ जाते हैं तथा पत्ते झुलस जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए फसल पर मैन्कोज़ेब 800 ग्राम प्रति एकड़ का 250 लीटर पानी में घोल कर 10-15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करें।

जड़ व तना गलन : यह रोग प्राय: पकाई के समय आता है। पौधे की जड़ें गल जाती हैं तथा तना काला पड़ जाता है व पौधे मर जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए बीज का उपचार थाइरम 3 ग्राम प्रति किलो बीज के हिसाब से करें।

कटाई व गहाई : पत्तियों व तनों का रंग जब पीला पड़ जाए, जो कि फसल पकने की पहचान है, इस समय फसल की कटाई करें, देर करने पर बीज झड़ने से नुकसान हो सकता है। कटाई के बाद बण्ड़लों में बांधकर सीधा रख देना चाहिए। पूरी पैदावार लेने के लिए इन बण्ड़लों की दो बार झड़ाई काफी है।

[1]क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल

गुणों से भरपूर - हरी खाद

- उमा देवी, पवन कुमार एवं धीरज पंघाल
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मृदा स्वास्थ्य में गिरावट किसानों की सबसे महत्वपूर्ण समस्या है। इसके कारण ज़मीन बंजर होती जा रही है। रासायनिक उर्वरकों का अनियंत्रित उपयोग मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों को खराब कर रहा है। इसलिए इन समस्याओं को दूर करने के लिए जैविक खेती की अवधारणा अस्तित्व में आई। जैविक खेती, जैविक खाद जैसे गोबर की खाद, केंचुआ खाद व हरी खाद आदि पर निर्भर करती है। इसलिए हरी खाद जैविक खेती में उपयोग की जाने वाली सबसे महत्वपूर्ण खाद में से एक है। हरी खाद भूमि की उर्वरा शक्ति बढाने वाली फसल है और मोटे तौर पर मिट्टी के लाभ के लिए फसलों के रूप में परिभाषित की जा सकती है।

हरी खाद वाली फसलों से ज़मीन में ह्यूमस, कार्बनिक कार्बन, नाइट्रोजन और सूक्ष्मजीव की संख्या वृद्धि में सुधार होता है। हरी खाद उगाने से कई लाभ मिल सकते हैं जैसे हरी खाद देने से मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ जुड़ते हैं। हरी खाद वाली फसलें मिट्टी में जैविक गतिविधि को बढ़ाती हैं। ये फसलें मिट्टी की संरचना में सुधार करती हैं। हरी खाद की फसलें मिट्टी के कटाव को कम करने में मदद करती है। वे पौधों को उपलब्ध पोषक तत्वों की आपूर्ति बढ़ाने में मदद करते हैं। यह भी बताया गया है कि हरी खाद वाली फसलें खरपतवारों को दबाने में, कीट और रोग की समस्याओं को कम करने में व पशु चारा प्रदान करने में मदद करती हैं। हरी खाद जैविक खेती का एक हिस्सा है। अनुमान है कि एक 40-50 दिन की हरी खाद की फसल 80-100 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर तक की आपूर्ति कर सकती है। यहां तक कि अगर इस नाइट्रोजन का आधा भाग भी अगर फसल उपयोग योग्य है, तो एक हरी खाद की फसल 50-60 कि. ग्रा. उर्वरक नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर का विकल्प हो सकती है।

कुछ संभावित हरी खाद वाली फसलें जैसे ढैंचा, सन्हंप, मूंग, बीन, ग्वार आदि खरीफ के मौसम में 42-95 किग्रा नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर प्रदान करती हैं व रबी मौसम में खेसारी, चावल और बरसीम 67-68 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर प्रदान करती हैं। भारत में मुख्य रूप से हरी खाद दो तरह से की जाती है।

(अ) हरी पत्ती खाद : इस विधि में हरी पतियों एवं कोमल शाखाओं को दूसरी जगह से तोड़कर खेत में फैलाकर जुताई द्वारा मिट्टी में दबाया जाता है, मिट्टी में थोड़ी नमी होने पर भी यह सड़ जाती है। यह विधि कम बारिश वाले इलाकों के लिए उपयोगी है।

हरी खाद की स्थानीय विधि : इस विधि में हरी खाद की फसल को उसी खेत में उगाया जाता है, जिसमें इस खाद का प्रयोग करना होता है। यह विधि समुचित वर्षा व सुनिश्चित सिंचाई वाले इलाकों के लिए उपयुक्त है। इस विधि में फसल को फूल आने से पहले वानस्पतिक वृद्धि काल (45 से 50 दिन) में मिट्टी में पलट दिया जाता है। मिश्रित रूप से बोई गई हरी खाद की फसल को उपयुक्त समय पर जुताई द्वारा खेत में दबा दिया जाता है।

खेत में हरी खाद की तकनीक

हरी खाद की फसल से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए निम्न बातें जानना आवश्यक हैं:

(1) बढ़ने का सही समय।

(2) मिट्टी में शामिल करने का सही समय।

(3) अपघटन के लिए आवश्यक समय

हरी खाद की फसल की बुवाई का समय : हरी खाद की फसल की बुवाई का समय अलग-अलग होता है। उपलब्ध स्थानीय परिस्थितियों और संसाधनों के अनुसार आमतौर पर हरी खाद की फसल मानसून की बारिश के तुरंत बाद बोई जाती है। लेकिन, अगर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो, तो हरी खाद की फसल रबी की फसल कटने के बाद अप्रैल और मई के दौरान उगाई जा सकती है। सन्हंप और ढैंचा अप्रैल-मई में बिजाई के लिए उपयुक्त हैं और मुख्य खरीफ फसल के रोपण से पहले जून-जुलाई में ज़मीन में मिला सकते हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों में धान के साथ ईन्टर क्रॉपिंग से 4:1 के पंक्ति अनुपात में ढैंचा बोया जा सकता है।

हरी खाद की फसल मुख्य फसल के साथ : इसमें एक ही समय में मुख्य फसल व हरी खाद उगाना सम्मिलित है। कभी-कभी उनके साथ बोया जाता है या थोड़ा बाद में जब फसलें पहले से ही बढ़ रही हैं। यह विधि हरी खाद और मुख्य फसल के बीच प्रतिस्पर्धा को कम करती है व ज़मीन तैयार करने में अतिरिक्त समय भी नहीं लगता।

हरी खाद की फसल को मिट्टी में मिलाने की अवस्था : विशिष्ट समय पर हरी खाद की फसल अधिकतम नाइट्रोजन और कार्बनिक पदार्थ प्रदान करती है। यह विशिष्ट अवस्था तब होती है जब पौधा अपरिपक्व होता है और फूल आना शुरू हो जाता है, जैसा कि हरी खाद का मूल उद्देश्य अधिकतम रसीला हरा पदार्थ प्रदान करना है। फसल वृद्धि की शुरुआती अवधि के दौरान नाइट्रोजन, प्रोटीन, पानी में घुलनशील तत्व अधिकतम होते हैं, जबकि फाइबर, हेमिकसेलुलोज, सेल्युलोज, लिग्निन और सी: एन अनुपात कम होता है। इसलिए, अपरिपक्व पौधों के ऊतक परिपक्व पौधों की तुलना में आमतौर पर अधिक तेज़ी से विघटित होते हैं। 15 से 20 दिन की देरी भी नाइट्रोजन सामग्री को कम व सी : एन अनुपात, फाइबर, हेमिसेलुलोज, सेल्यूलोज, लिग्निन को बढ़ाता है जो मिट्टी के सूक्ष्मजीवों को कार्य करने और विघटित करने के लिए मुश्किल प्रदान करता है।

हरी खाद को दबाने की विधि और गहराई : किसी फसल बोने से पहले हरी खाद की फसल मिट्टी में मिलाई जाती है। हरी खाद को अधिक गहरा नहीं मिलाना चाहिए क्योंकि यह पोषक तत्वों को बहुत गहराई तक दबा देता है। उन्हें बस मिट्टी की सतह के नीचे रखना चाहिए। यहाँ यह विघटित हो जाता है और हरी खाद के अंदर मौजूद पोषक तत्व पौधों को उपलब्ध हो जाते हैं। अपरिपक्व फसल किसी भी गहराई में सड़ सकती है, लेकिन परिपक्व फसल को अधिक गहराई पर दबाया जाना चाहिए। यदि मौसम शुष्क है तो हरी खाद की फसल को नम मौसम की तुलना में अधिक गहराई पर दबा देना चाहिए। अगर मिट्टी में नमी कम है तो बाहरी रूप से पानी की आपूर्ति की जानी चाहिए। उचित अपघटन के लिए हरी खाद की फसल को रेतीली भूमि में अधिक गहराई में और भारी मिट्टी में कम गहराई पर दबाना चाहिए।

हरी खाद को दबाने और अगली फसल की बुवाई के बीच का समय

अंतराल : हरी खाद को दबाने और अगली फसल की बुवाई के बीच का समय अंतराल ऐसा होना चाहिए कि हरी खाद की फसल का अपघटन अगली फसल की रोपाई से पहले पूरा होने दें। समय अंतराल निम्नलिखित कारक पर निर्भर करता है

(1) मौसम की स्थिति

(2) दबाई गई हरी सामग्री की प्रकृति।

हरी खाद के रूप में हरी खाद की फसल को दबाने के 35- 45 दिन के बाद फसल बोनी चाहिए क्योंकि पूर्ण अपघटन के लिए फसल में लगभग 4-6 सप्ताह लगते हैं।

सारणी : हरी खाद के लिए उपयुक्त फसलें एवं उनसे प्राप्त होने वाले नाइट्रोजन की मात्रा

फसल का नाम	हरे पदार्थ की मात्रा (टन प्रति हैक्टेयर)	नाइट्रोजन का प्रतिशत	प्राप्त नाइट्रोजन (किग्रा. प्रति है.)
सनई	20 -30	0.43	86 -129
ढैंचा	20 -25	0.42	84 -129
उड़द	10 -12	0.41	41 -49
मूंग	8-10	0.48	38 -48
ग्वार	20-25	0.34	68 -85
लोबिया	15 -18	0.49	74 -88
कुल्थी	8 -10	0.33	26-33

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक नि:शुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

कपास में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण व उनका निवारण

- **पूजा रानी, विकास हुड्डा एवं मनोज कुमार**
कृषि विज्ञान केन्द्र, सदलपुर
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

खरीफ की नकदी फसलों में कपास का महत्वपूर्ण स्थान है। लगभग 6 लाख हैक्टेयर में कपास बोई जाती है। कपास की फसल को उचित बढ़वार एवं पैदावार के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता अधिक होती है। हरियाणा की ज़मीन में पोषक तत्वों के हुए ह्रास के कारण कपास की फसल में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण दिखना स्वाभाविक है। कई बार सिफारिश की गयी मात्रा में उर्वरक डालने के बावजूद पौधों में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं। आमतौर पर किसान इन लक्षणों को पहचान नहीं पाता और कीटनाशकों का प्रयोग शुरू कर देता है। अत: किसानों को कपास की फसल में पोषक तत्वों की कमी से दिखाई देने वाले लक्षणों की पहचान होना बहुत आवश्यक है। कपास में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण तथा उनका निवारण इस प्रकार है :

नाइट्रोजन : नाइट्रोजन की कमी से पौधे कमज़ोर, पीले व कम शाखा वाले होते हैं तथा वृद्धि दर कम हो जाती है इसकी कमी पूरी करने के लिए यूरिया डालें अगर टिंडे बनते समय कमी के लक्षण दिखाई दें तो 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का 10 दिन के अंतराल पर दो से तीन छिड़काव करने से कमी दूर की जा सकती है।

फास्फोरस : इसकी कमी से पौधे बौने, कम शाखाओं वाले, पत्तियां छोटी तथा उनका रंग गहरा हरा व बैंगनी हरा दिखाई देता है। इसकी कमी के लक्षण प्राय: जून के अंतिम सप्ताह या जुलाई के प्रथम सप्ताह में दिखाई देते हैं। इसकी कमी डी.ए.पी. डालकर पूरी की जा सकती है। अगर इसकी कमी के लक्षण अगस्त या सितंबर में दिखाई दें तो 2 प्रतिशत डीएपी का घोल बनाकर छिड़काव करें।

पोटेशियम : पोटेशियम की कमी से नीचे की पत्तियों का रंग पहले हल्का हरा हो जाता है और बाद में पत्तियों की मध्य शिरा का भाग पूरा बैंगनी हो जाता है। जबकि अन्य शिराएं पीली बनी रहती हैं तथा पत्तियां सख्त हो जाती हैं तथा नीचे की तरफ मुड़ जाती हैं। अंत में सारी पती लाल भूरी हो जाती हैं तथा सूख जाती हैं। टिंडे पूरी तरह खिलते नहीं हैं। बिजाई के समय 40 ग्राम प्रति एकड़ म्यूरेट ऑफ पोटाश डालें। अगर टिंडे बनते समय लक्षण दिखाई दें तो 2 प्रतिशत म्यूरेट ऑफ पोटाश का छिड़काव करें।

गंधक : इसकी कमी से ऊपर की नई पत्तियां पीली तथा सफेद पीली हो जाती हैं व इनका आकार घट जाता है। इसकी कमी पूरी करने के लिए डी. ए.पी. की जगह सिंगल सुपर फास्फेट डालें। जिस ज़मीन में इसकी कमी अधिक है वहां 100 किलोग्राम जिप्सम प्रति एकड़ डालकर इसकी कमी को पूरा किया जा सकता है।

ज़िंक : इसकी कमी बिजाई के 3 सप्ताह बाद दिखाई देने लगती है। नीचे की पत्तियों की शिराओं के बीच में पीले धब्बे आ जाते हैं और बाद में कत्थई रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। (शेष पृष्ठ 6 पर)

कृषि में रासायनिक पदार्थों का बढ़ता प्रयोग : सूक्ष्मजीवों एवं प्राकृतिक स्थिरता पर प्रभाव

- **सीमा सांगवान, सुशीला सिंह[1] एवं मीना**
सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

प्रकृति में अनेक खाद्य श्रृंखलाएं हैं ये विभिन्न प्रकार के उत्पादकों, उपभोक्ताओं (प्राथमिक एवं द्वितीय) तथा अपघटकों से मिल कर बनती हैं। ये श्रृंखलाएं खाद्य पदार्थों व खाद्य ऊर्जा के क्रमबद्ध प्रवाह का निर्धारण करती हैं। अनेक खाद्य श्रृंखलाएं मिलकर खाद्य जाल का निर्माण करती है जिनकी कड़ियां, एक दूसरे को पोषण प्रदान करती हैं। प्राकृतिक असंतुलन या किसी अन्य कारण से यदि एक भी कड़ी प्रभावित होती है तो उसका असर सम्पूर्ण परिस्थितिकी तंत्र पर पड़ता है। सूक्ष्मजीव इन्हीं खाद्य श्रृंखलाओं का एक अहम् हिस्सा होते हैं। ये एक सक्षम उत्पादक, सजग उपभोक्ता होने के साथ-साथ सबसे मज़बूत अपघटक हैं। इनकी अपघटन की क्षमता ही पोषण चक्रों के सुचारू रुप से संचालन में अहम् भूमिका अदा करती है। बैक्टीरिया फफूंदी व प्रजीवगण (प्रोटोजोआ) मृत अवशेषों को गलाने व पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण का कार्य करते हुए ये कहना अतिश्योक्ति न होगा कि पृथ्वी पर जीवन तभी तक संभव है जब तक प्रकृति में सूक्ष्मजीवों का अस्तित्व सुरक्षित है।

सूक्ष्मजीवों का संतुलित विकास सब से अधिक मृदा में संभव है। यह सूक्ष्मजीवों का प्रिय स्थान है क्योंकि मृदा में सही मात्रा में पोषक तत्व, लगभग स्थिर नमी, तापमान एवं पी एच मान (अम्लता या क्षारकता) होता है। मृदा में सूक्ष्मजीवों व अन्य जीव जन्तुओं की संख्या, पृथ्वी पर मनुष्यों की संख्या से लगभग 20 गुणा अधिक होती है। प्रतिग्राम मृदा में 1 अरब से लेकर 100 अरब तक केवल जीवाणु पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त लगभग 10 लाख फफूंदी के तंतु एवं 10 हज़ार से 1 लाख प्रजीवगण पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त हज़ारों की संख्या में सूक्ष्म संधिपाद, सूत्रकृमि, पादप परजीवी एवं केंचुआ इत्यादि भी पाये जाते हैं। ये सभी जीव, मृदा की सेहत एवं कृषि की स्थिरता बनाये रखने के लिए अति आवश्यक हैं।

मानव निर्मित व उपयोगी कुछ प्रक्रियाएं इन सूक्ष्मजीवों के लिए घातक सिद्ध होती हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है कृषि में होने वाले हानिकारक रसायन। रासायनिक पोषक तत्व एवं कीटनाशक, आधुनिक षि का अभिन्न अंग हैं नि:सन्देह हरित क्रांति की सफलता का एक बड़ा श्रेय इन्हीं घटकों को जाता है। रासायनिक पोषक तत्वों के प्रयोग से हम खाद्य निर्भरता प्राप्त कर पाए हैं। पोषक तत्वों की सही मात्रा एवं कीटनाशकों का आवश्यकता के अनुरूप छिड़काव अति आवश्यक माना जाता है। फसलों की उपज वृद्धि व बीमारियों से बचाव के लिए किसान भी इन रसायनों का प्रयोग दिल खोलकर करते हैं परन्तु जागरूकता की कमी के कारण व इन रसायनों के हानिकारक प्रभावों से अनभिज्ञता के चलते, इनका आवश्यकता से अधिक उपयोग बे रोकटोक किया जा रहा है।

हानिकारक कीटों, जीव-जन्तुओं व खरपतवार आदि को नष्ट करने के लिए, दुनियाभर में प्रतिवर्ष लगभग 3×10^9 कि.ग्रा. कीटनाशक इस्तेमाल किये जाते हैं। विडम्बना यह है कि इन कीटनाशकों का लगभग 0.1 प्रतिशत ही निर्धारित जीव तक पहुंच पाता है। शेष रसायन, मृदा, जल व वायुमण्डल के प्रदूषण का कारण बनते हैं।

ये हानिकारक रसायन मृदा परिस्थितिकी तन्त्र के असंतुलन का कारण बनते जा रहे हैं। मृदा में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीवों एवं अन्य जीव-जन्तुओं पर इनका बुरा प्रभाव पड़ता है। जिससे वे सभी अपने निर्धारित कार्य (जैसे पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण व अवशेषों को गलाने-सड़ाने का कार्य) सुचारू रूप से नहीं कर पाते। अत: इससे परिस्थितिकी तन्त्र व परिस्थितिकी अवरोधित होते हैं। अन्तत: ये विषैले पदार्थ भूमि की उपजाऊ शक्ति को धीरे-धीरे नष्ट कर, उसे बंजर बना देते हैं। यही नहीं, ये हानिकारक पदार्थ खाद्य श्रृंखला में अवशोषित होकर मनुष्य व जीव-जन्तुओं तक पहुंच जाते हैं। इन रसायनों का या इनके स्थिर गौण उत्पादों का मृदा में पाए जाने वाले कार्बनिक पदार्थों व पेड़-पौधों पर अधिशोषण व अवशोषण हो जाता है। जिससे ये और भी तेज़ी से खाद्य श्रृंखला में सम्मिलित हो जाते हैं। मनुष्यों व जानवरों के वसीय ऊत्तकों में इनका जैवआवर्धीकरण होता रहता है एवं अत्यधिक संचय हो जाने पर ये विषैले रसायन जानलेवा बीमारियों का कारण बनते हैं। बढ़ता हुआ कर्क रोग एवं बांझपन इत्यादि इन्हीं रसायनों का परिणाम है। एक बार मृदा में विलय के पश्चात इन रसायनों का दुष्प्रभाव सालों-साल देखने को मिलता है। अत: इनके अनावश्यक प्रयोग पर रोकथाम अब अति आवश्यक हो गई है।

फसलों के उत्पादन को बिना घटाए, कृषि में सस्ते व पर्यावरण अनुकूल विकल्पों का प्रयोग आज की ज्वलनशील मांग बन चुका है। विषैले पदार्थों की मात्रा कम करके, जैविक खेती के विकल्पों की ओर रूझान बढ़ाकर हम प्राकृतिक एवं कृषि संबन्धी स्थिरता प्राप्त कर सकते हैं। जीवाणु खाद, केंचुआ खाद, बायोगैस स्लरी, जैविक खाद, फसल चक्र एवं कीटों व बीमारी फैलाने वाले सूक्ष्मजीवों का जैव नियन्त्रण इत्यादि प्रणालियां अपनाकर हम विषमुक्त खेती की ओर अग्रसर हो सकते हैं। ये प्राकृतिक एवं सस्ते विकल्प यथासंभव अपनाकर हम भूमि को रासायनिक विष से मुक्त कर सकते हैं। आरम्भ में इन विकल्पों का प्रभाव कदाचित कम दिखाई दे परन्तु समय के साथ ये भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ाकर, निश्चित रूप से आर्थिक तौर पर भी सहायक सिद्ध होंगे।

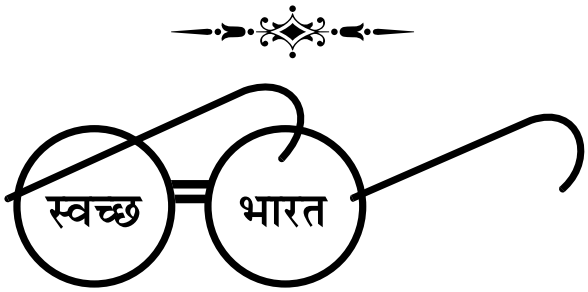

एक कदम स्वच्छता की ओर

[1]रसायन विज्ञान विभाग

मूंगफली की फसल : बीमारियों तथा कीड़ों से बचाव

- **नरेंद्र सिंह यादव, बलबीर सिंह[1] एवं एस. पी. यादव**
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

खरीफ तिलहनी फसलों में मूंगफली का हरियाणा प्रदेश मे एक महत्वपूर्ण स्थान है। देश की 991 किलो ग्राम प्रति एकड़ औसत पैदावार के मुकाबले में हरियाणा की औसत पैदावार 1000 किलो ग्राम प्रति एकड़ है। इसकी उपज बढ़ाने के लिए इसका क्षेत्रफल बढ़ाने की बजाए इसकी उत्पादकता बढ़नी आवश्यक है ताकि तेलों की बढती हुई मांग पूरी की जा सके। अन्य तकनीकी जानकारी के अलावा इस फसल में लगने वाली बीमारियों तथा कीड़ों की उचित समय पर देखभाल करने से इस फसल की औसत पैदावार और अधिक बढ़ाई जा सकती है।

बीमारियों के लक्षण एवं बचाव

बीज गलन व कॉलर गलन (तना गलन): यह बीमारी भूमि में रह रहे फफूंद द्वारा फैलती है। यह बीमारी रेतीली, शुष्क भूमि तथा अधिक तापमान पर बहुत हानि पहुंचाती है। प्रारम्भिक अवस्था में इस बीमारी का प्रकोप मूंगफली के कोमल तने पर होता है। बीज गलन में उगने से पहले ही बीज भूमि में गल जाता है जिससे जमाव कम होता है। कॉलर गलन रोग जमाव के तुरंत बाद ही आरम्भ हो जाता है। इसमें पौधों का भूमि के पास वाला भाग पिचक जाता है तथा पौधा ऊपर से सूखना शुरू हो जाता है। अगर ऐसे पौधे को उखाड़ा जाए तब जड़ आमतौर पर टूटकर भूमि में रह जाती है। तने और बीज के इस भयंकर गलन रोग की उत्पत्ति एक फफूंद द्वारा होती है जो काला पाऊडर के रूप में तने पर भूमि के पास वाले भाग पर होती है।

बचाव : जिन मूंगफली के खेतों में यह बीमारी अधिक आती है वहां कम से कम तीन साल का फसल चक्र अपनाएं तथा स्वस्थ व अच्छा बीज लें एवं बिजाई से पहले थाइरम या कैप्टान 3 ग्राम की दर से बीज उपचार करें।

टिक्का रोग (पौध धब्बा रोग) : यह बीमारी फसल के जमाव के 6 सप्ताह बाद शुरू होती है। प्रारम्भिक अवस्था में ये धब्बे हल्के भूरे, फिर गहरे भूरे और बाद में काले हो जाते हैं। सभी धब्बों के चारों ओर लगभग एक से डेढ़ मि.मी. चौड़ाई का गोलाकार पीला घेरा बन जाता है। इन धब्बों से ग्रस्त कोशिकाएं नष्ट हो जाती हैं। जिससे पत्तों द्वारा बनाए जाने वाले आहार का नुकसान होता है। अधिक प्रकोप होने पर पत्ते झड़ जाते हैं तथा उपज का पकाव जल्दी हो जाता है तथा पैदावार में कमी आ जाती है।

बचाव : इस बीमारी से ग्रसित फसल के अवशेषों को एकत्रित करके नष्ट कर देना चाहिए तथा रोग ग्रसित फसल पर 400 ग्राम मैंकोज़ैब या 200 ग्राम बाविस्टीन दवा को 200 लीटर पानी मे घोल बनाकर प्रति एकड़ के हिसाब से 10-15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

कीड़ों से बचाव

दीमक :- यह बहुभक्षी कीट खरीफ व रबी की अन्य फसलों के अलावा मूंगफली को भी भारी नुकसान पहुंचाता है। यह कीट ज़मीन के अंदर रहता है और इसका प्रकोप अधिकतर बारानी क्षेत्रों में ही होता है। फसल के उगने से कटाई तक यह फसल की जड़ों व तनों को काटकर नष्ट करता रहता है, इससे पौधे पीले पड़ने लगते हैं और कुछ दिन बाद सूखकर मर जाते हैं। यदि इनके तनों व फली को चीरकर देखा जाए तो उनके अंदर मिट्टी भरी होती है। इस कीड़े का प्रकोप खेत के छोटे-छोटे चकत्तों में मिलता है परंतु कभी-कभी यह सारे खेत को ही चट कर जाता है।

रोकथाम :- गोबर की कच्ची खाद खेतों में न डालें, समय पर सिंचाई, निराई-गुड़ाई करें व खरपतवार निकालें। बिजाई से कुछ समय पहले 15 मि.ली. क्लोरोपाईरीफॉस 20 ई. सी. या क्विनाल्फॉस 25 ई.सी. से प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीज उपचार करें।

सफेद लट :- यह दीमक की तरह बहुभक्षी कीट है। इस कीट की गिंडार सफेद रंग की होती है जो पूरी विकसित होने पर 2.5 से 3.5 सैं.मी. तक लंबी होती है। ज़मीन से बाहर निकालने पर यह कीट अंग्रेजी के 'सी' अक्षर के आकार की होती है। यह कीट पौधों की मूल जड़ को खा जाता है तथा ज़मीन के भीतर एक मीटर तक इधर-उधर आ-जा सकता है। आक्रमण ग्रस्त पौधों का रंग धीरे-धीरे पीला पड़ने लगता है। पौधों को उखाड़कर देखा जाए तो जड़ पर कटे हुये निशान मिलते हैं जैसे कि तेज़ धार वाले चाकू से काटा गया हो। इसका प्रकोप भी सारे खेत में एक सा नहीं मिलता।

समन्वित रोकथाम :- खेत के आस-पास यदि नीम, कीकर या खेजड़ी के पेड़ हों तो उनके पत्तों को बरसात के दिनों में काट देना चाहिए क्योंकि इस कीट के प्रौढ़ पहली बरसात के बाद इन पेड़ों के पत्ते खाते हैं। बाद में आसपास की जमीन में जाकर यह प्रौढ़ अंडे देते हैं जिनमें लटें निकलकर फसल को नुकसान पहुंचाती हैं।

प्रौढ़ भूण्डों को मारने के लिये पहली, दूसरी व तीसरी वर्षा होने के बाद उसी दिन या एक दिन बाद खेतों में खड़े पेड़ों पर 0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉस 36 एस. एल. या 0.05 प्रतिशत क्विनलफॉस 23 ई.सी. के हिसाब से छिड़काव करें।

दीमक के लिये बताया गया बीजोपचार करना भी आवश्यक है ताकि जड़ों में सफेद लट न लग पाये।

चेपा :- इस कीट के बच्चे व प्रौढ़ गहरे भूरे या हल्के काले रंग के होते हैं जो पौधों से रस चूस लेते हैं। जिसके कारण पौधे मुरझा जाते हैं। इस कीट का आक्रमण कभी-कभी मानसून के बाद होता है।

रोकथाम :- इस कीट का आक्रमण होने पर 200 मि. ली. मैलाथियान 50 ई. सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करें।

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, बावल

फलदार पौधों को गर्मी व लू से बचाएं

- **सुलेमान मोहम्मद एवं विरेन्द्र सिंह**
क्षेत्रीय अनुसन्धान केंद्र (बागवानी), बुड़ीया, यमुनानगर
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गर्मी के मौसम में जब गर्म व शुष्क हवाएं चलती हैं तो पौधों की पत्तियों एवं ज़मीन की सतह से पानी का वाष्पीकरण बड़ी तेज़ी से होता है। इन गर्म व शुष्क हवाओं तथा लू के कारण ज़मीन में तथा पौधों पर पानी की कमी के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। तेज़ लू या आंधी तूफान से कमजोर टहनियां व पौधे टूट कर गिर जाते हैं व कई बार पूरे के पूरे पौधे बिल्कुल उखड़ भी जाते हैं। अत: फलदार पौधों की गर्मी व लू से रक्षा निम्नलिखित तरीकों से करें:

हवा रोक बाड़: जिस खेत में बाग़ लगा हुआ हो उसकी उत्तर-पश्चिम दिशाओं पर एक मिश्रित पंक्ति के रूप में 3-4 किस्मों के अलग-अलग ऊंचाई वाले पेड़ लगायें। अधिक ऊंचाई वाले पेड़ जैसे शीशम, सफेदा, देसी आम आदि व कम ऊंचाई वाले जैसे जमोआ, शहतूत, करोंदा आदि बाड़ के लिए अच्छे पेड़ हैं। बरसात के दिनों में खेत की उत्तर-पश्चिम सीमाओं के साथ-साथ दस फुट की दूरी पर अधिक ऊंचाई वाले पौधों की दो कतारें लगायें ताकि सभी प्रकार के पौधे मिश्रित रूप से लग जाएं।

जन्तर या ढैंचा लगाना : फरवरी-मार्च के महीनों में फलदार पौधों के चारों ओर ढैंचा के बीज बो दिए जाते हैं जो जून जुलाई के महीनों तक काफी बड़े हो जाते हैं तथा बौनी किस्म के फलदार पौधों को गर्मी व लू से बचाते हैं।

छप्पर बनाना : आमतौर पर फल उत्पादक हवा रोधक बाड़ तैयार नहीं करते, यदि करते भी हैं तो उसी समय जब वे खेत में फलदार पौधे लगाना शुरू करते हैं। परन्तु इस समय यह बाड़ छोटे पौधों (नए) की रक्षा नहीं कर सकती। इसलिए ऐसे बागों में हर एक नए पौधे के उत्तर-पश्चिम में सरकंडे की पत्तियों से या धान की पराली से छट्टियों के साथ छप्पर बना दें और मई-जून के महीने में पौधों के साथ लगा दें।

पलावर क्रिया (मल्चिंग)- गर्मी के दिनों में ज़मीन में नमी बनाये रखने के लिए गुड़ाई करने के बाद ज़मीन को घास-फूस या धान की पराली या लकड़ी के बुरादे या पॉलीथीन शीट से ढक देते हैं। इस क्रिया को पलावर क्रिया कहते हैं। इस तरह ढकने से ज़मीन लू व सूर्य की किरणों के सीधे सम्पर्क में नहीं आती जिससे वाष्पीकरण बहुत कम होता है तथा ज़मीन में नमी लम्बे समय तक बनी रहती है। पलावर क्रिया (मल्चिंग) से खरपतवारों का नियंत्रण भी होता है. अगर पलावर क्रिया पॉलीथीन शीट के अलावा फूस या धान की पराली या लकड़ी के बुरादे से की गई हो तो दीमक का प्रकोप बढ़ सकता है, अत: दीमक की रोकथाम के लिए पलावर क्रिया से पहले क्लोरपाईरिफोस दवा को सिफारिश अनुसार रेत में मिलाकर पूरे खेत में छिडकें एवं सिंचाई करें।

सिंचाई :- ज़्यादा गर्मी व लू के दिनों में पानी का वाष्पीकरण अधिक होता है इसलिए छोटे पौधों को 3-4 दिन के अन्तराल पर तथा बड़े पौधों को 7-8 दिन के अन्तराल पर पानी देते रहना चाहिए।

तनों पर सफेदी करना-पौधे के मुख्य तने पर चूने की गहरी पुताई करें ताकि तने द्वारा गर्मी को ग्रहण करने की शक्ति कम हो जाये। यदि 100 लीटर चूने के पानी में 300 ग्राम ब्लाइटोक्स मिलाकर पुताई करें तो तने पर बीमारियाँ भी कम लगेंगी।

नाज़ुक पौधे बाग के बीच लगाना : ज्यादा गर्मी व लू से अधिक प्रभावित होने वाले फलदार पौधे जैसे लीची, पपीता, लोकाट आदि को बाग़ के बीच में लगायें ताकि ये नाजुक पौधे लू से कम प्रभावित हों।

पौधे को स्वस्थ व मज़बूत बनाना : अगर पौधा अच्छी बढवार वाला व मज़बूत होगा तो उसमें लू व ज्यादा गर्मी को सहने की शक्ति अधिक होगी। इसलिए सिफारिश अनुसार पौधों में खाद, पानी, कांट-छांट, निराई-गोड़ाई तथा कीड़े व बीमारियों की रोकथाम समय-समय पर करते रहें ताकि पौधे स्वस्थ व मज़बूत बने रहें और गर्मी व लू से अधिक प्रभावित न हों।

(पृष्ठ 3 का शेष)

पत्तियां छोटी व मोटी होकर ऊपर की तरफ मुड़कर कप की आकृति ले लेती हैं। पौधे झाड़ीनुमा दिखाई देते हैं। इसकी कमी 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट को 2 प्रतिशत यूरिया के साथ मिलाकर 10 दिन के अंतराल पर दो छिड़काव करने से पूरी की जा सकती है।

लोहा : इसकी कमी के लक्षण नई पत्तियों पर दिखाई देते हैं। शिराओं के बीच से पत्तियों का रंग उड़ जाता है तथा पूरी पत्ती सफेद दिखाई देने लगती है। इसकी कमी को 0.1 प्रतिशत फैरस सल्फेट का 10 दिन के अंतराल पर दो-तीन बार छिड़काव करने से पूरा किया जा सकता है।

मैंगनीज़ : इसकी कमी से पौधे की बढ़वार रुक जाती है तथा पौधे पर पत्तियां कम और छोटी होती हैं। फूल देरी से आते हैं तथा गिर जाते हैं तथा टिड्डे नहीं बनते। इसके लक्षण सबसे पहले बीच वाली पत्तियों पर दिखाई देते हैं। पत्ती के मध्य हरा रंग हल्का हो जाता है तथा शिराएं हरी दिखाई देती हैं। इसकी कमी को एक किलोग्राम मैंगनीज़ सल्फेट को 200 लीटर पानी में मिलाकर 10 दिन के अंतराल पर दो से तीन छिड़काव करने से पूरा किया जा सकता है।

आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें।

- सह-निदेशक (प्रकाशन)

लोबिया : एक पौष्टिक चारे वाली – दलहनी फसल

- **सतपाल, डी.एस. फोगाट एवं दलविंदर पाल सिंह**
चारा अनुभाग, आनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

लोबिया, गर्मी व खरीफ मौसम की फलीदार, पौष्टिक एवं स्वादिष्ट चारे वाली फसल है। इसकी खेती प्राय: सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इसे हरे चारे के अलावा दलहन, हरी फली (सब्जी) व हरी खाद के रूप में अकेले अथवा मिश्रित फसल के तौर पर उगाया जाता है। अगर इसे ज्वार, बाजरा तथा मक्का के साथ उगाएं तो इन फसलों के चारे की गुणवत्ता बढ़ जाती है। गर्मियों में इसे दुधारू पशुओं की दूध देने की क्षमता बढ़ाने के लिए अवश्य खिलाना चाहिए।

पोषकता : लोबिया के हरे चारे में पौष्टिकता की दृष्टि से प्रोटीन 18 से 24 प्रतिशत, फाइबर 34 से 37 प्रतिशत और लिग्निन 8 से 10 प्रतिशत पाए जाते हैं जो अन्य चारों की अपेक्षा इसकी पाचन क्रिया, स्वादिष्टता एवं पशु स्वास्थ्य को बनाए रखने में अधिक उपयोगी होते हैं। लोबिया के हरे चारे को अकेले खिलाने की बजाए सूखी तूड़ी या ज्वार, बाजरा, मक्की के हरे चारे या इनकी कड़वी के साथ मिलाकर खिलाएं। लोबिया से हरे चारे की अधिक पैदावार लेने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

किस्म का चुनाव

सी एस -88 : यह लोबिया की सीधी बढ़ने वाली किस्म है जिसके पत्ते गहरे हरे रंग के तथा चौड़े होते हैं। यह किस्म विभिन्न रोगों से मुक्त है। विशेषकर पीले मोजैक विषाणु रोग के लिए। इस किस्म की बिजाई सिंचित एवं कम सिंचाई वाले क्षेत्रों में गर्मी तथा खरीफ के मौसम में की जा सकती है। इसका हरा चारा लगभग 55-60 दिनों में कटाई योग्य हो जाता है। इसके हरे चारे की पैदावार लगभग 140-150 क्विंटल प्रति एकड़ है। यदि फसल बीज के लिए लेनी हो तो लोबिया की बिजाई का सही समय मध्य-जुलाई से अगस्त का प्रथम सप्ताह है।

मिट्टी व खेत की तैयारी : लोबिया की काश्त के लिए दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त होती है परन्तु रेतीली दोमट मिट्टी में भी इसे आसानी से उगाया जा सकता है। ज़मीन समतल एवं अच्छे जल निकास वाली होनी चाहिए।

बिजाई का समय : लोबिया की बुवाई मध्य-मार्च से लेकर जुलाई अन्त तक कर सकते हैं। गर्मियों में सबसे अच्छा समय मध्य-मार्च से लेकर मई का पहला सप्ताह है, जिससे इसका हरा चारा चारे की कमी वाले समय में उपलब्ध हो जाता है। खरीफ में इसकी बिजाई मध्य-जून से जुलाई अन्त तक कर सकते हैं।

बीज की मात्रा व बिजाई का ढंग : पौधों की उचित संख्या व बढ़वार के लिए 16-20 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ उचित रहता है। पंक्ति से पंक्ति का फासला 30 सैं.मी. रखकर पोरे अथवा ड्रिल द्वारा बिजाई करें। लेकिन जब मिश्रित फसल बोई जाए तो लोबिया के बीज की एक तिहाई मात्रा प्रयोग करें। लोबिया के लिए सिफारिश किए गए राइजोबियम कल्चर से बीज का उपचार करके बिजाई करें।

उर्वरक : दलहनी फसल होने के कारण, लोबिया में नाइट्रोजन की अधिक आवश्यकता नहीं होती। अच्छी बढ़वार के लिए 10 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें। बिजाई से पहले सिंचित इलाकों में 25 किलोग्राम फास्फोरस तथा बारानी क्षेत्रों में 12 किलोग्राम फास्फोरस पोरा या ड्रिल से डालें। मिश्रित खेती में उर्वरक फसल की सिफारिश के अनुपात में ही डालें।

निराई-गुड़ाई : गर्मी में बोई गई फसल में एक निराई-गुड़ाई पहली सिंचाई देने के बात बत्तर आने पर करें। मानसून की वर्षा पर बोई गई फसल में एक गुड़ाई बिजाई के लगभग 25 दिन बाद करें।

सिंचाई और जल निकास : मार्च-अप्रैल में बोई गई फसल में पहली सिंचाई बिजाई के 20-25 दिन बाद तथा मई में बोई गई फसल में पहली सिंचाई बिजाई के 15-20 दिन बाद करें। आगे की सिंचाइयां 15-20 दिन के अन्तराल पर करें। इस तरह कुल मिलाकर 3-4 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। बरसात के मौसम में बीजी गई फसल में आमतौर पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। जल-निकास का उचित प्रबन्ध करना आवश्यक है।

कीड़ों से बचाव : सूखे मौसम में लोबिया पर हरा तेला आक्रमण करता है। इसकी रोकथाम के लिए 200 मिलीलीटर मैलाथियॉन 50 ई.सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। लेकिन यह विशेष ध्यान रखें, कि छिड़काव के 7-10 दिन बाद तक इस फसल का हरा चारा पशुओं को न खिलाएं।

कटाई : लोबिया से दो कटाई ली जा सकती हैं-पहली कटाई बिजाई के 55 दिन बाद व दूसरी कटाई फसल में फूल आने पर। लोबिया की हरे चारे के लिए कटाई 50 प्रतिशत फूल आने से लेकर 50 प्रतिशत फलियां बनने तक पूरी कर लेनी चाहिए। अन्यथा इसके बाद इसका तना सख्त व मोटा हो जाता है और चारे की पौष्टिकता व स्वादिष्टता दोनों ही प्रभावित होती हैं।

लोबिया आधारित फसल-चक्र

(अ) सिंचित क्षेत्रों के लिए : हरियाणा के जिन क्षेत्रों में पानी की कमी नहीं है वहां लोबिया आधारित निम्न फसलचक्र अपनाएं।

1. **संकर हाथी घास + लोबिया (गर्मियों में) + लोबिया (खरीफ)-बरसीम + चाइनीज़ सरसों**

संकर हाथी घास एक बहुवर्षीय फसल है। इसे मध्य फरवरी से मध्य मार्च में जड़ों व तनों द्वारा लगाया जाता है। इसके लिए हाथी घास की 3500 जड़ों की प्रति एकड़ आवश्यकता पड़ती है। हाथी घास के लिए कतारों का फासला दो मीटर तथा पौधों का फासला 60 सैं.मी. रखना चाहिए। अप्रैल के अन्त में जब बरसीम से चारा मिलना बन्द हो जाता है तो उस समय हाथी घास चारा देना आरम्भ कर देती है। गर्मियों के महीनों (मई-जून) में इसकी पौष्टिकता बढ़ाने के लिए इसकी कतारों के बीच में लोबिया की बिजाई करनी चाहिए। इसके लिए लोबिया के 16 किलो प्रति एकड़ बीज की मात्रा की आवश्यकता पड़ती है। अक्तूबर के महीने में हाथी घास की आखिरी कटाई लेकर इसकी कतारों के बीच में बरसीम+चाइनीज़ सरसों की बिजाई कर लेनी चाहिए। सर्दियों के मौसम में जब संकर हाथी घास चारा नहीं देती तब बरसीम की फसल से चारा मिलना शुरू हो जाता है। मार्च में संकर हाथी घास का फुटान शुरू हो जाता है। उसके बाद अप्रैल में चारा मिलना शुरू हो जाता है। इस फसलचक्र से पूरे साल में 720-800 क्विंटल प्रति एकड़ हरा चारा प्राप्त होता है।

(शेष पृष्ठ 8 पर)

क्षारीय एवं लवणीय मृदा की पहचान एवं सुधार

- **राकेश कुमार, मनोज कुमार शर्मा एवं विकास**
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

देश की बढ़ती हुई जनसंख्या की पोषण समस्या भारतीय कृषि के लिए एक बड़ी चुनौती है। इसलिए क्षारीय एवं लवणीय भूमि को सुधारकर अधिक फसल उत्पादन लेना आवश्यक है।

क्षारीय मृदा की पहचान

- इस प्रकार की मृदा में वर्षा का जल लंबे समय तक ठहरा रहता है।
- खड़े हुए पानी का रंग काला भूरा, गंदला व साबुनी होता है।
- आमतौर पर भूमिगत जल मीठा होता है तथा कई जगहों पर अधिक अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट (आर.एस.सी.) की समस्या होती है।
- कुछ गहराई पर कैल्शियम कार्बोनेट की कंकरियों का पाया जाना।

लवणीय मृदा की पहचान

- इस प्रकार की मृदा जल को कम समय में सोख लेती है।
- खड़े हुए पानी का रंग साफ होता है।
- भूमिगत जल अधिकतर लवणीय होता है।
- कुछ गहराई पर जिप्सम भी पाया जाता है।
- भूमि पर सफेद रंग की लवण पापड़ी का जमाव भी पाया जाता है।
- प्रयोगशाला में मिट्टी की जांच से ही लवणीय एवं क्षारीय मृदा का सही वर्गीकरण किया जा सकता है।

तालिका :- लवणीय एवं क्षारीय मृदा का वर्गीकरण

मृदा का प्रकार	पी एच मान	विद्युत चालकता (डे.से./मी)	सोडियम अधिशोषण अनुपात (एस. ए. आर.)
लवणीय मृदा	8.2 से कम	4.0 से अधिक	15 से कम
क्षारीय मृदा	8.2 या अधिक	4.0 से कम	15 या अधिक

लवणीय एवं क्षारीय मृदा सुधार के तरीके :-

जिप्सम का प्रयोग : इसके तहत क्षारीय भूमि सुधारने के लिए रासायनिक भूमि सुधारक पदार्थों जैसे जिप्सम, पाइराइट, फॉस्फोजिप्सम एवं गंधक का अम्ल आदि का प्रयोग किया जाता है किन्तु जिप्सम बाज़ार में आसानी से उपलब्ध हो जाता है तथा सस्ता व अत्यंत प्रभावी होने के कारण अधिक लोकप्रिय है। क्षारीय भूमि सुधार के लिए यह आवश्यक है कि प्रयोग किये जाने वाले जिप्सम की शुद्धता 70 प्रतिशत से कम न हो। यदि मृदा का पीएच मान अधिक है तो जिप्सम का प्रयोग सीधे खेत में ही करें। क्षारीय भूमि सुधार से पूर्व खेत से मिट्टी का नमूना लेकर प्रयोगशाला में उसकी जांच करा लें और भूमि सुधार के लिए आवश्यक जिप्सम की मात्रा की जानकारी प्राप्त कर लें। मृदा के पीएच मान के अनुसार 10 से 15 टन प्रति हैक्टेयर जिप्सम की आवश्यकता पड़ती है।

जैविक सुधारक : गन्ना मिल का प्रेसमड़, शीरा, धान की पुआल, भूसी, गृह की राख, जलकुम्भी कम्पोस्ट खाद, गोबर की खाद, कच्चा गोबर इत्यादि कार्बनिक पदार्थों का प्रयोग भी क्षारीय भूमि सुधार के लिए किया जाता है। जैविक पदार्थ का उपयोग करने से भूमि की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा में परिवर्तन होने के फलस्वरुप क्षारीय भूमि का सुधार होने लगता है। यह विधि प्राकृतिक होने के कारण सस्ती है किन्तु सुधार में अधिक समय लगता है। लवण ग्रस्त मृदा में कृषि-वानिकी के तहत विभिन्न प्रकार के वृक्षों जैसे : बबूल, गुह बबूल, विलायती बबूल/जंगली कीकर, राम बबूल, जंगली सारु एवं सफेदा आदि वृक्ष प्रजातियों को फसल के साथ लवणीय मृदा में आसानी से लगाया जा सकता है। जलमग्न व लवणग्रस्त भूमि में जैविक कार्बन की मात्रा कम होती है तथा इन्हें सुधारने के लिए एक कारगर नीति है। सफेदे का जैविक-जलनिकास के लिए कतार में रोपण कर जल निकास के साथ-साथ कार्बन का स्थिरीकरण भी किया जा सकता है।

उपसतही जल विकास तकनीक : सुधार के लिए उपसतही जलनिकास तकनीक का विकास किया गया है। भूमिगत जलनिकास तकनीक के अर्न्तगत छिद्र युक्त पाईप भूमि सतह से 1.-2.0 मीटर गहराई तथा 60-65 मीटर के अन्तराल पर खाई खोदने वाली (ट्रेन्चर) मशीन द्वारा बिछाए जाते हैं। सभी समानांतर नालियों को एक संग्राहक नाली द्वारा जोड़कर प्राकृतिक ढलान के अनुरुप 3-4 मीटर गहरे कुएँ में पहुँचा दिया जाता है। इस कुएँ से पानी को पम्प द्वारा निकाल कर खुली जलनिकास नाली में डाल दिया जाता है। इस प्रकार भूमिगत जल को वांछित स्तर पर स्थिर किया जा सकता है तथा घुलनशील लवण प्रभावित क्षेत्र से बाहर निकाले जा सकते हैं।

(पृष्ठ 8 का शेष)

2. मक्का + लोबिया-ज्वार + लोबिया-जई (दो कटाई)

इस फसल चक्र की सभी फसलें एक वर्षीय हैं। मक्का + लोबिया की बिजाई (2:1 अनुपात में) मार्च अन्त से अप्रैल माह के अन्त तक करें। मक्का व लोबिया की बिजाई के लिए बीज की मात्रा क्रमश: 16 व 6 किलो प्रति एकड़ प्रयोग करें। ज्वार+लोबिया की बिजाई मध्य जून में करें। जिसके लिए 14 किलो ज्वार तथा 6 किलो लोबिया का बीज पर्याप्त है। जई की बिजाई मध्य अक्तूबर के आस-पास करें जिसके लिए 32-40 किलो बीज की प्रति एकड़ आवश्यकता पड़ेगी। इस फसलचक्र से 440-520 क्विंटल हरा चारा प्रति एकड़ प्राप्त किया जा सकता है।

(ब) सीमित सिंचाई वाले क्षेत्रों के लिए : हरियाणा के जिन भागों में पानी की कमी है पूर्ण वर्ष हरा चारा प्राप्त करने के लिए निम्न लोबिया आधारित फसलचक्र अपनाना चाहिए।

बाजरा + लोबिया - ज्वार + लोबिया - जई

यह एक वर्षीय फसलचक्र है। गर्मियों के महीनों (मार्च अन्त से - अप्रैल) में बाजरा की 30 सैं.मी. की दूरी पर बिजाई कर दें। इसमें 2 : 1 अनुपात में लोबिया भी मिलाना चाहिए। इससे चारे की पौष्टिकता बढ़ जाती है। बाजरा व लोबिया के बीजों को उपयुक्त अनुपात में मिलाकर कतारों में बो दिया जाता है। यह उचित रहेगा यदि बिजाई इस प्रकार करें कि बाजरा की दो कतार न लगाकर फिर एक कतार लोबिया की लगायें। इससे पैदावार अधिक होती है। इसी प्रकार खरीफ में ज्वार तथा लोबिया भी 2:1 अनुपात में बोना चाहिए। अक्तूबर व नवम्बर के महीने में जई की बिजाई कर दी जाती है। इस फसलचक्र से पूरे साल में 360-440 क्विंटल प्रति एकड़ हरा चारा प्राप्त हो जाता है।

एलोवेरा : एक चमत्कारिक पौधा

✎ **राजेश लाठर, वंदना एवं गुरनाम सिंह**
कृषि विज्ञान केन्द्र, पंचकूला
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हर्बल और कॉस्मेटिक उत्पाद और दवा कंपनियों की बढ़ती मांग के साथ एलोवेरा की खेती का व्यावसायिक महत्त्व काफी बढ़ गया है। इस खेती का मुख्य लाभ यह है कि इसके लिए कम पानी और रखरखाव की आवश्यकता होती है। उत्पादन की लागत कम है और एलोवेरा खेती में अधिक शुद्ध लाभ है। उच्च औषधीय गुण और एलोवेरा की बढ़ी हुई मांग के साथ यह दुनिया भर में बहुत लोकप्रिय है जिसे चमत्कारी पौधे के रूप में भी जाना जाता है जो मानव को प्रकृति का उपहार है और प्रकृति का टॉनिक भी कहा जाता है।इसमें विटामिन और खनिजों के साथ एंटीबायोटिक और एंटीफंगल गुण होते हैं जो एलोवेरा को एक सुपरफूड बनाता है।एलोवेरा एक बहुत ही हार्डी पौधा है जिसे सूखे क्षेत्र में भी उगाया जा सकता है।यह पौधा मूल रूप से अफ्रीका महाद्वीप से है।



प्रमुख उत्पादक राज्य : एलोवेरा 36 टन प्रति हैक्टेयर की उत्पादकता और41.616 हजार टन उत्पादन के साथ लगभग 1156 हैक्टेयर क्षेत्र में लगाया गया है। एलोवेरा राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, तमिल नाडू, महाराष्ट्र और केरला राज्य में सीमित है।

एलोवेरा के स्वास्थ्य लाभ : दुनिया भर के शोधकर्ताओं ने शोध किया है कि 320 से अधिक बड़ी बीमारियों के इलाज में एलोवेरा की महत्वपूर्ण भूमिका है। एलोवेरा को अब ''अमेरिकन फूड एंड ड्रग ब्यूरो ई.ई.सी. एंड इस्लामिक सील'' द्वारा इसके महान मूल्य के रूप में मान्यता दी गई है।

- एलोवेरा एंटीबायोटिक, एंटी माइक्रोबियल, एंटी बैक्टीरियल, एंटी सेप्टिक, कीटाणुनाशक, एंटी फंगल और एंटी वायरल है
- एलोवेरामूत्रसंबंधित समस्याओं, अल्सर और पिंपल्स के उपचार में बहुत अच्छा है।
- एलोवेरा विटामिन और खनिजों का अच्छा स्रोत है।
- एलोवेरा में अमीनो एसिड और फैटी एसिड की मात्रा अधिक होती है।
- एलोवेरा पाचन में मदद करता है।
- एलोवेरा डिटॉक्सिफिकेशन प्रोसेस में मदद करता है।
- एलोवेरा प्रतिरक्षा प्रणाली को बढ़ाने में मदद करता है।
- एलोवेरा कब्ज़ से राहत दिलाने में मदद करता है।
- एलोवेरा, मुँहासे, निशान और जलन को ठीक करने में मदद करता है।
- एलोवेरा तनाव के स्तर को कम करता है।
- एलोवेरा ब्लड कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में मदद करता है।
- यह ब्लड शूगर के स्तर को नियंत्रित करता है।
- यह दिल को स्वस्थ रखने में मदद करता है।
- एलोवेरा गठिया के दर्द में मदद करता है।

एलोवेरा की विभिन्न किस्में जो व्यापार में बहुत लोकप्रिय हैं : दुनिया में एलोवेरा की 300 ज्ञात प्रजातियां हैं, जिनमें से एलो बारबडेंसिस मिलर को 95 प्रतिशत औषधीय गुणों के साथ सबसे अच्छा प्रकार माना जाता है। अन्य किस्में एलो परफोलियाटा, एलो चिर्नेसिस, एलो लिटोरालिस, एलो वल्गेरिस,एलो एबिसिनिका आदि हैं।

मिट्टी और जलवायु : एलोवेरा गर्म मौसम की फसल है। इसकी खेती आमतौर पर शुष्क क्षेत्र में न्यूनतम वर्षा और गर्म आर्द्र क्षेत्र में सफलता पूर्वक की जाती है। यह पौधा अत्यधिक ठंड की स्थिति के प्रति बहुत संवेदनशील है। शुष्क क्षेत्र और कम पानी की ठहराव वाली मिट्टी के साथ भूमि का उपयुक्त चयन आवश्यक है। इसकी खेती के लिए भूमि को ठीक स्थिति तक अच्छी तरह से जुताई करके तैयार किया जाना चाहिए। मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए, अंतिम जुताई के दौरान लगभग 15-20 टन अच्छी तरह से सड़े हुए गोबर की खाद डालें। इसकी खेती रेतीली से लेकर दोमट मिट्टी तक विभिन्न प्रकार की मिट्टी पर की जा सकती है हालाँकि, इसकी खेती के लिए रेतीली मिट्टी सबसे अच्छी होती है। अच्छी काली मिट्टी भी एलोवेरा की खेती के उत्तम विकास के लिए बहुत उपयुक्त है। भूमि चयन में हमें उन ज़मीनों का चयन करना चाहिए जो ज़मीनी स्तर से थोड़ी ऊंचाई पर हों।यह जल भराव की स्थिति के प्रति संवेदनशील है इसलिए खेत में जल निकासी व्यवस्था होनी चाहिए। मिट्टी का पीएच 8.5 होना चाहिए।

एलोवेरा की वंश-वृद्धि और रोपण : बेहतर विकास के लिए एलोवेरा के पौधे जुलाई-अगस्त में लगाए जाते हैं। सिंचित स्थिति में, पौधों को सर्दियों के महीनों में छोड़कर पूरे वर्ष लगाया जा सकता है। नाली और डोली 40 सैं.मी. की दूरी पर होनी चाहिए।छोटा पौधा 40 सैं.मी. की दूरी पर लगाया जाना चाहिए। रोपण घनत्व पचास से पचपन हज़ार प्रति हेक्टेयर होगा और दूरी 40×45 सैं.मी. होनी चाहिए। एलोवेरा, राइजोम कटिंग और छोटे पौधे से प्रोपगैटेड किया जाता है, इसकी वंश-वृद्धि के लिए भूमिगत राइजोम को खोदा जाता है, राइजोम को 5-5.5 सैं.मी. काटा जाता है जिसमें न्यूनतम दो से तीन गांठें होनी चाहिएं। अंकुरित होने के बाद इसे बेड या विशेष कंटेनर में लगाया जाता है। इसी प्रकार छोटे पौधे को मूल पौधे से अलग किया जाता है और 50 × 45 सैं.मी. की दूरी पर लगाया जाना चाहिए और राइजोम कटिंग की लंबाई और छोटे पौधे की लंबाई 12-15 सैं.मी. रेंज में होनी चाहिए। यह सलाह दी जाती है कि पौधे का दो तिहाई हिस्सा ज़मीन के अंदर होना चाहिए।छोटे पौधे के प्रसार के मामले में, मदर प्लांट को नुकसान पहुँचाए बिना मध्यम आकार के छोटे पौधों को सावधानी से खोदा जाता है। राइजोम के मामले में, कटाई के बाद भूमिगत राइजोम को खोदें और उन पर दो या तीन गांठों के साथ लगभग 6 सैं.मी. लंबी कटिंग करें। उन्हें तैयार रेत बेड पर रखें। एक बार अंकुरित होने के बाद, उनकी मुख्य खेत में रोपाई करें।

सिंचाई : छोटे पौधे लगाने के तुरंत बाद सिंचाई देनी चाहिए। गर्मी के मौसम में सिंचाई करने के परिणामस्वरूप अच्छी पैदावार होगी। बरसात के मौसम में, खेत में जल भराव से बचें क्योंकि यह फसल पानी के ठहराव के प्रति संवेदनशील है। उचित रोपण के बाद सिंचाई मिट्टी की नमी के अनुसार करनी चाहिए।एलोवेरा की खेती में अंत: कृषि क्रिया के रूप में, मिट्टी चढ़ाने का काम किया जाना चाहिए। नियमित अंतराल पर निराई-गुड़ाई करनी चाहिए।

खाद और उर्वरक : एलोवेरा में रासायनिक उर्वरकों का उपयोग बहुत ही कम है। भूमि की तैयारी के दौरान 15-20 टन प्रति हैक्टेयर अच्छी तरह से सड़े गोबर की खाद का उपयोग करें। इसके बाद हर साल गोबर की खाद का उपयोग किया जाना चाहिए। प्रारंभिक खुराक के रूप में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश जैसे उर्वरकों को 50 : 50 : 50 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर के अनुपात में उपयोग करना चाहिए।

रोग व कीट नियंत्रण : पौधे को नुकसान से बचाने के लिए कीट नियंत्रण भी बहुत आवश्यक कदम है। मीली बग एलोवेरा की फसल के लिए प्रमुख खतरा है। साथ ही पत्तियों का धब्बा रोग एक बड़ी बीमारी है। एलोवेरा में कीट नियंत्रण के लिए मिथाइल पैराथियान 0.1 प्रतिशत या मैलाथियान 50 प्रतिशत 0.2 प्रतिशत से उचित छिड़काव करें। पत्ती धब्बा रोग से बचाव के लिए 0.2 प्रतिशत डाइथेन एम-45 का छिड़काव साप्ताहिक अंतराल पर किया जाना चाहिए।

एलोवेरा की कटाई : एलोवेरा की पहली कटाई लगभग 8 महीनों में की जा सकती है। इसकी कटाई दांतीं या चाकू से करनी चाहिए क्योंकि मिट्टी में बचे टूटे हुए प्रकंद फिर से उग आएंगे इसलिए एलोवेरा के पौधे की कटाई करते समय विशेष ध्यान रखना चाहिए। दूसरे वर्ष से एलोवेरा की फसल की व्यावसायिक पैदावार होगी और 5 साल तक चलेगी। कटाई सुबह या शाम के समय की जानी चाहिए। एक वर्ष में तीन कटाई की जा सकती हैं। यह फसल श्रम प्रधान फसल है। ताज़ी पत्तियों की कटाई के बाद पत्तियों को सुखाने के लिए देखभाल की जानी चाहिए। किसी भी प्रकार की फफूंद की वृद्धि को रोकने के लिए पत्तियों को सूखा और ठंडा रखा जाना चाहिए। कटाई की गई पत्तियों को ढेर या भंडारण करने में पक्के फर्श का उपयोग करने की सलाह दी जाती है।

एलोवेरा की उपज : एलोवेरा की खेती से पहले साल में कोई लाभ नहीं होता क्योंकि एक छोटे पौधे को पहली कटाई के लिए 12-15 महीने का समय चाहिए होता है और उसके बाद एक साल में 3-4 बार फसल ली जा सकती है। 3 या 4 ताज़े पत्ते लिए जा सकते हैं। एलोवेरा की व्यावसायिक उपज दूसरे से पांचवें वर्ष तक प्राप्त की जा सकती है। प्रति हैक्टेयर भूमि पर 40 से 45 टन मोटी पत्तियों की औसत उपज प्राप्त की जा सकती है।

एलोवेरा का विपणन : लक्षित ग्राहक और विपणन रणनीति हर व्यवसाय का पहला कदम होना चाहिए। यहाँ इस एलोवेरा की खेती में हमारा लक्षित बाज़ार हर्बल, फार्मा और कॉस्मेटिक कंपनियां हैं। एलोवेरा की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है जो बाज़ार में इसकी मांग को बढ़ाती है ताकि हमारे उत्पाद को बाज़ार में लाने के लिए हमें सीधे हर्बल, फार्मा या कॉस्मेटिक कंपनियों जैसे कि पतंजलि या हिमालय और कुछ अन्य हर्बल कंपनियों से संपर्क करना चाहिए।

ज़ायकेदार अचार

- **तनु मलिक, राकेश गहलोत एवं एकता**
खाद्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अचार आंशिक रूप से एक किण्वित (लैक्टिक एसिड किण्वन) पदार्थ है जो कि विभिन्न फलों व सब्जियों से नमक के माध्यम से तैयार किया जाता है। इसमें सिरका, मसाले, शक्कर एवं खाद्य तेल आवश्यकतानुसार मिलाए जाते हैं। अचार एक अत्यन्त ही लोकप्रिय पदार्थ है जो कि भारत के सभी वर्गो के परिवारों द्वारा निरन्तर उपयोग किया जाता है। यहां के अचार विदेशों में भी भेजे जाते हैं। अचार हमारे दैनिक भोजन का विशेष अंग बन चुका है। इसके प्रयोग से अच्छी भूख लगती है। इससे पाचन शक्ति भी तीव्र होती है।

मिला जुला मीठा अचार

सामग्री	**मात्रा**
गाजर के टुकड़े	350 ग्राम
शलगम के टुकड़े	350 ग्राम
गोभी के टुकड़े	300 ग्राम
गुड़	200 ग्राम
प्याज़	250 ग्राम
अदरक	50 ग्राम
लहसुन	10 ग्राम
राई पाऊडर	10 ग्राम
लाल मिर्च पाऊडर	10 ग्राम
गर्म मसाला	10 ग्राम
काली मिर्च पाऊडर	10 ग्राम
नमक	45 ग्राम
हल्दी	20 ग्राम
सरसों का तेल	20 ग्राम
ग्लेशियल एसिटिक एसिड/सिरका	5 मि.ली./100 मि.ली.

विधि :

1. सब्जियों को अच्छी तरह से धोकर आवश्यकतानुसार छीलें व टुकड़े कर लें। इन्हें 2-5 मिनट तक पानी में उबाल कर मुलायम कर लें और कपड़े पर डालकर आधे घण्टे के लिए सुखा लें।
2. थोड़ा सरसों का तेल गर्म करें और उसमें प्याज़, अदरक व लहसुन भून लें। इसमें राई भी डाल दें। बर्तन आग से हटा दें और गर्म मसाले एवं नमक के अतिरिक्त अन्य सारी सामग्री मिला दें।
3. सब्जियों व गुड़ के गाढ़े घोल को भी अच्छी तरह मिला दें। अब गर्म मसाला व नमक मिलाकर सिरका भी मिला दें। इसे मर्तबान में भरकर रख दें।

नींबू का मीठा अचार

सामग्री	**मात्रा**
नींबू	1 कि.ग्रा.

साधारण नमक	20 ग्राम
काला नमक	20 ग्राम
सेंधा नमक	20 ग्राम
जीरा	25 ग्राम
अजवायन	50 ग्राम
लाल मिर्च	10 ग्राम
काली मिर्च	10 ग्राम
गर्म मसाला	10 ग्राम
चीनी	350 ग्राम

विधि :

1. नींबू को धोकर साफ कपड़े से पोंछ लें। इनको चार फांकों में इस तरह काटें कि ये नीचे वाले सिरे से जुड़े रहें।
2. सारे मसालों को दरदरा पीस कर चीनी में अच्छी तरह से मिलाकर नींबुओं में अच्छी तरह से भरकर कांच के मर्तबान में रखते जाएं।
3. बचे हुए मसालों को निंबुओं के ऊपर डाल दें।
4. अब मर्तबान को कपड़े से ढ़क कर धूप में दो सप्ताह के लिए रख दें।
5. दो से तीन सप्ताह में यह अचार खाने योग्य हो जाएगा।

आंवले का अचार

समग्री	**मात्रा**
आंवला	1 कि. ग्राम
सरसों का तेल	200 ग्राम
नमक	100 ग्राम
लाल मिर्च	10 ग्राम
काली मिर्च	10 ग्राम
हल्दी	20 ग्राम
कलौंजी	10 ग्राम
मेथी (मोटी पिसी हुई)	50 ग्राम
राई	100 ग्राम
सौंफ	50 ग्राम
गर्म मसाला	10 ग्राम

विधि :

1. भूरे पके हुए साफ-सुथरे आंवले लें और उन्हें पानी में अच्छी तरह धो लें।
2. इन्हें 6 से 8 मिनट तक पानी में उबालें ताकि ये कुछ नर्म हो जाएं। नर्म किए हुए फलों से फांकें गुठली से अलग कर लें।
3. एक बर्तन में सभी मसाले व सरसों के तेल को मिलाएं।
4. इस मिश्रण में नर्म किए हुए फल के टुकड़े डालकर अच्छी तरह मिलाएं।
5. तैयार अचार को शीशे के मर्तबान में भरकर सील बंद करें। 4 से 5 दिन तक धूप में रख छोड़ें व कभी-कभी इसे हिलाते रहें। अचार सप्ताह भर में खाने योग्य हो जाएगा।

असिंचित क्षेत्रों में खरीफ फसलों की उत्पादकता - कैसे बढाएं

- **सुरेंद्र कुमार शर्मा, सरिता रानी एवं अमित कुमार**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हमारे देश में कृषि के विकास के बावजूद अब भी लगभग 60 प्रतिशत कृषि क्षेत्र असिंचित है तथा भारतीय अर्थव्यवस्था काफी हद तक मानसून पर निर्भर करती है। हरियाणा प्रांत के भी लगभग 20 प्रतिशत भाग में खेती पूर्णत: वर्षा पर आधारित है। बाजरा, मूंग व ग्वार असिंचित क्षेत्रों में खरीफ मौसम की प्रमुख फसलें हैं। मुख्य असिंचित भाग (87 प्रतिशत) दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्रों के अंतर्गत आता है जिसमें मुख्यत: हिसार, भिवानी, चरखी दादरी, महेंद्रगढ़, रेवाड़ी, गुरुग्राम, मेवात, झज्जर, सिरसा, फतेहाबाद व जीन्द जिलों का कुछ भाग आता है। इन क्षेत्रों में कम वर्षा (250-500 मि.मी.) होती है जिसकी 80 से 85 प्रतिशत वर्षा मानसून पर निर्भर करती है। भूमि में नमी का सही ढंग से उपयोग न करना व वैज्ञानिक ढंग से खेती न करना आदि असिंचित क्षेत्रों की मुख्य समस्याएं हैं। फसलों व किस्मों का उपयुक्त चयन न होना, वर्षा जल का उचित संरक्षण न करना, पौधों की उपयुक्त संख्या का न होना, खरपतवारों को पनपने देना, कीट व बीमारी पर नियंत्रण न करना व पोषक तत्वों का उपयोग सही ढंग से न करना आदि कारणों से असिंचित क्षेत्रों में खरीफ फसलों की पैदावार कम होती है। इसके अतिरिक्त बदलते हुए मौसम में वर्षा की कुल मात्रा व वर्षा के दिनों की संख्या भी बदलती जा रही है।

सस्य विज्ञान विभाग के अंतर्गत बारानी खेती अनुभाग असिंचित क्षेत्रों में पाई जाने वाली समस्याओं को आधार मानकर कार्य कर रहा है व इन समस्याओं पर काबू पाने के लिए काफी सिफारिशें व विधियां भी विकसित की गई हैं। इससे खरीफ फसलों की पैदावार में बढ़ोत्तरी दर्ज की गई है व किसानों को भी लाभ मिल रहा है। इस प्रकार असिंचित क्षेत्रों में खरीफ फसलों की उत्पादकता बढाने हेतु निम्नलिखित सस्य क्रियाओं को अपनाने पर बल देना चाहिए ताकि अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके।

समुचित जल संरक्षण : वर्षा के पानी का समुचित संरक्षण ही असिंचित क्षेत्रों की सफलता की कुंजी है। अधिकतर असिंचित क्षेत्रों में खेत ऊंचे-नीचे पाए जाते हैं। अत: सबसे पहले खेत को समतल कर लेना चाहिए। जिन खेतों में ढलान अधिक हो, उन्हें छोटे-छोटे हिस्सों में विभाजित करके उनके चारों तरफ मेडबंदी कर लेनी चाहिए ताकि वर्षा का पानी खेत से बहकर बाहर न जाए बल्कि उसका भूमि में यथावत संरक्षण हो जाए। वर्षा के पानी को अधिक मात्रा में रोकने के लिए खेतों में ढलान के विपरीत मेड़बंदी करनी चाहिए। खेत की हद एवं मोटी मेढ़ों पर सरकंडे लगाने से मेड़ें ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। ग्रीष्म ऋतु में खेतों में प्रत्येक तीन वर्ष में एक बार गहरी जुताई करने से मिट्टी की जल शोषण शक्ति बढ़ती है। खरीफ फसलों की बिजाई से पहले दो बार देसी हल या हैरो से जुताई मानसून की आरंभ की वर्षा में कर लेनी चाहिए।

उपयुक्त किस्मों का चयन : खरीफ फसलों की उपयुक्त किस्मों का चयन असिंचित क्षेत्रों में पैदावार बढ़ाने में सहायक है। इस प्रकार सही किस्म का चयन समय रहते कर लेना चाहिए। बाजरा की शीघ्र पकने वाली संकर किस्में जैसे एच एच बी 67 (संशोधित), एच एच बी 197, एच एच बी 216, एच एच बी 226, एच एच बी 234 व एच एच बी 272 बिजाई के लिए उत्तम पाई गई हैं। ग्वार के लिए एच जी 365, एच जी 563 व एच जी 2-20 किस्में उपयुक्त हैं। मूंग की विकसित किस्मों में सत्या, मुस्कान, बसंती व एम एच 421 बिजाई हेतु उत्तम हैं। उड़द के लिए टी 9 व यू एच 1 उपयुक्त किस्में हैं।

खेत की तैयारी : खेत को तैयार करने के लिए हैरो की सहायता से एक या दो बार गहरी जुताई करके सुहागा लगाना चाहिए ताकि खेत भुरभुरा व समतल हो।

बिजाई का उपयुक्त समय : बिजाई का उपयुक्त समय किसी भी फसल की पैदावार बढ़ाने में सहायक है। अत: खरीफ फसलों की बिजाई मानसून शुरू होने पर ही करनी चाहिए। यदि किसी वर्ष के जून के महीने में 25 से 30 मिलीमीटर वर्षा हो जाए तो बाजरा की बिजाई अवश्य कर देनी चाहिए ।

बीज की मात्रा : बीज की सही मात्रा का प्रयोग भी खरीफ फसलों की पैदावार बढ़ाने में सहायक है। इसके लिए बाजरा में 1.5 से 2.0 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ व ग्वार/मूंग/उड़द में 6 से 8 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ के हिसाब से प्रयोग करना चाहिए।

बीज का उपचार : बीज को उपचारित करके बीजने से हमेशा अच्छी पैदावार मिलती है। बाजरा में प्रति एकड़ बीज को 100 मिलीलीटर बायोमिक्स से उपचारित करना चाहिए। दलहनी फसलों के बीज को राइजोबियम व पी. एस. बी. कल्चर से उपचारित करना चाहिए। ये टीके चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार के माइक्रोबायोलॉजी विभाग एवं किसान सेवा केंद्र से प्राप्त किए जा सकते हैं। कल्चर के साथ दी गई हिदायतों के अनुसार ही कल्चर का सही ढंग से प्रयोग करना चाहिए।

कल्चर के साथ ही ग्वार में बैक्टीरियल ब्लाइट की रोकथाम हेतु 6 लीटर पानी में 6 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन को घोल लें व इस घोल में 6 किलोग्राम ग्वार का बीज 25 से 30 मिनट तक भिगोएं व बाद में 30 से 40 मिनट बीज को छाया में सुखाकर बिजाई कर देनी चाहिए।

बिजाई का तरीका : पूर्व से पश्चिम दिशा में पंक्तियों में 45 सैंटीमीटर के फासले पर फसलों की बिजाई करनी चाहिए। इससे बीजों के अच्छे जमाव एवं खरपतवार नियंत्रण में मदद मिलती है।

पौधों की उपयुक्त संख्या : किसी भी फसल की पैदावार पौधों की संख्या पर निर्भर करती है। बाजरा में उपयुक्त पौधों की संख्या से पैदावार बढ़ती है। इसके लिए रीजर सीडर द्वारा बिजाई करने से सफलता मिली है। बाजरे की बिजाई के तुरंत बाद यदि वर्षा हो जाती है तो ज़मीन पर पपड़ी बनने की संभावना बहुत अधिक हो जाती है तथा यह पौधों की संख्या को प्रभावित करती है। रीजर सीडर के प्रयोग से इस समस्या पर काफी हद तक काबू पाया गया है। सावनी के मौसम में अधिक बारिश होने से इस यंत्र द्वारा बनी नाली जल निकास का कार्य करती है तथा पौधों को मरने से बचाया जा सकता है।

उचित पोषक तत्वों का प्रयोग : असिंचित क्षेत्रों में अधिकतर किसान भाई उचित पोषक तत्वों का प्रयोग नहीं करते, जिससे पैदावार काफी कम मिलती है, जबकि इन क्षेत्रों में नमी के साथ-साथ पोषक तत्वों की भी कमी पाई जाती है। पोषक तत्वों का प्रयोग हमेशा मृदा जांच के आधार पर ही करना चाहिए। बाजरा में 16 किलोग्राम नाइट्रोजन, 8 किलोग्राम फास्फोरस व 3 वर्ष में एक बार 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ डालना चाहिए। ग्वार व अन्य दाल वाली फसलों में 8 किलोग्राम नाइट्रोजन, 16 किलोग्राम फास्फोरस व 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ की दर से डालना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण : खरपतवार न केवल फसल से बढोत्तरी व स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं बल्कि फसलों के हिस्से के जल व पोषक तत्वों का भी अवशोषण करते हैं। खरपतवार, मृदा नमी को वाष्पोत्सर्जन करके उड़ा देते हैं। प्राय: देखा गया है कि असिंचित क्षेत्रों में किसान खरपतवारों को बढ़ने देते हैं जिससे वे फसलों को मिलने वाले मुख्य पोषक तत्वों व नमी को ग्रहण कर लेते हैं, जिससे पैदावार कम मिलती है। किसान का उद्देश्य खरपतवारों को चारे की तरह प्रयोग करना रहता है, जो कि अवैज्ञानिक विधि है। अत: समय पर खरपतवार नियंत्रण अति आवश्यक है। इसके लिए पहिए वाला कसौला व ब्लेड हो का प्रयोग करना चाहिए ताकि खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ अच्छी नमी का संरक्षण भी हो सके।

पौध संरक्षण : शुष्क क्षेत्रों में सावनी फसलों पर प्राय: कीटों व बीमारियों का प्रकोप होता रहता है। अत: इन फसलों को कीटों व बीमारियों से बचाने के लिए समय-समय पर पौध संरक्षण करना अति आवश्यक है ताकि अधिक से अधिक पैदावार मिल सके।

कटाई : बाजरा व मूंग सितम्बर के महीने में पक कर तैयार हो जाता है। दरांती की सहायता से इन्हें काटें व खेत में सुखाकर दानों को निकाल लें। ग्वार की फसल की कटाई उस समय करें जब इसकी पतियां पीली पड़ कर झड़ जाएं तथा फलियों का रंग भूसे जैसा हो जाए। फसल पकने के तुरन्त बाद काट लें ताकि बीज नीचे न गिरें।

लेखकों से अनुरोध

हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। लेख में अंग्रज़ी शब्दों का प्रयोग न करें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें**। अपना लेख हमें ई-मेल पर भी भेज सकते हैं :

haryanakhetihau@gmail.com

जुलाई मास के कृषि कार्य



फसलों में

बाजरा

संकर बाजरे की किस्में, एच एच बी 50, एच एच बी 60, एच एच बी 94, एच एच बी 67 (संशोधित), एच एच बी 117, एच एच बी 146, एच एच बी 197, एच एच बी 216, एच एच बी 223 व एच एच बी 226, एच एच बी 234, एच एच बी 272, एच एच बी 299 या कम्पोजिट किस्में, एच सी 10 व एच सी 20 बोएं। संकर बाजरे का बीज हर साल नया ही लेकर बोएं। बिजाई के लिए जुलाई का प्रथम पखवाड़ा सबसे उत्तम समय है परंतु बारानी इलाकों में मानसून की पहली वर्षा होने पर ही बिजाई करें। खेत को 2 या 3 बार जोतकर फौरन सुहागा लगाकर अच्छी तरह तैयार करें ताकि घासफूस न रहे। बारानी क्षेत्रों में वर्षा से पहले खेत के चारों तरफ खूब मजबूत डोलें बनाएं ताकि खेत में पानी जमा हो जाए जो आगामी फसल के काम आएगा। एक एकड़ के लिए 1.5 से 2 किलोग्राम बीज चाहिए। खेत में सही उगाव के लिए बिजाई खूडों में इस तरह करें कि बीज के ऊपर 2.0 से 3.0 सैं.मी. से ज्यादा मिट्टी न पड़े। दो खूडों का फासला 45 सैं.मी. रखें। वर्षा के मौसम में मेड़ों पर बिजाई करना अच्छा होता है। इस तरीके से बिजाई के लिए विश्वविद्यालय के शुष्क खेती अनुसंधान केन्द्र द्वारा निर्मित मेड़ों पर बीजने वाले हल का प्रयोग करें। आम उपजाऊ व सिंचाई की सुविधा वाली भूमि में प्रति एकड़ 62.5 किलोग्राम नाइट्रोजन (135 कि.ग्रा. यूरिया), 25 कि.ग्रा. फास्फोरस (150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) तथा 10 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट डाली जानी चाहिए। आधी नाइट्रोजन बिजाई के समय ड्रिल करें व शेष दो बार दें-एक छंटाई के समय व दूसरी सिट्टे बनते समय। असिंचित बाजरे में 16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (35 कि.ग्रा. यूरिया) व 8 कि.ग्रा. फास्फोरस (50 कि.ग्रा. एस एस पी) प्रति एकड़ बिजाई के समय ड्रिल करें। सिंचित बाजरा में फास्फोरस व जिंक सल्फेट बिजाई के समय पोरें।

चेपा या अरगट रोग से बचाव हेतु बीज को 10 प्रतिशत नमक के घोल (10 लीटर पानी में 1 किलोग्राम नमक) में डुबो लें और तैरते हुए पिण्डों व अन्य पदार्थों को बाहर निकाल कर जला दें। नीचे बैठे हुए बीज को साफ पानी में 3-4 बार धोकर सुखा लें और 4 ग्राम थाइरम प्रति किलोग्राम बीज के मिश्रण से बीजोपचार करके बिजाई करें। यदि बीज पहले से उपचारित न हो तो डाऊनी मिल्ड्यू (जोगिया या हरे बालों वाला रोग) की शुरुआती रोकथाम के लिए बीज को मैटालेक्सिल 35 प्रतिशत से 6 ग्राम प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित करें। बाजरे की बिजाई के 3 और 5 सप्ताह बाद निराई-गुड़ाई करें। खरपतवारों की रोकथाम रसायनों द्वारा भी की जा सकती है। बिजाई के तुरंत बाद 400 ग्राम एट्राजीन (50 प्रतिशत घु. पा.) प्रति एकड़ 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें। यदि बिजाई के तुरन्त बाद एट्राजीन का प्रयोग न कर सकें तो बिजाई के बाद 10-15 दिन के बीच में भी उतनी ही मात्रा प्रयोग कर सकते हैं। ज्योंही खेत में कोढिया या डाऊनी मिल्ड्यू दिखाई दे प्रभावित पौधे उखाड़ कर नष्ट कर दें और वहां स्वस्थ पौध रोप दें ताकि खेत में पौधों की संख्या पूरी बनी रहे। सफेद लट के नियंत्रण के लिए विश्वविद्यालय की सिफारिश के अनुसार मानसून की वर्षा होते ही गांवों में अभियान चलाएं।

पछेती दशा में बाजरे की रोपाई करने के लिए जुलाई माह के पहले सप्ताह में नर्सरी में क्यारियों में बिजाई करें। नर्सरी के लिए क्यारियां ऐसी जगह बनाएं जहां वर्षा के न होने पर भी सिंचाई के लिए पानी का साधन हो। वर्षा की हालत में बीज छिटक कर तथा सूखी अवस्था में तंग कतारों में बोएं। नर्सरी में आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। खेत में रोपाई के लिए लगभग तीन हफ्ते में पौध तैयार हो जाती है।

मक्का

संकर मक्का की एच एच एम-1, एच एच एम-2, एच एम-4, एच एम-5, एच एम-10, एच एम-11, एच क्यू पी एम 1, एच क्यू पी एम 5, एच क्यू पी एम 4 किस्में ही बीजें। इनकी बिजाई कतारों में 75 सैं.मी. की दूरी पर 20 जुलाई तक पूरी कर लें। बिजाई के 10 दिन बाद फालतू पौधे निकाल कर पौधे से पौधे की दूरी 20 सैं.मी. रखें। बीज की गहराई 3 से 5 सैं.मी. हो। साधारणतया 8.0 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ बिजाई के लिए काफी होता है। मक्की में खरपतवारों को कल्टीवेटर, व्हील हैंड या खुरपे/कसोले द्वारा निराई करके या खरपतवारनाशक दवाइयों से नष्ट किया जा सकता है। बिजाई के तुरन्त बाद 400-600 ग्राम एट्राजीन (50 प्रतिशत (घु.पा.) प्रति एकड़ 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें। मक्की में सभी तरह के खरपतवारों के नियन्त्रण के लिए टैम्बोट्रायोन

लेखक :

- एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
- अनिल गोदारा, विभागाध्यक्ष (बागवानी)
- डी. एस. दुहन, सहायक वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान)
- तरुण वर्मा, जिला विस्तार विशेषज्ञ (कीट विज्ञान)
- रोहतास कुमार, सहायक वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
- वी. एस. हुड्डा, सहायक वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
- देवेन्द्र सिंह बिढान, सहायक प्राध्यापक (पशु उत्पादन प्रबन्धन)
- लीलावती, प्राध्यापिका (सूक्ष्मजीव विज्ञान)
- राजेश दहिया, सहायक प्राध्यापिका (गृह विज्ञान)
- सूबे सिंह, सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

(लोडिस 34.4 प्रतिशत) का 115 मिली. तैयार शुद्ध मिश्रण+400 मि.ली. चिपचिपे पदार्थ को 200 लीटर पानी में घोलकर बिजाई के 10-15 दिन बाद या खरपतवार की 2-3 पत्ती की अवस्था पर प्रति एकड़ छिड़कें। 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (43 कि.ग्रा. यूरिया), 24 कि.ग्रा. फास्फोरस (150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट), 24 कि.ग्रा. पोटाश (40 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश), 10 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति एकड़ बिजाई पर पोरें। 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (43 कि.ग्रा. यूरिया)/एकड़ पौधों के घुटने तक बड़ा होने पर व इतना ही झंडे आने से कुछ पहले दें।

धान

धान की आई आर-64, एच के आर-46, एच के आर-47, पी आर-106, जया, एच के आर-120, एच के आर-126, एच के आर-127 व हरियाणा संकर धान-1 की रोपाई 7 जुलाई तक पूरी कर लें। कम अवधि वाली किस्म गोविन्द व एच के आर -48 की रोपाई जुलाई अन्त तक कर सकते हैं। धान की अन्य किस्में, लंबी बासमती जैसे तरावड़ी बासमती, सी एस आर-30, बासमती-370 व बौनी बासमती जैसे हरियाणा बासमती-1, पूसा बासमती-1, पूसा बासमती-4 (पूसा 1121) की रोपाई भी जुलाई के मध्य में पूरी कर लें। इसमें ब्लास्ट या बदरा रोग कम लगता है। खेत में अच्छी तरह से पौध चलने के लिए व पानी बनाए रखने के लिए खेत को अच्छी तरह कद्दू करके एकसार कर लें। रोपाई के लिए कम समय वाली बौनी किस्मों हेतु 25-30 दिन पुरानी पौध प्रयोग करें। धान की समय पर रोपाई के लिए लंबी किस्मों में कतारों में 20 सैं.मी. व पौधों में 15 सैं.मी. दूरी रखें। जबकि देर से रोपाई हेतु यह दूरी 15-15 सैं.मी. रखें। एक जगह कम से कम 2-3 पौध सीधी लगाएं लेकिन 2-3 सैं.मी. से अधिक गहरी नहीं। कल्लर वाले खेतों में एक जगह कम से कम 3-4 पौध लगाएं। धान की बौनी मध्यम, मध्यम काट अवधि व संकर धान वाली किस्मों जैसे जया, पी आर 106, एच के आर 120, एच के आर 126 एच के आर 127 व हरियाणा संकर धान-1 में 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (130 कि.ग्रा. यूरिया), 24 किलोग्राम फास्फोरस (150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट), 24 किलोग्राम पोटाश (43 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) व 10 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति एकड़ का प्रयोग करें जबकि कम अवधि वाली गोबिन्द में 48 किलोग्राम नाइट्रोजन व ऊपर दी गई फास्फोरस, पोटाश व ज़िंक सल्फेट की मात्रा प्रयोग करें। नाइट्रोजन की 1/3 मात्रा, फास्फोरस, पोटाश व जिंक सल्फेट की पूरी मात्रा रोपाई के समय खेत में डालें। 1/3 नाइट्रोजन की मात्रा रोपाई के 21 दिन बाद और बाकी 1/3 नाइट्रोजन रोपाई के 42 दिन बाद खेत में डालें। रोपाई पर डालने वाली 1/3 नाइट्रोजन की मात्रा रोपाई के एक सप्ताह के अंदर भी डाली जा सकती है। अगर खेत में ढैंचे की हरी खाद का प्रयोग किया गया है तो नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश की 2/3 मात्रा का ही प्रयोग करें। लम्बी बासमती धान में 24 किलोग्राम नाइट्रोजन (50 कि.ग्रा. यूरिया), 12 किलोग्राम फास्फोरस (75 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) व 10 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति एकड़ दें। नाइट्रोजन रोपाई के 21 व 42 दिन बाद दो बार डालें। बौनी बासमती धान में 36 किलोग्राम नाइट्रोजन (80 कि.ग्रा. यूरिया), 12 किलोग्राम फास्फोरस (75 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) व 10 किलोग्राम जिंक सल्फेट दें। नाइट्रोजन की 1/3 मात्रा व फास्फोरस की पूरी मात्रा पौध लगाते समय दें। बाकी 1/3 मात्रा 21 दिन बाद व 1/3 मात्रा 42 दिन बाद दें। धान की फसल में सांवक और मोथा बहुतायत में पाए जाते हैं। इनकी रोकथाम के लिए ब्यूटाक्लोर (मचौटी, डेलक्लोर ई.सी. व मिलक्लोर, नर्वदाक्लोर, कैपक्लोर, ट्रैप, तीर हिल्टाक्लोर, ई.सी.) 1.2 लीटर प्रति एकड़ 60 किलोग्राम सूखी रेत में मिलाकर पौध रोपण के 2-3 दिन उपरांत 4-5 सैं.मी. गहरे पानी में एकसार बिखेर दें। इसके अतिरिक्त अन्य खरपतवार-नाशकों का प्रयोग भी समग्र सिफारिशों के अनुरूप करें।

रोपाई के (6 से 10 दिन) बाद जब पौधे ठीक प्रकार से जड़ पकड़ लें तो पानी रोक लें ताकि पौधों की जड़ें विकसित हो जाएं। एक बार में 5-6 सैं.मी. से अधिक गहरा पानी न लगाएं। धान की जड़ की सूण्डी के आक्रमण से पौधे पीले हो जाते हैं व फुटाव भी कम होता है जिससे पौधे छोटे भी रह जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए 10 किलोग्राम कार्बोफ्यूरान 3-जी या 4 किलोग्राम फोरेट (थिमेट) 10-जी प्रति एकड़ डालें। यदि पत्ता लपेट सूण्डी का आक्रमण हो तो 200 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. या 400 मि.ली. क्विनलफास 20 ए.एफ. को 200 लीटर पानी में प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

कपास

यदि कपास की बिजाई किसी कारण देर से की हो तो जुलाई के पहले सप्ताह में फसल को पानी लगाएं तथा फालतू पौधों को निकाल दें जिससे कि एक कतार में पौधे से पौधे का फासला 30 सैं.मी. रह जाए। कोणदार धब्बों से बचाव हेतु जुलाई के पहले सप्ताह में 6-8 ग्राम स्ट्रैप्टोसाइक्लिन व कॉपर आक्सीक्लोराईड (600-800 ग्राम प्रति एकड़) को 150-200 लीटर पानी में मिलाकर 15-20 दिन के अंतर पर लगभग 4 छिड़काव करें। नरमा में नाइट्रोजन 35 कि.ग्रा., फास्फोरस 12 कि.ग्रा., देसी कपास में नाइट्रोजन 20 कि.ग्रा. व संकर कपास में नाइट्रोजन 70 कि.ग्रा., फास्फोरस 24 कि.ग्रा. व पोटाश 24 कि.ग्रा. प्रति एकड़ की सिफारिश है। नाइट्रोजन की खाद आधी बौकी आने (जुलाई-अंत) के समय तथा आधी फूल आने के समय डालें। संकर किस्मों में इन दोनों समय पर नाइट्रोजन 1/3 की दर से डालनी चाहिए। बेहतर होगा कि सारा फास्फोरस व 10 कि. ग्रा. जिंक सल्फेट बिजाई के समय डालें।

2,4-डी कपास के लिए घातक

इसके प्रभाव से कपास की पत्तियों में बारीक कटाव (हथेली जैसा) आ जाता है, फूल गिर जाते हैं और टिण्डे नहीं बनते। इसलिए ध्यान रखें कि जिस स्प्रेयर से 2, 4-डी प्रयोग में लाया गया हो उसे बीमारी व कीड़े मारने वाली दवाओं के छिड़काव के लिए प्रयोग में न लाएं। साथ ही 2, 4-डी का संपर्क कपास की फसल में प्रयोग में लाए जाने वाले कीटनाशकों और फफूंदनाशकों के साथ न होने पाए। कीट या फफूंदनाशकों के छिड़काव के लिए घोल बनाने से पूर्व बोतल या टीन का लेबल ध्यान से देख लें। 2, 4-डी से प्रभावित पौधों की समस्या हो जाने पर प्रभावित कोंपलों को 15 सैं.मी. काट दें और इसके बाद 2.5 प्रतिशत यूरिया तथा 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट के घोल का छिड़काव करें। खरपतवार नियंत्रण के लिए पहली गोड़ाई पहली सिंचाई से पहले कसौला से करें। बाद में हर सिंचाई के बाद

समायोज्य कल्टीवेटर से निराई-गोड़ाई करें। पहली सिंचाई जितनी देर से की जाए अच्छी है। आमतौर पर बिजाई के 40-45 दिन बाद सिंचाई करें।

कपास में बिजाई के 40-45 दिनों के बाद सूखी गुड़ाई के बाद ट्रैफलान 0.8 लीटर/एकड़ या स्टोम्प 30 ई.सी. की 1.25 लीटर मात्रा प्रति एकड़ को 200-250 लीटर पानी में घोल से उपचार के बाद सिंचाई करने से भी वार्षिक खरपतवारों का उचित नियन्त्रण हो जाता है।

हरा तेला की रोकथाम के लिए एक से दो छिड़काव 40 मि.ली. कोन्फीडोर या 40 ग्रा. एकतारा या 250-350 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 120 से 150 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिन के अंतर पर छिड़कें। पहला छिड़काव तब करें जब 20 प्रतिशत पूरे विकसित पत्ते किनारों से पीले होकर मुड़ने लगें। सफेद मक्खी का भी यही इलाज है।

यदि बालों वाली सूण्डी, पत्ता लपेट सूण्डी, कुब्बड़ कीड़े या चित्तीदार सूण्डी का भी आक्रमण जुलाई अंत से मध्य अगस्त तक हो तो 600 मि.ली. क्विनलफॉस (एकालक्स) 25 ई.सी. या 75 मि.ली. स्पाईनोसैड (ट्रैसर) 75 एस सी या 1 लीटर नीम (अचूक निम्बीसीडीन) का प्रयोग करें। मीली-बग से बचाव के लिए खेतों के आसपास उगे खरपतवारों, विशेषकर कांग्रेस घास, कंघी बूटी, जंगली भ्रुट आदि को काट कर जला दें।

मूँगफली

मूँगफली की बिजाई इस माह के मध्य तक पूरी कर लें। पंजाब मूंगफली नं. 1, एम एच-4 की बिजाई क्रमश: 30×22.5 व 30-15 सैं.मी. पर करें। बीज 'केरा' विधि से खूड़ों में 5 सैं.मी. की गहराई पर डालें। पंजाब मूंगफली नं. 1 के लिए 34 किलोग्राम व एम एच-4 के लिए 32 किलोग्राम गिरी एक एकड़ के लिए काफी होगी। बोने से पूर्व स्वस्थ गिरियों का कैप्टान या थाइरम 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से उपचार करें। सफेद लट व दीमक से फसल को बचाने के लिए 15 मि.ली. क्लोरपाइरीफास 20 ई.सी. या क्विनलफास 25 ई.सी. प्रति किलोग्राम बीज का बुवाई से 4-5 घंटे पहले उपचार करें। मूंगफली में 6 किलोग्राम नाइट्रोजन (13 कि.ग्रा. यूरिया), 20 किलोग्राम फास्फोरस (125 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट), 10 किलोग्राम पोटाश (16 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश)व 10 किलोग्राम जिंक सल्फेट/एकड़ बिजाई के समय ड्रिल करें। मूंगफली में जिप्सम का प्रयोग लाभदायक पाया गया है।

बिजाई के 21 व 42 दिन पर निराई-गुड़ाई द्वारा खरपतवार नियंत्रण करें। पहली सिंचाई 30-35 दिन बाद तथा एक सिंचाई फूल आने पर करें।

मूँग, उड़द व लोबिया

मूँग मुस्कान, सत्या, बसंती, एम एच 421, एम एच 318, उड़द यू एच-1 तथा लोबिया एफ एस-68, एच सी 46 किस्में बोएं। मूँग व उड़द के लिए 6 से 8 किलोग्राम तथा लोबिया के लिए 12 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ डालें और बीज गलन व पौध अंगमारी से बचाव हेतु बीज में 4 ग्राम थाइरम प्रति किलोग्राम बीज मिलाएं। बिजाई जुलाई के पहले पखवाड़े तक 30 व 45 सैं.मी. (क्रमश: सिंचित व असिंचित क्षेत्र के लिए)की दूरी पर कतारों में करें। दो बार निराई-गोड़ाई करें। इन सभी दलहनी फसलों में बिजाई के समय 6-8 किलोग्राम नाइट्रोजन (13-17.5 कि.ग्रा. यूरिया) प्रारंभिक मात्रा के रूप में तथा 16 किलोग्राम फास्फोरस (100 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) प्रति एकड़ खेत में पोर दें। सभी फसलों को राईजोबियम के टीके से उपचारित करके बोएं।

सोयाबीन

सोयाबीन की पी के-416, पी के-564 व पी के-472 किस्में हरियाणा के लिए उत्तम हैं। इसकी बिजाई जून के आखिरी या जुलाई के प्रथम सप्ताह में करें। राईजोबियम के टीके से उपचारित 30 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ डालें। कतार का फासला 45 सैं.मी. रखकर ढाई सैं.मी. गहरी बिजाई करें। अधिक उपज पाने के लिए 10 किलोग्राम नाइट्रोजन (22 कि.ग्रा. यूरिया) तथा 32 किलोग्राम फास्फोरस (200 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें। 15 व 35 दिन बाद इसकी निराई-गोड़ाई करें।

अरहर

अरहर की कम समय में पकने वाली यू पी एस-120 या मानक या पारस की बिजाई शीघ्र ही जुलाई के प्रथम सप्ताह में पूरी कर लें। एक एकड़ के लिए लगभग 5-6 किलोग्राम बीज डालें। इन सभी किस्मों की बिजाई कतारों में 40 सैं.मी. की दूरी रखकर करें। बीज को राईजोबियम के टीके से उपचारित करके ही बोएं तथा 8 किलोग्राम नाइट्रोजन (17.5 कि.ग्रा. यूरिया) व 16 कि.ग्रा. फास्फोरस (100 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें।

गन्ना

चोटी (अगोला) बेधक कीट के लिए जून में कीटनाशक न डाली हो तो अब तुरंत 13 किलोग्राम फ्यूराडान 3-जी या 8 किलोग्राम फोरेट 10-जी को खाद के साथ मिलाकर प्रति एकड़ डालें व इसके तुरंत बाद हल्की सिंचाई करें। यदि नाइट्रोजन खाद की शेष आधी मात्रा लगानी रहती है तो उसे पूरा कर लें। बसन्तकालीन फसल में 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (130 कि.ग्रा. यूरिया), 20 कि.ग्रा. फास्फोरस (125 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) व 20 कि.ग्रा. पोटाश (35 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) बिजाई के समय, 1/3नाइट्रोजन दूसरी तथा 1/3 नाइट्रोजन चौथी सिंचाई के साथ डालें।

तिल

हरियाणा तिल नं. 1 व हरियाणा तिल नंबर 2 को जुलाई के पहले पखवाड़े में 4-5 सैं.मी. गहराई व 30 सैं.मी. का फासला रखकर खूडों में बोएं व पौधे से पौधे का फासला 15 सैं.मी. रखें। दो किलोग्राम प्रति एकड़ बीज प्रयोग करें। बिजाई से पूर्व प्रति किलोग्राम बीज में 3 ग्राम कैप्टान या थाइरम मिलाकर बिजाई करें। कम उपजाऊ व हल्की ज़मीन में 15 किलोग्राम नाइट्रोजन (35 कि.ग्रा. यूरिया) व 10 टन गोबर की सड़ी खाद प्रति एकड़ बिजाई से पहले ड्रिल करें।



सब्जियों में

बैंगन

बैंगन की पिछली फसल के कच्चे फलों को तोड़कर बाज़ार बेचने के लिए भेज दें। फलों को तोडने के लिए किसी चाकू या तेज़ धार वाले औज़ार का प्रयोग करें जिससे कि तोड़ते समय पौधों को क्षति न हो। आवश्यकता होने पर सिंचाई करें। फल व तना छेदक कीड़े के लगने पर ग्रसित फलों को तोड़कर नष्ट कर दें व इसके बाद 75 ग्राम स्पाइनोसेड (ट्रेसर 45 एस.सी.) को प्रति एकड़ 80 लीटर पानी में घोलकर 15 दिन के अंतर पर तीन छिड़काव करें। दवा प्रयोग करने के बाद फलों को 8-10 दिन तक खाने के काम में न लाएं।

वर्षा ऋतु की फसल के लिए खेत की तैयारी करें। इसकी उन्नत किस्मों, बी आर-112, हिसार श्यामल व हिसार प्रगति को प्रयोग में लाएं। नर्सरी में पौध इस महीने तक तैयार हो जाएगी। खेत को तैयार कर क्यारियों में बांट लें। एक एकड़ खेत में लगभग 10 टन गोबर की खाद बिखेर दें और जुताई कर दें। पौधरोपण से पहले 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (87 कि.ग्रा. यूरिया), 20 कि.ग्रा. फास्फोरस (125 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) तथा 10 कि.ग्रा. पोटाश (17 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) प्रति एकड़ दें। कतारों का फासला लंबी किस्मों में 60 सैं.मी. तथा गोल किस्मों में 75 सैं. मी. रखें। पौधे से पौधे की दूरी 60 सैं.मी. रखें। पौधरोपण के बाद सिंचाई अवश्य करें। विषाणु रोग से बचाव के लिए शुरू से ही कीटनाशक दवाएं प्रयोग में लें।

हरा तेला, सफेद मक्खी, गोभ व फल छेदक कीड़े आदि बैंगन की फसल में नुकसान पहुंचाते हैं। रस चूसने वाले कीटों के नियंत्रण के लिए 300-400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें। फल लगने शुरू होते ही बारी-बारी से सिन्थेटिक पाईरेथ्राएड (80 मि.ली. फैनवेलरेट) 20 ई.सी. या 200 मि.ली. डेल्टामैथ्रीन 2.8 ई.सी. को 200 लीटर पानी में प्रति एकड़ छिड़कें ताकि फल छेदक का नियंत्रण भी हो जाए। सिन्थेटिक पाइरेथ्राइड का छिड़काव 21 दिन तथा दूसरे कीटनाशकों का 15 दिन के अंतर पर दोहराएं।

फूलगोभी अगेती

इसके लिए एक एकड़ खेत में लगभग 20 टन गोबर की सड़ी खाद मिलाएं तथा पौधरोपण से पहले 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (110 कि.ग्रा. यूरिया), 20 कि.ग्रा. फास्फोरस (125 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) तथा 20 कि.ग्रा. पोटाश (35 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) की दर से मिलाकर खेत को समय पर तैयार करें। अगेती फूलगोभी (पूसा कातकी) की पौध इस माह तैयार हो जाएगी। अच्छा होगा कि हल्की डोलियां बना लें जिससे कि अधिक वर्षा में पौधे खराब न हों। पौधरोपण कतारों में 45 सैं. मी. की दूरी पर करें और पौधे की दूरी 30 सैं.मी. रखें। पौधरोपण शाम के समय करें तो उचित रहेगा। वर्षा न होने पर सिंचाई करें।

मिर्च

मिर्च की गर्मी की फसल की तुड़ाई करके बाज़ार भेजें। आवश्यकता होने पर सिंचाई करें। हरा तेला, सफेद मक्खी, माईट तथा रस चूसने वाले कीड़ों की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ शुरू से ही 15 दिन के अंतर पर छिड़कें। इस दवा से विषाणु रोग की रोकथाम हो सकती है क्योंकि सफेद मक्खी रोग फैलाती है। रोगग्रस्त पौधों को निकाल कर नष्ट कर दें।

मिर्च की पौध इस माह तैयार हो जाएगी। अत: रोपाई का प्रबंध करें। मिर्च के खेत की तैयारी के लिए 10 टन गोबर की खाद प्रति एकड़ की दर से बिखेर दें। खेत को उचित नाप की क्यारियों में बांट लें। पौधरोपण से पहले 25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (55 कि.ग्रा. यूरिया), 12 कि.ग्रा. फास्फोरस (75 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) और 12 कि.ग्रा. पोटाश (20 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) प्रति एकड़ की दर से खेत में मिला दें। तैयार खेत में शाम के समय पौधरोपण करें। पौधरोपण के बाद सिंचाई अवश्य करें।

भिण्डी

भिण्डी की गर्मी की फसल को हरा तेला से बचाने के लिए एकटारा 25 डब्ल्यू जी (थायामिथोक्सम) नामक दानेदार कीटनाशक 40 ग्राम दवा को 150-200 लीटर पानी में घोलकर एक एकड़ में छिड़काव करें। 20 दिन के अंतराल पर यदि आवश्यकता हो तो दोहराएं। भिण्डी में फल लगने पर जो खाने के लिए उगाई गई हो उसमें 300-500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. 200-300 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

वर्षाकालीन फसल के लिए यदि बिजाई जून माह में न की हो तो अब करें। एक एकड़ खेत में 10 टन गोबर की खाद डालकर जुताई करें और बिजाई से पहले 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (87 कि.ग्रा. यूरिया) तथा 24 कि. ग्रा. फास्फोरस (150 कि.ग्रा. सुपरफास्फेट) प्रति एकड़ की दर से दें। पोटाश खाद आवश्यकता पड़ने पर डालें। खेत को क्यारियों में बांट लें। वर्षा उपहार या हिसार उन्नत किस्मों को प्रयोग में लाएं। एक एकड़ खेत की बिजाई के लिए 5-6 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होगी। बिजाई करने से पहले बीजोपचार बाविस्टिन (2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) नामक दवा से कर लें। बिजाई कतारों में लगभग 45-60 सैं.मी. की दूरी पर करें तथा पौधों की दूरी 30 सैं.मी. रखें। आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा प्रारंभ से ही खरपतवारों पर नियंत्रण रखें।

कद्दू जाति की सब्जियां

तरबूज़ व खरबूजे की फसल की तुड़ाई कर ली होगी। अत: खेत को दूसरी फसलों के लिए तैयार करें। इस जाति की और सब्जियों, जैसे लौकी, करेला, टिण्डा, तोरी, ककड़ी आदि के कच्चे फलों को तोड़कर नियमित रूप से बाजार भेजें। आवश्यकता होने पर सिंचाई करें।

गर्मी की पुरानी फसल को फल छेदक मक्खी से बचाने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. और 1.25 कि.ग्रा. गुड़ को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। लालड़ी का आक्रमण हो तो 25 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 30 मि.ली. फेनवेलरेट 20 ई.सी. को

100 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ की बेलों पर छिड़कें। सफेद चूर्णी रोग लगने पर 800 ग्राम घुलनशील गंधक अथवा 200 मि.ली. कैराथेन का प्रति एकड़ की दर से खेत पर छिड़काव करें। गर्मी की फसल समाप्त होने पर जुताई करें और अन्य फसलें लगाने की तैयारी करें।

वर्षाकालीन कद्दू जाति की सब्जियां लगाने के लिए खेत की तैयारी करें। खेत तैयार करते समय 6 टन गोबर की खाद, 8 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (15 कि.ग्रा. यूरिया), 10 कि.ग्रा. फास्फोरस (60 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) तथा 10 कि.ग्रा. पोटाश (16 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) प्रति एकड़ की दर से दें।

बिजाई नालियों के दोनों ओर करें। किस्म के चुनाव, बीज की मात्रा तथा बीजने की दूरी निम्नलिखित तालिका में दी गई है।

फसल का नाम	किस्म	बीजने की दूरी (सैं.मी.)	
		कतारों में	पौधों में
घीया	पूसा/समर प्रौलिफिक लोंग, पूसा समर प्रौलिफिक राउण्ड एवं जी एच 22	200	60
करेला	कोयम्बटूर लांग व पूसा दो-मौसमी	150	45
तोरी (चिकनी)	पूसा चिकनी व गुच्छेदार	200	60
	पूसा नसदार (धारीदार)	200	60
खीरा	जैपनीज लांग ग्रीन या स्थानीय	100-150	60
टिण्डा	हिसार सलैक्शन, बीकानेर ग्रीन व हिसार टिण्डा	150	60

खीरा के लिए लगभग एक कि.ग्रा. बीज तथा अन्य फसलों के लिए लगभग (1½-2) कि.ग्रा. बीज की प्रति एकड़ बिजाई के लिए ज़रूरत होगी। फसलों की सिंचाई आवश्यकतानुसार करें तथा खरपतवारों को निकालते रहें।

अरबी

अरबी की फसल में आवश्यकता पड़ने पर सिंचाई करें, खरपतवार निकालें तथा मिट्टी चढ़ाएं। खड़ी फसल में नाइट्रोजन वाली खाद (यूरिया) बिजाई के लगभग 7-8 सप्ताह बाद डालकर मिट्टी चढ़ा दें। बरसात की फसल की बिजाई का समय जून-जुलाई माह है। एक एकड़ खेत में बिजाई करने के लिए लगभग 300-400 कि.ग्रा. कन्दों की आवश्यकता होती है। कन्दों की बिजाई करने की दूरी 45-60 सैं.मी. कतारों में तथा 30 सैं.मी. पौधों में रखते हैं।

पालक

पालक की पहले लगाई गई फसल की आवश्यकता होने पर सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। जब पालक काटने लायक हो जाए तो उसके पत्तों को काटकर बंडलों में बांधें तथा बाजार भेजें। नई फसल के लिए खेत की तैयारी करें तथा बिजाई करें। इसकी उन्नत किस्में, जौबनेर-ग्रीन, आलग्रीन या एच एस 23 का प्रयोग करें। इसके लिए 8 कि.ग्रा. बीज एक एकड़ में बिजाई करने के लिए काफी होगा तथा खेत तैयार करते समय लगभग 20 टन गोबर की सड़ी खाद, 32 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (70 कि.ग्रा. यूरिया) तथा 16 कि.ग्रा. फास्फोरस (100 कि.ग्रा.सिंगल सुपर फास्फेट) प्रति एकड़ खेत में मिलाएं तथा उचित नाप की क्यारियों में खेत बांट लें। बिजाई कतारों में 15-20 सैं.मी. की दूरी पर करें।

शकरकन्दी

शकरकन्दी की उन्नत किस्में पूसा सफेद व पूसा लाल हैं। शकरकन्दी की फसल की काट को अप्रैल से जुलाई तक खेत में लगाते हैं। एक एकड़ खेत में लगभग 24000 से 28000 बेलों की काटों की आवश्यकता होती है। प्रत्येक काट लगभग 30-40 सैं.मी. लंबी होनी चाहिए। लगाने की दूरी कतारों में 60 सैं.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 सैं.मी. रखें। खेत तैयार करते समय 10 टन गोबर की खाद, 32 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (70 कि.ग्रा. यूरिया), 36 कि.ग्रा. फास्फोरस (225 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) तथा 32 कि.ग्रा. पोटाश (55 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) प्रति एकड़ की दर से काटें लगाने से पहले दें तथा क्यारियां बना लें। खड़ी फसल में 32 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (70 कि.ग्रा. यूरिया) की आधी-आधी मात्रा दो बार देने की आवश्यकता होती है। यदि फसल पहले लगाई जा चुकी है तब आवश्यकता होने पर सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। लवणीय या क्षारीय भूमि में शकरकन्दी की खेती नहीं की जा सकती।

खरीफ प्याज

नर्सरी की देखभाल करें, खरपतवार निकालें, सिंचाई करें तथा अधिक वर्षा से बचाव करें। आर्द्रगलन की समस्या होने पर 0.2 प्रतिशत कैप्टान के घोल से नर्सरी की सिंचाई करें। खेत की तैयारी भी शुरू करें।

मूली

यदि आपने मूली की अगेती किस्म, पूसा चेतकी की बिजाई पहले कर रखी है तो आवश्यकता होने पर सिंचाई करें। यदि नहीं तो इसकी बिजाई इस माह भी कर सकते हैं। खरपतवार निकालें व जड़ों पर मिट्टी चढ़ाएं। तैयार जड़ें उखाड़कर तथा धोकर बाज़ार भेजें। चेपा का प्रकोप होने पर 250-400 मि.ली. डाईमेथोएट 30 ई.सी. को 250-400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। पूसा चेतकी की फसल लगभग 40 दिनों में तैयार हो जाती है। इसकी बिजाई के लिए लगभग 4-5 कि.ग्रा. बीज की एक एकड़ खेत के लिए आवश्यकता होगी। नई फसल लगाने के लिए खेत तैयार करते समय लगभग 20 टन गोबर की खाद, 24 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (52 कि.ग्रा. यूरिया) तथा 12 कि.ग्रा. फास्फोरस (75 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) प्रति एकड़ डालें। बिजाई कतारों में 30-45 सैं.मी. की दूरी पर करें तथा पौधे से पौधे की दूरी 5-8 सैं.मी. रखें। उचित होगा कि बिजाई हल्की-हल्की डोलियों पर करें। आवश्यकता होने पर सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें।

अन्य सब्जियां

अन्य सब्जियों, जैसे ग्वार, लोबिया आदि फसलों की आवश्यकता होने पर सिंचाई करें तथा नर्म फलियों को तोड़कर बाज़ार भेजें। ग्वार की उन्नत किस्म पूसा नवबहार प्रयोग करें तथा बिजाई की दूरी 30-45 सैं.मी.

कतारों में तथा 15-20 सैं.मी. पौधों में रखें। एक एकड़ के लिए 6 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होगी। लोबिया की उन्नत किस्में पूसा बरसाती या पूसा दो-फसली प्रयोग करें तथा बिजाई की दूरी 30-45 सैं.मी. कतारों में तथा 15-20 सैं.मी. पौधों के बीच रखें। एक एकड़ के लिए लगभग 8-10 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होगी। हानिकारक कीड़ों से रक्षा के लिए कीटनाशक दवाओं का प्रयोग करें। दवा प्रयोग के बाद एक सप्ताह तक फसल को खाने के काम में न लें।

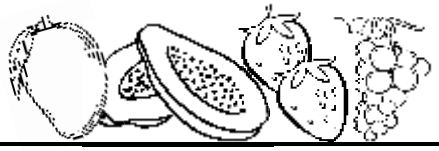

फलों में

अंगूर

फल तोड़ने के बाद जो बढ़वार आती है उसको ½-¾ मीटर रखने के बाद सिरे से तोड़ते रहें। नई बेलों में 25-50 ग्राम यूरिया प्रति बेल डाल दें और अगर वर्षा न हो तो खाद डालने के बाद सिंचाई अवश्य करें। खरपतवार नियंत्रण के पश्चात नमी को बनाए रखने के लिए काली पॉलीथीन शीट बिछाएं।

थ्रिप्स व हरा तेला के रस चूसने से पौधा पीला व भूरा-लाल हो जाता है। इनकी रोकथाम के लिए आधा लीटर मैलाथियान 50 ई.सी. या 150 मि.ली. फैनवालरेट 20 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। अंगूर में एन्थ्रेक्नोज बीमारी की रोकथाम के लिए बाविस्टिन 0.2 प्रतिशत का छिड़काव जुलाई के अंतिम सप्ताह में करें।

संगतरा, माल्टा इत्यादि

हर सप्ताह सिंचाई का प्रबंध करें।

इन पौधों को तेला (सिल्ला), पौधों में सुरंग बनाने वाले कीट, सफेद मक्खी और पत्ते खाने वाली सूण्डी से बचाने के लिए 625 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. या 500 मि.ली. मोनोक्रोटोफोस 36 डब्ल्यू एस सी को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

बरसात की पहली बौछार के तुरंत बाद 0.3 प्रतिशत कॉपर-ऑक्सीक्लोराइड का छिड़काव करें।

फलों को गिरने से रोकने के लिए पेड़ों पर 6 ग्राम 2, 4-डी, 3 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट, 12 ग्राम ओरियोफिन्जिन और 1.5 कि.ग्रा. चूने को 550 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ जून-जुलाई में पहला छिड़काव व दूसरा छिड़काव सितम्बर के दूसरे सप्ताह में करें। अगर बाग के पास कपास खड़ी है तो 2,4-डी का छिड़काव न करें। इस परिस्थिति में 20 मि.ग्रा. एन. ए. ए. को प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। अगर पौधों में जस्ते की कमी हो तो 500 मि.ग्रा. प्लान्टोमाइसिन और 2 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का प्रति लीटर पानी की दर से जुलाई, अक्तूबर, दिसम्बर व फरवरी में छिड़काव करें।

बेर

प्रति पौधा 50 किलोग्राम गोबर की खाद अगर काट-छांट के बाद न डाली हो तो इस माह में ज़रूर डालें और 625 ग्राम यूरिया व 2.5 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट भी प्रति पेड़ डालकर गुड़ाई करें और फिर सिंचाई करें। इस महीने देसी पौधों पर चस्पा/पैच विधि द्वारा पौधे तैयार कर सकते हैं।

अमरूद

750 ग्राम यूरिया, 625 ग्राम सुपर फास्फेट, 250 ग्राम सल्फेट ऑफ पोटाश एवं बाकी आधी बची खाद इसी माह में डालकर अच्छी तरह मिलाकर सिंचाई करें। जो कीड़े अंगूर में लगते हैं वही अमरूद में लगते हैं। इसलिए अंगूर वाले कार्यक्रम को अपनाएं।

आम

फल तोड़कर मंडी भेजना शुरू कर दें। फल तोड़ते समय यह ध्यान रखें कि 'नाकू' फल के साथ अवश्य रखें।

अन्य फल

आड़ू, अलूचा और नाशपाती में सप्ताह के अंतराल पर, हल्की सिंचाई अवश्य करें। बाग के इर्द-गिर्द पौधों को गर्म एवं शुष्क हवाओं से बचाने के लिए शीशम, जामुन, पोपलर व सफेदा व करोंदा आदि के पेड़ लगाएं।

जब बगीचों में फल लग रहे हों तब उनकी कतारों के बीच फसल नहीं बोनी चाहिए लेकिन जिन बगीचों में पेड़ अभी छोटे हों और फल न लगे हों वहां पंक्तियों के बीच उड़द, लोबिया, मूंग, ग्वार आदि फसलें बोई जा सकती हैं। इन फसलों को ज़रूरत के अनुसार खाद की अतिरिक्त मात्रा भी देनी चाहिए। यदि ज़मीन कमज़ोर है तो हरी खाद के लिए ग्वार या ढैंचा अवश्य बीजें। ढैंचा को बिजाई के 45 दिन बाद जुताई करके मिट्टी में अच्छी तरह मिला दें।

नोट : किसान बागों में रोटावेटर को न चलाएं। रोटावेटर की जुताई से पौधों की जड़ों को नुकसान पहुंचता है और जड़ें कट जाती हैं और पौधे को पूरी खुराक नहीं मिलती व धीरे-धीरे पौधे सूखने लगते हैं।



पशुओं में

गाय-भैंस

बरसात के मौसम में बारिश के कारण व उच्च तापमान के कारण वातावरण में आर्द्रता बढ़ जाती है। आर्द्रता के कारण पशु अपने आप को तनाव में महसूस करते हैं।

वर्षा शुरू होने पर गाय-भैंसों में छूत के रोग हो जाते हैं, विशेषकर गलघोंटू और फड़ सूजन की बीमारियां पशुओं को अधिकतर लग जाती हैं। यदि आपने अपने पशुओं को गलघोंटू या फड़ सूजन की बीमारी से बचाव के टीके अभी तक न लगवाए हों तो शीघ्र ही लगवा लें। ये टीके पशु चिकित्सालय में नि:शुल्क लगाए जाते हैं। यदि आपका पशु बीमार है तो उसे दूसरे पशुओं से अलग कर लें और उसका इलाज कराएं। जिन पशुओं की छूत की बीमारी से मृत्यु हो जाए, उन्हें गांव से बाहर गड्ढे में चूना आदि डालकर दबाएं। उनके मल-मूत्र को भी गांव के बाहर गड्ढे में डालकर दबा दें या जला दें तथा गड्ढे के आसपास तथा ऊपर चूना डाल दें।

सायं को जब पशु घर पर आते हैं तो ध्यान से देखें कि वे चारा ठीक

प्रकार से खा रहे हैं या नहीं। यदि पशु चारा, दाना न खाए तो यह इस बात का लक्षण है कि वह बीमार है। उस समय आप निकटतम पशु-चिकित्सक से मिलें और पशु का इलाज तुरंत कराएं।

बरसात के मौसम में बाड़े में पानी नहीं भरना चाहिए तथा बाड़े की नालियां साफ सूथरी रहनी चाहिएं। बाड़े की सतह सूखी व फिसलन वाली नहीं होनी चाहिए। लगातार गीले होने के कारण पशुओं के खुरों में संक्रमण होने की संभावना अधिक रहती है, इसलिए सप्ताह में एक या दो बार हल्के लाल दवाई के घोल से खुरों को साफ करना चाहिए।

इस महीने के आखिर में भैंसों का ब्यांत शुरू हो जाता है। इसलिए किसान भाई इनकी तरफ विशेष ध्यान दें।

पशुओं से पूरी मात्रा में दूध लेने के लिए यह अनिवार्य है कि इनकी खुराक में हरे चारे का प्रयोग किया जाए। दाने में मिलाकर पशुओं को 50 ग्राम खनिज मिश्रण जोकि आई.एस.आई. मार्का हो तथा नमक देना चाहिए। यह खनिज मिश्रण पशु पोषण विभाग, लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय से भी प्राप्त किया जा सकता है।

ब्याने वाली गाय-भैंस की खुराक का विशेष ध्यान रखें। खुराक ऐसी हो जो कब्ज़ न करे। जो गायें, भैंसें ब्या गई हों उन्हें उनकी दूध की मात्रा के अनुसार दाना दें। दूध देने वाली गायों और भैंसों को प्रति 2.5 कि.ग्रा. व 2 किलोग्राम दूध के लिए एक किलोग्राम दाने का मिश्रण दें। दाने की मात्रा चारे की पौष्टिकता व उपलब्धि के हिसाब से कम व ज्यादा कर सकते हैं।

नवजात बछड़े-बछडियों तथा कट्टे-कट्टियों को साफ स्थान पर रखें। गंदगी के कारण उनका सूण्ड सूज जाता है और साथ ही बुखार आता है। टांगों के जोड़ सूज जाते हैं। दस्तों की भी शिकायत हो जाती है। इस बीमारी को सूंड सूजने की बीमारी भी कहते हैं। इससे बचाने के लिए इनके लटकते हुए सूण्डों को पैदा होते ही ऊपर से डेढ इंच छोड़ कर काट देना चाहिए और कटे हुए स्थान पर टिंचर आयोडीन लगाकर साफ पट्टी बाधें। नवजात बच्चे को आधा घंटे के अंदर ही खीस पिलाएं ताकि उसकी बीमारियों से बचाव की क्षमता बढ़ जाए तथा बीमारियों से बचाव हो सके।

नवजात पशु को फर्श की फिसलन तथा वातावरण के तनाव से बचाना चाहिए।

पशुओं को बरसात में गंदा पानी पीने से रोकना चाहिए अन्यथा पेट में कीड़े हो जाते हैं और इसके कारण उनकी दूध देने की क्षमता भी घट जाती है तथा पशुओं में अन्य बीमारियां भी हो सकती हैं। पेट के कीड़ों की रोकथाम के लिए पशु चिकित्सक की सलाह से पेट के कीड़े मारने की दवा समय पर दें।

भेड़

भेड़ों में आंतों के सूजने से दस्त लग जाते हैं। इसे एनटेरोटाक्सीमिया कहते हैं। इस रोग से बचाने के लिए अपनी भेड़ों को इस बीमारी से बचाव का टीका लगवाएं। बरसात में अधिकतर भेड़ों के पेट में कीड़े हो जाते हैं। इन कीड़ों के कारण इनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और कई प्रकार के रोग लग जाते हैं। भेड़ों को स्वस्थ रखने के लिए अपने पशु-चिकित्सक की सलाह से उन्हें नियमित रूप से कृमिनाशक दवा पिलाते रहना चाहिए। भेड़ को पीने के लिए साफ एवं स्वच्छ जल उपलब्ध करायें तथा संपूर्ण आहार दें।

कुक्कुट

जिन चूजों की आयु 6 से 8 सप्ताह तक की हो गई हो, उन्हें रानीखेत से बचाव का टीका (आर.बी. 2) लगवा लें। इन चूजों को फाऊल पॉक्स की बीमारी से बचाने के लिए भी टीका लगवा लें।

चूजों में खूनी दस्त रोकने के लिए उनकी खुराक में कॉक्सीडोयोस्टेट मिलाकर दें। ऐसे कॉक्सीडोयोस्टेट जो आसानी से मिल सकते हैं, वे हैं-बाईप्रान, एमप्रोल आदि। बाईप्रान तथा एमप्रोल को एक क्विंटल खुराक में 25 ग्राम तक मिलाया जाता है। ऐसी खुराक खिलाने से खूनी दस्त की बीमारी से बचाव हो सकता है।

चूजों का आवास हवादार होना चाहिए। इसमें बरसात के पानी का आवागमन नहीं होना चाहिए। वातावरण के तनाव से बचाव हेतु पंखों का इस्तेमाल किया जा सकता है।



घर-आंगन में

गृह विज्ञान

5 जून का दिन प्रत्येक वर्ष विश्व वातावरण दिवस के रूप में मनाया जाता है। अत: इस दिन ग्रामवासियों को वातावरण की स्वच्छता के बारे में जागरूक करना अति आवश्यक है। स्वच्छता लोगों की मूलभूत आवश्यकता है क्योंकि इसका संबंध खाद्य स्वच्छता, व्यक्तिगत स्वच्छता, घरेलू तथा पर्यावरण की स्वच्छता से है। स्वच्छता की आदतों से जल और मृदा के प्रदूषण पर रोक लगती है। जिससे बीमारियां नहीं फैल पातीं। घरों में शौचालय अवश्य बनाए जाएं। यदि किसी कारणवश शौचालय प्रत्येक घर में नहीं है तो सार्वजनिक शौचालय गांव के उपयुक्त स्थान पर बनवाए जाएं तथा इनके रख-रखाव की समुचित व्यवस्था की जाए ताकि स्वच्छ भारत मिशन के तहत खुले में शौच मुक्त भारत का सपना साकार हो सके।

स्वच्छता से तात्पर्य है कि तरल तथा ठोस अपशिष्ट का ठीक ढंग से निपटारा, खाद्य स्वच्छता, व्यक्तिगत, घरेलू तथा वातावरण की स्वच्छता भी शामिल हैं। ठीक स्वच्छता न केवल सामान्य स्वास्थ्य की दृष्टि से ज़रूरी है बल्कि इसका व्यक्तिगत तथा सामाजिक ज़िन्दगी में भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। पानी की स्वच्छता के लिए जनता वाटर फिल्टर का इस्तेमाल करें जिसको घर पर बनाना बहुत ही सरल एवं सस्ता है। वातावरण की स्वच्छता के लिए पानी सोखने वाले गड्ढे, शौच के सही निपटारे के लिए गड्ढे वाले शौचालय का इस्तेमाल करें। हवा की शुद्धता एवं भूमि के संरक्षण के लिए वृक्षारोपण करें।

स्वास्थ्य शिक्षा के लिए ग्रामीण जनता को स्वास्थ सम्बन्धी सभी विषयों की जानकारी दी जानी चाहिए। इसके लिए व्यक्तिगत एवं सामुहिक सम्पर्क वार्ताएं, रेडियो, टेलिविज़न, स्वास्थ्य प्रदर्शनी आदि के माध्यम से गांवों में स्वच्छ वातावरण पैदा किया जाना चाहिए ताकि ग्रामीणों का स्वास्थ्य सुधर सके और वह रोगमुक्त होकर खुली हवा में सांस ले सकें।

कृषि शिक्षा में चौ.चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय का योगदान

- **अशोक कुमार, राजेश कुमार[1] एवं सूबे सिंह**
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कृषि और उससे सम्बन्धित क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था के सतत विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह न केवल 130 करोड़ भारतीयों की खाद्य एवं पोषण सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करता है अपितु रोजगार एवं अन्य व्यायवसायों में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। इसके अतिरिक्त गरीबी को कम करने और अर्थव्यवस्था के सतत विकास को सुनिश्चित करने में भी कृषि क्षेत्र की भूमिका रहती है। कृषि हमारी भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है और हरियाणा मुख्य रूप से एक कृषि प्रधान राज्य है। हरियाणा देश में कृषि उत्पादन के लिए अग्रणी राज्यों में से एक है। हरियाणा की मुख्य फसलें गेहूँ, चावल, गन्ना, कपास, तिलहन, ग्राम जौ, मक्का, बाजरा आदि हैं। हरियाणा प्रदेश के लगभग 65 प्रतिशत लोगों की जीविका कृषि पर निर्भर करती है। हरियाणा खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर है और भारत के खाद्यान्न के केंद्रीय पूल में दूसरा सबसे बड़ा योगदानकर्ता है। इस विश्वविद्यालय के कृषि स्नातक भारतवर्ष में नहीं अपितु विदेशों में भी प्रदेश का नाम रोशन कर रहे हैं। कृषि शिक्षा प्राप्त स्नातक हरियाणा राज्य में कृषि अधिकारी के अतिरिक्त अन्य सरकारी नौकरियों जैसे बैंक एवं गैर-सरकारी संस्थाओं में रोज़गार प्राप्त कर अपना भविष्य उज्ज्वल करने के साथ अपने परिवार का नाम भी रोशन कर रहे हैं।

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय (जोकि एच ए यू के नाम से भी जाना जाता है) एशिया के सबसे अच्छे कृषि विश्वविद्यालयों में से एक है जो उत्तर भारतीय राज्य हरियाणा के हिसार शहर में स्थित है। वर्ष 1970 में स्थापित यह विश्वविद्यालय राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उत्कृष्टता दर्शा चुका है। विश्वविद्यालय का लक्ष्य हरियाणा राज्य में कृषि और संबद्ध विज्ञान के क्षेत्र में एक प्रमुख शैक्षिक और अनुसंधान संगठन के रूप में कार्य करके कृषि में उत्पादकता को बढ़ावा देने के साथ-साथ शिक्षण, अनुसंधान और विस्तार प्रशिक्षण के एकीकरण को बढ़ावा देना है। भारत की हरित एवं श्वेत क्रांति में भी अग्रणी भूमिका निभा चुका है। पिछले कई वर्षों से कृषि के क्षेत्र में विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कृषि पाठ्यक्रमों में नए सिरे से तैयार किया गया है जोकि विश्वविद्यालय के अनुसंधान केन्द्रों में हो रहे प्रयोगों को किसानों के खेत तक पहुंचाने में बहुत मददगार सिद्ध हुआ है। विश्वविद्यालय के पास विभिन्न फसलों के उत्पादन और संरक्षण, नई किस्मों के विकास, कृषि प्रबंधन, जैविक/सूक्ष्म खेती, फूलों की खेती, मशरूम उत्पादन, टिशू कल्चर, पौध नर्सरी, मधुमक्खीपालन से संबंधित क्षेत्रों में विभिन्न तकनीकों में विशेषज्ञता है।

विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकगणों की गणना विश्व के विख्यात कृषि वैज्ञानिकों में होती है। संकाय के ईमानदार और ठोस प्रयोसों ने विश्वविद्यालय को कई राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किए हैं। विश्वविद्यालय को 1996 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर), नई दिल्ली से सर्वश्रेष्ठ संस्थान पुरस्कार के रूप में मान्यता मिली हुई है। वर्ष 2016 के लिए सरदार पटेल उत्कृष्ट आईसीएआर संस्था पुरस्कार प्राप्त हुआ है। हाल ही में विश्वविद्यालय को राज्य में कृषि के स्थाई विकास के लिए हरियाणा किसान रत्न पुरस्कार माननीय राष्ट्रपति श्री राम नाथ कोविंद के द्वारा प्रदान किया गया है।

राज्य में कृषि से संबंधित क्षेत्रों में उद्यमशीलता की गतिविधियों को मजबूत करने के लिए, विश्वविद्यालय एवं नाबार्ड के सहयोग से कृषि और संबद्ध क्षेत्रों में नवाचारों, कौशल निर्माण और उद्यमियों के विकास पर ध्यान देने के साथ एग्रीबिजनेस इंक्यूबेशन सेंटर की स्थापना की गई है जो छात्रों, किसानों/बेरोजगार युवाओं/उद्यमियों को प्रोत्साहन एवं मदद करने के लिए कृषि और संबद्ध क्षेत्रों से संबंधित परामर्श, प्रशिक्षण और व्यावसायिक सलाहकार सेवाओं के माध्यम से मार्गदर्शन, प्रौद्योगिकी और बुनियादी ढांचा प्रदान कर सकती है और क्षमता निर्माण पर ध्यान केंद्रित कर सकती है। गुणवत्ता आश्वासन और सुरक्षा मानकों, प्रमाणन, ब्रांडिंग और विभिन्न उत्पादों के विपणन पर जोर देने के साथ कृषि के विभिन्न क्षेत्रों में व्यवसाय को चलाना और बनाए रखना। केंद्र न केवल उपलब्ध तकनीकों का व्यवसायीकरण करेगा अपितु ग्राहक को स्वयं की इकाई स्थापित करने, रोजगार सृजित करने और लघु एवं मध्यम उद्यमियों के लिए आमदनी बढ़ाने में करने में मदद करेगा, बल्कि अपने कृषि का व्यावसायिक रूप से परीक्षण करने वाले नवप्रवर्तकों और उद्यमियों के लिए अंतिम छोर तक समाधान प्रदान करने के लिए काम करेगा।

इस विश्वविद्यालय का मुख्य उद्देश्य देश के किसानों को नई-नई तकनीकों के साथ-साथ नई पीढ़ी के बच्चों को कृषि वैज्ञानिक बनाने के लिए कृषि एवं कृषि सम्बन्धित विषयों में छः वर्षीय एवं चार वर्षीय स्नातक, स्नातकोत्तर एवं पी.एच.डी. पाठ्यक्रमों में डिग्री प्रदान करना है। कृषि की पुरानी पद्धति के स्थान पर नवीनतम कृषि जानकारियां किसानों को उपलब्ध करवाकर कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव लाने में यह महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। विश्व के अग्रणीय विश्वविद्यालयों के साथ कृषि शिक्षा के क्षेत्र सहमति ज्ञापन पत्र हस्ताक्षर किए हुए हैं जिससे यहां के छात्रों को विदेश में भी कृषि शिक्षा ग्रहण करने का अवसर मिलता है। विश्वविद्यालय अपने छात्रों को विभिन्न प्रतिष्ठित राष्ट्रीयकृत संस्थानों और शोध संस्थानों में उपयुक्त स्थान दिलाने में मदद करता है। बैंक, कृषि आधारित कंपनियां/उद्योग/बहुराष्ट्रीय कंपनियां/गैर सरकारी संगठन आदि में यहां के विद्यार्थी अच्छे वेतन पर नौकरी करते हैं। विश्वविद्यालय में भारत के अतिरिक्त और भी देशों के छात्र-छात्राएं अपनी कृषि सम्बन्धित अध्ययन के लिए आते हैं।

चार वर्षीय कृषि स्नातक के लिए विज्ञान विषय के साथ 10+2 शिक्षा अनिवार्य है तथा छः वर्षीय कृषि स्नातक के लिए दसवीं कक्षा पास होना अनिवार्य है। इन दोनों कृषि स्नातक डिग्री पाठ्यक्रमों में दाखिला लिखित प्रवेश परीक्षा के द्वारा मैरिट के आधार पर किया जाता है। गत वर्षों की भांति इस वर्ष भी इन पाठ्यक्रमों के लिए दाखिला प्रक्रिया चल रही है जिसकी अंतिम तिथि 21.5.2019 है। अधिक जानकारी के लिए विश्वविद्यालय की वैबसाईट https://www.hau.ac.in पर भी देखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त हरियाणा राज्य के प्रत्येक जिले में स्थित कृषि विज्ञान केन्द्रों पर भी इस बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

[1]डी.टी.पी. ऑपरेटर, प्रकाशन अनुभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

मानसून पूर्वानुमान और उसका कृषि पर प्रभाव

- **योगेश कुमार, राज सिंह एवं अनिल कुमार**
कृषि मौसम विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

झाड़-झंखाड़ को उखाड़ती-पछाड़ती पहले आती है बुढ़िया आंधी यानी काल बैशाखी। इसके बाद ही आती है बरखा बहार। कभी थम कर बरसता है तो कभी जमकर। यह मानसून शब्द अरबी भाषा के मौसिन और मलय भाषा के मोनसिन शब्द से बना है। जिस का मतलब होता है हवाओं के नियमित व स्थायी मार्ग में अस्थायी परिवर्तन।

आज इक्कीसवी सदी में भी दक्षिण एशिया विशेषकर भारत की कृषि अर्थव्यवस्था के लिए किसान ही नहीं पूरा देश मई के अंतिम सप्ताह से दक्षिणी पश्चिमी मानसूनी हवाओं की तरफ केरल में प्रवेश को लेकर टकटकी लगाए बेसब्री से प्रतीक्षा करता है क्योंकि आज भी हमारे देश में 60 प्रतिशत से अधिक कृषियोग्य भूमि मानसून की वर्षा पर पूरी तरह से निर्भर करती है तथा कुल वर्षा का 80 प्रतिशत हिस्सा इसी मानसून ऋतु में होता है। आज भी मानसून को हमारे देश की समृद्धि का सूचक माना जाता है। बिजली उत्पादन, भूजल का पुनर्भरण, नदियों का पानी भी मानसून पर निर्भर है। यदि देश में दक्षिण पश्चिमी मानसून की वर्षा अच्छी होगी तो कृषि उपज बढ़ेगी तो ही महंगाई काबू में रहेगी। यदि मानसून का मिजाज बिगड़ा तो कृषि उपज तो कम पैदा होगी ही परन्तु साथ में महंगाई भी बढ़ेगी।

देश में मानसून के चार महीनों में 89 सैंटीमीटर औसत वर्षा होती है। 80 प्रतिशत वर्षा मानसून के चार महीनों जून-सितंबर के दौरान होती है। भारत मौसम विज्ञान विभाग ने भविष्यवाणी की है कि 2018 में सामान्य मानसूनी वर्षा होने की संभावना है। मानसून भारतीय खेती की जीवनधारा है। इस पर 2 अरब डॉलर की अर्थव्यवस्था निर्भर करती है। 50 प्रतिशत कृषि को पानी वर्षा के जरिये ही प्राप्त होती है। ऐसे में खराब मानसून से देश की कृषि सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी पर बुरा प्रभाव पड़ता है। खराब मानसून से कृषि पर बहुत फर्क पड़ता है। भारत में 2016 और 2017 में सामान्य से कम मानसून रहा। वही 2014 और 2015 में मानसून खराब रहा। खराब मानसून सूखे जैसी स्थिति पैदा कर सकता है। एक सामान्य मानसून कृषि उत्पादन को बढ़ता है। भारत में 800 मिलियन लोग गांवों में रहते हैं और कृषि पर निर्भर हैं। यह भारत की सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी का 15 प्रतिशत है। सामान्य से ऊपर मानसून रहने पर किसानों की आय में उछाल मिलता है और ग्रामीण बाज़ारों में उत्पादों की मांग बढ़ती है। अगर मानसून सही नहीं रहता तो देश की अर्थव्यवस्था पर गलत प्रभाव पड़ता है।

कैसे शुरू होता है - मानसून : देश में गर्मी की शुरुआत होते ही किसान मानसून पर टकटकी लगाकर बैठ जाते हैं। लेकिन मानसून एक ऐसी अबूझ पहेली है जिसका अनुमान लगाना बेहद जटिल है। कारण यह है कि भारत में विभिन्न किस्म के जलवायु ज़ोन और उपज़ोन हैं। हमारे देश में 127 कृषि जलवायु उपसंभाग हैं और 36 संभाग हैं। हमारा देश विविध जलवायु वाला है। समुद्र हिमालय और रेगिस्तान मानसून को प्रभावित करते हैं। इसलिए मौसम विभाग के तमाम प्रयासों के बावजूद मौसम के मिजाज को सौ फीसदी भांपना अभी भी मुश्किल है।

मानसून शब्द अरबी भाषा के मौसिम शब्द से बना है जिसका मतलब है हवाओं का मिजाज। इसका प्रयोग अरब सागर में बहने वाली हवाओं के लिए किया जाता था। मानसून का इतिहास काफी पुराना माना जाता है। शीतऋतु में हवाएं उत्तर पूर्व से दक्षिण पश्चिम दिशा में बहती हैं जिसे शीत ऋतु का मानसून कहा जाता है। जबकि ग्रीष्म ऋतु में इसके विपरीत हवाएं बहती हैं। इसे दक्षिण पश्चिम मानसून या गर्मी का मानसून कहा जाता है, वैज्ञानिक शब्दावली में मानसून को नम हवा कहा जाता है। जो किसी विशेष मौसम में एक विस्तृत क्षेत्र में अधिक वर्षा करती हो।

ग्रीष्म ऋतु में जब हिन्द महासागर में सूर्य विषुवत रेखा के ठीक ऊपर होता है तो मानसून बनता है। इस प्रक्रिया में समुद्र गरमाने लगता है और उसका तापमान 30 डिग्री तक पहुंच जाता है। वहीं उस दौरान धरती का तापमान 45 डिग्री तक पहुंच चुका होता है। ऐसी स्थिति में हिन्द महासागर के दक्षिणी हिस्से में मानसूनी हवाएं सक्रिय होती हैं। ये हवाएं आपस में क्रॉस करते हुए विषुवत रेखा पारकर एशिया की तरफ बढ़ने लगती हैं। इसी दौरान समुद्र के ऊपर बादलों के बनने की प्रक्रिया शुरू होती है। विषुवत रेखा पारकर के हवाएं और बादल वर्षा करते हुए बंगाल की खाड़ी और अरब सागर का रुख करते हैं। इस दौरान देश के तमाम हिस्सों का तापमान समुद्रतल के तापमान से अधिक हो जाता है। ऐसी स्थिति में हवाएं समुद्र से ज़मीन की ओर बहनी शुरू हो जाती हैं। ये हवाएं समुद्र के जल के वाष्पन से उत्पन्न जल वाष्प को सोख लेती हैं और पृथ्वी पर आते ही ऊपर उठती हैं और वर्षा देती हैं। बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में पहुंचने के बाद मानसूनी हवाएं दो शाखाओं में विभाजित हो जाती हैं। एक शाखा अरब सागर की तरफ से मुंबई, गुजरात, राजस्थान होते हुए आगे बढ़ती है तो दूसरी शाखा बंगाल की खाड़ी से पश्चिम बंगाल, बिहार, पूर्वोत्तर होते हुए हिमालय से टकरा कर गंगीय क्षेत्रों की और मुड़ जाती है और इस प्रकार जुलाई के पहले सप्ताह तक पूरे देश में झमाझम पानी बरसने लगता है।

ये मॉनसूनी हवाएं सर्वप्रथम केरल में सामान्यत: 1 जून को प्रवेश करती हैं। अरब सागर व बंगाल की खाड़ी से आ रही मॉनसूनी हवाएं उत्तर भारत में जुलाई व अगस्त मास में अधिक वर्षा करती हैं तथा बीच में 10 से 20 दिन का विश्रांत आ जाता है जिस कारण इस समय मैदानों में वर्षा न होकर ये हवाएं हिमालय की तलहटियों की तरफ चली जाती हैं। जिससे उसी क्षेत्र में वर्षा होती है। विश्रांत के बाद फिर से मॉनसूनी हवाएं अनुकूल परिस्तिथि बनने के बाद मैदानी क्षेत्रों में वर्षा करने लगती हैं।

हरियाणा में आमतौर पर मानसून जुलाई के प्रथम सप्ताह में प्रवेश कर मध्य सितम्बर तक वर्षा करता है। उत्तर भारत में सितम्बर के अंतिम सप्ताह या अक्तूबर के प्रथम सप्ताह में निम्न दबाव का क्षेत्र उच्च दबाव की स्थिति में विकसित होने लगता है जिससे हवाओं का रुख बदल जाता है। खुश्क हवाएं ज़मीन से समुन्द्र की तरफ उत्तर पूर्वी दिशा में बहने लगती हैं इसे मानसून का लौटना कहा जाता है। जब ये लौटती खुश्क हवाएं बंगाल की खाड़ी को पार करते समय नमी ग्रहण कर लेती हैं तथा भारत के पूर्वी तटीय भागों में विशेषकर तमिलनाडु और आंध्रप्रदेश में सामने से भारी वर्षा करती हैं। इन उत्तर पूर्वी हवाओं से होने वाली वर्षा को उत्तर पूर्वी मानसून कहा जाता है। इस तरह मानसून जून के प्रथम सप्ताह तक प्रायद्वीपीय भारत में प्रवेश करता है और सितंबर के आरंभ में इसका भारत से निवर्तन होने लगता है। अत: जून से सितंबर के मध्य मानसून की अवधि लगभग 100 से 120 दिनों की होती है।

मानसून की अच्छी वर्षा होने पर फसल उत्पादन बढ़ने के साथ सकल घरेलू उत्पाद के निर्धारण में भी अपना विशेष योगदान देता है। भारत में दक्षिणी पश्चिमी मानसून सामान्यत: निश्चित समय पर आ जाता है तथा औसत वर्षा भी कर देता है परन्तु इसकी अनिश्चितता का डर बना रहता है।

कभी-कभी तो ये देश में समय से पहले भी पहुंच जाता है तथा कभी ये देर से आता है तथा इसकी गति भी धीमी हो जाती है जिस कारण वर्षा कम होती है तब इसे कमज़ोर मानसून की संज्ञा देते हैं। कमज़ोर मानसून कहने का सीधा-सा अर्थ है - देश में बिजाई का क्षेत्र तो घटेगा ही तथा बाद में देश का खाद्यान्न उत्पादन भी कम हो जायेगा। मानसून की कम वर्षा से हरियाणा में खरीफ की फसलों पर दुष्प्रभाव पड़ेगा जिनमें मुख्य हैं धान, गन्ना, नरमा और कपास, मक्का आदि। देर से राज्य में मानसून आने पर फसलों की बिजाई पूरी नहीं हो पाती तथा जिन फसलों की बिजाई जैसे-तैसे हो जाती है उनकी बढ़वार रुक जाती है या नमी की कमी से नष्ट हो जाती है।

मानसून का पूर्वानुमान : भारत में मानसून की अवधि चार महीने यानी 1 जून से 30 सितम्बर तक मानी जाती है। इससे सम्बन्धित सभी भविष्यवाणियां 16 अप्रैल से 25 मई के दौरान दो भागों में की जाती हैं। पहले भारत मौसम विज्ञान विभाग लगभग 16 पैरामीटरों का बारीकी से अध्ययन कर मानसून की भविष्यवाणी करता है। अब 5 पैरा मीटरों को आधार बनाकर मानसून के पूर्वानुमान निकाले जाते हैं। पूर्वानुमान निकालते समय तापमान, हवा, दबाव और बर्फबारी जैसे कारकों का ध्यान भी रखा जाता है।

भारत मौसम विज्ञान विभाग अप्रैल के मध्य में मानसून को लेकर दीर्घावधि पूर्वानुमान जारी करता है। इसके बाद फिर मध्यमअवधि और लघुअवधि के पूर्वानुमान जारी होते हैं। नाऊकास्ट कर के मौसम विभाग अब कुछ घंटे पहले भी मौसम की भविष्यवाणी करता है। भारत मौसम विज्ञान विभाग की भविष्यवाणियों में हाल के वर्षों में सुधार हुआ है। इधर देशभर में कई जगहों पर डाप्लर राडार लगाए जाने हैं जिससे आगे स्थिति और सुधरेगी। अभी मध्यम अवधि की भविष्यवाणियां जो 7-10 दिन की होती हैं 70-80 फीसदी तक सटीक निकलती हैं। हां लघुअवधि की भविष्यवाणियां जो अगले 24 घंटों के लिए होती हैं करीब 90 फीसदी तक सही होती हैं। नाऊकास्ट की भविष्यवाणियां करीब-करीब 99 फीसदी सही निकलती हैं।

सामान्य मानसून के फायदे

- *खाद्यान्न उत्पादन बढ़ेगा :* वर्षा अच्छी होने से कृषि पर सबसे अच्छा प्रभाव पड़ता है। जहां सिंचाई की सुविधा नहीं है वहां वर्षा होने से फसल अच्छी हो सकेगी। जहां सिंचाई के साधन हैं तो समय पर अच्छी वर्षा होने से किसानों को नलकूप नहीं चलाने पड़ेंगे। उनके डीज़ल की बचत होगी। कहने का तात्पर्य यह है कि उनकी लागत घटेगी। अच्छे उत्पादन से किसानों को लाभ होगा। खाद्यान्नों की मूल्य वृद्धि भी नियंत्रित रहेगी। कृषि का अर्थव्यवस्था में योगदान है। इसलिए पूरी अर्थव्यवस्था को मानसून मज़बूती प्रदान करता है।
- *बिजली संकट कम होगा:* मानूसन के चार महीनों में झमाझम वर्षा से नदियों, जलाशयों का जलस्तर बढ़ता है। इससे बिजली उत्पादन अच्छा रहता है। यदि वर्षा कम हो और जलस्तर कम हो जाए तो बिजली उत्पादन भी प्रभावित होता है। बिजली कटौती बढ़ जाती है।
- *पानी की कमी दूर होगी :* अच्छे मानसून से पानी की समस्या का भी काफी हद तक समाधान होता है। एक तो नदियों तालाबों में पर्याप्त पानी हो जाता है। दूसरे भूजल का भी पुनर्भरण होता है। यदि मानूसन अच्छा रहे तो अगले साल गर्मियों तक पानी के स्रोतों पर इसका सकारात्मक प्रभाव रहता है।
- *गर्मी से राहत:* मानसून की वर्षा जहां एक ओर खेती-बाड़ी, जलाशयों, नदियों को पानी से लबालब कर देती है वहीं दूसरी ओर भीषण गर्मी से तप रहे देश को भी गर्मी से राहत प्रदान करती है ।

नलकूपः भारतीय कृषि की जान

- **नरेंद्र कुमार एवं अरविन्द**
कृषि अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत में कृषि मुख्य रूप से वर्षा पर निर्भर है। हमारे देश में वर्षा बड़ी ही अनिश्चित है। वर्षा पर कृषि की निर्भरता के कारण पैदवार बड़ी अनिश्चित है। किसी वर्ष तो वर्षा सही समय पर होने के कारण पैदावार अच्छी होती है तो किसी वर्ष वर्षा कम होने की वजह से पैदावार में गिरावट आती है। भारत की बड़ी जनसंख्या को भोजन उपलब्ध कराने के लिए कृषि में पैदावार का बढ़ाना बहुत आवश्यक है। हम वर्षा पर निर्भर नहीं रह सकते इसके लिए हमे सिंचाई के और साधनों के विकास की आवश्यकता है। नलकूप सिंचाई का एक सबसे आसान तरीका है। नलकूपों ने भारतीय कृषि में नई जान डाल दी है। नलकूपों से सिंचाई की एक बहुत बड़ी समस्या का हल हो गया है। वर्षा पर हमारी निर्भरता खत्म हो गयी है। नलकूपों की सहायता से हम ज़मीन के पानी को खींच कर कृषि के लिए उपयोग करते हैं। एक पाइप को हम ज़मीन में बोर बनाकर उसमें डाल देते हैं। फिर किसी मोटर की सहायता से उसे खींच कर सिंचाई में उपयोग करते हैं।

नलकूप से होने वाली सिंचाई के लाभ : इस तरह की सिंचाई में पानी हर समय उपलब्ध रहता है। आप किसी भी समय सिंचाई कर सकते हैं। नलकूप खेतों के पास ही लगे होते हैं इसलिए इस से पानी का रिसाव कम होता है और सिंचाई की क्षमता भी बढ़ती है। इस तरह की सिंचाई में हम हर तरह की फसलें ले सकते हैं क्योंकि पानी हमारी समस्या नहीं रहती। जहाँ पानी का स्तर ऊपर हो वहाँ नलकूप पानी के सत्तर को भी नियंत्रित करता है। पानी की उपलब्धता के कारण पैदावार भी बढ़ती है जिस वजह से किसानों के पास फसल उगने का विकल्प बढ़ जाता है। पैदावार में वृद्धि होती है जिस से किसानों की आय बढ़ती है।

नलकूप की सिंचाई से हानि : नलकूपों का भाव अधिक होता है जिस कारण से हम एक बहुत बड़े क्षेत्र में इसका प्रयोग नहीं कर सकते। नलकूप से होने वाली सिंचाई, नहरों से होने वाली सिंचाई से महँगी है। नलकूपों से पानी निकालने के लिए मोटर की आवश्यकता होती है, इसकी देखभाल में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। मोटर को चलने के लिए बिजली या डीज़ल की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए बिजली की सप्लाई का ध्यान रखना पड़ता है। पानी के अधिक दोहन से जल स्तर नीचे हो जाता है।

नलकूपों में ऊर्जा बचाने के लिए सुझाव

1. उचित क्षमता वाले पंप सेटों का प्रयोग करना चाहिए ताकि नलकूपों से पानी पूरा मिले।
2. पंप का चयन फसल, भूजल की स्थिति और सिंचित क्षेत्र के अनुसार करना चाहिए।
3. पंप जलस्तर के पास होना चाहिए।
4. निकासी पाइप की धरातल से ऊंचाई कम होनी चाहिए।
5. पाइप में जो बैंड लगे होते हैं वे तीव्र न होकर घुमावदार होने चाहिएं।
6. स्टील के पाइपों की बजाए प्लास्टिक के पाइपों का प्रयोग करना चाहिए।
7. बी.आई.एस. हॉलमार्क वाले पाइपों का इस्तेमाल करना चाहिए।
8. पाइप का व्यास बहुत छोटा नहीं होना चाहिए।
9. मोटर को समय-समय पर चैक करते रहना चाहिए।

फलों और सब्जियों का कचरा : संरक्षण

- **कनिका पंवार एवं विजय कुमार**
क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, करनाल (हरियाणा)
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

फल और सब्जी प्रसंस्करण, पैकिंग, वितरण और उपभोग के द्वारा एक बड़ी मात्रा में कचरा उत्पन्न होता है। उदाहरण के तौर पर भारत, फिलीपींस, चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग 1.81, 6.53, 32.0 और 15.0 करोड़ टन फल और सब्जी का कचरा उत्पन्न होता है। फल और सब्जी प्रसंस्करण में इस्तेमाल एक-तिहाई उत्पाद निकलता है, जो कि एक महत्वपूर्ण पर्यावरणीय समस्या पैदा कर रहा है। भारत में फलों व सब्जियों के प्रसंस्करण की प्रयोजनों द्वारा इस्तेमाल कुल उत्पादन केवल 1.8 प्रतिशत है। भारत में लगभग 4000 प्रसंस्करण इकाइयां हैं जिनका फल और सब्जी उत्पादनों में 8.0 लाख टन का कारोबार है। इन इकाइयों का 90 प्रतिशत लघु उद्योग क्षेत्र में है जिनकी वार्षिक उत्पादन की सीमा 50-250 टन है। इन इकाइयों के कचरा निपटान की कोई संगठित विधि नहीं है।

फल और सब्जी कचरे में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज, फाइबर आदि की समृद्ध मात्रा होती है तथा इनमें पोषण भी प्रचुर मात्रा में होते हैं। फल और सब्जी प्रसंस्करण उद्योग द्वारा उत्पन्न कचरे इसके उपयोग व संरक्षण के कारण वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। फल और सब्जी कचरे का अत्यधिक भाग जैसे कि टमाटर खली (पोमेस), लौकी खली (पोमेस), नींबू का गूदा, गाजर का गूदा, बेबी कॉर्न की भूसी और चारा, गोभी और फूलगोभी पत्ते, सरसों साग और मटर की फली, अन्नानास कचरा और अन्नानास की भूसी आदि मुख्य रूप से उच्च नमी (80-90 प्रतिशत), कुल घुलनशील शर्करा (6-64 प्रतिशत) और क्रूड प्रोटीन (10-24 प्रतिशत) मात्रा की वजह से जल्दी ही खराब हो जाते हैं।

पीक उत्पादन या प्रसंस्करण के मौसम के दौरान, इन संसाधनों की भारी मात्रा और एक ही गति से सेवन नहीं हो पाने के कारण पर्यावरण प्रदूषण का कारण बनते हैं। इसलिए इन संसाधनों के संरक्षण के लिए उपयुक्त तरीकों को अपनाना चाहिए ताकि लीन पीरियड में यह पशु चारे के रूप में उपलब्ध हो। इससे पर्यावरण प्रदूषण को कम करने में मदद मिलेगी। अन्त में, उपरोक्त उपक्षेप फल और सब्जी प्रसंस्करण कचरे के संरक्षण पर एक अवलोकन प्रदान करता है । फल व सब्जियों के संरक्षण के लिए सबसे अधिक इस्तेमाल किये गए तरीके हैं :

1. **सुखाना :** फल और सब्जियों के कचरे (जैसे कि सेब खली (पोमेस), टमाटर खली (पोमेस), लौकी खली, अन्नानास की भूसी और गाजर लुगदी) में 90 प्रतिशत पानी होता है। इस प्रकार सुखाने की प्रक्रिया को संरक्षण के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इस प्रकार सुखाने की प्रक्रिया द्वारा फल व सब्जियों का संरक्षण किया जा सकता है। सुखाने से पहले ताज़े कचरे के ढेर को तिरछा करें ताकि अतिरिक्त पानी बाहर आ सके। यदि यांत्रिक प्रैस या थर्मल सुखाने की सुविधा उपलब्ध नहीं है तो कचरे की 5-7 सैंटीमीटर मोटी परत एक ठोस फर्श पर फैला लें ताकि सूर्य की सीधी किरणों से वह सूख जाये। कचरा जैसे कि कटे हुए केले के पत्ते, मटर की फली, टमाटर पोमेस और मटर को सूर्य द्वारा आसानी से सुखाया जाता है। सामग्री को कांटे की मदद से दिन में 2-3 बार उल्टा लें ताकि ड्राई मैटर (शुष्क पदार्थ) लगभग 90 प्रतिशत तक पहुंच जाये। गर्मी के मौसम में (40-45 डिग्री सेल्सियस) वांछित शुष्क पदार्थ 2-3 दिनों के भीतर में ही मिल जाता है। विलय मिल (Willey mill) द्वारा 1-2 मिलीमीटर की स्क्रीन का उपयोग कर सूखी अपशिष्ट को पीस लें। पिसे हुए अपशिष्ट को अन्त में पॉलिथीन बैग में इकट्ठा कर आवश्यकता होने पर इस्तेमाल कर सकते हैं।

2. **एन्सिलिंग :** लम्बे समय से एन्सिलिंग भोजन के संरक्षण के लिए सबसे उपयुक्त तरीकों में से एक है। एन्सिलिंग एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा घास व अन्य फसल को साइलो या साइलेज में रखा जाता है ताकि उन्हें साइलेज के रूप में परिरक्षित किया जा सके। फल एवं सब्ज़ी से उत्पन्न कचरे को ताज़े, सूखी व एनसीलेड रूपों में पशु को खिलाने, कम्पोस्टिंग व जैव ईंधन के उत्पादन के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। एन्सिलिंग दो तरीकों के द्वारा किया जाता है :

क. बंकर या गड्ढे साइलो में एन्सिलिंग : हरी पत्तेदार अपशिष्ट की मात्रा को देखते हुए एन्सिलिंग द्वारा बंकर खाई एवं गढ़े साइलो में संरक्षित किया जा सकता है। जिसमें तापमान 10 और 38 डिग्री सेल्सियस के बीच में व मध्यम तापमान 32 डिग्री सेल्सियस होना चाहिए। गड्ढे का आकार 10 मीटर लम्बा 3 मीटर चौड़ा 1.5 मीटर गहरा होना चाहिए। एक घन मीटर लगभग 0.5 टन हरे अपशिष्ट को समायोजित कर सकता है और तदनुसार अपशिष्ट की उपलब्धता को देखते हुए आकार को समायोजित कर सकते हैं। अपशिष्ट जैसे कि केले के पत्ते, गोभी व फूल गोभी के पत्ते को बेबी कॉर्न के भूसे व चारे के साथ 1-2 दिन के लिए खुले में सूखने दिया जाना चाहिए तथा साथ ही साथ चाफ (फूस) को 3-5 सैंटीमीटर के आकार में काटें। सूखे व कटे हुए कचरे को 70:30 अनुपात में गेहूं के भूसे, चावल के भूसे या मक्के के स्टोवेर्स के साथ मिलाना चाहिए उसके बाद कम गुणवत्ता वाले फसल अवशेषों को खाई के फर्श पर 5-7 सैंटीमीटर फैला लें ताकि किण्वन (फर्मेंटेशन) के दौरान निकला हुए एफ्फ्लुएंटस (अवशोषण) को सोख लिया जाये।

गड्ढों को समान रूप से मिश्रित अपशिष्ट और स्ट्रॉ/स्त्रोवेर से 40 से 60 किलो के बैच में रोंध कर (ट्रम्पलिंग द्वारा) भरें तथा ये सुनिश्चित कर लें कि गड्ढा चफ्फड़ अपशिष्ट से अच्छे तरह से भरा हो उसमें कोई हवा न हो। बड़े साइलो में फूस कटर व ब्लोअर की मदद से सीधे ही भर लें व साथ ही साथ उसे ट्रैक्टर द्वारा प्रेसिंग व पैकिंग करें। साइलो गड्ढे/खाई को पॉलिथीन शीट और मिट्टी से अच्छी तरह बंद कर दें और 42 दिनों तक फरमेंट करने के लिए छोड़ दें। मिट्टी की सीलिंग सूख जाने पर दरारें दिखाई देंगी। गड्ढों को 42 दिनों बाद खोल दें तथा साइलेज को दैनिक आवश्यकता के अनुसार निकालें और गड्ढे को पॉलिथीन शीट से दोबारा बंद कर दें।

ख. ट्यूब साइलो में एन्सिलिंग : हरी पत्तेदार अपशिष्ट को 10 से 12 फ़ीट लम्बी, 60 -80 माइक्रोन मोटी, 6 फीट व्यास की लो डेंसिटी पोलीऐथिलेन (LDPE) ट्यूब में संरक्षित कर सकते हैं जो 0.5 टॉन्स के हरी अपशिष्ट को समायोजित कर सके। पर्यावरण तापमान 10 और 38 डिग्री सेल्सियस के बीच में व मध्यम तापमान 32 डिग्री सेल्सियस होना चाहिए। अपशिष्ट जैसेकि केले के पत्ते, गोभी व फूल गोभी के पत्ते को बेबी कॉर्न के हस्क व चारे के साथ 1-2 दिन के लिए खुले में विल्ट किया जाना चाहिए तथा चाफ (फूस) 3-5 सैंटीमीटर आकार में काटें। विल्टेड व चाफ अपशिष्ट को 70:30 अनुपात में गेंहू के भूसे, चावल के भूसे या मक्के के स्टोवेर्स के साथ मिलाना चाहिए। उसके बाद कम गुणवत्ता वाले फसल अवशेषों को लो डेंसिटी पोलीऐथिलेन ट्यूब के तल पर 5-7 सैंटीमीटर फैला लें ताकि किण्वन (फर्मेंटेशन) के दौरान निकला हुए एफ्फ्लुएंटस (अवशोषण) को सोख लिया जाये। हर समय 40-60 किलोग्राम अपशिष्ट को स्थानान्तरित करें तथा साथ में अपशिष्ट को दबाते भी रहें ताकि उसे डालते समय को हवा ट्यूब मे भर नहीं जाये और ट्यूब को पूरी तरह से भर दें। पैकिंग के बाद ट्यूब के शीर्ष भाग को नायलॉन रस्सी से बांध दें। 42 दिनों के बाद ट्यूब से साइलेज को आवश्यकता अनुसार बाहर निकालें और ट्यूब को दोबारा रस्सी से बंद कर दें। ल.डी.प.इ ट्यूब में एन्सिलिंग भूमिहीन, सीमांत और छोटे किसानों द्वारा अधिक पसंद की जाती है क्योंकि यह प्रारंभिक बुनयादी ढांचे में निवेश कम करता है और इसे सम्भालना भी आसान है।

टपका सिंचाई प्रणाली में बहाव अवरोधन से बचाव : अम्ल प्रक्रिया द्वारा

- **प्रमोद शर्मा, संजय कुमार एवं नरेंद्र कुमार**
मृदा एवं जल अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

प्राकृतिक संसाधनों में जल का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। दिन-प्रतिदिन बढती हुई जलावश्यकता को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि आने वाले समय में शुद्ध जल एक दुर्लभ संसाधन हो जाएगा। इसके साथ-साथ उपलब्ध जल की गुणवत्ता भी लगातार घटती जा रही है। अत: विवेकपूर्ण एवं सुनियोजित उपायों द्वारा जल का संरक्षण आज अत्यंत आवश्यक हो गया है इसलिए यह हमारा सर्वप्रथम कर्त्तव्य बन जाता है कि हम हर तरह से पानी की एक-एक बूंद का समुचित रूप से प्रयोग करें और इसे दूषित होने से बचाएं। टपका सिंचाई प्रणाली लवणीय जल वाले क्षेत्रों में फसल पैदा करने का सबसे कुशल तरीका प्रदान करती है। टपका सिंचाई पद्धति में उत्सर्जक (ड्रिपर), लेट्रल पाइप, उपमुख्य पाइप, मुख्य पाइप, फिल्टर (छन्नक), उर्वरक अन्त: क्षेपक यंत्र तथा मोटर और पम्प आदि मुख्य भाग होते हैं। टपका सिंचाई प्रणाली में जल मुख्य पाइप, उपमुख्य पाइप व लेट्रल लाइन से होता हुआ ड्रिपर द्वारा पौधों की जड़ों तक पहुंचता है। टपका सिंचाई प्रणाली में लवणीय जल का लगातार उपयोग करने से लेट्रल लाइन और ड्रिपर में लवण जमा हो जाते हैं जिससे ये अवरुद्ध हो जाते हैं। अम्ल प्रक्रिया (Acid treatment) करके अवरुद्ध लेट्रल लाइन और ड्रिपर को खोल सकते हैं। इसके लिये वेन्चुरी असेंबली, फर्टिलाइज़र टैंक या फर्टिगेशन पम्प को उपयोग में लाया जा सकता है। अम्ल प्रक्रिया में निम्नलिखित अम्लों में से किसी एक अम्ल का प्रयोग कर सकते हैं :

क. हाइड्रोक्लोरिक अम्ल ख. सल्फ्यूरिक अम्ल
ग. नाइट्रिक अम्ल घ. फास्फोरिक अम्ल

अम्ल प्रक्रिया के अंतर्गत टपका सिंचाई प्रणाली में उपयोग होने वाले अम्लमिश्रित पानी का पी एच 4 होना चाहिए। पी एच नापने के लिये पी एच पेपर उपयोग में लाया जाता है। पी एच पेपर को अम्लमिश्रित पानी में भिगोने पर उसका रंग रंगपट्टी में ताम्र रंग से (पी एच- 4) मिलना चाहिए। जिस पानी से अम्ल प्रक्रिया करनी है, उसका पी एच अधिक होने पर उसे चार तक लाने के लिये पानी में अम्ल की मात्रा बढ़ानी चाहिए।

अम्ल प्रक्रिया करने की विधि

1. प्लास्टिक के बर्तन में एक लीटर पानी लीजिए।
2. पानी में ड्रॉपर की सहायता से 1-1 मिली लीटर अम्ल डालकर पानी का पी. एच. नापते जाइए।
3. पी. एच. चार होने तक यह प्रक्रिया जारी रखें।
4. पी. एच. चार तक लाने के लिये कितना अम्ल उपयोग में लाया गया, यह ज्ञात कीजिए।
5. सबसे पहले टपका संयंत्र के जिस प्रभाग में अम्ल प्रक्रिया करनी है, उस भाग में पंप चालू करने के बाद अंतिम ड्रिपर से पानी आने तक में कितना समय लगता है, यह नोट कीजिये और उतने समय में ही अम्ल प्रक्रिया पूरी करनी चाहिए।
6. जिस साधन से टपका संयंत्र में अम्ल डालना है, उसकी पानी चूषण दर (सक्शन रेट) की गणना करनी पड़ती है और उसे निम्नलिखित सूत्र के अनुसार ज्ञात किया जा सकता है।

   चूषण दर (लीटर प्रति घंटा)
   = संयंत्र का प्रति घंटा प्रवाह दर (घन मीटर) x पानी पी एच को चार तक लाने के लिए उपयोग लाया गया अम्ल (मि.मी.)
7. अम्ल की मात्रा निकालने के लिये ऊपर निकाली गई चूषण दर (लीटर प्रति घंटा) को 60 से विभाजित कर क्रमांक 5 में निकाली गई अवधि से गुणा करना चाहिये।

   उदाहरण : यदि 1 लीटर पानी के पी. एच. को चार तक लाने के लिये 3 मिली लीटर अम्ल का उपयोग होता है और संयंत्र का प्रवाह दर प्रति घंटा 20 घन मीटर प्रति घंटा है। यदि अंतिम ड्रिपर तक पानी पहुंचने में 12 मिनट लगते हैं तो कितना लीटर अम्ल लगेगा ?

   उत्तर : सबसे पहले चूषण दर (सक्शन रेट) लीटर प्रति घंटा निकालेंगे :

   चूषण दर (लीटर प्रति घंटा) = 20 घन मीटर प्रति घंटा प्रवाह दर x 3 मि.ली.
   = 60 लीटर प्रति घंटा

   यदि अम्ल को चूसने की गति 60 लीटर प्रति घंटा है, तब 12 मिनट में कितना अम्ल प्रयोग हुआ यह ज्ञात किया जा सकता है, इसके लिये निम्न सूत्र का उपयोग करना चहिए।

   अम्ल की मात्रा की आवश्यकता
   = अम्ल को चूसने की दर (लीटर प्रति घंटा)/60 x अंतिम ड्रिपर तक पानी पहुंचने का समय (मिनट)

   12 मिनट में अम्ल की मात्रा की आवश्यकता = (60/60) x 12 = 12 लीटर
8. अम्ल प्रक्रिया आरंभ करते ही, सबसे नज़दीक वाले ड्रिपर के पास जाकर, उससे बाहर निकलने वाले पानी की पी. एच. को चेक करना चाहिये। पी. एच. चार से अधिक होने पर वेंचुरी असेंबली के वाल्व को थोडा बंद करके चूषण दर को बढ़ाना चाहिये। पी. एच. चार से कम होने पर वेंचुरी असेंबली के वाल्व को थोडा खोलना चाहिये।
9. इसी प्रकार वाल्व को कम ज़्यादा कर पी. एच. को चार तक सेट करें।
10. अम्ल मिश्रित पानी ड्रिप संयंत्र में निर्धारित समय में पहुंचने के बाद उस भाग के सबमेन वाल्व बंद करें। संयंत्र में मौजूद क्षार को अम्ल मिश्रित पानी में घुलने में कम से कम 6 घंटे लगते हैं।
11. उसके बाद लैट्रल के अंतिम छोर को खोलिये। सबमेन फ्लश वाल्व खोलकर पंप चालू कीजिए जिससे अम्लमिश्रित पानी में घुले हुऐ क्षार संयंत्र से बाहर निकल सकें।

अम्ल प्रक्रिया करते समय नीचे दिये गये निर्देशों का ध्यान रखें :

1. तीव्र अम्ल का शरीर के किसी भी भाग पर स्पर्श होना खतरनाक हो सकता है। इसलिये अम्ल का सावधानीपूर्वक इस्तेमाल करें। अम्ल इस्तेमाल करते समय अम्ल प्रतिरोधक दस्तानों का प्रयोग करें।
2. अम्ल को पानी में डालें न कि पानी को अम्ल में।
3. अम्ल प्रक्रिया के समय गलती से अम्ल शरीर के किसी भाग पर गिर जाए तो उस पर ढेर सारा पानी डालें व डॉक्टर से सलाह लें।
4. अम्ल प्रक्रिया करने से पहले सैंड फिल्टर को बैकवॉश कर लें जिससे सैंड फिल्टर में अटका हुआ कचरा संयंत्र में नहीं जाएगा।
5. अम्ल प्रक्रिया खत्म होने पर फिल्टर की जाली व उर्वरक टैंक आदि को साफ पानी से धो लें।

एकाधिक प्रकार की बुद्धिमता

- **सुमित श्योराण, बिमला ढांडा एवं कृष्णा दुहन**
मानव विकास और पारिवारिक अध्ययन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हर व्यक्ति बुद्धिमान होता है परन्तु प्रो. हावर्ड गडिनर ने इन बुद्धिमताओं को अलग-अलग आठ हिस्सों में बांटा है जैसे कि शारीरिक गतिसंवेदी, पारस्पारिक, आत्मीय, प्राकृतिक, तार्किक-गणितीय, सामुदायिक भाषा संबंधी और संगीत संबंधी बुद्धिमता। हर व्यक्ति में इन आठ बुद्धिमताओं में से कुछ का समूह मौजूद होता है। आइए, जानते हैं कि हम किस प्रकार से अपने बच्चे को सभी बुद्धिमताओं में परिपूर्ण बना सकते हैं :

1. **शारीरिक गतिसंवेदी बुद्धिमता :** इस तरह की बुद्धि वाले बच्चे किसी भी सूचना को अपने शरीर के हावभावों के माध्यम से आसानी से समझ पाते हैं।

- बच्चे को शरीर से अलग-अलग अंग्रेज़ी के शब्द बनाने बताएं। जैसे कि पेट को गोल-गोल घुमाकर 'O' बना सकते हैं।
- उसको किसी भी गीत पर शरीर एवं चेहरे के हाव-भाव बनाने के लिए कहें।
- उसके साथ 'बिना बोले नाम बताओ' खेल खेलें जिसमें बच्चा आपके हाव-भाव से नाम सोचकर बताने की कोशिश करें।
- अपने बच्चे को कठपुतली का नाटक दिखाकर लाएं।
- बच्चे को शरीर के सभी अंगों के बारे में विस्तार से बताएं।
- बच्चे में शुरू से ही योग करने की आदत डालें।

2. **पारस्पारिक बुद्धिमता :** इस तरह की योग्यता वाले बच्चे किसी भी दूसरे व्यक्ति के साथ बातचीत करने एवं उसे समझने में माहिर होते हैं।

- उसे दूसरों के हाव-भाव की नकल करने के लिए प्रोत्साहित करें।
- कहानी सुनाते समय अलग-अलग किरदारों की आवाज़ें प्रयोग करें।
- बच्चों को दूसरों से बातचीत करने के अलग-अलग तरीके समझाएं।
- बच्चे को कहानी, कविता, गीत सुनाते समय अपने चेहरे के हावभाव के साथ सुनाने के लिए कहें।
- उसके साथ बातचीत करते हुए अधिक से अधिक समय बिताएं।
- उसे अलग-अलग चीज़ों एवं महापुरुषों के बारे में विस्तार से बताएं।

3. **आत्मीय बुद्धिमता :** इस प्रकार के बच्चे खुद को समझने खुद के लिए निर्णय लेने एवं खुद को किसी भी कार्य को करने के लिए प्रेरणा देने में सक्षम होते हैं।

- बच्चे के साथ खुद के लिए निर्णय लेने एवं खुद को किसी भी कार्य को करने के लिए प्रेरणा देने में सक्षम होते हैं।
- उसकी पसंदीदा किताबें पढ़ें एवं उसको बीच-बीच में जीवन में आने वाली परेशानियों और तरीकों के बारे में अवगत कराएं।
- बच्चों को अलग-अलग भावनाओं जैसे सुख, दु:ख आदि के बारे में विस्तार से बताएं।
- बच्चे को मेडिटेशन एवं योगा कराएं।
- बच्चे के भाषा विस्तार की तरफ ध्यान दें।
- अपने बच्चे के लिए उसका आदर्श बनकर मार्ग दर्शन करें।

4. **प्राकृतिक बुद्धिमता :** इस प्रकार की बुद्धि वाले बच्चे किसी भी जानकारी को समझने के लिए प्राकृतिक चीज़ों का सहारा लेते हैं जैसे कि पेड-पौधे आदि।

- बच्चे के साथ पार्क जाएं और उसको वहां पर चल रही अलग-अलग गतिविधियों जैसेकि पक्षियों की चहचहाअट आदि के बारे में बताएं।
- उसको अलग-अलग पेड़-पौधों के बारे में बताएं एवं साथ ही अलग-अलग पेड़-पौधों के पत्ते इकट्ठे करें।
- बच्चे को बीज से पेड़ बनने के बारे में बताएं।
- उसे विभिन्न जानवरों के चित्रों में रंग भरने के लिए प्रोत्साहित करें।
- उसके साथ चिड़ियाघर जाएं एवं उसे विभिन्न जानवरों के बारे में अवगत कराएं।
- बच्चे को पर्यावरण के बारे में विस्तार से समझाएं।
- उसे किसी भी एक पेड़-पौधे का ध्यान रखने के लिए कहें।

5. **तार्किक-गणितीय बुद्धिमता :** इस तरह की बुद्धिमता वाले बच्चे अंकों और वैज्ञानिक विचारों को अच्छे से समझने में निपुण होते हैं।

- उसको विभिन्न वस्तुओं के साथ जोड़, घटा, गुणा एवं भाग सिखाएं।
- उसे पहेली सुलझाने के लिए प्रोत्साहित करें।
- अपने बच्चे को गिनती, अक्षर इत्यादि संगीत के साथ याद करवाएं।
- बच्चे को अलग-अलग चीज़ों का वर्गीकरण करने के लिए कहें।
- उसको आकार एवं आकृतियों के बारे में समझाएं और उसे चीज़ों को देखकर अलग-अलग भागों में बांटना सिखाएं।
- उनको गिनती मिलाकर रंग से किसी भी आकार को बनाने के लिए कहें।
- बच्चे को अंकों की गिनती पर डांस करना सिखाएं।

6. **सामुदायिक बुद्धिमता :** इस प्रकार की योग्यता वाले बच्चे चीज़ों को सामने से देखकर जल्दी समझने में माहिर होते हैं।

- बच्चे को अलग-अलग उदाहरणों के साथ कहानी सुनाएं।
- किसी भी आकृति के साथ उसका नाम लिखकर चित्र बताएं और बच्चे को भी इसी प्रकार से करने के लिए प्रोत्साहित करें।
- बच्चे को आँखे बंद कर चीज़ें सिर्फ छूकर पहचानने के लिए कहें।
- बच्चे के साथ 'छिपा खजाना ढूंढो' खेल खेलें। इसके लिए बच्चे को मैप बनाकर समझाएं।
- घर की अलग-अलग वस्तुओं के आकार और उसके रखने की जगह के बारे में अवगत कराएं।
- अपने बच्चे के साथ ब्लॉक बनाएं।

7. **भाषा संबंधी बुद्धिमता :** इस प्रकार की योग्यता वाले बच्चे अलग-अलग बातों को विभिन्न शब्दों और भाषाओं में व्यक्त करने में निपुण होते हैं।

- बच्चे को 'नरम-नरम' शब्द और उनका अर्थ समझाएं।
- बच्चे की पसंदीदा कहानियों की किताब पढ़ें एवं उसमें हर एक शब्द का अच्छे से उच्चारण करें।
- बच्चे के साथ मिलकर नई-नई शब्द पहेलियां बनाएं।
- बच्चे को समान अर्थ और विपरीत अर्थ के बारे में समझाएं।

- अपने बच्चे को किताबें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करें।
- अपने बच्चे को अलग-अलग भाषाओं का ज्ञान दें।

8. **संगीत संबंधी बुद्धिमता :** इस प्रकार के बुद्धि वाले बच्चे किसी भी जानकारी को अलग-अलग आवाज़ों एवं संगीत संबंधी प्रोत्साहन के जरिए जल्दी ही समझ पाते हैं।
   - बच्चे को कविता गीत (गीत गाकर) सुनाएं। ध्यान रखें कि कविता या गीत के बोल आपके बच्चे को सही से समझ में आएं।
   - बच्चे के साथ समय व्यतीत करें।
   - उसके साथ वार्तालाप करते समय चेहरे पर भाव लाएं।
   - उसको शाम को पार्क वगैरह लेकर जाएं एवं उसे पार्क में होने वाली अलग-अलग गतिविधियों के बारे में अवगत कराएं।
   - अपने घर पर भी अलग-अलग वस्तुओं से संगीत बजाएं जैसे कि चम्मच और पानी की कटोरी के साथ।
   - बच्चों को अलग-अलग भाषाओं का ज्ञान दें।
   - रात्रि के समय बच्चे को कहानी गाकर सुनाएं। इससे आपके बच्चे का किसी भी बात को बयां करने की प्रवृत्ति में सुधार होगा।
   - अपने बच्चे को अलग-अलग पक्षियों आदि की आवाज़ को नकल करने के लिए प्रोत्साहित करें।

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951(ई) के तहत एक सूचना जारी की है कि 12 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स+ फंजीसाइड्स+हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 8 अगस्त 2018 से ही बन्द कर दिया गया है। अन्य छः कीटनाशकों का प्रयोग 31 दिसम्बर, 2020 से बन्द कर दिया जाएगा। इनकी सूची इस प्रकार है:

8 अगस्त, 2018 से प्रतिबंधित कीटनाशक

1. **बेनोमाईल** (Benomyl)
2. **कार्बाराइल** (Carbaryl)
3. **डायजिनॉन** (Diazinon)
4. **फेनारिमोल** (Fenarimol)
5. **फेन्थियॉन** (Fenthion)
6. **लिन्यूरॉन** (Linuron)
7. **मैथॉक्सी इथाइल मरकरी क्लोराइड** (Methoxy Ethyl Mercury Chloride)
8. **मिथाइल पैराथियॉन** (Methyl Parathion)
9. **सोडियम सायनाइड** (Sodium Cyanide)
10. **थियोमेटॉन** (Thiometon)
11. **ट्रायडमॉर्फ** (Tridemorph)
12. **ट्राइफ्लूरालिन** (Trifluralin)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

अपना पोषण अपने हाथ - पोषण वाटिका : एक आसान उपाय

- **पूनम, अशोक ढिल्लों एवं संतोष रानी**[1]
कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

देशव्यापी आहार सर्वेक्षणों से पता चलता है कि भारतीय आहार में सब्जियों, फलों युक्त खाद्य पदार्थों के कम सेवन के कारण प्रोटीन की तुलना में विटामिन और खनिज लवणों की अत्यधिक कमी है। कृषि क्षेत्र खाद्यान्न सुरक्षा की गारन्टी अवश्य देता है, किन्तु पोषण सुरक्षा चिन्ता का विषय बना हुआ है। भारतीय मेडिकल अनुसंधान परिषद् (आई. सी. एम. आर.) के अनुसार प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति को 300 ग्राम सब्जी की आवश्यकता पड़ती है :

हरी पत्तेदार सब्जी (ग्राम में)	जड़/कंद वर्गीय सब्जी (ग्राम में)	अन्य सब्जी (ग्राम में)
100	100	100

हमारे देश में यह 175 ग्राम प्रतिदिन ही प्राप्त होता है। ऐसे में यदि पोषण वाटिका सब्जियों की पूर्ति के लिए लगाई जाए तो यह मील का पत्थर साबित होगी। हमारे देश में पुराने समय में घर के पिछवाड़े या आस-पास खाली ज़मीन में घरेलू उपभोग के लिए साग-सब्जियां और फलदार पेड़ लगाने का प्रचलन गांव में ही नहीं शहरों में भी था। पोषणवाटिका अर्थात् गृह वाटिका उस वाटिका को कहा जाता है, जो घर के अगल-बगल और घर के आंगन में ऐसी खाली जगह पर होती है, जहां पारिवारिक श्रम से परिवार के इस्तेमाल हेतु विभिन्न ऋतुओं में मौसमी फल और सब्जियां उगाई जाती हैं।

पोषण वाटिका के मुख्य तीन लाभ हैं :

1. **स्वास्थ्य :** पोषण वाटिका से परिवार एवं पड़ोसियों को तरोताज़ी हवा, प्रोटीन, खनिज एवं विटामिनों से युक्त फल व सब्जियां प्राप्त होती हैं। साथ ही वाटिका में कार्य करने से शारीरिक व्यायाम भी होता है जिससे परिवार के सभी सदस्य स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते हैं।
2. **समृद्धि :** प्रत्येक परिवार में औसत 50 से 100 रुपए की सब्जी एवं फल प्रतिदिन बाज़ार से खरीदे जाते हैं। इस प्रकार प्रति माह हम 1500-3000 रुपए की बचत कर सकते हैं। इससे आप अपने परिवार का भोजन संबंधी बजट तैयार कर सकेंगे और आपकी आर्थिक बचत में भी सहायता मिलेगी।
3. **बुद्धिमता :** स्वयं की मेहनत एवं पसीने से उपजी हरी-भरी तरो-ताज़ा सब्जियों को देखकर आपका मन प्रसन्न होगा। इसके अतिरिक्त सब्जियां खरीदने के लिए बाज़ार में जाने का आपका बहुमूल्य समय एवं पैसा भी बच जाता है। इस प्रकार पोषण वाटिका स्थापित करना परिवार के स्वास्थ्य एवं समृद्धि के लिए महत्वपूर्ण कदम साबित होगा।

सब्जियों में पाये जाने वाले पौष्टिक तत्व :

पौष्टिक तत्त्व	प्रमुख सब्जियां
कार्बोहाइड्रेट	आलू, शकरकंद, अरबी, चुकुन्दर, आदि
प्रोटीन	मटर, सेम, फ्रेंचबीन, लोबिया, ग्वार, चौलाई आदि
विटामिन-ए	पत्तागोभी, गाजर, टमाटर, पालक, सरसों का साग, चौलाई, धनिया, पुदीना, बथुआ, करी पत्ता आदि

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, फतेहाबाद।

विटामिन-ई	हरी पत्तेदार सब्जियां, सलाद, शलजम के पत्ते आदि
विटामिन-के	सलाद, सेम, बंदगोभी, टमाटर, मेथी, आलू आदि
विटामिन-सी	केला, शिमला मिर्च, हरी मिर्च, सरसों का साग, धनिया, टमाटर, शलजम, फूलगोभी, करेला, मूली के पत्ते आदि
विटामिन बी 1	फूलगोभी, पालक, भिण्ड़ी, सरसों का साग, लोबिया, टमाटर, गाजर आदि
विटामिन बी 2	सलाद पत्ता, बैंगन, फूलगोभी, अरबी, चौलाई, बथुआ, पालक, सेम, भिण्ड़ी, सरसों का साग, लोबिया, टमाटर आदि
कैल्शियम	चुकुन्दर, चौलाई, मेथी, धनिया, कद्दू, प्याज़, टमाटर आदि
पोटैशियम	शकरकंद, आलू, करेला, मूली, सेम, प्याज़, ककड़ी आदि
फॉस्फोरस	लहसुन, मटर, करेला आदि
लौह	करेला, चौलाई, मेथी, पुदीना, पालक, मटर आदि

पोषण वाटिका में कब और क्या लगाएं

पोषण वाटिका में शाक-सब्जियों को तीन बार बोया जा सकता है, जो क्रमवार निम्नलिखित हैं :

खरीफ वाली सब्जियां : इन्हें जून-जुलाई में बोया जा सकता है। इस समय भिंड़ी, लौकी, करेला, टिंडा, तोरई, बैंगन, टमाटर, ग्वार, लोबिया, मिर्ची, अरबी आदि सब्जियों की खेती की जा सकती है।

रबी वाली सब्जियां : इन्हें सितंबर-अक्तूबर में उगाया जा सकता है। इस समय बैंगन, सरसों, मटर, प्याज़, लहसुन, आलू, टमाटर, शलजम, फूलगोभी, बंदगोभी, चना आदि सब्जियों की खेती की जा सकती है।

जायद वाली सब्जियां : इन्हें फरवरी-मार्च में उगाया जा सकता है। इस समय भिंड़ी, ककड़ी, खीरा, लौकी, तोरई, टिंडा, अरबी, तरबूज, मतीरा, खरबूजा, बैंगन आदि सब्जियों की खेती की जा सकती है।

पोषण वाटिका का प्रबंधन : सामान्यत: सब्जियों की बुवाई दो तरीकों से की जा सकती है - पौधशाला तैयार करके (टमाटर, बैंगन, मिर्च, प्याज़, गोभी वर्गीय सब्जियां) एवं सीधे बुवाई (खीरा वर्गीय सब्जियां, मूली, बीन इत्यादि)

पोषण वाटिका का नक्शा व रेखांकन

1. पोषण वाटिका के लिए भूखण्ड ऐसा हो जहां दिन में अधिक समय तक धूप मिले।
2. दक्षिण की तरफ खुला हो, कोई दीवार की छाया न पड़े।
3. एक परिवार (5-6 सदस्य) के लिए सब्जियों की आवश्यकता पूरी करने के लिए 250 वर्गमीटर का क्षेत्र पर्याप्त रहेगा। इसमें 8-10 वर्गमीटर की सुविधानुसार क्यारियां निर्मित कर मनपसन्द सब्जियां लगाएं।
4. नलकूप के आस-पास के स्थान का उपयोग।
5. बाड़ का उपयोग बेल वाली मौसमी सब्जियां जैसे- लौकी, करेला, कद्दू, सेम आदि के लिए कर सकते हैं।
6. भूखण्ड़ के एक कोने में कम्पोस्ट/जैविक खाद हेतु एक गड्ढ़ा बना सकते हैं जिसमें रसोई के व्यर्थ पदार्थ डालकर कम्पोस्ट खाद बना सकते हैं।
7. वाटिका के चारों तरफ सुरक्षा के लिए कांटों वाली घनी झाड़ी के रूप में बेर, करौंदा, नींबू आदि के लगाने के साथ बांस अथवा कंटीली तारों का उपयोग कर बाड़ लगाई जा सकती है जिससे जानवरों द्वारा खाने से बचाया जा सके।
8. सब्जियों व फलों को कीटों व रोग से बचाने के लिए जैविक कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए। नीमयुक्त कीटनाशकों, नीम - राख आदि का उपयोग करना उत्तम है।
9. पोषण वाटिका में बीचों बीच एक मीटर चौड़ा रास्ता बनायें व दोनों तरफ छोटी-2 क्यारियां निकालें।
10. सब्जियां पंक्ति में निश्चित दूरी पर लगायें जिससे निराई-गुड़ाई आसानी से हो।
11. बीज तथा पौध अच्छे विश्वसनीय स्त्रोत से लें।
12. औषधीय गुणों वाले पौधे जैसे तुलसी, पुदीना, ग्वारपाठा, अजवाइयन, सौंफ आदि भी अवश्य लगाएं।

पोषण वाटिका के लाभ

- जैविक उत्पाद (रसायन रहित) होने के कारण फल व सब्जियों में काफी मात्रा में पोषण तत्त्व मौजूद रहते हैं।
- बाज़ार में सब्जियों की कीमत अधिक होती है, जिसे न खरीदने से अच्छी खासी बचत होती है।
- परिवार के लिए ताज़ा फल - सब्जियां मिलती रहती हैं।
- वाटिका की सब्जियां बाज़ार के मुकाबले अच्छे गुणों वाली होती हैं।
- पोषण वाटिका लगाकर महिलाएं अपनी व अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को मज़बूत बना सकती हैं।
- पोषण वाटिका से प्राप्त मौसमी फल व सब्जियों को परिरक्षित कर के सालभर इस्तेमाल किया जा सकता है।
- यह बच्चों के प्रशिक्षण का भी अच्छा साधन है।
- यह मनोरंजन और व्यायाम का भी एक अच्छा साधन है।
- मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी खुद उगाई गई फल-सब्जियां बाज़ार की फल सब्जियों से अधिक स्वादिष्ट लगती हैं।

पोषण वाटिका निर्माण के आर्थिक लाभ

व्यक्ति पहले अपने परिवार का पोषण करता है, उसके बाद बेचता है। आवश्यकता से अधिक होने पर उत्पाद को बाज़ार में बेच देता है या उसके बदले दूसरी सामग्री प्राप्त कर लेता है। कुछ मामले में पोषण वाटिका आय सृजन का प्राथमिक उद्देश्य बन सकता है। अन्य मामले में यह आय सृजन का उद्देश्य के बजाय पारिवारिक सदस्यों के पोषण लक्ष्य को पूरा करने में मदद करता है। इस तरह पोषण वाटिका आय सृजन और पोषाहार का दोहरा लाभ प्रदान करता है।

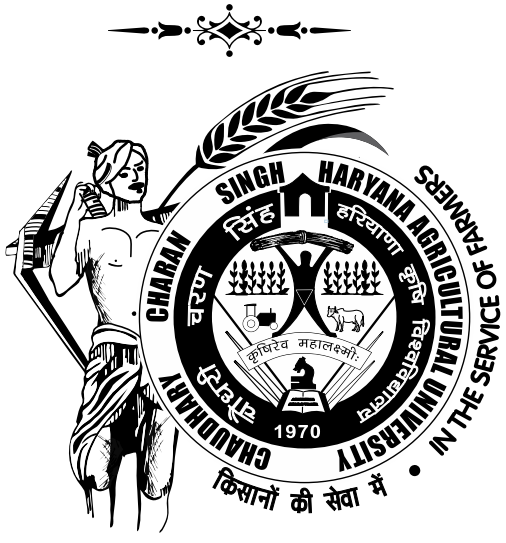

हाइड्रोजेलः कम पानी में अधिक उपज

- श्वेता एवं मनु
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

पानी की कमी की वजह से किसानों की परेशानियां बढ़ती जा रही है जिस कारण भविष्य में खेती करना मुश्किल हो रहा है और भुखमरी एवं गरीबी बढ़ती जा रही है। इन्हीं समस्याओं से छुटकारा दिलाने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा हाइड्रोजेल (सुपर अवशोषक) तैयार किया गया है जो सूखाग्रस्त क्षेत्रों में खेती करने में मददगार साबित हो रही है। इसका प्रयोग ऐसे स्थानों पर किया जाता है जहां पानी की कमी होती है या सिंचाई के लिए उपलब्ध साधन नहीं मिल पाते। पानी की कमी की वजह से किसानों को पानी खरीदना पड़ता है और इससे लगात भी बढ़ जाती है।

हाइड्रोजेल एक ऐसी जेल है जो पानी में मिलते ही अधिक मात्रा में पानी को अपने अंदर तक सोख लेता है। यह पौधों की जड़ों के पास रहता है क्योंकि जड़ों में ही पानी की सबसे ज्यादा कमी रहती है। इसका उपयोग आप 3-4 बार कर सकते हैं। इससे आपके खेतों को कोई नुकसान नहीं होता। एक एकड़ में 2-3 किलो हाइड्रोजेल की ही आवश्यकता पड़ती है तथा 40-50 डिग्री सेल्सियस तापमान पर भी यह खराब नहीं होती। कृषि हाइड्रोजेल मिट्टी के भौतिक गुणों को बदल सकता है। यह मिट्टी की पानी धारण करने की क्षमता में वृद्धि करता है एवं मिट्टी के कटाव और अपवाह को भी कम करता है। सिंचाई की आवृत्ति (नम्बर) को कम करने में सहायक है। पौधों की पानी की आवश्यकता को कम करने में सहायक है तथा पानी की गुणवत्ता को बढ़ाता है। इसको उपयोग करके खारा एवं कठोर पानी की अवशोषण क्षमता को बढ़ा सकते हैं। इसकी कीमत भी कम होती है। पानी के पीएच मान को नियंत्रित करने में सहायक होता है। यह एक बार पानी को अवशोषित कर उसे कई दिनों तक पौधों में पर्याप्त नमी बनाए रखता है।

कृषि में सुपर अवशोषक का अनुप्रयोग : हाइड्रोजेल एक मिट्टी योजक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके अलावा, हल्की मिट्टी की जल-धारण क्षमता को बढ़ाते हुए सुपर शोषक पॉलिमर भारी मिट्टी की पारगम्यता समस्याओं और उर्वरकों में कठिनाइयों का समाधान कर सकता है। सिंचित मिट्टी के मामले में वे सिंचाई अंतराल बढ़ाते हैं। इसकी मात्रा मिट्टी की भौतिक स्थितियों, क्षेत्र की जलवायु और मिट्टी में सुपर अवशोषक की उपयोग राशि पर निर्भर करती है। सुपर अवशोषक का मिट्टी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है, और मिट्टी में विषाक्त नहीं माना जाता है। पानी को बनाए रखने के अतिरिक्त निरंतर मात्रा परिवर्तन (पानी खोने के दौरान मुद्रास्फीति और संकुचन के दौरान विस्तार) के कारण सुपर अवशोषक मिट्टी में हवा की मात्रा में वृद्धि करेंगे। ये यौगिक कुछ प्रकार के उर्वरकों के बेहतर प्रदर्शन और मिट्टी के सूक्ष्मजीवों की बेहतर गतिविधियों का कारण बनेंगे।

सुपर शोषक पॉलिमर : सामग्री अपने शुरुआती मोनोमर्स पर वापस नहीं लौट सकती, यानी वे वैज्ञानिक रूप से विषाक्त आरंभ करने वाली सामग्री के लिए अपरिवर्तनीय हैं। दुनिया भर में अनुसंधान ने मिट्टी की सूक्ष्म आबादी पर कोई कम या लगातार प्रतिकूल प्रभाव नहीं दिखाया है। हाइड्रोजेल की अनुशंसित अनुप्रयोग दर बहुत कम है यानी अधिकांश फसलों के लिए 2.5 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर, जोकि मिट्टी के 2.5 पीपीएम प्रति यूनिट वजन के बराबर है। यह उपज में 10-50 प्रतिशत, फल के आकार और रंग में वृद्धि कृषि उपज की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार और पौधों के बायोमास में वृद्धि करती है।

जागरूक उपभोक्ता - समय की आवश्यकता

- कुसुम राणा व सुमन मलिक
कृषि विज्ञान केन्द्र, झज्जर
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कोई भी व्यक्ति जो स्वयं के उपयोग के लिये, परिवार, व्यापार आदि के लिये कोई भी सामान खरीदता है अथवा किसी सेवा जैसे फोन, चिकित्सा सेवाएं, बैंक बीमा आदि का उपयोग करता है - उपभोक्ता कहलाता है। खान-पान की वस्तुओं में नित नई मिलावटों का पाया जाना, भ्रामक विज्ञापन, गलत माप-तोल, नकली वस्तुएं, गांरटी एवं वारंटी के बावजूद सर्विस का न देना, ऑन-लाईन शापिंग कार्ड आदि अनेक कारण है जिसके लिये हमें सजग उपभोक्ता बनने की आवश्यकता है ताकि बाजार में प्रचलित विभिन्न कुरीतियों से बचाव हो सके।

सजग उपभोक्ता बनने के लिये खरीददारी करने जाने से पहले सूची बना लें ताकि आनावश्यक सामान खरीदने से बचा जा सके। जहां तक संभव हो खाद्य पदार्थ मौसम के अनुसार ही खरीदें। उस समय वस्तुएं न केवल सस्ती होती है अपितु अच्छी भी मिलती हैं। केवल भली प्रकार से डिब्बावंद व लेबल लगी वस्तुएं ही खरीदें। एगमार्क, आईएसआई, एफपीओ मार्क, भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण (एफएसएसएआई) जैसे गुणवत्ता चिन्ह पदार्थों की गुणवत्ता सुनिश्चित करते हैं। डिब्बे पर उत्पादनकर्ता का नाम, पता, बनाने की तारीख, इसे कब तक प्रयोग कर सकते हैं तथा अधिकतम खुदरा मूल्य क्या है, इत्यादि को देख कर ही सामान खरीदें। खाद्य पदार्थों में रंग का प्रयोग हानिकारक है। जहां तक संम्भव हो कृत्रिम रंगों से बनी मिठाईयों का सेवन न करें। त्यौहार व शादी-ब्याह के मौसम में मावा से बनी मिठाईयों, पनीर को न खरीदें व न ही किसी को उपहार में दें।

सामान के साथ मिले गांरटी-वारंटी कार्ड को संभाल कर रखें पक्का बिल लें व बिल पर दुकानदार की मोहर व हस्ताक्षर अवश्य लें। दुकानदार की सामान बेचने की विभिन्न तरकिबों जैसे सेल, मुफ़्त उपहार आदि से सजग रहें। कुछ दुकानदार, दुकान पर नोटिस लगा देते हैं या कहते हैं कि बिका हुआ माल वापिस नहीं होगा। यह गलत है और कानून के विरूद्ध है। आप क्षतिपूर्ति के लिये उपभोक्ता फोरम में केस दर्ज करवा सकते हैं।

यदि उपभोक्ता 20 लाख रुपए तक की भरपाई की मांग करते हैं तो वे जिला फोरम में, 20 लाख रुपए से 1 करोड़ तक राज्य फोरम में तथा 1 करोड़ रुपए से अधिक मांग हेतु राष्ट्रीय फोरम में अपनी शिकायत दर्ज करवा सकते हैं। राष्ट्रीय फोरम से असंतुष्ट होने पर सर्वोच्च न्यायालय में तीन माह में याचिका दर्ज की जा सकती है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अर्न्तगत उपभोक्ता को निम्न राहत मिल सकती है जैसे - वस्तुओं से त्रुटियों को दूर करना; वस्तुओं को बदल देना; पैसों की वापसी एवं दुर्घटना होने पर क्षतिपूर्ति।

उपभोक्ता शिकायत दर्ज कैसे करें

उपभोक्ता निम्नलिखित जानकारी के साथ जिला फोरम में अपनी याचिका दायर कर सकते हैं : याचिकर्ता का नाम, पता एंव विवरण; प्रतिवादी पक्ष का नाम पता एवं विवरण; शिकायत से संबंधित तथ्य जैसे कि व्यापारिक दुर्व्यवहार, कब और कहां हुआ; शिकायत से संबन्धित दस्तावेज, यदि कोई है; एवं मांगी गई राहत-क्षतिपूर्ति इत्यादि।

जो भी प्रमाण याचिका में संलग्न करें, उनकी एक कांपी अपने पास रखें तथा डाक व कोरियर से भेजने की तारीख नोट करे लें।

Care of Newborn Calf

- **Swati Ruhil and Vikas Khichar**[1]
Haryana Pashu Vigyan Kendra (HPVK), Uchani, (Karnal)
Lala Lajpat Rai University of Veterinary & Animal Sciences, Hisar

The first hour after birth is very crucial time for the newborn calf. Proper care and management during this period can decrease the incidence of calf diseases and mortality. Hence, the following points must be taken in consideration after the birth of newborn :

1. **Respiration management** : The first step after the birth should be cleaning of the mucus present in nostrils and mouth to avoid any breathing problems.
2. **Navel cord management** : Navel cord should be tied at about 2 inches from the base and cut with sterile scissors or blade. It should be dipped in 7% Tincture Iodine solution to prevent infections.
3. Allow the dam to lick and clean the calf as it stimulates the calf's blood circulation and encourages it to stand up and walk.
4. Clean the dam udder before allowing the calf to suckle.
5. **Colostrum feeding** : Calf should feed colostrum within half to one hour of birth at about 10% of calf body weight upto a maximum of 5-6 litres per day. Feeding of colostrum after 24 hours of birth doesn't provide sufficient immunity as absorption of immunoglobulins present in colostrum decreases with time.
6. **Identification** : After the birth identification of calf should be done either by ear tagging or any other approved method for easy record keeping and monitoring.
7. **Water** : Adequate supply of clean water should be provided.
8. **Deworming** : Deworning should be done within 15 days of age thereafter every month upto six months then every three months.
9. **Dehorning** : Dehorn the calf within 15 days after birth either chemically or by use of electric dehorner to facilitate the management and handling.
10. **Calf starter** : To ensure better growth and early maturity calf starter should be feed from 2-8 week of age. An ideal example of calf starter is: Maize- 52; Oats- 20;Soyabean meal- 20; Molasses- 5; Salt- 0.5; Mineral mixture- 1.5 and Vitamins- 1 per cent, respectively.
11. **Vaccination**: At three month of age, consult the veterinarian for the vaccination of calf.

During first week of life calf is susceptible to many infections like navel ill, calf scour, pneumonia, etc. which accounts for 20% of calf mortality. So, adequate colostrum feeding and managemental practices are essential for calf survival.

[1]Government Veterinary Hospital, Dhab Dhani, Bhiwani

Micro-propagation : A Tissue Culture Approach in Sugarcane

- **Sudhir Sharma, Upender Balyan and Lokesh Yadav**
Regional Research Station, Karnal
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

The production of quality seed through micro-propagation technique is well recognized now. The sustained high production of sugar per unit area depends primarily on continuous supply of adequate quantity of good quality seed cane, which has to be genetically pure, free from diseases, pests and with no nutritional disorders. This can only be achieved by applying the tissue culture techniques. Since the plants are free from infections, so the original vigour of the newly bred variety is maintained. Sugarcane is a vegetatively propagated crop and is cultivated through stem cuttings using 3-budded 'setts'. Diseases like red rot, leaf scald, ratoon stunting ; grassy shoot and mosaic are carried to succeeding crops through infected seeds. Thus, heavy financial losses occur annually on account of reduction in cane yield and sucrose recovery. In this context, use of healthy seed of recommended varieties through hot air treatment/and shoot tip culture technique becomes exceedingly important. The conventional mode of seed multiplication has a multiplication rate of 1: 8-10. As a result, a new variety takes 7-8 years to saturate the command area. Micro-propagation offers a thousand-fold rate of multiplication and is, therefore, the quickest available method in sugarcane .In a nutshell, micro-propagation in sugarcane provides a rapid technique of providing healthy seed of new varieties and rejuvenates old run-down varieties. The technology is not only economically viable but profitable as well.

The micro propagation technique involves the following steps :

A. Collection of explant and sterilization : Actively growing tops (shoots) are collected from 3-4 months old crop. Tops with the growing apices are cut approximately 10 cm long. Outer sheaths are removed by wiping the sheath with rectified spirit. The shoots are then washed with soap water for about 2-3 minutes followed by several changes of water. The plant segment is then thoroughly rinsed in 70% ethanol for one minute. Disinfection is done by treating with chlorine water or sodium hypo-chloride solution for 10-15 meters. The smell of chlorine is removed by 3-4 washings of sterile water under aseptic condition.

B. Initial explant culture : The isolation of shoot apex meristem is done under laminar flow by carefully removing the outer whorls of the developing leaves. The apical dome

along with surrounding leaf primordia is excised with the help of sterile sharp blade. The explant is then placed aseptically on modified Murashige and Skoog medium for initial explant culture over filter paper bridge or cotton swab.

C. Multiplication : The elongated explants are transferred to the multiplication medium that forms 2 to 5 shoots in first multiplication cycle of about 45 days. The proliferation in the second (first sub-culture) cycle occurs at the highest rate, 5 to 9 fold, which gradually declines in subsequent cycles, 3 to 5 fold in the last 7 cycle. Shoot tip or meristem culture produces normal plants upto 7 cycles of multiplication. After 7 cycles, a green mass, sometimes, starts to appear at the base of the formed shoots, which produces abnormal shoots. Therefore, it is recommended not to go beyond 7 sub-cycles of sub-culturing. The number of resulting shoots under favourable conditions may produce 36,000 to 75,600 plants, depending on the genotype in a period of four and a half months. The basal Murashige and Skoog medium (1962) along with suitable concentration of auxin and cytokinin is used for multiplication.

D. Rooting : Rooting of plants is achieved by transferring the individual or group of plants in rooting medium. A special rooting medium has been developed for inducing root formation. Root initiation is visible in a week in many genotypes and three weeks in all the genotypes and the rooted plantlet is then ready to transfer to potting mixture for hardening.

E. Transfer to pots/field (hardening/acclimatization) : The plants are taken out from vessels in a cool and shaded area. One variety should be taken at a time and processed at the earliest. The plant-containing vessel is first inspected. If there are signs of root rotting or leaf rotting, the damaged plants with the container are to be discarded. Planting of tissue culture plants should be done in cool hour's i.e morning or afternoon. The rooted plants are taken out from bottles, washed properly under running water to remove the slimy medium attached with the roots and excess roots are trimmed before transfer. A mixture of sieved sterilized soil and sand in the ratio of 2:1 should be used for transplanting. Plantlets should be immediately watered after transplanting in trays or pots and shifted to a misting chamber. With the sprouting of the first true leaf on six day, the misting is replaced by manual watering. If necessary, preventive measures for pest control should be applied. The hardening process takes about 20-30 days. The hardened plant is transplanted in the field in trenches at a distance of 45 or 60 cm within row and 90 cm between rows. This may vary with genotype. Immediately after transplanting, irrigation should be given. Intercultural operations in crop raised through tissue culture are similar to conventional method. The seed from this crop can be multiplied further for one generation using STP (1:40) technique and thereafter, can be given for commercial cultivation.

F. Merits of Micropropogation

1. Quick multiplication (one shoot apex : several thousand plants)
2. Disease-free material
3. True-to-type plants
4. Easier transport
5. Low gestation period for exploiting new varieties
6. Rejuvenation of old varieties
7. Germplasm storage
8. Micropropagated plants are more vigorous, give higher cane yield and sucrose percentage. The quality of seed produced by this technique can be maintained for 3-5 years with proper monitoring.

G. Scope

1. Sugarcane is a vegetatively propagated crop and normally requires 7-8 years or even more, for a newly developed variety to spread at large scale. During this period, deterioration of various yield and quality characteristics is inevitable prior to commercial use on account of systemic infections during vegetative multiplication. Tissue culture method (micro-propagation) is the only alternative approach for fast multiplication of a variety in its original form.
2. Micro-propagation is very effective in rejuvenating/ reviving the well adapted promising local cultivars facing gradual decline or degenerating in yield and vigour by freeing them from diseases due to accumulation of viruses and other systemic pathogens during prolonged vegetative cultivation. Unfortunately, MHAT (Moist Hot Air Treatment) is not effective against mosaic virus. The meristem culture is the only method to remove the SCMV (Sugarcane Mosaic Virus) as the meristematic tissue remains free from virus disease.
3. Considering the above advantages, micro-propagation has an important role to play in seed production programme of sugarcane.



Water in Agricultural Development and Food Security

- **Vijay[1] and Sube Singh**
Directorate of Extension Education
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Peri-urban Agriculture may also be known as peri-urban farming or gardening. It is a practice of doing agriculture in or around a town or city indicating areas along the urban-rural continuum. The fruit, vegetable, aromatic and medicinal herbs, ornamental plants, bee-keeping, dairy and fishery production may easily be carried out in the adjoining areas of National Capital and State Capital regions, especially in response to the daily demand of consumers within cities like Chandigarh, Panchkula, Delhi, Faridabad, Gurugram, etc. Often the more perishable and relatively high-valued products and by-products are favoured. The importance of peri-urban agriculture is increasingly being recognized by international organizations like UN-Habitat and FAO (World Food and Agriculture Organization) due to contributions of peri-urban agriculture to urban food security and nutrition.

Need and importance : The rapid urbanization in the past years in Haryana and increasing population with exponential rate resulted into the decreased cultivable land. The demand for fresh vegetables, fruits, aromatic and medicinal herbs, ornamental plants and milk products is constantly increasing in urban areas and peri-urban agriculture can fulfill this demand ensuring food security and can contribute to price stabilization through the development of important local food production centres of the diversified food system. This will prevent the conversion of agricultural land near urban areas into cities and towns. Degraded open spaces and vacant land adjacent to the cities are often used as informal waste dumpsites and are a source of health problems. Peri-urban agriculture contributes to disaster risk reduction and adaptation to climate change by reducing runoff, keeping flood plains free from construction, reducing urban temperatures, capturing dust and carbon dioxide. Growing fresh food close to consumers reduces energy spent in transport, cooling, processing and packaging. This will reduce the burden on transport and help in reducing greenhouse gas emissions from cold storage by increasing carbon sequestration. Peri-urban agriculture may be an integral part of the urban ecological system and can play an important role in the urban environmental management system. For most of the cities, the disposal of wastes has become a serious problem. The urban waste may be used as compost and sewerage water after treatment as irrigation for this peri-urban agriculture, which otherwise increasing air and water pollution in densely populated cities. This will also help in creating attractive employment option for poor urban residents and slum dwellers as labourers. In addition, compost-making initiatives create employment and provide income for the urban poor. Next to food security, peri-urban agriculture contributes to local economic development, poverty alleviation and social inclusion of the urban poor and women in particular.

Economic impacts : Growing food reduces the load on food import and saves household expenditures on food and poor people in these cities generally spend a substantial part of their income on food. Beside this, peri-urban agriculture stimulates the development of related micro-enterprises, the production of necessary agricultural inputs and the processing, packaging and marketing of outputs. Special attention is needed for the strengthening of the linkages between various types of enterprises in clusters or chains. The municipality and urban authority can play a crucial role in stimulating micro-enterprise development related to peri-urban agriculture like providing marketplaces for peri-urban growers, etc.

Social impacts: Peri-urban agriculture may function as an important strategy for poverty alleviation and social integration particularly, among the groups such as orphans, disabled people, women, recent immigrants without jobs, or elderly people, with the aim to integrate them more strongly into the urban network and to provide them with a decent livelihood so that they may feel enriched by the possibility of working constructively.

Challenges : There are chances of competition for resources with other urban sectors, aspects of agriculture that may be unpleasant for city dwellers and quality of inputs must be monitored. Wise resource allocation is a quintessential struggle for agriculture, and is especially greater for peri-urban agriculture than rural agriculture due to its proximity to greater number of people and to existing stresses on the urban environment. Peri-urban agriculture uses land, water, labour and energy that might be used by other urban economic sectors.

- Some aspects arisen due to peri -urban agriculture may be unpleasant for urban residents, including smells, pollution and disease.
- If dairy is promoted in proximity of cities, the management of animal waste can be challenging, since manure may contain chemicals and heavy metals unsuitable for use as fertilizer and may even be hazardous.
- Pathogens may be harmful from live animals in close proximity to dense human populations.
- Sewerage water, if not treated properly before

contd. on page 32

[1]SRF, Subhash Chandra Foundation Project (IDV), KVK, Sadalpur

ग्वार : एक गुणकारी फसल

- **यश पाल सिंह सोलंकी, बी. पी. राणा एवं मीनाक्षी सांगवान**
कृषि विज्ञान केन्द्र, रोहतक
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

ग्वार का अत्यधिक औद्योगिक महत्व है एवं कुल उत्पादन का लगभग 90 प्रतिशत निर्यात किया जाता है जो कि कपड़ा, कागज़, श्रृगांर, खनन, खाद्य पदार्थ, तेल, गैस व विस्फोट उद्योगों में प्रयोग किया जाता है। विश्व के सम्पूर्ण ग्वार उत्पादन का लगभग 80 प्रतिशत उत्पादन भारत व पाकिस्तान में होता है। भारत में भी राजस्थान तथा इसके सीमावर्ति राज्यों जैसे हरियाणा, पंजाब, गुजरात के शुष्क क्षेत्र ग्वार उत्पादन के मुख्य क्षेत्र हैं।

उन्नत किस्में

किस्म	पकने की अवधि (दिन)	पैदावार (क्विं./एकड़)	विशेषता
एच.जी. 75	110-115	7-8	बीमारी सहन करने व अधिक गोंद देने वाली किस्म।
एच.जी. 365	85-110	6.5-7.5	कम समय में पकने वाली व बीमारी सहनशील किस्म।
एच.जी. 563	85-100	7-8	कम समय में पकने वाली, सभी बीमारियों की प्रतिरोधी किस्म।
एच.जी. 870	100 - 105	7-8	यह किस्म सभी बीमारियों के प्रति सामान्यत: प्रतिरोधी है।
एच.जी. 2-20	85-100	8-9	मोटा दाना व खेत में न गिरने वाली किस्म।

भूमि व इसकी तैयारी : भूमि मध्यम से हल्की तथा अच्छी जल निकास वाली होनी चाहिए। बिजाई से पहले दो-तीन बार जुताई व सुहागा लगा कर खेत अच्छी तरह से तैयार कर लें।

बिजाई का समय : बीज उत्पादन के लिए बिजाई का सही समय 15 जून से 20 जुलाई है।

बीज की मात्रा : बीज की फसल के लिए एक एकड़ में 5-6 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त रहता है। कतार से कतार के बीच 30 सैं.मी. का फासला रखकर बिजाई करें।

बीज उपचार : ग्वार के बीज को राइजोबियम व फास्फोरस घुलनकारक बैक्टीरिया से उपचारित करना चाहिए। बीमारी की रोकथाम के लिए एक ग्राम स्ट्रैप्टोसाइक्लिन, एक लीटर पानी प्रति एक कि.ग्रा. बीज के हिसाब से घोल बनायें तथा बीज को 25-30 मिनट तक बिजाई से पहले भिगोएं। छाया में सुखा कर बिजाई करें।

खाद : ग्वार की फसल में बिजाई के समय 35 कि.ग्रा. डी.ए.पी. प्रति एकड़ के हिसाब से डालें।

खरपतवार नियन्त्रण : ग्वार में खरपतवार नियन्त्रण के लिए बैसालीन 800 मि.ली. प्रति एकड 250 लीटर पानी में मिला कर बिजाई से पहले अच्छी नमी हो तभी छिड़कें और मिट्टी में मिला दें। अगर संसाधन हो तो एक निराई बिजाई के 25-30 दिन बाद लाभदायक होगी।

सिंचाई : अगर फसल जून के तीसरे पखवाड़े में बोई गई है और मानसून देर से आता है तो एक सिंचाई अवश्य करें।

कीट प्रबन्धन : फसल में तेला के आक्रमण की स्थिति में 200 मि.ली. मैलाथिआन 50 ई.सी. को 200 लीटर पानी में मिला कर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करें।

बीमारियों की रोकथाम : बिजाई के आठ सप्ताह बाद या बीमारी की शुरूआत होने पर स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (30 ग्रा. प्रति एकड़) और कापर आक्सीक्लोराईड (200 ग्रा. प्रति एकड़) को 200 लीटर पानी में मिलाकर 15-20 दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव करें।

कटाई व गहाई : जब फसल की पत्तियां झड़ जाएं तब फसल की कटाई करें। कटी हुई फसल को 7-8 दिन धूप में सुखा कर थ्रैशर से निकाल लें।

मण्डीकरण : ग्वार की फसल को मण्डी में ले जाने से पहले अच्छी तरह से साफ कर लें तथा मण्डी भाव पर नज़र रखें। जब भाव उचित लगे उत्पाद को बेच दें। ग्वार को लम्बे समय तक भण्डारण किया जा सकता है।

किसान ग्वार की उपर्युक्त क्रियाओं को अपनाकर अधिक उपज ले सकते हैं तथा मुनाफा बढ़ा सकते हैं।

contd. from page 31

application, this wastewater can contaminate crops or surrounding vegetation with pathogens that make them unsafe for human consumption. This is a food safety concern.

- The disposal of manure is a concern as well, since manure from industrial livestock systems may contain levels of chemicals such as nitrogen, phosphorus and heavy metals which characterize it as a solid waste when used in excess. This is not only a concern in urban and peri-urban areas, but also faces rural farms as well.
- The main challenge to the viability of both urban and peri-urban agriculture is land availability due to changing land rights, uses and values. High population densities lead to competition and conflicts over land and natural resources as land is converted from agricultural to residential and business uses.

Strategies : Urban policy makers and authorities can substantially contribute to the development of safe and sustainable peri-urban agriculture by creating a conducive policy environment and formal acceptance of peri-urban agriculture as an urban land use by integration of peri-urban agriculture in urban land use planning and zonification. Secondly, there should be provision of training and extension services to peri-urban producers, strengthening & supporting farmer organizations, development of adequate technologies for peri-urban agriculture, enhancing access to water inputs and basic infrastructure, enhancing access of urban farmers to credit and finance, facilitate (direct) marketing, supporting micro-enterprise development. Thirdly, by taking measures that prevent/ reduce health and environmental risks associated with peri-urban agriculture. Improved coordination between health, agriculture and environmental departments, farmers' education on the management of health and environmental risks and training of food vendors and consumers.

हरियाणा खेती एवं अन्य प्रकाशनों में विज्ञापन हेतु विज्ञापन दरें

पृष्ठ	साधारण (रु०)	छः या छः माह से अधिक समय के लिए विज्ञापन दर (रु०)	रंगीन विज्ञापन दर (रु०)
चौथा कवर पृष्ठ	2500/–	2400/–	6000/–
दूसरा कवर पृष्ठ	2400/–	2300/–	5800/–
तीसरा कवर पृष्ठ	2300/–	2200/–	5500/–
साधारण पृष्ठ	2000/–	1900/–	4700/–
आधा पृष्ठ	1200/–	1100/–	–

लिफाफे का मुख पृष्ठ	–	आकार 9 सैं.मी. × 11 सैं.मी.	4000/–
पिछला पृष्ठ	–	आकार 18 सैं.मी. × 22 सैं.मी.	4000/–

जी.एस.टी. - विश्वविद्यालय के नियमों के अनुसार।

विज्ञापन देने हेतु निम्न पते पर संपर्क करें :

प्रकाशन अनुभाग

गांधी भवन

चौ. च. सिं. हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय

हिसार (हरियाणा)

फोन : 01662-255234

ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती

वर्ष 52 अंक 07



जुलाई 2019
वार्षिक चंदा ₹ 150
आजीवन सदस्यता ₹ 1500

प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित

© कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 52 | जुलाई 2019 | अंक 07

इस अंक में

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ
मक्का फसल में खरपतवार नियंत्रण	एस. एस. पुनियां, अजय सिहं एवं टोडरमल	1
शुष्क क्षेत्रों में खरीफ फसलों की पैदावार बढ़ाने हेतु : सामयिक प्रबंधन व सुझाव	सुरेन्द्र कुमार शर्मा एवं सूबे सिंह	2
राइजोबैक्टीरिया : रासायनिक खाद का उच्चतर विकल्प	कविता रानी, पंकज शर्मा एवं राहुल कुमार	3
बाग लगाने की वैज्ञानिक विधि - सावधानियां	अंकित गावरी, जीत राम शर्मा एवं प्रवीण	3
बाग लगाने से पहले मिट्टी की जांच	राकेश कुमार, रीतिका एवं मनोज कुमार शर्मा	4
कपास की फसल में बीज एवं मृदा जनित रोग	अनिल कुमार सैनी एवं धर्मेंदर सिंह	5
हल्दी का संसाधन एवं इसके लाभ	नेहा, वीनू सांगवान एवं विकास कुमार	6
हरी खाद की उपयोगिता	सुनील बैनीवाल, देवेंद्र सिंह जाखड़ एवं राहुल कुमार	6
आलू का मूल्य संवर्धन एवं फसलोपरांत प्रबंधन	कनिका पंवार एवं इंदु पांचाल	7
बागवानी फसलों की गुणवत्ता मूल्यांकन के लिए गैर-हानिकारक इमेजिंग तकनीक	सचिन, वी. के. सिंह एवं सुशांत भारद्वाज	8
वैज्ञानिक विधि से बाग लगाएं	सुलेमान मोहम्मद एवं विरेंद्र सिंह	9
स्प्रेयर का रख-रखाव : कैसे	विनोद कुमार, नरेंद्र एवं सुशील कुमार	10
ब्रिकेटिंग: धान के भूसा प्रबंधन का एक अच्छा विकल्प	यादविका, कमला मलिक एवं एम. के. गर्ग	11
घरेलू स्तर पर खाद्य पदार्थों का सुरक्षित भण्डारण	पूनम एवं अशोक ढिल्लों	18
बच्चों के विकास में आंगनवाड़ी केन्द्रों का योगदान	पूनम रानी, बिमला ढांडा एवं सलोचना	19
किसानों के लिए खाद्य प्रसंस्करण का महत्व	मोनिका माथुर एवं रवीना कारगवाल	20
बढ़ता नदी प्रदूषण : एक सामाजिक आर्थिक समस्या	जतेश काठपालिया, रश्मि त्यागी एवं सुभाष चन्द्र	21
बुखार (ज्वर) में भोजन प्रबंधन	संतोष रानी, राजेश दहिया एवं कान्ता सबरवाल	22
कैसे हों धात्री (दूध पिलाने वाली) माताओं के वस्त्र	पारुल गिल, पंकज गिल एवं पूनम मलिक	23
गर्मी के मौसम में स्वास्थ्य सम्बन्धी सुझाव	वीनू सांगवान एवं मीनू सिरोही	23
पशुओं के लिए साइलेज उत्पादन	वीनस, ज्योति शून्थवाल एवं सज्जन सिहाग	24
भिंडी की फसल : माइट की रोकथाम	बजरंग लाल शर्मा, अनिल एवं नरेश कुमार	25
बच्चों में भाषा कौशल का विकास	रीना, रीतु एवं बिमला ढांडा	25
घीया की वैज्ञानिक विधि से खेती	मक्खन मजोका, शिवानी कम्बोज एवं धर्मवीर दुहन	26
Water Management for Agricultural Development and Food Security	Sube Singh, Vijay and Rahul Kumar	28
Dust Storm : Causes and Preventive Measure	Yogesh Kumar, Raj Singh and Anil Kumar	30
Agro-Techniques for Direct Seeding of Basmati Rice	Satyajeet, Samunder Singh and S. P. Yadav	31
Practical Methods of Heat Detection in Dairy Cows and Buffaloes	Swati Ruhil and Vikas Khichar	32
स्थाई स्तम्भ : अगस्त मास के कृषि कार्य		**13**

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

सह-निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह-निदेशक (हिन्दी)

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
विस्तार शिक्षा निदेशालय

सम्पादक (अंग्रेजी)
सुनीता सांगवान
प्रकाशन अनुभाग

डीटीपी एवं आवरण सज्जा
राजेश कुमार
प्रकाशन अनुभाग

मक्का फसल में खरपतवार नियंत्रण

✍ **एस. एस. पुनियां, अजय सिहं एवं टोडरमल**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मक्का हरियाणा राज्य में खरीफ व बसंत ऋतु में बोई जाने वाली पंचकुला, अम्बाला, यमुनानगर, कुरूक्षेत्र व करनाल ज़िलों की प्रमुख फसल है। खरीफ की फसल में बसंत ऋतु की फसल की अपेक्षा औसत पैदावार काफी कम है जिसका मुख्य कारण बरसात के बार-बार आने पर खरपतवारों का उचित नियंत्रण न हो पाना है। खरपतवारों का उचित प्रबन्ध न करने पर मक्का के उत्पादन में 50-60 प्रतिशत तक की कमी पाई जाती है।

मक्का फसल में प्रारम्भ में बढ़वार मन्द गति से होती है। अत: खेत में पर्याप्त संख्या में खरपतवार उगकर फसल को भारी नुकसान पहुंचाते हैं। मक्का के खेत में भूमि की किस्म, जलवायु तथा मौसम के अनुसार अलग-अलग खरपतवारों की किस्में पाई जाती हैं जैसे कि डीला, दूब, सांवक, पानपत्ता बेल, बरू, मकड़ा, तकड़ी घास, पैरा घास व हुलहुल इत्यादि। अत: इन खरपतवारों की वृद्धि को प्रारम्भिक जीवन काल में नष्ट करके खेत को खरपतवार विहीन रखना आवश्यक है। प्रयोगों के आधार पर पाया गया है कि फसल की बुवाई के 45 दिन तक खेत को खरपतवारों से मुक्त रखने में सम्पूर्ण जीवन काल तक खरपतवारों को नष्ट करने के समान उपज प्राप्त होती है। मक्का के खेत में उगे खरपतवारों को नष्ट करने के लिए यांत्रिक तथा रासायनिक दोनों विधियों का प्रयोग किया जाता है। प्रारम्भ में यह धारणा थी कि मक्का के खेत में गुड़ाई करके खरपतवारों के नष्ट हो जाने के साथ ही भूमि खुल जाती है जिससे मृदा में वायु संचार के बढ़ जाने से अधिक उपज प्राप्त होती है।

शाकनाशक पदार्थों के उपलब्ध न होने पर मक्का की फसल में 2-3 बार निराई-गुड़ाई करनी आवश्यक होती है। इसमें प्रथम निराई बोने के 15 दिन बाद एवं दूसरी 30-35 दिन बाद की जानी चाहिए। पौधे में दूसरी निराई के समय अतिरिक्त तथा कमज़ोर पौधों की छंटनी भी की जाती है। फसल के घुटनों तक बढ़ जाने पर निराई-गुड़ाई नहीं करनी चाहिए। निराई खुरपी, हैण्ड हो तथा बैलों या ट्रैक्टर चालित हो या कल्टीवेटर से की जाती है। ध्यान रखना चाहिए कि गुड़ाई 4-5 सैं.मी. से अधिक गहरी न की जाए। गुड़ाई सावधानीपूर्वक इस प्रकार की जानी चाहिए कि जिससे पौधों तथा जड़ों को क्षति न पहुंचने पाए। परन्तु बार-बार बरसात होने की वजह से एवं निराई-गुड़ाई के समय पर उपलब्ध न होने की वजह से रासायनिक खरपतवार नाशक की ज़रूरत पड़ती है। इस दिशा 400 से 600 ग्राम एट्राजीन (50 प्रतिशत घुलनशील पाऊडर) प्रति एकड़ 200 से 250 लीटर पानी में मिलाकर बिजाई के तुरन्त बाद छिड़कें। छिड़काव के समय भूमि में नमी रहने पर इस रसायन की प्रभावकारी शक्ति बढ़ जाती है। परन्तु एट्राजीन केवल सांवक, मकड़ा व कुछ चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का ही नियंत्रण करती है। अगर खेत में संकरी चौड़ी पत्ती व डीला जाति के खरपतवार होते हैं टैंबोट्रायोन (लोडिस 34.4 प्रतिशत घु.पा.) का 115 मि.ली. तैयार शुद्ध मिश्रण 400 मि.ली. चिपचिपे पदार्थ को 200 लीटर पानी की मात्रा बिजाई के 10 से 20 दिन बाद या खरपतवार की 2-3 पत्ती अवस्था पर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

पिछले कुछ वर्षों में किसानों के खेतों पर किए गए प्रयोगों से पता चला है कि टैम्बोट्रायोन का प्रयोग करने से उपज 36.3 प्रतिशत बढ़ी है। यह खरपतवारनाशक उन खरपतवारों को भी मारता है जो कि एट्राजीन के प्रयोग द्वारा नियंत्रित नहीं होते (सारणी 1)

सारणी 1: खरीफ ऋतु की मक्का में खरपतवारनाशकों का असर, उपज पर प्रभाव व लाभ

शाकनाशक	उपज (कि.ग्रा./एकड़)	कुल आय (रु./एकड़)	कुल व्यय (रु./एकड़)	खरपतवार नियंत्रण प्रतिशत	लाभ : लागत अनुपात
कन्ट्रोल	1,288	18,032	8,400	0	2.14
एट्राजीन	1,576	22,008	8,700	55	2.52
टैम्बोट्रायोन	1,755	23,662	9,200	93	2.57

इसके अतिरिक्त हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के क्षेत्रीय शोध केन्द्र, उचानी, करनाल में किए गए प्रयोगों द्वारा पाया गया है कि एलाक्लोर व टैम्बोट्रायोन के प्रयोग करने से खरपतवारों का उचित नियंत्रण होता है (सारणी 2)।

सारणी 2: खरीफ ऋतु की मक्का में खरपतवारनाशकों का असर व उपज पर प्रभाव

शाकनाशक	खरपतवारनाशक की मात्रा (ग्राम या मिली प्रति एकड़)	खरपतवारनाशक के छिड़काव का समय	50 दिन बाद विभिन्न खरपतवारों का नियंत्रण				उपज (कि.ग्रा./एकड़)	लाभ
			डीला	पैराघास	मकड़ा	चौड़ी पत्ती वाले		
गुड़ाई व एट्राजीन	400	बिजाई के 20 व 35 दिन बाद	36.3	92.8	90.1	78.8	2,442	15,453
एलाक्लोर	1600	बिजाई के पूर्व व 35 दिन बाद	82.5	94.7	93.4	83.4	2,544	16,051
टैम्बोट्रायोन चिपचिपे पदार्थ के साथ	115	बिजाई के 35 दिन बाद	80.2	93.4	93.8	100	2,401	15,705
टैम्बोट्रायोन चिपचिपे पदार्थ के साथ	134	बिजाई के 35 दिन बाद	82.9	94.4	93.7	100	2,421	15,728
एलाक्लोर व टैम्बोट्रायोन चिपचिपे पदार्थ के साथ	1600 व 115	बिजाई के पूर्व व 35 दिन बाद	85.2	94.3	95.1	100	2,639	17,985
एट्राजीन व टैम्बोट्रायोन चिपचिपे पदार्थ के साथ	800 व 115	बिजाई के पूर्व व 35 दिन बाद	82.6	94.9	94.3	100	2,458	16,177
गुड़ाई		बिजाई के 20 व 35 दिन बाद	84.55	93.7	93.6	81.2	2,561	15,146
चेक			0.0	0.0	0.0	0.0	1,246	1,563

शुष्क क्षेत्रों में खरीफ फसलों की पैदावार बढ़ाने हेतु : सामयिक प्रबंधन व सुझाव

✍ सुरेन्द्र कुमार शर्मा एवं सूबे सिंह[1]
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा प्रदेश में सिंचित साधनों के बढ़ने के पश्चात भी कुल खेती योग्य भूमि का लगभग 20 प्रतिशत भाग शुष्क खेती के अंतर्गत आता है, जो कि मुख्यत: वर्षा पर आधारित है। बाजरा खरीफ मौसम की प्रमुख फसल होने के साथ ही शुष्क क्षेत्रों में इसके उत्पादन का महत्वपूर्ण योगदान है। प्रदेश में कुल वर्षा अधिकतर दो महीनों के अन्दर ही (मध्य जुलाई से मध्य सितम्बर तक) हो जाती है। यदि हम पिछले 10 वर्षों के अंतर्गत वर्षा की मात्रा, मानसून के आगमन व वापसी को देखते हैं तो तालिका 1 से स्पष्ट पता चलता है कि वर्ष 2009, 2011, 2012, 2014 व 2015 में वर्षा सामान्य से भी कम हुई है। इसके अतिरिक्त वर्ष 2017 में मानसून की वापसी भी अगस्त में हुई है जबकि वर्ष 2014 में तो सूखे की स्थिति का सामना करना पड़ा था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शुष्क क्षेत्रों में किसान को मुख्यत: वर्षा की कमी, वर्षा के समुचित वितरण का अभाव, मानसून की जल्दी वापसी व लंबे समय तक वर्षा का न होना आदि समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन क्षेत्रों में औसत 300-500 मि.मी. वर्षा प्रतिवर्ष होती है परंतु उपर्युक्त असामान्य परिस्थितियों के कारण यह फसलों की ज़रूरत को पूरा करने में असमर्थ हो जाती है तथा किसान को फसल का भरपूर लाभ नहीं मिल पाता। अत: उपर्युक्त परिस्थितियों में शुष्क क्षेत्रों के लिए खरीफ फसलों की पैदावार बढ़ाने हेतु सामयिक प्रबंधन अति आवश्यक है, जिन्हें अपनाकर किसान निश्चित रूप से पैदावार बढ़ा सकते हैं।

तालिका 1 : खरीफ के मौसम में बारानी खेती अनुसंधान प्रक्षेत्र पर रिकार्ड की गई वर्षा की मात्रा (2009-2018)

वर्ष	वर्षा की मात्रा (मि.मी.)	मानसून का आगमन	मानसून की वापसी
2009	299	15 जुलाई	12 सितम्बर
2010	536	8 जून	14 सितम्बर
2011	275	16 जुलाई	05 सितम्बर
2012	303	21 जुलाई	16 सितम्बर
2013	343	16 जून	22 सितम्बर
2014	162	29 जुलाई	05 सितम्बर
2015	275	24 जून	28 सितम्बर
2016	392	14 जून	25 सितम्बर
2017	461	17 जून	31 अगस्त
2018	381	29 जून	24 सितम्बर

सामयिक प्रबंधन

1. मानसून का देर से आना

बाजरे की एच एच बी-67 (संशोधित) प्रजाति का प्रयोग कम अवधि की किस्म होने के कारण यह पछेती बोने पर भी अच्छी पैदावार देती है।

बाजरे की जुलाई के अन्तिम सप्ताह तक बिजाई।

बाजरे की तीन सप्ताह पुरानी नर्सरी के पौधों को जुलाई के अंत से अगस्त के दूसरे सप्ताह तक रोपना।

मूंग, लोबिया एवं ग्वार की अगस्त के प्रथम सप्ताह तक बिजाई।

2. फसल का प्रारंभिक दशा के दौरान सूखाग्रस्त होना

दोबारा वर्षा होने पर रिक्त स्थानों पर बाजरे की पौध की रोपाई।

पहिए वाला कसौला (ह्वील हैण्ड हो) द्वारा भूमि पलवार करना।

3. बिजाई के समय लगातार वर्षा का होना

सूखे खेतों में रीजर-सीडर द्वारा डोली व नाली विधि से बिजाई करना।

मानसून की वर्षा होने से पहले बाजरे की पौध तैयार रखना।

मानसून की वर्षा के तुरंत बाद बाजरे की पौध रोपना।

4. मानसून की जल्दी वापसी

बाजरे की प्रत्येक तीसरी लाइन को काटकर चारे में प्रयोग करना।

फसल की निराई-गोड़ाई करने के पश्चात् सरसों की तूड़ी (4 टन प्रति हैक्टेयर) से पलवार करना।

यदि संभव हो तो वर्षा के अपवाह को रोककर जमा किए गए वर्षा के पानी से फसलों की संवेदनशील अवस्था में सिंचाई करना।

पैदावार बढ़ाने हेतु सुझाव

भूमि को अच्छी तरह जोतकर तैयार रखें व खेत की मेढ़बंधी करें।

सप्ताह में 25-30 मि.मी. वर्षा (कम से कम एक वर्षा 15-20 मि.मी.) होने पर फसल की बुवाई करें।

मानसून शुरू होने के बाद फसलों की बिजाई यथाशीघ्र करें।

खेती योग्य भूमि के 60 प्रतिशत हिस्से में खरीफ फसलों को बोएं व बाकी 40 प्रतिशत हिस्सा रबी फसलों के लिए छोड़ना चाहिए।

ऐसे क्षेत्र जहां ज़मीन पर पपड़ी की समस्या न हो, बाजरे की बिजाई दो पोरा बारानी हल से करें।

ज़मीन पर पपड़ी बनने वाले क्षेत्रों में देशी खाद की मात्रा 4 टन प्रति हैक्टेयर के हिसाब से प्रयोग करें।

खरीफ फसलों वाले क्षेत्र के आधे भाग में बाजरा, एक चौथाई में ग्वार व बाकी एक चौथाई में दाल वाली फसलों की बिजाई करें।

जहां तक संभव हो डोली व नाली विधि द्वारा बिजाई करके पानी का संग्रहण करें।

फसलों की विकसित किस्मों के प्रमाणित बीज का ही प्रयोग करें।

फसलों की 45 सैं.मी. या 30:60 सैं.मी.के अनुपात से पंक्तियों में बिजाई करें।

बाजरे व मूंग की भरपूर फसल लेने के लिए इनकी पट्टिका पद्धति द्वारा 6:3 या 8:4 के अनुपात से 30 सैं.मी. की पंक्तियों में बिजाई करें।

बाजरे की तीन सप्ताह पुरानी नर्सरी के पौधों की वर्षा होने पर रिक्त स्थानों में रोपाई करें।

बाजरे में 16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 8 कि.ग्रा. फास्फोरस व 3 वर्ष में एक बार 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ तथा दाल वाली फसलों में 8 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 16 कि.ग्रा. फास्फोरस व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ की दर से डालना चाहिए।

बाजरे में फास्फोरस की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा को बिजाई से पहले आखरी जुताई पर खेत में पोर दें तथा बाकी की आधी नाइट्रोजन खड़ी फसल में जब आखिरी निराई-गोड़ाई का समय हो तथा भूमि में जब नमी की मात्रा ठीक हो, देनी चाहिए। दलहनी फसलों में खाद की पूरी मात्रा बोने के समय दे देनी चाहिए।

पहिए वाले कसौले से समय-समय पर निराई- गोड़ाई करते रहें।

यदि फसल अवधि के बीच में सूखा पड़ जाता हैं तो बाजरे की बिजाई के 40 दिन बाद प्रत्येक तीसरी लाइन को काटकर चारे के लिए प्रयोग करें ।

[1]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

राइजोबैक्टीरिया : रासायनिक खाद का उच्चतर विकल्प

✍ कविता रानी, पंकज शर्मा एवं राहुल कुमार[1]
सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

विकासशील देशों में कृषि राष्ट्रीय आय और निर्यात आय का एक बड़ा हिस्सा है क्योंकि यह खाद्य सुरक्षा और रोज़गार सुनिश्चित करती है। आज के समय में स्थायी कृषि, पारंपरिक कृषि की तुलना में बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह हमारे भविष्य की कृषि आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता प्रदान करता है जोकि पारंपरिक कृषि से संभव नहीं है। हाल ही में पर्यावरण हितैषी और स्थायी कृषि में बहुत रुचि हुई है। राइजोबैक्टीरिया, बैक्टीरिया का एक ऐसा समूह है जो पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने वाले पदार्थों के माध्यम से पौधों की वृद्धि और उपज को बढ़ाता है। कृत्रिम उर्वरकों के नकारात्मक पर्यावरणीय प्रभावों और उनकी बढ़ती लागतों को देखते हुए, पिछले कुछ दशकों के दौरान स्थायी और सुरक्षित कृषि के लिए फायदेमंद मृदा सूक्ष्मजीवों जैसे पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने वाले राइजोबैक्टीरिया, पीजीपीआर का उपयोग विश्व स्तर पर बढ़ा है। जैविक उर्वरक के रूप में पीजीपीआर को स्थायी कृषि के लिए कुशल मृदा रोगाणुओं के रूप में पहचाना जाता है और कृषि पैदावार में सुधार के लिए बहुत बड़ा भागीदार माना जाता है।

पौधों की वृद्धि को सुरक्षित बढ़ावा देना : पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने वाले राइजोबैक्टीरिया पौधों के विकास को बढ़ावा देने वाले विभिन्न पदार्थों के उत्पादन से कई मायनों में पौधों की वृद्धि में सुधार करने के लिए जाने जाते हैं। कृत्रिम उर्वरकों और कीटनाशकों की तुलना में राइजोबैक्टीरिया द्वारा स्रावित पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने वाले पदार्थों को पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित माना जाता है। ये पदार्थ फसल की वृद्धि में सहायक हैं और सुरक्षित पर्यावरण और फसल उत्पादकता में स्थिरता लाने में मदद करते हैं।

मृदा - पादप वृद्धि को बढ़ाने वाले राइजोबैक्टीरिया का मिलन स्थल : पौधों की जड़ों के आस-पास की मृदा में विभिन्न प्रकार के **पादप** वृद्धि को बढ़ाने वाले राइजोबैक्टीरिया (पीजीपीआर) समुदाय होते हैं जो फसल उत्पादकता पर लाभकारी प्रभाव दिखाते हैं। मृदा में पाए जाने वाले पीजीपीआर समुदायों की विविधता, गतिशीलता और कृषि उत्पादकता में उनकी लाभप्रद और सहकारी भूमिकाओं की समझ पर कई शोध जांच की जाती हैं। संयंत्र विकास को बढ़ावा देने वाली गतिविधि को प्रदर्शित करने वाले मृदा में पाए जाने वाले पीजीपीआर के कुछ सामान्य उदाहरण हैं *स्यूडोमोनाज, एजोस्पिरिलम, एजोटोबैक्टर, बैसिलस, बर्खोल्डेरिया, एंटेरोबैक्टर, राइजोबियम, अरविनिया, माइकोबैक्टीरियम, माइकोराइजोबियम, फ्लेवोबैक्टीरियम,* आदि।

कृषि क्षेत्र में उपयोग : हालांकि मृदा में लाभकारी सूक्ष्मजीवों के विविध समुदाय हैं, लेकिन शुरुआत में पीजीपीआर तुलनात्मक रूप से कम संख्या में मौजूद होते हैं। इसलिए इनकी एकाग्रता को बढ़ाने के लिए कृत्रिम माध्यम में इन जीवाणुओं के गुणन की आवश्यकता पड़ती है और फिर इन जीवाणुओं को बीज अनुप्रयोग के माध्यम से कृषि क्षेत्र में उपयोग किया जाता है। ये गुणित राइजोबैक्टीरिया मृदा में बहुत तेज़ गति से अपनी संख्या बढ़ाते हैं और पौधों के विकास को बढ़ावा देने और पैदावार बढ़ाने में सहायक होते हैं।

[1]एमिटी विश्वविद्यालय, नोएडा

बाग लगाने की वैज्ञानिक विधि – सावधानियां

✍ अंकित गावरी, जीत राम शर्मा एवं प्रवीण
उद्यान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा एक कृषि प्रधान राज्य है। हरियाणा की जनसंख्या का 75 प्रतिशत हिस्सा खेती से अपना घर खर्च निकालता है। परन्तु दिन प्रतिदिन हरियाणा की जोत का आकार छोटा होता जा रहा है जिसके कारण पारम्परिक खेती लाभदायक नहीं रही है। हरियाणा के किसान आर्थिक संकट से बचने के लिए अपना रुख फलोत्पादन की तरफ कर रहे हैं क्योंकि फलोत्पादन से कम जोत में भी अधिक लाभ लिया जा सकता है। हरियाणा की जलवायु के अनुसार किन्नू, अमरूद, बेर आदि का बाग लगाना बहुत लाभदायक पाया गया है। फलोत्पादन से अच्छा लाभ लेने के लिए वैज्ञानिक विधि से बाग लगाना अति आवश्यक है। जिससे गुणवत्तायुक्त अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। वैज्ञानिक विधि से बाग लगाने के लिए कुछ मुख्य बातों पर ध्यान देना अति आवश्यक है :

बाग का रेखांकन : रेखांकन क्रिया एक अति आवश्यक क्रिया है। रेखांकन का मतलब फलों के पेड़ों को व्यवस्थित तरीके से रोपण करना है ताकि प्रति एकड़ में पेड़ों की अधिकतम संख्या सुनिश्चित हो सके और प्रत्येक फल को वृद्धि के लिए पर्याप्त स्थान मिल सके। कर्षण क्रियाएं करने में परेशानी न हो तथा फल वृक्ष देखने में सुन्दर प्रतीत हों।

उद्यान के रेखांकन के लिए निम्न विधियां मुख्य रूप से प्रयोग में लायी जाती हैं : 1. वर्गाकार विधि; 2. आयताकार विधि; 3. त्रिभुजाकार विधि; 4. षट्भुजाकार विधि; एवं 5. पूरक विधि।

1. वर्गाकार विधि : यह विधि सबसे सरल है। इस प्रकार के रेखांकन में पौधे व कतार से कतार की दूरी एक समान रखी जाती है।

2. आयताकार विधि : यह विधि वर्गाकार के ही समान होती है केवल इतना अंतर होता है इसमें पौधे से पौधे की दूरी कतार से कतार की दूरी से कम होती है।

3. त्रिभुजाकार विधि : इस विधि में भी पंक्ति एवं पौधे की आपसी दूरी वर्गाकार विधि की तरह होती है बस अंतर यह होता है कि इसमें दूसरी कतार में पौधे पहली कतार के मध्य में लगाए जाते हैं।

4. षट्भुजाकार विधि : इस विधि में 6 वृक्ष एक षट्भुजाकार आकृति तैयार करते हैं तथा सांतवा वृक्ष इस आकृति के केंद्र में रहता है। हालांकि इस विधि को रेखांकन करना थोड़ा मुश्किल है और कृषि कार्यों में भी बाधा आती है। इस विधि में वर्गाकार से 15 प्रतिशत अधिक पौधे लगाए जा सकते हैं।

5. पूरक विधि : यह विधि वर्गाकार विधि का संशोधन है। इस विधि के अनुसार वर्ग के केंद्र में भी एक पौधा उगाया जाता है। इस विधि से वर्गाकार विधि से लगभग दो-गुने अधिक पौधे लगाए जा सकते हैं। इस विधि में यह खास ध्यान रखना चाहिए कि जो केंद्र में पौधा लगाया जाना हो वो तेज़ी से बढ़ने वाला और मुख्य फसल से जल्दी परिपक्व हो। मुख्यत: पपीता, केला, फालसा आदि फल के पौधे वर्ग के केंद्र में लगाने के लिए उचित माने जाते हैं। कुछ वर्षों बाद, जब मुख्य पौधा अपना पूर्ण स्थान ले लेते हैं, तब मध्य पौधे को निकाल दिया जाता है।

गड्ढे खोदना : रेखांकन का कार्य पूरा होने पर अंकित स्थानों पर गड्ढे खोदने चाहिएं। पौधे लगाने के लगभग एक माह पहले गड्ढे खोद लेने चाहियें। गड्ढे उचित दूरी पर 1 मी. x 1 मी. x 1 मी. आकार के खोदे जाते

हैं। गड्ढे खोदने के थोड़े दिन बाद, गोबर की अच्छी सड़ी खाद व 1-1.5 कि.ग्रा. सुपर फास्फेट मिट्टी में मिलाकर गड्ढों को भरना चाहिए। वर्षा ऋतु में पौधे लगाने के लिए मई-जून व बसंत ऋतु में पौधे लगाने के लिए जनवरी के आरम्भ में गड्ढे खोदने चाहिएं।

पौधे से पौधा, कतार से कतार व प्रति एकड़ पौधों की संख्या

क्रमांक	फलदार पौधे का नाम	दूरी (मीटर में)	प्रति एकड़ पौधों की संख्या
1.	कलमी आम, चीकू एवं आवंला	8-9	72-56
2.	आम कलमी (बौनी)	5	156
3.	अमरूद	6-7	110-90
4.	लीची	8	72
5.	पपीता	1.5-2	1742-1054
6.	नाशपाती	7-8	90-72
7.	आड़ू	6	110

पौधे लगाने का समय व चुनाव : हरियाणा में सदाबहार पौधों को लगाने का उचित समय अगस्त-सितम्बर है। इसके अतिरिक्त पौधों को फरवरी-मार्च के महीने में भी लगाया जा सकता है। अच्छे व रोग रहित पौधे प्रमाणित नर्सरी से लेने चाहिएं। पौधे बढ़वार व कद में दर्मियाने तथा पेबन्दी पौधे दो साल से पुराने नहीं होने चाहिएं।

पौधे लगाने की विधि: पौधों को लगाते समय कुछ सावधानियां बरतनी चाहिएं:

1. पौधों को लगाते समय खास ध्यान रखना चाहिए कि मिट्टी के गोले को किसी प्रकार की हानि न पहुंचे। घास-पात (गोले की पैकिंग का सामान) बहुत सावधानी से गोले से अलग करना चाहिए।
2. पौधों को गड्ढों में इस प्रकार रखना चाहिए कि रोपण का जुड़ाव भूमि की सतह से कम से कम 25 सैं.मी. ऊपर हो।
3. पौधे लगाने के तुरंत बाद पानी देना चाहिए।
4. पौधे हमेशा शाम के समय लगाने चाहिएं।
5. पौधे लगाने के बाद बांस व सोटी से सहारा दें।

पौधों की देखभाल : पौधों की अच्छी वृद्धि ले लिए निम्न क्रियाओं का समय-समय पर ध्यान रखना चाहिए :

सिंचाई : पौधों की बेहतर स्थापना के लिए बार-बार सिंचाई करना आवश्यक है। सिंचाई की मात्रा और आवृत्ति, मिट्टी के प्रकार और मौसम की स्थिति पर निर्भर करती है। पौधों को सींचने के लिए उचित तरीका अपनाना चाहिए और यह ध्यान रखना चाहिए कि पानी एक जगह पर अधिक देर तक नहीं ठहरना चाहिए।

निराई-गुड़ाई : यह क्रिया करने से खरपतवारों की वृद्धि रोकने के साथ-साथ हवा का आवागमन भी बढ़ जाता है। अत: उद्यान में उचित समय पर निराई-गुड़ाई करके खरपतवारों को हटाते रहना चाहिए। प्रत्येक सिंचाई के बाद बत्तर आने पर गुड़ाई अवश्य करनी चाहिए।

पौधों को धूप व पाले से बचाना : छोटे पौधों को धूप व पाले से बचाना अति आवश्यक है। पौधों को धूप से बचाने के लिए उन पर उचित छाया का प्रबंध करना चाहिए। पाले से बचाने के लिए शीत ऋतु में पौधों को तीन तरफ से ढक देते हैं और एक कोने से खुला छोड़ देते हैं ताकि पौधे को वायु व प्रकाश उचित मात्रा में मिलता रहे।

वायुरोधक व बचाव के लिए बाड़ : बाग लगाने से पहले जिस तरफ से अधिक तेज हवाएं चलती हैं उस तरफ से वायुरोधक पेड़ लगाने चाहिएं। इसके लिए जंगल जलेबी, अर्जुन, जामुन, शहतूत, जामुन आदि पेड़ वायु रोधक के रूप में लगाएं। वायुरोधक पौधों के बीच में बाड़ लगाएं जिससे जंगली जानवर आदि का रुकाव हो सके। बोगन बेलिया, करौंदा के पौधे बाड़ के लिए उपयुक्त हैं।

बाग लगाने से पहले मिट्टी की जांच

✍ **राकेश कुमार, रीतिका[1] एवं मनोज कुमार शर्मा**
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हमारे देश में फलदार वृक्षों के बाग तो बहुत मिल जाते हैं, परंतु उनसे पैदावार काफी कम मिल पाती है। इसका मुख्य कारण है पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की पूरी पूर्ति न होना। यदि मिट्टी में किसी तत्व की कमी हो तो उसकी पूर्ति खाद तथा उर्वरकों द्वारा की जानी चाहिए। उर्वरकों की मात्रा का निर्धारण करते समय मिट्टी की उपजाऊ शक्ति, फसल द्वारा अवशोषित किये गये पोषक तत्वों की मात्रा को ध्यान में रखें, यह सब जानने के लिए हमें अपने खेत की मिट्टी की जांच करवाना ज़रूरी है। मिट्टी की जांच से यह भी पता चलता है कि मिट्टी बाग लगाने के लिए सही है या नहीं। परीक्षण से मृदा की समस्या जैसे अम्लीयता, क्षारीयता, लवणता इत्यादि का पता लगता है तथा यदि कोई समस्या है तो उसमें सुधार के लिए सुझाव दिये जा सकते हैं। मिट्टी की जांच के लिए मिट्टी के नमूने खेत से सही ढंग से लिए जाते हैं।

बाग के लिए मिट्टी का नमूना लेने का तरीका : बाग के लिए मिट्टी का नमूना लेने का तरीका फसलों के नमूने लेने के तरीके से अलग है। नमूने बरमे या मृदा ओगर से आसानी से लिये जा सकते हैं।

सबसे पहले 2 मीटर गहरा गड्ढा खोदना चाहिए। फिर सतह से 15, 30, 60, 90, 120, 150 तथा 180 सैं.मी. की गहराइयों पर खुरपी से निशान लगा लें। फिर पहला नमूना ज़मीन की सतह से 15 सैं.मी., दूसरा 15 से 30 सैं.मी., तीसरा 30 से 60 सैं.मी., चौथा 60 से 90 सैं.मी., पांचवां 90 से 120 सैं.मी., छठा 120 से 150 सैं.मी. और सांतवां 150 से 180 सैं.मी. तक की गहराई से अलग-अलग रख लें। प्रत्येक नमूना आधा किलोग्राम के लगभग होना चाहिए। यदि कोई कठोर या रोड़ी वाली परत आ जाये तो उसका नमूना अलग से लें एवं परत की गहराई और मोटाई अवश्य नोट करें। सभी नमूनों को साफ कपड़े या पॉलिथीन की थैलियों में डालें और हर नमूने पर ध्यान से लेबल लगाएं। लेबल पर नमूने की गहराई लिखें व एक लेबल थैली के अंदर रखें एवं एक बाहर बांध दें।

मृदा के नमूने के साथ भेजे जाने वाले सूचना पत्र पर निम्नलिखित जानकारी अवश्य दें, जैसे: 1. किसान का नाम; 2. खेत का खसरा नंबर या नाम; 3. नमूना लेने की तिथि; 4. सिंचाई का साधन; 5. खेत की कोई भी समस्या यदि है तो; 6. पत्र व्यवहार का पूरा पता; 7. भूमि की ढलान; एवं 8. कौन-कौन से पौधे खेत में हैं या खेत में लगाना चाहते हैं।

यह सूचना मिट्टी की रिपोर्ट व खाद संबंधी सिफारिश को अधिक लाभकारी बनाने में सहायक होगी। मिट्टी के नमूनों को नज़दीकी मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला में विश्लेषण के लिए भेज दें।

नमूना लेते समय सावधानियां :

यदि खेत की मिट्टी में अंतर हो तो मिट्टी का नमूना अलग-अलग खेत से लें।

मृदा नमूना खेत के उस स्थान से न लें जहां पर गोबर, खाद अभी डाली हो या जहां गोबर खाद का पहले ढेर लगाया गया हो।

हाल ही में भूमि सुधारक रसायन या उर्वरक प्रयोग किए गए खेत से भी नमूना न लें।

नमूनों को खाद, राख या गोबर के संपर्क में न आने दें।

नमूनों को उर्वरक वाले बोरों पर न रखें।

नमूनों को हवा व छाया में सुखाना चाहिये।

नमूनों को गर्म करके या धूप में न सुखायें।

[1]बागवानी विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

कपास की फसल में बीज एवं मृदा जनित रोग

✍ **अनिल कुमार सैनी एवं धर्मेंदर सिंह**[1]
पादप रोग विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कपास भारत की नकदी फसल है जिस पर भारतीय किसान की आशाएं बनी रहती हैं। कपास की फसल में विभिन्न प्रकार के रोगों एवं कीड़ों का प्रकोप आता है परंतु बहुत सारे रोग ऐसे हैं जोकि बीज द्वारा अथवा मिट्टी से उत्पन्न होते हैं। सर्वेक्षण के अनुसार यह पाया गया है कि कपास की फसल में रोग द्वारा होने वाला नुकसान लगभग 3 से 10 प्रतिशत बीज जनित रोगों से होता है और 90 प्रतिशत मृदा से उत्पन्न हुए रोग द्वारा होता है। कपास की फसल में उखेड़ा रोग लगभग 40 से 60 प्रतिशत पाया गया है।

कपास की फसल में जनित रोग

1. बीज गलन : बीज गलन मुख्यत: एसपरजिलस, अल्टरनेरिया, फ्यूजेरियम, पाइथियम, राइजोपस, नामक फफूंद द्वारा उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे सूक्ष्म जीवाणु हैं जो इस रोग को बढ़ावा देते हैं। इस रोग का एक कारण यह भी है कि कपास का रखरखाव अच्छे से न किया गया हो। इस रोग से होने वाला नुकसान 3 से 5 प्रतिशत है।

2. पौध रोग : इस रोग में बीज से पौधा निकलने के पश्चात खत्म हो जाता है। फसल में पौधों के मरने से भारी संख्या में नुकसान होता है जोकि बीज एवं मिट्टी से उत्पन्न हुए रोग के कारण होता है। इस रोग में मिट्टी से निकलते हुए तने पर प्रभाव पड़ता है जिसमें तना लाल भूरे रंग का मुरझा जाता है।

3. पौध का झुलसा : पौध का झुलसा रोग अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीवों से उत्पन्न होता है। इस रोग में पौध के निकलते हुए पत्तों पर धब्बे नज़र आते हैं। मुख्यत: यह मिट्टी से उत्पन्न हुआ रोग है परंतु इसमें कुछ योगदान बीज जनित भी है। जिसके कारण बीज जमाव के समय ही मर जाता है एवं पौध भी झुलसकर खत्म हो जाती है।

4. जड़ गलन एवं उखेड़ा रोग : यह एक मुख्य रोग है जिसमें पौधे अधिकतर एकदम से मुरझाने लगते हैं और पत्ते झड़ने लगते हैं। इस रोग से ग्रसित पौधा 9 दिन के अंदर पूर्णतया खत्म हो जाता है और आसानी से इसे जड़ से निकाला जा सकता है। जड़ कई टुकड़ों में बंट जाती है। यह रोग पौधे की किसी अवस्था में उत्पन्न हो सकता है। बड़े पौधे में इसके लक्षण पहले नीचे से पत्तों में दिखाई पड़ते हैं जो पीले भूरे हो कर मुरझाकर गिर जाते हैं।

5. जीवाणु अंगमारी : यह रोग बीज द्वारा उत्पन्न होता है। जिसमें पत्तों पर कहीं-कहीं पानी के धब्बे से दिखाई पड़ते हैं। बाद में यह धब्बे स्लेटी रंग के हो जाते हैं और पत्ते कि नसें भूरे रंग की पड़ जाती हैं। 2 से 3 सप्ताह की पौध पर इस रोग का अधिक प्रभाव पड़ता है और यह रोग नमी वाले स्थान पर जल्दी पनपता है।

6. एन्थ्रक्नोज़ : यह एक बीज जनित रोग है जिस के लक्षण पत्तियों के किनारों से शुरू होते हैं। इस रोग में पत्ते की निचली सतह पर गुलाबी व भूरे रंग के धब्बे नज़र आते हैं। इस रोग के बढ़ने से पत्ते मुरझा भी जाते हैं जिससे पौधा मर जाता है। कई बार यह धब्बे आपस में मिलकर रोग ग्रसित क्षेत्र को बढ़ा देते हैं। पत्तों से यह रोग टिंडों पर भी प्रभाव डालता है।

7. हेलिमैथोस्पोरियम राइजोक्टोनिया द्वारा पत्तों का झुलसा रोग: यह रोग बीज व मिट्टी दोनों से ही उत्पन्न होता है। इस रोग में बीज से पौधा निकलने से पहले ही बीज गलन से मर जाता है। इस रोग के लक्षण बहुत सारे गोल भूरे धब्बों के रूप में देखे जा सकते हैं। नए पौधों के निकलते समय यह पीले रंग के धब्बे बढ़कर गहरे भूरे रंग में बदल जाते हैं और तने पर भी नुकसान पहुंचाते हैं। यह बीमारी अधिकतर नमी के मौसम में होती है।

बीज एवं मृदा जनित रोगों से रोकथाम

क. बीज को तेज़ाब से धोना : इस प्रक्रिया में कपास के बीज को सल्फ्यूरिक एसिड द्वारा धोया जाता है। जितना बीज हो उसका दसवां हिस्सा तेज़ाब लेकर बीज को 5-10 मिनट तक धोया जाता है और उसी समय बीज को स्वच्छ पानी से तीन बार धोकर चौथी बार चूने के पानी से धोकर छाया में सुखाया जाता है। यह कार्य किसी प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा ही करना चाहिए अन्यथा सारा बीज खराब होने का डर रहता है। बीज को तेज़ाब द्वारा धोने से लाभ :

1. कच्चा हल्का एवं रोगग्रसित बीज आसानी से अलग किया जा सकता है।
2. बीज के ऊपर रोयें के उतर जाने से इसे बिजाई मशीन द्वारा आसानी से बीजा जा सकता है।
3. प्रति एकड़ बीज की आवश्यकता कम पड़ती है।
4. बीज उपचार करना सरल हो जाता है और उपचार भी अच्छे प्रकार से किया जा सकता है।
5. बीज की बाहरी परत पर उपस्थित जीवाणु मर जाते हैं।
6. तेज़ाब द्वारा धोने से बीज का जमाव अधिक स्वस्थ व जल्दी होता है।

ख. फफूंदनाशक द्वारा बीज उपचार : फसल को अनेक प्रकार के बीज जनित एवं मृदा जनित रोगों से बचाने के लिए फफूंदनाशक द्वारा बीज उपचार किया जाता है। इसमें रोयें वाले बीज को 6-8 घंटे तक एवं रोएंरहित बीज को 2 घंटे तक फफूंदनाशक घोल में रखा जाता है। इसमें बीज रोगरहित हो जाता है एवं काफी हद तक रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है।

फफूंदनाशक उपयोग : एमिसान 5 ग्राम एवं स्ट्रप्टोसाइक्लीन 1 ग्राम दस लीटर पानी में घोलकर 4-8 किलोग्राम बीज में उपयोगी है।

ग. जड़ गलन रोग के उपाय:

खेत की गहरी जुताई अति आवश्यक है।
गहरी जुताई के पश्चात खेत में भूसा डालकर उसे सुलगायें।
फसल चक्र अपनायें। खेत को ट्राइकोडरमा द्वारा उपचारित करें।
बीज को 2 ग्राम प्रति किलो की दर से कार्बेन्डाज़िम द्वारा उपचारित करें।

आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें।

- सह-निदेशक (प्रकाशन)

[1]कीट विज्ञान विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

हल्दी का संसाधन एवं इसके लाभ

✍ **नेहा, वीनु सांगवान एवं विकास कुमार**[1]
खाद्य एवं पोषण विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मनुष्यों की सम्यक आहार व्यवस्था में हल्दी का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। हल्दी का प्रयोग परिवार में परम्परागत से लेकर आधुनिक रहन-सहन की पृष्ठभूमि में भी यथावत है। हल्दी आध्यात्मिक, व्यावसायिक, औद्योगिक, औषधीय एवं गृह उपयोग के महत्व के कारण भी लोकप्रिय है। विभिन्न प्रकार के गुणों के कारण हल्दी की मांग वृद्धि क्रम में बनी रहती है। हल्दी का सामान्य उपयोग दाल, सब्जी, मांस, मछली, अचार, मक्खन, पनीर, केक एवं जेली में सुगन्ध, रंग औषधीय एवं पोषकता की दृष्टि से किया जाता है। हल्दी का कृमिनाशक गुण एवं पीलापन इसमें उपस्थित करक्यूमिन तत्व के कारण होता है।

हल्दी का संसाधन : हल्दी के संसाधन के लिए हल्दी के कंदों को साफ कर के तुड़ाई करने के उपरान्त मातृ कन्द आकारानुसार छांट कर अलग कर लेते हैं। इस से आकारानुसार उबालने के दौरान एक समय में और एक तरह की हल्दी तैयार होती है। उबालने के लिए दो आयताकार लोहे के पैन या कढ़ाव की आवश्यकता होती है। एक बड़े कढ़ाव जिसमें लगभग 100 लीटर पानी डालकर एक अन्य छेद युक्त हैन्डिल लगा हुआ आयताकार लोहे के कढ़ाव जिस में 50 कि.ग्रा. हल्दी के कन्द रखकर बड़े आकार के कढ़ाव में रखकर उबाला जाता है। उबालते समय बड़े कढ़ाव में हल्दी पानी में पूरी तरह डूबी रहनी चाहिए। हल्दी उबालने के दौरान कढ़ाव के पानी में किसी भी तरह के रासायनिक पदार्थ डालने की आवश्यकता नहीं है। यदि अम्लीय जल है तो उस स्थिति में खाने का सोडा या सोडियम बाई कारबोनेट 100 ग्राम का प्रयोग किया जाता है। हल्दी के कन्दों को तब तक उबालना चाहिए जब तक हल्दी में आया उबाल कम न हो जाए और हल्दी की खुशबू न आने लगे। पूरी तरह उबालने पर हल्दी के टुकड़ों में सलाई डालने पर आर-पार हो जाती है। इस तरह उबालने की प्रक्रिया में करीब 30-40 मिनट का समय लगता है। हैण्डिल से कढ़ाव को उठाकर पानी निथार लेते हैं और इसे 4-5 घंटे के लिए ठंड़ा होने के लिए छोड़ दिया जाता है।

कढ़ाव में अवशेष पानी को फिर से हल्दी उबालने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। हल्दी को अधिक उबालने से उसकी गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। हल्दी को उबालने के बाद सुखाने के लिए किसी साफ चटाई या फर्श पर डाल कर 10 से 12 दिन सुखाते हैं। समय-समय पर इसे पलटा जाना चाहिए। उबली हुई हल्दी की गांठों को तब तक सुखाना चाहिए जब तक नमी की मात्रा 10-12 प्रतिशत तक न पहुंच जाए।

पॉलिशिंग : बाज़ार में हल्दी की अच्छी कीमत लेने के लिए हल्दी का पॉलिशिंग किया जाना ज़रूरी है जिससे हल्दी आकर्षक व चमकदार हो जाती है। पॉलिशिंग के लिए पीला रंग या हल्दी के पाऊडर को हल्की नमी के साथ किसी ड्रम में हाथ से मिलाकर सुखा लेते हैं। उसके बाद किसी वायुरोधी बड़े डिब्बे में इसका भण्डारण कर सकते हैं। हल्दी को कीटों के प्रकोप से बचाने के लिए नीम के पेड़ की पत्तियों का प्रयोग किया जा सकता है।

हल्दी के लाभ :

रोज़ाना हल्दी का सेवन करने से पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम मिलता है।

हल्दी का रोगाणुरोधक गुण त्वचा की समस्याओं, संक्रमण, खुजली, मुहांसे आदि के जीवाणुओं को धीरे-धीरे खत्म कर देता है।

(शेष पृष्ठ 20 पर)

[1]सब्जी विज्ञान विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

हरी खाद की उपयोगिता

✍ **सुनील बैनीवाल, देवेंद्र सिंह जाखड़ एवं राहुल कुमार**[1]
कृषि विज्ञान केन्द्र, सिरसा
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

निरंतर फसलें उगाने से हमारी मृदा में जैविक कार्बन तथा अन्य पोषक तत्वों की कमी आती जा रही है। रासायनिक उर्वरक मृदा में पौधों के लिए ज़रूरी पोषक तत्वों की कमी तो पूरी करते हैं पर इसके साथ-साथ यदि जैविक खादों का प्रयोग भी किया जाये तो मृदा की भौतिक दशा भी सुधरती है। कई प्रकार की जैविक खादें जैसे की गोबर खाद, केंचुआ खाद, कंपोस्ट आदि मृदा में मिलाई जा सकती हैं तथा इनकी गुणवत्ता के आधार पर इनके लाभ मृदा तथा फसल को मिलते हैं। जैविक खादों के प्रयोग के बिना टिकाऊ खेती की कल्पना करना संभव नहीं है। इन जैविक खादों में से एक है हरी खाद जिसमें विशेष प्रकार के पौधों को खेत में उगाते हैं तथा लगभग 30 से 40 दिन बाद इनको खेत में मिला देते हैं। ये पौधे विघटित हो कर खाद का काम करते हैं।

हरी खाद के लाभ

मृदा की भौतिक दशा सुधरती है जिसके कारण जलधारण क्षमता बढ़ती है। यह मृदा तथा फसलों को नत्रजन तथा अन्य पोषक तत्व उपलब्ध करवाती है। यह मृदा के जीवांश पदार्थ में वृद्धि करती है। पौधों की जड़ों का फैलाव अधिक होता है। हरी खाद के लिए उगाई हुई फसलों की जड़ों में ग्रंथियां होती हैं जो वायुमंडल में विद्यमान नत्रजन को मृदा में एकत्रित करती हैं जो फसलों के काम आती है।

हरी खाद के लिए फसलों का चुनाव

हरी खाद में प्रयुक्त होने वाली फसलों में सिंचाई की कम ज़रूरत होनी चाहिए। फसलों की जड़ें गहरी होनी चाहिएं ताकि ये मिट्टी को भुरभुरा बनाने के साथ-साथ पोषक तत्वों को ऊपरी सतह पर एकत्रित कर सकें। इन फसलों की वानस्पतिक वृद्धि तीव्र होनी चाहिए ताकि अधिक से अधिक जीवांश पदार्थ मृदा में मिलाया जा सके। इन फसलों के उत्पादन का खर्च भी कम होना चाहिए।

समान्यतया दाल वाली फसलों जैसे कि मूंग, उड़द, ग्वार, लोबिया ढैंचा आदि को हरी खाद के लिए प्रयोग किया जाता है। ढैंचा की वानस्पतिक वृद्धि तीव्र होने तथा वानस्पतिक भाग भी विघटनशील होने के कारण इसे सफलता से हरी खाद के लिए प्रयोग किया जा सकता है। ढैंचा की दो प्रजातियां एक्यूलियाटा तथा रोस्ट्राटा का हरी खाद के लिए सफलता से प्रयोग किया जा सकता है।

लगभग 30 से 40 दिन बाद हरी खाद के लिए बोई गई फसल को मिट्टी में मिला दिया जाता है। अगर देर से मिट्टी में मिलाया जाए तो पौधों का तना तथा अन्य हिस्से सख्त हो जाते हैं तथा उनका विघटन भी आसानी से नहीं होता। हरी खाद खेत में मिलाने के समय खेत में प्रचुर नमी होनी चाहिए। खेत में मिलने के बाद 10 से 15 किलोग्राम यूरिया का छिड़काव करने से पौधों का विघटन जल्दी हो जाता है। एक बार खेत में मिलाए जाने के बाद ये सूक्ष्म जीवों के द्वारा विघटित कर दी जाती है तथा खाद के रूप में फसल को उपलब्ध हो जाती है।

[1]छात्र, एमिटी विश्वविद्यालय, नोएडा

आलू का मूल्य संवर्धन एवं फसलोपरांत प्रबंधन

✍ **कनिका पंवार एवं इंदु पांचाल**[1]
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, करनाल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गैर अनाज खाद्य फसलों में आलू का स्थान गेहूं, चावल और मक्का के बाद दुनिया में चौथे नंबर पर है। भारतीय आहार में आलू सबसे लोकप्रिय खाद्य पदार्थों में माना जाता है एवं भारत देश आलू के सबसे बड़े उत्पादकों में से एक है। इसका उपयोग कई तरह से किया जाता है जैसे कि सब्जी, वेफर्स/चिप्स, पाऊडर, फिंगर चिप्स आदि। आलू कंद एक अत्यधिक पौष्टिक भोजन है। यह कार्बोहाइड्रेट, विटामिन सी, खनिज, उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन व फाइबर आहार प्रदान करता है। आलू स्टार्च का एक समृद्ध स्रोत है और इसका मुख्य रूप से सेवन अधिक कैलोरी मान होने के कारण किया जाता है। इसमें फॉस्फोरस, कैल्शियम, लौह तत्व और कुछ विटामिन भी होते हैं। आलू उबालने से उनकी प्रोटीन की मात्रा बढ़ जाती है व कैल्शियम की मात्रा भी लगभग दोगुनी हो जाती है।

आलू का उपयोग सब्जी के रूप में किया जाता है व इसका उपयोग विभिन्न रूपों जैसे स्टार्च, आटा, शराब डेक्सट्रिन व पशु चारा बनाने के लिए भी किया जाता है। यह अनुमान है कि लगभग 25 प्रतिशत आलू जो कई कारणों से खराब हो जाता है, प्रसंस्करण और संरक्षण की विधि द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रसंस्कृत उत्पादों के निर्माण से सुरक्षित किया जा सकता है। आलू को वेफर्स/चिप्स, पाऊडर, फ्लेक्स, ग्रैन्यूल्स, कैनिंग स्लाइस के रूप में संरक्षण और मूल्य संवर्धन के लिए संसाधित किया जाता है। आलू के ग्रैन्यूल्स का उपयोग विभिन्न व्यंजनों की तैयारी के लिए किया जाता है व इससे सब्जी और गैर-व्यंजनों को बनाने एवं खाद्य मूल्य को समृद्ध करने के लिए भी करते हैं। आलू के प्रति 100 ग्राम पोषक तत्वों में पानी, ऊर्जा, प्रोटीन, वसा एवं कार्बोहाइड्रेट की 79 ग्राम, 322 किलोजूल, 2 ग्राम, 0-09 ग्राम व 17 ग्राम मात्रा होती है तथा आलू में कैल्शियम 12 मि.ग्रा., लौह 0-78 मि.ग्रा., फॉस्फोरस 57 मि.ग्रा. व विटामिन सी 19-7 मि.ग्रा. होता है।

आलू के संभावित मूल्य वर्धित उत्पाद

भारत में आलू एक बहुत ही लोकप्रिय पारंपरिक मूल भोजन है। कई मूल्यवर्धित उत्पादों को भारतीय आहार में भी शामिल किया गया है। आलू की सब्जी, बटाटा वड़ा और समोसा उन में से एक है। आलू का प्रयोग फास्ट फूड आइटम जैसे कि आलू की चाट के रूप में एक प्रमुख रूप से किया जाता है। उत्तरी भारत में दम आलू व आलू का पराठा एक पसंदीदा आहार है। दक्षिण भारत में मसाला डोसा नामक व्यंजन पूरे भारत में बहुत उल्लेखनीय है। दक्षिण भारत में खास तौर पर तमिलनाडु में पूड़ी का सेवन मसाले दार आलू के साथ किया जाता है। अन्य पसंदीदा व्यंजन हैं आलू टिक्की और आलू का पकोड़ा। वड़ा पाव भारत में मुंबई और महाराष्ट्र के अन्य क्षेत्रों में एक लोकप्रिय शाकाहारी फास्ट फूड व्यंजन है। आलू पोस्टो (आलू और खसखस के साथ एक करी) पूर्वी भारत, खासकर बंगाल में बहुत लोकप्रिय है। हालांकि आलू भारत का मूल निवासी नहीं है, लेकिन यह पूरे देश में खासतौर पर उत्तर भारतीय भोजन की तैयारी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। आलू के अन्य उत्पादों में फ्रेंच फ्राइज़, चिप्स और सनैक्स, निर्जलित आलू उत्पाद, आलू स्टार्च और अन्य आलू उत्पाद शामिल हैं।

मनुष्यों द्वारा खाने के अलावा आलू का उपयोग

आलू का उपयोग अल्कोहल युक्त पेय जैसे वोडका, पोइटिन या अक्विविट का उपयोग करने के लिए किया जाता है। उनका उपयोग पशुओं के चारे के रूप में भी किया जाता है। पशुधन-श्रेणी के आलू जो बहुत छोटे आकार व धब्बे युक्त होने की वजह से व जिन्हें मानव उपयोग के लिए बेचा नहीं जा सकता लेकिन चारे के उपयोग के लिए उपयुक्त माना जाता है, उन आलुओं को पशुओं के लिए चाट के रूप में इस्तेमाल करते हैं। उपयोग करने तक उन्हें डिब्बे में संग्रहीत किया जाता है। कुछ किसान आलुओं को कच्चा खिलाने के बजाय उन्हें भाप कर देना पसंद करते हैं। आलू के स्टार्च का उपयोग खाद्य उद्योग में सूप और सॉस के लिए थिकनेर व बाइंडर के रूप में, कपड़ा उद्योग में एक चिपकने वाले पदार्थ के रूप में, और पेपर व बोर्ड बनाने में इसका प्रयोग किया जाता है। काफी कंपनियां प्लास्टिक उत्पादों में उपयोग के लिए अपशिष्ट आलू का इस्तेमाल पोलीलैक्टिक एसिड प्राप्त करने की संभावनाएं तलाश रही हैं। अन्य शोध परियोजनाएं बायोडिग्रेडेबल पैकेजिंग के आधार के रूप में आलू के स्टार्च का उपयोग करने के तरीकों को भी तलाश रही हैं। भारत में आलू की खाल को शहद के साथ लगाने से जले हुए को ठीक करने का उपचार किया जाता है। भारत में बर्न सेंटर ने उपचार करते समय जलने से बचाने के लिए आलू की पतली बाहरी त्वचा की परत का उपयोग किया है।

आलू का फसलोपरांत प्रबंधन

आलूमें फसल के बाद के नुकसान का प्रबंधन करने के लिए कई चरणों का ध्यान रखना ज़रूरी है। कटाई से पहले का ऑपरेशन सही तरीके से करना व समय पर रसायन लगाकर फसल को रोग मुक्त किया जाना चाहिए। आलू की कटाई के बाद के प्रबंधन के लिए गुणात्मक और मात्रात्मक नुकसान को कम किया जाना चाहिए व उचित देखभाल के माध्यम से उपायों को अपनाना चाहिए। फसल की कटाई तथा खाद्य फसल को नुकसान से बचाने के लिए तैयार किए गए उपकरणों के साथ कटाई की जानी चाहिए। छंटाई और ग्रेडिंग समझदारी से की जानी चाहिए। भंडारण विशेष तापमान और आर्द्रता पर किया जाना चाहिए। अधिकतम आलू मौसम के दौरान अंतराल से बचने के लिए विपणन उचित समय पर करना ज़रूरी है। प्रसंस्करण के लिए आलू के इस्तेमाल हेतु उनका पूर्व निर्धारण किया जाना चाहिए। आलू के उचित प्रबंधन के लिए इन उपर्युक्त कदमों का ध्यान रखना आवश्यक है।

आलू के मूल्य संवर्धन से किसान सशक्तिकरण

किसानों को सशक्त बनाने के लिए उन आलू की किस्मों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है जो उत्पाद विकास को सबसे ज़्यादा बढ़ाने में मुख्य भूमिका निभाती हों। आलू कम लागत वाली सब्जी की फसल है, इस प्रकार मूल्यवर्धन को शामिल करने से फसल के बाद के नुकसान (जो कि आलू में 25 प्रतिशत है) को कम किया जा सकता है। इस प्रकार मूल्यवर्धन के माध्यम से आलू के उत्पाद बनाकर बढ़े हुए राजस्व से किसानों को लाभान्वित किया जा सकता है। दूसरी ओर आलू की विशिष्ट किस्मों को उगाना जो कि खाद्य उद्योग द्वारा आवश्यकता में लायी जाती हो। इस तरह आलू में मूल्य संवर्धन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

[1]लुवास, हिसार

बागवानी फसलों की गुणवत्ता मूल्यांकन के लिए गैर-हानिकारक इमेजिंग तकनीक

✍ **सचिन, वी. के. सिंह एवं सुशांत भारद्वाज**
प्रसंस्करण एवं खाद्य अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत में बागवानी क्षेत्र में निर्यात की उच्चतम क्षमता बागवानी वनस्पतियों, कृषि-जलवायु परिस्थितियों की व्यापक विविधता के कारण है। भारत की निर्यात क्षमता बाकी फल उत्पादक देशों के मुकाबले काफी स्थिर है। बागवानी उपज के बाद मार्केटिंग एक महत्वपूर्ण कदम है। यह सबसे जटिल मुद्दों में से एक है जो निर्यात के सही इस्तेमाल के लिए कुशल समाधान प्रदान करता है। बाज़ारों के वैश्वीकरण (ग्लोबलाईज़ेशन) को जारी रखने की संभावना है क्योंकि आपूर्ति को विज्ञान और प्रौद्योगिकी के साथ हमेशा से जोड़ा जाता रहा है। बागवानी फसलों की आंतरिक गुणवत्ता उपभोक्ताओं और निर्यात व्यापारियों के लिए एक चिंता का विषय है। भारत में उच्च स्तर पर उगने वाले कृषि उत्पाद जैसे कि आम की फसल जिसमें विभिन्न दोष जैसे स्पंजी ऊतक, (वीविल्स) कीट क्षति या लार्वा भक्षण की क्षति, मामूली क्षय का दौरा, सिकुड़न, और रंग बिगाड़ना आम तौर पर पाई जाती हैं। इसी तरह आलू की फसल में भी काला दिल, खोखला दिल, आंतरिक ब्राउनिंग, काले धब्बे, फुसैरियम विल्ट, कवक और चिलिंग इंजरी आम तौर पर पाई जाती है। ये विभिन्न दोष आमतौर पर अधिकांश फलों और सब्जियों में पाए जाते हैं। इन बीमारियों का पता न लगने के कारण किसानों को पैदावार का उचित दाम नहीं मिल पाता और उन्हें मज़बूरन सस्ते दामों पर इसे बेचना पड़ता है। भारत में फल और सब्जियों के निर्यात में गिरावट को सरकार के मानदंडों में लगातार बदलाव के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है। इस बीच, दुनिया के सभी बड़े और छोटे देशों ने यूरोपीय संघ द्वारा निर्धारित कड़े गुणवत्ता मानदंडों को अपनाना शुरू कर दिया है। इन मापदंडों पर खरे उतरने में भारतीय किसान को कई बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है।



बैंगन का आंतरिक रंग बिगाड़ना



अनार में अंदरूनी गलन

बागवानी फसलों में अंदरूनी गड़बड़ी का पता लगाने और पूर्व-कटाई अवधि के दौरान इसके नियंत्रण के लिए कोई सिद्ध तकनीक नहीं है। आंतरिक विकार मानव आंखों को दिखाई नहीं देते हैं और शारीरिक रूप से दोष-संक्रमित फलों और सब्जियों का पता लगाना संभव नहीं है। अब तक, कुछ देशों ने इस कारण से भारतीय उपज पर प्रतिबंध लगा दिया है। इस स्थिति में किसान बागवानी फसलों में निवेश नहीं करना चाहते। ऐसी परस्थिति में, अच्छी गुणवत्ता वाली फसलों की ग्रेडिंग और छंटाई के लिए गैर-हानिकारक तकनीकों की सख्त आवश्यकता है। आजकल दोष का पता लगाने के लिए विभिन्न इमेजिंग तकनीक उपलब्ध हैं और इनका उपयोग ऐसी समस्या को हल

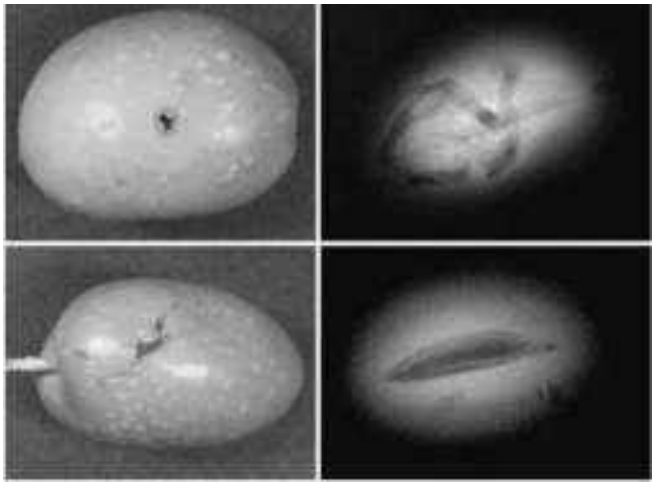

जैतून के फल की डिजिटल तस्वीरें और एक्स-रे चित्र, फ्रूट फ्ला संक्रमण (शीर्ष) और बिना संक्रमण (नीचे)

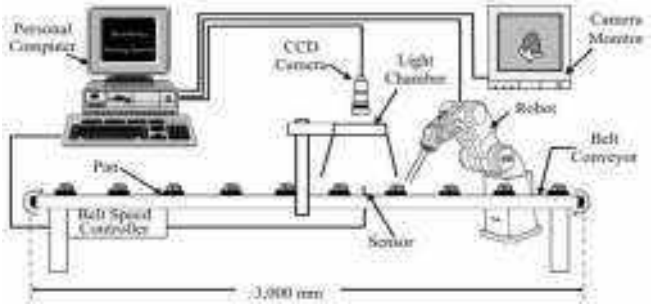

स्वचालित स्ट्रॉबेरी छँटाई प्रणाली

करने में प्रभावी रूप से किया जा सकता है।

गैर-हानिकारक इमेजिंग तकनीक फल और सब्जियों के आंतरिक भागों के प्रतिरूप को बाहर से देखने में मदद करती है, जिनका उपयोग फल सब्जियों की गुणवत्ता मूल्यांकन के लिए किया जा सकता है। आजकल मुख्य रूप से उपयोग की जाने वाली तकनीकों में चुंबकीय प्रतिध्वनि/चुंबकीय प्रतिध्वनि इमेजिंग (मैगनेटिक रेजोनेंस इमेजिंग) शामिल हैं, जो चुंबकीय प्रतिध्वनि उपकरणों में शक्तिशाली चुंबकीय क्षेत्र उत्पन्न करते हैं, जो फलों और सब्जियों के विभिन्न टिशुओं में मौजूद के हाइड्रोजन न्युक्ली को एक दिशा में करने में सक्षम होते हैं। इसमें अधिक मुक्त पानी वाले क्षेत्र आस-पास के टिशुओं की तुलना में उज्ज्वलित हो जाता है, जिस से वाटर कोर, कोर ब्रेकडाउन, चिलिंग इंजरी, बरुईसिंग का पता लगया जा सकता हैं, नियर इंफ़्रा-रेड रेफ्लेक्टॉन्स स्पेक्ट्रोस्कोपी में खाद्य पदार्थों की आर्गेनिक मोलेक्युल्स के साथ इंटरैक्शन क्रिया, मोलेक्युल्स द्वारा सोखे हुए प्रकाश की तरंग इसके प्रकार (जैसे शुगर, स्टार्च, फैट, पिग्मेंट आदि) के बारे में जानकारी देता है, फलों के पकने की क्रिया के दौरान ही अंदरूनी हानि का पता लगने से किसानों को इनके रख रखाव और छटाई में बहुत मदद मिलती है; डायनामिक तकनीक जैसे की वाइब्रेटेड एक्साइटेशन उत्पाद के नमूने की सुनाई या गैर सुनाई देने योग्य फ्रीक्वेंसीज़ का उपयोग करती है, जो कंपन द्वारा प्रतिक्रिया करता है, यह कुछ फलों और सब्जियों (सेब, खरबूजे, आड़ू, टमाटर आदि) की दृढ़ता और पकने की अवस्था को मापता है; अल्ट्रासोनिक तकनीक फलों में ऊर्जा संचरण और प्रतिक्रिया ऊर्जा के मूल्यांकन पर आधारित है। इस प्रणाली का परीक्षण अल्ट्रासोनिक ट्रांसड्यूसर की जोड़ी जिसमे एक संचरित के रूप में और दूसरा रिसीवर के रूप में कार्य करता है। (शेष पृष्ठ 19 पर)

वैज्ञानिक विधि से बाग लगाएं

✍ **सुलेमान मोहम्मद एवं विरेंद्र सिंह**
क्षेत्रीय अनुसन्धान केंद्र (बागवानी), बुड़ीया, यमुनानगर
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बागों के फल वृक्षों से कई सालों तक फसल प्राप्त होती है, इसलिए अगर बाग लगाते समय कोई चूक हो जाती है तो सालों तक उससे हानि उठानी पड़ती है। अत: वैज्ञानिक विधि से बाग लगाना चाहिए जिससे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके। नया बाग लगाते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें :

बाग लगाने के स्थान का चुनाव

बाग में लगाने वाले वृक्षों का चुनाव उष्ण, उपोष्ण एवं समशीतोष्ण जलवायु के अनुसार करना चाहिए।

मृदा बाग का आधार होती है, इसलिए बाग के लिए चयनित स्थान की मिट्टी की जाँच अवश्य करायें। दोमट व बलुई मिट्टी बाग के लिए अच्छी होती है। भूमि में 2 मीटर की गहराई तक कोई कठोर एवं कंकरीली तह नहीं होनी चाहिए। बाग लगाने के स्थान पर धरातल समतल होना चाहिए।

बाग की सिंचाई के लिए इस्तेमाल करने वाले पानी की जाँच अवश्य कराएं जिससे पता चल सके कि उस जगह पर किस तरह के बाग लगाये जा सकते हैं। भूमि में जल स्तर लगभग 3 मीटर नीचे होना चाहिए। बाग लगने वाले स्थान पर जल भराव नहीं हो और जल निकास का उचित प्रबन्ध होना चाहिए।

बाग के लिए कीट व बीमारियों से रहित स्थान का चुनाव करें।

बाग लगाने के स्थान पर बाज़ार एवं यातायात की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए तथा उद्यान कार्यों के लिए सस्ते एवं निपुण मज़दूर उपलब्ध होने चाहिएं।

फल वृक्षों का चयन एवं खरीद

बाग लगने वाले क्षेत्र की जलवायु, मिट्टी की गुणवत्ता व पोषण स्तर, पानी की गुणवत्ता, सिंचाई का प्रकार एवं जल निकास आदि का ध्यान रखते हुए फल वृक्षों का चयन करें।

हमेशा कलमी पौधे ही लगाएं। पौधे कीट एवं बीमारियों से मुक्त होने चाहिएं। पौधे नर्सरी से मिट्टी की पिंडी सहित निकालें ताकि परिवहन के दौरान कम से कम नष्ट हों।

कलमी पौधों का रूट स्टोक भूमि तथा विषम परिस्थितियों के अनुरूप हो तथा बीज द्वारा तैयार किया गया हो।

पौधों को स्थानीय, विश्वसनीय एवं प्रमाणित नर्सरी से ही खरीदें। नर्सरी का भ्रमण कर के पहले पौधों की प्रजातियों की जानकारी लें। प्रजाति का नाम खुद न बताएं बल्कि उपलब्ध प्रजातियों का नाम एवं उनकी खूबियां पूछें।

अच्छी किस्म के ज़्यादा पैदावार देने वाले कलमी पौधों का चुनाव करें एवं पौधों को समय पर बुक कराएं।

नर्सरी में लम्बे समय तक रखे गए ज़्यादा उम्र के पौधों को न खरीदें।

नर्सरी से तुरन्त निकाले गए जड़ कटे हुए पौधों को कभी न खरीदें।

कलमी पौधों की शाख की उम्र 1-2 साल से ज़्यादा न हो एवं बढ़वार अवरुद्ध न हुई हो।

मूल वृत्त एवं शाख का जोड़ स्पष्ट व ज़्यादा ऊंचाई पर न हो।

कलमी पौधों को पहचानने के लिए वानस्पति विधि द्वारा पौधे तैयार करने की तकनीकी जानकारी होनी चाहिए।

पॉलीथीन बैग में तैयार पौधों को वरीयता दें।

नर्सरी से पौधे उठाने के 1-2 दिन पहले हल्की सिंचाई करें तथा सदाबहारी पौधों की कुछ पत्तियों को तोड़कर वाष्पोत्सर्जन को नियंत्रित कर सकते हैं। सदाबहारी पौधों की मिट्टी के गोले के साथ तथा पर्णपाती पौधों को सुषुप्तकाल में किसी तरह निकाला जा सकता है।

मिट्टी का गोला (अर्थ बाल) अच्छी तरह घास/मूंज में बंधा हो ताकि जड़ें ठीक रहें।

पौधों को परिवहन के समय टोकरियों में या सीधे लादकर लायें। पौधों को लादते समय अर्थबाल को न टूटने दें। अगर रास्ता लम्बा हो तो पौधों को बीच में पानी दें तथा दिन में तेज़ धूप के समय छाया करें।

पौध रोपण का समय

उष्ण एवं उपोषण जलवायु के पौधों को बरसात के समय जुलाई से सितम्बर मास तक लगाते हैं। बसंत ऋतु में भी रोपण किया जा सकता है लेकिन अधिक देख-रेख की ज़रूरत होती है। समशीतोष्ण फल वृक्षों का रोपण दिसम्बर से फरवरी मास तक करना अच्छा होता है। पौधरोपण सायंकाल के समय करें।

पौधरोपण की विधि

सबसे पहले बाग लगने वाले चयनित स्थान की अच्छी तरह सफाई करें एवं पौधों के उचित विकास के लिए ज़रूरी रेखांकन विधि का चुनाव करें।

बाग स्थापना के 1-2 माह पूर्व 1 x 1 x 1 मीटर आकार के गड्ढे आवश्यक दूरी के अनुसार खोदें।

एक महीने तक गड्ढे खुदे रहने के बाद 50 कि.ग्रा. गोबर की अच्छी तरह गली-सड़ी खाद तथा आवश्यकता अनुसार उर्वरक व मिट्टी मिलाकर भूमि के स्तर से थोडा ऊपर तक भरते हैं ताकि सिंचाई के बाद समतल हो जाए। मिट्टी की जांच के आधार पर ही उर्वरकों का प्रयोग करें।

पौधों को दीमक से बचाने के लिए क्लोरपाईरिफॉस की मात्रा 50-100 मि. ली. प्रति गड्ढा मिलाएं।

गड्ढों की खुदाई करते समय आधा मीटर गहराई तक की मिट्टी एक तरफ तथा निचली आधा मीटर गहराई की मिट्टी दूसरी तरफ डालते हैं तथा भरते समय ऊपर की मिट्टी नीचे तथा नीचे वाली मिट्टी खाद मिला कर ऊपर भर देते हैं।

बाग के पश्चिम तथा उत्तर दिशा में लू एवं शीत लहर से बचाव के लिए वायुरोधक पौधों का रोपण करें।

पौध रोपण के समय पौधे को पिंडी से थोड़ा अधिक गाड़ना चाहिए।

अच्छे परागकण के लिए परागकर्ता पौधों का भी रोपण करना चाहिए।

पौधों की रोपाई के बाद तुरंत सिंचाई करें तथा कुछ समय बाद आवश्यकतानुसार सिंचाई करें।

स्प्रेयर का रख-रखाव : कैसे

✍ **विनोद कुमार, नरेंद्र एवं सुशील कुमार**
फार्म मशीनरी और पावर इंजीनियरिंग विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

स्प्रेयर की अच्छी देखभाल करने से न केवल उसकी आयु बढ़ जाती है बल्कि उसका रख-रखाव का खर्चा भी कम हो जाता है। यह हर कोई जानता है कि जब आप किसी चीज़ की देखभाल करते हैं, तो वह लंबे समय तक सही काम करती है। उचित साफ-सफाई से विभिन्न फसलों पर प्रयोग किए जाने वाले रसायनों की आपसी क्रिया से हुए नुकसान से फसल को सुरक्षित रखा जा सकता है। यह लेख आपको स्प्रेयर का उपयोग करने से पहले और बाद में अपने स्प्रेयर को सही स्थिति में बनाए रखने के लिए उचित दिशा-निर्देश सिखाती है।

स्प्रेयर का रख-रखाव : स्प्रेयर के रख-रखाव के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें :

1. पंप की देखभाल : पहली बार चलाने से पहले पंप में से साफ पानी गुज़ार लें ताकि पंप, होज़, फिल्टर और नोज़ल आदि से धूल-मिट्टी, काई, तलछट बाहर निकल जाएं। पंप अगर काम न कर रहा हो तो इसका कारण जंग लगना या तलछट का जमाव होना हो सकता है। इसको साफ करने हेतु निर्माता के सुझाए हुए रसायनों का प्रयोग भी कर सकते हैं। पिस्टन पंप जो कि हरियाणा में अधिकतर स्प्रेयर में लगा होता है, में वॉल्व, वॉल्व सीट, ओ-रिंग्स, प्लंजर कप, सिलिंडर और सीलिंग गैस्केट की जांच करें। पंप में अगर तेल की मात्रा निर्धारित निशान से कम है तो इसमें और तेल भरें।

2. होज़ : होज़ के सभी जोड़ों की संभावित दरारों हेतु ध्यान से जाँच करें। सभी होज़ में पंप द्वारा पैदा किये गए अधिकतम दबाव को सहन करने की शक्ति होनी चाहिए। कभी भी छोटे छिद्र वाली होज़ का प्रयोग न करें। सक्शन होज़ का व्यास कम से कम पंप के इनपुट नली के व्यास से अधिक होना चाहिए।

3. फिल्टर या स्ट्रेनर : फिल्टर टैंक की इनपुट नली, टैंक और पंप के मध्य, पंप के बाद और नोज़ल में लगे होते हैं। अगर फिल्टर में कोई पदार्थ का जमाव नजर आता है तो फिल्टर के साथ-साथ टैंक और सभी होज़ को साफ करें। फिल्टर को साफ करने के लिए नरम बालों वाले ब्रश का भी प्रयोग किया जा सकता है।

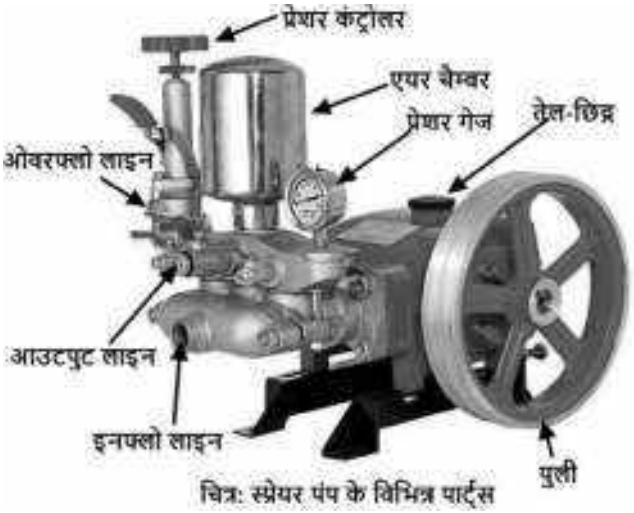

चित्र: स्प्रेयर पंप के विभिन्न पार्ट्स

4. रेगुलेटर : स्प्रेयर रेगुलेटर को साल में एक बार अवश्य चेक करें। रेगुलेटर की पैकिंग को अधिक टाइट करने से प्रेशर बहुत अधिक हो सकता है और ज़्यादा ढ़ीली रहने से लीकेज की समस्या हो सकती है।

5. प्रेशर गेज: दबाव को सही नापने के लिए अधिकतम दबाव के दोगुने माप वाली प्रेशर गेज का प्रयोग करें। जहां तक संभव हो तेल वाली प्रेशर गेज का ही प्रयोग करें। नोज़ल को हटा कर भी प्रेशर को मापा जा सकता है।

6. बेल्ट और पीटीओ: बेल्ट के तनाव और टूट-फूट की जांच करें। पीटीओ का जोड़ों में ग्रीस करें। पीटीओ और बेल्ट के सुरक्षा-ढक्कन लगें होने चाहिएं।

7. एजीटेटर: अगर एजीटेटर सही काम न कर रहा हो तो स्प्रे पदार्थ आपस में अच्छी तरह घुल नहीं सकते हैं। मैकेनिकल एजीटेटर में ब्लेड, शाफ्ट का साथ मज़बूती से लगे होने चाहिएं। शाफ्ट के बेयरिंग में ग्रीस नियमित रूप से करना चाहिए। हरियाणा में स्प्रेयर निर्माता मुख्यत: अलग से एजीटेटर नहीं लगाते हैं। इनमें ओवरफ्लो डिस्चार्ज वाल्व की होज को ही एजीटेटर के रूप में प्रयोग करते हैं।

8. नोज़ल : नोज़ल के नाजुक सिरे को साफ करने के लिए हल्के बालों वाले ब्रश का प्रयोग करना चाहिए। धातु के तारों या लकड़ी के डंडियों का प्रयोग करने से नोज़ल खराब हो सकती है। नई नोज़ल को प्रयोग करने से पहले उसकी क्षमता जाँच लेनी चाहिए।

स्प्रेयर की धुलाई-सफाई कैसे करें?

1. स्प्रेयर के पहले उपयोग से पहले : स्प्रेयर को पहली बार उपयोग करने से पहले एक दृश्य-निरीक्षण कर लेना चाहिए। सभी होज के जोड़, फिटिंग, दरार आदि की भली-भांति जांच कर लें। सभी फिल्टर को साफ कर लें। टैंक के अंदर भी देख लेना चाहिए कि कोई कीट-पतंगा अंदर न चला गया हो। यह पंप या होज में फंस सकता है।

2. स्प्रेयर को प्रयोग करने के बाद : प्रयोग करने के बाद स्प्रेयर को साफ कर लेना चाहिए। स्प्रेयर को साफ करने से पहले उपकरण निर्माता के दिशा-निर्देशों को ध्यानपूर्वक पढ़ें। इसके बाद जो भी कीटनाशक का स्प्रे हुआ हो, उसके प्रयोग करने के लिए दिए गए विशेष निर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित करें। एक आदर्श नियमावली के अनुसार स्प्रेयर को प्रयोग करने के बाद दिन के अंत में अवश्य साफ करें चाहे अगले दिन भी उसी कीटनाशक का प्रयोग होना हो। अगर कीटनाशक को बदलना हो तो इसे नए कीटनाशक का प्रयोग करने से पहले भी साफ करें। ऐसा न करने पर पुराना कीटनाशक नए कीटनाशक के प्रभाव को कम कर सकता है और फसल को भी नुकसान पहुंच सकता है। इससे स्प्रेयर के पार्ट्स खराब हो सकते हैं और यह ऑपरेटर के लिए भी हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

किसी भी स्प्रेयर को साफ करने के स्थिति-विशेष के अनुसार दो तरीके हो सकते हैं- एक जब एक ही तरह के कीटनाशक का प्रयोग दो अवसरों पर किया जाए और दूसरा जब कीटनाशक को बदल दिया जाए। इन दोनों तरीकों में एक प्रक्रिया समान है- तिहरी धुलाई।

तिहरी धुलाई करने का तरीका : अगर स्प्रेयर टैंक खाली दिख रहा हो तो भी स्प्रेयर में कई लीटर कीटनाशक का घोल हो सकता है। स्प्रेयर टैंक को एक बार अधिक पानी के साथ धोने की बजाय कम पानी की मात्रा के साथ कई बार धोना अधिक फायदेमंद होता है। पानी की कम मात्रा में धुलाई हमेशा ही फायदेमंद नहीं रहती है, इसलिए एक बार कीटनाशक के साथ आई पत्रिका को पढ़ लेना चाहिए।

स्प्रेयर की तिहरी धुलाई करने का तरीका इस प्रकार है :

1. टैंक में उसकी क्षमता का दस प्रतिशत पानी भरें और इसको 10 मिनट तक पूरे स्प्रेयर में घुमाएं। हर कंट्रोल वॉल्व को खोलें और बंद करें।
2. एक अलग टैंक में साफ पानी को रखें और स्प्रेयर के बाहरी हिस्से में लगे हुए कीटनाशक के बचे हुए भाग को धो दें। यह धुलाई उचित व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण पहनने के बाद ही करें। जहाँ तक संभव हो, यह धुलाई उसी खेत में करें जहाँ कीटनाशक का छिड़काव किया गया हो। इस कीटनाशक मिले पानी को नोज़ल द्वारा फसल पर भी छिड़का जा सकता है बशर्ते यह सिफारिश की हुई मात्रा से अधिक न हो।
3. इसके बाद, स्प्रेयर को उस स्थायी स्थान पर ले जाएँ जहाँ पर इसमें कीटनाशक भरा जाता है। यहाँ पर इसकी दो बार और (कुल तीन बार) धुलाई करें। धुलाई के बाद गन्दे पानी को जलमार्ग, जल निकासी प्रणाली या कुएं में कदापि न जाने दें।

धुलाई करने का पहला तरीका : जब एक जैसे उत्पाद प्रयोग कर रहे हों :

1. कीटनाशक के छड़काव की योजना इस तरह से बनाएं कि अंत में पूरा कीटनाशक घोल प्रयोग हो जाए। कभी भी टैंक में पूरी रात कीटनाशक का घोल न छोड़ें।
2. तिहरी धुलाई करें जैसे की पहले बताया गया है।
3. सक्शन, इन-लाइन और फिल्टर स्क्रीन को निकालें, निरीक्षण करें और साफ करें। साफ होने के बाद वापिस लगा दें।
4. नोज़ल के अगले हिस्से और उसकी छलनी को निकालकर साफ करें और वापिस लगा दें।

धुलाई करने का दूसरा तरीका : इस तरीके को तब प्रयोग में लाएं जब उत्पाद (कीटनाशक या अन्य रसायन) बदल रहे हों या स्प्रेयर को अगले मौसम में प्रयोग करने हेतु स्टोर में रख रहे हों :

1. इसमें धुलाई करने वाले पहले तरीके के 1-4 तक चरणों को दोहराएं।
2. इसके बाद टैंक को साफ पानी और डिटर्जेंट जो कि निर्माता द्वारा अनुसंशित किया गया हो, से भरें। अगर निर्माता द्वारा कोई भी डिटर्जेंट न सुझाया गया हो तो कम झाग वाला या क्षारीय क्लीनर का उपयोग करें। ब्लीच का प्रयोग न करें।
3. एजीटेटर या ओवरफ्लो डिस्चार्ज वाल्व को पूरा खोल कर चलाएं और कम से कम 5 मिनट पानी को सारे स्प्रेयर में घुमाएं।
4. इसके बाद स्प्रेयर को खाली कर दें।
5. इस प्रक्रिया को 2-4 चरणों तक दोहराएं।

यदि सिर्फ कीटनाशक बदलते हैं, तो नोज़ल की छलनी और अग्रभाग को वापिस लगा दें।

स्प्रेयर को स्टोर करते समय, अगर संभव हो तो, एजीटेटर के साथ 5 मिनट तक जंगरोधक घोल को चलाएं और इसे पंप द्वारा निकाल दें। इस घोल को स्प्रे गन या लांस से न गुज़ारें। वाल्वों को खुला छोड़ दें और टैंक का ढक्कन ढीला रखें। प्लास्टिक के हिस्सों को धूप से बचाएं। थोड़े समय के लिए गैर-संक्षारक तरल पदार्थ को पंप में छोड़ा जा सकता है, लेकिन इसके लिए हवा को बाहर निकाल दें। खुले हुए छिद्रों को सील कर दें।

अंत में अपने स्प्रेयर को स्वस्थ रखने का मतलब है कि यह लंबे समय तक चलेगा। यदि आप इन स्प्रेयर रखरखाव के सरल चरणों का पालन करते हैं, तो आपको छिड़काव करते समय कम टूट-फूट का सामना करना पड़ेगा।

ब्रिकेटिंगः धान के भूसा प्रबंधन का एक अच्छा विकल्प

✍ **यादविका, कमला मलिक एवं एम. के. गर्ग**
प्रसंस्करण एवं खाद्य अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

पूरी दुनिया में, लगभग 165 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र में 730 मिलियन टन चावल का उत्पादन किया जाता है। भारत में धान लगभग 43 मिलियन हैक्टेयर में लगाया जाता है जिससे 96 मिलियन टन चावल और लगभग 250 मिलियन टन भूसे का उत्पादन होता है। किसानों को इतनी बड़ी मात्रा में भूसे को संभालना बहुत मुश्किल लगता है और इसी कारण वे इसे जलाना बेहतर समझते हैं। उत्तरी भारत में भूसे को जलाने की प्रथा सबसे अधिक प्रचलित है। अकेले हरियाणा में, लगभग 13.20 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में धान उगाया जाता है। जिनमें से बासमती किस्में 7.67 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में उगाई जाती हैं जबकि 5.53 लाख हैक्टेयर में गैर बासमती धान उगाया जाता है जिससे 69.54 लाख मीट्रिक टन तक भूसा होता है। हाल के वर्षों में, इसकी तीव्रता इतनी हो गई है कि यह अक्तूबर के महीने के दौरान अंतर्राष्ट्रीय ध्यान आकर्षित करती है। भूसे को जलाना मानव स्वास्थ्य, मिट्टी के स्वास्थ्य और पर्यावरणीय स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है। किसान धान के भूसे के बचे हुए हिस्से का उपयोग करने के आर्थिक तरीकों से अवगत नहीं है। कुशल तरीके से इस धान के भूसे का उपयोग करने के कुछ वैकल्पिक तरीके हैं। उनमें से धान के भूसे की ब्रिकेटिंग है, जिसे घरेलू क्षेत्र में ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है, बॉयलर में भाप उत्पादन के लिए, बढ़ती आबादी की ऊर्जा ज़रूरत को पूरा करने के लिए बिजली उत्पादन के लिए आदि। जीवाश्म ईंधन की कमी को हल करने के लिए, धान के भूसे से उत्पादित ब्रिकेट का उपयोग ऊर्जा उत्पादन के लिए जैव ईंधन के रूप में किया जा सकता है। धान के भूसे की ब्रिकेटिंग हानिकारक गैसों को कम करने में मदद करती है और यह ग्रामीण विकास के साथ ही उपलब्ध अपशिष्ट धान के भूसे का स्थायी उपयोग भी है।

धान के भूसे का जैव-ईंधन ब्रिकेट में रूपांतरण

धान के भूसे की ब्रिकेटिंग

ब्रिकेटिंग प्रक्रिया ढीले धान के भूसे या किसी भी अन्य कृषि अपशिष्ट बायोमास को उच्च घनत्व वाले हरे ईंधन में परिवर्तित करती है। सामग्री की थोक घनत्व 4-10 गुना बढ़ जाती है। अध्ययनों से पता चलता है कि धान के भूसे में 3400 से 3600 किलो कैलोरी/किग्रा की सीमा में ईंधन मूल्य होता है, इसलिए इसे बॉयलर में, फर्नेस में, ईंट की भट्ठी में और घरेलू खाना पकाने में भी ईंधन के रूप में उपयोग की जाने की बड़ी क्षमता है। सोयाबीन स्ट्रॉ, जैसे अन्य फसल अवशेषों के मिश्रण के साथ भी धान के भूसे की ब्रिकेटिंग की जा सकती है।

मूल रूप से दो प्रकार की ब्रिकेटिंग तकनीक है जो पिस्टन प्रेस और स्क्रू प्रेस हैं। प्रेस का उपयोग कच्चे माल के प्रसंस्करण में किया जाता है जिसे बायोमास के रूप में उपयोग किया जा सकता है। स्क्रू ब्रिकेट प्रेस द्वारा कॉम्पैक्ट बायोमास को खोखले ब्रिकेट में परिवर्तित किया जाता है जिसे बाद में सह-फायरिंग में कोयले के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

इस प्रक्रिया में एक गर्म टेपर डाई के माध्यम से बायोमास सामग्री की निरंतर निकासी शामिल होती है जो एक डोनट की तरह मध्य में एक

विस्तृत छेद के साथ ब्रिकेट बनाती है, जो उच्च दहन दर के लिए सतह क्षेत्र को बढ़ाने के लिए सही सेवा प्रदान करती है। यह वांछित है क्योंकि यह हल्की और शांत है क्योंकि इसमें सामग्री की कोई छिद्रण की आवश्यकता नहीं है।

स्क्रू ब्रिकेट प्रेस

पिस्टन ब्रिकेट प्रेस को मैकेनिकल स्टैम्पिंग या पंचिंग ब्रिकेट प्रेस के रूप में भी जाना जाता है, जिसका उपयोग उद्देश्यों की विस्तृत श्रृंखला के अनुरूप ठोस ब्रिकेट बनाने के लिए किया जाता है। यह एक पारस्परिक रैम द्वारा सामग्री को छिद्रित करके मोल्ड करता है जिसमें उच्च दबाव होता है। इसलिए ब्रिकेट्स की एक छोटी सतह होती है और कम दहन दर होती है। इसे प्राथमिकता दी जाती है क्योंकि यह स्क्रू प्रेस की तुलना में लागत प्रभावी है जिसके लिए बहुत सारी शक्ति की आवश्यकता होती है।

पिस्टन ब्रिकेट प्रेस

धान की स्ट्रॉ ब्रिकेटिंग प्रक्रिया

1. स्ट्रॉ की क्रशिंग : लंबे और मोटी स्ट्रॉ को पहले छोटे आकार में कुचल दिया जाता है।

2. सुखाना : इसके बाद भूसे को सुखाया जाता है। यह या तो धूप में या ड्रायर के उपयोग से किया जा सकता है जब वे पूरी तरह से गीले होते हैं। भूसे को फिर पाऊडर में तब्दील किया जाता है।

3. ब्रिकेटिंग : कुचले और सूखे पाउडर को ब्रिकेटिंग मशीन पर भेज दिया जाता है जहां अधिक घनत्व ब्रिकेट बनाने के लिए बहुत अच्छा दबाव उत्पन्न होता है।

4. ठंडा करना : फिर उन्हें कमरे के तापमान में ठंडा कर दिया जाता है।

ब्रिकेट से ऊर्जा उत्पादन

भारत जैसे विकासशील देश में, कोयले को भट्ठी में दहन करके अथवा हीट एक्सचेंजर के माध्यम से भाप उत्पादन के द्वारा ऊर्जा उत्पादित की जाती है। जीवाश्म ईंधन (जो सीमित मात्रा में पहले से ही है) का निरंतर उपयोग होता है जिसके परिणामस्वरूप इसकी गंभीर कमी होती है, इसलिए इस पारंपरिक ईंधन के लिए कुछ विकल्प खोजने की तत्काल आवश्यकता है। इसके अलावा दुनिया भर में बढ़ती आबादी के साथ प्रति व्यक्ति बिजली की खपत प्रति दिन बढ़ रही है, और अकेले कोयला या अन्य जीवाश्म ईंधन इसकी मांग को पूरा करने में सक्षम नहीं है। यह केवल कुछ विकल्प जैसे बायो-ईंधन के रूप में ब्रिकेट के रूप में संभव है और धान के भूसे आदि जैसे कृषि अवशेषों से उत्पादित बायोमास ब्रिकेट को कोयले के जैव ईंधन विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। यह न केवल ऊर्जा के अक्षय स्रोत के रूप में कार्य करेगा बल्कि यह पर्यावरण के अनुकूल ईंधन है। इन बायोमास ब्रिकेट्स द्वारा जीवाश्म ईंधन के मुकाबले बिना किसी भी नुकसान के साफ सुथरी बिजली का उत्पादन कर सकते हैं। कोयले जैसे मौजूदा पारंपरिक ईंधन को बदलने के लिए धान के भूसे से बनी ब्रिकेट्स का उपयोग बॉयलर में भाप उत्पादन, हीटिंग उद्देश्य के लिए, सुखाने की प्रक्रिया के लिए और गैसीफिकेशन प्लांट में किया जा सकता है। ब्रिकेट जलाने की ईंधन लागत एक रुपये प्रति हज़ार किलो कैलोरी आती है जोकि कोयला जलाने में 1.3 से 1.4 रुपये प्रति 1000 कि.ग्रा. है।

निष्कर्ष : धान के भूसे से ब्रिकेटिंग अपशिष्ट अवशेषों के प्रबंधन के लिए एक स्थायी विकल्प के रूप में उभर रही है, अन्यथा इसे या तो जला दिया जाता है या खेत में अपघटन के लिए रखा जाता है। धान के भूसे से ब्रिकेटिंग के लाभों में वह सरल प्रक्रिया शामिल है जिसके द्वारा इसे बनाया जा सकता है। इससे हानिकारक गैसों में कमी और ग्रामीण विकास के साथ उपलब्ध अपशिष्ट धान के भूसे का स्थायी उपयोग होता है। इस प्रकार यह पर्यावरण अनुकूल, ऊर्जा कुशल और लागत प्रभावी तकनीक है। अध्ययन से पता चला कि ब्रिकेटिंग प्लांट (500 किलो/घंटा) की एक इकाई ग्रामीण युवाओं को सालाना 3000 से 4000 मैन डेज़ का रोज़गार पैदा करेगी। यह ग्रामीण बेरोज़गार युवाओं के लिए आय उत्पादन का स्रोत हो सकता है और इस प्रकार बेरोज़गारी और रोज़गार के तहत समस्याओं को ब्रिकेटिंग नामक तकनीक को अपनाने के द्वारा हल किया जा सकता है। इसके साथ ही अपशिष्ट बायोमैटेरियल के इस मूल्यवर्धन के अलावा, लोग धान के भूसे की खुले मैदान में जलाने के दौरान पर्यावरण में हानिकारक गैसों की रिहाई को हटाकर कार्बन क्रेडिट कमा सकते हैं। यह आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्र में काम कर रहे एनजीओ को इस कचरे को ब्रिकेट उत्पादन और उसके उपयोग के व्यावसायीकरण के माध्यम से धन में परिवर्तित करने के लिए आगे आना चाहिए, जो ग्रामीण आजीविका के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। बढ़ती आबादी की ऊर्जा मांग को पूरा करने के लिए, ऊर्जा उत्पादन के लिए कोयले या अन्य जीवाश्म ईंधन के विकल्प के रूप में ब्रिकेट का उपयोग किया जा सकता है। यह भविष्य में जीवाश्म ईंधन की कमी की समस्या को भी दूर करेगा क्योंकि बायो-ब्रिकेट स्वयं ऊर्जा का नवीकरणीय स्रोत है। धान के भूसे से ब्रिकेट का उत्पादन न केवल ग्रामीण इलाके में जैव ईंधन उपलब्ध कराता है बल्कि किसान की आमदनी को दोगुना करने के हमारे प्रधान मंत्री के सपने को पूरा करने में किसान की आय बढ़ाने में भी मदद करता है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस तकनीक को अपनाने से (यानी धान की भूसे की ब्रिकेटिंग) कृषि समुदाय के सामाजिक-आर्थिक उत्थान और वायुमंडल में हानिकारक गैसों में कमी में भी मदद मिलेगी।

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक निःशुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह निःशुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह निःशुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

अगस्त मास के कृषि कार्य



फसलों में

बाजरा

बिजाई के लगभग 3 सप्ताह बाद किसी वर्षा वाले दिन कतारों में से फालतू पौधे निकाल कर खाली स्थानों में लगाएं ताकि पौधे से पौधे का फासला लगभग 12 सैं.मी. रहे। इसी समय निराई-गुड़ाई करें ताकि खेत में खरपतवार न रहें। यदि किसी कारणवश बाजरे की बिजाई न हो पाई हो तो इसकी पौध रोपाई तीन हफ्ते पुरानी पौध से मध्य-अगस्त तक किसी वर्षा वाले दिन, 45 सैं.मी. के अंतर पर कतारों में करें व पौधे से पौधे का फासला 12 सैं.मी. रखें। संकर बाजरे की सिंचित फसल में नाइट्रोजन की दूसरी मात्रा, लगभग 45 कि.ग्रा. यूरिया प्रति एकड़ बिजाई के 3 हफ्ते बाद फसल की छंटाई के समय तथा 45 किलोग्राम यूरिया, जब गोभ में सिट्टा आ जाए, डालें। यदि खाद डालते समय खेत में पर्याप्त नमी न हो और वर्षा भी न हो रही हो तो फसल में पानी लगा दें। बाजरे की बारानी फसल में अगर किसी कारणवश यूरिया खाद बिजाई के समय न डाल सके हों तो लगभग 35 किलोग्राम यूरिया प्रति एकड़ खड़ी फसल में तभी डालें जब वर्षा हो जाए या होने की संभावना हो। यदि बाजरे की फसल में जस्ते की कमी के लक्षण दिखाई दें तो 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट का छिड़काव करें। एक एकड़ के लिए एक किलोग्राम ज़िंक सल्फेट (21%), 6 किलोग्राम यूरिया व 200 लीटर पानी का प्रयोग करें। 10-12 दिन के अंतर पर कम से कम 2-3 छिड़काव करें।

कोढ़िया या डाऊनी मिल्ड्यू रोग से प्रभावित पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दें। ऐसे पौधे रंग में पीले, कद में बौने होते हैं तथा पत्तियों की निचली या दोनों सतहों पर सफेद रंग का पाऊडर-सा छाया रहता है। ध्यान रहे कि रोगी पौधों को उखाडने का काम बिजाई के तीन या चार सप्ताह के अंदर पूरा कर लें। जब पत्तों से बालें बाहर आने लगें तो बालों पर चेपा रोग की रोकथाम के लिए क्यूमान एल. (400 मि.ली. प्रति एकड़) का 200 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। चेपाग्रस्त बालों के दिखाई देते ही उन्हें खेत से निकालकर नष्ट कर दें। खरपतवार की रोकथाम के तुरंत बाद यदि रसायन का छिड़काव न किया हो तो बिजाई के 7 से 15 दिन के अंदर 400 ग्राम (50 प्रतिशत घु.पा.) एट्राजिन 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

यदि बालों वाली सूण्डी का आक्रमण हो तो पत्तों पर अंडों के जो समूह होते हैं उन पत्तों को अंडों सहित तोड़कर नष्ट कर दें। बड़ी सूण्डियों को मारने के लिए 500 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. या 200 मि.ली. डाइक्लोरवास 76 ई.सी. 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें। प्रौढ़ों को प्रकाश प्रपंच से नष्ट करें।

मक्का

अगर वर्षा न हो तो ज़रूरत के अनुसार फसल को पानी दें। जल निकास का पूरा प्रबंध करें। खेत में खरपतवार बिल्कुल न उगने दें। महीने के पहले पखवाड़े में पौधे घुटनों तक उग आने पर संकर व कम्पोज़िट मक्की में 45 किलोग्राम यूरिया प्रति एकड़ के हिसाब से कतारों में, पौधों में थोड़ी दूर से डालें व फसल की निराई करें। कतारों में खड़े फालतू पौधों को इस हिसाब से निकालें कि संकर किस्मों में एक पौधे से दूसरे पौधे का फासला 22.0 सैं.मी. रहे। दूसरे पखवाड़े में संकर मक्का में झण्डे आने से पहले कतारों के बीच 45 किलोग्राम यूरिया की अंतिम मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से डालें और उसे मिट्टी में अच्छी तरह मिला दें। यदि पत्तों पर जस्ते की कमी के लक्षण दिखाई दें तो 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट का यूरिया के साथ छिड़काव कर दें। कम से कम 2-3 छिड़काव 10-12 दिन के अंतराल पर करें। इसके लिए 200 लीटर पानी में 1 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट (21%) व 6 कि.ग्रा. यूरिया का प्रयोग करें।

पत्तों की अंगमारी व पत्तों के अन्य रोगों से बचाव के लिए 600 ग्राम जिनेब या मैन्कोज़ेब के घोल का 10-15 दिन की अवधि पर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

कपास

देसी कपास में पौधे से निकल रही फूटों को इस माह के पहले पखवाड़े में काट दें। इस माह के मध्य तक कपास में नाइट्रोजन खाद की दूसरी मात्रा अवश्य डाल दें। देसी कपास में इस समय 25 किलोग्राम यूरिया प्रति एकड़ डालें। अमेरिकन कपास में फूल आने के समय 40 किलोग्राम यूरिया प्रति एकड़ के हिसाब से डालें। संकर किस्मों के लिए नत्रजन खाद (150 कि.ग्रा. यूरिया) को तीन बराबर हिस्सों में बांट कर तीन बार-बिजाई के समय, बौकी आने पर तथा फूल आने पर डाली जाती है। अत: आगे फूल आने पर 50 किलोग्राम यूरिया की तीसरी मात्रा अवश्य डालें। यदि ज़मीन में पर्याप्त नमी न हो तो हल्का पानी लगा दें। इससे पैदावार में बढ़ोत्तरी होती है। अमेरिकन कपास में फलों को सड़ने तथा टिण्डों को गिरने से रोकने के लिए फसल में एन.ए.ए. (जैसे प्लेनोफिक्स या और कोई इस जैसी दवा) का दो बार छिड़काव करें। पहला छिड़काव 50 ई.सी. दवा 280 लीटर पानी में मिलाकर फल आने के समय प्रति एकड़ करें व दूसरा छिड़काव 70 सी.सी. के हिसाब से पहले छिड़काव के 20 दिन बाद करें। छिड़काव में खारे पानी का प्रयोग न करें।

लेखक :

एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
अनिल कुमार गोदारा, विभागाध्यक्ष (बागवानी)
डी. एस. दुहन, सहायक वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान)
तरुण वर्मा, जिला विस्तार विशेषज्ञ (कीट विज्ञान)
रोहतास कुमार, सहायक वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
वी. एस. हुड्डा, सहायक वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
देवेन्द्र सिंह बिढान, सहायक प्राध्यापक (पशु उत्पादन प्रबन्धन)
लीलावती, प्राध्यापिका (सूक्ष्मजीव विज्ञान)
राजेश दहिया, सहायक प्राध्यापिका (गृह विज्ञान)
सूबे सिंह, सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

फसल को कोणदार धब्बों की बीमारी से बचाव हेतु प्लांटोमाइसिन (30-40 ग्राम प्रति एकड़) या स्ट्रैप्टोसाइक्लिन (6-8 ग्राम प्रति एकड़) व कॉपर ऑक्सीक्लोराईड (600-800 ग्राम प्रति एकड़) के घोल का 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें। 2,4-डी कपास के लिए घातक है। किसी भी रूप में इसे कपास की फसल के संपर्क में न आने दें। जिन छिड़काव यंत्रों से पहले 2,4-डी का छिड़काव किया गया हो उन्हें कपास में कीट या फफूंदनाशकों के छिड़काव के लिए प्रयोग में न लाएं।

2, 4-डी से प्रभावित पौधों की समस्या हो जाने पर प्रभावित कोंपलों को 15 सैं.मी. काट दें और इसके बाद 2.5 प्रतिशत यूरिया तथा 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट के घोल का छिड़काव करें।

अगस्त-सितम्बर में कपास की फसल को कीड़ों से बचाने के लिए 12 से 15 दिन के अंतर पर चार छिड़काव करने पड़ेंगे। अभी से कीटनाशकों का प्रबंध करें। इसके लिए जो भी दवाई आपने खरीदी है उसका थोड़ा घोल बनाकर पहले 15-20 पौधों पर छिड़क लें। यदि पौधों में चार-पांच दिन तक कोई खराब असर विशेषकर बन्दरपंजा न हो तो आगे छिड़काव करें, नहीं तो वह दवाई प्रयोग न करें।

अगस्त के पहले पखवाड़े में अधिक नमी वाला मौसम होने के कारण हरे तेले का प्रकोप अधिक होता है। आवश्यकता पडने पर (2 शिशु तेला/पत्ता) हरा तेला की रोकथाम के लिए 250-350 मि.ली. डाईमैथोएट 30 ई.सी. या 40 मि.ली. ईमीडाक्लोपरिड 200 एस एल या 40 ग्राम थायोमीथोक्सेम 25 घु. पा. को 150 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। ये कीटनाशक सूण्डियों की रोकथाम के लिए प्रयोग हो रही कीटनाशकों में मिलाई जा सकती हैं। चित्तीदार सूण्डी, गुलाबी सूण्डी तथा अमेरीकन सूण्डी की रोकथाम के लिए सप्ताह में दो बार खेत में 10 पौधों का निरीक्षण करें तथा उन पर 5 सूण्डियां मिलने या 5 प्रतिशत फल प्रभावित होने की अवस्था में 600 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. या 500-600 मि.ली. ट्राइएजोफास 40 ई.सी. में से किसी एक को 150-200 लीटर पानी में मिलाकर बारीक फव्वारे द्वारा प्रति एकड़ छिड़काव करें। दूसरा छिड़काव किसी एक सिन्थेटिक पायरेथरायड (100-125 मि.ली. फैनवालरेट 20 ई.सी. या 100-125 मि.ली. अलफामैथरीन 10 ई.सी. या 80-100 मि.ली. साईपरमैथरीन 25 ई.सी. या 160-200 मि.ली. डेकामैथरीन 2.8 ई.सी.) को 150-200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। अमेरीकन सूण्डी की रोकथाम के लिए सिन्थेटिक पायरेथरायड का प्रयोग न करें अपितु 300 ग्राम थायोडिकार्ब (लार्विन) 75 डब्ल्यू.पी. या 75 मि.ली. स्पाइनोसेड (ट्रेसर) 45 एस.सी. का प्रयोग करें।

अगर बी.टी. कपास बोई है तो अगस्त मास में सूण्डियों के नियंत्रण के लिए कीटनाशकों का छिड़काव करने की आवश्यकता नहीं है, परंतु इस पर रस चूसने वाले कीड़ों का प्रकोप प्राय: अधिक होता है। अत: इनके नियंत्रण के लिए 2-3 छिड़काव करने पड़ सकते हैं।

किसी एक कीटनाशक का एक से अधिक बार प्रयोग/छिड़काव न करें। मीलीबग के प्रकोप की अवस्था में पिछले अंक में सुझाए गए उपाय अपनाएं।

धान

फसल में पानी की कमी न होने दें। सिंचाई 5-6 सैं.मी. से अधिक गहरी न करें। खेत में खरपतवारों को कभी न पनपने दें। धान की बौनी बासमती किस्मों में प्रति एकड़ 80 किलोग्राम यूरिया को तीन बार में डालें-रोपाई पर, 3 सप्ताह बाद व 6 सप्ताह बाद। लंबी किस्म वाली बासमती धान में 24 किलोग्राम नाइट्रोजन (50 किलोग्राम यूरिया) प्रति एकड़ के हिसाब से रोपाई के 3 व 6 सप्ताह बाद आधी-आधी डालें। खाद डालते समय खेत की मिट्टी गीली हो पर उसमें पानी न खड़ा हो। खाद डालने के 12-24 घण्टे बाद खेत में पानी दें।

पत्तियों पर बदरा (ब्लास्ट) बीमारी के लक्षण नज़र आते ही प्रति एकड़ 120 ग्राम ट्राइसाइक्लाज़ोल (बीम या सिविक) 75 डब्ल्यू पी या 200 ग्राम कार्बेन्डाज़िम के घोल का छिड़काव करें। पानी की मात्रा 200 लीटर रखें। दूसरा छिड़काव 50 प्रतिशत बालियां निकलने पर करें। बालियां निकलते समय खेत में सूखा न लगने दें। बैक्टीरियल लीफ ब्लाईट या जीवाणुज पत्ती अंगमारी जिन खेतों में आ जाए उनमें पानी लगातार न खड़ा रहने दें और न ही उस खेत का पानी दूसरे खेतों में जाने दें। ऐसे खेतों में नाइट्रोजन खाद बाद में न डालें।

यदि धान में जड़ की सूण्डी (रूट वीवल) का आक्रमण हो तो 10 किलोग्राम फ्यूराडान 3-जी या 4 कि.ग्रा. फोरेट 10-जी प्रति एकड़ डालें। सफेद पीठ वाला व भूरा तेला (ब्राउन प्लांट हॉपर) पौधे के तने के साथ लगा रहता है और इससे फसल छोटे-छोटे क्षेत्रों में पीली होकर सूखने लगती है। इसकी रोकथाम के लिए मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत का धूड़ा प्रति एकड़ धूड़ें या 250 मि.ली. मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. या 330 मि.ली. बुप्रोफेजिन (ट्रिब्यून) 25 एस.सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

अरहर, मूँग, उड़द, लोबिया व सोयाबीन

खरपतवारों की समय पर रोकथाम करने के लिए निराई करें। खेत में पानी न ठहरने दें। प्राय: पत्तों पर लाल व भूरे रंग के कोणदार धब्बे (जिनके बीच का रंग सलेटी होता है) बन जाते हैं। इस बीमारी की रोकथाम के लिए लक्षण दिखते ही 600 ग्राम ब्लाइटॉक्स या ब्ल्यू कॉपर का 200 लीटर पानी में घोल बनाकर एक एकड़ फसल पर छिड़काव करें और 10 दिन के अंतर पर आवश्यकतानुसार छिड़काव दोहराएं।

मूंग, उड़द व लोबिया में विषाणु रोगों के प्रकोप से पौधों की बढ़वार रुक जाती है तथा पत्तियां पीली, चितकबरी या झुर्रीदार हो जाती हैं। इनकी रोकथाम के लिए शुरू में ही रोगी पौधों को निकालकर नष्ट कर दें। ध्यान रहे कि उखाड़ते समय रोगी पौधों का संपर्क स्वस्थ पौधों से न होने पाए। सफेद मक्खी, जोकि विषाणु रोग फैलाती है, की रोकथाम के लिए 400 मिलीलीटर मैलाथियान 50 ई.सी. या 250 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ फसल पर 10-15 दिन के अंतर पर छिड़कें।

उपर्युक्त कीटनाशक दूसरे रस चूसने वाले कीड़ों के लिए भी हैं।

गन्ना

ईख की बंधाई शुरू कर दें। यदि अभी तक मिट्टी चढ़ाने का काम पूरा नहीं किया तो अब कर लें। इन दिनों गुरदासपुर छेदक (बोरर) की रोकथाम के लिए हर सप्ताह प्रभावित गन्नों को एकत्रित करके नष्ट करते रहें। ईख के जिन खेतों में पाइरिल्ला अधिक बढ़ रहा हो वहां इसके परजीवी गन्ना अनुसंधान केन्द्र, करनाल से लाकर छोडने चाहिएं।

पाइरिल्ला (अल) का प्रकोप होने पर 400-600 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 400-600 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। यदि परजीवियों की संख्या काफी हो तो कीटनाशक न छिड़कें। वैसे अपनी फसल में पाइरिल्ला बढ़ते ही परजीवी खेत में छोडने का प्रबंध करें। जड़ बेधक का आक्रमण हो तो अगस्त के अंत में 8 कि.ग्रा. क्विनलफॉस 5-जी प्रति एकड़ फसल में डालें व फिर हल्की सिंचाई कर दें।

मूंगफली

घास-फूस को नष्ट करने के लिए निराई करें तथा आवश्यकतानुसार पानी लगाएं।

यदि बालों वाली सूण्डियों का आक्रमण हो तो बाजरे की फसल में बताए गए उपाय से नियंत्रण करें।

टिक्का नामक बीमारी के आक्रमण से पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। इनके नियंत्रण के लिए लक्षण दिखते ही 400-500 ग्राम मैन्कोज़ेब या 200-250 ग्राम बाविस्टीन को 200-250 लीटर पानी में घोल बनाकर एक एकड़ की फसल पर 10-15 दिन के अंतर पर दो बार छिड़कें।

तिल

फायलोडी रोग को (बालियों की जगह हरी पत्तियों के गुच्छों का बनना) रोकने के लिए अभी से ही कीड़ों को नष्ट करें क्योंकि हरे तेले ही इस रोग के रोगाणु फैलाते हैं। तेले के नियंत्रण के लिए 200 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

तोरिया

इस माह के अंत में या अगले माह के शुरू में तोरिया की बिजाई के लिए खेत की तैयारी पूरी कर लें। तोरिया की उन्नत किस्म ''संगम'' टी एल 15 या टी एच 68 के बीज का प्रबंध कर लें। एक एकड़ के लिए 2 किलोग्राम बीज की आवश्यकता पड़ेगी। सिंचित तोरिया में 26 किलोग्राम यूरिया व 50 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट बिजाई के समय प्रति एकड़ प्रयोग करें, बाकी यूरिया (50 कि.ग्रा.) पहले पानी के साथ अवश्य डालें। असिंचित तोरिया में 35 किलोग्राम यूरिया तथा 50 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट बिजाई के समय पोरें। यदि ज़मीन में जस्ते की कमी हो तो बिजाई के समय 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट भी डालें। यदि बिजाई के समय ज़िंक सल्फेट नहीं डाला है और खड़ी फसल में कमी आ जाए तो 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट का छिड़काव करें। फसल में गंधक की कमी न आए, इसके लिए फास्फोरस का स्रोत सिंगल सुपर फास्फेट ही प्रयोग करें। यदि फास्फोरस डी.ए.पी. से दें तो 100 किलोग्राम जिप्सम भी डालें जिससे फसल में गंधक की पूर्ति हो जाए। जिस ज़मीन में पर्याप्त गंधक हो वहां गंधक डालने से कोई लाभ नहीं होगा।

चारे की फसलें

सूडान घास व संकर हाथी घास की हरे चारे के लिए कटाई करें। वर्षा न हो तो पानी लगाएं। प्रत्येक कटाई के बाद 22 किलोग्राम व 26 किलोग्राम यूरिया प्रति एकड़ के हिसाब से क्रमशः सूडान घास व संकर हाथी घास में दें। ज्वार व बाजरा की चारे वाली फसलों में बिजाई के 30-35 दिन बाद 22 किलोग्राम तथा मकचरी में 44 किलोग्राम यूरिया प्रति एकड़ दें। वर्षा न हो तो पानी लगाएं।



सब्जियों में

विशेष : सब्जियों की सभी फसलों में अधिक वर्षा होने पर जल निकास का प्रबंध करें।

बैंगन

पिछली फसल के कच्चे फलों को तोड़कर बाज़ार बेचने के लिए भेज दें। तोड़ने के लिए तेज़ चाकू या अन्य तेज़ धार वाले औज़ार का प्रयोग करें। आवश्यकता होने पर सिंचाई करें। खरीफ की नई लगाई गई फसल में निराई-गुड़ाई करें। पौधरोपण के लगभग तीन-चार सप्ताह बाद प्रति एकड़ लगभग 35 किलोग्राम यूरिया खड़ी फसल में दें तथा सिंचाई करें। अधिक वर्षा होने पर जल-निकास का प्रबंध करें। विषाणु रोग से बचाव के लिए कीटनाशक दवा का प्रयोग करें तथा रोगी पौधों को निकाल कर नष्ट कर दें। रस चूसने वाले कीटों के नियंत्रण के लिए 15 दिन के अंतर पर 300-400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200 से 250 लीटर पानी में प्रति एकड़ छिड़कें। फल लगने पर सूण्डी का आक्रमण होने लगता है, अतः 75 ग्राम स्पाइनोसेड (ट्रेसर 45 एस.सी.) 200 लीटर पानी में 15 दिन के अंतर पर प्रति एकड़ छिड़कें। दवा प्रयोग करने से पहले फसल से बैंगनों को तोड़ लें तथा दवा छिड़कने के 8-10 दिन तक इन्हें सब्जी के काम में न लें। कीड़े से मुरझाई कोंपलों और काने फलों को हर सप्ताह तोड़कर ज़मीन में दबाते रहें।

मिर्च

पिछले माह रोपी गई फसल में निराई-गुड़ाई करें। आवश्यकता होने पर सिंचाई करें। अधिक वर्षा होने पर पानी के निकास का प्रबंध करें। पौधरोपण के लगभग तीन-चार सप्ताह बाद प्रति एकड़ 18 किलोग्राम यूरिया (8 किलोग्राम नाइट्रोजन) खड़ी फसल में देकर सिंचाई करें। विषाणु रोग से बचाव के लिए शुरू से ही 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ खेत पर छिड़कें तथा रोगी पौधों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें। इसी कीटनाशक के प्रयोग से मिर्च के अन्य हानिकारक कीटों (थ्रिप्स, अल और सफेद मक्खी) का भी नियंत्रण हो जाता है।

फूलगोभी अगेती

अगेती किस्मों (पूसा कातकी व पूसा दीपाली) की तैयार पौध की खेत में रोपाई करें। खेत की तैयारी पिछले माह बताए गए तरीके से करें। पौधरोपण शाम के समय करें तथा उसके बाद सिंचाई करें। खेत में से नियमित रूप से खरपतवार निकालें तथा यदि सूखा भाग हो तो सिंचाई करें। अधिक वर्षा होने पर खेत से जल-निकास का प्रबंध करें। मध्यम वर्ग की फूलगोभी की बिजाई इस माह नर्सरी में करें। एक एकड़ के लिए 250 से 300 ग्राम बीज की आवश्यकता होगी। नर्सरी में पौध की उचित देखभाल करें।

भिण्डी

गर्मी की फसल से भिण्डी की नर्म फलियां नियमित रूप से तोड़कर बाज़ार भेजें। यदि आवश्यकता पड़े तो सिंचाई करें। अधिक वर्षा होने पर खेत से जल-निकास का प्रबंध करें। रस चूसने वाले कीड़ों के नियंत्रण के लिए 300-500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-300 लीटर पानी में 15 दिन के अंतर से प्रति एकड़ छिड़कें। फल लगने शुरू होते ही 400-500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 75-80 मि.ली. स्पाईनोसेड 45 एस सी को बारी-बारी से 250-300 लीटर पानी में 15 दिन के अंतर से प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें। ऐसा करने से फल की सूण्डी का भी नियंत्रण हो जाएगा। कीटनाशक छिड़कने से पहले फलों को तोड़ लें तथा छिड़काव के बाद एक सप्ताह तक फलों को खाने के काम में न लें।

जुलाई में बोई फसल से खरपतवार शुरू से ही निकालते रहें। आवश्यकतानुसार सिंचाई करें या जल निकास करें। बिजाई से पहले तथा बिजाई के लगभग तीन-चार सप्ताह बाद लगभग 30 कि.ग्रा. यूरिया (14 किलोग्राम नाइट्रोजन) देकर सिंचाई करें। पीली शिराओं वाले विषाणु रोग से बचाव के लिए कीटनाशक दवा प्रयोग करें तथा 6-7 दिन तक भिण्डी न तोड़ें। रोगी पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें।

कद्दू जाति की सब्जियां

गर्मी की फसल के कच्चे फलों को तोड़कर बाज़ार भेजें। इस वर्ग की प्रमुख सब्जियां, घीया, टिण्डा, करेला, तोरी, कद्दू व खीरा हैं। हानिकारक कीड़ों से बचाव के लिए जून माह में बताई गई दवा का प्रयोग करें। वर्षा ऋतु में बीजी गई फसलों से खरपतवार निकालें, आवश्यकता होने पर सिंचाई करें। अधिक वर्षा होने पर पानी के निकास का प्रबंध करें। बिजाई के लगभग एक माह बाद 14 किलोग्राम यूरिया (6 किलोग्राम नाइट्रोजन) प्रति एकड़ की दर से खेत में देकर सिंचाई करें।

लालड़ी (लाल भूंडी) का प्रकोप होने पर 25 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. को 100 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़कें। विषाणु रोग के प्रभाव से पत्तों पर हरे पीले रंग का चितकबरापन या गहरे-हरे रंग के फफोले बन जाते हैं तथा पत्तियां कड़ी हो जाती हैं। इनसे बचाव के लिए रोगी पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दें। इस रोग को फैलाने वाली मक्खी और दूसरे रस चूसने वाले कीड़ों के लिए 250 मि.ली. मैलाथियान 50 ई. सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। फल की मक्खी की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 1.25 किलोग्राम गुड़ और 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

शकरकन्दी

शकरकन्दी की फसल से नियमित रूप से खरपतवारों को निकालें व आवश्यकता होने पर सिंचाई करें। अधिक वर्षा होने पर जल-निकास का प्रबंध करें। फसल लगाने के लगभग 4 सप्ताह बाद 18 किलोग्राम यूरिया (8 कि.ग्रा. नाइट्रोजन) प्रति एकड़ की दर से डालकर सिंचाई करें।

अरबी

अरबी की फसल की निराई-गुड़ाई करें, आवश्यकता होने पर सिंचाई करें, अधिक वर्षा में जल-निकासी का प्रबंध करें। बिजाई के लगभग चार-पांच सप्ताह बाद 18 किलोग्राम यूरिया (8 कि.ग्रा. नाइट्रोजन) प्रति एकड़ की दर से खेत में देकर सिंचाई करें।

पालक

पहले लगाई फसल की आवश्यकता होने पर सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। कटाई लायक हाने पर पत्तों को काटें तथा बंडलों में बांधकर बाज़ार भेजें। नई बीजी गई फसल की भी देखभाल करें। बिजाई के लगभग 4 सप्ताह बाद 30 किलोग्राम यूरिया (14 किलोग्राम नाइट्रोजन) प्रति एकड़ खेत में देकर सिंचाई करें। पालक की बिजाई इस माह भी की जा सकती है।

मूली, शलगम व गाजर

मूली की पहली बीजी गई फसल की देख-रेख करें, जड़ों को उखाड़कर तथा धोकर बाज़ार भेजें। इस माह मूली, शलगम व गाजर की देसी (अगेती) किस्मों की बिजाई की जा सकती है। मूली की किस्मों में पूसा चेतकी, शलगम की किस्म 4 ह्वाईट तथा गाजर की किस्म पूसा केसर बीजें। गाजर का 4-5 किलोग्राम तथा मूली या शलगम का 2-3 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ काफी होता है। समय से खेत की तैयारी करें। एक एकड़ में लगभग 20 टन गोबर की सड़ी खाद, 26 कि.ग्रा. यूरिया (12 कि.ग्रा. नाइट्रोजन) 80 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट (12 कि.ग्रा. फास्फोरस) प्रति एकड़ देकर खेत तैयार करें। गाजर की फसल के लिए ऊपर दी गई खाद के अलावा लगभग 20 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश (12 कि.ग्रा. पोटाश) भी खेत तैयार करते समय प्रति एकड़ की दर से दें। बिजाई का फासला कतारों में 30-45 सैं.मी. व पौधों में लगभग 8 सैं.मी. रखें। उचित होगा कि छोटी डोलियां बनाकर बिजाई करें।

खरीफ प्याज़

खेत तैयार करें। 10-12 टन गोबर की खाद प्रति एकड़ अच्छी तरह मिला लें। 25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (55 कि.ग्रा. यूरिया) तथा 15 कि.ग्रा. फास्फोरस (95 कि.ग्रा. सिंगल सुपरफास्फेट) प्रति एकड़ की दर से देकर खेत को क्यारियों में बांट लें। नर्सरी में तैयार पौधों की कतारों में 15 सैं.मी. की दूरी पर रोपाई करें। पौध से पौध की दूरी 10 सैं.मी. रखें। उचित होगा कि हल्की डोलियों पर पौधरोपण करें। पौधरोपण का उचित समय अगस्त का दूसरा पखवाड़ा या सितम्बर का प्रथम सप्ताह है।

अन्य सब्जियां

अगेती बंदगोभी के लिए इस माह के दूसरे पखवाड़े में नर्सरी में बिजाई शुरू की जा सकती है। अगेती किस्में 'प्राइड ऑफ इण्डिया' व (गोल्डन एकड़) प्रयोग में लें। एक एकड़ खेत के लिए लगभग 250-300 ग्राम बीज काफी होता है व बिजाई से पहले बीज को कैप्टान से उपचारित करें।

टमाटर तथा बैंगन में जड़ गाँठ सूत्रकृमि की रोकथाम

जुलाई में बोई गई दोनों सब्जियों की नर्सरी अब तक रोपाई के लिए तैयार हो जाती है। सारे खेत में दवाई डालने से आने वाली अधिक कीमत व दवाई के न मिलने पर अरंड अथवा आक के बारीक काटे हुए पत्तों को 8 कि.ग्रा./वर्गमीटर की दर से रोपाई के 15-20 दिन पहले खेत में मिलाना इस सूत्रकृमि के लिए अत्यधिक प्रभावशाली पाया गया है। इन पौधों के पत्ते आसानी से खेतों के आसपास ही मिल जाते हैं और प्रभावित जगहों में डालने के लिए प्रयोग किए जा सकते हैं।

खुम्ब उत्पादन : इस महीने में खुम्ब की ढींगरी तथा सफेद दूधिया खुम्ब का उत्पादन किया जा सकता है।

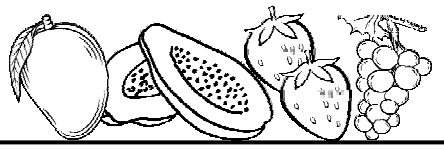

फलों में

अंगूर

अंगूर की बेलों पर शाखाओं को ज़्यादा न बढने दें व लगभग एक मीटर तक रखकर सिरा चूंड दें। यदि ज़मीन में नमी नहीं है तो हल्की सिंचाई करें।

एंथ्रैक्नोज़ तथा अन्य बीमारियों से बचाव के लिए जुलाई के अंतिम सप्ताह, अगस्त के दूसरे व अंतिम सप्ताह में 0.2 प्रतिशत बाविस्टिन का छिड़काव करें।

अंगूर में प्राय: पत्ते खाने वाली भूण्डियां तथा बालों वाली सूण्डियां आती हैं। इनकी रोकथाम के लिए 400 मि.ली. डाइक्लोरवास 76 ई.सी. को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़कें। इन कीड़ों का आक्रमण बेर, आड़ू, अलूचा आदि फलों पर होता है। उन पर भी इन्हीं दवाइयों का प्रयोग करें। थ्रिप्स (चूरड़ा) के नियंत्रण के लिए 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 150 मि.ली. फेनवेलरेट 20 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

बेर, आंवला, अमरूद व जामुन

देसी पौधों में अच्छी किस्म का पेबंद चढ़ाने का इस महीने सबसे अच्छा समय है। अत: विश्वसनीय स्थान से उन्हीं किस्मों की कली की

शाखा प्राप्त करके पेबंद चढ़ाने का प्रबंध करें।

किस्में

बेर : गोला, कैथली, उमरान।

आंवला : चकईया, नीलम (एन ए 7), बलवंत (एन ए 10)।

अमरूद : हिसार सफेदा, हिसार सुरखा।

अमरूद

यदि पिछले महीने खाद न डाली हो तो इस महीने खाद व उर्वरक पौधों की उम्र के हिसाब से डालें।

अन्य फल

फलदार पौधे लगाने के लिए बरसात का मौसम सबसे अच्छा रहता है। अच्छी वर्षा होने पर आप पिछले महीने बताए गए पौधे लगाएं व नियमित सिंचाई और गुड़ाई करते रहें।



पशुओं में

गाय-भैंस

वर्षा ऋतु आरंभ हो गई है। अत: गलघोंटू व फड़ सूजने की बीमारी से बचाव के टीके यदि न लगवाए हों तो लगवा दें। जब पशु सायं को बाहर से आता है तो यह ध्यान से देखें कि पशु ने चारा खाना तो नहीं छोड़ दिया। यदि पशु ने चारा खाना छोड़ दिया हो तो आप उसका तापमान लें। यदि उसे बुखार है तो आप अपने नज़दीकी पशु चिकित्सक से संपर्क करें।

पशु से पूरा दूध लेने व नियमित नए दूध में लाने के लिए उसे हरे चारे के साथ 50-60 ग्राम खनिज मिश्रण संतुलित आहार के साथ आवश्यकतानुसार दें।

बरसात में पशु घरों को सूखा रखें और कीचड़ से बचाएं। मक्खी रहित करने के लिए पशु घरों में फिनाइल आदि का घोल छिड़कें। यदि पशुओं को जुएं या चीचड़ लग गई हों तो उन पर 0.5 प्रतिशत मैलाथियान या सुमिथियान तथा पशुओं के आवास में चारों तरफ तथा दीवारों पर मैलाथियान या सुमिथियान 1 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। पशुओं को साफ पानी पिलाएं अन्यथा उनके पेट में कीड़े हो जाते हैं। उनको कीड़ों से मुक्त करने के लिए कृमिनाशक दवा पशु चिकित्सक की सलाह से नियमित रूप से दें।

नवजात बछड़े-बछडियों तथा कटड़े-कटडियों को शुद्ध वातावरण में रखें। उन्हें बीमारी से बचाने के लिए जन्म के पश्चात् आधे से 1 घण्टे के अंदर तथा प्रथम 2-3 दिन खीस अवश्य पिलाएं। खीस पिलाने के लिए जेर गिरने की इन्तज़ार नहीं करनी चाहिए। पैदा होते ही उनके सूण्ड (नाल) को साफ ब्लेड या कैंची से काटकर टिंचर-आयोडीन लगा दें और साफ पट्टी बांध दें। ऐसा करने से सूण्ड सूजने के रोग से बचाव हो सकता है।

भेड़

इस मौसम में भेड़ों को एनटैरोटाक्सीमिया रोग लग जाता है जिसके कारण उनकी आंतों में सूजन आ जाती है। इस रोग से बचाव के लिए अपनी भेड़ों को इस बीमारी से बचाव का टीका अवश्य लगवाएं। भेड़ों के पेट में आजकल के मौसम में कीड़े हो जाते हैं जिसके कारण उनमें बढ़ने की शक्ति कम हो जाती है तथा उनमें ऊन का उत्पादन भी कम हो जाता है। अपने पशु चिकित्सक की सलाह से भेड़ों को नियमित रूप से कृमिनाशक दवा पिलाएं।

कुक्कुट

1. चूजों के ठीक पालन व मुर्गियों से अच्छा अण्डा उत्पादन के लिए यह ज़रूरी है कि गर्मी के मौसम में उनकी खुराक में कमी न हो। खुराक ऐसी हो जो मुर्गियों द्वारा अधिक से अधिक खाई जा सके। इसके लिए खुराक में ''प्रोटीन'' व विटामिनों की मात्रा बढ़ा दें।
2. मुर्गीघरों में ''डीप लिटर'' को दूसरे या तीसरे दिन उलट देना चाहिए। ''डीप लिटर'' गीला रहने से बीमारी फैल जाती है। फफूंद लगी खुराक या वर्षा से भीगी खुराक मुर्गियों को नहीं खिलानी चाहिए।
3. मुर्गीघरों में साफ हवा जानी चाहिए और अधिक मुर्गियों को एक स्थान पर इकट्ठा नहीं होने देना चाहिए। मुर्गीघरों के आसपास पूरी सफाई रखें। मक्खियां व मच्छर मुर्गियों को परेशान करते हैं, जिससे अण्डों की पैदावार घटती है।
4. अण्डे देने वाली मुर्गियों को पुलोरम रोग होने की संभावना हो सकती है। अत: इसकी जांच कराएं।
5. पशु चिकित्सक की सलाह से पेट को कीड़ों से रहित रखने की दवा दें।
6. यदि मुर्गियों के शरीर पर जुएं व चीचडियां हों तो पशु चिकित्सक की सलाह से उन्हें तुरंत नष्ट करें।



घर-आंगन में

घर-आंगन में

हमारे देश में कुपोषण का मुख्य कारण अज्ञानता है। हरी पत्तेदार सब्जियों द्वारा मिलने वाले पोषक तत्वों की कमी हमारे देश में प्राय: पाई जाती है। हरी सब्जियों को घरों में बहुत आसानी से उगाया जा सकता है। हरी पत्तेदार सब्जियां खनिज और विटामिनों का भण्डार होती हैं। इनमें आयरन (लोहा), कैल्शियम, विटामिन 'ए', विटामिन 'सी', फोलिक एसिड तथा रेशे पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे उत्तम श्रेणी के प्रोटीन भी पाए जाते हैं जो स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभकारी हैं क्योंकि ये जीव विष को कम करने में सहायक होते हैं। पत्तेदार सब्जियों में उपस्थित आहार रेशा कब्ज़ को दूर करने में तथा खून को साफ करने में बहुत सहायक है। इसके अतिरिक्त हरी पत्तेदार सब्जियां आंखों के लिए भी अच्छी हैं। अत: दैनिक आहार में हरी पत्तेदार सब्जियों को परम्परागत व्यंजनों में जैसे चपाती, परांठा, चटनी, मिस्सी रोटी, पूरी, दाल, खिचड़ी, उपमा इत्यादि में प्रयोग करते रहना चाहिए। जब यह सब्जियां आसानी से कम मूल्य में उपलब्ध हों तो इन्हें सुखाकर रखा जा सकता है तथा बेमौसम में इनका इस्तेमाल किया जा सकता है।

हरी पत्तेदार सब्जियां बनाते समय कुछ आवश्यक बातें ध्यान में रखें जैसे हरी पत्तेदार सब्जियों को काटने से पहले साफ बर्तन में पानी लेकर अच्छी प्रकार धो लें। उबालने के बाद पानी को नहीं फैंकना चाहिए अपितु आटा आदि बनाने में उस पानी को उपयोग करें। पालक को उबालें नहीं बल्कि गर्म पानी में डालकर उपयोग कर लें ताकि पौष्टिक तत्वों की सुरक्षा कर सकें।

घरेलू स्तर पर खाद्य पदार्थों का सुरक्षित भण्डारण

✍ **पूनम एवं अशोक ढिल्लों**
कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हम लोग बाज़ार से खाद्य पदार्थ खरीदते हैं। कुछ लोग घर पर भी चीजें उगाते हैं। खाद्य पदार्थ की खरीददारी करते समय हम बाज़ार में उपलब्ध अनेक पदार्थों में से चयन करते हैं। कुछ पदार्थ सस्ते होते हैं, तो कुछ महंगे, कुछ ताज़े होते हैं तो कुछ बासी, कुछ पदार्थ मौसमी होते हैं तो कुछ गैर मौसमी। खरीदारी के समय ये सभी कारक खाद्य पदार्थ का चयन करने में हमारी मदद करते हैं। हमें जितनी मात्रा में खाद्य पदार्थ की आवश्यकता होती है हम उससे कुछ ज़्यादा ही खरीद लेते हैं। इसलिए खरीदारी के उपरान्त हमारे सामने जो समस्याएं खड़ी होती हैं वह यह है कि खाद्य पदार्थ का भंडारण किस प्रकार किया जाए। यद्यपि हम लोग भंडारण का काम काफी सावधानीपूर्वक करते हैं फिर भी कई बार ऐसा होता है कि जब हम भोजन पकाना आरम्भ करते हैं, तो हम पाते हैं कि कुछ खाद्य पदार्थ खराब हो चुके हैं, सब्जियों में दुर्गन्ध आ गई है, और काफी दालें कीड़ों ने चट कर ली हैं। हम जानते हैं कि प्रत्येक खाद्य पदार्थ की एक निश्चित अवधि होती है जिसके बाद वह खराब होना आरम्भ कर देता है। इस अवधि को 'शेल्फ लाईफ' कहते हैं। 'शेल्फ लाईफ' के आधार पर हम खाद्य पदार्थों को निम्न तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं।

विकारीय खाद्य पदार्थ 1-2 दिन तक सुरक्षित रखने योग्य हैं।

अर्द्धविकारीय पदार्थ कुछ हफ्तों से ले कर 1-2 महीने तक सुरक्षित रहते हैं।

इनकी तुलना में **अविकारीय पदार्थ** कई महीनों तक सुरक्षित रहते हैं।

खाद्य पदार्थों का भण्डारण

अ. अविकारीय खाद्य पदार्थ :

1. अनाज और दालें : साफ सूखे और बन्द बरतन में रखें; चावल के डिब्बे में नमक के डेले या हल्दी का प्रयोग करें; गेहूँ में सूखी नीम की पत्ती मिलाकर रख सकते हैं; विशिष्ट आयुर्वेदिक गोलियों का प्रयोग करें। इन्हें बारीक कपड़े में बांध कर डालें ताकि पकाने से पहले उसे आसानी से निकाला जा सके।

2. चीनी, गुड़, कॉफी, नमक : सूखे और हवा बन्द बर्तन में रखना चाहिए।

ब. अर्द्धविकारीय खाद्य पदार्थ :

1. **सूजी, आटा, मैदा, दलिया आदि :** सूखे और बंद बरतनों या बोतलों में स्टोर करना चाहिए। सूजी और दलिया को स्टोर करने से पहले सूखा भून लेना चाहिए।
2. **मसाले :** हवा बन्द टिन या बोतलों में भण्डारण कीजिये जिससे उनकी शेल्फ लाइफ ज़्यादा हो सके।
3. **घी, तेल, मक्खन :** हवा बन्द बरतन में रखें; एवं टिन को कभी खुला न छोड़ें क्योंकि हवा और नमी के कारण घी/तेल में दुर्गन्ध आ जाती है।
4. **आलू, प्याज़, अदरक, लहसुन :** थैली से निकालकर आलू और प्याज़ को अलग-2 तार की टोकरी में रखना चाहिए; एवं अदरक को गीली बालू में दबाकर छायादार स्थान पर रखकर लम्बे समय तक भंडारण कर सकते हैं।
5. **जैम, जैली, अचार, पापड़, चटनी आदि :** ठंड़े तथा सूखे स्थान पर भण्डारण करें; टिन/बोतल को खुला न छोड़ें; एवं खुले पैकेट/टिन का माल साफ हवा बंद बोतलों में पलट कर रखें।

स. विकारीय खाद्य पदार्थ

1. **सब्जियां और फल :** ठंड़े तथा सूखे स्थान पर भण्डारण करें; गोभी और मूली को पत्तों सहित रखना चाहिए, इससे वे ताज़ा रहती हैं; पत्तेदार सब्जियों को गीले कपड़े में लपेट कर रखिए; फलों को रखने से पहले धोना नहीं चाहिए इससे वह जल्दी खराब होते हैं; एवं नींबू पर तेल की हल्की परत लगा कर रखें।
2. **अण्डे :** स्टोर करने से पहले अण्डों को कभी धोना नहीं चाहिए; अण्डे का नुकीला हिस्सा नीचे की तरफ रखना चाहिए; एवं किसी ठण्डे स्थान पर या टोकरी में हवादार कमरे में रखना चाहिए।
3. **दूध, दही, क्रीम, खोया :** दूध को उबाल कर किसी ठण्डे स्थान पर रखना चाहिए। यदि रैफ्रिजरेटर नहीं है तो दूध को हर 5-6 घंटे बाद उबाल लेना चाहिए ताकि कीटाणु नष्ट हो जायें; ताज़े और बासी दूध को कभी न मिलाएं; दही और क्रीम को ठण्डी जगह में, संभव हो तो रैफ्रिजरेटर में रखना चाहिए; इनको तेज़ गंध वाले खाद्य पदार्थों जैसे- प्याज़, अमरूद, आम आदि से दूर रखना चाहिए क्योंकि यह गंध सोख लेता है; एवं यदि खोए को ठंडे स्थान पर स्टोर न रखा जाए तो इसका मीठा तथा मुलायमपन खट्टे में बदल जाता है।
4. **चीज़ और पनीर :** पनीर के टुकड़ों को हल्का सा तल कर ठंडा करके रखें। इस प्रकार पनीर ज़्यादा देर तक चलता है; एवं ताज़े पनीर को ठण्डे पानी में फ्रिज में एक दो दिन तक रखा जा सकता हैं।
5. **माँस, मछली, मुर्गी :** ठण्डे स्थान पर रखें।
6. **डबलरोटी :** हवा बन्द बर्तन में रखें, ताकि ज़्यादा देर तक ताज़ी रहे तथा ठंड़ी जगह या रेफ्रीजरेटर में रखना चाहिए।

भोजन के सुरक्षित रखरखाव का अर्थ स्वच्छता की दृष्टि से उपयुक्त रखरखाव है। यह स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। असुरक्षित भोजन में कीटाणु होते हैं जिससे बीमारी हो सकती है। भोजन का सुरक्षापूर्वक रखरखाव करना आवश्यक है ताकि उसका सेवन करने वाले हानिकारक प्रभाव से बचे रहें। भारत में, फसल की कटाई के बाद रखा अनाज का नुकसान प्रति वर्ष 20 मिलियन टन से अधिक है, जो कुल खाद्य अनाज का लगभग 10 प्रतिशत है। इतना अनाज ऑस्ट्रेलिया जैसे देश में साल भर में पैदा होता है। इस नुकसान का कारण देश में खाद्य भण्डारण के लिए खराब आधारभूत सुविधा और अवैज्ञानिक पद्धतियां हैं। अत: जो खाद्य पदार्थ आपके पास हैं, अगर आप उसे भली प्रकार सुरक्षित नहीं करते हैं तो वह खराब हो जाएगा। इसका अर्थ यह है कि बढ़िया खाद्य पदार्थ खरीदने का जितना महत्व है उतना ही महत्त्व उन्हें अच्छी प्रकार से सुरक्षित रखने का भी है।

बच्चों के विकास में आंगनवाड़ी केन्द्रों का योगदान

✍ **पूनम रानी, बिमला ढांडा एवं सलोचना**[1]
पारिवारिक विकास एवं मानव संसाधन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बालक के सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। शिक्षा जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है। मनुष्य आजीवन किसी न किसी रूप में शिक्षा प्राप्त करता रहता है। शिक्षा द्वारा बच्चे का बौद्धिक, शारीरिक, संवेगात्मक, व्यक्तिगत और सामाजिक विकास होता है। बालक की शिक्षा पर उसके घर, परिवार एवं विद्यालय का प्रभाव पड़ता है। शिक्षा बच्चे के व्यक्तित्व में भी निखार लाती है। बच्चे की नींव मज़बूत करने के लिए हरियाणा सरकार द्वारा समेकित बाल विकास योजना के तहत पूर्व स्कूल शिक्षा का तंत्र तैयार किया गया है। ये सभी अवस्थाएं महत्वपूर्ण हैं क्योंकि बच्चे के सम्पूर्ण विकास पर ये अवस्थाएं केन्द्रित होती हैं।

बाल विकास : इसके अन्तर्गत बच्चों के चहुंमुखी विकास के लिए सभी प्रकार की सुविधाएं देना है। इसके बारे में दूसरा विचार यह है कि विभिन्न अवस्थाओं में बच्चे का विकास किस तरह से होता है अथवा बच्चे किस प्रकार बढ़ते और सीखते हैं। बाल विकास की चार अवस्थाएं हैं : (1) शारीरिक; (2) संवेगात्मक; (3) सामाजिक; एवं (4) ज्ञानात्मक। ये अवस्थाएं एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। एक अवस्था में बच्चे का विकास दूसरी अवस्था के विकास में भी सहायक है। ये सभी अवस्थाएं महत्वपूर्ण हैं क्योंकि बच्चों के सम्पूर्ण विकास पर ये अवस्थाएं केन्द्रित होती हैं।

आंगनवाड़ी : आंगनवाड़ी का अर्थ है - स्वतंत्र स्कूल शिक्षा। आंगनवाड़ी का चुनाव आंगनवाड़ी वर्कर द्वारा किया जाना चाहिए, क्योंकि आंगनवाड़ी वर्कर उसी गांव की होती है। आंगनवाड़ी जिसमें बच्चों और माताओं को उनके अपने गांवों में या वार्ड में समेकित बाल सेवायें उपलब्ध कराई जाती हैं। आंगनवाड़ी में एक आंगनवाड़ी वर्कर नियुक्त की जाती है जिसकी सहायता एक हैल्पर करती है। आंगनवाड़ी में सभी सेवायें नि:शुल्क प्रदान की जाती हैं।

आंगनवाड़ी के उद्देश्य : आंगनवाड़ी का उद्देश्य बच्चे का सम्पूर्ण विकास करना है। जहां पर ज्ञान स्वाभाविक तौर पर देखते हुए प्राप्त होता है।

समेकित बाल विकास योजना के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

1. छ: वर्ष की आयु के बच्चों के पोषण और स्वास्थ्य की स्थिति को सुधारना।
2. मृत्यु रोग, कुपोषण की प्रवृति को कम करना।
3. बच्चों का उचित मनोवैज्ञानिक, शारीरिक व सामाजिक विकास करना।
4. बच्चों को शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करना।
5. अपने बच्चों की पोषण संबंधी आवश्यकताओं की देखभाल के लिए माताओं की क्षमताओं में वृद्धि करना।
6. बाल विकास को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न विभागों के कार्यों व नीति में तालमेल स्थापित करना।

आंगनवाड़ी योजना की विषेशताएं : राष्ट्रीय बाल नीति - 1974 के प्रस्तावों के अनुसारण में राज्य के बच्चों एवं महिलाओं विशेष रूप से गर्भवती एवं दूध पिलाती माताओं को बेहतर जीवन के लिए मूलभूत बाल विकास सेवा कार्यक्रम की नीति अपनाई गई। समेकित विकास योजना की विशेषताएं निम्न हैं : पूरक पोषाहार; स्वास्थ्य जांच; संदर्भित सेवाएं; टीकाकरण; पोषाहार एवं स्वास्थ्य शिक्षा; महिला सशक्तिकरण; एवं अनौपचारिक पूर्व स्कूल शिक्षा।

इस प्रकार से आंगनवाड़ी बच्चों के विकास के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई क्योंकि इसके द्वारा बच्चों की स्वास्थ्य एवं स्वच्छता जांच, शारीरिक व्यायाम, आहार आदि का प्रबंध किया जाता है। आंगनवाड़ी द्वारा बच्चों के लिए शारीरिक विकास की क्रियाएं भाषा विकास संबंधी क्रियाएं, भावनात्मक तथा रचनात्मक विकास, सामाजिक विकास एवं बौद्धिक विकास करवाया जाता है। इस प्रकार से बच्चों के विकास में आंगनवाड़ी केन्द्रों का अहम् योगदान है।

[1]आंगनवाड़ी वर्कर, गांव बाडों पट्टी (हिसार)

(पृष्ठ 8 का शेष)

यह फलों और सब्जियों की आंतरिक संरचना, दृढ़ता और कोमलता को मापता है, इसी तरह एक्स-रे इमेजिंग तकनीक का पता लगाया गया है। फलों और सब्जियों में उच्च नमी की मात्रा के कारण, एक्स-रे सोखने की क्षमता काफी ज़्यादा होती है और इनसे बाहर निकलने वाली ऊर्जा की तीव्रता उत्पाद के घनत्व और मोटाई पर निर्भर करती है, इसी तरह सीटी स्कैन का उपयोग आंतरिक गुहा, संरचना और फलों की परिपक्वता को मापने के लिए किया जाता है। एक्स-रे परिकलित टोमोग्राफी का उपयोग विभिन्न नमी वाले क्षेत्रों में और सीमित सीमा तक घनत्व वाली जगहों में फलों के आंतरिक क्षेत्रों की इमेजिंग के लिए किया जाता है। यह चित्र वास्तव में फलों में एक्स-रे सोखने की क्षमता के नक्शे हैं जिन से आंतरिक क्षति का मूल्यांकन होता है (थर्मल इमेजिंग तकनीक, जहां किसी भी वस्तु से निकलने वाले तापमान की जानकारी को थर्मल चित्र में बदल दिया जाता है, जो फल के अंदर तापमान फैलाव को दर्शाता है। इस तकनीक का उपयोग पहले से ही सेब में शुरुआती या सूक्ष्म क्षतियों, खट्टे और नाशपाती के फलों में गुणवत्ता नियंत्रण के लिए किया जा रहा है।

किसानों को होने वाले फायदे :

यह तकनीक किसानों को खाद्य उद्योगों को सीधे उनकी सुनिश्चित अच्छी गुणवत्ता की उपज बेचने में मदद करता है और आय में वृद्धि करता है।

किसान समुदाय के उधार के लिए सरकार विभिन्न योजनाओं के माध्यम से फलों और सब्ज़ियों का मूल्यवर्धन करने हेतु कदम बढ़ा रही है।

इन तकनीकों के माध्यम से किसान अपनी फसलों को लंबे समय तक और बिना सड़े स्टॉक में रख सकते हैं ताकि इन्हें अच्छी कीमत पर खरीदारों को बेच सकें।

सरकार द्वारा किसानों की बागवानी फसल के लिए मिशन फॉर इंटीग्रेटेड डेवलपमेंट इन हॉर्टिकल्चर (एमआईडीएच) योजना बनाई है। जिसके तहत प्रगतिशील किसानों को कस्टम हायरिंग पर ये मशीनरी उपलब्ध करवाई जाएगी और इस्तेमाल करने के लिए ट्रेनिंग भी करवाई जाएगी।

प्रगतिशील किसानों की बागवानी उपज को सरकार द्वारा क्षेत्रीय संस्थानों में क्वालिटी इंस्पेक्शन के लिए परखा जा रहा है। विभिन्न मंत्रालय अर्थात कृषि मंत्रालय, खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय, अपेडा, एमपी डीए, कॉफी बोर्ड, चाय बोर्ड, निर्यात निरीक्षण परिषद आदि और संबद्ध एजेंसियां अर्थात महिंद्रा कृषि समाधान लिमिटेड गैर-हानिकारक प्रौद्योगिकियों के माध्यम से उनके उत्पादन को सर्टिफाइड करता है जिस से विदेशी कंपनियां इसे सीधे तौर पर किसान से खरीद सकें और उनकी आय में वृद्धि हो।

किसानों के लिए खाद्य प्रसंस्करण का महत्व

✍ **मोनिका माथुर एवं रवीना कारगवाल**[1]
खाद्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी केंद्र
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आजकल के समय में किसी भी युवा से पूछा जाए कि वो आगे चल कर क्या बनना चाहता है, सभी डॉक्टर, इंजीनियर अथवा किसी सरकारी विभाग में नौकरी पाना ही उनका एकमात्र लक्ष्य बताते हैं। कोई भी युवा किसान नहीं बनना चाहता, इतना ही नहीं बल्कि किसान भी अपने बच्चों को किसान नहीं बनाना चाहते। इसका केवल एक ही कारण है कि खेती के भरोसे जीवनयापन करना और अपने पूरे परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाना अब आसान काम नहीं रह गया है। कृषि के क्षेत्र में सरकार द्वारा किये गए 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने के वादे तो किये गए हैं, कई महत्वपूर्ण कदम भी उठाये गए हैं, परन्तु सरकार की कोशिशें भी तभी सफल होंगी जब किसान इसका बीड़ा खुद उठायें और खेती को भी एक सफल जीवन यापन के एक विकल्प की तरह लें।

कृषि उत्पादन में बढती बागवानी फसलों की हिस्सेदारी का ही परिणाम है जो वर्ष में देश में खाद्यान्न उत्पादन में उल्लेखनीय वृदि हुई है। इस समयावधि में 30 मिलियन टन खाद्यान्न का उत्पादन किया गया। स्पष्ट है कि देश का पेट भरने वाले अन्नदाता को फसलों के आवर्ती मूल्य में आने वाले उतार-चढ़ाव से सुरक्षित रखा जाना चाहिए।

इस स्थिति में खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र एक अहम् भूमिका का निर्वाह करता है। यह क्षेत्र मूल्य वृद्धि के माध्यम से किसानों को उनके परिश्रम की बेहतर कीमतें प्राप्त करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस स्थिति से निपटने के लिए किसान यदि खेती के साथ-साथ अपने उत्पादों का प्रसंस्करण करने के लिए छोटी प्रसंस्करण इकाई लगाते हैं तो ये न केवल उनकी आय में बढ़ोत्तरी करेगा बल्कि फसल कटाई के बाद बड़ी मात्रा में नष्ट होने वाले उत्पाद को भी नुकसान से बचाएगा। खाद्य प्रसस्करण के तहत जैसे कि बिस्किट, नानखताई, केक, ब्रेड, पेस्ट्री, मुरब्बा, अचार, पापड़, जेम एवं जेल्ली इत्यादि की छोटी-छोटी इकाई घरेलू स्तर पर ही लगायी जा सकती है।

खाद्य प्रसंस्करण

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का तात्पर्य ऐसी गतिविधियों से है जिसमें प्राथमिक कृषि उत्पादों का प्रसंस्करण कर उनका मूल्यवर्धन किया जाता है। उदाहरण के लिये डेयरी उत्पाद, दूध, फल तथा सब्ज़ियों का प्रसंस्करण, पैकेट बंद भोजन तथा पेय पदार्थ खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के अंतर्गत आते हैं। खाद्य प्रसंस्करण में कच्चे माल को मानव उपभोग के लिए भोजन में बदलने के लिए उपयोग की जाने वाली विधियों और तकनीकों को शामिल किया गया है। पशुओं के उपभोग के लिए कच्चे संघटकों को खाद्य पदार्थ में बदलने या खाद्य पदार्थों को अन्य रूपों में बदलने के लिए प्रयुक्त विधियों और तकनीकों का सेट है। आम तौर पर खाद्य प्रसंस्करण में साफ़ फसल या कसाई द्वारा काटे गए पशु उत्पादों को लिया जाता है और इनका उपयोग आकर्षक, विपणन योग्य और अक्सर दीर्घ शेल्फ़-जीवन वाले खाद्य उत्पादों के उत्पादन के लिए किया जाता है। पशु चारे के उत्पादन के लिए भी इसी तरह की प्रक्रियाओं का इस्तेमाल किया जाता है। कई अलग-अलग तरीके हैं जिनमें भोजन का उत्पादन किया जा सकता है।

खाद्य प्रसंस्करण का महत्त्व

दूध, मांस, समुद्री खाद्य पदार्थों में से हानिकारक कीटाणुओं को समाप्त कर, उनमें अन्य पोषक तत्त्व मिलाकर खाने योग्य बनाने के लिये।

खाद्य प्रसंस्करण न केवल खाद्य पदार्थों की उत्तरजीविता को बढ़ाता है अपितु किसानों को होने वाले अतिरिक्त लाभ को सुनिश्चित करता है और नई आर्थिक क्रियाओं को बढ़ावा देता है।

पोषण स्तर में सुधार एवं खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के साथ-साथ रोज़गार के नए अवसर सृजित करने में सहायक है।

निर्यात तथा कृषि में विविधता को बढ़ावा देता है।

खाद्य प्रसंस्करण हेतु प्रशिक्षण पाने के लिए विभिन्न सरकारी कृषि विभागों (कृषि विज्ञान केंद्र, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, स्वायत्तता प्राप्त कृषि केंद्र), कृषि विश्वविद्यालय में समय-समय पर प्रशिक्षण एवं कार्यशाला का आयोजन किया जाता है। किसान इन विभागों से संपर्क करके प्रशिक्षण ले सकते हैं और अपनी अन्य समस्याओं का भी निवारण पा सकते है जैसे कि इकाई को स्थापित करने के लिए मशीनरी एवं ऋण कैसे लें इसकी भी जानकारी इन संस्थानों में दी जाती है।

[1]प्रसंस्करण एवं खाद्य अभियांत्रिकी विभाग

(पृष्ठ 6 का शेष)

हल्दी आंतों को स्वस्थ रखकर पाचन संबंधी समस्याओं को दूर करती है।

यह पेट के अल्सर, पेचिश, अपच, कोलाइटिस जैसी समस्याओं को दूर करती है।

हल्दी को रक्त शोधक माना जाता है। यह शरीर में रक्तचाप को नियमित बनाती है। इससे कोलेस्ट्रॉल की मात्रा बहुत हद तक कम हो जाती है।

हल्दी में उपस्थित कैल्शियम और अन्य तत्व सेहतमंद तरीके से वज़न घटाने में मदद करते हैं।

हल्दी में विद्यमान जीवाणुरोधक तथा कवकरोधी गुण शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढाते हैं।

हल्दी को रोगाणुरोधक की तरह उपयोग में लाया जाता है। इसे घाव पर लगाने से खून बंद हो जाता है।

हल्दी कैंसर बढाने वाली कोशिकाओं को बढ़ने से रोकती है तथा इन्हें नष्ट कर देती है।

लेखकों से अनुरोध

हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। लेख में अंग्रज़ी शब्दों का प्रयोग न करें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें**। अपना लेख हमें ई-मेल पर भी भेज सकते हैं :

haryanakhetihau@gmail.com

बढ़ता नदी प्रदूषण – एक सामाजिक आर्थिक समस्या

✍ **जतेश काठपालिया, रश्मि त्यागी एवं सुभाष चन्द्र**
समाजशस्त्र विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हमारे देश में नदियों का जाल बिछा है, जो कि पर्वत परितन्त्रों से निकलती हैं। इनके जल संसाधन का प्रमुख भाग मैदान में रहने वाली जनसंख्या को मिलता है। हमारे देश में लगभग 113 स्वतंत्र नदियां व हज़ारों सहायक नदियां हैं। इन नदियों के जलग्रहण क्षेत्र को तीन (बड़े, मध्यम एवं लघु) जलग्रहण क्षेत्रों में बांटा गया है। बड़े जलग्रहण क्षेत्र वे हैं, जिनका क्षेत्र 20,000 वर्ग कि.मी. से अधिक, जबकि मध्यम जलग्रहण क्षेत्र 20,000 वर्ग कि.मी. से 2,000 वर्ग कि.मी. है तथा 2,000 वर्ग कि. मी. जलग्रहण क्षेत्र छोटे जलग्रहण क्षेत्र हैं। बड़े और मध्यम वर्ग की नदियां देश के कुल जलग्रहण क्षेत्र का 91 प्रतिशत भाग का निर्माण करती हैं। इनमें से 82 प्रतिशत से अधिक का योगदान बड़ी नदियों का है। बड़ी नदियों में तीन नदियां गंगा, ब्रह्मपुत्र एवं सिन्धु शामिल हैं, जो हिमालय से निकलती हैं।

भारतीय संस्कृति में नदियों को श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखा जाता है। कई नदियों और झीलों के रूप में पानी के प्रचुर प्राकृतिक स्त्रोतों पर विचार करते हुए देखें तो भारत एक प्रसिद्ध देश है। हमारे समाज में लोग नदियों की पूजा देवी और देवताओं के रूप में करते हैं। लेकिन क्या विडम्बना है कि नदियों के प्रति हमारा गहन सम्मान और श्रद्धा होने के बावजूद, हम उसकी पवित्रता, स्वच्छता और भौतिक कल्याण बनाए रखने में सक्षम नहीं हैं। हमारी मातृभूमि पर बहने वाली गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र और कावेरी या कोई अन्य नदी हो, कोई भी प्रदूषण से मुक्त नहीं है। यह बात गौर करने वाली है कि प्राकृतिक संसाधन के तौर पर हमें समृद्ध बनाने वाली नदियां प्रदूषण के प्रभाव में आकर सामाजिक एवं आर्थिक तौर पर हमें निर्धन बना सकती हैं।

प्रदूषण के स्त्रोत : जल प्रदूषण के बहुत सारे कारक हैं, जो नदी के पानी की समग्र गुणवत्ता को कम करते हैं। इसका मुख्य कारण बढ़ता हुआ शहरीकरण, उद्योग-धन्धे, भू-अपरदन, नदी तट पर कृषि का विस्तार और नदियों में पानी की कमी आदि है। कृषि अपशिष्ट, रसायन, उर्वरक और कृषि में इस्तेमाल किए गए कीटनाशक नदी के जल को दूषित करते हैं। इसके अतिरिक्त नदी के किनारे बसने वाले गांवों, कस्बों एवं शहरों में रहने वाले लोगों द्वारा भी नदी का उपयोग नहाने, कपड़े धोने, पशुओं को नहलाने तथा विभिन्न धार्मिक क्रियाकर्म करने में किया जाता है। नहाने, कपड़े धोने के दौरान डिटरजेन्ट, साबुन, राख आदि का उपयोग और धार्मिक कार्यों में नदियों में मूर्तियां विसर्जन, पूजन सामग्री एवं फूल मालाओं का विसर्जन, नदियों के प्रदूषण को बढ़ाते हैं।

नदियों के प्रदूषण का एक खतरा तैलीय प्रदूषण से भी है। खाना पकाने वाले तेल का उपयोग के पश्चात् विसर्जन, वाहनो में होने वाले पैट्रोल, डीज़ल तथा ऑयल और पैट्रोलियम पदार्थ का अंश, उद्योगों में उपयोग में आने वाले विभिन्न प्रकार के ऑयल किसी न किसी रूप में दूषित जल के साथ नदी में प्रवाहित किए जाते हैं, जो नदी के स्वंय शुद्धिकरण की प्रक्रिया को बाधित करते हैं।

नदी प्रदूषण पर नियन्त्रण : नदियां समाज के सामाजिक, आर्थिक उत्थान में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। इसे देखते हुए भारत सरकार द्वारा प्रवर्तित गंगा क्षेत्र योजना की शुरूआत वर्ष 1986 में गंगा नदी की सफाई के साथ हुई, जिससे गंगा नदी की गुणवत्ता में काफी अनुकूल प्रभाव पड़ा है। इस कार्यक्रम के प्रति एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण यह बना कि इसी तरह भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय नदी कार्य योजना के अन्तर्गत देश की अन्य नदियों के लिए कार्य किया जा रहा है, जो प्रमुख नदी बेसिनों के एक भाग हैं, इस कार्यक्रम का उद्देश्य प्रदूषित नदी क्षेत्रों की गुणवत्ता को वांछित स्तर तक पुनर्स्थापना करना है। इस योजना के अन्तर्गत नदियों में प्रदूषण के मुख्य स्त्रोतों जैसे घरेलू अपशिष्ट, औद्योगिक अपशिष्ट और गैर बिन्दु स्त्रोतों को उनकी मात्रा के अनुसार लिया जाता है।

इसके अलावा केन्द्र प्रायोजित राष्ट्रीय नदी संरक्षण परियोजना (एन. आर. सी. पी.) के अन्तर्गत केंद्र और राज्य की सरकारें मिलकर कार्य करती हैं। इस योजना के अन्तर्गत 20 राज्यों के 166 शहरों में 37 प्रमुख नदियों के चिन्हित प्रदूषित खण्डों में प्रदूषण कम करने का कार्य चल रहा है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत नदियों में पानी की गुणवत्ता में सुधार के लिए प्रदूषण कम करने के लिए कार्य किए जाते हैं, ताकि पानी नहाने योग्य हो। इसमें अपशिष्ट को नदी में बहने से रोकना तथा उसे शोधन के लिए भेजना, नदी तट पर खुले में शौच पर रोक लगाने के लिए सस्ते शौचालयों की व्यवस्था करना, शवों की अंत्येष्टि के लिए बिजली शवदाह गृह या उन्नत किस्म के जलावन वाले शवदाह गृह की व्यवस्था करना, स्नान के लिए घाटों में सुधार जैसे सौन्दर्यीकरण कार्य करना तथा लोगों के बीच प्रदूषण के प्रति जागरूकता फैलाना शामिल हैं।

इसके अलावा हम सब को भी प्रयास करना होगा जल प्रदूषण नियन्त्रण के लिए, जैसे कि नालों की नियामित रूप से साफ सफाई करना। ग्रामीण इलाकों में ज़्यादातर जल निकास हेतु पक्की नालियों की व्यवस्था नहीं होती है। इस कारण इसका जल कहीं भी अस्त-व्यस्त तरीके से चला जाता है और किसी नदी नहर आदि जैसे स्त्रोत तक पहुंच जाता है। इस कारण नालियों को ठीक से बनाना और उसे जल के किसी भी स्त्रोत से दूर रखने आदि का कार्य भी करना चाहिए। कई उद्योग वस्तु के निर्माण के बाद शेष बची सामग्री जो किसी भी कार्य में नहीं आती है, उसे नदी आदि स्थानों में डाल देते हैं। कई बार आस-पास के इलाकों में भी डालने पर वर्षा के जल के साथ यह नदी या अन्य जल के स्त्रोतों तक पहुंच जाता है। इस प्रदूषण को रोकने हेतु उद्योगों द्वारा सभी प्रकार के शेष बचे पदार्थों का या तो पुन: उपयोग करते हैं या उसे सुरक्षित रूप से नष्ट कर देते हैं। इस प्रकार इन छोटे-छोटे प्रयासों द्वारा भी हम हमारे जल संसाधनों पर मंडरा रहे प्रदूषण रूपी खतरे को कम कर सकते हैं ताकि हमारी आने वाली पीढ़ियों को हम स्वच्छ व निर्मल जल पूरी मात्रा में उपलब्ध करवा सकें।



एक कदम स्वच्छता की ओर

बुखार (ज्वर) में भोजन प्रबंधन

✍ **संतोष रानी[1], राजेश दहिया एवं कान्ता सबरवाल**
विस्तार शिक्षा एवं संचार प्रबंधन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

ज्वर या बुखार किसी तरह की बीमारी न होकर अपितु बीमारी विशेष का मात्र लक्षण होते हैं। शरीर में विभिन्न पेचीदा क्रियाओं की वजह से बुखार उत्पन्न होता है तथा सही शब्दों में विभन्न तरह के रोग कीटाणु हमारे शरीर में प्रवेश कर उचित वातावरण में स्थान ग्रहण कर स्वयं की संख्या में वृद्धि करने लगते हैं। दूसरी तरफ रक्त की सफेद कणिका में भी वृद्धि होने लगती है तथा दोनों के बीच संघर्ष होता है। इस कारण शरीर की गर्मी बढ़ती है तथा फिर तापमान बढ़ जाता है जिसे ज्वर या बुखार कहते हैं। ज्वर (बुखार) को दो भागों में विभाजित किया गया है।

अ. अल्पकालिक अवधि के बुखार : ये वो बुखार होते हैं जो थोड़े समय के लिए होते हैं, दवाई लेने के बाद कुछ घण्टों या दिनों में उतर जाते हैं। जैसे खाँसी, जुकाम, गलाशोध, टॉन्सिल, निमोनिया, खसरा इत्यादि।

ब. लम्बी अवधि के बुखार : ये वो बुखार होते हैं जो लम्बी अवधि यानि 2-4 सप्ताह तक बने रहते हैं जैसे टाइफाइड, स्मेटिक, पॉलीमाइलाइटिस, तपेदिक, खसरा, छोटी माता इत्यादि।

भोजन प्रबंधन

कुछ लोगों में यह धारणा होती है कि ज्वर में भूखा रहना हितकारी होता है जिससे स्थिति में जल्दी सुधार हो, सिर्फ भ्रामिक धारणा ही है। ज्वर में भोजन प्रबंध के लिए हमें निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान रखना होता है :

1. बुखार में पसीना आने में काफी ज़्यादा जल, सोडियम, पोटाशियम आदि निकल जाते हैं, जिसकी प्रचुर पूर्ति करनी होती है।
2. ज्वर के कारण शरीर का तापमान बढ़ता है जिससे आधारी उपापचयी ऊर्जा दर बढ़ती है। एक डिग्री सेल्सियस तापमान के बढ़ने पर लगभग 7 प्रतिशत ऊर्जा की मांग बढ़ती है जिसे हमें पूरा करना होता है।
3. संचित ग्लाईकोजन की कमी हो जाती है, जिसकी पूर्ति करनी होती है।
4. ज्वर में प्रोटीन की माँग बढ़ जाती है विशेषकर टाइफाइड में। इसलिए क्षतिग्रस्त कोशिकाओं को पूरा करने के लिए अतिरिक्त प्रोटीन की आवश्यकता होती है।
5. ज्वर में लगभग सभी पोषक तत्वों की मांग बढ़ जाती है जिसे हर हाल में पूरा करना होता है।

अ. अल्पकालिक अवधि के बुखार में भोजन प्रबंधन :

1. प्रथम श्रेणी के अल्पकालिक अवधि के ज्वर में शुरू के 36 या 48 घण्टों तक तरल खुराक ही देनी चाहिए, जिससे ज़्यादा से ज़्यादा कार्बोहाइड्रट, प्रोटीन व कैलोरीज़ प्राप्त हो सकें।
2. थोड़ी-थोड़ी मात्रा में मलाईयुक्त दूध 1-1 या 2-2 घण्टे के अंतर पर देना होगा। दिनभर में लगभग 40 औंस दूध देना होगा जिससे लगभग 35-40 ग्राम प्रोटीन व 650 से 700 कैलोरीज़ प्राप्त हो सकें।
3. दूध के साथ-साथ फलों का रस प्रचुर मात्रा में दें। फलों के रस में ग्लूकोज़ या साधारण शक्कर व थोड़ा इच्छानुसार नमक मिलाना उचित होगा, जिससे कैलोरीज़ की अधिक प्राप्ति हो सके और नमक की कमी भी पूरी होती रहे।
4. क्योंकि ज्वर में पसीने के साथ शरीर का पानी ज़्यादा निकल जाता है अत: जल विशेष रूप से पिलाते रहना होगा। दिनभर लगभग 10 गिलास पानी पिलाना ही होगा। पानी में नमक मिलाना हितकर होगा। यदि साधारण पानी न पिया जाए तो नींबू की शिकंजी, ग्लूकोज़ व नमक मिलाकर देना हितकर होगा।
5. हल्की कॉफी, चाय कोको या दूध हॉर्लिक्स, बोर्नविटा मिलाकर देना भी उपयुक्त होगा।
6. रोगी की इच्छानुसार दाल, सब्जियों और माँसाहारियों को माँस मछली का सूप भी क्रीम के साथ देना हितकर होगा, ताकि उचित मात्रा में प्रोटीन व कैलोरी प्राप्त हो सके।
7. यदि प्रथम 48 घण्टे तक कैलोरीज़ पूर्ण मात्रा में न भी मिल पायें तो चिंता की कोई बात नहीं। 48 घण्टे बाद रोगी की स्थिति में सुधार और उसकी रूचि के अनुसार अर्द्धतरल खुराक दें। जिसमें मट्ठा, दही, दूध, अण्डा, चावल या दही के साथ दलिया या राब दूध के साथ घुटी सब्जियाँ, साबूदाना खीर, घूटी दाल, कस्टर्ड पुडिंग या फलों का रस क्रीम के साथ दें।
8. विटामिन 'ए', 'बी' व 'सी' वर्ग अतिरिक्त मात्रा में देने होंगे।
9. शनै: शनै: सामान्य होने पर प्रोटीन की मात्रा बढ़ाकर 100 ग्राम और उर्जा लगभग 3000 कैलोरीज़ देनी होगी।

ब. लम्बी अवधि के बुखार में भोजन प्रबन्धन :

टाइफाइड - मोतीझारा - में भोजन : जो सिद्धान्त ऊपर बताए गये हैं, उसी के आधार पर भोजन देना होगा। चूंकि इस टाइफाइड में आंतों में ज़ख्म हो जाते हैं जिनमें रक्त बहने का भय रहता है या ज़ख्म के स्थान पर आंतों के फटने का डर रहता है। इस प्रकार भोजन अत्यन्त ही कोमल प्रकृति का होना चाहिए।

1. शुरु के 4-5 दिन तक दूध में अतिरिक्त दूध पाऊडर, दूध-अण्डा, दूध-कॉफी, बॉर्न वीटा, अर्धउबला अण्डा, रसगुल्ला, दूध, साबूदाना, कस्टर्ड पुडिंग इत्यादि दें।
2. साथ-साथ फलों का रस प्र्याप्त मात्रा में दें।
3. विटामिन 'बी' व 'सी' अतिरिक्त मात्रा में दें।
4. इसके पश्चात् लगभग एक सप्ताह तक अर्धतरल खुराक जिसमें दूध-दलिया, दही-दलिया, घूटे चावल दूध या दही के साथ, दूध कॉर्नफलेक्स, सब्जियों का सूप क्रीम के साथ, मांसाहारियों को मांस, मछली का सूप, क्रीम के साथ या मछली इत्यादि दें।
5. फलों का रस ग्लूकोज़ के साथ यथावत् देते रहें।
6. रेशे वाली सब्जियां या फल न दें।
7. शहद व मक्खन के साथ टोस्ट एकदम जैम जैली कस्टर्ड पुडिंग आदि देते रहें। लगभग 3-4 सप्ताह तक इसी प्रकार की खुराक पर रखें, फिर शनै: शनै: कोमल खुराक पर आ जायें।
8. विटामिन 'ए' भी अब पर्याप्त मात्रा में प्राप्त कराएं जो मक्खन, पनीर, कैरोटीन प्राप्त करने वाले फल व सब्जियों से या कलेजी इत्यादि से प्राप्त होगा।
9. यदि पेट में कुछ गड़बड़ हो तो फिर से अर्धतरल या तरल खुराक पर आ जायें।
10. तले पदार्थ व मिर्च मसाले वाले व्यंजन न दें।

(शेष पृष्ठ 24 पर)

[1]ज़िला विस्तार विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केन्द्र, फतेहाबाद।

कैसे हों धात्री (दूध पिलाने वाली) माताओं के वस्त्र

✍ **पारुल गिल, पंकज गिल एवं पूनम मलिक**[1]
वस्त्र एवं परिधान अभिकल्पना विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

माँ बनना किसी भी महिला के लिए एक सुखद अनुभूति है। वह परिपक्वता की एक और सीढ़ी चढ़ती है। स्तनपान कराना मातृत्व का एक महत्वपूर्ण भाग है। अधितकर धात्री माताएं रोज़मर्रा के साधारण डिज़ाइन वाले वस्त्र पहनती हैं जिससे न सिर्फ शिशु को दूध पिलाने में परेशानी होती है बल्कि दूसरों के सामने झिझक भी होती है। धात्री अवस्था एक विशेष अवस्था है, इसलिए इस अवस्था में विशेष प्रकार के कपड़ों की आवश्यकता होती है अत: आवश्यक है कि धात्री माताएं अपने वस्त्र चुनते समय निम्न बातों का ध्यान रखें :

धात्री माताओं के वस्त्र दूध पिलाने में सहायक डिज़ाइन वाले व आरामदायक होने चाहिएं।

डिज़ाइन ऐसा हो जिससे शिशु को दूध पिलाने में आसानी हो परन्तु जिस पर देखने वाले का ध्यान न जाए। डिज़ाइन देखने में आम वस्त्रों जैसा ही होना चाहिए।

इस अवस्था में छाती का आकार बढ़ जाता है। इसलिए वस्त्र का डिज़ाइन ऐसा होना चाहिए जिससे देखने वाले का ध्यान वस्त्र के अन्य हिस्सों पर न जाए जैसे कि बाँह पर या कमीज़ के निचले हिस्से पर की गई कढ़ाई।

इस अवस्था में छाती की त्वचा संवेदनशील हो जाती है। इसलिए वस्त्र नरम व मुलायम होने चाहिएं।

सिलाई व डिज़ाइन भी ऐसा होना चाहिए जो छाती की त्वचा पर न चुभे।

वस्त्र गीलेपन को सोखने वाला होना चाहिए ताकि अतिरिक्त बहने वाले दूध को सोख सके। सूती वस्त्र के सोखने की क्षमता अच्छी होती है।

वस्त्र ऐसे हों जिनका रख-रखाव व धुलाई आसान हो क्योंकि माता के वस्त्र दुग्धस्राव व शिशु के मल-मूत्र, उल्टी आदि की वजह से बार-बार गंदे होते हैं जबकि माँ के पास समय की कमी होती है।

वस्त्र ऐसे होने चाहिएं जो बार-बार की धुलाई को बर्दाश्त कर सकें।

इस अवस्था में अधिक वस्त्रों की आवश्यकता होती है क्योंकि वस्त्र बार-बार मैले हो जाते हैं। परन्तु बहुत महंगे वस्त्र नहीं खरीदने चाहिएं क्योंकि इस अवस्था के बाद वो काम नही आएंगे।

प्लेन व हल्के रंग के वस्त्रों की बजाय प्रिंटिड व गहरे रंग के वस्त्र इस्तेमाल करने चाहिएं ताकि उन पर दूध के धब्बे ज़्यादा नज़र न आएं।

माता को खास तरह के डिज़ाइन किए हुए अंतर्वस्त्र तथा स्तन पैड इस्तेमाल करने चाहिएं ताकि दुग्धस्राव से वस्त्र खराब न हों।

छाती के ऊपर खुलने वाले डिज़ाइन के वस्त्र पहनने चाहिएं ताकि स्तनपान कराने में परेशानी न हो। उदाहरण के लिए प्रिंसेस लाइन या अंपायर लाइन में खुली जगह वाले डिज़ाइन जो ऊपर से ढके हों।

ऐसा डिज़ाइन भी चुन सकते हैं जिसमें कमीज़ में खुलापन हो जैसे कि अंब्रेला कट डिज़ाइन की कमीज़।

इस समय में वस्त्र केवल माता की ज़रूरत व आराम के लिए ही नहीं बल्कि शिशु को ध्यान में रखकर भी लेने चाहिएं क्योंकि माता के वस्त्र दुग्धपान के समय शिशु की त्वचा के संपर्क में आते हैं और शिशु की त्वचा बहुत ही नाजुक होती है। अत: माता के वस्त्र कृत्रिम रेशों से बने हुए नहीं होने चाहिएं, उन पर किसी प्रकार का सजावटी सामान जैसे लेस, बटन, शीशे, सितारे, धातु के धागों वाली कढ़ाई आदि नहीं होनी चाहिए।

[1]मानव विकास एवं पारिवारिक अध्ययन विभाग

गर्मी के मौसम में स्वास्थ्य सम्बन्धी सुझाव

✍ **वीनू सांगवान एवं मीनू सिरोही**
खाद्य एवं पोषण विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

यह देखने में आता है कि गर्मी का मौसम आते ही मक्खी, कॉकरोच व विभिन्न प्रकार के अन्य कारकों द्वारा भोजन दूषित करने का खतरा अन्य ऋतुओं की अपेक्षा कई गुना बढ़ जाता है। दूषित भोजन के सेवन करने से हमारे शरीर में विभिन्न प्रकार के इन्फेक्शन व रोगों जैसे डायरिया, पीलिया, मलेरिया, टाइफाइड, खाज, खुजली, एलर्जी इत्यादि की सम्भावना बढ़ जाती है। वहीं दूसरी ओर गर्मी के मौसम में शरीर अत्याधिक पसीना निकलता है जिससे शरीर में इलैक्ट्रोलाइट्स जैसे सोडियम, पोटेशियम इत्यादि व पानी की कमी होने लगती है। अत: गर्मी में होने वाले विभिन्न प्रकार के संक्रामक रोगों, पानी व इलैक्ट्रोलाइट्स की कमी से बचने के लिए कुछ निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए:

गर्मी के मौसम में सदैव हल्का, चिकनाई रहित, कम तला भुना, विभिन्न पोषक तत्वों व पानी से भरपूर ताज़ा भोजन करना चाहिए।

एक ही समय में अधिक आहार नहीं लेना चाहिये। खासतौर पर बुजुर्गों व बच्चों को भोजन थोड़े-थोड़े समय के अन्तराल पर लेना चाहिये। गर्मियों में व्रत या लम्बे समय तक भूखा नहीं रहना चाहिये।

हमें अपने आहार में विभिन्न पोषक तत्वों व पानी से भरपूर फलों जैसे तरबूज, खरबूजा, पपीता व अन्य सब्जियां जैसे - ककड़ी, खीरा, प्याज़, टमाटर इत्यादि का सलाद के रूप में अधिक से अधिक सेवन करना चाहिए। साथ ही करेला, लौकी, तोरी, टिण्डा, हरी मिर्च इत्यादि की बनी सब्जी को आहार में प्राथमिकता देनी चाहिए।

जहां तक सम्भव हो फल व सब्जियां साफ, स्वच्छ, पेस्टीसाइड्स से मुक्त व ताजी होनी चाहिएं। फलों व सब्जियों को तब ही काटें जब खानी हों। अधिक समय तक काटकर रखने से उनके पोषक तत्वों पर दुष्प्रभाव पड़ता है व संक्रमण का खतरा भी बढ़ जाता है।

खाना सदैव ताज़ा बना हुआ ही खाना चाहिए। सुबह का बना खाना शाम को कभी भी नहीं खाना चाहिए।

सड़क के किनारे खुले में बिक रहे कटे फल जैसे तरबूज, खरबूजा इत्यादि व खाद्य पदार्थ जैसे समोसे, टिक्की, चाउमिन इत्यादि नहीं खाने चाहिएं। खुले में बन रहे खाद्य पदार्थों पर धूल, मिट्टी जमा होती रहती है व साथ ही मक्खी, मच्छर भी उड़ते रहते हैं जो भोजन को दूषित व रोगों का घर बना देते हैं।

गर्मियों के मौसम में अधिक ठण्डे पेय पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये। वैसे तो ये हमें ठण्डक प्रदान करते हैं परन्तु इनके लगातार सेवन से पेट में अल्सर का खतरा बढ़ जाता है।

सदैव घर पर बने पेय पदार्थ जैसे नींबू पानी, शिकंजी, जूस, शेक, नारियल पानी, गन्ने का रस, आम का पन्ना, पुदीना पानी इत्यादि को ही अपने आहार में प्राथमिकता देनी चाहिए। बाज़ार में उपलब्ध विभिन्न प्रकार के कार्बोनेटिड पेय पदार्थों में पोषक तत्वों का नितान्त अभाव रहता है तथा चीनी की मात्रा बहुत अधिक रहती है, साथ ही ऐसे पदार्थों में फास्फोरिक अम्ल पाया जाता है जो हड्डियों से कैल्शियम को बाहर निकालता है और धीरे-धीरे हड्डियां कमज़ोर होने लगती हैं। वहीं दूसरी ओर कैफिन युक्त पेय पदार्थ जैसे चाय, कॉफी

इत्यादि का अधिक सेवन भी स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालता है।

घर के बाहर निकलते समय अपने साथ पानी की बोतल/नींबू पानी अवश्य लेकर जाना चाहिये।

रात में घर में गन्दे बर्तन नहीं रखने चाहिएं क्योंकि कॉकरोच, मक्खी, इत्यादि का प्रकोप खासकर ग्रामीण घरों में अधिक बढ़ जाता है जिसका सीधा प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर पड़ता है।

दिन भर में कम से कम 8-10 गिलास पानी अवश्य पीना चाहिए। जिससे हमारे शरीर में पानी की कमी न हो। आहार में पेय पदार्थों का अधिक सेवन करना चाहिए।

यदि छोटे बच्चों को किसी कारण डायरिया इत्यादि के कारण पानी की कमी हो रही है तो उन्हें बाज़ार में उपलब्ध ओरल रिहाइड्रेशन सोलुशन (ओ.आर.एस.) का घोल बनाकर दें। बच्चों को घर में ही नमक चीनी का हल्का घोल बनाकर भी थोड़े-थोड़े अन्तराल में दिया जा सकता है।

गर्मियों के मौसम में तेज़ धूप के प्रभाव से अपना बचाव रखना चाहिये। घर, ऑफिस इत्यादि से सुबह/शाम को ही निकलें। स्कूल जाने वाले बच्चों को तेज़ धूप से बचाव के लिए छाता व पानी की बोतल अवश्य उपलब्ध करानी चाहिये।

अधिक नमक व चीनी युक्त पेय पदार्थों/खाद्य पदार्थों को अपने आहार में कम ही शामिल करें अन्यथा उच्च रक्तचाप, शूगर व मोटापा होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

खाना खाने से पहले साबुन से हाथ अच्छी प्रकार धोने चाहिएं।

अत: यदि उपर्युक्त सुझावों को ध्यान में रखा जाये तो बच्चे, बड़े व बूढ़े सभी आयु वर्ग गर्मी के मौसम में भी अपने आप को पूर्णरूप से स्वस्थ व एक्टिव रख सकते हैं और उनकी कार्यक्षमता पर तेज़ धूप, गर्मी इत्यादि का कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(पृष्ठ 22 का शेष)

11. ऊर्जा लगभग 2500 से 3000 कैलोरीज़ और प्रोटीन 80 से 100 ग्राम देना ही होगा।

वैसे तो कार्बोहाइड्रेट इस खुराक में ठीक-ठीक मिल ही जाएंगे, फिर भी ग्लूकोज़, शहद, कस्टर्ड पुडिंग, जैम जैली, उबले आलू व अन्य सब्जियों व फलों पर अधिक झुकाव रखना होगा।

खसरा व छोटी माता में भी मोतीझरा (टाइफाइड) के लिए निर्मित भोजन ही दें एवं तपेदिक (टी.बी.) में भी मोतीझरा के लिए निर्मित भोजन ही दें। परन्तु तपेदिक जैसी बीमारी में ज़ख्म पड़ जाते हैं और इन ज़ख्मों में कीटाणु बहुत समय तक बने ही रहते हैं। ज़ख्म में से रक्त निकलता है जो कफ के साथ निकलता है। रोगी का शरीर कृशकाय व कमज़ोर हो जाता है। उसका वज़न लगातार घटता जाता है और पोषण काफी न्यून स्तर का हो जाता है। रक्तहीनता की भी स्थिति बन जाती है। इस प्रकार ऐसे मरीज़ों को उपयुक्त बनाये रखने के लिए उत्तम प्रोटीन, वसा, विटामिन-ए, डी, सी वर्ग की अधिक आवश्यकता पड़ती है। साथ ही आयरन व कैल्शियम की भी भरपूर ज़रूरत होती है। जिससे फेफड़ों के घाव जल्दी भरें और रक्तहीनता की स्थिति में भी वांछित सुधार हो। हाजमे के साथ सूखे मेवे भी दें। विटामिन 'ए' व 'डी' की अतिरिक्त मात्रा भी आवश्यकतानुसार दें।

पशुओं के लिए साइलेज उत्पादन

✍ **वीनस, ज्योति शून्थवाल एवं सज्जन सिहाग**

पशु पोषण विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

हरे चारे को हवा की अनुपस्थिति में गड्ढे के अन्दर रसदार परिरक्षित अवस्था में रखने से चारे में लैक्टिक अम्ल बनता है जो हरे चारे का पीएच कम कर देता है तथा हरे चारे को सुरक्षित रखता है। इस सुरक्षित हरे चारे को साईलेज (पसंहम) कहते हैं। अधिकतर किसान भूसा या पुआल का उपयोग करते हैं जो साईलेज की तुलना में बहुत घटिया होते हैं क्योंकि भूसा या पुआल में से प्रोटीन, खनिज तत्व एवं उर्जा की उपलब्धता कम होती है।

साईलेज बनाने के लिए फसलों का चुनाव

दाने वाली फसलें जैसे मक्का, ज्वार, जई, बाजरा आदि साईलेज बनाने के लिए उतम फसलें हैं क्योंकि इनमें कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक होती है। कार्बोहाइड्रेट की अधिकता से दबे चारे में किण्वन क्रिया तीव्र होती है। दलहनीय फसलों का साइलेज अच्छा नहीं रहता परन्तु दलहनीय फसलों को दाने वाली फसलों के साथ मिलाकर साईलेज बनाया जा सकता है। अन्यथा शीरा या गुड़ के घोल का उपयोग किया जाए जिससे लैक्टिक अम्ल की मात्रा बढाई जा सकती है।

साईलेज बनाने के लिए फसल की कटाई की अवस्था

दाने वाली फसलों जैसे मक्का, ज्वार, जई आदि को साईलेज बनाने के लिए जब दाने दूधिया अवस्था में हों तो काटना चाहिए। इस समय चारे में 65-70 प्रतिशत पानी रहता है। अगर पानी की मात्रा अधिक है तो चारे को थोडा सुखा लेना चाहिए।

साईलेज के गड्ढों के लिए जगह का चुनाव

साईलेज बनाने के लिए गड्ढों के लिए जगह का चुनाव बहुत महत्वपूर्ण है :

1. गड्ढे हमेशा ऊंचे स्थान पर बनाने चाहिएं जहां से वर्षा के पानी का निकास अच्छी तरह हो सके।
2. भूमि में पानी का स्तर नीचे हो।
3. साईलेज बनाने का स्थान पशुशाला के समीप हो।

गड्ढे बनाना

साईलेज बनाने के लिए गड्ढे कई प्रकार के होते हैं। गांवों में साईलेज बनाने के लिए खत्तियां काफी सुविधाजनक और उपयोगी होती हैं। गड्ढों का आकार उपलब्ध चारे व पशुओं की संख्या पर निर्भर करता है। गड्ढों के धरातल में ईंटों से तथा चारों ओर सीमेंट एवं ईंटों से भली भांति भराई कर देनी चाहिए। जहां ऐसा सम्भव न हो सके वहां पर चारों ओर धरातल की गीली मिट्टी से खूब लिपाई कर देनी चाहिए और इनके साथ सूखे चारा की एक तह लगा देनी चाहिए या चारों और दीवारों के साथ पॉलीथीन लगा दें।

गड्ढों को भरना तथा बन्द करना

जिस चारे का साईलेज बनाना है उसे काट कर थोडी देर के लिए खेत में सुखाने के लिए छोड़ देना चाहिए। जब चारे में नमी 70 प्रतिशत के लगभग रह जाये उसे कुट्टी काटने वाली मशीन से छोटे-छोटे टुकडों में काट कर गड्ढों में अच्छी तरह दबाकर भर देना चाहिए। छोटे गड्ढों को आदमी पैरों से दबा सकते हैं जबकि बडे गड्ढे ट्रैक्टर चलाकर दबा देने चाहिएं। जब तक ज़मीन की सतह से लगभग एक मीटर ऊचां ढेर न लग जाये भराई करते रहना चाहिए।

(शेष पृष्ठ 27 पर)

भिंडी की फसल : माइट की रोकथाम

✍ **बजरंग लाल शर्मा, अनिल एवं नरेश कुमार**[1]
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भिंडी को हानि पहुँचाने वाली लाल रंग की माइट टेट्रनिकस सिन्नबेरिनस (*Tetranychus Cinnabarinus*) कीटों की तरह ही होती है जिनमें आठ पैर (चार जोड़ी) होते हैं। माइट का शरीर दो भागों सिर एवं उदर में विभक्त होता है। इनका रंग भूरा लाल होता है माइट के ऊपर वाले भाग पर प्राय: दो गाढ़े रंग के धब्बे होते हैं। तापमान बढ़ने पर माइट की संख्या तेज़ी से बढ़ती है।

अण्डे प्राय: सफेद रंग के होते हैं जो बाद में पीले हो जाते हैं। लारवा जिसके छ: पैर होते हैं बाद में निम्फ में परिवर्तित हो जाता है जिनमें आठ पैर होते हैं। वे पीलापन लिए होते हैं निम्फ बाद में वयस्क बन जाते हैं। गर्म तथा शुष्क में जीवन चक्र जल्दी होता है। इस प्रकार एक ही फसल पर कई पीढ़ियां पूरी हो जाती हैं। ठंडे मौसम में मादा सुषुप्त अवस्था में चली जाती है और मौसम गर्म हो जाने पर फिर सक्रिय हो जाती है।

नुकसान

लाल माइट से भिंडी की फसल को प्रतिवर्ष लगभग 20-25 प्रतिशत तक नुकसान होता है। लाल माइट के मुखांग सूई जैसे होते हैं जिसे यह पत्तियों या टहनियों की कोशिकाओं में चुभाकर उनका रस चूस लेती है। इस माइट के निम्फ तथा वयस्क दोनों ही अवस्थायें पत्तियों की निचली सतह से रस चूसती हैं। इससे क्लोरोफिल नष्ट हो जाता है परिणामस्वरूप पत्तियों पर पहले छोटे-छोटे हल्के सफेद रंग के सुई के नोक के समान धब्बे दिखाई देते हैं बाद में पीले रंग के धब्बे हो जाते हैं। जो खेत में दूर से ही दिखाई देते हैं। धीरे-धीरे पत्तियां पीली हो जाती हैं और सूखकर गिर जाती हैं। अधिक आक्रमण होने पर माइट पौधों एवं तने पर मकड़ी के समान जाले बना लेती हैं एवं उस जाल में अण्डे एवं माइट की सभी अवस्थायें पाई जाती हैं। अधिक प्रकोप होने पर लाल माइट फलों व पत्तों की नोक पर एकत्रित हो जाती हैं।

माइट पत्तियों के अतिरिक्त कोमल शाखा से भी रस चूसती हैं तथा पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया को प्रभावित करती हैं जिससे पौधा कमज़ोर हो जाता है। प्रभावित पौधों में फल छोटे लगते हैं और गुणवत्ता में भी कमी आ जाती है।

रोकथाम

अधिक प्रकोप वाली टहनियों व पत्तियों को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

सादे पानी का फसल पर छिड़काव करने से भी काफी संख्या में माइट मर जाती है।

फसल कटाई के बाद खरपतवार व फसल अवशेषों को एकत्रित करके जला देना चाहिए।

लाल माइट की रोकथाम हेतु प्रेम्पट 20 ई.सी. नाम की दवा 300 मि. ली प्रति एकड़ के दो छिड़काव 10 दिन के अंतराल पर करें। आवश्यकता पड़ने पर 10-15 दिन बाद फिर इस दवा का छिड़काव दुबारा करें।

[1]मौसम विज्ञान विभाग

बच्चों में भाषा कौशल का विकास

✍ **रीना, रीतु एवं बिमला ढांडा**
मानव विकास एवं पारिवारिक अध्ययन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भाषा विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सुनने एवं बोलने की शुरुआत मानवीय जीवन के बचपन में ही शुरू हो जाती है । शिशुओं का विकास, भाषा के बिना शुरू होता है। फिर भी 10 महीने तक, बच्चे भाषा की आवाज़ को अलग-अलग पहचान सकते हैं। वे अपनी मां की आवाज़ को बहुत ही अच्छी तरह से पहचानने लगते हैं। शिशुओं में भाषा का विकास, जैसे-जैसे बच्चा शारीरिक एवं मानसिक रूप से बड़ा होता जाता है भाषा के प्रति भी उनकी व्यवहारिक प्रतिक्रिया भी विकसित होती जाती है। भाषा विकास का बच्चों के बौद्धिक स्तर से सीधा संबंध है। माँ-बाप को अपने बच्चों को जन्म के कुछ महीनों बाद से ही खेल-खेल में छोटी-छोटी बातें सिखा देनी चाहिएं।

भाषा का विकास : जन्म से लेकर पांच साल तक

जन्म से तीन माह के दौरान भाषा का विकास : इस अवधि में बच्चा सबसे अधिक हंसी और ध्वनियों के साथ खेलता रहता है। इशारों के साथ संवाद करना शुरू करता है। बच्चों को कुईंग और गर्गलिंग करने में आनंद आता है। बबलिंग पहले वर्ष के दौरान की एक महत्वपूर्ण विकासात्मक अवस्था मानी जाती है।

तीन महीने से छह महीने तक : इस अवस्था में बच्चा अपनी माँ की आवाज़ को पहचाने लगता है। जैसे - अगर बच्चा रो रहा हो तो अपनी माँ की आवाज़ सुन कर चुप हो जाता है। जब कोई नई आवाज़ को सुनता है तो बच्चा हंसता है। बच्चों को बबलाने में आनंद आता है। बच्चा एक ही आवाज़ के क्रम को बार-बार दोहराता रहता है जैसे कि दा... दा... बा... बा... पा...पा... इत्यादि।

छह महीने से नौ महीने तक : इस अवस्था में बच्चा विभिन्न प्रकार की आवाज़ निकालने में आनंद लेता है। साथ ही उसका बबलाना निरंतर जारी रहेगा। बच्चों में इतना विकास हो जाता है जिस तरफ से आवाज़ आती है उसी तरफ अपने सिर को घुमा लेता है और नई-नई आवाज़ों को लगातार सुनने में रूचि रखता है।

नौ महीनों से दो साल तक : बच्चा न जैसे शब्दों को समझने लगता है और छोटी-छोटी बातों को मानने लग जाता है जैसे कि आंखें बंद करो और खोलो, अपना मुँह खोलो और बंद करो इत्यादि। वह अपनी आवाज़ से औरों का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश करता है और आपके द्वारा बोले गए कुछ शब्दों की नकल करने की भी कोशिश करता है।

दो साल से लेकर ढाई-तीन साल तक : इस अवस्था में बच्चा आपके आदेशों को मानने लग जाता है। वह अन्य वस्तुओं की तरफ इशारा और चीज़ों को देख कर मांगने लग जाता है। जैसे कि गेंद दो मुझे, मैं इसके साथ खेलूँगा। यदि आपका बच्चा इशारों को नहीं समझ पा रहा है, तो आप अपने बच्चे को डॉक्टर को दिखाएं या अन्य किसी प्रशिक्षण एवं परामर्श दाता से बात करें।

तीन साल से लेकर पांच साल तक : बच्चा चार शब्दों से ज़्यादा के वाक्यों का इस्तेमाल करने लग जाता है। भावनाओं और वस्तुओं को पहले से बेहतर समझता है। पूर्ण वाक्यों को दोहराना, छोटी-छोटी कहानियां को सुनना और उससे जुड़े सवालों के जवाब देना, घर और स्कूल में की जाने वाली सभी बातों को समझना, बड़ों के साथ बात करना, कुछ अक्षरों और नंबरों को पहचाने लग जाता है। जानवरों और पक्षियों जैसे समान वस्तुओं

में अंतर को भी बताने लग जाता है।

अपने बच्चे के शुरुआती भाषा के विकास को कैसे प्रोत्साहित करें

अपने बच्चे के सुनने और बोलने के विकास को प्रोत्साहित करने का सबसे अच्छा तरीका है कि आप अपने बच्चे की रुचि रखने वाली चीज़ों के बारे में बहुत सारी बातें करें। उनसे पूछे तुम्हें ये वस्तु पसंद हैं या नहीं।

बच्चों को स्कूल में सहज होने का मौका दें। इससे बच्चे की झिझक टूटेगी और बच्चे को स्कूल के माहौल के साथ ढलने का मौका भी मिलेगा। एक-दो सप्ताह तक बच्चों के साथ यह गतिविधि जारी रखें। बच्चों के साथ बातचीत करें और कहानियां सुनाएं। बच्चों को घर की भाषा में बात करने का अवसर दें और विभिन्न गतिविधियों में भाग लेने के लिए उनको प्रोत्साहित करें।

कहानी के माध्यम से बच्चों की सुनकर समझने की क्षमता पर काम करें, कहानी सुनाने के लिए चित्रों वाली किताब का उपयोग करें और बच्चों की जिज्ञासा का जवाब देने की कोशिश करें।

चौथे-पाँचवें सप्ताह से बच्चों को पेंसिल पकड़ना, किताब और कॉपी खोलना और देखना सीखने का अवसर दें। ताकि वे इन चीजों के साथ सहज हो सकें। हर बच्चे की अलग-अलग क्षमता होती है, इसलिए सारे बच्चों से एक जैसी अपेक्षा न रखें। बच्चों के साथ दो सप्ताह तक आड़ी-तिरछी रेखाएं व गोला बनाने जैसी गतिविधियों के बाद अक्षर पढ़ने और लिखने की शुरुआत करें।

अपने बच्चे से सरल और अच्छे ढंग से प्रश्न पूछें और जवाब देकर बातचीत जारी रखें। जब आपका बच्चा कुछ मांगता है आप उसे वापिस देने के लिए भी कहिए। सरल और पूर्ण वाक्यों में बोलना जारी रखें और सीखने के लिए बच्चे पर ज़्यादा दबाव डालने की कोशिश न करें कि वह हर रोज़ एक अक्षर सीखे ही।

बच्चों को एक दिन में केवल एक अक्षर पढ़ना सिखाएं और ये आदत बनाएं। उसे लिखने का तरीका भी सिखाएं। लिखने-पढ़ने की शुरूआत सबसे पहले बड़ी मात्राओं वाले अक्षरों या बार-बार आने वाले अक्षरों से करें, जैसे - क, ख, र, आ, ए, म, न, य इत्यादि।

माँ-बाप को अपने बच्चों को ये भी सिखाना चाहिए, जब घर पर कोई मेहमान आए तो उनसे मिले एवं बातें करे। इससे बच्चों की न सिर्फ झिझक खुलेगी बल्कि अच्छी आदत भी सीखेगा और साथ ही साथ भाषा का भी विकास होगा।

उनसे प्यार से बातें करें और खुल कर बोलने के लिए प्रोत्साहित करें, इससे बच्चों की झिझक टूटेगी।

ध्यान देने योग्य बातें :

वैसे तो भाषा के विकास में देरी के बहुत से कारण हो सकते हैं लेकिन मुख्य रूप से इसका कारण सामान्य देरी है। बच्चे के जीवन के पहले 3 साल भाषा और बोली विकास के लिए एक महत्वपूर्ण अवधि है इस दौरान बच्चे का मस्तिष्क तेज़ी से विकास कर रहा होता है। इस दौरान बच्चों को पर्याप्त रूप से बातचीत का मौका न मिलने से भाषा का विकास ठीक ढंग से नहीं हो पाता।

सुनने की समस्या भी भाषा को प्रभावित करती है। कुछ बच्चों में संरचनात्मक विकृतियां हो सकती हैं, जैसे कि जीभ, तालु की समस्याएं।

इनके अलावा, किसी भी प्रकार की मानसिक कमज़ोरी भी भाषा को प्रभावित कर सकती है। सबसे बड़ी बात, आपके बच्चे को बोलने और सुनने के लिए जितने अधिक मौके मिलेंगे उतनी ही जल्दी झिझक खुलेगी, फिर वह खुल कर बात करेगा और उतनी ही बेहतर भाषा या बोली का विकास होगा।

घीया की वैज्ञानिक विधि से खेती

✍ **मक्खन मजोका, शिवानी कम्बोज एवं धर्मवीर दुहन**
सब्जी विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

घीया एक कद्दूवर्गीय महत्वपूर्ण सब्जी है। इसको लौकी के नाम से भी जाना जाता है। इसके मुलायम फलों में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खाद्य रेशा, खनिज लवण के अलावा प्रचूर मात्रा में अनेक विटामिन्स भी पाए जाते हैं। लौकी की प्रकृति ठंडी होती है। इसके फल सुपाच्य होने के कारण चिकित्सक रोगियों को लौकी की सब्जी अधिक से अधिक खाने की सलाह देते हैं। लौकी के हरे फलों से सब्जी, रायता, खीर, कोफ्ते, अचार एवं मिठाइयां बनाई जाती हैं। इसका बाहरी आवरण संगीत यंत्र बनाने के काम भी आता है।

उन्नत किस्मों का चुनाव

घीया के लिये चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा सिफारिश किस्मों की बिजाई करें।

1. पूसा समर प्रोलीफिक लौंग : यह किस्म गर्मी व बरसात दोनों मौसम में उगाने के लिए उपयुक्त है। इस किस्म में फल काफी संख्या में लगते हैं और बेलों की बढ़वार भी काफी होती है। कच्चे फलों की लम्बाई 40-50 सैं.मी. व फलों का रंग हल्का हरा होता है। इसकी औसत पैदावार 56-60 क्विंटल प्रति एकड़ है।

2. पूसा समर प्रोलीफिक राऊण्ड : यह किस्म भी गर्मी व बरसात दोनों मौसम के लिए उपयुक्त है। इसके कच्चे फल 15 x 18 सैं.मी. घेरे के गोल व हरे रंग के होते हैं।

3. घीया हिसार 22 : यह किस्म भी ग्रीष्म व बरसात ऋतु में उगाने के लिए उपयुक्त है। इस किस्म की बेलों की बढ़वार अच्छी होती है, साथ ही साथ उन पर फल भी ज़्यादा मात्रा में लगते हैं। इसके कच्चे व खाने योग्य हल्के हरे फलों की औसत लम्बाई लगभग 30 सैं.मी. होती है। इसकी औसत पैदावार 100-120 क्विंटल प्रति एकड़ है।

4. हिसार घीया संकर 35 : यह घीया की एक संकर किस्म है। इसके फल बेलनाकार व बेल पर ज़्यादा मात्रा में लगते हैं तथा बेलों की बढ़वार अच्छी होती है। इस किस्म को ग्रीष्म व वर्षा दोनों ऋतु में उगाया जा सकता है। कच्चे व खाने योग्य हरे फलों की औसत लम्बाई लगभग 25-30 सैं. मी. होती है। इसकी औसत पैदावार 120-140 क्विंटल प्रति एकड़ है।

भूमि की तैयारी

वैसे तो घीया की फसल हर प्रकार की भूमि में हो सकती है लेकिन उचित जल निकास युक्त प्रचुर जीवांश से युक्त चिकनी बलुई मिट्टी इसकी खेती के लिए सबसे उत्तम मानी गई है। इसके लिए भूमि का पी.एच. मान उदासीन होना चाहिए। उदासीन का मतलब न अम्लीय और न ही क्षारीय अर्थात 6.0 से 7.0 के बीच में होना चाहिए। बिजाई से 3-4 सप्ताह पहले गोबर की सड़ी गली खाद खेत में अच्छी तरह मिला दें, फिर 3-4 बार जुताई करें। हर जुताई के बाद सुहागा लगाएं।

बिजाई का समय

गर्मी की फसल के लिए फरवरी-मार्च तथा बरसात की फसल के लिए जून-जुलाई का समय बिजाई के लिए उपयुक्त है।

बीज की मात्रा

घीया की बिजाई के लिए 1.5 से 2 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ काफी

रहता है। बिजाई से पहले बीज को रात भर पानी में भिगो लेना चाहिए ताकि बीज का अंकुरण अच्छा हो।

बिजाई की विधि

घीया के बीजों को थोड़ी उठी हुई क्यारियों में नालियों के किनारे पर बोएं जिनकी चौड़ाई 2-3 मीटर तथा लम्बाई सुविधानुसार रखें। दो या तीन बीज एक जगह पर 3-4 सैं.मी. की दूरी पर बोयें और पौधे पर जब 2 से 3 सच्ची पत्तियां आ जाएं, तब केवल एक स्वस्थ पौधा रखकर शेष पौधों को निकाल दें। पौधों के बीच की दूरी 60 सैं.मी. रखें।

खाद व उर्वरकों का प्रयोग

छ: टन गोबर की सड़ी-गली खाद, 20 कि.ग्रा नाइट्रोजन, 10 कि.ग्रा. फास्फोरस, 10 कि.ग्रा. पोटाश की शुद्ध मात्रा प्रति एकड़ डालें। बिजाई के समय फास्फोरस व पोटाश की सारी मात्रा व नाइट्रोजन की आधी मात्रा बिजाई वाले स्थानों पर बराबर मात्रा में ड़ालें। बची हुई नाइट्रोजन की आधी मात्रा को दो बराबर हिस्सों में बांटकर एक महीने बाद व फूल आने पर नालियों में डालकर मिट्टी चढाएं।

सिंचाई

बिजाई बत्तर में करें, अगर बिजाई सूखें में की है, तो तुरंत ही हल्का पानी लगाएं। गर्मी के मौसम में 5-7 दिनों के व बरसात के मौसम में 8-10 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करें। बरसात के मौसम में सिंचाई वर्षा पर निर्भर करती है।

जहाँ सिंचाई के लिए पानी तैलीय (सोडिक) हो वहां पानी में एक मि. ली. तुल्यांक प्रति लीटर आर.एस. सी. को निरस्थीकरण करने के लिए जिप्सम 32 किलोग्राम (80 प्रतिशत शुद्धता) प्रति सिंचाई प्रति एकड़ तथा 8 टन गोबर की सड़ी हुई खाद प्रति एकड़ डालें। इससे घीया की फसल पर तैलीय पानी का प्रभाव कम हो जाएगा, साथ ही साथ अच्छी पैदावार भी मिलेगी।

वृद्धि नियामकों का प्रयोग

दो व चार सच्ची पत्तियाँ आने की अवस्था मे पत्तों पर 4 मि.ली. इथरेल (50 प्रतिशत) के घोल को 20 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। इससे मादा फूल ज़्यादा संख्या में लगते हैं, अन्तत: पैदावार बढ जाती है। कोई चिपचिपा पदार्थ घोल में मिलाना न भूलें।

अन्त: कृषि क्रियाएं एवं खरपतवार नियन्त्रण

दोनों ऋतु में सिंचाई के बाद खेत में काफी मात्रा में खरपतवार उग जाते हैं। खरपतवार के नियन्त्रण के लिए एक या दो गुड़ाई की आवश्यकता पड़ती है। प्रारम्भिक अवस्था में ट्रैक्टर की टिलर के द्वारा भी खरपतवार को नियंत्रित किया जा सकता है क्योंकि तब पौधे छोटे होते हैं।

फलों की तुड़ाई व पैदावार

ज़्यादा पके फल खाने के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं, इसलिए उनको कच्ची अवस्था में तोड़ें जब उनका रंग हरा हो। फलों का वज़न किस्मों पर निर्भर करता है। मुलायम फलों की तुड़ाई डण्ठल लगी अवस्था में किसी तेज़ चाकू से करें।

औसत पैदावार

40-60 किवंटल/एकड़

हानिकारक कीड़े व उनकी रोकथाम

घीया में लालड़ी, तेला, चेपा, माईट, फल मक्खी और जड़ गांठ सूत्रकृमि का प्रकोप होता है। लालड़ी के लिए 25 मि.ली. साईपरमेथरिन 25 ई.सी. या 30 मि.ली. फेनवेलरेट 20 ई.सी. नामक रसायन के घोल को 100 लीटर पानी में घोल कर एक एकड़ में छिड़काव करें। तेला, चेपा और माईट के लिए मैलाथियान 250 मि.ली. 50 ई.सी. और फल मक्खी के लिए मैलाथियान 400 मि.ली. 200-250 लीटर पानी में प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करें। घीया में जड़ गांठ सूत्रकृमि की रोकथाम के लिए बिजाई से एक सप्ताह पहले नीम की खल 30 ग्राम प्रति स्थान की दर से मिट्टी में मिलाएं व बीज को बायोटिका से उपचारित करें।

बेल वाली सब्जियों में बीमारियां

घीया में चिट्टा रोग, एन्थ्रैक्नोज़, डाऊनी मिल्ड्यू व मोजैक रोग नामक बीमारियों का प्रकोप होता है।

रोकथाम

1. पाऊडरी मिल्ड्यू की रोकथाम के लिए 8-10 किलोग्राम प्रति एकड़ गंधक का धूड़ा छिड़काव करें।
2. एन्थ्रैक्नौज़ व डाऊनी मिल्ड्यू की बीमारियों में रोकथाम के लिए 400 ग्राम एण्डोफिल एम-45 दवा 200 लीटर पानी प्रति एकड में छिड़काव करें।

सावधानियां

1. सिफारिश की गई कीटनाशक ही डालें, क्योंकि घीया कुछ अन्य कीटनाशकों से जल सकती है।
2. ओस के समय धूड़ा न करें।
3. खराब व सड़े फल एकत्रित करके मिट्टी में गहरा दबा दें।
4. कीटनाशक के छिड़काव से पहले फल तोड़ लें।

(पृष्ठ 24 का शेष)

भराई के बाद उपर से गुम्बदाकार बना दें और पॉलिथीन या सूखे घास से ढक कर मिट्टी अच्छी तरह दबा दें और उपर से लिपाई कर दें ताकि इस में बाहर से पानी तथा वायु आदि न जा सके।

गड्ढों का खोलना

गड्ढे भरने के तीन महीने बाद गड्ढों को खोलना चाहिए। खोलते समय ध्यान रखें कि साईलेज एक तरफ से परतों में निकाला जाए और गड्ढे का कुछ हिस्सा ही खोला जाए तथा बाद में उसे ढक दें। गडढा खोलने के बाद साईलेज को जितना जल्दी हो सके पशुओं को खिलाकर समाप्त करना चाहिए। गड्ढे के उपरी भागों और दीवारों के पास में कुछ फफूंदी लग जाती है। यह ध्यान में रखें कि ऐसा साईलेज पशुओं को नहीं खिलाना चाहिए।

पशुओं को साईलेज खिलाना

सभी प्रकार के पशुओं को साईलेज खिलाया जा सकता है। एक भाग सूखा चारा, एक भाग साईलेज मिलाकर खिलाना चाहिए। यदि हरे चारे की कमी हो तो साईलेज की मात्रा ज़्यादा की जा सकती है। साईलेज बनाने के 30-35 दिन बाद साईलेज खिलाया जा सकता है। एक सामान्य पशु को 20-25 कि.ग्रा. साईलेज प्रतिदिन खिलाया जा सकता है। दुधारू पशुओं को साईलेज दूध निकालने के बाद खिलायें ताकि दूध में साईलेज की गन्ध न आ सके। यह देखा गया है कि बढिया साईलेज में 85-90 प्रतिशत हरे चारे के बराबर पोषक तत्व होते हैं। इसलिए चारे की कमी के समय साईलेज खिलाकर पशुओं का दूध उत्पादन बढाया जा सकता है।

Water Management for Agricultural Development and Food Security

✍ Sube Singh, Vijay[1] and Rahul Kumar[2]
Directorate of Extension Education
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Water is key to food security. Crops and livestock need water to grow. Agriculture requires large quantity of water for irrigation and other production processes. While feeding the world and producing a diverse range of non-food crops such as cotton, rubber and industrial oils in an increasingly productive way, agriculture also confirmed its position as the biggest user of water on the globe. Irrigation now claims close to 70% of all freshwater appropriated for human use.

In 1948, the Universal Declaration of Human Rights affirmed the right of everyone to adequate food. However, access to adequate food in the rural areas of many developing countries depends heavily on access to natural resources, including water, that are necessary to produce food. The UN General Assembly declared access to clean drinking water and sanitation as a human right on July 28, 2010. But the right to water in the context of the right to food is a complex question. While drinking and cooking water would be protected. Water for food production would probably not be covered under the minimum needs in arid areas.

Food Security

The World Food Summit of 1996 defined food security as existing when all people, at all times, have physical, social and economic access to sufficient, safe and nutritious food to meet dietary needs for a productive and healthy life.

Important Facts :

The world population is predicted to grow from 7 billion in 2018 to 8.3 billion in 2030 and to 9.1 billion in 2050. By 2030, food demand is predicted to increase by 50% (70% by 2050). The main challenge facing the agricultural sector is not so much growing 70% more food in 40 years, but making 70% more food available in the plate.

Roughly 30% of the food produced worldwide (about 1.3 billion tons) is lost or wasted every year, which means that the water used to produce it is also wasted. Agricultural products move along extensive value chains and pass through farmers, transporters, store keepers, food processors, shopkeepers and consumers as it travels from field to fork.

Producing one kilo of rice, for example, requires about 3,500 litres of water, one kilo of beef some 15,000 litres, and a cup of coffee about 140 litres. This dietary shift is the greatest impact on water consumption over the past 30 years.

In 2008, the surge of food prices has driven 110 million people into poverty and added 44 million more to the undernourished. Nine hundred and twenty-five million people go hungry because they cannot afford to pay for it. In developing countries, rising food prices form a major threat to food security, particularly because people spend 50-80% of their income on food.

In developing countries, 43 percent of the farmers are women. Female farmers are considered as efficient as men; however, they do not perform as well because they do not have access to the same inputs, services and productive resources – including water.

The way that water is managed in agriculture has caused wide-scale changes in eco-systems and undermined the provision of a wide range of eco-system services. The external cost of the damage to people and eco-systems, and clean-up processes, from the agricultural sector is significant. In the United States of America, for instance, the estimated cost is US$9–20 billion per year.

Agriculture contributes to climate change through its share of greenhouse gases emissions, which in turn affects the planet's water cycle, adding another layer of uncertainties and risks to food production. It is predicted that South Asia and Southern Africa will be the most vulnerable regions to climate change-related food shortages by 2030.

What can be done

In order to achieve a global food and nutritional security, commitments and investments are needed

A. To produce more nutritious food with less water :

1. Innovative technologies are required to ensure a greener and more sustainable food production
2. They are needed to improve crop yields
3. implement efficient irrigation strategies
4. reuse of drainage water and use of water resources of marginal quality
5. produce smarter ways to use fertilizer and water
6. improve crop protection
7. reduce post-harvest losses
8. Create more sustainable livestock and marine production.

B. To focus on human capacities and institutional framework : Agricultural development in the least developing countries lies mainly in the hands of small holders, a large majority of whom are women. Therefore, new institutional arrangements are needed that centralize the responsibility for water regulation, yet decentralize water management responsibility and increase user ownership and participation.

C. To improve the value chain : From production, post-harvest handling, processing, retailing, consumption to distribution and trade, efficient water and food recycling

[1]SRF, Subhash Chandra Foundation Project (IDV), KVK, Sadalpur
[2]Student, AMITY University, Noida

strategies can be addressed. It can help secure environmental water requirements when reuse of treated water is not culturally acceptable for other uses.

The Challenge

To feed a growing world population, we have no option but to intensify crop production. But farmers face unprecedented constraints. In order to grow, agriculture must learn to save.

The Green Revolution led to a quantum leap in food production and bolstered world food security. In many countries, however, intensive crop production has depleted agriculture's natural resource base, jeopardizing future productivity. In order to meet projected demand over the next 40 years, farmers in the developing world must double food production, a challenge made even more daunting by the combined effects of climate change and growing competition for land, water and energy. Sustainable crop production intensification aims to produce more from the same area of land while conserving resources, reducing negative impacts on the environment and enhancing natural capital and the flow of eco-system services. It can be achieved by :

1. Farming systems : Sustainable crop production intensification will be built on farming systems that offer a range of productivity, socio-economic and environmental benefits to producers and to society at large. Farmers can grow more and save natural resources, time and money with conservation agriculture, which minimizes tillage, protects the soil surface and sows crops in rotations that enrich the soil. It helps reduce water needs by 30 percent and energy costs by up to 60 percent. Trials in southern Africa saw a six-fold increase in maize yields. Conservation agriculture practices are a key component of sustainable intensification, which also require using good seed of high-yielding adapted varieties, integrated pest management plant nutrition based on healthy soils, efficient water management, and the integration of crops, pastures, trees and livestock. Such systems are knowledge-intensive. Policies for sustainable crop production intensification should build capacity through extension approaches, such as farmer field schools and facilitate local production of specialized farm tools.

2. Water management : Sustainable intensification requires smarter, precision technologies for irrigation and farming practices that use eco-system approaches to conserve water. Cities and industries are competing intensely with agriculture for the use of water. Despite its high productivity, irrigation is under growing pressure to reduce its environmental impact, including soil salinization and nitrate contamination of aquifers. Knowledge-based precision irrigation that provides reliable and flexible water application, along with deficit irrigation and waste water-reuse, will be a major platform for sustainable intensification. Policies will need to eliminate perverse subsidies that encourage farmers to waste water. In rainfed areas, climate change threatens millions of small farms. Increasing rainfed productivity will depend on the use of improved, drought tolerant varieties and management practices that save water.

3. Soil health : Agriculture must, literally, return to its roots by re-discovering the importance of healthy soil, drawing on natural sources of plant nutrition, and using mineral fertilizer wisely. Soils rich in biota and organic matter are the foundation of increased crop productivity. The best yields are achieved when nutrients come from a mix of mineral fertilizers and natural sources, such as manure and nitrogen-fixing crops and trees. Judicious use of mineral fertilizers saves money and ensures that nutrients reach the plant and do not pollute air, soil and waterways. Policies to promote soil health should encourage conservation agriculture and mixed crop-livestock and agro-forestry systems that enhance soil fertility. They should remove incentives that encourage mechanical tillage and the wasteful use of fertilizers and transfer to farmer's precision approaches, such as urea deep placement and site specific nutrient management.

4. Plant protection : Pesticides kill pests, but also pests' natural enemies and their overuse can harm farmers, consumers and the environment. The first line of defense is a healthy agro-eco-system. In well managed farming systems, crop losses to insects can often be kept to an acceptable minimum by deploying resistant varieties, conserving predators and managing crop nutrient levels to reduce insect reproduction. Recommended measures against diseases include use of clean planting material, crop rotations to suppress pathogens and eliminating infected host plants. Effective weed management entails timely manual weeding, minimized tillage and the use of surface residues. When necessary, lower risk synthetic pesticides should be used for targeted control, in the right quantity and at the right time. Integrated pest management can be promoted through farmer field schools, local production of biocontrol agents, strict pesticide regulations and removal of pesticide subsidies.

5. Policies and institutions : To encourage small holders to adopt sustainable crop production intensification, fundamental changes are needed in agricultural development policies and institutions. First, farming needs to be profitable small holders must be able to afford inputs and be sure of earning a reasonable price for their crops. Some countries protect income by fixing minimum prices for commodities; others are exploring “smart subsidies” on inputs, targeted to low-income producers. Policymakers also need to devise incentives for small-scale farmers to use natural resources wisely – for example, through payments for environmental services – and reduce the transaction costs of access to credit, which is urgently needed for investment. In many countries, regulations are needed to protect farmers from unscrupulous dealers selling bogus seed and other inputs. Major investment will be needed to rebuild research and technology transfer capacity in developing countries in order to provide farmers with appropriate technologies and to enhance their skills through farmer field schools.

Dust Storm : Causes and Preventive Measure

✍ Yogesh Kumar, Raj Singh and Anil Kumar
Department of Agricultural Meteorology
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Over the past few years, rise in the global temperature has set new records and that is leading to increase in the number of extreme weather events. India may also witness an increase in the severity and frequency of the dust storms and thunderstorms. Climate gets warmer due to temperature gradient is going to become very steep. This steep increase in temperature gradient will lead to two things – heat waves and dust storms. These events happen between March to May period mainly in pre-monsoon period, temperatures are very high around 44-45 degree Celsius or more that leads to such activities.

Climate change is leading to a rise in global temperature. In January, a report by the National Aeronautics and Space Administration (NASA) of the US Government, said that the global surface temperature of the earth in 2017 was the second warmest in the recorded history since 1880. Due to climate change and global warming, these types of weather activities (dust storms) are increasing. Heat waves incidents are also increasing and temperature records are frequently breaking; it produced more violent dust storm and thunderstorm over North-West India in the recent years.

The Indian Meteorological Department officials admit that the severity of the dust storm was high and it needs to be studied further to understand the associated trends. Experts also believe that the severity and frequency of dust storms are expected to rise in years ahead due to rising global temperature. "With the rise in global temperature, the soil is going to become dry. So, the amount of soil that wind can carry is also increasing. With both the intensity of the wind and dryness of the soil increasing, the intensity of dust storm is going to further increase in the future. It may be due to that climate change is intensifying all extreme weather events."

What is a dust storm?

Dust storm is an ensemble of particle of dust or sand energetically lifted to great height by a strong and turbulent wind. A dust storm is a phenomenon common in hot and dry climates. Strong winds and loose sand can cause dust storms to form, where visibility is greatly reduced.

It is mainly occurred in Arid or desert region in North West India.

Dust storm in Eastern part is called as "*Kalbaisakhi*" and in North-Western part is called as *Aandhi*.

The wind speed can reach up to 100 km/hr and in some cases the speed may even exceeds 100 km/hr.

Where is it coming from?

Mainly from Rajasthan, with massive whirlwinds from Afghanistan and Pakistan entering India (those countries have been sweltering in record-breaking heat recently, giving rise to exceptionally strong North-Easterly winds, even forming a river of brown dust over the Arabian Sea). Strong-anti cyclonic winds, blowing from Rajasthan, are the reason behind the worsening air quality in Delhi, Punjab, Haryana, Rajasthan, Uttarakhand and Western Uttar Pradesh found them in the midst of a massive dust storm accompanied by rain and thunder. These storms were powerful enough to kill people, and destroy homes and infrastructure.

The dust storm has also increased the temperature in the area. The dust has layered the atmosphere; it is in turn, restricting the escape of the long wave radiation due to which it is trapped within the atmosphere, resulting in rising the night temperatures of parts of North-West India.

Cause of dust storm

The main cause of this storm is the strong anti-cyclonic winds coming from regions in Rajasthan which is increasing the number of coarse dust particles in the air. The direction of the wind changed to West and North-West and then changed again to West and South-West cause dust and hot air to travel from Rajasthan to Delhi causing these dust storms.

Rajasthan being majorly a desert, consists of areas that experience extremely high temperatures. Moisture levels were also high in the atmosphere and the heat causes the vapour to rise above and form into clouds. The wind coming in from Eastern parts of India carried the moisture which further helped in formation of clouds. The water vapour which is present in the heavier air, which is at the bottom, gets heated up, and as it gets less dense, it displaces the air above it and rises above. Here, due to the drop in temperature, the vapour condenses and forms clouds.

The difference in air pressure across North India caused the movement of winds, which flew in at high speeds, picking up sand and sweeping across Rajasthan.

Preventive measures

1. If you're from North India, you're likely to own a mask — back from the smoggy winter and summer days. Masks such as these, which protects you from particulate matter, should be kept handy. In case you don't have a mask and find yourself out in the open during a dust storm, protect what's most important first: your eyes, nose, ears and mouth. Use whatever cloth you have to cover your face and avoid inhaling the dust. Dust can also damage your eyes and it's important to protect them however you can. This is why you should carry a pair of glasses or goggles.
2. Find shelter or at least position yourself on the leeward side (outflow of air). That way, you might be able to avoid coming into direct contact with a lot of dust. Hide behind sturdy walls, high intensity winds have the potential to carry heavy objects.
3. If you are driving when the storm starts, stop at a safe place and wait for the storm to pass. Dust storms severely affect visibility which increases the risk of road accidents. Also, keep windows closed. Air conditioning instead of fresh air will keep you safe for a change. *(contd. on page 32)*

Agro-Techniques for Direct Seeding of Basmati Rice

Satyajeet, Samunder Singh[1] and S.P. Yadav[2]
Krishi Vigyan Kendra, Jhajjar
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Mechanization appears to be an important strategy to maintain productivity of rice-wheat cropping system, besides reducing the chances of human drudgeries and cost of cultivation. Mechanization not only saves time, but also helps in improving the use efficiency of other agro-inputs. In order to fulfil the requirements for agriculture, domestic and industrial purpose, the dependency on groundwater in Eastern Haryana is rapidly increasing. Over the years there has been used overexploitation of ground water, which has been used to meet the increasing demand for water. In large part, this is attributable to the increased popularity of rice cultivation. Rice consumes more than 50 percent of water used for irrigation. Because of increasing water scarcity, there is need to develop alternative systems of rice cultivation that requires less water. Direct seed rice (D.S.R.) is an innovation to save water, reduce cost, save time and sustains production in which the rice is grown in un-puddle and non-saturated soil without ponded water. It will help in improving soil health and saving of water resources along with labour and energy. The methodology of direct seeding of rice is as under.

Type of Soil

Soils of whole rice-wheat growing areas of the state suitable for direct seeding of basmati rice; however, medium textured soils are more suitable for direct seeding of rice. The field should be laser levelled for better germination and saving of water. It must be treated as pre-requisite.

Sowing Machine

Zero-Till Seed-cum-Fertilizer Drill fitted with inclined plates and inverted T-type furrow openers should be used for direct seeding of rice.

Sowing Methods

Direct seeding can be done by adopting any of the following two methods :

(i) Drill sowing in *vattar* field (un-puddle) with delayed first irrigation : Prepare the field with two-three ploughings followed by planking. Just after that, sowing should be done with drill at a depth of 3-5 cm and planking should be given just after sowing. Firm contact of seed with soil is important. The field preparation and sowing operation should be preferably in the evening hours to avoid moisture losses.

(ii) Drill sowing in dry field (un-puddle) immediately followed by irrigation : Prepare the field with two-three ploughings followed by planking . Sowing should be done with drill at a depth of 2-3 cm. Planking is not required after sowing. Apply the first irrigation just after sowing.

Varieties recommended for DSR

Scented/*basmati* group of rice varieties (Taraori Basmati, Pusa Basmati 1, Pusa Basmati 1121 and CSR 30) are suitable for sowing under direct seeding.

Time of sowing

The optimum time for sowing of rice under direct seeding is 2nd to 3rd week of June. The crop should germinate before onset of monsoon.

Seed rate and treatment

The optimum seed rate is 8 kg per acre. Seed should be soaked in a solution of recommended fungicide (10g bavistin/emisan + 1 g streptocycline per 10 kg seed) for 24 hours. After soaking, seed should be dried in shade for 1-2 hours to make it friable for proper seeding with seed-cum-fertilizer drills.

Weed management

Weed flora of the direct seeded fields is quite different than the conventional puddle transplant rice due to difference in moisture status in the soil. The grasses (*Leptochloa, Eragrostis, Dactyloctenium*, etc.) other than *Echinochloa crusgalli* and *E. colonum*, along with sedges like *Cyperus rotundus* may dominate the field of direct seeded rice. For broad spectrum weed control, apply the following herbicides with knapsack sprayer fitted with flat fan nozzle :

(1) In *vattar* DSR, apply pendimethalin (Stomp 30% EC) @ 1.3 liter/acre just after sowing in a spray volume of 200 liter water. Spray should be done on moist soil. At 15-25 days after sowing (DAS), apply bispyribac sodium (Nominee Gold 10% SC) @ 100 ml/acre in a spray volume of 120 liter water.

(2) In direct seeded rice immediately followed by irrigation, apply oxadiargyl (Topstar 80% WP) @ 50 g/acre in moist soil after irrigation (0-3 DAS) in a spray volume of 120 liter water . At 15-25 DAS, apply bispyribac sodium (Nominee Gold 10% SC) @ 100 ml/acre in a spray volume of 120 liter water.

More than 90 per cent weed control could be achieved by using aforesaid herbicidal combinations. However, one manual weeding (easy in line sown DSR) or spray of 2, 4-D E at 500 g per acre (against broadleaf weeds) or Sunrice (Ethoxysulfuron 15% WDG) 50 g per Almix (premix of metsulfuron+chlorimuron) 8 g per acre (against broadleaf weeds and sedges) at 25-30 DAS may be required at few locations to manage additional weed infestation, if any (similar to as done in puddle transplanted rice).

(3) Stale-bed technique should be adopted for reducing the load of weeds (including weedy rice, if any) in direct seeded rice. This will also help in tackling the problem of infestation of-type rice plants germinated because of presence of previous season rice seeds in the field. *(contd. on page 32)*

[1]Deptt. of Agronomy, CCSHAU, Hisar
[2]Regional Research Station, Bawal

Practical Methods of Heat Detection in Dairy Cows and Buffaloes

✍ Swati Ruhil[1] and Vikas Khichar
Haryana Pashu Vigyan Kendra, Uchani, Karnal
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Proper heat detection and timed AI are the essentials for obtaining one calf per year from cows and one calf per fourteen months from buffaloes. Poor heat detection decreases the fertility status of the herd. For improving the reproductive efficiency of herd heat detection aids along with visual observation should be used to reduce the incidence of unnoticed estrus because each missed heat costs 21 days loss in production.

Methods of heat detection

Estrus signs : Signs like swollen vulva, cervico-mucus vaginal discharge sometimes hanging from vulva to feet, homosexual behavior occasionally observed in buffaloes, inappetance, bellowing, increase frequency of urination are commonly seen in both cows and buffaloes during heat period. Apart from these buffaloes are the shy breeders they express estrus signs less intensively than cows.

Bull parading : Parading of teaser or vasectomized bulls in the shed at least twice during cooler part of the day is the common practice of heat detection especially in buffaloes. Bulls may be fitted with marking devices for efficient heat detection.

Recto-genital palpation : At estrus uterine horns become coiled, tonic while during diestrus they become flaccid.

Tail painting : Tail head is painted with dyes of different color. When bull mounts on the animal in estrus dye fades away.

Use of androgenized cow : Androgenized cow will behave like a male. It minimizes the risk of transmitting venereal diseases in herd. A chin ball device may be fitted on the cow.

Chin ball device : Bull is fitted with chin ball, when the bull mounts paint is smeared on the back of the estrus animal which indicates mounting.

Bio stimulation : Commonly used for detection of silent heat especially in buffaloes. Presence of male will intensify the estrus signs.

Pressure sensitive devices like KAMAR : They are fitted on the sacrum of cow. When bull mounts dye is released. Not good for buffaloes as the habit of wallowing interferes with heat detection.

Heat watch system : It is a radio telemetric system. When cow is mounted signal is transmitted to a receiver and recorded by the computer. A cow is declared to be in heat if shows three mounting within four hours.

Heat patch with visible color change : A heat patch is applied on the tail head, after mounting the color of dye changes.

Use of CCTV camera

Pedometer : They are attached to either neck or leg. Animal in estrus shows increased activity, a signal is sent by pedometer which is received and passed on the computer. They are not popular because of high cost and expense of replacing the lost one.

Estrus synchronization : It allows easy heat detection and timed A.I. All synchronized animals will come in heat on same day. Different protocols can be used like Ov synch, pre synch, etc. Highly efficient for both cycling and non-cycling animals.

[1]Government Veterinary Hospital, Dhab Dhani (Bhiwani)

(from page 30...)

4. As per the advisory, those who are stopping by the road or parking their vehicles should keep away from overhead electrical wires, tinned roofs, trees, etc. and take shelter under only concrete structures. Drivers are advised to use dippers or parking lights while driving.
5. If you are asthmatic or have dust allergies, you should never step outside without your inhalers and medicines.
6. Last but not the least, always carry water. It is essential to be hydrated when caught in the eye of a storm.

(from page 31...)

Irrigation scheduling

Under *vattar* DSR, first irrigation may be applied at 7-15 DAS depending upon weather conditions. The follow up irrigation should be applied at weekly intervals. Under direct seeded rice immediately followed by irrigation, subsequent irrigations should be applied at 4-5 DAS to ensure uniform germination and avoid seedling mortality. The follow up irrigation schedule will be similar as in vattar DSR. Care should be taken that there should be no water stress at two crucial stages i.e. panicle initiation and grain filling.

Nutrient management

By applying 30 kg N, 12 kg P_2O_5 and 10 kg zinc sulphate per acre will meet out the nutritional requirement of basmati DSR. Apply 25 kg DAP and 10 kg zinc sulphate per acre as basal application at the time of sowing. Apply 28 kg urea/acre each at 15 and 50 days after sowing. Deficiency of certain micronutrients mainly iron may appear in DSR. For that, spray of 0.5% solution of ferrous sulphate should be done, which can be repeated at weekly interval as per need.

Clipping/Chopping

There is no need of chopping in direct seeded basmati rice which is usually done at 55 DAS in puddle transplanted basmati rice.

Insect-pest and disease management

Insect-pest and disease management will be similar to the conventional puddle transplant rice. However, possibilities of termites and brown spot disease incidence are more, hence need special attention for their management options similar to as described for puddle transplanted rice. The possibilities of foot-rot and bakanae disease are less in direct seeded rice.

हरियाणा खेती एवं अन्य प्रकाशनों में विज्ञापन हेतु विज्ञापन दरें

पृष्ठ	साधारण (रु०)	छः या छः माह से अधिक समय के लिए विज्ञापन दर (रु०)	रंगीन विज्ञापन दर (रु०)
चौथा कवर पृष्ठ	2500/–	2400/–	6000/–
दूसरा कवर पृष्ठ	2400/–	2300/–	5800/–
तीसरा कवर पृष्ठ	2300/–	2200/–	5500/–
साधारण पृष्ठ	2000/–	1900/–	4700/–
आधा पृष्ठ	1200/–	1100/–	–

लिफाफे का मुख पृष्ठ	–	आकार 9 सैं.मी. × 11 सैं.मी.	4000/–
पिछला पृष्ठ	–	आकार 18 सैं.मी. × 22 सैं.मी.	4000/–

जी.एस.टी. - विश्वविद्यालय के नियमों के अनुसार।

विज्ञापन देने हेतु निम्न पते पर संपर्क करें :

प्रकाशन अनुभाग

गांधी भवन

चौ. च. सिं. हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय

हिसार (हरियाणा)

फोन : 01662-255234

ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती

वर्ष 52 अंक 08

स्वर्ण-जयंती वर्ष
2 फरवरी 2019 - 1 फरवरी 2020

कृषि मेला (रबी)

दिनांक : 11-12 सितम्बर, 2019

स्थान : गेट नं. 3, विश्वविद्यालय फार्म, बालसमंद रोड, हिसार

वार्षिक चंदा ₹ 150 अगस्त 2019 आजीवन सदस्यता ₹ 1500

प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित

ã कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 52 | अगस्त 2019 | अंक 08

इस अंक में

लेख का नाम		लेखक का नाम	पृष्ठ
धान फसल अवशेष प्रबन्धन : तकनीकी, औद्योगिक व नीतिगत पहलू	-	धर्मबीर यादव, जगदेव सिंह एवं अशोक यादव	1
सब्जी फसलों में कीट नियन्त्रण	-	बलबीर सिंह, एस. पी. यादव एवं अमित कुमार	2
ज़िंक : बढ़ाए धान की उपज	-	देवेन्द्र सिंह जाखड़, सुनील बैनीवाल एवं संदीप बेडवाल	4
बाजरा फसल की रोगों व कीटों से रक्षा	-	नरेंद्र सिंह यादव, बलबीर सिंह एवं जयलाल यादव	4
सब्जी उत्पादन पर तापमान का प्रभाव	-	मुकेश कुमार, कुलदीप कुमार एवं इंदु अरोड़ा	5
मूंगफली फसल : हानिकारक कीट एवं बचाव	-	रूमी रावल एवं योगेश कुमार	7
दलहनी व तिलहनी फसलों में खरपतवार नियंत्रण	-	सतबीर पुनिया	7
मधुमक्खी वंशों में मोमी पतंगे के आक्रमण की पहचान व रोकथाम	-	सुनीता यादव, योगेश कुमार एवं मनदीप राठी	9
खेती में बढती लागत : कैसे करें कम	-	गुरनाम सिंह, राजेश लाठर एवं वंदना	10
नया बाग लगाने के लिए : स्थान का चुनाव	-	दिनेश कुमार, राजपाल दलाल एवं सूबे सिंह	11
अमरूद की तुड़ाई, भंडारण एवं प्रसंस्करण	-	अंकित गावरी, जीत राम शर्मा एवं प्रवीण	12
कृषि क्षेत्र में बायोसेंसर की भूमिका	-	रवीना कारगवाल, वी. के. सिंह एवं यादविका	18
ट्रैक्टर की बैटरी का रख-रखाव कैसे करें	-	सुशील कुमार, विनोद कुमार एवं नरेंद्र	19
अनीमिया : लक्षण, कारण और उपचार	-	सुमित श्योराण, सुधा चिकारा एवं शीला सागंवान	20
मृदा संघनन- समस्या व समाधान	-	विनोद कुमार एवं विजया रानी	21
फसल प्रबंधन के लिए रिमोट सेंसिंग	-	हरदीप सिंह श्योराण एवं अनिल कुमार रोहिला	22
पराबैंगनी प्रकाश द्वारा स्ट्रॉबेरी की शेल्फ लाइफ को बढ़ाना	-	सुशांत भारद्वाज, वी. के. सिंह एवं सचिन	23
सुबह का नाश्ता : मानव स्वास्थ्य में महत्व	-	प्रियंका रानी एवं वर्षा रानी	24
वृद्ध महिलाएं और समाजिक सहायता प्रणाली	-	आरती कुमारी एवं शीला सांगवान	24
संपूर्ण आहार ब्लॉक (चारा ईंट)	-	वीनस	26
मुर्गियों से अधिक उत्पादन कैसे लें	-	ओजस्विता एवं पूजा यादव	27
Maintaining Soil Fertility : Be Given Top Priority	-	N. K. Goyal, Sandeep Rawal and B. R. Kamboj	28
Major Physiological Disorder in Cotton	-	N. K. Yadav, Anil Mehta and Preeti Yadav	30
Solar powered NFT/Container hydroponic system for kitchen gardening	-	Arun Kumar Attkan, Sunil Kumar and Nitin Kumar	31
Management of Rice Straw through Microorganisms	-	Dhinu Yadav,Leela Wati and Sneh Goyal	32

स्थाई स्तम्भ : सितम्बर मास के कृषि कार्य **13**

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

सह-निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह-निदेशक (हिन्दी)

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

सम्पादक (अंग्रेजी)
सुनीता सांगवान
प्रकाशन अनुभाग

डीटीपी एवं आवरण सज्जा
राजेश कुमार
प्रकाशन अनुभाग

धान फसल अवशेष प्रबन्धन : तकनीकी, औद्योगिक व नीतिगत पहलू

- धर्मबीर यादव, जगदेव सिंह[1] एवं अशोक यादव[2]
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, करनाल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

धान हरियाणा की खरीफ में उगाई जाने वाली एक मुख्य फसल है तथा लगभग 13.5 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल में उगाई जाती है। प्रदेश में इसका लगभग 60 लाख टन भूसा प्रति वर्ष पैदा होता है। इसकी अधिकतर कटाई कम्बाइनों से की जाती है तथा इनका उपयोग लगातार बढ़ रहा है क्योंकि कटाई के लिए मज़दूर उपलब्ध नहीं हो पाते तथा अगली फसल गेहूं की बिजाई समय पर करने का दवाब किसान पर रहता है। ऐसी परिस्थितियों में किसान के लिए फसल अवशेष एक समस्या बने हुए हैं तथा वह इन्हें जलाकर नष्ट करने का प्रयास करते हैं क्योंकि उनकी मानसिकता बनी हुई है कि ऐसा करने से खेत जल्दी साफ हो जाता है हानिकारक कीट व खरपतवार नष्ट हो जाते हैं तथा गेहूं की बिजाई समय पर हो जाती है। इसके विपरीत वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर यह पाया गया है कि धान की एक टन पराली जलाने से लगभग तीन किलो धूल-कण, 60 किलो कार्बन मोनोऑक्साइड, 1460 किलो कार्बन डाईऑक्साइड, 199 किलो राख व 2 किलो सल्फर डाईऑक्साईड निकलते हैं। ये सभी पर्यावरण को खराब करते हैं तथा स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालते हैं। ऐसी परस्थिति में कम लागत व पर्यावरण हितैषी फसल अवशेष प्रबन्धन तकनीकें विकसित करके उन्हें किसानों में लोकप्रिय बनाने की अति आवश्यकता है। धान के फसल अवशेषों को जैविक ईंधन, कम्पोस्ट, ब्रिकेट्स, बायोचार, पशु चारे आदि के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। यहां मुख्य उदेश्य यह है कि इन्हें जलाया न जाये ताकि वातावरण को सुरक्षित रखा जा सके व भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाया जाए जोकि आज की खेती के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। इस विषय में नीति-निर्धारकों, वैज्ञानिकों, उद्योगपतियों, पर्यावरणविदों व किसानों को मिलजुल कर काम करना होगा ताकि इन फसल अवशेषों का उपयोगी वस्तुओं के लिए इस्तेमाल करके न केवल हम पर्यावरण को बचा सकें अपितु हम किसानों की सामाजिक-आर्थिक दशा सुधारने में भी सफल होंगे।

फसल अवशेष के कृषि क्षेत्र में समुचित प्रबन्धन के लिए तकनीकी विकल्प

1. **मशीनों का इस्तेमाल :** धान के अवशेषों को ज़मीन पर रखने, ज़मीन में मिलाने व खेत से निकालने के लिए विभिन्न प्रकार की मशीनें विकसित की गई हैं। खेत के स्तर पर धान के अवशेषों के प्रबन्धन की विभिन्न तकनीकें इस प्रकार हैं ।

क. *खेत में ही अवशेषों का इस्तेमाल:* यह दो तरीके से किया जा सकता है जैसे कि अवशेष मिलाकर व भूमि में सतह पर रख कर। इसके लिए कम्बाईन हारवेस्टर से काटने के बाद अवशेषों को एकसार बिखेरने की आवश्यकता होती है। कम्बाईन हारवेस्टर जिसमें फसल प्रबन्ध हेतु मशीन (एस. एम. एस.) लगी हुई है उसकी सहायता से फसल अवशेषों कोछोटे-छोटे टुकडों में काट कर एकसार बिछा दिया जाता है। स्ट्रा-चॉपर की सहायता से भी खडे फानों/अवशेषों को काट कर बिछाया जा सकता है। रिवर्सिबल मिट्टी पलटने वाले हल, पहिएदार हेरो, रोटावेटर व स्ट्रा-चॉपर की सहायता से अवशेषों को भूमि में मिलाया जा सकता है।

दूसरी विधि में फसल अवशेषों को ज़मीन में मिलाने के बजाए ज़मीन पर रखा जाता है। इसमें अगली फसल (गेहूं) की बिजाई हैप्पी सीडर व ज़ीरो-टिलेज मशीन द्वारा सीधे रूप से खड़े फसल अवशेषों में या चॉपर/एस. एम. एस. मशीन के द्वारा अवशेषों को एक सार बिखेरने के बाद की जाती है। धान के अवशेषों को ज़मीन की सतह पर रखने से अनेक लाभ हैं जैसे: भूमि में नमी का संरक्षण, तापमान ठीक रहना, खरपतवारों का नियन्त्रण व भूमि के स्वास्थ्य में सुधार होना। इन सबसे उपज में बढ़ोत्तरी होती है व जुताई न करने की तकनीक परम्परागत जुताई विधि की अपेक्षा गेहूं की बिजाई समय पर करने में सहायता करती है जिससे अधिक आमदनी होती है। फसल अवशेषों को ज़मीन पर रखने के लिए कम्बाईन हारवेस्टर भूसा प्रबन्धन मशीन के साथ, ज़ीरो- टिलेज ड्रिल व हैप्पी सीडर मशीन उपयुक्त पाई गई हैं।

ख. *धान के भूसे को खेत से इकट्ठा करके निकालना:* धान की पराली को स्टबल सेवर (ठूंठों को काटने वाली मशीन), हे-रैक (भूसा इकट्ठा करने वाली मशीन) व स्ट्राबेलर (ठूंठों से गांठें बनाने वाली मशीन) की सहायता से खेत से इकट्ठा करके निकाला जाता है। कम्बाईन की सहायता से काटे गए धान के खेत से फसल अवशेषों को स्ट्राबेलर की सहायता से बेल (गांठ) बनाकर निकाला जा सकता है। बेल बनाने से पहले स्टबल-सेवर से ज़मीन की सतह के पास से फानों को काटा जाता है तब रैक की सहायता से कटे हूए भूसे को इकट्ठा किया जाता है। इन गांठों का कम्पोस्ट बनाने, बायोगैस बनाने व भूसे की ब्रिकेट्स, पैलेट्स (गोलियां) बनाने में उपयोग किया जा सकता है जोकि ईन्धन के रूप में इस्तेमाल की जा सकती हैं ।

2. **भूसे से जैविक कम्पोस्ट बनाना :** इकट्ठे किए गए भूसे से कम्पोस्ट बनाने की विधि प्रयोग करके एक अच्छी किस्म का जैविक कम्पोस्ट तैयार किया जा सकता है जोकि भूमि की उपजाऊ क्षमता को बढ़ाने में बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। भूसा बायोचार के रूप में भी परिवर्तित किया जा सकता है जोकि जैविक खाद के रूप में अच्छा विकल्प हो सकता है क्योंकि इसमें पोषक तत्वों की प्रचुर मात्रा पाई जाती है।

3. **खुम्बी उत्पादन के लिए उपयोग :** वर्तमान में सफेद बटन खुम्बी उत्पादन के लिए मुख्य रूप से गेहूं के भूसे का उपयोग किया जाता है। जबकि राज्य में खुम्बी उत्पादन करने वाले ज़िलों में धान की खेती होती है। खुम्ब उत्पादकों के लिए धान का भूसा गेहूं के भूसे के स्थान पर एक अच्छा विकल्प है। खुम्ब उत्पादन के बाद बचे हुए भूसे को खाद के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है, जिससे कि भूमि की उपजाऊ शक्ति बढाने में मदद मिल सकती है।

धान के भूसे का औद्योगिक क्षेत्र में उपयोग

भूसा कई प्रकार के औद्योगिक क्षेत्रों में भी इस्तेमाल किया जा सकता है जिसका विवरण निम्न प्रकार से है:

1. *जैविक ऊर्जा उत्पादन :* धान के अवशेषों को जैविक ऊर्जा में बदलना सम्भव है। इसमें मुख्य समस्या इनके उचित भन्डारण व माल को एक

[1]अनुसंधान निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार
[2]सस्य विज्ञान विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की है। इस समस्या के निवारण हेतु भूसे की गांठें या गोलियां बनाई जा सकती हैं जिसके लिए उचित मशीनें उपलब्ध हैं। कृषि क्षेत्र से पैदा होने वाले फसल अवशेष व कचरे को जैविक विघटन, कम्पोस्टिंग, डाईजेशन, हाइड्रोलाईसिस व पाइरोलाईसिस प्रकियाओं के द्वारा टिकाऊ, प्रभावकारी, पर्यावरण अनुकूल व आर्थिकरूप से उपयोगी तकनीकों के जरिए जैविक इथनोल व जैविक गैस पैदा करने में उपयोग करके अवशेष व कचरे की समस्या के समाधान के साथ-साथ उर्जा की कमी की समस्या को भी हल किया जा सकता है। इकट्ठा किये हुए भूसे का इथनोल, बायोगैस, बिजली पैदा करने, बेल गीजर से पानी गरम करने व ईट-भटठों में इस्तेमाल किया जा सकता है।

2. *ब्रिकेट्स व पैलेट्स बनाने में उपयोग :* ब्रिकेटिंग एक ऐसी तकनीक है जिसमें भूसे की नमी को कम करके उसे अधिक सघन बना करके समान आकृति के ब्रिकेट्स तैयार किये जाते हैं जिससे कि उन्हें आसानी से कम खर्च के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सके व उनका समुचित भन्डारण किया जा सके। इनको चारे की कमी वाले क्षेत्रों में चारे के रूप में या उद्योगों में गैस बनाने हेतु ईन्धन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।
3. *भूसे से गत्ता, पैकिंग व तापरोधी पदार्थों का निर्माण :* औद्योगिक इकाइयां भूसे का इस्तेमाल गत्ता बनाने, पैकिंग पदार्थ बनाने व तापरोधी पदार्थ बनाने में इस्तेमाल कर सकती हैं। ऐसा करने से रोज़गार का सृजन होने के साथ-साथ भूसे का समुचित उपयोग करने में भी सहायता मिलेगी।

भूसे के उचित उपयोग हेतु सरकार के स्तर पर नीति-निर्धारण

सरकार के स्तर पर उचित फसल अवशेष प्रबन्धन नीति निर्धारण द्वारा अवशेषों का समुचित प्रबन्धन व उपयोग किया जा सकता है। निम्नलिखित विषयों पर ध्यान केन्द्रित किए जाने की आवश्यकता है :

1. धान के भूसे व अन्य कृषि अवशेषों के सफल प्रबंधन व उपयोग हेतु उचित व पर्याप्त मशीनों की उपलब्धता, जैविक ऊर्जा व जैविक कम्पोस्ट इकाइयों की स्थापना, भन्डारण की उचित व्यवस्था के सम्बन्ध में सरकार के स्तर पर एक उचित नीति-निर्धारक योजना की अति आवश्कता है। इस दिशा में सरकार धान उगाने वालें क्षेत्रों में कस्टम हाइरिंग आधार पर चलने वाले केन्द्रों की अधिक से अधिक संख्या की स्थापना कर के किसानों को सम्बन्धित मशीनें विशेष अनुदान प्रदान करके उपलब्ध करवा सकती है।
2. सरकार जैविक उर्जा एवम् जैविक कम्पोस्टिंग व इनसे सम्बन्धित अन्य इकाइयों की स्थापना सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओं की भागीदारी द्वारा कर सकती है तथा इस विषय में पूंजी-प्रदातों को ज़रूरी सहायता प्रदान करके प्रोत्साहित कर सकती है।
3. धान की खेती करने वाले किसानों को भूसा जलाने से होने वाले दुष्परिणाम से अवगत कराने हेतु सतत् बल देने की अति आवश्यकता है।
4. भूसे को खेत में ही प्रबन्ध करने वाले किसानों को विशेष अनुदान प्रदान करने की अति आवश्यकता है।
5. भूसे के जलाने से होने वाले नुकसान का भूमि व पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव व भूसे को भूमि में मिलाने व सतह पर रखने के लिये अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिये पर्याप्त प्रयास करने की ज़रूरत है ताकि इनका समुचित प्रयोग किया जा सके। (शेष पृष्ठ 3 पर)

सब्जी फसलों में कीट नियन्त्रण

- **बलबीर सिंह[1], एस. पी. यादव एवं अमित कुमार**

धान अनुसंधान केन्द्र, बावल

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा राज्य में सब्जी फसलों के अंतर्गत बैंगन, टमाटर, मिर्च, प्याज़, लहसुन, गोभी एवं बेल वाली सब्जियां मुख्य रूप से बोई जाती हैं। इन फसलों में कीटों द्वारा अत्यधिक हानि होती है। इन कीटों से बचाव के लिए किसान अंधाधुंध कीटनाशकों का प्रयोग करते हैं। जिसके परिणामस्वरूप किसानों की लागत बढ़ने के साथ इन कीटनाशकों के अवशेष सब्जियों में अधिक रह जाते हैं। जो उपभोक्ता के लिए हानिकारक होते हैं साथ ही कीटनाशकों द्वारा लाभकारी मित्र कीटों की भी हानि होती है। वैसे देखा जाए तो प्रत्येक फसल में एक या दो ही मुख्य कीट होते हैं जिनकी संख्या आर्थिक कगार पर रहती है अन्यथा गौण कीट फसलों में इतनी हानि नहीं पहुंचाते हैं। अत: किसानों को कीटों की उपस्थिति मात्र से ही यह नहीं समझना चाहिए कि यह कीट हानिकारक हैं और कीटनाशक का प्रयोग शुरू नहीं करना चाहिए। किसानों को इन फसलों में लगने वाले कीटों की जानकारी होना ज़रूरी है।

बैंगन के मुख्य कीट : बैंगन में मुख्य रूप से हरा तेला, सफेद मक्खी, तना एवं फल छेदक, हाड्डा बीटिल, व अष्टपदी का प्रकोप होता है।

इस फसल का मुख्य कीट तना एवं फल छेदक कीट है। इस कीट द्वारा कभी-कभी फसल में 50-100% क्षति होती है। इस कीट की सूँडी फसल को नुकसान करती है। यह सूँडी गुलाबी रंग की होती है। फल आने से पहले कोंपलों में छेद करके अंदर पनपती है। जिससे कोंपलें मुरझाकर नीचे लटक जाती हैं और सूख जाती हैं। बाद में फलों के अंदर जाकर फलों को काना कर देती हैं। एक सूँडी 4-6 फलों को काना कर सकती है। इस कीट का अधिक प्रकोप मई से अक्तूबर तक होता है। इस कीट के प्रौढ़ मार्च-अप्रैल महीने से प्रकट होना शुरू कर देते हैं तथा 80-120 सफेद रंग के अंडे अकेले या 2-3 के झुंड में पत्ती की निचली सतह, हरे तने पर या फूल की कालिका पर देते हैं।

तना एवं फल छेदक कीट का नियन्त्रण :

1. फूल आने से पहले जैसे ही इस कीट का प्रकोप शाखाओं पर दिखाई पड़े तो 75 ग्राम स्पाइनोसेड 45 एस.सी. को प्रति एकड 80 लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करें।
2. बीज की फसल के लिए प्रोक्लेम 5 एस जी 56 ग्राम प्रति एकड़ के तीन छिड़काव करें।
3. कीट ग्रसित शाखाओं, फलों को तोड़कर ज़मीन में गहरा दबा दें।

मिर्च के मुख्य कीट : मिर्च फसल पर हरा तेला, सफेद मक्खी, दीमक और अष्टपदी का प्रकोप होता है। कभी-कभी मिर्च के फलों के अंदर फली छेदक कीट का आक्रमण भी होता है। रस चूसने वाले कीटों के कारण मिर्च में पत्तों का रंग पीला पड़ जाता है, पौधे कमज़ोर हो जाते हैं। यह कीट मरोड़िया नामक विषाणु रोग फैलाते हैं।

चुरड़ा एवं अष्टपदी की रोकथाम के लिए फसल पर 400 मिली मेलाथियान 50 ई.सी. का छिड़काव 200-250 लिटर में मिलाकर प्रति एकड 15-20 दिन के अन्तर पर करें।

प्रेम्पट 20 ई.सी. 300 एमएल व (फेंनप्रोपेथ्रिन 15%+पाइरीप्रोक्सिन

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, बावल।

5%) को प्रति एकड़ को 200 लीटर पानी में मिलाकर फूल आने से पहले छिड़काव करें।

टमाटर के मुख्य कीट : टमाटर में मुख्य रूप सफेद मक्खी, चेपा एवं फल छेदक कीट का प्रकोप होता है, इसमें सफेद मक्खी द्वारा फसल में विषाणु रोग मरोड़िया का प्रकोप होता है जिसके कारण पौधे छोटे रह जाते हैं। फल छेदक कीट की सूंडी हरे पीले भूरे रंग की होती है। इसके शरीर के ऊपरी भाग पर तीन लंबी कटवां सलेटी रंग की दोनों ओर सफेद धारियां होती हैं। ये सूंडियां कोमल पत्तियों को खाती हैं और कलियों, फूलों व फलों में सुराख कर देती हैं। ग्रसित फल बाद में सड़ जाते हैं। टमाटर के अलावा यह कीट चना, अरहर, मिर्च, कपास, सूरजमुखी में भी नुकसान करता है।

इस कीट का प्रकोप होने पर निम्नलिखित दवाओं का 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करें।

क. 1. 75 मि.ली. फेनवेलरेट 20 ई.सी. 2. 200 मि.ली. डेल्टामेथ्रिन 2-8 ई.सी. 3. 60 मि.ली. सायपरमेथ्रिन 25 ई.सी.।

ख. मध्य मार्च के आस पास पत्तों पर फल छेदक कीट के अंडे दिखाई दें तो 20000 ट्राईकोग्रामा किलोनिस परजीवी के अंडे छोड़ें व इसके चार दिन बाद पुन: 20000 परजीवी प्रति एकड़ फसल पर छोड़ें। इसके बाद 10-10 दिन के अन्तर पर 1 लिटर निंबीसिडीन, 400 ग्राम बेसिलस थुरीजेनसिस को 200 लिटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

प्याज़-लहसुन में लगने वाले कीट : इन फसलों पर मुख्य रूप से चुरदा (थ्रिप्स) का आक्रमण होता है। यह कीट पीले भूरे बेलन आकार के शिशु व प्रोढ़ पत्तों से रस चूसते हैं। ग्रसित पत्ते पर सफेद धब्बे पड जाते हैं। बाद में पत्ते मुड़ जाते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पत्ते चोटी से चांदीनुमा (सिल्वरी टॉप) होकर सूख जाते हैं। फूल उगने के समय इस कीट के प्रकोप से बीज की पैदावार पर अधिक असर पड़ता है। इस कीट का प्रकोप फरवरी से मई तक अधिक रहता है।

नियंत्रण :

क. 1. 75 मि.ली. फेनवलरेट 20 ई.सी. 2. 175 मि.ली. डेल्टामेथ्रिन 2-8 ई.सी. 3. 60 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी./150 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 10 ई.सी.।

ख. 300 मि.ली. मेलाथियान 50 ई.सी.।

ग. इस कीट की रोकथाम के लिए लहसुन का तेल 150 मि.ली. व इतनी मात्रा टी पोल की 120-160 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 3-4 छिड़काव 10 दिन के अन्तर पर करें।

गोभीवर्गीय फसलों के मुख्य कीट : इस वर्ग की फसलों में मुख्य रूप से डायमंड बैक मॉथ, तंबाकू की सूंडी, बन्द गोभी की सूंडी, कुबड़ा कीड़ा व चेपा का आक्रमण होता है। डायमंड बैक मॉथ प्रमुख कीट है इस कीट का लार्वा हरे रंग का छोटा सा होता है। जो ज़रा-सा छूने पर एकदम से उछल पड़ता है। इसकी छोटी सूंडिया पत्तियो को खुरच-खुरच कर खाती हैं तथा सिर्फ सफेद झिल्ली छोड़ देती हैं। बड़ी सूंडियां गोल सुराख बनाती हैं। इस कीट का प्रकोप अगस्त से शुरू होता है।

नियंत्रण : इस कीट के प्रकोप होने पर 400 ग्राम बेसिलस थुरीजेनसिस (बायोआप्स) घु.पा. या 60 मि.ली. डाईक्लोरवास (नुवान) 76 ई.सी. या 400 मि.ली. मैलाथियान को 200-250 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। अगला छिड़काव 7-10 दिन में दोहराएं। इस कीट का प्रकोप कम करने के लिए ट्रैप फसल के रूप में सरसों लगाएं।

तंबाकू की सूंडी व बन्द गोभी की सूंडी कीट की छोटी सूंडियां शुरूआती अवस्था में फसल में एक जगह रहकर नुकसान करती हैं। बाद की अवस्था में सारे खेत में फैल जाती हैं अत: इन कीटों की सूंडियों को इकट्ठा करके मार दें तथा अण्ड समूह को पत्तों सहित तोड़कर ज़मीन में दबा दें। इन कीटों के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

बेल वाली सब्जियों के मुख्य कीट : इन फसलों में लालड़ी, चेपा, अष्टपदी व फल मक्खी का आक्रमण होता है। लालड़ी व फल मक्खी मुख्य कीट हैं जो सभी प्रकार की बेल वाली सब्जियों में नुकसान करती हैं।

लालड़ी : इस कीट के प्रौढ़ पीले रंग के चमकीले होते हैं तथा सूंडियां क्रीम रंग की होती हैं। प्रौढ़ पत्तों पर गोल सुराख करती हैं तथा सूंडियां ज़मीन में रहकर जड़ें काटकर पौधों को नुकसान पहुंचाती हैं। मार्च के दूसरे पखवाड़े से अप्रैल के पहले पखवाड़े तक तथा मध्य-जून से अगस्त तक इस कीट का अधिक प्रकोप रहता है।

नियंत्रण :

1. इस कीट का प्रकोप होने पर 5 किलोग्राम कार्बेरिल 5 डी + 5 किलोग्राम राख का प्रति एकड़ धूड़ा करें।
2. 25 मि.ली. साईपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 60 मि.ली. साईपरमेथ्रिन 10 ई.सी., 30 मि.ली. फेनवलरेट 20 ई. सी., 100 ग्राम कार्बेरिल 50 घु. पा. को 100 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
3. लालड़ी की लटों से बचाव के लिये 1-6 लीटर क्लोरपाईरीफॉस 20 ई.सी. को बिजाई से एक माह बाद सिंचाई के साथ लगाएं।

फल मक्खी : यह कीट कोमल फलों के गूदे में अंडे देती है। अंडों से बिना सिर पैर के मैगट्स निकलकर फल के गूदे को खाते हैं। जिसके कारण फल खराब हो जाते हैं।

रोकथाम : इस कीट का प्रकोप होने पर 400 मि.ली. मेलाथियान 50 ई.सी. या 500 ग्राम कार्बेरिल 50 घु.पा. को 200-250 लीटर पानी तथा 1-25 किलोग्राम गुड़ में मिलाकर छिड़काव करें।

1. सिफारिश की गई कीटनाशक ही डालें क्योंकि बेल वाली सब्जियां कुछ अन्य कीटनाशकों से जल जाती हैं।
2. ओस के समय धूड़ा न करें।
3. 8-10 मीटर की दूरी पर मक्का की कतारें लगाएं क्योंकि इस पर फलमक्खी इकट्ठी होकर बैठती हैं।
4. काणे और सड़े फल इकट्ठे कर मिट्टी में गहरा दबा दें। ।

(पृष्ठ 2 का शेष)

6. उत्पादन में कमी किए बगैर कम भूसा पैदा करने वाली किस्में जो कि जल्दी पक कर तैयार हो जाएं, विकसित करने की ज़रूरत है।
7. धान के विकल्प के तौर पर खरीफ की अन्य फसलों व बागवानी फसलों को भी बढ़ावा दिया जाए। इन्हें उचित मूल्य पर खरीदने के व्यापक प्रबन्ध किये जाएं ताकि किसान इन फसलों की खेती को अपनाने के लिये प्रेरित हों।

किसानों, वैज्ञानिकों, विस्तार कार्यकर्त्ताओं व नीति निर्धारकों के समर्पित एवं सतत् प्रयासों से फसल अवशेष जलाने की समस्या से निजात पाया जा सकता है ताकि हमारी आगामी पीढ़ियों के सुखद भविष्य हेतु बेहतर वातावरण, मृदा स्वास्थ्य एवं फसल उत्पादकता प्राप्त की जा सके। ।

ज़िंक : बढ़ाए धान की उपज

- देवेन्द्र सिंह जाखड़, सुनील बैनीवाल एवं संदीप बेडवाल[1]
कृषि विज्ञान केन्द्र, सिरसा
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सघन खेती तथा बौनी किस्मों के प्रयोग के कारण मृदा में पोषक तत्वों का ह्रास हुआ है। जिस के कारण मृदा में नए पोषक तत्वों की कमी आ रही है। सभी पौधों को अपना जीवन चक्र पूरा करने के लिए कम या अधिक मात्रा में 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। हर एक तत्व का एक अलग कार्य होता है तथा इसकी कमी किसी दूसरे तत्व के प्रयोग से नहीं की जा सकती। जिन तत्वों की ज़रूरत पौधों को अधिक मात्रा में होती है उनको प्रमुख तत्व तथा जिनकी कम मात्रा में ज़रूरत होती है उनको सूक्ष्म तत्व कहा जाता है जैसे ज़िंक, तांबा, लोहा, बोरॉन आदि। फसलों की पैदावार बढ़ाने के लिए मुख्य तत्वों के साथ इन सूक्ष्म तत्वों की भी संतुलित मात्रा में प्रयोग की सिफारिश की गई है। जैविक खादों के घटते हुए प्रयोग के कारण मृदा में सूक्ष्म तत्वों की कमी निरंतर बढ़ रही है। समस्यात्मक भूमि विशेष रूप से क्षारीय भूमि में सूक्ष्म तत्वों की कमियां पाई गई हैं। इसीलिए इस बात पर बल दिया गया है कि मृदा की जांच करवा कर उसके आधार पर इन तत्वों का प्रयोग सभी फसलों में करना चाहिए।

ज़िंक के कार्य तथा कमी के लक्षण: ज़िंक वृद्धि नियामकों के सुचारू रूप से काम करने के लिए आवश्यक है जो कि पौधों की बढ़वार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ज़िंक की कमी के कारण पौधों का विकास प्रभावित होता है।

धान में ज़िंक की कमी के कारण पौधों में बीच की पत्तियों के बीच में मटमैले रंग के धब्बे आ जाते हैं। ये धब्बे बढ़ते रहते हैं तथा ये बाद में बड़े होकर मिल जाते हैं। ज़्यादा कमी की अवस्था में बीच की पत्तियों पर दिखाई देते हैं। बाद की अवस्था में पत्तियों पर सफेद रंग के धब्बे बनने शुरू हो जाते हैं। ये धब्बे समय के साथ सूख कर भूरे रंग के हो जाते हैं। पत्तियों का बीच का भाग हरा रहता है। लक्षण नई पत्तियों पर भी आते हैं जो आकार में छोटी तथा नुकीली निकलती हैं। पकाव के समय बालों तथा दानों का आकार छोटा होता है तथा पैदावार कम होती है। ज़िंक की कमी की अवस्था में फसल देर में पकती है।

धान में ज़िंक की कमी को दूर करने के उपाय : सबसे पहले मिट्टी की जांच करवा कर यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि मृदा में कहीं ज़िंक की कमी तो नहीं है। यदि कमी पाई जाए तो सिफारिश के अनुसार ज़िंक का प्रयोग करना चाहिए। नर्सरी में पोषक तत्व की आपूर्ति समान्यत: मिट्टी व खाद के मिश्रण के द्वारा हो जाती है। धान की फसल में 10 किलो ग्राम ज़िंक सल्फेट का प्रयोग करना चाहिए। बिजाई के समय ज़िंक डालने के बाद भी क्षारीय मृदा में फसलों के लिए सूक्ष्म तत्वों की उपलब्धता कम होती है। अत: इस मृदा की जांच करवा कर क्षारीयता को उदासीन करना चाहिए या यदि ज़रूरत हो तो 10 किलोग्राम प्रति एकड़ के स्थान पर 15 किलो ग्राम प्रति एकड़ ज़िंक का प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि यह उर्वरक मृदा में चलायमान नहीं है इसलिए इसको जड़ों के नज़दीक ही डालना चाहिए। ऊपर से फेंकना गलत है। इससे ज़िंक पौधों को नहीं मिल पाती। ज़िंक सल्फेट को दूसरे उर्वरकों जैसे कि डी ए पी के साथ मिलाकर भी डाला जा सकता है। किसी कारणवश यदि बिजाई के समय ज़िंक नहीं डाला जाए या खड़ी फसल में कमी के लक्षण आने पर 0.5% ज़िंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव करने से इस तत्व की कमी को दूर किया जा सकता है। नर्सरी में कमी आने पर भी इस घोल का छिड़काव करने से ज़िंक की कमी को दूर किया जा सकता है।

[1]कपास अनुसंधान केन्द्र, सिरसा।

बाजरा फसल की रोगों व कीटों से रक्षा

- नरेंद्र सिंह यादव, बलबीर सिंह[1] एवं जयलाल यादव[2]
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बाजरा खरीफ की एक मुख्य फसल है। हरियाणा में इसे विशेषकर वर्षा पर निर्भर क्षेत्रों व हल्की भूमि में बोया जाता है। उन्नत किस्मों की पैदावार क्षमता लगभग 13-17 क्विंटल प्रति एकड़ है। परन्तु किसानों के खेतों में इस फसल की उपज 4-8 क्विंटल प्रति एकड़ ही हो पाती है। इतनी कम पैदावार होने के कई कारण हैं। जिनमें बीमारियों व कीड़ों का प्रकोप भी एक प्रमुख कारण है। इनके आक्रमण से होने वाली हानि एवं रक्षा के लिये निम्न उपाय दिये जा रहे हैं।

बीमारियां व इनकी रक्षा

डाऊनी मिल्ड्यु या कोढ़िया : इस रोग से प्रभावित पौधे बौने रह जाते हैं। पत्तियां पीली पड़ने लग जाती हैं तथा उनकी निचली सतह पर सफेद रंग का पाऊडर जमा हो जाता है। रोगग्रस्त पौधों के पत्ते सूखने शुरू हो जाते हैं तथा धीरे-धीरे पूरा पौधा नष्ट हो जाता है। फसल की बाद की अवस्था में सिट्टों में दाना न बनकर हरी-हरी पत्तियों का गुच्छा-सा बन जाता है जो काफी समय तक हरी बनी रहती है। रोग की उग्र अवस्था में पूरी फसल नष्ट हो जाती है।

रोकथाम

1. बिजाई से पहले बीजों को 2.0 ग्राम एमिसान तथा थाइरम या 6.0 ग्राम मेटालैक्सिल 35% से प्रति किलो बीज का सूखा उपचार करें।
2. बिजाई के तीन चार सप्ताह बाद रोग ग्रस्त बौने व पीले पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें।
3. रोगग्रस्त पौधों को निकालने के बाद फसल पर 0.2 प्रतिशत जाईनेब या मेंकोज़ेब के घोल (500 ग्राम दवा व 250 लीटर पानी प्रति एकड़) के हिसाब से छिड़काव करें।

कांगियारी या स्मट: इस रोग से बालियों की शुरू की अवस्था में कई जगह रोगी दाने बन जाते हैं। जो आकार में बड़े उभरे हुये चमकदार व गहरे हरे रंग के होते हैं। रोग ग्रस्त दाने जब फटते हैं तो उनमें से काले रंग का चूर्ण निकलता है जिसमें रोग जनित फफूंद के असंख्य बीजाणु होते हैं।

रोकथाम

1. मई जून में खेत की गहरी जुताई करके खुला छोड़ दें जिससे धूप में रोग के अवशेष नष्ट हो जायेंगे।
2. बोये जाने वाले बीजों को 2.0 ग्राम एमिसान और 4 ग्राम थाइरम फफूंदनाशक से प्रति किलो बीज के हिसाब से सूखा उपचार करें।

अरगट चेपा : रोग ग्रस्त बालों से हल्के गुलाबी रंग का चिपचिपा गाढ़ा रस टपकने लगता है जो कि बाद में गहरा भूरा हो जाता है। कुछ दिनों बाद दानों के स्थान पर गहरे भूरे रंग के पिंड बन जाते हैं।

रोकथाम

1. फसल की समय पर बिजाई करें।
2. शुरू में बिजाई से पहले बीजों को 10 प्रतिशत नमक के घोल में बीज को डालकर 10 मिनट तक चलाएं और ऊपर तैरते हुए पिण्डों को निकाल दें और नष्ट कर दें।

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, बावल।
[2]कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़।

3. चेपा रोग से ग्रस्त पौधों/सिट्टों को नष्ट कर दें।
4. रोग ग्रस्त खेतों में तीन-चार साल फसल चक्र अपनाएं।
5. फसल में पत्तों से बालें बाहर आने वाली अवस्था में 400 मि.ली. क्युमान एल. को 200 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।

बाजरा के कीट व उनकी रोकथाम

सफेद लट : यह कीट बाजरा को बहुत अधिक हानि पहुंचाता है, इस कीट की सूंडी (लट) सफेद रंग की होती है जिसका सिर भूरा व जबड़े काफी शक्तिशाली होते हैं। लट भूमि में पौधों की जड़ों को काटकर उन्हें सुखा देती हैं। प्रौढ़ का रंग हल्का या गहरा भूरा होता है जो मानसून की पहली भारी वर्षा वाली रात को करीब 7.30 से 8.00 बजे के बीच मिट्टी से बाहर निकलकर व पास के पेड़ों पर बैठकर उनकी पत्तियों को खाते हैं यह प्रौढ़ सुबह आसपास के खेतों की गीली मिट्टी में छुप जाते हैं व वहीं पर अंडे देते हैं जिनसे लट्टें निकलकर फसलों की जड़ों को खाती हैं इस प्रकार से फसल को बहुत ज़्यादा नुकसान पहुचाती हैं।

रोकथाम: इनकी रोकथाम के लिए पेड़ों पर इकट्ठे हुए प्रौढ़ भुण्डों को वर्षा के बाद पहली व दूसरी रात्रि को पेड़ हिलाकर नीचे गिरा कर एकत्र करें व उन्हें मिट्टी के तेल के घोल में डालकर नष्ट कर दें। यदि यह कार्य अभियान चलाकर किया जाए तो सर्वोत्तम है अथवा प्रौढ़ भुण्डों को मारने के लिए पहली, दूसरी व तीसरी वर्षा होने के बाद (उसी दिन या एक दिन बाद) खेतों में खड़े पेड़ों पर 0.04% मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. या 0.05% क्विनलफॉस 25 ई.सी. का छिड़काव करें।

बालों वाली सूंडियां: इस कीट को कातरा भी कहते हैं, यह लंबे तथा घने बालों वाली, भूरे पीले या काले रंग की होती हैं जिनका आक्रमण खरीफ की फसलों पर प्राय: हर वर्ष होता है। सूंडियां पत्तियों को खाकर हानि करती हैं तथा अधिक प्रकोप होने पर पूरी फसल नष्ट हो जाती है। रेतीले क्षेत्रों में प्राय: इन सूंडियों का अधिक आक्रमण होता है। इस कीट की सूंडियां छोटी अवस्था में इकट्ठी रह कर पत्तों की निचली सतह पर नुकसान करती हैं। पत्तों को छलनी कर देती हैं। बाद की अवस्था में यह सारे खेत में फैल जाती हैं तथा इधर-उधर घूमती रहती हैं तथा मूंग, उड़द, बाजरा आदि खरीफ की फसलों के पत्तों को खाती हैं। इस कीट की दो प्रजातियां हैं बिहार हैयरी केटरपिलर व रेड हैयरी केटरपिलर। लाल बालों वाली सूंडियां जुलाई के दूसरे पखवाड़े से अगस्त मास के आखरी दिनों तक सक्रिय रहकर नुकसान करती हैं। दूसरी प्रजाति की सूंडियां अगस्त से अक्तूबर तक भारी नुकसान पहुंचाती हैं। इस कीट के मोथ पत्तों पर इकट्ठे अंडे देते हैं। अण्ड समूह को बालों से ढक देते हैं तथा प्रथम इन्स्टार लार्वा पत्तों की निचली सतह पर इकट्ठा रहते हैं तथा पत्तों को खा कर छलनी कर देते हैं। पौधों पर सिर्फ पत्तों की शिरायें रहती हैं।

नियन्त्रण

1. खरीफ फसलों की कटाई के बाद गहरी जुताई करें। जिससे इस कीट के प्यूपा ज़मीन के बाहर आ जाते हैं जो पक्षियों द्वारा व अन्य कारणों से नष्ट हो जाते हैं।
2. लाल बालों की सूंडी के पतंगे रोशनी की तरफ आकर्षित होते हैं। पहली बारिश के उपरान्त एक महीने तक प्रकाश प्रपंच का उपयोग कर के इकट्ठे करें।
3. खेतों के आस-पास खरपतवारों को न रहने दें क्योंकि ये कीट उन पर अंडे देते हैं।
4. यह कीट समूह में अंडे देते हैं, अत: अंड समूह को पत्ते सहित तोड़ कर खत्म कर दें।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

सब्जी उत्पादन पर तापमान का प्रभाव

- **मुकेश कुमार, कुलदीप कुमार एवं इंदु अरोड़ा**
सब्जी विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सब्जी उत्पादन को प्रभावित करने वाले सभी जलवायु कारकों में से तापमान को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। तापमान वृद्धि के विभिन्न चरणों जैसे कि बीज अंकुरण, बीज निष्क्रियता, सामान्य अस्तित्व, आर्थिक भागों के विकास, फूल, परागण और फल बनना, उत्पाद की गुणवत्ता, बीज उत्पादन, बीज भंडारण, बीमारियों और कीटों का आना और विकास के विभिन्न चरणों के दौरान सब्जी फसलों को प्रभावित करता है। सब्जी उत्पादक को तापमान के बारे में पूर्ण जानकारी होने पर वो न केवल अपनी फसल में होने वाले नुकसान से बच सकता है बल्कि वो अपनी फसल की गुणवत्ता और उत्पादकता भी बढ़ा सकता है। आमतौर पर, समुद्र तल से ऊपर की ऊंचाई में प्रत्येक 91.5 मीटर वृद्धि के लिए तापमान में 0.6° सैं.ग्रे. की कमी होती है। इसलिए, उच्च पहाड़ियों में कम तापमान प्राप्त होता है। तापमान सबसे महत्वपूर्ण कारक है जो निर्धारित करता है कि किसी निश्चित स्थान पर कौन सी फसल उगाई जा सकती है।

अनुकूलतम तापमान : प्रत्येक सब्जी की फसल तापमान की अनुकूल श्रृंखला में अच्छी तरह से बढ़ती है। इसे अनुकूलतम तापमान सीमा कहा जाता है जिसमें प्रकाश संश्लेषण की दर सामान्य होती है जिससे शुद्ध प्रकाश संश्लेषण उत्पाद अधिकतम होता है। कुछ सब्जी फसलों का विकास 5° सैं.ग्रे. से कम तापमान पर प्रभावित होता है, उस तापमान पर गर्म मौसम की फसलों की बढ़वार रुक जाती है। वृद्धि सामान्य रूप से बढ़ते तापमान के साथ 40° सैं.ग्रे. तक बढ़ जाती है लेकिन उससे परे नहीं। इस प्रकार सब्जियों की फसलों को ठंडा मौसम और गर्म मौसम की फसलों के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। ठन्डे मौसम की सब्जियां आमतौर पर 5° सैं.ग्रे. से कम तापमान पर भी जीवित रहती हैं। नागदौन, प्याज़ और पालक जैसी कुछ फसलें दूसरों की तुलना में ठंड का बेहतर ढंग से सामना कर सकती हैं। चुकंदर, बीन और कोल फसलों जैसी फसलों का न्यूनतम तापमान 5° सैं.ग्रे. सहन कर सकती हैं लेकिन परिपक्वता पर कम तापमान क्षति कर सकता है। गाजर, फूलगोभी, मटर, आलू, सलाद, अजवाइन, चॉकरी, अजमोद और सरसों न्यूनतम तापमान 7° सैं.ग्रे. सहन कर सकती है। इस प्रकार उनके विकास और विकास के लिए तापमान की उनकी आवश्यकता के अनुसार 18° सैं.ग्रे. से नीचे के तापमान वाली ठन्डे मौसम की फसलें हैं और 18° सैं.ग्रे. से ऊपर तापमान वाली गर्म मौसम की फसलें हैं।

तापमान सीमा	फसल
7-13° सैं.ग्रे.	गोभी, आलू, लहसुन, प्याज़, पालक, मटर आदि
13-18° सैं.ग्रे.	शिमला मिर्च, गाजर, मूली, टमाटर इत्यादि।
18-30° सैं.ग्रे.	कुकुरबीट्स, भिंडी, लोबिया, बैंगन इत्यादि।

चरम तापमान: सब्जियों की फसल एक संकीर्ण तापमान सीमा के भीतर अच्छी तरह से बढ़ती हैं। 0° सैं.ग्रे. तापमान पर, पौधे ठंड से मारे जाते हैं और 40° सैं.ग्रे. से ऊपर वे गर्मी से मारे जाते हैं । अधिकांश फसलें 30° सैं.ग्रे. से ऊपर अपनी प्रकाश संश्लेषण दक्षता खो देती हैं।

ठंडा तापमान या क्षति : ज़्यादा तापमान में पनपने वाली फसलें कम तापमान (0-12° सैं.ग्रे.) पर ज़्यादा संवेदनशील होती हैं। शीतलन क्षति के लक्षण विकृत क्षेत्र की उपस्थिति हैं। पत्ते या फलों की सतह पर उदास क्षेत्र का खराब रंग विकास। ठंडा क्षति तापमान के अनावरण और समय के

[1]कीट विज्ञान विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

बीच अंत:क्रिया का परिणाम है। जैसे 8° सैं.ग्रे. के संपर्क में आने की एक छोटी अवधि 12° सैं.ग्रे. के लंबे जोखिम के रूप में ज़्यादा नुकसान हो सकती है। इस प्रकार उष्णकटिबंधीय सब्जियां 12° सैं.ग्रे. से नीचे तापमान बर्दाश्त नहीं कर सकती हैं ।

गर्मी तनाव : ताप क्षति जो कि ज़्यादा तापमान से हुई है वो पौधे की बढ़वार कम होने पर साफ देखी जा सकती है। 30° सैं.ग्रे. से ऊपर का तापमान, काहू और सेलरी के अंकुरण और आलू में कंद गठन को रोकता है। तापमान 32° सैं.ग्रे. से अधिक होने पर सोलेनसियस फसलों और फलीय सब्जियों का फल बनना घटता है। टमाटर में गर्मी के तनाव की स्थिति में तने में नीचे की तरफ दरारें आ सकती हैं और फल बे दम-सा हो जाता है। उच्च तापमान की स्थिति में प्याज़ और मूली अधिक तीखी हो जाती है। गर्मी की क्षति की वजह से पौधों में भुखमरी, ज़हरीलापन, फलों का मूल आकार बदल जाता है। 30° सैं.ग्रे. से ऊपर के तापमान पर, रंध्र बंद हो जाते हैं। भुखमरी की वजह से प्रकाश संश्लेषण शून्य हो जाता है। उच्च तापमान से संरचनात्मक प्रोटीन नष्ट हो जाते हैं। गर्मी की क्षति के लक्षण फलियों में नवोदय तने की मृत जगह और प्याज़, गोभी और सलाद की पत्तियों में दिखने लगते हैं।

बसंतीकरण : द्विवार्षिक फसलों और प्याज़, गाजर, गोभी, फूलगोभी और पालक जैसे कुछ ठंड मौसम सब्जियां कम तापमान के संपर्क के बाद फूल गठन शुरू करती हैं। तापमान घटने के कारण फूलों की बसंतीकरण की अवधि में गिरावट शुरू हो जाती है। उदाहरण मूली को समान अवधि में 10° सैं.ग्रे. की तुलना में 5° सैं.ग्रे. में फूल जल्दी आता है । फसल के बाद ठंडा मौसम सब्जियों में से अधिकांश 0° सैं.ग्रे. पर या उसके पास संग्रहीत की जाती हैं। ठंडा मौसम सब्जियों को कठोर और आधा कठोर फसलों में बांटा जाता है। कठोर फसलों में ठण्ड को बर्दाश्त करने की क्षमता होती है । इसी तरह, गर्म मौसम सब्जी फसलों को निविदा और बहुत निविदा के रूप में समूहीकृत किया जाता है।

ठन्डे मौसम की फसलें

दृढ़	आधी दृढ़
अमरैंथस, बीन, ब्रोकोली, गोभी, चोकी गोभी, लहसुन, मेथी, प्याज़, मटर, मूली, पालक, शलगम आदि	चुकंदर, गाजर, फूलगोभी, चॉकरी, अजवाइन, एंडिव, आलू,आदि।

गर्म मौसम की फसलें

कोमल	बहुत कोमल
लोबिया, न्यूज़ीलैंड पालक, सोयाबीन,मीठे मकई, टमाटर आदि	ककड़ी, बैंगन, खरबूजा, भिंडी, मिर्च, कद्दू, स्क्वैश, शकरकन्दी, तरबूज आदि

तापमान का प्रभाव

बीज अंकुरण: गर्म मौसम की सब्जियों के बीज अंकुरण के लिए अधिकतम तापमान सीमा 24-30° सैं.ग्रे. है और ठंड के मौसम की सब्जियों के बीज अंकुरण के लिए तापमान की इष्टतम सीमाएं 5-15° सैं. ग्रे. हैं। गर्म मौसम की अधिकांश सब्जी फसलों के अंकुरण पर 30° सैं.ग्रे. से अधिक तापमान खराब प्रभाव डालता है।

सामान्य अस्तित्व : तापमान की आवश्यकता के आधार पर, सब्जियों की फसलों को ठंडा मौसम और गर्म मौसम की फसलों के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। ठंडा मौसम फसलों को निम्नलिखित मामलों में गर्म मौसम फसलों से अलग करती है :

- सर्द मौसम की सब्जियों के बीज ठंडी मिट्टी के तापमान पर अंकुरित होते हैं।

कुछ सब्जी फसलों की सर्वोत्तम वृद्धि और गुणवत्ता के लिए अनुमानित तापमान :

औसत मासिक तापमान (0° सैं.ग्रे.)			सब्जियां
अनुकूलतम	न्यूनतम	अधिकतम	
			ठन्डे मौसम की फसलें
12-24	7	29	चिव, लहसुन, लीक, प्याज़, शालोट आदि
15-18	5	24	चुकंदर, ब्रॉड बीन, ब्रोकोली, ब्रुसेल्स अंकुरित, गोभी, हॉर्स रैडिश, कोल्हाबी, अजमोद, मूली, पालक, स्विस चार्ड, शलगम आदि
15-18	7	24	आर्टिचोक, गाजर, फूलगोभी, सेलेरी, अजमोद, चीनी गोभी, सलाद पत्ता, सरसों, मटर, आलू आदि गर्म मौसम की फसलें
15-21	10	27	लीमा बीन, हरी बीन आदि
15-24	10	35	मीठे मकई, न्यूज़ीलैंड पालक आदि
18-24	10	32	कद्दू, स्क्वश, विलायती कद्दू आदि
18-24	15	32	ककड़ी, खरबूजा, तरबूज आदि
21-24	18	27	शिमला मिर्च, टमाटर आदि
21-29	18	35	मिर्च, बैंगन, भिंडी, शकरकन्दी,तरबूज आदि

- वे कठोर (ठंड सहनशील) हैं।
- उनका पौधों का आकार छोटा होता है।
- आमतौर पर इनकी जड़ें सतही होती हैं।
- 0-10° सैं.ग्रे. के बीच तापमान भी कटे हुए उत्पाद में सर्द क्षति नहीं पंहुचा पाता है।

कुछ द्विवार्षिक फसलों को 'बीज डंठल विकास' के लिए ठंडा मौसम बढ़ाने की आवश्यकता होती है।

फलों का लगना : अधिकांश फसलों में तापमान परागण, पराग ट्यूब अंकुरण और फलों के लगने का प्रतिशत निर्धारित करता है। आम तौर पर, टमाटर का इष्टतम औसत मासिक रात का तापमान परागण और फल लगने के लिये 21-23° सैं.ग्रे. होता है। कम और ज़्यादा तापमान होने पर लगे हुए फूल भी झड़ जाते हैं।

सब्जी काश्तकार को अगर तापमान के कम और ज़्यादा होने के प्रभाव के बारे में पूर्ण जानकारी हो तो वो अलग-2 उपाय करके अपनी फसलों को दुश्प्रभाव से बचा सकता है जिससे वो एक बड़े नुकसान से बच सकता है।

(पृष्ठ 5 का शेष)

5. पत्तों को छोटी सूंडियों समेत तोड़ लें तथा ज़मीन में गहरी दबा दें या मिट्टी के तेल के घोल में डालकर मार दें।
6. बड़ी सूंडियों को कुचलकर मार दें।
7. आवश्यकता पड़े तो बड़ी सूंडियों की रोकथाम के लिए 250 मि.ली. मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. या 500 मिली क्विनलफॉस (एकालक्स) 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिला कर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

भूण्डी : यह सलेटी रंग की होती हैं जो पत्तियों को किनारों से खाकर अगस्त से अक्तूबर तक फसल को नुकसान करती हैं।

रोकथाम : इस कीट का यदि आक्रमण दिखाई दे तो 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

मूंगफली फसल : हानिकारक कीट एवं बचाव

- रूमी रावल एवं योगेश कुमार
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मूंगफली तिलहनी फसलों के रूप में ली जाने वाली प्रमुख फसल है। इसकी खेती प्रमुख रूप से रेतीली भूमि में सफलतापूर्वक की जाती है। मूंगफली के दानों से 40-45 प्रतिशत तेल प्राप्त होता है जोकि प्रोटीन का मुख्य स्रोत है। मूंगफली की फलियों का प्रयोग वनस्पति तेल के रूप में किया जाता है। लेकिन इसके सफल उत्पादन में कई प्रकार के हानिकारक कीट, रोग आदि आड़े आ जाते हैं, जिसमें कीट अहम भूमिका निभाते हैं। कीट फसल की गुणवत्ता को काफी कम कर देते हैं इसलिए यदि समय पर इन कीटों को नियंत्रित कर लिया जाए तो नुकसान को काफी कम किया जा सकता है। मूंगफली की फसल में लगने वाले कीटों का विवरण एवं रोकथाम नीचे बताया गया है।

चेपा : शिशु तथा प्रौढ़ आमतौर पर पत्तों की निचली सतह से रस चूसते हैं, जिससे पौधे मुरझा जाते हैं। अगर हमला फूल और फली बनने के समय होता है तो उपज काफी कम हो जाती है। इस कीट का आक्रमण कभी-कभी मानसून के बाद होता है। चेपा एक विषाणु रोग भी फैलाता है जिसे रोजिटे आफ ग्राउंडनट के नाम से जाना जाता है।

रोकथाम : इस कीट के नियंत्रण के लिए 200 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए।

सफेद लट : इसके प्रौढ़ भूरे व हल्के भूरे रंग के होते हैं, जो मानसून की पहली बारिश होने के बाद शाम को अंधेरा होने पर भूमि से निकलते हैं, और आसपास में फल-फूल रहे वृक्षों पर इकट्ठे हो जाते हैं और पत्तों को खाते हैं। सुबह होने से पहले ये कीट वापिस ज़मीन में चले जाते हैं। इस कीट की इल्ली अंग्रेजी के अक्षर सी के आकार की होती है जिसका रंग सफेद और मुंह भूरे रंग का होता है। यह मूंगफली की जड़ों को काटकर भारी नुकसान पहुंचाता है।

रोकथाम : मानसून की वर्षा से पहले खेतों के आसपास खड़े वृक्षों की छंटाई कर दें।

- प्रौढ भूण्डों को मारने के लिए पहली, दूसरी व तीसरी बारिश होने के बाद उसी दिन या एक दिन बाद खेतों में खड़े वृक्षों पर 500 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. या 275 मि.ली. मोनोक्रोटोफॉस 30 एस.एल. को लेकर 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।
- सफेद लट की रोकथाम के लिए बीज का उपचार करें। उसके लिए एक किलोग्राम बीज लेकर उसे 15 मि.ली. क्लोरपायरिफॉस 20 ई.सी. या क्विनलफॉस 25 ई.सी. से बिजाई के कुछ समय पहले उपचारित करें।

दीमक: दीमक कीड़े की तरह सफेद पारदर्शी चींटी होती है। वे जड़ में प्रवेश कर जाती है और जड़ तथा तने को खाकर पौधों को नुकसान पहुंचाते हैं।

रोकथाम : इसकी रोकथाम के लिए एक किलोग्राम बीज का उपचार 15 मि.ली. क्लोरपायरिफॉस 20 ई.सी. या क्विनलफॉस 25 ई.सी. से बिजाई के कुछ समय पहले करें।

दलहनी व तिलहनी फसलों में खरपतवार नियंत्रण

- सतबीर पुनिया
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा प्रान्त में उगाई जाने वाली तिलहनी व दलहनी फसलों का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान है। तिलहनी फसलें खाद्य तेल का मुख्य स्रोत हैं। जबकि दलहन में प्रोटीन ज़्यादा मात्रा में पाया जाता है। मूंगफली तिल, मूंग, उड़द, ग्वार, अरण्ड की खेती खरीफ मौसम में की जाती है जबकि सरसों, तोरिया, चना व मसर की काश्त रबी मौसम में की जाती है। सूरजमुखी बसन्त ऋतु की एक मुख्य फसल है। गन्ना व आलू की कटाई के बाद बसन्त ऋतु में सूरजमुखी की काश्त प्रान्त के कुरुक्षेत्र, अम्बाला, यमुनानगर व करनाल ज़िलों में की जाती है। प्रान्त में तिलहनी फसलों के अधीन रबी में 5.48 लाख हैक्टेयर व दलहनी फसलों में 93000 हैक्टेयर क्षेत्रफल है परन्तु औसत पैदावार अग्रणी प्रदर्शनों में पाई जाने वाली उत्पादकता से काफी कम है। उत्पादकता में कमी का मुख्य कारण निम्न खरपतवारों द्वारा होने वाले नुकसान का मुख्य योगदान है:

खरीफ : मूंगफली, तिल व अरण्ड की फसल में तीन तरह के खरपतवार पाये जाते है :

1. *चौड़ी पत्ती वाले :* सांठी, कोंधरा, पलपोटन, मकोय, सफेद मूर्ग, हज़ार दाना, कनकुवा, बड़ी दूधी, जंगली जूट, भाखड़ी, हुलहुल, कुकर जकरा, सूरेल, चौलाई, चिड़ी बाजरिया, बेल।
2. *संकरी पत्ती वाले :* सांवक, दूब, मकड़ा, मधाना, तकड़ी घास, चिड़िया घास व बरु इत्यादि।
3. *मोथा जाति वाले :* डीला, डीली, मूसा ढ़ाढ़ी, छतरी वाला डीला, गांठ वाला डीला। जहां तक ज़मीन में या पानी में नमक की मात्रा ज़्यादा है वहां पर साठी ज़्यादा उगती है। छतरी वाला, गांठ वाला डीला व सांवक ज़्यादातर नमी की अवस्था में पाये जाते हैं। हल्की रेतीली ज़मीन में डीली, मूसा ढ़ाढ़ी, सुरेल, चिड़ि, बाजरीया, हुलहुल व कोंधरा ज़्यादा उगते हैं।

रबी : (साढी)

1. *चौड़ी पत्ती वाले :* बायु, खड़बायु (खरबुआ), गजरी, प्याजी, चटरी, कंडई, हिरणखुरी सैंजी, कृष्णनील इत्यादि।
2. *संकरी पत्ती वाले:* जंगली जई, मंडूसी, दूब, जंगली जई
3. *परजीवी खरपतवार :* मरगोजा (मरगोजी, गुल्ला)

खरपतवारों से होने वाली हानियां

खरपतवार फसलों के साथ खुराकी तत्वों, जगह, पानी तथा सूरज की रोशनी के लिये संघर्ष करते हैं। खरपतवारों की संख्या ज़्यादा होने पर ये तिलहनी फसलों से तीव्र प्रतिस्पर्धा करके भूमि में निहित नमी एवं पोषक तत्वों के अधिकांश भाग को शोषित कर लेते हैं जिसके फलस्वरूप फसलों की बढ़वार धीमी पड़ जाती है तथा पैदावार कम हो तो तिलहनी फसलों की 70 प्रतिशत तक पैदावर घट सकती है। अगर सरसों की फसल में मग्गोजा की समस्या ज़्यादा हो तो शत-प्रतिशत नुकसान भी हो सकता है। इसके

अतिरिक्त कुछ खरपतवारों के बीज फसल के बीजों के साथ मिलकर उसकी गुणवत्ता को कम कर देते हैं। इसके इलावा कुछ खरपतवार तिलहनी फसलों में लगने वाले रोगों के जीवाणुओं एवं कीटों को भी आश्रय देते हैं और बीमारियों के फैलाव का कारण बनते हैं। तिलहन फसलों की पैदावार बरकरार रखने के लिये खरपतवार प्रतिस्पर्धा के क्रान्तिक समय के दौरान इनकी रोकथाम बहुत आवश्यक है। विभिन्न तिलहनी फसलों में आंके गये खरपतवार प्रतिस्पर्धा के क्रान्तिक समय का विवरण सारणी नं. 1 में दिया गया है।

सारणी 1 : विभिन्न तिलहनी फसलों में आंके गये खरपतवार प्रतिस्पर्धा के क्रान्तिक समय

फसल	समय (बिजाई के बाद के दिन)
मूंगफली	40-60
अरण्ड	30-60
तिल	15-45
सरसों	15-40
तोरिया	15-25
सूरजमुखी	30-45

दलहनी व तिलहनी फसलों के पौधे अपनी प्रांरभिक विकास अवस्था में खरपतवारों से मुकाबला नहीं कर सकते। इसलिए इन फसलों को शुरू से ही खरपतवार रहित रखना चाहिए। फसलों में बार-बार सिंचाई करने तथा बरसात होने पर खरपतवार उगते रहते हैं। अत: फसलों को पूर्ण रूप से खरपतवार रहित रखना बहुत ही मुश्किल है। खरपतवार प्रतिस्पर्धा के क्रांतिक अवस्था के दौरान खरपतवार नियंत्रण के उपायों को अपना कर इनसे होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है। क्रांतिक अवस्था के बाद उगने वाले खरपतवारों को फसलों के विकसित पौधे दबा लेते हैं तथा ये खरपतवार पैदावार का नुकसान नहीं कर पाते।

दलहनी व तिलहनी फसलों में खरपतवारों की रोकथाम

निराई-गोड़ाई : तिलहनी फसलों को प्रारम्भिक अवस्था से ही खरपतवार मुक्त रखना लाभदायक है। खरपतवार प्रतिस्पर्धा के क्रांतिक समय की दृष्टि से मूंगफली की फसल में पहली निराई व गोडाई बिजाई के तीन सप्ताह बाद तथा दूसरी बिजाई के 6 सप्ताह बाद करनी चाहिए। फसल में से बिजाई के तीसरे हफ्ते के बाद खरपतवारों को हाथ से अच्छी तरह से निकाल देना चाहिए। अरण्ड की फस्ल को विशुद्ध रूप से पंक्तियों में बोने के तीन व सात सप्ताह बाद पहियेदार हैंड हो की सहायता से दो गोड़ाइयां करनी चाहिएं। व्हील हैंड होने से सरसों व राया की फसल में दो गोड़ाइयां बिजाई के तीन व पांच सप्ताह बाद करनी चाहिएं तथा तोरिया में सिर्फ एक गोड़ाई बिजाई के तीन सप्ताह बाद करें। सूरजमुखी की बिजाई के तीन सप्ताह बाद पहली तथा 6 सप्ताह बाद दूसरी निराई-गुड़ाई करनी चाहिए।

रासायनिक विधि : दलहनी व तिलहनी फसलों में खरपतवारनाशकों का प्रयोग करके भी खरपतवारों को खत्म किया जा सकता है। इससे प्रति एकड़ लागत कम आती है। लेकिन इन खरपतवारनाशकों का प्रयोग करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि इनका प्रयोग उचित मात्रा में उचित ढंग से तथा उपयुक्त समय पर हो अन्यथा लाभ की बजाए हानि की सम्भावना रहती है।

सरसों, तोरिया व दाल वाली फसलों में संकरी जाति वाले घास जंगली जई या गुल्लीडण्डा का प्रकोप हो तो टोपिक 160 ग्राम/एकड़ का बिजाई के 40 दिन बाद प्रयोग करें।

खरपतवारनाशक रसायनों के प्रयोग में सावधानियां

1. प्रत्येक खरपतवारनाशक के डिब्बों पर लिखे निर्देशों तथा उन के साथ दिये गये पर्चे को ध्यानपूर्वक पढ़ें तथा दिये गये तरीकों का विधिवत पालन करें।
2. खरपतवारनाशक को उचित मात्रा में तथा उचित समय पर छिड़कना चाहिए।
3. बुवाई से पहले या बुवाई के तुरन्त बाद प्रयोग किये जाने वाले रसायनों को इस्तेमाल करते समय भूमि में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।
4. बुवाई से पहले खेत अच्छी तरह तैयार होना चाहिए, खेत में डले न हों।
5. खरपतवारनाशक का छिड़काव पूरे खेत में समान रूप से होना चाहिए।
6. खरपतवारनाशक का छिड़काव शांत दिनों तथा साफ मौसम में करना चाहिए।
7. प्रयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि रसायन शरीर पर न पड़े। इसलिए विशेष पोषाक, दस्ताने, चश्में इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए।
8. छिड़काव कार्य समाप्त होने के बाद हाथ, मुंह, साबुन से अच्छी तरह धो लेना चाहिए और अच्छा हो यदि स्नान भी कर लें।
9. छिड़काव करते समय धूम्रपान न करें।

विभिन्न तिलहनी फसलों में प्रयोग किये जाने वाले खरपतवारनाशक, मात्रा, समय एवं विधि का विवरण।

तिलहनी फसलें	खरपतवारनाशक रसायन	ग्राम/लीटर प्रति/एकड़	प्रयोग का समय
मूंगफली, तिल, सरसों, तोरिया, चना	स्टॉम्प 30 ई.सी.	1.3 लीटर	बुवाई के बाद तुरन्त परन्तु अंकुरण से पहले
	ट्रैफलान	1000 मि.ली.	बुवाई से पहले छिड़ककर भूमि में अच्छी तरह मिला दें।
मूंगफली	परसूट	300 मि.ली. + चिपचिपा पदार्थ	बिजाई के 20-25 दिन बाद
सरसों (मरगोजा नियंत्रण हेतु)	ग्लाइफोसेट	25 मि.ली.	बिजाई के 25-30 दिन बाद
		50 मि.ली.	बिजाई के 50 दिन बाद (केवल सिंचित दशा में)
मूंग उड़द	स्टॉम्प 30 ई.सी.	1.3 लीटर	बुवाई के तुरन्त बाद व अक्तूबर के पहले
		1.0 लीटर	बिजाई के 20 दिन बाद
	बेलर 32 ई.सी.	280 मि.ली.	
	इमाजाथिपाईयर	40 मि.ली.	

मधुमक्खी वंशों में मोमी पतंगे के आक्रमण की पहचान व रोकथाम

- सुनीता यादव, योगेश कुमार एवं मनदीप राठी
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सफल एवं लाभप्रद मधुमक्खी पालन के लिए समय-समय पर मधुमक्खी वंशों का निरीक्षण आवश्यक है, ताकि किसी शत्रु व बीमारी के लक्षण दिखने पर समय रहते इनकी रोकथाम कर मधुमक्खी वंशों को कमज़ोर या समाप्त होने से बचाया जा सके। मधुमक्खीपालकों को मधुमक्खियों के विभिन्न शत्रु एवं बीमारियों की पहचान, लक्षण व इनसे बचाव करना ज़रूर आना चाहिए। मोमी पतंगा मधुमक्खी वंशों का एक प्रमुख शत्रु है। मोमी पतंगे की दो प्रजातियां हैं: बड़ा मोमी पतंगा और छोटा मोमी पतंगा, परन्तु इनकी क्षति सामान्यत: एक जैसी है। इनका जीवन चक्र चार अवस्थाओं: अण्डा, सूण्डी/लारवा, सख्त रेशमी खोल के भीतर प्यूपा तथा वयस्क पंखी से गुज़रता है। उड़ने वाली पंखी प्राय: रात में मौनगृह के तलपट, छिद्रों, दरारों व खाली छत्तों पर झुंड में अण्डे देती है। इनमें से निकलने वाले नन्हें लारवा मोम के कणों के साथ मौनगृह की गन्दगी, पुराने खाली छत्तों, घरछुट से हुए खाली छत्तों, बक्सों में बिना माध्वी के रखे छत्तों को खाकर पनपते हैं। ये सूण्डी जैसे-जैसे बढ़ती जाती है वैसे-वैसे ही तेज़ी से छत्तों पर सुरंग बनाते हुए उनमें सफेद तंतुओं का जाला बुनती जाती है। इस तरह धीरे-धीरे पूरा छत्ता नष्ट हो जाता है। यह मौनगृहों तथा भण्डारित छत्तों का शत्रु है। वंशों में इसका प्रकोप तब होता है जब मौनगृह में ज़रूरत से ज़्यादा छत्तों वाली चौखटें हों और उन पर मधुमक्खियां न हों।

छत्तों के अलावा मोमी पतंगा मधुमक्खी वंशों को भी क्षति पहुंचाता है। अण्डे से निकलकर मोमी पतंगों की नन्हीं सूण्डियां छत्तों के बीच में सुरंग बना कर खाते हुए चलती हैं और बीच में पड़ने वाले कोषों की तली में छेद करके मधुमक्खी सूण्डी और प्यूपा के उदर छोर पर काटती हैं जिससे ये सूण्डी और प्यूपा मर जाते हैं। कुछ मधुमक्खी सूण्डियां मरने के बाद कोष से निकाल दी जाती हैं और जो सूण्डियां या उनके अंश रह जाते हैं वे सड़ने लगते हैं। प्यूपा के मरने के बाद मधुमक्खियां कोषों को खोलकर उन्हें निकालने का प्रयास करती हैं। इस प्रयास में भारी संख्या में खुले प्यूपा देखने को मिलते हैं। इन मरे हुए प्यूपों को चिमटी से निकाल कर देखा जाए तो इनके पिछले भाग पर काले-काले कण दिखते हैं जो मोमी पतंगे की सूण्डियों का मल होता है। कभी-कभी मोमी पतंगे की नन्हीं सी सूण्डी भी वहां मिल जाती है। प्राय: मधुमक्खीपालक खुले प्यूपाओं को और कोष में सूण्डियों के अवशेषों को माइट का प्रकोप और फाउल ब्रुड मानकर अकारण ही औषधियां खिलाने लगते हैं।

मोमी पतंगे जाड़े के दिनों में सूण्डी या सुप्त अवस्था में और मार्च से अक्तूबर तक चुस्त अवस्था में रहते हैं। वर्षा ऋतु में यह कीट मधुमक्खियों को ज़्यादा हानि पहुंचाता है। इसके प्रकोप से ग्रसित मौनवंश कमज़ोर पड़ जाते हैं। छत्तों में जाले लग जाने से रानी मक्खी अण्डे देना बंद कर देती है।

रोकथाम :

- मौनवंशों को पर्याप्त भोजन संग्रह के साथ सुदृढ़ बनाये रखें।
- प्रवेश द्वार को आकार में घटा दें और मौनगृहों के सभी छिद्रों व दरारों को भली-भांति गोबर या गीली मिट्टी से बंद कर दें।
- कमज़ोर मौन वंशों को आपस में मिलायें अथवा इन्हें शक्तिशाली बनाएं।
- मधुमक्खीवंशों के शिशुखण्ड में डम्मी का प्रयोग करें ताकि अन्तिम छत्ता खुला न रहे।
- तलपट्टे की सफाई 15 दिन के अंतराल पर करते रहें ताकि मोमी पतंगों की सूण्डियों और अण्डों का सफाया हो जाए।
- आक्रमण की शुरूआत में छत्तों को वंश से निकालकर कुछ मिनटों के लिए सूर्य की गर्मी में रखने से मोमी पतंगे की सूण्डियां छत्तों से बाहर आ जाती हैं जिससे उनहें आसानी से नष्ट किया जा सकता है।
- मौनालय में कभी भी पुराने खाली छत्तों को मौनगृह में अथवा खुले में न छोडें।
- आवश्यकता से अधिक छत्तों को वंश से निकालकर, इनका भण्डारण इस तरह से करें ताकि मोमी पतंगा इन पर अण्डे न दे सके।
  - w खाली साफ छत्तों को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें खाली सुपर बॉडी में रखें। इन छत्तों वाले सुपरों को समतल फर्श या एक दूसरे के ऊपर चट्टा लगाएं और जोड़ों पर ब्राउन-टेप या चिपकनी कागज-पट्टी लगाकर लीक-प्रूफ कर दें। सबसे ऊपर वाले सुपर में 1 ग्राम प्रति सुपर बाडी की दर से पीडीबी (पैरा डाइक्लोरो बैन्जीन) किसी मोटे कागज़ आदि पर रख दें और ऊपर से किसी चौरस पट्टे से बन्द कर दें। यह पूरा चट्टा लीक-प्रूफ रहना चाहिए। इससे 'पीडीबी' का वाष्प (फ्यूम) नीचे तक जाकर लम्बे समय तक मोमी पतंगे को क्षति से सुरक्षित रखेंगे।
  - w पुराने साफ छत्तों को सुरक्षित रखने के लिए बड़े मोटी पॉलीथीन के थैलों का उपयोग भी किया जा सकता है परन्तु उसमें कहीं भी छेद या फटा हुआ नहीं होना चाहिए। सुरक्षा के लिए केवल पीडीबी का ही प्रयोग करें। 'सैल्फास' गोली का उपयोग नहीं करना चाहिए। यह कीटनाशक तीव्र होता है और मोम के छत्तों में सोख लिए जाने के कारण भावी शिशुओं के लिए क्षति कारक हो सकता है।
  - w 180 ग्राम गंधक प्रति घन मीटर की दर से हवारहित कमरे में धूनी दे कर भी अतिरिक्त छत्तों को भंडारित किया जा सकता है।
- जैविक नियंत्रण के लिए प्रभावित छत्तों पर बैसिलस थ्यूरिन्जेन्सिस के व्यावसायिक पदार्थ जैसे डिपैल 10 ग्राम प्रति लीटर का छिड़काव करने से मोमी पतंगों को नियंत्रण में रखा जा सकता है।
- मोमी पतंगों से अत्यधिक प्रभावित छत्तों को उबाल कर मोम निकाल लें इससे बड़ी मात्रा में मोमी पतंगे के सूण्डी एवं प्यूपा भी नष्ट हो जाते हैं।



खेती में बढती लागत : कैसे करें कम

- **गुरनाम सिंह, राजेश लाठर एवं वंदना**
कृषि विज्ञान केन्द्र, पंचकुला
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वर्तमान समय में खेती पर लागत बहुत अधिक बढ़ गई है। खेत की जुताई, खाद, बीज, दवाइयों पर खर्च बहुत अधिक बढ़ गया है। प्रति व्यक्ति ज़मीन की जोत भी काफी कम हो गई है, ज़मीन की जोत को तो नहीं बढ़ाया जा सकता लेकिन आधुनिक तकनीक अपनाकर व कुछ छोटी-छोटी बातों को ध्यान में रखकर लागत को कम किया जा सकता है।

खेत की तैयारी : गर्मियों में खेत की गहरी जुताई व पलटाई का विशेष योगदान होता है, क्योंकि इस से भूमि की एक फीट नीचे तक की कड़ी परत टूट जाती है, इससे भूमि में मौजूद तमाम कीट व खरपतवार के बीज भी नष्ट हो जाते हैं इसके अलावा मिट्टी में पानी सोखने की क्षमता भी बढ़ जाती है, मिट्टी नर्म होने के कारण जड़ों का विकास भी अधिक होता है इससे खेत में उत्पादन की क्षमता भी बढ़ जाती है।

अगेती बुवाई : अगेती बुवाई से बीजों का अच्छा जमाव होता है व कीटों व बीमारियों का प्रकोप भी काफी कम होता है और फसल का उत्पादन भी अधिक होता है।

बीज का चयन : प्रमाणित व उन्नत किस्म के बीजों का चयन बहुत ज़रूरी है, इससे पैदावार सीधे तौर पर प्रभावित होती है। यदि अच्छी किस्मों के बीजों का चयन नहीं करेंगे तो कीटों व बीमारियों से उत्पादन काफी कम हो सकता है। पौधों की सही तादाद का होना भी बहुत ज़रूरी है। पौधों की अधिक संख्या होने से पैदावार अधिक होगी ऐसा नहीं है क्योंकि ज़्यादा पौधे होने से उन में आपस में विकास को लेकर संसाधनों (खाद) के इस्तेमाल के लिए आपस में ही प्रतियोगिता शुरू हो जाती है। इसकी वजह से पौधों की मेटाबोलिक क्रियाओं पर प्रतिकूल असर पड़ता है जिसके कारण उपज में भारी कमी हो जाती है। वर्तमान समय में वैज्ञानिकों द्वारा हर एक फसल के लिए पौधे से पौधे व कतार से कतार के लिए दूरी तय की जा चुकी है। सही पौधों की तय तादाद रखने से 20-25 फीसदी तक उपज में इजाफा किया जा सकता है।

खरपतवार नियंत्रण : फसल के साथ अनचाहे पौधे उगने से 30-60 फीसदी तक उपज को नुकसान पहुंचाते हैं। ये कीटों व बीमारियों को आसरा देने के साथ-साथ नमी, स्थान, प्रकाश व पोषक तत्वों के लिए फसल से मुकाबला करके उपज को कम करने का काम करते हैं। इसलिए यह ज़रूरी हो जाता है कि उन्हें पूरी तरह से खेत से खत्म कर दिया जाए, समय पर पूरी तरह से खरपतवार नियंत्रण करने से उपज में 30-35 फीसदी तक का इजाफा किया जा सकता है। खरपतवारों की रोकथाम के लिए विश्वविद्यालय द्वारा बताई गई मात्रा के अनुसार ही प्रयोग करें।

उर्वरकों का प्रयोग : मिट्टी की जांच करवाना बहुत ही आवश्यक है, रासायनिक व जैव उर्वरक का इस्तेमाल सूक्ष्म तत्वों की कमी के अनुसार ही प्रयोग करें। रासायनिक खादों का उपयोग विश्वविद्यालय द्वारा बताई गई मात्रा से अधिक प्रयोग करने से भूमि की उपजाऊ शक्ति पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जैविक खादों के प्रयोग से मिट्टी में सूक्ष्म जीवों की संख्या बढ़ती है व सहजीवी या असहजीवी द्वारा फसल को वातावरण में मौजूद गैसीय नाईट्रोजन को सीधे मिट्टी के जरिए मुहैया करवा कर उत्पादन को 10-15 फीसदी तक बढ़ाने का काम करते हैं।

सिंचाई : फसलों में सिंचाई करने से पहले मौसम की जानकारी होना भी बहुत ज़रूरी है। इसी जानकारी के आधार पर ही सिंचाई करनी चाहिए। आवश्यकता होने पर ही व उचित मात्रा में ही पानी का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए फव्वारा व टपका विधि का प्रयोग भी कर सकते हैं जिससे पानी की बचत होती है।

कीटनाशकों का प्रयोग : कीटनाशकों का प्रयोग विश्वविद्यालय द्वारा बताई गई मात्रा के अनुसार ही करना चाहिए। कीटों की पहचान होना भी बहुत ज़रूरी है क्योंकि प्रत्येक कीट फसल को नुकसान नहीं पहुंचाता अपितु कुछ मित्र कीट फसलों के लिए लाभकारी भी होते हैं। जब फसल में हानिकारक कीटों की संख्या आर्थिक कगार से अधिक हो और मित्रों कीटों की संख्या खेत में अपर्याप्त हो तभी कीटनाशकों का प्रयोग करने की सिफारिश की जाती है।

कटाई : फसल की कटाई उचित समय पर ही करनी चाहिए। अगेती कटाई करने से दानों में ज़्यादा नमी की वजह से उचित भाव नहीं मिलता एवं ज़्यादा पछेती कटाई से दाने खेत में झड़ने की आशंका रहती है। अत: फसल की कटाई उचित समय पर ही करें।

मंडी भाव : फसल को मंडी में ले जाने से पहले विभिन्न मंडियों के भाव की जानकारी अवश्य होनी चाहिए क्योंकि जब नई फसल आती है तो अधिक मात्रा की वजह से भाव कम मिलते हैं। इसलिए अपने उत्पाद को आवश्यकतानुसार 2-3 हिस्सों में बेचना चाहिए व बाद में भाव अधिक मिलने की संभावना अधिक रहती है। यदि मंडी में भाव कम हो तो किसानों को अपने उत्पाद का भंडारण अवश्य करना चाहिए व जब भाव अच्छे मिलें तब उत्पाद बेचना चाहिए।

यदि किसान उपर्युक्त सभी बातों का ध्यान रखेंगे तो अवश्य ही अपनी आमदनी को बढ़ा पाएंगे। |

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951(ई) के तहत एक सूचना जारी की है कि 12 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स+ फंजीसाइड्स+हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 8 अगस्त 2018 से ही बन्द कर दिया गया है। इनकी सूची इस प्रकार है:

8 अगस्त, 2018 से प्रतिबंधित कीटनाशक

1. **बेनोमाईल** (Benomyl)
2. **कार्बाराइल** (Carbaryl)
3. **डायजिनॉन** (Diazinon)
4. **फेनारिमोल** (Fenarimol)
5. **फेन्थियॉन** (Fenthion)
6. **लिन्यूरॉन** (Linuron)
7. **मैथॉक्सी इथाइल मरकरी क्लोराइड** (Methoxy Ethyl Mercury Chloride)
8. **मिथाइल पैराथियॉन** (Methyl Parathion)
9. **सोडियम सायनाइड** (Sodium Cyanide)
10. **थियोमेटॉन** (Thiometon)
11. **ट्रायडमॉर्फ** (Tridemorph)
12. **ट्राइफ्लूरालिन** (Trifluralin)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

नया बाग लगाने के लिए : स्थान का चुनाव

- दिनेश कुमार, राजपाल दलाल एवं सूबे सिंह[1]
बागवानी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बागवानी एक लम्बे समय (कम से कम 20-25 वर्ष) के लिए खर्चा किये जाने वाला उपक्रम है, अत: बाग लगाते समय किसानों को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। बाग लगाते समय की गई गलतियों के कारण किसान को आर्थिक नुकसान का सामना करना पड़ सकता है।

आज के इस प्रतिस्पर्धी युग में आर्थिक रूप से सबल होना अति आवश्यक हो गया है। पारम्परिक कृषि से यह संभव नहीं है। हमारे किसानों की जोत भी छोटी होती जा रही है। अत: किसान को पारम्परिक कृषि के साथ-साथ आय के अन्य स्रोतों को भी अपनाना होगा। इस प्रतिस्पर्धी युग में किसान के लिए बागवानी एक सशक्त एवं मज़बूत विकल्प के तौर पर उभर के आया है। अत: किसान को पारम्परिक खेती के साथ-साथ बागवानी को भी अपनाना होगा।

बाग लगाते समय की गई गलतियों का कुछ वर्ष बाद पता चलता है। उस वक्त उनको ठीक करना बहुत मुश्किल व महंगा पड़ता है और किसान को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है, इसलिए बाग लगाने से पूर्व किसान निम्न बातों का ध्यान रखें :

स्थान का चुनाव

- नया बाग उस क्षेत्र में लगायें जहां पहले से बाग लगे हुए हैं, इससे किसान को देख-रेख, रख-रखाव, प्रशिक्षित मज़दूर, बाग में प्रयोग होने वाले यन्त्र, फसल की बिक्री व अन्य प्रकार की मदद साथी किसानों से मिल जाएगी।
- बाग से होने वाली उपज को अधिक समय तक नहीं रखा जा सकता है। यह जल्दी ही गलने-सड़ने लगती है, अत: बाग को पक्के रास्ते, सड़क, रेल मार्ग या बाज़ार के आस-पास लगाएं अथवा ऐसे स्थान पर लगायें जहां यातायात के साधन आसानी से उपलब्ध हो सकें और कम से कम समय में उनको बाज़ार भेजा जा सके व उचित बाज़ार भाव मिल सके।
- बाग के रख-रखाव व देख-रेख के लिए प्रशिक्षित मज़दूर आसानी से मिल सकें, ताकि फलों की तुड़ाई व ग्रेडिंग समय पर हो सके।
- बाग को उस क्षेत्र में न लगायें जहां कीट-पतंगों व रोगों का अधिक प्रभाव रहता है।
- फैक्ट्री व कारखानों के आस-पास वाले क्षेत्र जहां दूषित गैसों का उत्सर्जन अधिक होता है वहां बाग न लगाएं। जो फलदार पौधों की बढ़वार व उपज को बुरी तरह से प्रभावित करते हैं। आम के बाग को खासकर ईंट भट्ठे के आस-पास न लगायें।
- जहां बाग लगाएं उस जगह के आसपास वर्षा ऋतु में जल भराव या बाढ़ की स्थिति पैदा नहीं होनी चाहिए।

जलवायु : जिस स्थान पर बाग लगाना है उस स्थान की जलवायु का पौधों के विकास, फलत व अफलत पर प्रभाव पड़ता है, बाग की सफलता व असफलता मुख्यत: वहाँ की जलवायु के ऊपर निर्भर करती है। विशेष प्रकार की जलवायु के लिए विशेष प्रकार के फल व उसकी किस्म का चुनाव ही एक सफल व आर्थिक लाभकारी बाग को स्थापित करने में मददगार है। अत: किसान इन परिस्थितियों को अनदेखा न करें जैसे कि तापक्रम, वर्षा, आर्द्रता (हवा में नमी), सूर्य का प्रकाश, वायु, ओला वृष्टि और पाला।

भूमि : सभी प्रकार के फलदार पौधों को उपजाऊ भूमि की आवश्यकता है लेकिन हर पौधे को पूर्ण विकसित व एक अच्छी उपज देने के लिए विशेष प्रकार की भूमि की आवश्यकता होती है। भूमि का उपजाऊपन उसके भौतिक व रासायनिक गुणों के ऊपर निर्भर करता है इसकी जांच के लिए, जिस खेत में बाग लगाना है वहां की मिट्टी के नमूनों को भूमि एवं जल परीक्षण प्रयोगशाला में जांच करवाएं एवं भूमि की गुणवत्ता के आधार पर ही फलदार पौधे व उसकी किस्म का चुनाव करें। चिकनी तथा चिकनी-दोमट की अपेक्षा अच्छी मिश्रित, बलुई-दोमट या दोमट मिट्टी अधिक लाभकारी होती है। इस प्रकार की मिट्टी में पौधों को हवा, पानी व खनिज पदार्थ उचित मात्रा में मिल जाते हैं। ज़मीन में चौवा 10 फीट की गहराई तक नहीं होना चाहिए। अधिक पी.एच. मान व ई.सी., नमक व दलदली ज़मीन में बाग न लगायें।

सिंचाई का साधन : किसी भी बाग की सफलता के लिए अच्छी गुणवत्ता वाले सिंचाई के पानी की उचित व्यवस्था का होना अति आवश्यक है इसके लिए बाग नदी, नहर या तालाब के पास हों तो अच्छा है अगर सिंचाई का साधन ट्यूबवैल है तो उसके पानी की जांच, भूमि एवं जल परीक्षण प्रयोगशाला से करवा लें तदोपरांत फलदार पौधे व उसकी किस्म का चुनाव करें।

भूमि परीक्षण : बाग लगाने से पूर्व उस जगह की मिट्टी का परीक्षण अवश्य करवायें। लगभग सभी प्रकार के फलदार वृक्ष भूमि की पी.एच. मान 6.5 से 7.5 तक अच्छी प्रकार से वृद्धि करते हैं। मिट्टी परीक्षण के लिए नमूनों को निम्न गहराई से लें:

ऊपरी 15 सैं.मी., 15 से 30 सैं.मी., 30 से 60 सैं.मी., 60 से 90 सैं.मी., 90 से 120 सैं.मी., 120 से 150 सैं.मी.। सभी नमूनों को अलग-अलग साफ कपड़े की थैली में भरकर, उस पर अच्छी प्रकार गहराई अंकित कर प्रयोगशाला से जांच करवायें तदोपरांत ही फसल व किस्म का चुनाव करें। फलदार वृक्षों के लिए गहरी भूमि का होना आवश्यक है, भूमि में एक से दो मीटर तक कंकर या सख्त सतह नहीं होनी चाहिए।

सड़क तथा मकान : बाग के अन्दर सड़क या रास्तों का निर्माण पास के क्षेत्र से थोड़ा उठा हुआ तथा इस प्रकार से होना चाहिए कि रास्तों द्वारा उद्यान के प्रत्येक भाग तक आसानी से पहुंचा जा सके जिससे बाग की उपज को बाज़ार भेजने में कम से कम व्यय हो।

बाग के अन्दर मकान का होना भी परम आवश्यक है। मकान का आकार बाग की आवश्यकता अनुसार होना चाहिए। यदि बाग में ऐसे फल वृक्ष लगाए गए हैं जिनकी उपज को कुछ समय तक रोका जा सकता है, तो उनको संग्रह करने के लिए भी मकान का होना आवश्यक है, बाग की रखवाली करने वाले के लिए एक मकान का होना अति आवश्यक है। मकान की स्थिति बाग के अन्दर ऐसे स्थान पर हो जहां से सुविधापूर्वक बाग की देख-रेख की जा सके। सड़क पर मोड़ 900 के कोण पर बनाना चाहिए।

सिंचाई तथा जल निकास की नालियां : बाग के अन्दर सिंचाई तथा जल निकास की मुख्य नालियों को छोड़कर उप-नालियों के लिए अतिरिक्त क्षेत्र न देकर उनको वृक्षों के बीच ही के क्षेत्र में बनाना चाहिये, इनका विन्यास उद्यान क्षेत्र के अन्दर इस प्रकार से होना चाहिए कि बाग के

[1]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

सभी भागों में पानी सुविधापूर्वक पहुंचाया जा सके तथा अनावश्यक पानी की मात्रा को सुगमता पूर्वक निकाला जा सके।

जिन क्षेत्रों में पानी की कमी है व पानी की गुणवत्ता अच्छी नहीं है वहां टपका सिंचाई के प्रयोग से अच्छी पैदावार ली जा सकती है, इस विधि के प्रयोग से पौधों में खाद व कीटनाशक दवाओं को भी आसानी से जड़ों तक पहुंचाया जा सकता है तथा इसके प्रयोग से किसान पानी, खाद, कीटनाशक दवाओं व समय की बचत कर सकते हैं व बाग को अधिक आर्थिक बनाया जा सकता है।

बाड़ : बाग लगाने से पहले जानवरों से इसकी सुरक्षा का प्रबन्ध अति आवश्यक है। इसके लिए बाग की भूमि के चारों और बाड़ लगानी चाहिए। बाड़ कांटेदार तार, बिना कांटेदार तार, तार की जाली, छोटी दीवार बनाकर व ऊपर कांटेदार तार एवं कांटेदार पौधों या कांटेदार पौधे दोनों से साथ-साथ बनाई जा सकती है। बाग लगाते समय प्रारम्भ में कांटेदार तार से बनायें और बाद में कांटेदार पौधे की बाड़ इसके साथ-साथ लगा दें। तार व पौधों के बीच कम से कम 1.5 मी. का फासला रखें। कांटेदार पौधों द्वारा बनाई गई बाड़ सस्ती पड़ती है, लेकिन यह अधिक स्थान घेरती है तथा तैयार होने में समय लेती है और सदैव कटाई-छंटाई एवं खाद पानी इत्यादि की आवश्यकता रहती है। यह देखने में अच्छी लगती है व आर्थिक दृष्टि से भी लाभकारी है, इसके लिए उत्तम पौधे जंगल-जलेबी, कागज़ी नींबू, करौंदा व गलगल (खट्टा) इत्यादि हैं।

वायु रोधी बाड़ : तेज़, गर्म (लू) एवं ठण्डी वायु से फल वृक्षों को बचाने के लिए तथा वाष्पोत्सर्जन एवं वाष्पीकरण द्वारा आवश्यकता से अधिक नष्ट होने वाले पानी को बचाने के लिए बाग चारों ओर से वायुरोधी बाड़ से घिरा होना चाहिये, परन्तु फल वृक्षों तक उचित मात्रा में सूर्य का प्रकाश पहुंचे इसलिए वायुरोधी को केवल उत्तर एवं पश्चिम की दिशाओं में ही लगाया जाता है। वायुरोधियों के द्वारा सुरक्षित उद्यानों की फलत तथा पैदावार असुरक्षित बागों की अपेक्षा अच्छी होती है। वायुरोधियां, फल वृक्षों को प्रतिकूल हवाओं के प्रभाव से बचाने के लिये, किनारों पर लगाए पेड़ों की पंक्तियां होती हैं, जिनकी उचित वृद्धि के लिए लगभग छः मीटर चौड़े स्थान की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु यह चौड़ाई जलवायु की प्रतिकूलता पर निर्भर करती है जहां पर तेज़ हवायें, लू या ठण्डी हवायें अधिक चलती हैं वहां पर अपेक्षाकृत अधिक चौड़ी वायुरोधियां लगानी चाहिएं। वायुरोधी में अधिक ऊंचाई व अधिक शाखायें उत्पन्न करने की शक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती है इनका प्रभाव इनकी ऊंचाई के 20 गुणा दूरी तक पाया जाता है। इसके लिए उत्तम पौधे-जामुन, शीशम, बीजू आम, यूकेलिप्टस, बांस, कमरख व शहतूत इत्यादि हैं। |

लेखकों से अनुरोध

हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। लेख में अंग्रज़ी शब्दों का प्रयोग न करें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें**। अपना लेख हमें ई-मेल पर भी भेज सकते हैं :

haryanakhetihau@gmail.com

अमरूद की तुड़ाई, भंडारण एवं प्रसंस्करण

- अंकित गावरी, जीत राम शर्मा एवं प्रवीण
उद्यान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अमरूद, भारतीय उपमहाद्वीप का एक लोकप्रिय फल है। इस फल की अनुकूलता और सूखा सहन करने की शक्ति के कारण देश के लगभग सभी हिस्सों में इसे लगाया जा सकता है। अमरूद एक पौष्टिक गुणों से भरपूर फल है। यह एस्कॉर्बिक एसिड, पेक्टिन, कैल्शियम, इत्यादि का समृद्ध स्त्रोत है और इसलिए इसे अक्सर 'आम आदमी का सेब' भी कहा जाता है। अमरूद की फसल कम खर्च में भी औसत पैदावार देती है जिस से किसान की आय में वृद्धि होती है। अमरूद जल्दी खराब होने वाला फल है। तुड़ाई के बाद उचित प्रबंधन न होने के कारण उत्पादित फलों का लगभग 25-30 प्रतिशत भाग नष्ट हो जाता है। अतः उचित प्रबंधन से इस नुकसान को बचाया जा सकता है।

परिपक्वता एवं तुड़ाई : फलों की गुणवत्ता एवं भंडारण क्षमता तुड़ाई के समय उसकी परिपक्वता पर आधारित है। अतः फल को अपरिपक्व अवस्था में तोड़ना चाहिए। हरियाणा में अमरूद की दो फसल ली जाती हैं एक शीतकालीन एवं दूसरी वर्षाकालीन। शीतकालीन फसल में अधिक गुणवत्ता पाई जाती है अतः किसान के लिए लाभकारी होती है। फलों की परिपक्वता बहुत से मानक जैसे रंग परिवर्तन, विशिष्ट घनत्व, अम्लता, खटास, कुल घुलनशील ठोस इत्यादि के आधार पर निर्धारित की जाती है। यह मानक विभिन्न व्यापारिक किस्मों के लिए विभिन्न होते हैं आमतौर पर फूल लगने के लगभग 4-5 महीने बाद अमरूद का फल तैयार हो जाता है, जब फल का रंग गहरे हरे रंग से पीले हरे रंग या हलके हरे रंग में बदल जाता है। तुड़ाई अधिकतर हाथों से की जाती है। वर्षाकालीन फसल में फलों की तुड़ाई प्रत्येक दूसरे या तीसरे दिन करते हैं, जबकि शीतकालीन फसल 4-5 दिनों के अंतराल पर तोड़ी जाती है। तुड़ाई कैंची से थोड़ी सी शाखा व एक दो पत्ते रखकर करनी चाहिए। फलों की तुड़ाई हमेशा सुबह के समय करनी चाहिए और तुड़ाई करते समय यह खास ध्यान रखना चाहिए कि फल पर किसी प्रकार की खरोंच या चोट नहीं लगनी चाहिए।

छंटाई एवं वर्गीकरण : छंटाई एवं वर्गीकरण के बाद ही फलों को बेचने से अधिक लाभ होता है। फलों की तुड़ाई उपरांत सबसे पहले फलों की छंटाई की जाती है जिसमें चोटिल, चोटें एवं अपरिपक्व फलों को निकाल कर अलग कर दिया जाता है। फलों की छंटाई के बाद वर्गीकरण किया जाता है। फलों को रंग, आकार, वज़न, परिपक्वता आदि के आधार पर अलग-अलग वर्गों में विभाजित किया जाता है। वर्गीकरण से फलों की दुगनी कीमत प्राप्त होती है।

पेटीबंद : फलों के भंडारण, विपणन एवं परिवहन के लिए पेटीबंदी बहुत आवश्यक है। फलों को मुख्यतः प्लास्टिक की क्रेट में पेटीबंद किया जाता है परन्तु अमरूद के पेटीबंद के लिए मुख्यतः गत्ते की पेटियां इस्तेमाल की जाती हैं जो कि सी. एफ. बी. के नाम से जानी जाती हैं। इन बक्सों में वायु संचार के लिए छिद्र होते हैं। पेटीबंद करते समय इस बात का खास ध्यान रखना चाहिए कि बक्सों में फल रगड़ खाकर नष्ट न हों। इसलिए रगड़ से बचाने के लिए फलों को पेटीबंद करने से पहले प्रत्येक फल पर अखबारी कागज से लपेट देना चाहिए।

भंडारण : अमरूद के फल शीघ्र खराब हो जाते हैं। परिपक्व फल

(शेष पृष्ठ 26 पर)

सितम्बर मास के कृषि कार्य



फसलों में

बाजरा

पहले पखवाड़े में सिट्टे आने पर भारी ज़मीन में प्रति एकड़ 28 किलोग्राम यूरिया देकर सिंचाई करें और रेतीली ज़मीन में पानी देने के बाद बत्तर आने पर यूरिया डालें और गोड़ी करें। इसके लिए पहिए वाले कसौले का प्रयोग करें। पछेती बोई फसल में पत्तों पर भूरे दाग दिखाई दें तो 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट व 2.5 प्रतिशत यूरिया का घोल छिड़कें (जिसके लिए एक किलोग्राम ज़िंक सल्फेट, 5 किलोग्राम यूरिया तथा 200 लीटर पानी के घोल का प्रयोग करें) कम से कम दो छिड़काव 10-12 दिन के अंतर पर हमेशा ओस उतरने के बाद करें। यदि वर्षा की संभावना हो तो उस दिन छिड़काव न करें। घोल बनाते समय 10-12 लीटर पानी में पहले ज़िंक सल्फेट को घोलें, फिर यूरिया को घोलें। इसके बाद पूरे घोल में लकड़ी घुमाकर अच्छी तरह मिला लें। अच्छी वर्षा न होने पर सिंचाई करें।

चिडियों से फसल को बचाने के उपाय करें।

जहां अरगट या चेपा दिखाई दे वहां रोगग्रस्त बालियों को नष्ट कर दें तथा 400 मि.ली. क्युमान-एल (Cuman-L) का 200 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। यदि बाजरे के खेत में या मेढ़ों पर घूमर घास खड़ी हो तो उसे भी अवश्य काट दें ताकि इनके संक्रमित फूलों से बाजरे पर रोग और न बढ़ सके।

धान

सिंचाई 5-6 सैं.मी. से अधिक गहरी कभी न करें। संभव हो तो पानी हर हफ्ते बदलते रहें। यदि पत्तों पर चाकलेट रंग के धब्बे दिखाई दें तो 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट व 2.5 प्रतिशत यूरिया के घोल के कुल 2-3 छिड़काव 10-12 दिन के अंतर पर करें।

तकनीकी सहायता :

- एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
- अनिल कुमार गोदारा, विभागाध्यक्ष (बागवानी)
- डी. एस. दुहन, सहायक वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान)
- तरुण वर्मा, जिला विस्तार विशेषज्ञ (कीट विज्ञान)
- रोहतास कुमार, सहायक वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
- वी. एस. हुड्डा, सहायक वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
- देवेन्द्र सिंह बिढान, सहायक प्राध्यापक (पशु उत्पादन प्रबन्धन)
- राजेश दहिया, सहायक प्राध्यापिका (गृह विज्ञान)
- सूबे सिंह, सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

खेतों में लगातार अधिक पानी खड़ा रहने से जीवाणुज अंगमारी (बैक्टीरियल लीफ ब्लाइट) की उत्पत्ति की संभावना बढ़ जाती है। ऐसी समस्या सड़क के साथ व नहर की नालियों के साथ, जहां पेड़ों की छाया हो, ज़्यादा दिखाई देती है। इसलिए खेतों में पानी अधिक न खड़ा रहने दें। अगर किसी खेत में बीमारी दिखाई दे तो उस खेत का पानी रोग रहित खेत में न जाने दें। आभासी कंडुआ से प्रभावित बालियों के ऊपर कागज़ की थैली चढ़ाकर बालियों को आधार से काटकर नष्ट कर दें।

इस समय धान को मलंगा या गंधी बग (राईस बग) से बचाव हेतु 10 किलोग्राम मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत का धूड़ा प्रति एकड़ करें। हरियाणा में सफेद व भूरे तेले से बचाव हेतु 250 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें या 10 किलोग्राम कार्बेरिल 5 प्रतिशत या मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत का धूड़ा प्रति एकड़ धूड़ें। आभासी कंडुआ (फाल्स स्मट) बीमारी की रोकथाम के लिए 500 ग्राम ब्लाइटॉक्स या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड दवा प्रति एकड़ 200 लीटर पानी में मिलाकर 50 प्रतिशत बाली निकलने की अवस्था में छिड़काव करें।

मक्की

जून में बीजी गई मक्की की इस माह के अंत में कटाई करें। संकर व विजय किस्मों के पौधे फसल पकने पर भी हरे रहते हैं।

मक्की को अंगमारी व अन्य पूर्ण रोगों से बचाव के लिए ज़ाइनेब (डाईथेन ज़ैड-78) या मैन्कोज़ेब (डाईथेन एम-45) की 600 ग्राम मात्रा को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर 10-15 दिन के अंतर पर पुन: छिड़कें।

कपास

वर्षा न हो तो दूसरे पखवाड़े में पानी दें। देसी किस्मों में तीसरे पखवाड़े में चुनाई शुरू कर दें।

टिण्डा गलन की रोकथाम के लिए 800 ग्राम ब्लाईटॉक्स/ब्ल्यू कॉपर/कॉपर ऑक्सीक्लोराइड तथा 6-8 ग्राम स्ट्रैप्टोसाइक्लिन या 30-40 ग्राम प्लाण्टोमाइसिन का मिश्रित घोल बनाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़कें और आवश्यकतानुसार 15 दिन के बाद दोहराएं।

टिण्डों की सूण्डियों की रोकथाम हेतु आवश्यकता हो तो एक छिड़काव सिफारिश की गई कीटनाशक का अवश्य करें। मीलीबग के नियंत्रण के लिए परपोषी पौधों को नष्ट करें व सिफारिश की गई कीटनाशकों का छिड़काव करें।

गन्ना

बिजाई के पाँच या छ: सप्ताह बाद पत्तियों के मध्य शिरा के पास सफेद-पीली धारियों का प्रकट होना जस्ते की कमी का लक्षण है। इसके लिए 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट और 2.5 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव 10-14 दिन के अंतर पर करें।

वर्षा के पानी के निकास का प्रबंध अवश्य करें। यदि ईख की बंधाई न की गई हो तो इस माह में बंधाई का काम पूरा कर लें।

यदि कंडुआ रोग नज़र आए तो सावधानी से गन्ने की दुमों के ऊपर थैली चढ़ाकर नीचे से काट लें और फिर पूरे पौधे को उखाड़कर नष्ट कर दें। लाल सड़न रोग के प्रकोप से ऊपर से प्राय: तीसरी पत्ती पीली पड़ने लगती है। ऐसे गन्नों को खेत से उखाड़कर जला दें। गन्ने के गुरदासपुर छेदक कीड़े की रोकथाम के लिए हर सप्ताह गन्ने के ऊपर का सूखा भाग काट कर नष्ट करते जाएं। अष्टपदी (रैड माईट) से बचने के लिए 600 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। यदि जड़ बेधक का प्रकोप हो तो 8 कि.ग्रा. क्विनलफॉस 5-जी प्रति एकड़ (अगस्त के अंत में न डाला हो तो) अब तुरंत डाल दें।

मूंगफली

जिन इलाकों में 50 से 70 सैं.मी. वर्षा होती है वहां दो से तीन सिंचाई काफी हैं। पहली फूल आने पर तथा दूसरी सिंचाई ज़रूरत अनुसार फल बनने के दौरान करें।

यदि खरपतवार हों तो पहले हफ्ते में निराई करके निकाल दें। हो सके तो एक सिंचाई करें। पत्तियों पर भूरे-लाल रंग के धब्बे टिक्का नामक रोग की पहचान हैं, जिनकी रोकथाम के लिए लक्षण दिखते ही 400 ग्राम डाईथेन एम-45 या 200 ग्राम बाविस्टिन का 200 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ खेत पर आवश्यकतानुसार 2-3 छिड़काव 10-15 दिन के अंतर पर करें। बालों वाली सूण्डी का आक्रमण हो तो 250 मि.ली. मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. या 500 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. या 200 मि.ली. डाईक्लोर्वास 76 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

तोरिया या सरसों

तोरिया की इस माह के पहले पखवाड़े तक बिजाई अवश्य कर लें व माह के अंत तक सरसों की बिजाई शुरू करें। अगले माह राया की बिजाई के लिए खेत की तैयारी शुरू कर दें। केवल उन्नत किस्में बोएं। तोरिया की किस्म संगम, टी एल-15 व टी एच-68, देसी सरसों की किस्म बी एस एच-1, राया-सरसों की आर एच-30, वरुणा व आर एच-781, आर एच-819, लक्ष्मी, आर एच-9304 (वसुन्धरा), आर एच-9801 (स्वर्ण ज्योति) और आर बी-9901 (गीता), आर बी 50, आर एच 0119, आर एच 406, आर एच 0749, आर एच 725, पीली सरसों की किस्म वाई एस एच 0401 तारामीरा की किस्म टी-27 ही बोएं। इन सभी तिलहनों की बिजाई सिंचित क्षेत्रों में सवा किलोग्राम व बारानी क्षेत्रों में 2 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ लेकर कतारों में 30 सैंटीमीटर की दूरी पर करें। ध्यान रखें कि बिजाई पोरा विधि से इस प्रकार करें कि बीज 4-5 सैंटीमीटर से अधिक गहरा न पड़े।

सरसों को तना गलन रोग से बचाने के लिए बिजाई से पहले बीज को 2 ग्राम बाविस्टिन नामक दवा से प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से उपचारित करें। बिजाई के समय सिंचित तोरिया तथा सरसों में 25 किलोग्राम यूरिया तथा 50 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट प्रति एकड़ के हिसाब से खेत में पोर दें व बाकी 25 किलोग्राम यूरिया पहली सिंचाई के समय डाल दें। बारानी इलाकों में तोरिया, सरसों व बंगा सरसों के लिए 35 किलोग्राम यूरिया तथा 50 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट प्रति एकड़ बिजाई के समय पोर दें। नहरी इलाकों में राया के लिए क्रमश: 35 किलोग्राम यूरिया व 75 किलोग्राम सुपरफास्फेट प्रति एकड़ बिजाई के समय खेत में पोर दें। यदि ज़मीन रेतीली हो और गंधक की कमी हो तो फास्फोरस का स्रोत सिंगल सुपर फास्फेट ही चुनें। यदि फास्फोरस डी.ए.पी. द्वारा डालें तो खेत को तैयार करते समय ही 100 किलोग्राम जिप्सम प्रति एकड़ बिखेर कर खेत में मिला दें क्योंकि यह गंधक का एक सस्ता एवं अच्छा स्रोत है। गंधक वाले रसायनों के प्रयोग से जहां तिलहनी फसलों की उपज में वृद्धि होती है वहां तेल प्रतिशतता में भी भारी सुधार होता है। ध्यान रखें कि सिंगल सुपर फास्फेट के साथ जिप्सम डालने की आवश्यकता नहीं है। यदि ज़मीन में जस्ते की कमी हो तो प्रति एकड़ बिजाई के समय 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट 20-25 किलोग्राम सूखी भुरभुरी मिट्टी में मिलाकर खेत को तैयार करते समय मिला दें। राया में एजोटोबैक्टर के टीके का प्रयोग लाभप्रद है।

बरसीम

इस माह के आखिरी सप्ताह में बरसीम की बिजाई शुरू कर दें। बिजाई के लिए केवल बरसीम की सिफारिशशुदा किस्मों जैसे मैस्कावी हिसार बरसीम-1 व हिसार बरसीम-2 के शुद्ध बीजों को ही काम में लाएं। खेत को इस प्रकार तैयार करें कि मिट्टी भुरभुरी हो जाए, खरपतवार बिल्कुल न हों व खेत समतल हो। बिजाई से पहले खेत में पानी भरें। बीज, छिट्टा विधि द्वारा खेत में एकसार डालें। ध्यान रखें कि बिजाई के समय हवा न चलती हो। यदि तेज़ हवा चल रही हो तो बीज को खेत में छिड़क कर ऊपरी मिट्टी में मिलाकर शीघ्र सिंचाई कर दें। ध्यान रहे कि बीज में कासनी व अन्य खरपतवार के बीज न हों। बरसीम की पहली अच्छी कटाई लेने के लिए बरसीम के बीज के साथ 500 ग्राम जापानी सरसों या चीनी सरसों या जई का 10 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ काफी है।

एक एकड़ की बिजाई के लिए लगभग 10 किलोग्राम बीज पर्याप्त होता है। बिजाई के समय 22 किलोग्राम यूरिया तथा 175 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट प्रति एकड़ के हिसाब से खेत में डालें। यदि उपर्युक्त दोनों उर्वरक उपलब्ध न हों तो प्रति एकड़ 50 किलोग्राम डी.ए.पी. बिजाई के समय डाल सकते हैं। अगर यह खेत में पहली बार बीजी जा रही हो तो राइजोबियम का टीका लगाना न भूलें। यदि बरसीम के साथ जई की मिश्रित फसल लेनी है तो 35 कि.ग्रा. अतिरिक्त यूरिया प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई के समय देनी चाहिए। तना गलन रोग से बचाव के लिए रोगरोधी किस्म हिसार बरसीम-1 या हिसार बरसीम-2 उगाएं।

चना

इन फसलों की बिजाई के लिए बीज का अभी से प्रबंध करें। किसी विश्वस्त बीज संस्था से संपर्क करें। बारानी क्षेत्रों में चने की बिजाई के लिए वर्षा के पानी को एकत्रित करने के लिए इस माह आवश्यकतानुसार खेत की जुताई करें ताकि खरपतवार निकल जाएं। हर बार सुहागा लगाएं ताकि नमी बनी रहे। चने की बुवाई के लिए ट्रैक्टर चालित रीजर-सीडर का प्रयोग करें। यह यंत्र बारानी तथा सिंचित दोनों क्षेत्रों में चने की बुवाई के लिए उपयुक्त है। बुवाई यंत्रों का ठीक से समायोजन करके रख लें ताकि

बुवाई के समय कोई कठिनाई न आये।

सोयाबीन, मूँग व उड़द

माह के अंत में सिंचाई करें। ध्यान रखें कि अधिक पानी से पौधे गल जाते हैं। विषाणु रोगों को फैलाने वाले कीड़ों की रोकथाम के लिए 400 मिलीलीटर मैलाथियान का 250 लीटर पानी में घोल बनाकर एक एकड़ पर छिड़काव करें।

किसी-किसी वर्ष इन फसलों पर बिहार की बालों वाली सूण्डी, जिसे कातरा भी कहते हैं, भारी क्षति पहुंचाती है। इसकी रोकथाम के लिए 500 मि.ली. एकालक्स 25 ई. सी. या 250 मि.ली. न्यूवाक्रान/मोनोसिल 36 एस.एल. या 200 मि.ली. न्यूवान 76 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

अनाज का सुरक्षित भण्डार

भण्डारों में रखे अनाज की जांच करें। यदि कीड़ा लगा हो तो एल्यूमिनियम फास्फाइड (सैल्फास/क्विकफास/फास्फ्यूम) की टिक्कियां डालें। भण्डार हवाबंद हों तो 1000 घन फुट (28 घन मीटर) के भण्डार के लिए 7 टिक्कियां काफी हैं परंतु इसमें पूरी सावधानी बरतें।



सब्जियों में

टमाटर

अगस्त में रोपी गई पौध की देखभाल करें तथा नाइट्रोजन खाद की पहली मात्रा रोपाई के लगभग 4-5 सप्ताह बाद डालें। एक एकड़ खेत में लगभग 14 किलोग्राम नाइट्रोजन (30 किलोग्राम यूरिया) देकर सिंचाई करें। नाइट्रोजन खाद की दूसरी मात्रा फसल में फूल आने की अवस्था में देनी होती है। यदि अधिक वर्षा हो तो जल निकास का प्रबंध करें तथा सूखा होने पर सिंचाई करें। हानिकारक कीड़ों हड्डा बीटल, हरा तेला और सफेद मक्खी) का प्रकोप होने पर 400 मिलीलीटर मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। विषाणु रोग को फैलाने वाली सफेद मक्खी की भी मैलाथियान से रोकथाम हो जाती है।

बैंगन

खड़ी फसल में नाइट्रोजन खाद की दूसरी मात्रा (30 कि.ग्रा. यूरिया खाद प्रति एकड़) देकर सिंचाई करें। हानिकारक कीटों से बचाव के लिए पिछले माह बताई गई कीटनाशक दवाओं का क्रम से प्रयोग करें।

मिर्च

नाइट्रोजन खाद की दूसरी मात्रा (17 किलोग्राम यूरिया खाद प्रति एकड़) देकर सिंचाई करें। फसल को हानिकारक कीटों से बचाने के लिए पिछले माह बताई गई दवाइयों का प्रयोग करें। फल का गलना व टहनीमार रोग के नियंत्रण के लिए 400 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराईड या इण्डोफिल-45 को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से 10-15 दिन के अंतर पर छिड़कें। फल-फूल गिरने से बचाव के लिए प्लेनोफिक्स या वर्धन नामक दवा के घोल का छिड़काव करें। 40 मिलीलीटर दवा को 180 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ फसल पर पहला छिड़काव फूल आने पर करें तथा दूसरा छिड़काव उसके लगभग 3 सप्ताह बाद करें।

भिण्डी

खड़ी फसल में नाइट्रोजन खाद की दूसरी मात्रा (28 किलोग्राम यूरिया खाद प्रति एकड़) देकर सिंचाई करें। हानिकारक कीड़ों (हरा तेला व चित्तीदार सूण्डी) से बचाव के लिए पिछले माह बताई गई दवा को क्रम से 15 दिन के अंतर पर बारी-बारी से छिड़कें। दवा के छिड़काव से पहले फलों को तोड़ लें तथा दवा प्रयोग के बाद एक सप्ताह तक फलों को खाने के काम में न लें।

कद्दू जाति की सब्जियां

नाइट्रोजन खाद की दूसरी मात्रा (12 किलोग्राम यूरिया खाद प्रति एकड़) देकर सिंचाई करें। हानिकारक कीटों व बीमारियों से रक्षा करें। इस माह फल की मक्खी का प्रकोप बहुत होता है। इसके लिए 250 मि.ली. फैनिट्रोथियान 50 ई.सी. या 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 1250 ग्राम गुड़ और 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। मैलाथियान दवाई हरा तेला, सफेद मक्खी और अल के लिए भी ठीक है।

शकरकन्दी

शकरकन्दी की फसल में नाइट्रोजन खाद की दूसरी मात्रा (35 किलोग्राम यूरिया खाद प्रति एकड़) देकर मिट्टी चढ़ा दें तथा सिंचाई करें। यदि आवश्यकता हो तो कीटनाशक दवाओं का प्रयोग करें।

अरबी

अरबी की फसल में नाइट्रोजन खाद की दूसरी मात्रा (17 किलोग्राम यूरिया खाद प्रति एकड़) देकर मिट्टी चढ़ा दें तथा सिंचाई करें। अंगमारी या झुलसा रोग से बचाव के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या जिनेब (600 ग्राम/एकड़) का घोल 200 लीटर पानी में बनाकर छिड़काव करें और आवश्यकता पड़ने पर 15 दिन के अंतर पर दोहराएं।

फूलगोभी

अगेती किस्म (पूसा कातकी) के खेत की उचित देखभाल करें। सिंचाई करें तथा रोपाई के लगभग तीन सप्ताह बाद प्रति एकड़ 35 किलोग्राम किसान खाद (16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन) तथा फूल आने की अवस्था में भी 35 किलोग्राम यूरिया खाद (16 किलोग्राम नाइट्रोजन) से टॉप ड्रैसिंग करें। नाइट्रोजन खाद देने के बाद सिंचाई करें। मध्य मौसमी किस्मों (हिसार-1) की पौध नर्सरी में तैयार हो रही होगी, तब तक खेत की तैयारी करें। पौध इस माह के अंत तक या अक्तूबर के शुरू में लगाने योग्य हो जाएगी। अगेती किस्मों में पौध लगाने की दूरी 45-30 सैं.मी. तथा मध्यम वर्ग में 60-60 सैं.मी. रखें। पछेती किस्म (स्नोबाल-16) की बिजाई भी नर्सरी में इस माह के अंत में शुरू की जा सकती है। इस समय अगेती गोभी को सूण्डी आदि के प्रकोप से बचाने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ फसल पर हर 10 दिन बाद छिड़काव करें।

बन्दगोभी व गांठगोभी

बन्दगोभी व गांठगोभी की बिजाई, पौध तैयार करने के लिए, नर्सरी में

करें। बन्दगोभी की अगेती किस्में, प्राइड आफ इण्डिया या गोल्डन लगाएं। एक एकड़ के लिए लगभग 200-250 ग्राम बीज की आवश्यकता होगी। गांठ-गोभी की किस्म, अर्ली ह्वाईट वियाना प्रयोग करें। 800 ग्राम बीज प्रति एकड़ खेत के लिए पौध तैयार होने में लगभग 5-6 सप्ताह का समय लगेगा। इस बीच खेत की तैयारी करें। बीज को बोने से पहले कैप्टान नामक दवा से उपचारित (2.5 ग्राम दवा प्रति किलोग्राम बीज की दर से) करें।

पालक

बिजाई के लगभग 4 सप्ताह बाद नाइट्रोजन खाद की पहली मात्रा दें तथा उसके लगभग 4 सप्ताह बाद दूसरी मात्रा देकर सिंचाई करें। प्रत्येक कटाई के बाद 16 किलोग्राम नाइट्रोजन खाद (35 कि.ग्रा. यूरिया) प्रति एकड़ की दर से दें तथा उसके बाद सिंचाई करें। पालक की नई बिजाई भी इस माह कर सकते हैं।

मूली, शलगम व गाजर

बिजाई के लगभग एक माह बाद 13 किलोग्राम नाइट्रोजन (26 किलोग्राम यूरिया खाद) प्रति एकड़ देकर मिट्टी चढ़ा दें तथा सिंचाई करें। बोने से पहले बीज का कैप्टान या थाइरम से उपचार (3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) करें।

खरीफ प्याज़

रोपाई की गई फसल की देखभाल करें। खरपतवार निकालें, सिंचाई करें व जल का निकास करें।

अन्य सब्जियां

आलू के लिए खेत की तैयारी करें तथा अच्छे बीज (कुफरी चन्द्रमुखी, कुफरी जवाहर, कुफरी सिंदूरी, कुफरी बादशाह या कुफरी सतलुज, कुफरी बहार व कुफरी पुठकर किस्में 10-12 क्विंटल/एकड़ की दर से) का प्रबंध करें। सलाद की बिजाई नर्सरी में इस माह की जा सकती है। एक एकड़ के लिए 300-400 ग्राम बीज की आवश्यकता होगी। अगेती मेथी तथा धनिया (हरी सब्जी) की भी बिजाई इस माह की जा सकती है।

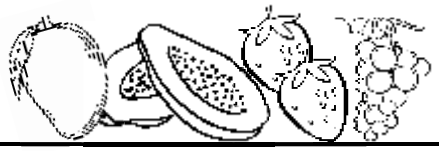

फलों में

फलदार पौधे लगाने हेतु वर्षा का मौसम सबसे अच्छा रहता है। जिस दिन हल्की वर्षा हो, उस दिन आप अमरूद, आंवला, बेर, किन्नो, बेल पत्थर, आम, चीकू इत्यादि के पौधे लगा सकते हैं।

फल उत्पादकों को जिन बातों की तरफ ध्यान देना है वे हैं-पौधे लगाना, नये लगाये हुए पौधों की देखभाल करना, खाद डालना, निराई-गोड़ाई करना, रबी की फसल की बिजाई के लिए कतारों के बीच ज़मीन तैयार करना आदि। अगर पौधे कमज़ोर दिखाई देते हों तो उनमें दो बार (75 ग्राम प्रति पौधा) यूरिया खाद डालें और सिंचाई करें। नींबू वर्गीय पौधों में टहनियां तेज़ी से बढ़ती हैं और इनके पत्ते प्राय: बड़े होते हैं। इस तरह की टहनियां पेड़ के आकार को बिगाड़ देती हैं। इसलिए ये वाटर स्पराउट काट दें। सूक्ष्म तत्व के दो छिड़काव पौधों पर करें। पहले छिड़काव में ज़िंक सल्फेट एक कि.ग्रा., यूरिया 2 कि.ग्रा. को 200 लीटर पानी में मिलाकर मई-जून में करें। दूसरा छिड़काव अगस्त-सितम्बर में करें। नींबू जाति के फलों में तुड़ाई से पूर्व फलों के गिरने की समस्या होती है। इस समस्या को रोकने के लिए 2,4-डी-6 ग्राम, ज़िंक सल्फेट 3 कि.ग्रा., 1.5 कि.ग्रा. चूना और आरियोफन्जिन 12 ग्राम को 550 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

जिन फलदार पौधों में छाल खाने वाली सूण्डी की समस्या है उनमें दवाई मिले घोल का कीड़े के सुराख के चारों तरफ लेप कर दें। 10 लीटर पानी में 10 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. या मिथाईल पैराथियान 50 ई.सी. मिलाकर लेप बनाएं।

अंगूर

बालों वाली सूण्डियां पत्तों को बड़ी तेज़ी से खाती हैं। यदि आवश्यकता हो तो 500 लीटर पानी में 400 मि.ली. डाइक्लोरवास 76 ई.सी. घोल कर एक एकड़ में छिड़काव करें। यदि वर्षा लगातार होती रहे तो बीमारियों को रोकने के लिए 0.2 प्रतिशत बाविस्टिन (2 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) का घोल बनाकर इस माह के दूसरे सप्ताह में छिड़काव करें। पौधों में सिंचाई न करें।

नींबू जाति के बाग

नींबू जाति के पौधों को कीड़ों से बचाने के लिए 500 मि.ली. मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ बाग में छिड़काव करें।

अमरूद

यदि पिछले महीने खाद न डाली हो तो इस महीने खाद व उर्वरक पौधों की उम्र के हिसाब से डालें। उक्ठा (विल्ट) रोग शुरू हो जाए तो हर पौधे के थांवले में 15 ग्राम बाविस्टिन डालकर पानी लगा दें। पौधों पर 3 ग्राम ज़िंक सल्फेट10 ग्राम यूरिया को 1 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।



पशुओं में

गाय-भैंस

वर्षा में जोहड़ों का पानी पीने से पशुओं में पेट के कीड़ों के अतिरिक्त कुछ छूत के रोग भी हो जाते हैं। अत: उन्हें ऐसा पानी मत पीने दें। पशु के गोबर की जांच भी समय-समय पर करवाते रहना चाहिए और अपने पशु चिकित्सक के परामर्श से छोटे और बड़े पशुओं को कृमिनाशक दवा पिलाएं।

यदि आपके पशु मिट्टी खाते हैं तो हो सकता है कि उनके पेट में कीड़े हैं या उनके भोजन में कुछ आवश्यक तत्वों की कमी हो तो उन्हें संतुलित आहार के साथ-साथ 50-60 ग्राम खनिज मिश्रण रोज़ाना दें व कृमिनाशक दवा पिलाएं।

इस माह पशुओं में प्रसूति होने की अधिक संभावना के कारण गाय-भैंसों को आराम से पचने वाला चारा दें। हरे चारे के साथ-साथ दाना व खनिज मिश्रण दें। यदि पशुओं को बच्चा जनने में कठिनाई हो तो उससे स्वयं छेड़छाड़ न करें। अपने समीप के पशु चिकित्सक से परामर्श लें।

नवजात बच्चों को जन्म से आधे से 1 घण्टे के अंदर-अंदर तथा कम से कम 3-4 दिन तक खीस अवश्य पिलानी चाहिए। इससे उनका हाज़मा ठीक रहता है तथा बीमारियों से बचाव में भी मदद मिलेगी। जेर गिरने का इन्तज़ार न करें। अधिक दूध वाले पशुओं के थन ब्याने के तीन-चार दिन तक पूरी तरह खाली न करें। ऐसा न करने पर पशु में दूध ज्वर हो जाता है। इसमें जानवर खड़ा नहीं हो सकता तथा चारा-पानी छोड़ देता है। ऐसा होने पर तुरन्त डाक्टर से सम्पर्क करें।

1. बरसात के मौसम में पशु-आवास में पानी न ठहरने दें, व साफ-सफाई पर विशेष ध्यान दें।
2. पशुशाला में पानी की निकासी के साथ-साथ ध्यान रखें कि पशु घर की छत से पानी न टपके।
3. चारा-भण्डारण की जगह पर भी नमी से बचाव के तरीके अपनाएं।
4. काला या फफूंद लगा चारा पशुओं को न दें।
5. इस मौसम में पशुओं की खुर की जाँच नियमित रूप से करें व किसी भी प्रकार का लंगड़ापन दिखने पर चिकित्सीय परामर्श लें व चूने का प्रयोग करें।
6. मक्खी, मच्छर आदि से पशुओं का बचाव करें। मच्छरदानी लगाएं व फार्म के आसपास ऐसे पौधे लगाएं जिनसे इनका प्रकोप कम हो, उदाहरणतया लेमन ग्रास, मरवा, गेंदे, सदाबहार आदि।
7. चारे व पानी की टंकी/हौद को रोज़ साफ करें व सप्ताह में एक बार चूना/लाल दवाई डालें।
8. पशु-आहार में एक दम से कोई बदलाव न करें, धीरे-धीरे करें।
9. सुनिश्चित करें की गलघोंटू व मुँह-खुर का टीकाकरण हो गया हो।

वर्ष भर किए जाने वाले नियमित कार्य :

- पशुओं की आयु व दुग्ध उत्पादन अनुसार नियमित रूप से खनिज मिश्रण दें।
- नवजात को 1-2 घंटे के अन्दर खीस पिलाएं।
- गोबर जाँच करवाकर, नियमित रूप से पेट में कीड़ों की दवा दें।
- पशुओं को उचित व्यायाम (घूमने-फिरने दें) जिससे शरीर दिखाने की समस्या व अन्य समस्याएं न आएं।

भेड़

भेड़ों में आजकल ब्यांत चल रहा है। इसलिए भेड़ों की चराई आपकी अपनी निगरानी में होनी चाहिए। उन्हें समय पर खुराक तथा साफ पानी पिलाने की व्यवस्था ठीक ढंग से होनी चाहिए। उनके ऊन में सफाई का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।

चेचक और एण्टैरोटाक्सीमिया नामक बीमारियों से बचाव के टीके, जो मुफ्त लगाए जाते हैं, अपने नज़दीकी पशु चिकित्सालय से लगवाएं। भेड़ों में पेट के कीड़े मारने के लिए दवा नियम पूर्वक पशु चिकित्सक की सलाह से पिलानी चाहिए। अधिक व अच्छी ऊन पैदा करने और भेड़ों की नस्ल सुधारने के लिए उन्हें अच्छे नस्ल के मेड़ों से मिलवाएं।

भेड़-बकरी

1. भेड़-बकरियों में टीकाकरण करवाएं (पी.पी.आर., फड़किया, गलघोंटू, मुँह-खुर आदि)।
2. बदलते मौसम में भेड़-बकरियों को न्यूमोनिया से बचाएं।
3. सड़क किनारे लगी घास न चराएं।
4. पेट के कीड़ों/लीवर फ्लूक की दवा दें।

कुक्कुट/मुर्गीपालन

फरवरी और मार्च महीने में पाले गए चूज़े इस माह में अण्डे देना आरम्भ कर देते हैं।

जो मुर्गियां 20 सप्ताह की हो गई हों तथा 10 प्रतिशत की दर से अण्डे देने लग गई हों, उन्हें रात को रोशनी दें। दिन व रात मिलाकर रोशनी 15-16 घण्टों से अधिक न हो।

मुर्गियों को संतुलित आहार दें। मुर्गीघरों की खिड़कियां खोल कर रखें और बिछावन गीला होने से बचाएं तथा इसे रोज़ाना एक बार अवश्य पलटें। आहार में एमीनो-अम्ल, रेशे, नमक एवं तेज़ाब, अघुलनशील राख की जांच करवाएं। आहार को ज़मीन से एक फुट ऊंचाई पर रखना चाहिए।

- मौसम के बदलाव से मुर्गियों को बचाएं।
- सुबह-शाम के तापमान का अंतर ज़्यादा न रहे।
- बिछावन गीला होने से बचाएं, जिससे फार्म में अमोनिया न बने और कोकसी का प्रकोप कम हो।
- मुर्गियों में रानीखेत, गम्बोरों आदि का टीकाकरण चिकित्सीय परामर्श से करें।



घर-आंगन में

- अगर वर्षा का पानी घर के आस पास इकट्ठा हो गया है तो मच्छरों की वृद्धि को रोकने के लिए उसमें मिट्टी के तेल का छिड़काव करें।
- अनाज एवं दालों को समय-समय पर धूप लगवाते रहें क्योंकि नमी के कारण अनाज एवं दालों में सुरसुरी लग जाती है।
- घुण से बचाने के लिए आप पारा की गोली (जो आपको मेडिकल स्टोर से मिलेगी) का इस्तेमाल भी कर सकते हैं। आप इस गोली को कपड़े में बांधकर अनाज में डाल दें।
- पीने का पानी स्वच्छ व शुद्ध होना चाहिए। इसके लिए फिल्टर का उपयोग करें। पानी की टंकी में लाल दवाई का प्रयोग करें। छोटे बच्चों को जहां तक हो सके उबला हुआ पानी पिलाएं।
- बारिश के मौसम में कटे हुए फल व सब्जियों का प्रयोग न करें। जहां तक हो सके ताज़ा बना हुआ भोजन लें। बासी खाना प्रयोग में न लाएं।

कृषि क्षेत्र में बायोसेंसर की भूमिका

- **रवीना कारगवाल, वी. के. सिंह एवं यादविका**
प्रसंस्करण एवं खाद्य अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बायोसेंसर (Biosensors) में जैव-तत्व और सेंसर-तत्व होते हैं। जैव तत्व एक एंजाइम, एंटीबॉडी, जीवित कोशिकाएं, ऊतक आदि हो सकते हैं और संवेदी तत्व विद्युत प्रवाह, विद्युत क्षमता हो सकते हैं। जैव-तत्वों और सेंसर-तत्वों के विभिन्न संयोजन द्वारा कई प्रकार के बायोसेंसर का निर्माण किया जाता है। मनुष्य के पास पांच संवेदी तत्व हैं, अर्थात नाक, जीभ, कान, आंख और त्वचा जो कि मुख्य प्रकार के सेंसर का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रयोगशाला में सबसे प्रसिद्ध प्रकारों में से एक एसिड सेंसर है जिसके लिए लिटमस पेपर टेस्ट होता है जो एक गुणात्मक संकेत देता है । सेंसर एक उपकरण है जो एक भौतिक माप लेता है और इसे एक संकेत में परिवर्तित करता है जो एक पर्यवेक्षक या एक उपकरण द्वारा पढ़ा जा सकता है। सेंसर तीन प्रकारों में विभाजित कर सकते हैं ।

क. भौतिक सेंसर जो कि दूरी, द्रव्यमान, तापमान, दबाव आदि को मापने के लिए प्रयोग होते हैं।

ख. रासायनिक सेंसर जो रासायनिक पदार्थों को रासायनिक या भौतिक प्रतिक्रियाओं द्वारा मापते हैं।

ग. जैव सेंसर जैसे कि एंजाइम, एंटीबॉडी, जीवित कोशिकाएं, ऊतक।

मूल अवधारणा

बायोसेंसर तकनीक का विकास बेहतर भोजन की गुणवत्ता की मांग के कारण किया गया है। बायोसेंसर एक ऐसी तकनीक है जो कि भोजन की गुणवत्ता में सुधार की संभावना को बढाने और कमियों को दूर करने का कार्य करती है। यह न केवल भोजन अपितु बागवानी उत्पादों जैसे फल और सब्जियों कि गुणवत्ता का भी निरीक्षण करता है। यह तकनीक किसानों के लिए बहुत कारगर है। बायोसेंसर खाद्य प्रसंकरण उद्योगों में भी बहुत प्रयोग में आते हैं। यह उद्योगों के साथ-साथ बागवानी क्षेत्र में भी किसानों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। बायोसेंसर का उपयोग बड़े पैमाने पर फलों और सब्जियों की छंटाई के लिए किया जाता है।

डेयरी उद्योगों में बायोसेंसर का उपयोग

दूध की ऑनलाइन निगरानी

दूध की गुणवत्ता के ऑन-लाईन मूल्यांकन की बढ़ती मांग उद्योग को व्यावहारिक समाधान खोजने के लिए निर्देशित करती है, और बायोसेंसर एक आशाजनक संभावना है। दूध में लैक्टोज़ की जांच के लिए एक बहु-एंजाइमी एम्परोमेट्रिक बायोसेंसर विकसित किया गया है । बायोसेंसर की विशेषताएं जैसे आसान संचालन, तेज़ी से प्रतिक्रिया, लंबी स्थिरता आदि हैं। इस पद्धति का उपयोग किफायती, ऑन-लाइन लैक्टोज़ के रूप में किया जा सकता है।

खाद्य उद्योग की गुणवत्ता जांचने के लिए विश्लेषणात्मक विधि की आवश्यकता होती है, अर्थात, वर्तमान रसायन विज्ञान और विश्लेषणात्मक अभ्यास के रूप में तेज़ी से, विश्वसनीय विशिष्ट और लागत प्रभावी और समय लेने वाले तरीके होते हैं और अत्यधिक कुशल श्रम और महंगे उपकरण की आवश्यकता होती है। बायोसेंसर जैसी तकनीकी की आवश्यकता खाद्य संरचना और सुरक्षा के बारे में चिंतित उपभोक्ता से पैदा होती है। उदाहरण के तौर पर यूरिया/रसायनों का बढ़ता उपयोग जो कि अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य तथा पशुओं की सेहत पर बुरा असर डालते हैं। रसायनों का ज़्यादा उपयोग वाला चारा पशु खाते हैं और उसका सीधा असर दूध पर पड़ता है जो कि अप्रत्यक्ष रूप से हमारे स्वास्थ्य पर प्रभाव डालता है। इस समस्या को दूर करने के लिए यूरिया बायोसेंसर का विकास किया गया है। यह डेयरी जगत में बहुत प्रयोग होता है। दूध की गुणवत्ता निर्धारण करने के लिए भी बायोसेंसर का प्रयोग किया जाता है।

दूध यूरिया बायोसेंसर (milk urea biosensors)

पशु आहार में प्रोटीन की खुराक महंगी होती है। आहार प्रोटीन का दूध प्रोटीन में एक कुशल रूपांतरण है। आहार से प्राप्त नाइट्रोजन का अत्यधिक स्तर दूध उत्पादन में वृद्धि के बिना दूध की प्रणालीगत यूरिया की मात्रा को बढ़ा सकता है। यूरिया की यह उच्च मात्रा प्रजनन प्रणाली को ख़राब कर सकती है और डेयरी कचरे में अत्यधिक नाइट्रोजन का कारण बनती है जो पर्यावरण को प्रदूषित करती है। इस समस्या से निपटने के लिए दूध यूरिया बायोसेंसर का प्रयोग किया जाता है।



दूध में पाए जाने वाले विषाणुओं की जांच करने वाला यंत्र

फलों की छंटाई में सेंसर का उपयोग

बायोसेंसर का उपयोग बड़े पैमाने पर फलों और सब्जियों की छंटाई के लिए किया जाता है। इसकी सहायता से किसान फलों और सब्जियों को मंडी में ले जाने से पहले ज़्यादा या कम पके हुए फल तथा सब्जियों की छंटाई करके अच्छी कीमत पर बेच सकता है जिससे कि उन्हें अपनी मेहनत का पूरा लाभ मिलता है।



सेंसर पर आधारित फल छंटाई संयंत्र

पानी की मात्रा का आंकलन

बायोसेंसर की सहायता से बार-बार किसान को पानी की मात्रा का आंकलन नहीं करना पड़ता और न ही इस कार्य के लिए मज़दूर की ज़रूरत



पौधों में पानी की आवश्यकता का पता लगाने के लिए प्लांट बेस्ड सेंसर

पड़ती। सेंसर कि सहायता से किसान पानी की निर्धारित मात्रा का पता लगा कर के एक स्थान से ही पानी को बंद या चालू कर सकता है ।

बायोसेंसर से किसानों को होने वाले लाभ

- भोजन तथा दूध में पाए जाने वाले विषाणुओं का पता लगता है।
- बायोसेंसर का प्रयोग बागवानी फसलों में पानी देने के लिए टपका पद्धति में किया जाता है। इससे किसान के समय की बचत होती है और मज़दूर की लागत पर खर्च नहीं करना पड़ता ।
- खाद्य गुणवत्ता एवम रसायनों की जांच के लिए प्रयोग किये जाते हैं।
- बायोसेंसर का उपयोग पौधों तथा मिट्टी में नमी का पता लगाने के लिए भी किया जाता है ।
- बोरवेल और मछली मोटर (Submersible motor) लगाने से पहले किसान सेंसर की सहायता से पानी की गहराई का पता लगा सकता है ताकि कुएं की खुदाई में लगने वाले समय और मज़दूरी से बच सकें। |

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक नि:शुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

ट्रैक्टर की बैटरी का रख-रखाव कैसे करें

- **सुशील कुमार, विनोद कुमार एवं नरेंद्र**
फार्म मशीनरी और पावर इंजीनियरिंग विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

ट्रैक्टर में बैटरी का मुख्य उद्देश्य सेल्फ स्टार्टर की स्टार्टिंग मोटर को विद्युतीय ऊर्जा प्रदान करना है। इसके अलावा यह हेडलाइट व अन्य विद्युतीय उपकरणों को भी ऊर्जा प्रदान करता है। बैटरी को पूर्ण उपयोगिता और लाभ सुनिश्चित करने के लिए उसका रख-रखाव बहुत ज़रूरी है।

बैटरी की संरचना : बैटरी एक इलेक्ट्रो-केमिकल डिवाइस है। ट्रैक्टर बैटरी में 'सीसा' और 'सल्फ्यूरिक एसिड' सक्रिय सामग्री के रूप में काम करते हैं, और उन्हें 'लेड एसिड' बैटरी के रूप में जाना जाता है। प्रत्येक बैटरी में कई सेल होते हैं। प्रत्येक सेल में 2 वोल्ट के करीब चार्ज होता है और 12 वोल्ट की बैटरी के लिए 6 सेल की आवश्यकता होती है। प्रत्येक सेल में धनात्मक (पॉजिटिव) और ऋणात्मक (नेगेटिव) प्लेटें होती हैं। प्रत्येक ऋणात्मक प्लेट को एक गैर-संवाहक विभाजक द्वारा धनात्मक प्लेट से अलग किया जाता है। ट्रैक्टर में 12 वोल्ट, 80 एम्पीयर आवर की क्षमता वाली बैटरी लगी होती है। जब ट्रैक्टर सामान्य रूप से चल रहा होता है, बैटरी अपने चार्जिंग सिस्टम के माध्यम से स्वचालित रूप से चार्ज होती रहती है।

बैटरी फेल होने के कारण

बैटरियों का एक निश्चित जीवन होता है, जो प्रयोग करने और परिचालन की स्थितियों द्वारा निर्धारित किया जाता है। बैटरी की विफलता के लिए विभिन्न कारकों को ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है, हालांकि विफलता के कारण दो अलग-अलग श्रेणियों में आते हैं: विनिर्माण और गैर-विनिर्माण दोष।

विनिर्माण दोष

विनिर्माण दोष आमतौर पर पहले 3 महीनों के भीतर होते हैं। इन दोषों में मुख्यत: शॉर्ट सर्किट व डेड सेल हैं। डेड सेल अन्य सैलों की तुलना में नाटकीय रूप से कम विशिष्ट गुरुत्व (स्पेसिफिक ग्रेविटी) रीडिंग दिखाएगा। इन दोषों के सुधार के लिए आप बैटरी निर्माता या विक्रेता से सम्पर्क कर सकते हैं। इस प्रकार के दोष वारंटी में सम्मिलित होते हैं।

गैर-विनिर्माण दोष

- गलत फिटमेंट, हैंडलिंग और स्टोरेज, अक्सर बाहरी क्षति और बाद में बैटरी की विफलता की ओर जाता है।

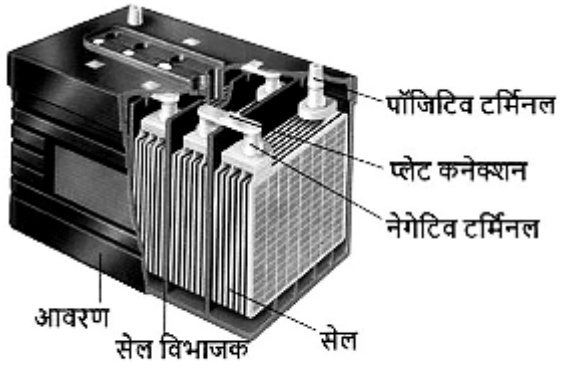

चित्र: बैटरी की आंतरिक सरंचना

- एक छोटी, कम शक्तिशाली बैटरी या किसी अन्य अनुप्रयोग के लिए डिज़ाइन की गई बैटरी का प्रयोग करने से प्रारंभिक विफलता हो सकती है।
- तरल पदार्थ के स्तर को बनाए रखने में विफलता बैटरी के जीवनकाल को कम करती है।
- बैटरी को अधिक चार्ज करना, यह अक्सर तब होता है जब अल्टरनेटर गलत तरीके से सेट होता है या अल्टरनेटर वोल्टेज नियंत्रण करने में विफल हो जाता है।
- बैटरी को कम चार्ज करना (अंडर चार्ज), छोटी यात्रा, स्टॉप स्टार्ट ड्राइविंग या दोषपूर्ण अल्टरनेटर पूरी तरह से बैटरी को रिचार्ज नहीं करेंगे।
- जब ट्रैक्टर ऑफ सीज़न में इस्तेमाल न हो रहा हो तब बैटरी अपना चार्ज खो देती है। जब ऐसा होता है, तो सल्फ्यूरिक एसिड में सल्फर के अणु जो बैटरी के इलेक्ट्रोलाइट घोल का निर्माण करते हैं, खुद को बैटरी की मुख्य प्लेटों से जोड़ लेते हैं। यह सल्फर प्लेटों को इतनी अच्छी तरह से ढक लेता है कि आश्चर्यजनक रूप से कम समय में (अक्सर कुछ महीनों से कम) यह बैटरी को रिचार्ज होने से रोकता है। इस प्रक्रिया को सल्फेशन कहा जाता है और यह बैटरी के खराब होने का नंबर एक कारण है।

बैटरी की देखभाल और रखरखाव

बैटरी की अच्छी देखभाल करने से इसकी जीवन-अवधि का विस्तार करने में सहायता मिलेगी। अपनी बैटरी को सही स्थिति में रखने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें:

साफ-सफाई :

- यह सुनिश्चित करें कि बैटरी को मज़बूत व सुरक्षित ट्रे में रखा गया है और बैटरी ट्रे को अच्छी तरह से साफ किया गया हो।
- बैटरी का शीर्ष साफ, सूखा,और जमी हुई गंदगी से मुक्त होना चाहिए।
- बैटरी केबल्स और टर्मिनलों को जंग से साफ रखना चाहिए। उन्हें साफ करने के लिए, एक कठोर तार वाले ब्रश का उपयोग करें। बेकिंग सोडा और नल के पानी के घर-निर्मित घोल का उपयोग करके टर्मिनल जंग को साफ किया जा सकता हैं। बैटरी के डिस्कनेक्ट करने के बाद, बेकिंग सोडा को सीधे टर्मिनल पर डालें, और नम टूथब्रश के साथ रगड़ कर साफ करें। एक साफ कपड़े से पूरी तरह से सुखा दें।

रखरखाव :

- यह जाँच कर ले कि बैटरी ट्रे में ढीली तो नहीं है? ढ़ीली होने से पैदा कंपन से बैटरी खराब हो सकती है।
- टूटे हुए, क्षतिपूर्ण या ढीले कनेक्शन के लिए टर्मिनलों, शिकंजे (क्लैंप) और केबल्स का निरीक्षण करें। ये साफ, कसे हुए और जंग से मुक्त होने चाहिएं।
- क्लैम्प को नीचे करने के लिए हथौड़े का प्रयोग न करें।
- टर्मिनलों पर पेट्रोलियम जेली की एक परत लगाने से एक अच्छा अवरोध बन जाएगा, और भविष्य के किसी भी जंग को धीमा करने में मदद मिलेगी। यह महत्वपूर्ण है कि जब केबलों को फिर से जोड़ा जाता है, तो वे टर्मिनलों से तंग होते हैं, क्योंकि यह एक और सामान्य

(शेष पृष्ठ 23 पर)

अनीमिया : लक्षण, कारण और उपचार

- **सुमित श्योराण, सुधा चिकारा एवं शीला सागंवान**
मानव विकास और पारिवारिक अध्ययन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अनीमिया से पीड़ित किसी व्यक्ति में लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या सामान्य स्तर से कम होती है। लाल रक्त कोशिकाएं शरीर की सभी कोशिकाओं तक ऑक्सीजन ले जाती हैं। जब लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या सामान्य से कम हो जाती है तो रक्त कम मात्रा में ऑक्सीजन पहुंचाता है। ऐसा हो सकता है कि अनीमिया से पीड़ित व्यक्ति को कोई लक्षण दिखाई न दें।

एनीमिया को परिभाषित करने के लिए प्रयुक्त हीमोग्लोबिन सीमा रेखा

आयु या लिंग समूह	सामान्य एच.बी. (ग्राम/डेसिलिटर)	एनेमिक रेंज (ग्राम/डेसिलिटर)
0 से 5 वर्ष के बच्चे	11.0	6.8
5 से 12 वर्ष के बच्चे	11.5	7.1
किशोर 12 से 15 साल	12.0	7.4
महिलाएं 0 से 15 साल	12.0	7.4
गर्भवती महिला	11.0	6.8
पुरुष 15 साल	13.0	8.1

अनीमिया के और अधिक बिगड़ने पर आपको ये लक्षण महसूस हो सकते हैं : थकावट, कमज़ोरी या थकान महसूस करना; चक्कर आना या बेहोशी छाना; हाथों या पैरों का ठंडा होना; सिर दर्द; पीली चमड़ी या नाखून जो आसानी से टूट जाते हों; स्पष्टता के साथ न सोच पाना या ध्यान केन्द्रित करने में कठिनाई; सांस फूलना या छाती में दर्द; तेज़ और असामान्य दिल की धड़कन; मासिक धर्म कम होना अथवा मासिक धर्म के समय अधिक रक्तस्राव होना। यदि आपको इनमें से कोई भी लक्षण हो तो अपने चिकित्सक से बात करें।

अनीमिया के कारणों में ये शामिल हैं : शरीर द्वारा लौह तत्व के उपयोग में समस्या; लौह तत्व से भरपूर भोजन पर्याप्त मात्रा में न खाना; रक्तस्राव या रक्त का अधिक बह जाना, जैसे कि रजोधर्म के समय अधिक रक्तस्राव द्वारा; गर्भधारण; शरीर में फोलेट या बी. विटामिन की कमी; कैंसर जैसे कुछ रोगों का उपचार जो शरीर के द्वारा नई लाल कोशिकाओं के निर्माण को अधिक कठिन बना देते हैं; सिकल सेल बीमारी जिसमें शरीर की बहुत अधिक लाल रक्त कोशिकाएं नष्ट हो जाती हैं; ऐसे शिशु जिन्हें बिना अतिरिक्त लौह तत्व का फार्मूला पिलाया जाता है।

आपका डॉक्टर आपके अनीमिया के कारणों का पता लगाने और इलाज की योजना बनाने के लिए परीक्षण करेगा। आपको ये चीज़ें करनी होंगी :

- स्वस्थ भोजन खाना जिसमें फल, सब्जियां, ब्रेड, डेयरी उत्पादन, मीट और मछली शामिल हैं। लौहतत्व से भरपूर भोजन जैसे गाय, सूअर या मेमने का मुलायम गोश्त, मुर्गी, समुद्री आहार, लौहयुक्त खाद्यान्न और अनाज पालक जैसी हरी पत्तीदार सब्जियां, गिरीदार फल और फलियां अधिक मात्रा में खाएं। आपका डॉक्टर आपके स्वस्थ भोजन की योजना बनाने के लिए आपको किसी आहार विशेषज्ञ से मिलने के लिए कह सकता है।
- विटामिन या लौह पूरक लेना।
- अधिक रक्त बह जाने के उपचार के लिए रक्ताधान करवाना। खून को अन्तर्शिरीय तरीके से रक्त वाहिका में डाला जाता है।
- आपके अनीमिया संबंधी कारण का उपचार करने के लिए दूसरे इलाज भी करवाएं जैसे कि दवाओं का सेवन या शल्यक्रिया।

मृदा संघनन- समस्या व समाधान

✎ **विनोद कुमार एवं विजया रानी**
फार्म मशीनरी एवं पावर इंजीनियरिंग विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मृदा संघनन :

लगातार पड़ते दबाव के कारण मिट्टी के घनत्व में वृद्धि होने को मृदा संघनन कहते हैं। दूसरे शब्दों में, इसमें ज़मीन के नीचे एक कठोर परत बन जाती है। भारी उपकरणों के प्रयोग और एक ही गहराई पर खेत को बार-बार जोतने पर ज़मीन के नीचे मिट्टी की एक सख्त परत बन जाती है। इससे मिट्टी की संरचना खराब हो जाती है जो फसल के लिए पोषक तत्वों और हवा-पानी की उपलब्धता में कमी का कारण बनती है। नमी वाले खेत में जल्दी बुवाई पर भी मृदा संघनन की समस्या पनपती है। उचित फसल चक्र न अपनाने पर भी ज़मीन एक सतह के नीचे कठोर परत में तब्दील हो जाती है।

मृदा संघनन से फसल की जड़ों को पैठ बनाने में प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है और फसल की पैदावार में भी कमी आने लगती है। फॉस्फोरस और पोटैशियम जो कि फसलों के लिए महत्वपूर्ण पोषक तत्व माने जाते हैं, का संचरण रुक जाता है। ज़मीन की पानी को धारण करने की क्षमता कम होने पर जल-भराव भी होने लगता है। यह समस्या आमतौर पर 10 से 40 सैंटीमीटर की गहराई तक ही होती है। कृषि उपकरणों की संख्या और उनके आकार, दोनों में नाटकीय रूप से वृद्धि होने के कारण यह एक गंभीर समस्या बनती जा रही है।

मृदा संघनन को कैसे पहचानें :

संभावित मृदा संघनन की पहचान करने के लिए निम्नलिखित संकेत दिए गए हैं :

- पौधों की उथली हुई, मोटी और छोटी जड़ें
- एक रेखीय पैटर्न में बीजों का कम अंकुरण और पौधों में शक्ति का अभाव
- शुष्क मौसम के बावजूद खेत में कहीं-कहीं पर पानी का कई दिनों तक खड़ा रहना
- बुवाई करते समय ट्रैक्टर द्वारा अधिक ज़ोर का लगना
- फसल की पैदावार में कमी
- खेत में मिट्टी के गड्ढे खोदकर भी मिट्टी की संकुचित परतों को देखा जा सकता है।

मृदा संघनन का समाधान कैसे करें :

मृदा संघनन के समाधान के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं :

1. *गीली मिट्टी की बुवाई से बचें :* गीली मिट्टी के संघनित होने की संभावनाएं अधिक होती हैं। खेत में नमी अगर प्लास्टिक सीमा या उससे अधिक हो तो जुताई नहीं करनी चाहिए। प्लास्टिक सीमा का पता लगाने के लिए खेत की मिट्टी को हाथ में लेकर गूंथें, अगर इससे आसानी से गेंद बन जाए तो यह खेत बुवाई के लिए उपयुक्त नहीं है।
2. *सबसॉइलर का प्रयोग करें :* अगर भूमि के नीचे कठोर परत बन चुकी है तो इसे सबसॉइलर से तोड़ा जा सकता है। सबसॉइलर ट्रैक्टर के पीछे जुड़ने वाला एक उपकरण होता है जो लगभग 8-14 इंच की गहराई तक मिट्टी को ढीला करता है। इसमें सामान्यत: एक ही फाला लगा होता है। इससे खेत को पूर्ण रूप से नहीं जोतते हैं बल्कि 5-7 फीट की दूरी पर चलाते हैं जिससे कि कठोर परत टूट जाए। इस उपकरण को तभी चलाना चाहिए जब खेत सूखा हुआ हो। धान के खेत में रोपाई करने से पहले सबसॉइलर को चला कर कुछ दिनों के लिए खेत को खाली छोड़ दें।


सबसॉइलर

3. *ट्रैक्टर के अनुसार उपकरणों का प्रयोग करें :* छोटे ट्रैक्टर के साथ बड़े उपकरण जोड़ देने से पिछले पहियों पर अधिक दबाव पड़ता है जिससे मृदा का संघनन अधिक होता है। कम क्षमता वाले ट्रैक्टर के साथ हल्के उपकरण का प्रयोग करें। बड़े ट्रैक्टर के पिछले पहियों की चौड़ाई भी अधिक होती है, इसलिए वे मिट्टी पर भी कम दबाव डालते हैं।
4. *ट्रैक्टर के टायर में हवा का दवाब उचित रखें :* पहियों में हवा के दबाव की अधिकता से मृदा के ऊपरी परत की संघननता बढ़ जाती है। पहियों में उचित दबाव रखने से न केवल मिट्टी पर कम दबाव पड़ता है बल्कि ट्रैक्टर के खींचने की क्षमता भी बढ़ जाती है। खेत में ट्रॉली को ले जाते समय कम भार डालना चाहिए। अधिक भार को ढ़ोने के लिए दोहरे पहियों वाली ट्रॉली का प्रयोग करना चाहिए।
5. *जैविक खादों का प्रयोग करें :* जिस मिट्टी में जैविक पदार्थ की मात्रा अधिक होती है, उसमें मृदा संघनन की समस्या कम होती है। अगर इस प्रकार की मिट्टी में मृदा संघनन हो भी जाता है तो यह काफी हद तक अपने आप ठीक हो जाता है। मिट्टी में जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ाने के लिए जैविक खादों का प्रयोग करें। खाली खेत में ढैंचा, सनई की बुवाई करके उसे मिट्टी में मिलाने से भी जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है। फसलों के अवशेषों को मिट्टी में मिलाकर भी मृदा संघनन को कम किया जा सकता है।
6. *जुताई यथासंभव कम से कम करें :* खेत को कम जोतना या संरक्षित कृषि करना भी मृदा संघनन की दृष्टि से लाभदायक है। कम जोतने से मृदा की संरचना बनी रहती है। अगर संभव हो सके तो केवल बीज क्षेत्र की ही जुताई करें। कम जोतने से भूमि की जीवाणु-संरचना भी सुरक्षित रहती है जिससे मृदा की उत्पादन क्षमता बनी रहती है। पूर्ण रूप से मिट्टी पलटने वाले उपकरणों की बजाय पतले फाले वाले उपकरण से जुताई करने से कम मृदा संघनन के साथ-साथ अधिक उपज भी मिलती है। खेत में कई कामों को इकट्ठा किया जा सकता है जैसे कि हैप्पी सीडर खेत की बुवाई और बिजाई एक साथ कर देता है।

फसल चक्र को अपनाएं

अलग-अलग जड़ों में मृदा संघनन को तोड़ने हैंतु अलग-अलग क्षमताएं होती हैं। जब किसान सिर्फ हर साल एक या दो फसलों की ही बुवाई करता है तो मिट्टी में एक ही परत तक जड़ें जाती हैं। इससे मिट्टी की दूसरी परतें संघनित होने लगती हैं। इसलिए खेत में एक मौसम में उथली हुई जड़ों वाली फसल लेने के बाद दूसरे मौसम में गहरी जड़ों वाली फसलें लेनी चाहिएं जैसे कि धान के बाद मक्का लगाई जा सकती है।

फसल प्रबंधन के लिए रिमोट सेंसिंग

- **हरदीप सिंह श्योराण एवं अनिल कुमार रोहिला**[1]
हरियाणा स्पेस ऍप्लिकेशन्स सेंटर
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय प्रांगण, हिसार

कृषि में रिमोट सेंसिंग का प्रयोग दुनिया भर में फसल उत्पादन में तेज़ी से महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं जिससे किसानों को उत्पादन में वृद्धि, लागत कम करने और अपने भूमि संसाधनों को अधिक कुशलता से प्रबंधित करने में मदद मिल रही है। कृषि में इसका उपयोग किसी भी कृषि भूमि की मिट्टी और सिंचाई की निगरानी और प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मैपिंग में सटीक जानकारी प्राप्त करने और कार्यान्वित करके कृषि क्षेत्र के प्रबंधन के लिए कृषि मानचित्रण कार्य एक आवश्यक उपकरण के रूप में कार्य करता है। कृषि में रिमोट सेंसिंग का उपयोग कृषि संसाधनों के प्रबंधन और नियंत्रण में भी मदद करता है।

रिमोट सेंसिंग क्या है

रिमोट सेंसिंग वह विज्ञान है जिससे हम पृथ्वी की सतह के बारे में जानकारी ग्रहण करते हैं, बिना वास्तव में इसके साथ संपर्क में आये हुए। यह परावर्तित या उत्सर्जित ऊर्जा को सेंसिंग और रिकॉर्ड करके किया जाता है और उस जानकारी को आगे प्रोसेसिंग, विश्लेषण और लागू किया जाता है।

रिमोट सेंसिंग की अधिकांश प्रक्रिया में, घट विकिरण और लक्ष्य के बीच परस्पर क्रिया शामिल होती है। रिमोट सेंसिंग इन निम्न प्रक्रियाओं पर आधारित होती है :

1. **ऊर्जा स्रोत या रोशनी :** रिमोट सेंसिंग के लिए पहली आवश्यकता ऊर्जा स्रोत होना है, जो रोशनी या लक्ष्य के लिए विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा प्रदान करता है।
2. **विकिरण और वायुमंडल :** क्योंकि ऊर्जा अपने स्रोत से लक्ष्य तक यात्रा करती है, यह वायुमंडल से गुज़रती है तथा उसके साथ संपर्क में आती है।
3. **लक्ष्य के साथ पारस्परिक क्रिया :** एक बार जब ऊर्जा वायुमंडल से लक्ष्य तक पहुंच जाती है, यह लक्ष्य के साथ पारस्परिक क्रिया करती है परन्तु यह क्रिया दोनों के गुणों पर आधारित होती है।
4. **सेंसर द्वारा ऊर्जा की रिकॉर्डिंग :** पारस्परिक क्रिया होने के बाद जब ऊर्जा लक्ष्य से वापिस जाती है तो हमें सेंसर की आवश्यकता पड़ती है जो इस ऊर्जा को कैप्चर और रिकॉर्ड कर सके।
5. **ट्रांसमिशन, रिसेप्शन, और प्रसंस्करण :** सेंसर द्वारा दर्ज ऊर्जा को अक्सर इलेक्ट्रॉनिक रूप में फिर प्रसंस्करण स्टेशन पर संचारित किया जाता है, जहां इसे एक छवि में संसाधित किया जाता है।
6. **व्याख्या और विश्लेषण :** संसाधित छवि की दृष्टि से या डिजिटल या इलेक्ट्रॉनिक रूप से व्याख्या की जाती है, ताकि लक्ष्य के बारे में जानकारी निकली जा सके।
7. **उपयोग :** रिमोट सेंसिंग प्रक्रिया का अंतिम तत्व तब प्राप्त होता है जब हम लक्ष्य के बारे में इमेजरी से उस जानकारी को लागू करें जिसे हम निकालने में सक्षम हैं ताकि हम लक्ष्य के बारे बेहतर समझ सकें।

[1]कृषि अनुसन्धान भवन, कैब-II, पूसा नई दिल्ली

रिमोट सेंसिंग के घटक

ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम : ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम (जीपीएस) कृषि उत्पादकों के लिए अपनी ज़मीन और फसल उत्पादन का प्रबंधन करने के अवसर प्रदान करता है। खेती में जीपीएस अनुप्रयोगों के सामान्य नामों में सटीक कृषि, साइट-विशिष्ट खेती, और नुस्खे खेती शामिल हैं। खेती में जीपीएस अनुप्रयोगों में उपकरण का मार्गदर्शन शामिल है जैसे स्प्रेयर, उर्वरक आवेदक, और टिलेज उपकरण का कम उपयोग करना है। मिट्टी के नमूने लेने की जगहों को सटीक रूप से ढूंढने के लिए भी उनका उपयोग किया जा सकता है।

पैदावार निगरानी प्रणाली : उपज निगरानी प्रणाली आम तौर पर फसल के कटा हुआ वज़न की निरंतर माप के लिए द्रव्यमान प्रवाह संवेदक का उपयोग करती है। सेंसर आमतौर पर स्वच्छ अनाज लिफ्ट के शीर्ष पर स्थित होता है। डेटा गठबंधन कैब में स्थित मॉनीटर पर प्रदर्शित होता है और विश्लेषण के लिए एक ऑफिस कंप्यूटर में स्थानांतरण के लिए कंप्यूटर कार्ड पर संग्रहीत किया जाता है। यील्ड मॉनिटर्स को अलग-अलग स्थितियों, फसलों और परीक्षण भारों के लिए नियमित अंशांकन की आवश्यकता होती है।

जीपीएस और जीआईएस के साथ फील्ड मैपिंग : जीपीएस तकनीक का उपयोग खेतों के क्षेत्रों को खोजने और मानचित्र जैसे कि उच्च खरपतवार, बीमारी और कीट के उपद्रव करने के लिए किया जाता है। चट्टानों, खंभे, बिजली की रेखाएं, पेड़ की पंक्तियां, टूटी हुई नाली टाइल, खराब सूखे क्षेत्रों, और अन्य स्थलों को भविष्य के संदर्भ के लिए भी दर्ज किया जा सकता है। भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) कंप्यूटर प्रोग्राम में नक्शा परतों के रूप में विभिन्न डेटासेट जोड़े गए हैं और जीआईएस कार्यक्रमों का उपयोग जीआईएस परतों के बीच जानकारी का विश्लेषण और सहसंबंध करने के लिए किया जाता है।

प्रिसिशन फसल इनपुट अनुप्रयोग : जीआईएस मानचित्र का उपयोग जीआईएस मानचित्र या फसल की स्थिति के वास्तविक समय संवेदन के आधार पर एक क्षेत्र में फसल इनपुट को अलग करने के लिए किया जाता है।

परिवर्तनीय दर प्रौद्योगिकी के लिए एक जीपीएस रिसीवर, एक कंप्यूटर नियंत्रक, और आवेदक पर लगाए गए एक विनियमित ड्राइव तंत्र की आवश्यकता होती है। परिवर्तनीय दर प्रौद्योगिकी उर्वरक, बीज, जड़ी बूटी, कवकनाशक, और कीटनाशक दरों और सिंचाई अनुप्रयोगों को समायोजित करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

कृषि में रिमोट सेंसिंग के उपयोग

- फसल मैपिंग उपज अनुमान।
- फसल मूल्यांकन और फसल स्वास्थ्य।
- सिंचित लैंडस्केप मानचित्रण।
- जीआईएस कृषि के लिए आवेदन विकास।
- मृदा और सिंचाई संशोधन विश्लेषण।
- उपयुक्तता मूल्यांकन अध्ययन।
- क्षरण पहचान और उपचार।
- पहचान अध्ययन और फसल मॉडल विकसित करना।
- नुकसान और भूमि गिरावट मूल्यांकन अध्ययन।
- कुशल जल निकासी के लिए मॉडल।

पराबैंगनी प्रकाश द्वारा स्ट्रॉबेरी की शेल्फ लाइफ को बढ़ाना

- **सुशांत भारद्वाज, वी. के. सिंह एवं सचिन**
प्रसंस्करण और खाद्य इंजीनियरिंग विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय प्रांगण, हिसार

इन दिनों खाद्य पदार्थों के सड़ने की एक बड़ी समस्या है। फलों और सब्जियों की कम शैल्फ लाइफ के कारण वे जल्दी ही सड़ जाते हैं। सड़ने का प्रमुख कारण सूक्ष्म जीव होते हैं। यह जीव फलों और सब्जियों की ऊपरी परत को खराब कर देते हैं, जिस से हमारे किसान को नुकसान उठाना पड़ता है। इस लेख में स्ट्रॉबेरी फल की पराबैंगनी प्रकाश के द्वारा स्टोरेज अवधि को बढ़ाने का जिक्र किया गया है।

स्ट्रॉबेरी की उत्पत्ति फ्रांस से हुई है और यह रोजेसी, रोज परिवार से संबंधित है। यह विटामिन सी का एक अच्छा स्रोत है, स्ट्रॉबेरी के 100 ग्राम खाद्य भाग में 89 ग्राम पानी, 0.07 ग्राम प्रोटीन, 0.5 ग्राम वसा, 8.4 ग्राम कार्बोहाइड्रेट और 59 मिलीग्राम एस्कॉर्बिक एसिड होता है और मुख्य रूप से ताज़े फल, आइसक्रीम के साथ संसाधित उत्पादों के रूप में सेवन किया जाता है। यह शीतल पेय, मिष्ठान, चबाने वाली गम, जैम, जेली, और स्क्वैश के रूप मे संरक्षित की जा सकती है, जिनका उपयोग ऑफ-सीज़न में किया जा सकता है। इस फल का उच्च आर्थिक मूल्य है। इसकी खेती दुनिया भर में व्यापक रूप से की जाती है, वर्तमान में स्ट्रॉबेरी का दुनिया में प्रमुख उत्पादक देश अमेरिका (30.4%) है, इसके बाद तुर्की (7.0%), स्पेन (6.0%), मिस्र (5.5%) और मैक्सिको (5.3%) हैं।

स्ट्रॉबेरी की खेती भारत में देश के पहाड़ी क्षेत्र तक ही सीमित थी। भारत में, स्ट्रॉबेरी की खेती पश्चिमी और उत्तरी हिस्सों में विशेष रूप से लोकप्रिय हो रही है, खासकर महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा और पंजाब में इसकी खेती से किसान अच्छी कमाई कर रहे हैं। यह अर्ध-शुष्क और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र के लिए उपयुक्त है और यह महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा और पंजाब के लिए आदर्श फल फसल है। चीन के बाद भारत दुनिया में फलों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है। विभिन्न कृषि-जलवायु परिस्थितियों के कारण दुनिया के फलों के उत्पादन में इसकी हिस्सेदारी 11 प्रतिशत है। हाल ही में, महाराष्ट्र के मैदानी क्षेत्र में, पुणे, नासिक, सांगली शहरों और हरियाणा राज्य के हिसार और भिवानी ज़िलों में स्ट्रॉबेरी की खेती सफलतापूर्वक की जा रही है। हरियाणा देश के 29 राज्यों में से एक है, जिसकी जलवायु स्थिति के कारण स्ट्रॉबेरी उत्पादन की अपार संभावना है। हरियाणा वर्ष 2016-17 में 2.01 हज़ार मीट्रिक टन उत्पादन के साथ भारत का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है। हरियाणा में प्रमुख स्ट्रॉबेरी उत्पादन ज़िले क्रमशः 2016-17 में 0.9 और 0.65 मीट्रिक टन के उत्पादन के साथ हिसार और भिवानी हैं।

यूवी प्रकाश 100-400 एनएम वेवलेंथ के साथ विद्युत चुम्बकीय स्पेक्ट्रम का हिस्सा है। वेवलेंथ की लंबाई के आधार पर, यूवी-लाइट को पारंपरिक रूप से तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। यूवी-ए (वेव की लंबाई 315-400 एनएम से होती है और यह सीमा मानव त्वचा में परिवर्तन के लिए ज़िम्मेदार है), यूवी-बी (वेव लेंथ रेंज 280 से 315 एनएम), यह त्वचा के जलने का कारण बन सकता है और इसमें त्वचा कैंसर का कारण बन सकता है) और यूवी-सी (वेव की लंबाई 200 से 280 एनएम तक होती है और इसके रोगाणुरोधी प्रभाव के लिए बहुत अच्छी तरह से जाना जाता है)।

बाज़ार में उच्च आर्थिक मूल्य के कारण फल बेचने पर उत्पादकों को अपेक्षाकृत अधिक लाभ प्राप्त होता है। इसलिए, स्ट्रॉबेरी का उत्पादन किसानों के लिए आय का एक अच्छा स्रोत बन रहा है। स्ट्रॉबेरी से जुड़ी समस्या यह है कि, ताज़ा स्ट्रॉबेरी फलों का एक सीमित शैल्फ-जीवन है और यह बोट्रीटिस सिनेरिया नामक सूक्ष्म जीव के कारण होने वाले ग्रे मोल्ड रोट के लिए अतिसंवेदनशील है। ताज़ा स्ट्रॉबेरी में श्वसन और फंगल विकास को धीमा करने के लिए ठंडा करना सबसे उपयोगी तरीका है। यह किसानों को अपनी उपज जल्द से जल्द बेचने के लिए मज़बूर करता है और इसके कारण उन्हें अच्छी कीमत नहीं मिलती है। इस संबंध में यूवी प्रकाश उपयोगी पाया गया क्योंकि यूवी प्रकाश उपचार फल विनाश के लिए ज़िम्मेदार सूक्ष्म जीवों को निष्क्रिय करके फलों के शेल्फ जीवन को बढ़ाता है।

यूवी-सी प्रकाश के फायदेः

- यू-वी प्रकाश का उपयोग करके किसान अपने ताज़ा खाद्य उत्पादों को संसाधित कर सकते हैं।
- यू-वी प्रकाश का उपयोग वायरस सहित कई प्रकार के सूक्ष्म जीवों को निष्क्रिय करने के लिए किया जाता है।
- यह एक सरल, सूखी और ठंडी प्रक्रिया है, जिसे किसान आसानी से अपना सकते हैं।
- यूवी-सी प्रकाश चैम्बर - बहुत कम रखरखाव की आवश्यकता होती है।
- यू-वी प्रकाश का प्रयोग करके रसायनों के उपयोग को कम किया जा सकता है।
- यह फल के रंग या रूप में कोई फर्क नहीं डालता।
- इसके अन्य प्रयोग में रस का पाश्चुरीकरण, मीट के लिए पश्च-उपचार, खाद्य पदार्थ की सतहों के उपचार और ताज़ा उपज के शेल्फ-जीवन का विस्तार करना शामिल है।

(पृष्ठ 20 का शेष)

नो-स्टार्ट मुद्दा है। यदि केबलों में अत्यधिक पहनते हैं या पूरी तरह से विकृत हो गए हैं, तो उन्हें प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता होगी।

- यह जांचना महत्वपूर्ण है कि बैटरी में बैटरी प्लेटों को कवर करने के लिए पर्याप्त इलेक्ट्रोलाइट है या नहीं। यदि टापिंग की आवश्यकता होती है, तो अधिक न भरें क्योंकि बैटरी पूरी तरह चार्ज होने पर द्रव का स्तर बढ़ जाएगा। टापिंग के लिए डिस्टिल्ड या डिमिनरलाइज्ड पानी का उपयोग करें।
- बारिश के पानी को भी डिस्टिल्ड पानी के विकल्प के रूप में प्रयोग किया जा सकता है, बशर्ते इसे सही तरीके से इकट्ठा किया गया हो। बारिश के पानी को इकठ्ठा करने के लिए एक साफ बर्तन को ऊँची जगह पर रख दें ताकि पानी की बूंदें ज़मीन से उछलकर बर्तन में न जाएं। बारिश के शुरू होने के कुछ समय बाद पानी इकट्ठा करना शुरू करें ताकि पहले वातावरण की धूल-कण नीचे बैठ जाएं। इस पानी को साफ बोतलों में भरकर साल-भर प्रयोग किया जा सकता है।

यदि आप बैटरी की स्थिति के बारे में अनिश्चित हैं, तो इसे अपने स्थानीय बैटरी विक्रेता के पास ले जाएं। वे आपकी बैटरी का निरीक्षण और परीक्षण कर सकते हैं और आपको पेशेवर सलाह और सहायता प्रदान कर सकते हैं।

सुबह का नाश्ता : मानव स्वास्थ्य में महत्व

- प्रियंका रानी एवं वर्षा रानी
खाद्य एवं पोषण विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सुबह के नाश्ते का मानव स्वास्थ्य में बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान है। सुबह के नाश्ते का प्रतिदिन के भोजन में सबसे मुख्य स्थान है क्योंकि यह हमें पूरा दिन कार्य करने के लिए उचित मात्रा में ऊर्जा प्रदान करता है। सुबह के नाश्ते का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है, क्योंकि रात के भोजन और सुबह के नाश्ते में आठ से नौ घण्टे का लम्बा अन्तराल होता है। इस लम्बे अन्तराल के बाद शरीर को आवश्यक ऊर्जा व पोषण प्रदान करने के लिए नाश्ता करना अत्यंत आवश्यक है। इसलिए ही इसे ब्रेकफास्ट कहा जाता है जिसका शाब्दिक अर्थ है ब्रेक-तोड़ना, फास्ट-व्रत। इसके अलावा यह मानव शरीर की प्रतिदिन की एक तिहाई पोषक तत्वों की ज़रूरत को पूरा करता है।

आजकल की भाग दौड़ भरी ज़िंदगी में ज़्यादातर लोग नाश्ता करना छोड़ देते हैं एवं इसे महत्वपूर्ण नहीं समझते। परन्तु वास्तव में सुबह के नाश्ते यानि कि ब्रेकफास्ट का मानव स्वास्थ्य में अतुलनीय योगदान है जिसे दिन में किए जाने वाले अन्य आहार भी पूर्ण नहीं कर सकते। सुबह ब्रेकफास्ट करने से एक तो पूरा दिन शरीर को कार्य करने के लिए ऊर्जा प्राप्त होती है तथा यह शरीर को जल्दी थकने नहीं देता। कुछ लोग यह धारणा रखते हैं कि वह दोपहर में अधिक भोजन करके इसकी पूर्ति कर लेंगे जोकि मानव शरीर के लिए उपयुक्त नहीं है। एक समय अधिक खाना खाने से पाचन तन्त्र पर अधिक दवाब पड़ता है तथा पाचन क्रिया सुचारू रूप से नहीं हो पाती। जितना लाभ अलग-अलग समय पर सही मात्रा में तीन-चार बार भोजन करने से हो सकता है उतना लाभ एक-दो समय पर अधिक भोजन खाने से नहीं हो सकता।

प्राय: यह भी देखा जाता है कि जो लोग सुबह का नाश्ता नहीं करते वह अधिक ऊर्जा वाले व फास्ट फूड जैसे समोसे, कचोरी या बर्गर, अधिक मीठे (कार्बोहाईड्रेट्स) व वसा वाले भोजन का सेवन करते हैं। ऐसे भोजन का सेवन करने से शरीर को ऊर्जा तो प्राप्त होती है परन्तु अन्य आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति नहीं हो पाती। इसके अतिरिक्त, ऐसे भोजन से मोटापा व हृदय रोग जैसी बीमारियां होने की संभावना बढ़ जाती है। जबकि नियमित रूप से संतुलित नाश्ता करने वाले व्यक्तियों में ऐसे रोग होने की संभावना काफी कम होती है। कुछ वैज्ञानिक अध्ययनों से यह भी सामने आया है कि जो बच्चे व किशोर नियमित रूप से नाश्ता करके स्कूल या महाविद्यालय जाते हैं उनकी मानसिक क्षमता तथा शैक्षणिक प्राप्तियां दूसरे बच्चों से कहीं अधिक होती हैं। क्योंकि सुबह का नाश्ता मस्तिष्क को कार्य करने के लिए ऊर्जा प्रदान करता है तथा मानव शरीर को चुस्त रखता है।

वैज्ञानिक अध्ययनों से यह सामने आया है कि सुबह के नाश्ते का शारीरिक व मानसिक विकास से सीधा सम्बन्ध है क्योंकि सुबह का नाश्ता करने से प्रतिदिन की आहार संबंधी ज़रूरतों के साथ आवश्यक पोषक तत्व की ज़रूरत भी पूरी हो जाती है। सुबह का नाश्ता करने से भोजन में विविधता आती है जो कि दो समय के भोजन से सम्भव नहीं है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सुबह का नाश्ता हर दृष्टि से महत्वपूर्ण है तथा इसे अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए।

आज के व्यस्त जीवन में ज़्यादातर लोग सुबह नाश्ता नहीं करते हैं। यह मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से उचित नहीं है। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है सुबह का नाश्ता छोड़ने की आदत मज़बूत होती जाती है विशेषत: स्कूल व महाविद्यालय जाने वाले बच्चों तथा काम पर जाने वाले महिला व पुरूषों

(शेष पृष्ठ 25 पर)

वृद्ध महिलाएं और समाजिक सहायता प्रणाली

- आरती कुमारी एवं शीला सांगवान
मानव संसाधन एवं पारिवारिक अध्ययन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

डब्ल्यूएचओ रिपोर्ट के अनुसार 2000 और 2050 के बीच देश की कुल आबादी का अनुमान 60% बढ़ने की उम्मीद जबकि 60 वर्ष और इससे अधिक आयु वाले लोगों की आबादी 360 प्रतिशत बढ़ जायेगी। 2050 तक 60 साल से अधिक उम्र की महिलाओं की 18.4 मिलियन तक वृद्धों की संख्या से अधिक होगी। जिसके परिणामस्वरूप भारत में वृद्धों की आबादी की नारीकरण की एक विशिष्ट विशेषता होगी। लिंग आधारित भेदभाव जीवन काल से वृद्ध महिलाओं की दुर्दशा बढ़ रही है। बुढ़ापे की लिंगीय प्रकृति ऐसी है कि सार्वभौमिक रूप से महिला पुरुषों की तुलना में लंबे समय तक जीवित रहती हैं। पति के मरने के बाद, फिर से शादी करने से महिलाओं को रोकना पड़ता है। जिससे महिलाएं अकेले ही समाप्त हो जाती हैं। भारत 60 वर्ष और उससे अधिक आयुवर्ग के वृद्धों की पहली सबसे बड़ी आबादी वाला देश है। आबादी का 8 प्रतिशत 60 साल से ऊपर है और 2025 तक यह दर 18 प्रतिशत हो जायेगी इस स्थिति की वजह से 21वीं सदी युग ऑफ पॉप्यूलेशन एजिंग हो सकती है। वृद्धों के प्रति युवा पीढ़ी के बदलते दृष्टिकोण के कारण वृद्धों को विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। समाज अधिक आत्मकेन्द्रित, भौतिकवादी और उपलब्धि उन्मुख हो गया है जोकि वृद्धों को अपने अधिकारों से वंचित कर रहा है। युवा पीढ़ी वृद्धों को समाज पर बोझ के रूप में मानती है, लकिन वे वास्तव में इस तथ्य को महसूस नहीं करते हैं कि वे एक संसाधन है, जो समाज के कल्याण में योगदान कर सकते हैं।

औद्योगीकरण, शहरीकरण और आधुनिकीकरण के आगमन के साथ वृद्ध सदस्यों के लिए परमाणु परिवारों की अवधारणा में सामाजिक आर्थिक और मनोवैज्ञानिक समस्याएं बहुत ज़्यादा बढ़ी हैं। पारम्परिक संयुक्त परिवार में बदलाव के कारण जो अब सभी लोग चाहते हैं कि एक व्यक्तिगत परमाणु हो जो परिवार के वृद्ध व्यक्तियों के लिए दयनीय स्थिति के लिए ज़िम्मेदार है। चूंकि वृद्ध महिलाओं को उत्पादक नहीं माना जाता, इसलिए इसके प्रति परिवार के सदस्यों और समाज का रवैया बदल जाता है, जो वृद्ध महिलाओं के लिए बहुत ही दुखद स्थिति है। उम्र बढ़ने की प्रक्रिया जिसमें कई शारीरिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होता है में परिवर्तन हानिकारक नहीं लेकिन शारीरिक कार्य में धीरे-धीरे गिरावट होती है। बुजुर्ग में विशेष रूप से वृद्ध महिलाओं के बीच सामाजिक अलगाव एक समस्या बन गई है। वृद्धावस्था में, वृद्धों के लिए पुराने दोस्तों तक पहुंचने या नई दोस्ती बढ़ाने के लिए आसान नहीं है, यह स्थिति उन्हें विभिन्न प्रकार की आयु संबन्धित समस्याओं के प्रति अधिक संवेदनशील बना देती है। वृद्धावस्था में विभिन्न समूहों में बदलाव होता है, जैसे कि शारीरिक, भावनात्मक, कार्यात्मक संरचना, कार्यों में होनेवाले परिवर्तन, व्यक्तिगत, व्यवहार में बदलाव, जीवन शैली में परिवर्तन आदि। हम सभी जानते हैं कि महिलाओं का लिंग भेदभावपूर्ण जीवन बचपन से शुरू होता है, वृद्ध महिलाओं के जीवन में सबसे दुखद घटना विधवा होना है। पारिवारिक समस्याओं में एक दयनीय समस्या जैसे कि वृद्ध महिला के साथ बहुत की अनबन, कमज़ोरी, अशिक्षित, आर्थिक रूप से कमज़ोर, स्वास्थ्य में कमी, पति की मृत्यु, परिवार से एक दूसरे की दूरी आदि।

हम सभी जानते हैं कि वृद्ध महिलाओं की तुलना में वृद्ध पुरुषों की

अधिक सामाजिक दोस्ती होती है जबकि अधिकांश वृद्ध महिलाएं घर की चारदीवारों तक ही सीमित हैं, इसलिए वृद्ध महिलाओं के लिए सामाजिक सहायता का जाल बहुत ही कम है। वृद्ध पुरुषों की तुलना में वृद्ध महिलाओं में ज़्यादा दिक्कतें हैं इसलिए उनकी समस्याओं को ध्यान में रखने के लिए विशेष ध्यान देने की ज़रूरत है। चूंकि सामाजिक अलगाव हर तरह के अन्यायों के प्रति कमज़ोर बनाता है, इसलिए वृद्ध महिलाओं के लिए समर्थन प्रणाली को मज़बूत बनाने के लिए ठोस कदम उठाना चाहिए। संक्षेप में वृद्ध महिलाओं की बुनियादी ज़रूरतों और उनके स्वस्थ जीवन के नेतृत्व के लिए सामाजिक सहायता की आवश्यकता है। पारिवारिक हिंसा में एक बड़ी समस्या वृद्ध महिलाओं के लिए दुर्व्यवहार शब्द का उपयोग जो अशुद्धताओं के विभिन्न प्रकार हैं जैसे कि शारीरिक दुरुपयोग, मौखिक दुरुपयोग, उपेक्षा, अपशब्द और परित्याग जैसे दुष्कर्म समाज में तेज़ी से बढ़ रहे हैं। वृद्धों में सबसे बड़ी समस्या उनके परिवार के सदस्यों द्वारा उत्पीड़न का डर, परिवार के सदस्यों द्वारा असहमति, असुरक्षा की भावना, दुराचारी, अपशब्द, अनादर, वृद्ध महिला के उपचार में खर्च, सामाजिक अलगाव, शारीरिक मानसिक और आर्थिक रूप से निर्भर के कारण ही वृद्ध महिलाओं में हिंसा और तनाव का आगमन होता है। देखा गया है कि महिलाएं इस समस्या का सबसे बड़ा शिकार हैं क्योंकि उन्हें सामाजिक जाल की कमी है। वृद्ध महिलाएं सबसे ज़्यादा असहनीय हैं, क्योंकि सामाजिक और आर्थिक सहायता दोनों की कमी है। वर्तमान में, महिलाओं की आर्थिक, सामाजिक स्वास्थ्य संबधी मुद्दों, पारिवारिक देखभाल और समर्थन की कमी के कारण ही निराशाजनक स्थिति में हैं।

सामाजिक प्रणाली

सामाजिक सहायता प्रणाली, वृद्धों के बीच सामाजिक जाल को बढ़ाने में योगदान करेंगे, वृद्ध महिलाओं के आत्मसम्मान और गरिमा को बढ़ाने के लिए सकारात्मक योगदान करेंगे। सामाजिक सहायता प्रणाली वृद्धों की तीन प्रमुख ज़रूरतों को पूरा करने में मदद करेगी।

1. समाजीकरण
2. दैनिक जीवन के कार्यों को पूरा करना।
3. बीमारी या संकट के दौरान सहायता

समाजिक सहायता प्रणाली और भी बहुत सारे महत्वपूर्ण कार्य हैं जो महिलाओं के सामाजिक अलगाव को कम करता है। नीचे दिये गये सभी महत्वपूर्ण कार्य जैसे कि :

- अकेलेपन की भावनाओं को दूर करने के लिए और शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए समुदाय के साथ जोड़ना।
- विभिन्न सामाजिक, मनोरंजक, शैक्षिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में शामिल, बुढ़ापा और अन्य संगठनों के साथ जोड़ना।
- उत्पीड़न, दुर्व्यवहार, दुराचारी, शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न, घोखाधड़ी आदि की शिकायतों को हेल्पलाइन द्वारा नियंत्रित करना।
- वृद्धों के विरुद्ध हिंसा का मुकाबला और स्वयं को बचाने के लिए जानकारी प्रसारित करना।
- वृद्ध महिला को सशक्त बनाने की सलाह दी जानी चाहिए।
- शिक्षित, सक्रिय, उत्पादक और सफल बनाने के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए।
- उनकी रक्षा करने के लिए वृद्ध अधिकार और सहायता सेवा के बारे में जानकारी देनी चाहिए।
- वृद्ध महिलाओं के लिए स्वस्थ जीवन सुनिश्चित करने में सामाजिक सहायता के महत्व पर बल देना चाहिए।
- वृद्ध महिलाओं के लिए स्वयं सहायता समूह उनके आत्मविश्वास स्तर और आत्मसम्मान में सुधार के लिए आय-संबंधी गतिविधियों को शुरू करें और अपने अनुभवों को वृद्ध महिलाओं से साझा करके अपने तनाव को कम कर सकती हैं।
- परिवार के बाहर के लागों के साथ सामाजिक जाल को बढ़ावा देना चाहिए जो अपने परिवार के सदस्यों द्वारा वृद्ध महिलाओं के शोषण को रोक सके।
- औपचारिक समर्थन में एन.जी.ओ. और सरकारी संगठन द्वारा प्रदान की जानेवाली वित्तीय चिकित्सा या अन्य सहायता समूह से सेवाएं प्रदान करनी चाहिएं।
- शहरीकरण और बढ़ते परमाणु परिवारों के साथ महानगरीय, शहरों में रहने वाली वृद्ध महिलाएं उनके ग्रामीण समकक्षों की तुलना में सामाजिक रूप से विमुख हो जाती हैं।
- समाजिक विधवा पेंशन में वृद्धि और इसके लाभों को बढ़ाना बहुत ज़रूरी है।
- राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन और विधवा पेंशन योजना जैसे सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की व्यापक जागरूकता और अभिगम के लिए नवीनीकृत प्रयास किए जाने चाहिएं।
- वृद्ध महिला, विकलांग, विधवा के विशेष प्रोत्साहन के संदर्भ में प्रावधानों पर भी विचार किया जाना चाहिए।

अत: अन्य जीवन प्रत्याशी के कारण पुरूष वृद्धों पर महिला वृद्धों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई। विभिन्न समस्याओं जैसे की जैविक और मनोवैज्ञानिक बुढ़ापे से जुड़ी हैं, वृद्ध महिलाएं इस प्रकार की समस्याओं के प्रति अधिक संवेदनशील हैं। सामाजिक सहायता जाल कम होने के कारण वृद्ध महिलाओं के जीवन में समाजिक अलगाव के प्रति अधिक संवेदनशीलता बढ़ रही है। इसलिए उचित सामजिक सहायता प्रणाली स्थापित करना समय की अवश्यकता है। वृद्ध महिलाओं को अच्छी तरह से बढ़ावा देने में समाजिक सहायता प्रणाली अनौपचारिक, अर्द्धक और औपचारिक हो सकती है। परिवार और दोस्त अनौपचारिक सहायता प्रणाली समर्थन प्रदान करते हैं। जबकि औपचारिक सहायता प्रणाली में एन.जी.ओ. और सरकारी संगठन द्वारा प्रदान की जानेवाली वित्तीय चिकित्सा या अन्य सहायता समूह से सेवाएं शामिल हैं। वृद्ध महिलाओं को सभी आयामों से सशक्त बनाने के लिए सक्रिय उपाय किए जाने की ज़रूरत है।

(पृष्ठ 24 का शेष)

में। बच्चों में यह आदत बड़ों को देखकर आती है। इसलिए नाश्ता करने की सही आदत बच्चों को परिवार में ही सिखायी जा सकती है। अगर आप अपना स्वस्थ जीवन व स्वस्थ परिवार चाहते हैं, तो संतुलित आहार के साथ-साथ प्रतिदिन सुबह का नाश्ता नियमित रूप से करें। सुबह का नाश्ता सुपाच्य व मृदु होना चाहिए अर्थात इसमें अत्यधिक मसालों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। सबुह के नाश्ते में विभिन्न पौष्टिक व्यंजन सम्मिलित किये जा सकते हैं, जैसे कि साबुत या मोटे अनाज का दलिया, अंकुरित दालें, दूध या दही, दूध से बने खाद्य पदार्थ, तिलहन-मूंगफली से बने लड्डू, अण्डे/ऑमलेट, हरी पत्तेदार सब्जियों के परांठे या रोटी, कोई मौसम संबंधी फल जैसे अमरूद, किन्नू, पपीता इत्यादि।

संपूर्ण आहार ब्लॉक (चारा ईंट)

- वीनस
पशु पोषण विभाग
लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

हमारे देश में बहुत से दुधारू पशुओं को फसल अवशेषों पे रखा जाता है। इसलिए आवश्यक है कि उन्हें जो चारा दिया जाये वो सभी पोषक तत्वों से भरपूर हो ताकि पशु की सेहत अच्छी बनी रहे और वो ज़्यादा से ज़्यादा दूध दे। इन सभी ज़रूरतों को संपूर्ण आहार ब्लॉक के द्वारा पूरा किया जा सकता है तथा इससे किसान कम कीमत में अधिक से अधिक दूध प्राप्त कर सकते हैं।

संपूर्ण आहार ब्लॉक चाट, सूखा चारा तथा अन्य पूरक तत्वों का मिश्रण होता है जो सस्ता तथा आसानी से संभाला जा सकता है और साल के उन दिनों में जब हरा चारा भरपूर मात्रा में उपलब्ध नहीं होता तब संपूर्ण आहार ब्लॉक को खिलाया जा सकता है। ये इच्छानुसार किसी भी आकार का चकोर या गोल बनाया जा सकता है।

संपूर्ण आहार ब्लॉक (चारा ईंट) बनाने की विधि : सबसे पहले चाट सामग्री को अच्छे से पीस के बाकी पूरक तत्वों के साथ मिक्स कर लें। उसके बाद इस मिश्रण तथा तूड़ी को उचित अनुपात में मिला लें और साथ में कुछ मात्रा शीरा भी मिलायें। बढ़ रहे पशुओं के आहार ब्लॉक में 40-50% भाग तूड़ी का मिलायें तथा शुष्क पशुओं के आहार ब्लॉक में 70-80% भाग तूड़ी का मिलायें। 5-10 कि.ग्रा. प्रतिदिन दूध देने वाले पशुओं के लिए तूड़ी की मात्रा 60% तक रखें व 10-15 कि.ग्रा. दूध वाले पशु के लिए 50% तथा 15-20 कि.ग्रा. दूध देने वाले पशुओं के लिए तूड़ी की मात्रा 40% तक रखें।

संपूर्ण आहार ब्लॉक (चारा ईंट) के लिए सामग्री : 50% तूड़ी + 50% दाना मिश्रण (40% पिसी हुई मक्का + 30% खल्ल + 24% चोकर + 5% गुड़ + 0.5% खनिज मिश्रण तथा 0.5% नमक)। उदाहरण के लिए 20 किलो संपूर्ण आहार ब्लॉक (चारा ईंट) के लिए सामग्री- 10 किलो तूड़ी; 04 किलो मक्का; 03 किलो खल्ल; 2.4 किलो चोकर; 0.5 किलो गुड़ इनके साथ ही 100 ग्राम खनिज मिश्रण तथा 100 ग्राम नमक अवश्य मिलाएं। अब इस सारी सामग्री को अच्छे से मिला कर आहार ब्लॉक बनाने वाली मशीन में डाल दें।

संपूर्ण आहार ब्लॉक खिलाने के फायदे :

1. ये पशु के शरीर में सभी पोषक तत्वों की पूर्ति करता है।
2. इस से पशु को पूरा साल अच्छी गुणवत्ता का चारा मिलता है।
3. इसकी कीमत भी कम होती है।
4. इसे आसानी से स्टोर भी किया जा सकता है।
5. ये पशु के शरीर में किसी भी पोषक तत्व की कमी नहीं होने देता।
6. इसको खिलाने से पशु को कम अफारा आता है तथा दूध उत्पादन ज़्यादा होता है।

संपूर्ण आहार ब्लॉक को धीरे-धीरे पशु के राशन में बढ़ाना चाहिए एकदम से नहीं। 15 दिन के बाद जब पशु अच्छे से इसे खाने के अनुकूल हो जाये तब पशु को केवल संपूर्ण आहार ब्लॉक खिलाया जा सकता है। बरसात के दिनों में इसे ज़्यादा दिनों तक स्टोर करके न रखें अन्यथा इसमें फफूँदी लग सकती है।

(पृष्ठ 12 का शेष)

कुछ ही समय के लिए कमरे के तापमान पर भंडारित किये जाते हैं। अत: फलों का उपयोग काल बढ़ाने, संसाधन के लिए फलों को खराब होने से बचाने, बाजार में नियमित पूर्ति बनाये रखने के लिए उचित भंडारण आवश्यक है। शीतकालीन फसल के फलों को 6-9 दिनों तक तथा वर्षाकालीन फसल के फलों को 2-4 दिनों तक कमरे के तापमान पर रखा जा सकता है। फलों का भंडारण करने से पहले वेक्साल आदि से उपचारित करने पर उनकी भंडारण क्षमता 2-4 दिनों तक बढ़ाई जा सकती है। अमरूद के फलों को 8-10 डिग्री सेंटीग्रेड तथा 80-90 प्रतिशत सापेक्षिक आर्द्रता पर 4 सप्ताह तक भंडारित किया जा सकता है। यदि अमरूद के फलों को 50 सेंटीग्रेड के तापमान से नीचे भंडारण करते हैं तो उनमें शीत क्षति होने लगती है । पूर्ण परिपक्व फल ही भंडारण के लिए उचित होते हैं।

प्रसंस्करण : अमरूद की उत्पादकता अधिक होती है परन्तु संरक्षण के लिए अपर्याप्त सुविधाओं के कारण फसल के कुल उत्पादन का 25-30 प्रतिशत हिस्सा नष्ट हो जाता है और किसान को भारी नुकसान का सामना करना पड़ता है। अमरूद के फलों को नष्ट होने से बचाने एवं अधिक लाभ लेने हेतु फलों के विभिन्न व्यंजन जैसे जैली, चीज़ एवं अन्य पेय पदार्थ तैयार किये जा सकते हैं।

अमरूद के फलों से तैयार व्यंजन एवं उनकी मानक सरंचना

फल पेय : यह फलों का प्राकृतिक रस है जो शक्कर आदि मिलाकर तैयार किया जाता है। इसे पीने से पहले पानी डालकर पतला किया जाता है।

पेय पदार्थ	कम से कम कुल विलय ठोस (प्रतिशत)	पेय पदार्थों में कम से कम फलों का रस (प्रतिशत)
फल रस पेय	10	10
नेक्टर	15	20
क्रश	55	25
स्कवैश	40	25
शरबत	65	25

जैम : जब फलों का गूद्दा/रस चीनी की निर्धारित मात्रा में उबालकर गाढ़ा किया जाये तो वह जैम कहलाता है।

मानक सरंचना: कम से कम फल की मात्रा : 45 प्रतिशत
कम से कम चीनी की मात्रा : 68 प्रतिशत
(कुल ठोस विलेय)

पनीर (चीज़) : चीज़ जैम की तरह खाद्य पदार्थ होता है। इसे स्वादिष्ट बनाने व जमाने के लिए इनमें नमक व मक्खन डाला जाता है।

जैली : जैली अमरूद से तैयार प्रमुख उत्पाद है। कुतरे हुए फलों में जल मिलकर या बिना जल के फल रस में ही उन्हें उबालकर, निचोड़ कर लिए गए रस में चीनी, मिलाकर गाढ़ा करके ठंडा करने से जैली बनती है। इसे बनाने के लिए चीनी, पेक्टिन, अम्ल व पानी की मात्रा का एक निश्चित अनुपात में होना आवश्यक है।

मानक संरचना : कम से कम फल की मात्रा : 45 प्रतिशत
कम से कम चीनी की मात्रा : 65 प्रतिशत
(कुल ठोस विलेय)



एक कदम स्वच्छता की ओर

मुर्गियों से अधिक उत्पादन कैसे लें

- **ओजस्विता एवं पूजा यादव**[1]
सरकारी हैचरी फार्म, हिसार

आज के आधुनिक युग में जो लोग खेती व अन्य व्यवसाय से जुड़े हैं वे सभी मुर्गीपालन को व्यापारिक मुनाफे की नज़र से देख रहे हैं। ऐसी स्थिति में मुर्गीपालन से सम्बन्धित विषयों में ज्ञान का होना बहुत आवश्यक है। कुप्रबन्ध के कारण चूज़ों पर विपरीत असर पड़ता है जिसके कारण वयस्क होने पर उनके अण्डे उत्पादन की क्षमता तथा अण्डा देने की अवधि प्रभावित होती है। अत: मुर्गियों से अधिक से अधिक अण्डा उत्पादन प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना बहुत महत्वपूर्ण है :

चूज़ों का चुनाव :

- चूज़ों का वज़न जन्म के समय 40-50 ग्राम होना चाहिए।
- चूज़ों को खरीदते समय उनके पंख विकसित तथा सूखे हों, चूज़ा गीला नहीं होना चाहिए तथा उसकी आंखें सही प्रकार से खुली होनी चाहिएं।
- संकर नस्ल के चूज़े बड़े होकर अण्डों के लिए उत्तम माने जाते हैं। इन मुर्गियों के चूज़े कम खर्च पर ज़्यादा अण्डे देते हैं और इनका मृत्यु दर भी कम होता है।
- चूज़ों को निजी या राजकीय कुक्कुट फार्मों से प्राप्त किया जा सकता है।

टीकाकरण : टीकाकरण से मुर्गियों में बीमारियों के प्रति रोग प्रति रोधक क्षमता बढ़ जाती है। अत: चूज़ों को खरीदने से पहले टीकाकरण सुनिश्चित कर लें कि उन्हें मेरेक्स तथा रानी खेत बीमारी के टीके लगे हों। रानीखेत का दूसरा तथा चेचक का टीका 6-8 सप्ताह की आयु पर लगा दें। टीकाकरण नियम से तथा समय के अनुसार किसी मुर्गा चिकित्सा विशेषज्ञ की सलाह से करें ताकि मुर्गियों को बीमारियों के संक्रमण से बचाया जा सकें।

ब्रूडिंग हाऊस व ब्रूडिंग की आवश्यकताएं :

- चूज़े आने से पूर्व ब्रूडर हाऊस की अच्छी तरह से सफाई करनी चाहिए।
- फर्श को कीटनाशक से धो दें व अच्छी तरह से सुखा लें।
- गर्मियों में चूज़े रात को या सुबह के समय आने चाहिएं। जबकि सर्दियों में दिन के समय आने चाहिएं।
- ब्रूडर के किनारे से लगभग 2 से ढाई फीट की दूरी पर 2 फीट ऊँची चिक गार्डस् दीवार लगाएं तथा आठ से दस दिन के उपरान्त हटा दें।
- ब्रूडर हाऊस का तापमान 35 डिग्री सैल्सियस होना चाहिए इसके बाद 2 डिग्री सैल्सियस प्रति सप्ताह की दर से घटाते रहें जब तक तापमान 25 डिग्री सैल्सियस पर न पहुंच जाए।
- चूज़ों के आगमन पर उनको इलैक्ट्रोलाईट्स अथवा गुड़ का पानी देना चाहिए।

पेट के कीड़ों की सफाई

पेट के कीड़ों से बचाव के लिए 12 सप्ताह व 18 सप्ताह पर पेट के कीड़ों की दवाई दे देनी चाहिए। जूँ या पिस्सू से मूर्गियों को बचाने हेतु समय-समय पर कीटनाशक का छिड़काव व चूना का छिड़काव करें। मैलाथियान या सुमिथीयान दवाई के घोल का छिड़काव करना चाहिए ताकि अण्डों की उत्पादन क्षमता पर असर न पड़े।

चोंच काटना

मुर्गी की चोंच 2-3 सप्ताह की आयु में काट देनी चाहिए तथा दूसरी बार अण्डों पर आने से पहले लगभग 18 सप्ताह की आयु में फिर से चोंच काट देनी चाहिए।

प्रकाश

रोशनी का प्रबन्ध अच्छा होना चाहिए। 17-18 सप्ताह की आयु के बाद प्रतिदिन 14 से 15 घण्टे रोशनी का प्रबन्ध करें। सर्दियों में कई बार मुख्यत: रोशनी के अभाव में अण्डा उत्पादन कम होने लगता है। मुर्गीघर में बल्ब की ऊँचाई सात फुट रखें व बल्ब से बल्ब की दूरी 10-10.5 फुट रखें। रोशनी के अभाव में मुर्गी की अण्डे देने की क्षमता घट जाती है।

तनाव

तनाव के कारण अण्डे उत्पादन की प्रक्रिया धीमी हो जाती है। तनाव की स्थिति अत्याधिक गर्मी के मौसम में उत्पन्न हो जाती है इसके लिए Electrolyte व Multivitamin देते रहना चाहिए। मुर्गियों में कई बार आंतरिक समस्याएं भी हो जाती हैं जैसे कि अण्डे का बंध होना या उनके प्रजजन के दौरान समस्याएं आना। ऐसी स्थिति में मुर्गा विशेषज्ञ से सम्पर्क करें।

पानी

मुर्गी आवास में हर समय ताज़ा व साफ पानी उपलब्ध हो। मुर्गी को अण्डे देने के लिए पानी की कमी नहीं होनी चाहिए। अधिक गर्मी में मटके तथा मिट्टी के बर्तन का प्रयोग कर सकते हैं तथा अधिक ठण्ड में स्टोर किए हुए पानी की बजाए ताज़ा पानी का उपयोग करें ताकि अण्डे उत्पादन की क्षमता धीमी न पड़े।

आहार : मुर्गियों के आहार में प्रयोग होने वाली सामग्री में मक्की और सोयाबीन प्रमुख हैं। आहार में प्रोटीन की मात्रा का विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि कई बार अत्यधिक प्रोटीन आहार में खिलाने से मुर्गियों के खून में यूरिक अम्ल की मात्रा भी बढ़ जाती है और मुर्गी को गाउट जैसी गंभीर समस्या का भी सामना करना पड़ सकता है। विटामिन-डी की कमी भी अण्डे के उत्पादन पर असर डालती है। विटामिन-डी की कमी को दूर करने के लिए मुर्गियों को पानी में विटामिन-डी पिलाना चाहिए। विटामिन-डी सूर्य प्रकाश से प्राप्त होता है। इसकी कमी से कैल्शियम व फॉस्फोरस की कमी हो जाती है। जिसके कारण पैरों में दुर्बलता अथवा मुड़ भी जाते हैं। पंजे फैले नज़र आते हैं। जिससे रिकेट्स की बीमारी हो जाती है। ऐसी स्थिति में अण्डों का उत्पादन कम हो जाता है तथा बिना छिलके या पतले छिलके के अण्डे हो जाते हैं। अण्डों से चूज़े निकालने की दर भी कम हो जाती है। दाने या पानी में विटामिन ई के घोल वाली (विटामिन- ए, डी, ई और के) दवाइयां देनी चाहिएं। अण्डों को दिन में तीन बार एकत्रित करें। प्रतिदिन प्रत्येक चार-पाँच घण्टे के अन्तर पर अण्डे एकत्र करें एवं 10 डिग्री से 15 डिग्री सैल्सियस तापमान तथा ठण्डे कमरे में अण्डों का भण्डारण करें।

निकास

मुर्गी घरों में गर्द गुबार कूड़ा कर्कट हटाते रहें ताकि मुर्गियों को किसी भी प्रकार की बीमारी के संक्रमण से बचाया जा सके अथवा उनकी अण्डा उत्पादन में भी कमी न आ सके। इसके अतिरिक्त पानी का निकास मुर्गीघरों से दूर ही करें ताकि आसपास नमी न आए क्योंकि नमी के कारण से मुर्गीघरों में अमोनिया गैस ज़्यादा बनती है जिसके कारण अन्य रोगों की संभावना बढ़ जाती है।

[1]स्नातकोत्तर छात्रा, लुवास, हिसार।

Maintaining Soil Fertility : Be Given Top Priority

- **N.K.Goyal, Sandeep Rawal and B.R.Kamboj**[1]
Krishi Vigyan Kendra Damla,Yamunanagar
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

With rising population, limited availability of agricultural land, small land holdings and declining soil fertility, India is under serious threat of losing its food surplus status in the near future. According to estimates, the demand for foodgrains is expected to increase to 355 million tonnes in 2030. The capability of the soil to provide all the essential plant nutrients in available form is called as soil fertility. The inherent capacity of the soil to supply nutrients to plants in adequate amount and in suitable proportions is called as soil fertility. Maintenance of soil fertility is a great problem of our farmers. Cultivation of particular crop year after year in the same field decreases the soil fertility. To increase the soil fertility, it is necessary to check the loss of nutrients and to increase the nutrient content of soil.

Advancing food security and environmental sustainability in farming systems require an integrated soil fertility management approach that maximizes crop production while minimizing the mining of soil nutrient reserves and the degradation of the physical and chemical properties of soil that can lead to land degradation, including soil erosion. Such soil fertility management practices includes the use of fertilizers, organic inputs, crop rotation with legumes and the use of improved germplasm. The factors effecting the fertility of soil are parent material, climate and vegetation, topography, inherent capacity of soil to supply nutrient, physical condition of soil, soil age, micro-organisms, availability of plant nutrients, soil composition, organic matter, soil erosion, cropping system and favourable environment for root growth. Soil is an essential natural resource. Life on earth is directly dependent upon soil because without soil there will be no vegetation and no food for animals and human beings. Soil conservation and management practices include measures to restore and maintain soil fertility, prevent soil erosion and to improve the degraded condition of the soil.

Losses of Plant Nutrients from the Soil

Soil is the store house of plant nutrients. Losses of plant nutrients from the soil are the main cause of decreasing the fertility of soil. Plant nutrients are lost from the soil by the following ways:

(i) Removal of Plant Nutrients by Harvested Crops : Plant absorbs nutrients from the soil and stores them in their different parts. The crops remove large quantity of nitrogen and potassium and relatively small quantity of phosphorus. Four to five per cent of total nitrogen is lost from soil per acre annually through the harvested crops. The loss can be reduced by adding farm waste materials to the soil.

(ii) Removal of Plant Nutrients by Weeds : Weeds compete with crops for mineral nutrients. Competition begins when the supply of plant nutrients falls below the requirements of both weeds and crops. Weeds by nature of them grow fast and remove the plant nutrients from the soil. This will be severe if weeding is not done as soon as weeds emerge.

(iii) Losses of Nutrient by Soil Erosion : Erosion is the physical removal of top soil by water and wind. Plant nutrient, particularly nitrogen remains on the upper layer of soil. When erosion is severe, the nutrient is lost along with soil and the fertility of soil decreases accordingly.

(iv) Losses of Nutrients by Leaching : Fertilizers, both straight and mixed, are soluble in water and as such they are liable to loss by leaching in rain water or irrigation water. Leaching loss is more acute in sandy soil and bare soils. Nitrogen is mainly lost from soil by leaching.

(v) Losses of Nutrients in Gaseous Form : Nitrogen is generally subjected to loss in gaseous form.

The biochemical reduction of nitrate nitrogen to gaseous compounds is called 'denitrification' and is thought to be the most widespread type of volatilization

(vi) Loss of Nutrients by Crop Residue Burning : Plant nutrients are stored in harvested crops and in residues left after harvesting. Most of the farmers prefer to burn the residues left after harvesting of crops which in turn results in loss of plant nutrients but loss of soil fertility due to loss of organic matter and microorganisms.

Different approaches to manage soil fertility efficiently

An integrated soil fertility management aims at maximizing the efficiency of the agronomic use of nutrients and improving crop productivity. This can be achieved through the use of grain legumes, which enhance soil fertility through biological nitrogen fixation and the application of chemical fertilizers.

Whether grown as pulses for grain, as green manure, as pastures or as the tree components of agro-forestry systems, a key value of leguminous crops lies in their ability to fix atmospheric nitrogen, which helps reduce the use of commercial nitrogen

[1]Registrar, CCS Haryana Agricultural University, Hisar

fertilizer and enhances soil fertility. Nitrogen-fixing legumes are the basis for sustainable farming systems that incorporate integrated nutrient management.

Soil fertility can be further improved by incorporating cover crops that add organic matter to the soil, which leads to improved soil structure and promotes a healthy, fertile soil; by using green manure or growing legumes to fix nitrogen from the air through the process of biological nitrogen fixation; by micro-dose fertilizer applications, to replenish losses through plant uptake and other processes; and by minimizing losses through leaching below the crop rooting zone by improved water and nutrient application.

Soil Health Improvement

To improve the health of soil following steps must be taken into consideration :

(i) Crop Rotations : The practice of growing various crops alternately on the same form in pre-planned succession is known as crop rotation. Cultivating the same crop in a particular plot year after year leads to decrease in crop productivity and the depletion of soil nutrients. Hence, crop rotation is an eco-friendly and solve the problem of mono-crop cultivation.

(ii) Conservation Tillage : Conservation tillage is much better option than conventional tillage. It incorporates plant residues from previous crops into the soil, which increases soil nutrients and soil moisture.

(iii) Use of Bio-fertilizers and Bio-pesticides : The Green Revolution has been one of the biggest success stories of independent India. The main reason is the enhanced use of chemical fertilizers and pesticides. However, this has caused soil degradation and pollution of surface as well as groundwater sources.

Therefore, as an effective measure, the government gradually replaced chemical fertilizers by biological manure, compost and bio-fertilizers (efficient strains of nitrogen-fixing, phosphorus-solubilizing or cellulolytic micro organisms, e.g. Legume-Rhizobium, Azotobacter, etc.).

It also includes an environment-friendly approach to waste management through gradual replacement of synthetic chemical pesticides by soil-friendly bio-pesticides (bio-pesticides include eco-friendly pest enemies like microbial botanical or plant based and biochemical pesticides).

(**iv) Organic Farming :** The use of manure, bio-fertilizers and bio-pesticides in crop production is called organic farming. It is a kind of agriculture system, which avoids or largely excludes the use of chemical fertilizers, pesticides and other synthetic agro chemicals, which have caused soil degradation, ground water pollution and spread of pesticide-resistant pests.

The objective of organic farming is to develop a sustainable agriculture system so as to ensure enough food production without harming the environment or degrading soil fertility.

(v) Manure/Green Manures : Manure is the material of organic origin (mostly from animals and plants) which is used to increase soil nutrients. In addition to nutrients, manure provides carbon and other constituents that improve the soil's humus content, biological activity and soil physical structure. The bio-decomposed farmyard manure is an excellent source of soil nutrients and contains ammonium, phosphorus, potassium and micro-nutrients. The use of earthworms in composting of organic waste is known as vermicomposting. Vermicomposting of animal refuse and agricultural residues results in composts with a high nutrient content.Green manures provide a sufficient amount of nitrogen and other nutrients and enriches the physical, chemical and biological quality of soil. It is grown in the field and is left under the soil for decomposition after ploughing. Green manure is a renewable and nutrient rich resource.

Soil Fertility Improvement

The following things must be properly followed for increasing the fertility of soil : (i) Proper use of land (ii) Good tillage (iii) Crop rotation (iv) Control of weeds (v) Maintenance of optimum moisture in the soil (vi) Control of soil erosion (vii) Cultivation of green manure crops (viii) Application of manures (ix) Cultivation of cover crops (x) Removal of excess water (drainage) and (xi) Application of fertilizers.

Soil degradation is estimated to be severely impacting the 147 million hectares of cultivable land in India, causing a successive deterioration in its productive capacity. In the recent years, experts have witnessed a worrying sign of declining total factor productivity and compound growth rates of major crops. In several agricultural regions across the country, there has been observed a gap between nutrient demand and supply including decline in organic matter status, deficiencies of micronutrients in the soil, soil acidity, salinization and sodification. Experts say one of the main ways forward is to make agriculture more sustainable and reviving the age-old practices of soil regeneration while balancing the same with judicious use of agro-chemicals. The agro-chemical industry must also rise to the occasion and invest in producing organic biological products that help improve the health of soil. I

Major Physiological Disorder in Cotton

- **N.K. Yadav, Anil Mehta and Preeti Yadav**[1]
Cotton Research Station, Sirsa
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Major physiological disorder affecting cotton crop and the possible means to manipulate the physiology of the plant so as to mitigate the impact of the adversity are as follows :

Physiological shedding of buds and bolls

The gravity of the problem can be visualized from the fact that nearly 60-70 per cent of the fruiting parts are shed by the cotton plant due to physiological and entomological reasons. Many factors are here to account for the physiological shedding in cotton. Major causal factors are :

Environmental factors : Cloudy weather, moisture stress, excessive rainfall during the reproductive phase; High temperature and Water logging at the flowering and early boll development phase.

Cultural factors : High density planting, improper drainage, imbalance in nutrition and micro nutrient deficiency.

Remedial measures to reduce the shedding

(i) Application of Naphthalene acetic acid (NAA) at 10-20 ppm.
(ii) To avoid excessive vegetative growth use growth retardants such as; CCC at 50 ppm at 90 days after germination.
(iii) Keep the field free from excessive water or provide requisite quantity of water through protective irrigation to the extent possible.

Leaf Reddening

Leaf reddening is assuming importance in recent years. Depending on the intensity and stage of occurrence, this disorder is likely to affect yield and fiber quality considerably. Major causal factors for this order : Sudden lowering of night temperatures in the month of October and beyond; Prevalence of water logged/high moisture profile for a prolonged period of time; moisture stress; excessive boll load; lowered leaf nitrogen status (less than the critical level); deranged amino-acid profile in the plant system; impediments to normal root activity and genetic makeup of the variety/hybrid (some are highly susceptible and some are tolerant).

Remedial Measures

(i) Adjust sowing time to allow the crop to skip over the adverse ambient environment during the critical stages of boll development.
(ii) Timely correction of N status of the crop through appropriate means prior to and during boll development.
(iii) Correction of Magnesium deficiency wherever noticed.

Bad Opening of the Bolls

This disorder is otherwise known also as Tirak disorder. The problem is basically concerned with premature and improper cracking of bolls, instead of normal fluffy type of opening. Bad opening of bolls results in impaired lint and seed quality apart from reduction in yield. Broadly, causal factors for bad boll opening can be divided into soil and environmental factors :

Soil Parameters : Soil with salinity in the sub soil, light sandy soil and nitrogen deficiency.

Environmental Parameters : The prevalence of warm and dry weather during the fruiting period and Low humidity during the fruiting period.

Remedial Measures

(i) Resorting to frequent irrigation to retard development of sub-soil salinity or alkalinity.
(ii) Applying the proper correctives for nitrogen enrichment especially in the light sandy soil.
(iii) Use of growth retardants to check excessive vegetative growth and thereby reduce the crop demand for more moisture and nitrogen during the boll development stage.

Para wilt

In the 1980's new wilt malady (as distinct from the regular wilt caused by biotic factors) received considerable attention in the view of its increased incidence in certain pockets and specifically in some hybrids. Plant show sudden drooping of leaves which ultimately get wilted but the root system remains intact.

Causal Factors : Either one or both the parents of some of the susceptible hybrids were found wilt prone; wilt incidence was found to be on the higher side under light soil conditions compared to medium and deep soil and the percent wilt incidence was found to vary in the same hybrid/ varieties over years as well as locations apparently indicating the crucial role played by environment in the expression of this disorder.

Remedial Measures

(i) Foliar application of cobalt chloride @ 10 ppm immediately after the appearance of symptoms. There would be no recovery if permanent wilting has already set in.
(ii) Irrigating the crop at early stages of wilt incidence was found to mitigate the malady to some extent. I

[1]Krishi Vigyan Kendra, Sirsa

Solar powered NFT/Container hydroponic system for kitchen gardening

✎ **Arun Kumar Attkan, Sunil Kumar and Nitin Kumar**
Deptt. of Processing and Food Engineering
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

India's population currently estimated at 1.34 billion, is projected to rise to 1.51 billion by 2030 and further to 1.66 billion by 2050 before declining to 1.52 billion by the century's end. Tremendous increase in population has become a major threat to the agriculture due to utilization of land for housing and commercial purposes. In urban areas people are health conscious and at some places they've started to grow vegetables on rooftop for their daily consumption. Proper management in growing these crops requires good structures and automatic irrigation system, making the system more reliable and productive. The use of solar energy not only makes the whole process sustainable but also makes it efficient and economical as the solar energy is free, renewable, abundant and clean source of energy. Thus, there is an urgent need for high-yielding agriculture technology that efficiently utilizes land, water, fertilizer and energy without relying on national power grid system. Such techniques are discussed as below :

Nutrient Film Technique (NFT) : hydroponics in the form of indoor/outdoor cultivation is being explored as a potential technology to provide reliable and healthy produce to consumers living in a dense urban environment.Hydroponics is a part of the system classified as soilless culture. In general, hydroponics facilitates growing of high quality crops with an efficient use of water in a shorter period of time as compared with other systems. It is a system in which water is kept move continuously through the roots of the plant.

Container Hydroponics : One of the major problems is emergence of soil borne pathogens called nematodes with every crop cycle due to growing of roots on same piece of land, which ultimately affects the crop growth and plant fails to deliver its potential yield. Hence, to counter such maladies, huge quantities of pesticides and nutrients are required in the soil, which are not safe to the human health and environment and also add to the much higher cost of production as well. In this method, plants are grown in pots or grow bags filled with porous root media (inert material) and placed in rows by connecting them in series with supply and drain pipes. Water and nutrients are pre-mixed and supplied to each plant as per its requirements in a controlled manner thereby enhancing the crop yield many times in even lesser space as compared to conventional soil based polyhouse/greenhouse cultivation.

Importance in the Context of Current Status : Decreasing of land area causes conventional agricultural system become uncompetitive because of price of land is rising day after day. Hydroponic agriculture cultivation technology system provides an alternative way for farmers who have a narrow field or just have a yard to carry out agricultural business as well as for domestic vegetable growing at rooftop particularly in urban areas as kitchen gardening. Hydroponics system has advantages such as: the density of plants per unit area doubled or land-saving, product quality i.e. shape, size, flavor, color, cleanliness or hygiene); planting does not depend on the season or time and can be adjusted in accordance with market needs. Hydroponic cultivation usually implemented at greenhouse to keep plant growth optimally and to protect from external elements such as pests, rainfall and climate change. In addition, continuity of energy supply becomes a main problem of hydroponic cultivation because of its dependence on energy sources. Especially, when using controlled system with a number of equipment to be controlled such as sensors (temperature, soil moisture), controller and others require continuous electrical energy. The use of generators is not efficient due to the cost and pollution generated. Utilization of Photovoltaic (PV) panel as a renewable energy at housing or transportation this moment is considered as solution to reduce dependency to fossil energy. Its usage for agriculture machine and equipment still not popular since it is expensive initial investment compared to the benefit obtained so that farmers prefer machines which use combustion engine. Solar energy utilization in agricultural equipment, for long-term, will be as an energy source is very promising.

The implementation of an energy management system using new methods, hardware and software, can help to organize and follow the evolution of automated hydroponic system. The main advantage is the efficient use of renewable energy sources that contributes to the production of green and clean electricity. ❍



Management of Rice Straw through Microorganisms

- **Dhinu Yadav,Leela Wati and Sneh Goyal**
Department of Microbiology
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

In recent years, paddy is being harvested using a combined mechanical harvester and large quantity of straw is left in the field. A major portion of rice straw is disposed off by burning or is mulched in the fields. Rice straw, if not properly handled, will cause many problems to farmers as well as to the environment. If rice straw is left in the field without proper management, it can cause the spreading of diseases, such as stem disease which originates from the rice straw and can also encourage the breeding of pests, especially rats. Burning of straw is not the solution to deal with such type of waste, as it is harmful to the environment. Although, rice straw is one of the important source of plant nutrients, its natural decomposition is slow owing to the presence of incalcitrant compounds like cellulose, hemicellulose and lignin. Microorganisms play a pivotal role in the breakdown of the above complex compounds into simple and make them in available forms. Soil is an abode of microorganisms capable of degrading lingo-cellulosic material derived from dead plants and other sources. Among various microorganisms, fungal species are predominately cellulose, hemicellulose and lignin degrading converting these complex polymers into simple sugars and phenolic acids, which further support a host of other microbes in the soil. Some of the soil fungi economically employed for crop residue degradation is *Trichoderma harizianum* and *Pleurotus sajor caju.* Microorganisms can be employed to manage rice straw by production of ethanol, biogas and compost.

Ethanol : Ethanol is a known feed stock for countless chemicals and industrial purpose beside its use for potable purpose and now a days its use has been extended as biofuel. Rice straw contains about 25-45 per cent cellulose (the major constituent of all plant material and the most abundant organic molecule), 20-30 per cent hemi-cellulose (the second most abundant component of lingo-cellulosic biomass) and 10-15 % lignin (the third main heterogenous polymer in lingo-cellulosic residues). For conversion of rice straw into ethanol, sugars are required which can be obtained from hydrolysis of cellulose and hemicellulose, but lignin acts as barrier for conversion of cellulose into sugars. In order to remove lignin, reduce cellulose crystallinity and increase the porosity of the material to make cellulose desirable to hydrolysis for subsequent fermentation, a pre-treatment process is essential. Thus, from rice straw, ethanol is produced by using three steps:-pre-treatment, hydrolysis and fermentation. For microbiological pre-treatment of rice straw, fungi of the class basidiomycetes with the ability to degrade lignin can be used. The bioconversion of pre-treated rice straw into ethanol can be performed separately by employing fungal cellulose for hydrolysis and Saccharomyces cerevisiae for fermentation or a two-step process combining hydrolysis and fermentation together that has been successfully tested in our laboratory. The complexity of the process and low ethanol yields are various challenges for ethanol production from rice straw.

Biogas : Biogas is a clean fuel that can be produced from rice straw by employing a consortium of hydrolytic, acetogenic and methanogenic bacteria that are available in cattle dung. Fine size (1cm) chopped rice straw mixed with cattle dung @ 5% (total solid basis) can be fed to biogas plants for biogas production. To use higher concentration of rice straw in biogas plant, it is pre-treated with microorganisms, before feeding into biogas plants. Biogas generated can be used as fuel and the biogas slurry can be used as valuable manure.

Compost : Rice straw is rich in C (41%), N (0.5-0.8%), P (0.05-0.1%), K (0.3-20%) and Ca (0.03-0.17%). To prepare compost from rice straw, the soaking solution is prepared by mixing 10 g of *Aspergillus awamori* inoculant and one gram of urea for every litre of water. In soaking solution, the dry straw bundles are dipped for 3 minutes and extra solution is discarded to prepare a large heap of 5 meter length, 1.25 meter width and 1.25 meter height. The whole heap is then covered with a 20 to 30 cm layer of untreated straw or polythene to retain the moisture. To maintain the moisture regimen (70%) of the heap, watering is done weekly and turning is done at one month interval and the compost is ready in three and half month. The rice straw compost is found to contain 1.2-1.4% N, 0.6-0.7% P and 1.9-2.2% K. It also contains a range of micronutrients and beneficial microorganisms for crop growth and soil health which are not usually contained in inorganic fertilizers. The nutrients from compost are released slowly which are less likely to be lost by leaching, the high temperature generated during composting (above 55°C) keeps pathogen levels low and reduce the viability of weed seeds contained in the compost material. It is easy to handle, fairly stable,has no odor and nutrients are easily available for different crops.

Conclusion : Microorganisms play an important role in the management of agricultural wastes and bioconversion of rice straw through microorganisms offers several benefits such as clean fuel in the form of ethanol, biogas, and quality compost which can enhance soil fertility and soil health that can lead to increased agricultural productivity, improve soil biodiversity, reduce ecological risks and create a healthier environment. l

ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती

वर्ष 52 अंक 09



कृषि मेला (रबी)

दिनांक : 11-12 सितम्बर, 2019

स्थान : गेट नं. 3, विश्वविद्यालय फार्म, बालसमंद रोड, हिसार

वार्षिक चंदा ₹ 150 सितम्बर 2019 आजीवन सदस्यता ₹ 1500

प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित

ã कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 52 | सितम्बर 2019 | अंक 09

इस अंक में

लेख का नाम		लेखक का नाम	पृष्ठ
धान की फसल में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण तथा उनका निवारण	-	देवराज, कविता एवं राजबीर गर्ग	1
मृदा में बोरोन की कमी : लक्षण और महत्व	-	नरेन्द्र, रोहतास कुमार एवं एच. के. यादव	2
शुष्क व बारानी क्षेत्रों में - अरंड की खेती का महत्वपूर्ण योगदान	-	निर्मल कुमार, डी. पी. मलिक एवं सुमित	4
कपास के कीड़ों का एकीकृत प्रबंधन	-	मीनू एवं योगिता बाली	5
दाना मटर : सिफारिश की गई उन्नत किस्में	-	ज्योति	6
कपास की फसल में लगने वाले रोग : लक्षण एवं नियंत्रण	-	मनमोहन, ममता एवं ओमेंद्र सांगवान	7
गुलाब की खेती: एक लाभदायक विकल्प	-	राजेश लाठर, वंदना एवं रविंदर सिंह	7
सदाबहार की खेती	-	राजेश कुमार आर्य, वंदना एवं आर.पी. सहारण	9
चुकन्दर - एक बहुउद्देशीय व बहुउपयोगी फसल	-	हर्षिता सिंह, सूर्यपाल सिहं एवं सज्जन सिंह	10
तिल उत्पादन : उन्नत कृषि क्रियाएं	-	रमेश कुमार, अशोक ढिल्लों एवं जयलाल यादव	11
अजोला के लाभ एवं तैयार करने की विधि	-	सौरभ, कौटिल्य चौधरी एवं कुलदीप सिंह	12
फसल उत्पादन में जैव उर्वरक का महत्त्व	-	जगदीश प्रशाद, राजेश गेरा एवं बलजीत सिंह	18
नीम द्वारा निमेटोड (सूत्रकृमि) का समाधान	-	विनोद कुमार, प्रियंका दुग्गल एवं अनिल कुमार	19
पराली से बायोगैस का उत्पादन : एक प्रबल संभावित तकनीक	-	यादविका, कमला मलिक एवं वाई. के. यादव	19
संरक्षण कृषि : मृदा प्रबंधन तकनीक	-	नरेन्द्र, रोहतास कुमार एवं अबीर डे	21
केंचुआ खाद : विधि, उपयोग व लाभ	-	मुकेश कुमार, राजेश कुमार एवं अमित कुमार	23
बाजरा खाने के बेमिसाल फायदे	-	संतोष रानी, पूनम यादव एवं संदीप भाकर	24
फसल अवशेष प्रबन्धन	-	अभिलाष सिंह मौर्य, सूबे सिंह एवं जोगिन्दर सिंह मलिक	25
चारा फसलों में एच.सी.एन. विषाक्तता	-	राजेश कथवाल, के. डी. शर्मा एवं सतपाल	26
जल का जीवन में महत्व और बचत के उपाय	-	अमनदीप सिह, नरेंद्र कुमार एवं सूबेसिंह	26
ढींगरी खुम्ब उत्पादन: एक लाभकारी व्यवसाय	-	मीनू, रूमी रावल एवं स्वाति मेहरा	28
Common Fertilizers Used in Haryana	-	Pooja Rani, Usha Kumari and Devraj	29
Rainwater Harvesting – A Solution to Water Crisis	-	Manjeet, Parveen Kumar and Naveen Kumar	30
Burning of Crop Residues – A National Threat	-	N. K. Goyal, Sandeep Rawal and B. R. Kamboj	31

स्थाई स्तम्भ : अक्तूबर मास के कृषि कार्य **13**

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

सह-निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह-निदेशक (हिन्दी)

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

सम्पादक (अंग्रेजी)
सुनीता सांगवान
प्रकाशन अनुभाग

डीटीपी एवं आवरण सज्जा
राजेश कुमार
प्रकाशन अनुभाग

धान की फसल में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण तथा उनका निवारण

- देवराज, कविता[1] एवं राजबीर गर्ग
कृषि विज्ञान केन्द्र, पानीपत
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

पोषक तत्व उन तत्वों को कहते हैं जिनकी कमी से पौधे अपना जीवन चक्र पूरा न कर सकें तथा उनकी कमी केवल उसी पोषक तत्व से पूरी होती हो। इन तत्वों का पौधों के पोषण में सीधा योगदान होता है। इनकी संख्या 17 है तथा इनमें 9 तत्व मुख्य पोषक तत्व कहलाते हैं जिनकी पौधों को ज़्यादा ज़रूरत होती है। इसके अतिरिक्त 8 तत्व सूक्ष्म पोषक तत्व कहलाते हैं। उपयोग की दृष्टि से हरियाणा की मृदा में नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाशियम अधिक महत्वपूर्ण है। पिछले कुछ वर्षों में जस्ता, लोहा तथा गन्धक का उपयोग भी बढ़ रहा है। धान की फसल में इन पोषक तत्वों की कमी के लक्ष्ण तथा उनका निवारण इस प्रकार है :

नाइट्रोजन : इसकी कमी से पौधे पीले, कमज़ोर व बौने नज़र आते हैं, फुटाव कम होता है, पत्तियों की संख्या भी कम हो जाती है। इसकी कमी नीचे की पुरानी पत्तियों पर पहले दिखाई देती है, पूरी फसल पीली दिखाई देने लगती है तथा पैदावार में भारी कमी आ जाती है। सिफारिश की गई यूरिया की मात्रा (130 कि. ग्रा.) प्रति एकड़ बौनी किस्मों में एवं 105 कि. ग्रा. प्रति एकड़ बौनी बासमती किस्मों में डालने पर प्राय: नाइट्रोजन की कमी नहीं आती है। अगर फिर भी कमी के लक्षण दिखाई दें तो पानी में यूरिया का 3 प्रतिशत का घोल बनाकर छिड़काव करें। यूरिया का अगला छिड़काव 10-12 दिन के अन्तराल पर करें।

फास्फोरस : इसकी कमी से पौधे बौने व गहरे हरे रंग के दिखाई देते हैं। पौधों में फुटाव कम होता है तथा शुरूआत में पौधा अकेला तथा पतले आकार का होता है। पत्तियों पर बैंगनी रंग के धब्बे बाद में तने पर भी दिखाई देने लगते हैं। अगर धान रोपाई के समय सिफारिश की गई फास्फोरस की मात्रा (24 कि. ग्रा. प्रति एकड़) डाली गई है तो फिर फास्फोरस की कमी नहीं आती है। अगर खड़ी फसल में इसके लक्षण दिखाई दे तो खेत में खड़े पानी में 50 कि. ग्रा. डी. ए. पी. प्रति एकड़ के हिसाब से डालें। अगर फास्फोरस की कमी फसल की बाद की अवस्था में दिखाई दे तो पानी में 2 प्रतिशत डी. ए. पी. का घोल बनाकर छिड़काव करें। अगला छिड़काव 10-12 दिन के अन्तराल पर करें।

पोटाशियम : पोटाशियम की कमी के लक्षण सबसे पहले नीचे वाली पत्तियों पर दिखाई देते हैं। इसकी कमी से पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। पीलापन पत्तियों की नोंक से शुरू होकर शिराओं की तरफ बढ़ जाता है तथा पौधों की पत्तियां सूखनी शुरू हो जाती हैं। पत्तियों की चौड़ाई घट जाती है तथा पौधों की वृद्धि रुक जाती है। दाने हल्के बनते हैं तथा पैदावार घट जाती है। अगर धान की रोपाई के समय सिफारिश की गई पोटाशियम की मात्रा (24 कि. ग्रा. प्रति एकड़) डाली गई है तो इसकी कमी के लक्षण नहीं दिखाई देते हैं। अगर खड़ी फसल में इसकी कमी के लक्षण दिखाई दें तो 40 कि. ग्रा. प्रति एकड़ म्यूरेट ऑफ पोटाश को खड़े पानी में डालें।

गंधक : गंधक की कमी मुख्यत: रेतीली ज़मीन में होती है। इसकी कमी के लक्षण सबसे पहले नई पत्तियों पर दिखाई देते हैं। पत्तियां पीली दिखाई देने लगती हैं तथा पत्तियों के किनारे ऊपर या नीचे की ओर मुड़ जाते हैं। डी. ए. पी. की जगह सिंगल सुपर फास्फेट प्रयोग करने से इसकी कमी के लक्षण दिखाई नही देते हैं। 100 कि. ग्रा. प्रति एकड़ जिप्सम प्रति एकड़ प्रयोग करने से गंधक की कमी दूर की जा सकती है। खड़ी फसल में 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट को 2.5 प्रतिशत यूरिया में मिलाकर छिड़काव करने से भी इसकी कमी पूरी की जा सकती है।

जस्ता : जस्ते की कमी से पौधे की वृद्धि रुक जाती है। नीचे से तीसरी या चौथी पत्ती के मध्य में चाकलेटी रंग के भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। फसल देर से पकती है। इसकी कमी को खैरा नाम की बीमारी के नाम से भी जाना जाता है। धान की रोपाई के समय 10 कि. ग्रा. प्रति एकड़ की दर से ज़िंक सल्फेट डालने से इसकी कमी नहीं रहती है। अगर खड़ी फसल में जस्ते की कमी के लक्षण दिखाई दें तो 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट व 2.5 प्रतिशत यूरिया पानी में घोल बनाकर 10-12 दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव करें।

लोहा : लोहे की कमी सबसे ज़्यादा धान की नर्सरी में दिखाई देती है इसकी कमी होने पर नई पत्तियां पीली व सफेद हो जाती हैं तथा नोक झुलसी हुई दिखाई देती है। पत्तियों में बीच का भाग पहले पीला व बाद में सफेद दिखाई देने लगता है जबकि पत्ती के बीच की नसें हरी बनी रहती हैं। लोहे की कमी को पूरा करने के लिए पानी में फैरस सल्फेट (हरा कशीश) का 0.5 प्रतिशत व यूरिया का 2.5 प्रतिशत का घोल बना कर छिड़काव करें। इसके 10-12 दिन बाद दूसरा छिड़काव करें।

इसके अलावा मैंगनीज़, तांबा तथा बोरोन की कमी भी धान की फसल में आ सकती है लेकिन हरियाणा की ज़मीन में इनकी कमी बहुत ही कम इलाकों में है। इसलिए किसानों को ऊपर लिखे गए पोषक तत्वों पर ज़्यादा ध्यान देना चाहिए। ।

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951(ई) के तहत एक सूचना जारी की है कि 12 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स+ फंजीसाइड्स+हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 8 अगस्त 2018 से ही बन्द कर दिया गया है। इनकी सूची इस प्रकार है:

8 अगस्त, 2018 से प्रतिबंधित कीटनाशक

1. **बेनोमाईल** (Benomyl)
2. **कार्बाराइल** (Carbaryl)
3. **डायजिनॉन** (Diazinon)
4. **फेनारिमोल** (Fenarimol)
5. **फेन्थियॉन** (Fenthion)
6. **लिन्यूरॉन** (Linuron)
7. **मैथॉक्सी इथाइल मरकरी क्लोराइड** (Methoxy Ethyl Mercury Chloride)
8. **मिथाइल पैराथियॉन** (Methyl Parathion)
9. **सोडियम सायनाइड** (Sodium Cyanide)
10. **थियोमेटॉन** (Thiometon)
11. **ट्रायडमॉर्फ** (Tridemorph)
12. **ट्राइफ्लूरालिन** (Trifluralin)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

[1]शोध छात्रा, मृदा विज्ञान विभाग, चौ. च. सिं. ह. कृ. वि., हिसार।

मृदा में बोरोन की कमी : लक्षण और महत्व

- नरेन्द्र, रोहतास कुमार एवं एच. के. यादव
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कृषि रसायन के रूप में बोरोन का महत्व बहुत तेज़ी से बढ़ रहा है। मृदा में इसकी उपलब्धता कृषि उत्पादन का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। सूक्ष्म पोषक तत्व में बोरोन की कमी सबसे आम और व्यापक है जो पौधे की वृद्धि को रोकती है तथा उपज को कम करती है। सामान्यत: स्वस्थ पौधे के विकास के लिए इसकी निरंतर आपूर्ति की आवश्यकता होती है। यह पुराने से नए ऊतक में परिवर्तित नहीं होता है इसीलिए इसकी कमी के लक्षण सबसे पहले कम उम्र के बढ़ते ऊतकों में दिखाई देने लगते हैं। फसलों की अधिक उपज व अच्छी गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए पर्याप्त बोरोन की आपूर्ति अति आवश्यक है। सूक्ष्म पोषक तत्वों की श्रेणी में बोरोन की कमी पोषक तत्वों के उपयोग और फसल की पैदावार को सीमित करने वाले सबसे महत्वपूर्ण अवरोधों में से एक है। मृदा और फसल में बोरोन की कमी और विषाक्तता को देखते हुए इसका स्तर तथा सांद्रता का निर्धारण करना ज़रूरी है चूंकि बोरोन भारतीय मृदा में ज़िंक के बाद दूसरे सबसे कमी वाले सूक्ष्म पोषक तत्व के रूप में उभर रहा है। इसलिए फसलों की पैदावार को बनाए रखने के लिए इसके स्थानिक और ऊर्ध्वाधर वितरण की निगरानी भी बहुत महत्वपूर्ण है।

विभिन्न फसलों में बोरोन की अलग-अलग मात्रा का उपयोग करने से विभिन्न फसलों की पैदावार बढ़ाने में सहायता मिलती है। मृदा में बोरोन का एक व्यापक स्तर बनाए रखने के लिए इसको प्रमुख फसलों में उपयोग करें तथा उर्वरक अनुसूची का एक हिस्सा बनाएं। भारतीय मृदा में विशेष रूप से सघन फसलीकरण के अंतर्गत बोरोन की व्यापक कमी के कारण बोरोन के उर्वरकों का प्रयोग करना अति आवश्यक हो गया है। परन्तु कृषि भूमि में बोरोन का प्रबन्धन कुछ जटिल है क्योंकि मृदा व पौधों में इसकी कमी व विषालुता की निर्धारित सीमा तय करना बड़ा कठिन है तथा मृदा में बोरोन के मूल स्तर के सही व नियमित मूल्यांकन करने में कठिनाई होती है और प्रयोग किये जाने वाले बोरोन की मृदा अवयवों के साथ होने वाली प्रतिक्रिया का जटिल होना भी है।

बोरोन के कार्य

1. बोरोन एक ऐसा तत्व है जिसकी सान्द्रता मिट्टी और पौधों दोनों मे ही अपेक्षाकृत कम पायी जाती है इसकी एक पीपीएम मात्रा पौधों के पोषण के लिए पर्याप्त समझी जाती है। विभिन्न फसलों के लिए विषालुता की मात्रा भिन्न-भिन्न होती हैं। पौधे इस तत्व का अवशोषण बोरेट आयन के रूप में करते हैं।
2. बोरोन यद्यपि किसी एन्जाइम का संघटक नहीं है, फिर भी यह अनेक एन्जाइमों जैसे कैटालेज, आक्सीडेज, पराक्सीडेज और सुक्रेज की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है।
3. कार्बोहाइड्रेट तथा नाइट्रोजन उपापचयन मे भी बोरोन का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।
4. आमतौर पर शर्करा वियोजन (Glycolysis) प्रक्रिया द्वारा ग्लूकोज़ का विघटन होता है। कुछ ऊतकों में बोरोन की उपस्थिति में यह प्रक्रिया पेन्टोज शन्ट पाथवे (Pantase shunt pathway) द्वारा भी सम्पन्न होती है।
5. बोरोन-6 फास्फोग्लूकोनेट से मिलकर 6-फास्फोग्लूकोनेट-बोरेट यौगिक बनता है जो कि पुन: उपचयत नहीं होता है।
6. बोरोन की कमी प्राय: फिनोलिक अम्ल के अधिक संश्लेषण के बाद ही देखी जाती है।
7. बोरोन के अभाव से परागकण और पराग नली की वृद्धि पर भी भयंकर कुप्रभाव पड़ता है।
8. पत्तियों में शर्करा स्थानान्तरित करने में बोरोन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बोरोन की कमी हो जाने पर टमाटर और तम्बाकू की पत्तियों में शर्करा और निकोटिन का संचयन अधिक हो जाता है। इसके अभाव में पौधों में कौफीन क्लारोजनिक अम्ल का भी संचयन होता है।
9. जल-अवशोषण, उत्स्वेदन और ऋणायनों का अवशोषण भी बोरोन द्वारा नियंत्रित होता है जोकि प्रोटीन और न्यक्लिक अम्ल के संश्लेषण तथा फास्फेट के उपयोग और कोशिका भित्ति में पेक्टिन पदार्थ के निर्माण में सहायक होता है। पौधों में बोरोन की भूमिका के बारे में सटीक जानकारी अभी तक नहीं हो पायी है। क्योंकि इसका विश्लेषण अपेक्षाकृत बहुत जटिल है तथा साथ ही उचित रेडियो आइसोटोप का अभाव भी होता है।

पौधों में बोरोन की कमी के लक्षण

1. बोरोन की कमी के लक्षण सर्वप्रथम नई निकलती हुई पत्तियों या शिराओं में दिखाई पड़ते हैं जिससे पत्तियाँ मोटी होकर मुड़ जाती हैं।
2. इसकी कमी से जड़ों का विकास भी रुक जाता है तथा मुख्य तने की फुनगी मर जाने के कारण फूल और फल नहीं लगते हैं।
3. इसके अतिरिक्त पत्तियों में कड़ापन आ जाता है तथा झुर्रियां पड़ने लगती हैं और हरिमाहीन धब्बे दिखाई भी देने लगते हैं।
4. बोरोन की अधिक कमी होने पर पत्तियाँ भी सूख जाती हैं।

बोरोन की कमी से होने वाले रोग

1. आंतरिक गलन (Heart rot): शीर्ष गलन (Crown rot) या शुष्क गलन (Dry rot) के नाम से जाना जाने वाला रोग चुकंदर और गैंदे (मैरीगोल्ड) में विशेष रूप से देखा जा सकता है। आंतरिक जड़ों के ऊतक मर जाते हैं तथा नई पत्तियाँ बुरी तरह मुड़ जाती हैं। शिराएँ पीली पड़ जाती हैं और पर्णवृन्त कड़े हो जाते हैं। शाखाओं के वर्धनशील अग्र भाग भी मरने लगते हैं।
2. फूल गोभी का भूरा रोग (Browning of cauliflower): शीर्ष पर भूरे चकत्ते पड़ना, पत्तियों का मोटा तथा कड़ा हो जाना, नीचे की ओर मुड़ जाना, मध्य शिरा के किनारे- किनारे एवं पर्णवृंत पर फफोले पड़ जाना इस रोग के मुख्य लक्षण हैं।
3. लूसर्न की पीली फुनगी का रोग (Yellow top of lucerne): इस रोग में पूरी पत्ती समान रूप से पीली या भूरी हो जाती है जिससे तने की पोरी (intenode) छोटी हो जाती है और शाखाओं के वर्धनशील भाग भर जाते हैं।
4. तंबाकू की शिखर व्याधि (Top sickness of tobacco): नई निकलने वाली पत्तियों का आधार अग्रभाग की अपेक्षा अधिक पीला दिखाई पड़ने लगता है जिससे आधार के ऊतक टूट जाते हैं तथा कलियां मर जाती हैं। पुरानी पत्तियां भी मोटी और कड़ी हो जाती हैं जोकि ऊपर की ओर मुड जाती हैं।

5. नींबू के फलो का कठोरपन (Hard fruit of citrus): नींबू कुल के पौधों के वर्धनशील अग्र भाग मर जाते हैं। पेड़ों में फूल कम आते हैं तथा फल झड़ जाते हैं। फलों का आकार भद्दा और छिलका मोटा हो जाता है। मध्यवर्ती अक्ष के चारों ओर गोंद की तरह धब्बे दिखाई देने लगते हैं।

6. विदलित तना (Cracked stem): सिलेरी में होने वाले रोग को विदलित तना के नाम से जाना जाता है। यह रोग सर्वप्रथम सन् 1935-37 में फ्लोरिडा में प्रकट होते देखा गया है।

बोरोन की विषालुता के लक्षण

फसलों की प्रकृति के अनुसार बोरोन की विषालुता के दृश्य लक्षणों में अन्तर देखा गया है। उदाहरणार्थ, पत्तियों के अग्र भाग एवं उनकी नोकों का झुलसापन, नसों एवं अनियमित क्षेत्रों के बीच पीलापन, ऊतक-क्षयी धब्बे, निचली पत्तियों या पर्णकों का पीलापन जो बाद में भूरा तथा अन्ततः झुलसा हुआ दिखाई देता है। सर्वप्रथम पत्तियों के अग्र भाग प्रभावित होते हैं जो बाद में नीचे की ओर पत्तियों के किनारों के साथ-साथ फैल जाते हैं।

- दलहनी फसलों में सभी पर्णक लगभग समान रूप से प्रभावित होते हैं जिससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा झाड़ीनुमा दिखाई पड़ने लगती है। चोड़ी पत्तियों में पीलापन दिखाई पड़ने के दो सप्ताह के अन्दर, सबसे नई पत्तियों को छोड़कर अन्य सभी पत्तियां प्रभावित होती हैं। इस बीच पुरानी पत्तियां भूरे धब्बों द्वारा आच्छादित हो जाती हैं जिसके कारण वे सूखी एवं सख्त दिखाई देने लगती हैं। मृदा में बोरोन की उग्र विषालुता की स्थिति में, बीजों का अंकुरण भी कुप्रभावित होता है।

पौधों में बोरोन की कमी एवं विषालुता के क्रान्तिक मान

- फसलों में बोरोन की कमी एवं विषालुता के क्रान्तिक स्तरों में बहुत बड़ा अन्तर देखा गया है। सामान्यतः अधिकांश प्रमुख फसलों के लिए बोरोन की कमी का क्रान्तिक स्तर 20 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से कम निर्धारित किया गया है और ऐसी स्थिति में बोरोन के प्रयोग से आर्थिक लाभ होता है।
- बोरोन की विषालुता का क्रान्तिक स्तर 200 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से अधिक बताया गया है। इस स्तर तक बोरोन के प्रयोग से लाभ मिल सकता है परन्तु इससे अधिक होने पर बोरोन के प्रयोग से उपज में कमी आ सकती है।
- बोरोन की विषालुता की स्थिति पश्चिमोत्तर-भारत विशेषतः राजस्थान, पंजाब, हरियाणा एवं उत्तर प्रदेश की लवणीय-क्षारीय मृदा में देखी गई है। ऐसा मुख्यतः सिंचाई-जल में बोरोन के बाहुल्य के कारण होता है।
- फसलों में बोरोन की आवश्यकता काफी भिन्न है। धान की फसल में बोरोन की मांग फलीदार एवं सरसों-कुल से फसलों की अपेक्षाकृत कम रहती है तथा विभिन्न फसलों के लिए बोरोन की संवेदनशीलता का तुलनात्मक विवरण एवं क्रान्तिक सीमाएं सारणी 1 और सारणी 2 में दिया गया है।
- बोरोन की विषालुता होने पर हरिमाहीनता के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। बोरोन युक्त उर्वरकों की अधिक मात्रा प्रयोग करने पर भी विषालुता का भय बना रहता है तथा सिंचाई जल में बोरोन की प्रचुर मात्रा होने के कारण ऐसे जल द्वारा सिंचित फसलों में विषालुता उत्पन्न हाने की आशंका बनी रहती है। ।

सारणी-1: फसलों की बोरोन संवेदनशीलता का तुलनात्मक विवरण

फसलें (संवेदनशीलता)		
अत्यधिक	मध्यम	कम
लूसर्न या रिजका, फूलगोभी, सेलेरी, शकरकंद, शलजम।	पत्तागोभी, तम्बाकू, गाजर, टमाटर, कपास, मक्का, सलाद, मूली, पालक, आडू वर्ग।	सेमवर्गीय, जौ, जई, मटर वर्गीय, सोयाबीन वर्गीय, आलू, ज्वार, धान, गेहूँ, नीबू वर्गीय।
सेब, गुलाब वर्ग, सूरजमुखी।	अंगूर वर्ग, उड़द, चना, सरसों, प्याज़।	

सारणी-2 : विभिन्न फसलों के लिए बोरोन की क्रान्तिक सीमाएं

	बोरोन की मात्रा (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)						
फसल	कमी	पर्याप्तता	विषालुता	फसल	कमी	पर्याप्तता	विषालुता
धान	<18	18-150	400	फूलगोभी	23	36	>100
गेहूँ	11	17	140	पत्तागोभी	5	36	80
मक्का	10	15-90	200	मूली	<8	36	86
जौ	13	21	476	टमाटर	14	36	90
ज्वार	<16	16-150	625	आलू	15	21-50	180
चना	12.6	32-95	214	तम्बाकू	14	34-96	110
उर्द	23.6	32-95	-	खीरा	<20	40-120	>300
मूंगफली	-	29-125	218	कपास	14	29-125	522
सूरजमुखी	8	29-125	>160	जई	3.5	14-24	>50
सोयाबीन	15	44	63	रिजका	15	32	516
शकरकंद	15	35-200	800				

स्त्रोत-विभिन्न शोध पत्रों से संकलित

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक निःशुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह निःशुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह निःशुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

शुष्क व बारानी क्षेत्रों में – अरंड की खेती का महत्वपूर्ण योगदान

- **निर्मल कुमार, डी. पी. मलिक एवं सुमित**
कृषि अर्थशास्त्र विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अरंड भारत की महत्व पूर्ण एवं व्यावसायिक अखाद्य तिलहन फसल है। भारत का अरंड के क्षेत्रफल एवं उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान है तथा अरंड तेल के विश्व बाज़ार में लगभग 87.42 प्रतिशत हिस्सा भारत का है। वर्ष 2016 के दौरान भारत ने विश्व का 1554 हज़ार टन (87.42%) का उत्पादन किया जो कि 870 हज़ार हैक्टेयर (69.22%) अरंड का क्षेत्र था। भारत में अरंडी की फसल की उत्पादकता में 1786.2 किलोग्राम/हैक्टेयर था। भारतीय किस्म के अरंडी में तेल की मात्रा 48% और 42% है। इसके उत्पादन के लिए एक गर्म और आर्द्र जलवायु की आवश्यकता होती है। जोकि भारत में काफी अनुकूल है। अरंडी के बीज से प्राप्त अरंडी का अखाद्य तेल प्राप्त होता है। लेकिन इसका महान औद्योगिक महत्व है। अरंड तेल का उपयोग व्यावसायिक उद्देश्य के लिए किया जाता है क्योंकि इसकी बहुमुखी, नवीकरणीय संसाधन में चिकनाई, सरफेस, सरफेस कोटिंग, टेलीकॉम, इंजीनियरिंग प्लास्टिक, फार्मा, रबर केमिकल्स, नाइलन, साबुन, हाइड्रोलिक तरल पदार्थ, पेंट और पॉलिमर जैसे विशाल और विविध उपयोग होते हैं। इसके अलावा अरंडी का सह-उत्पाद कृषि में जैविक खाद के रूप में उपयोग होता है। अरंडी का मुख्य उत्पादन गुजरात, राजस्थान एवं आंध्र प्रदेश में होता है। अकेले गुजरात राज्य मे अरंड का 81.44 प्रतिशत उत्पादन होता है।

हरियाणा में अरंड की खेती कम सिंचित एवं पूर्ण सिंचित, शुष्क व बारानी क्षेत्र एवं राजस्थान की सीमा से जुड़े ज़िलों जैसे सिरसा, भिवानी, हिसार, फतेहाबाद, महेन्द्रगढ़, रेवाड़ी, एवं गुरूग्राम के कुछ हिस्से में अरंड की सफलता की प्रबल सम्भावनाएं हैं। अधिक आमदनी व कम जोखिम के लिए खरीफ व रबी की विभिन्न फसलों के साथ अन्त: फसल प्रणाली में अरंड की बिजाई करने से लाभप्रद व्यवसाय है तथा एकल फसल प्रणाली में भी लाभप्रद फसल है।

उन्नत किस्में/हाइब्रिड : बारानी एवं कम सिंचित क्षेत्रों के लिए: डी. सी. एच. -177

सिंचित एवं उच्च प्रबंधन के लिए जी. सी. एच. -4, 5, 6, 7, डी. सी. एच. -32, 177, एवं डी. सी. एच. - 519

विशेष : डी. सी. एच. -177

बिजाई का समय : अरंड की बिजाई का सर्वोत्तम समय जून के अन्त से मध्य जुलाई है। जुलाई के अन्त तक बिजाई अवश्य पूरी कर लें। बाद की बिजाई में सर्दी का प्रकोप अधिक होने से उत्पादन कम हो जाता है।

बीज की मात्रा एवं बिजाई की विधि : बारानी एवं कम सिंचित 90-120 सैं.मी. गुणा 60 सैं.मी. बिजाई के लिए 3-4 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ का उपयोग करें। सिंचित 90-120 सैं.मी. गुणा 60 सैं.मी. तथा 1.6 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ प्रयोग करें। बीज की गहराई 2 से 3 इंच रखें।

बीज उपचार : बीज जनित रोगों से बचाव के लिए थाइरम या कैप्टान 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज या बाविस्टीन 2% की दर से उपचार करना लाभदायक है। बिजाई से पहले बीज को 12 से 24 घंटे पानी में भिगोना लाभप्रद है।

उर्वरकों का प्रयोग : वर्षा आधारित फसल में 8 कि.ग्रा. नाइट्रोजन व 16 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति एकड़ बिजाई से पहले डालें। नाइट्रोजन की 2 अतिरिक्त मात्रा (8-8 कि.ग्रा.) बिजाई के 35-40 व 65-70 दिन बाद वर्षा के अनुसार दें। सिंचित फसल में 8 कि.ग्रा. नाइट्रोजन व 16 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति एकड़ बिजाई से पहले डालें। नाइट्रोजन की 2 अतिरिक्त मात्रा (8-8 कि.ग्रा.) बिजाई के 35-40 व 65-70 दिन बाद वर्षा के अनुसार दें। विशेष: शुरू में ज़्यादा नाइट्रोजन से वानस्पतिक वृद्धि ज़्यादा होती है अत: नाइट्रोजन कम दें। अधिक पैदावार के लिए पके गुच्छों की कटाई के बाद सिंचाई के साथ 8 कि.ग्रा. नाइट्रोजन दें।

खरपतवार नियंत्रण : बिजाई के चौथे एवं सातवें सप्ताह में दो निराई-गुड़ाई करने से खरपतवार नियंत्रण हो जाता है। कपास की तरह अरण्ड में भी ट्रैक्टर, बैलों या ऊंट से निराई-गुड़ाई की जा सकती है।

रासायनिक : बिजाई के बाद लेकिन फसल उगाने से पहले 800 मि. ली. पैंडीमिथालीन/एकड़ का छिड़काव करने से भी खरपतवार नियंत्रण हो जाता है। बिजाई के 35-40 दिनों बाद उगे खरपतवारों को हाथ से निकाल देना चाहिए।

सिंचाई : प्राथमिक अवस्था में अरण्ड को ज़्यादा पानी की ज़रूरत नहीं होती, परंतु लंबी अवधि (20-25 दिन) तक शुष्क दशा में अधिकतम वृद्धि के समय सिंचाई की आवश्यकता होती है। सिंचाई देने से अरण्ड की पैदावार में आशातीत बढ़ोत्तरी होती है। पानी की उपलब्धता एवं भूमि की जलधारण क्षमता के अनुरूप 3-4 सिंचाइयों से लेकर 7-8 सिंचाइयां देनी पड़ती हैं। बिजाई से 50-60 दिन एवं 80-95 दिन बाद अगर नमी की कमी हो तो सिंचाई अवश्य करें। बाद में पानी सिंचाई की उपलब्धता के अनुसार गुच्छों की कटाई के बाद गर्मी में 15-20 व सर्दी में 25-30 दिन के अंतराल पर करते हैं।

अरण्ड के साथ अन्त: फसलों का प्रयोग : अरण्ड की लाइनों में दूरी को 5-8 फीट तक बढ़ाकर शुरू के 4-5 महीने तक अन्त: फसलों की खेती बहुत ही कामयाब एवं लाभप्रद पायी गयी है। अरण्ड के साथ मूंग, ग्वार, मूंगफली, तिल, कपास, अरहर, मोठ, टमाटर, मिर्च एवं अगेती मेथी, धनिया, मूली, गाजर आदि की अन्त: फसल पद्धति विभिन्न राज्यों में प्रचलित है।

पाले से बचाव : समय पर बिजाई करें, खरपतवार नियंत्रण एवं अच्छा प्रबंधन करें, ऊँची-नीची टिब्बों वाली ज़मीन में टिब्बों पर फसल लें, पोटाश खाद की पूरी मात्रा दें, एवं दिसंबर के दूसरे पखवाड़े से लेकर जनवरी अंत तक पानी की कमी न होने दें।

कटाई : कैप्सूल (फल) का रंग पीला पड़ और कुछ फल (एक चौथाई) पक कर सूख जाएं तो गुच्छे को काटकर सूखने के लिए डाल दें। पहला गुच्छा बिजाई के 90-120 दिन बाद पक कर कटाई के लिए तैयार हो जाता है। लगभग 25-30 दिन के अंतर पर विभिन्न क्रम के गुच्छे पकते रहेंगे। अत: 4-6 कटाई करनी पड़ सकती हैं। सिंचित दशा में आखरी कटाई अप्रैल अंत या मई के पहले सप्ताह तक हो जाती है।

कढ़ाई : खलिहान में गुच्छों के सूखने के बाद झाड़-पीटकर कैप्सूल (फलों) को डंडियों से अलग कर लें और थ्रैशर से दाने/बीज निकाल लें। ध्यान रहे बीज को टूटने न दें।

उपज : वर्षा आधारित क्षेत्रों में 15-30 क्विं./हैक्टेयर एवं सिंचित क्षेत्रों में 30-40 क्विं./हैक्टेयर

तालिका 1. हरियाणा में अरंड की खेती का प्रति हैक्टेयर आर्थिक विश्लेषण

विस्तृत ब्यौरा	रेवाड़ी	सिरसा	हिसार	औसत
कुल अस्थाई लागत	41680	46263	47507	46075
कुल स्थाई लागत	54807	50451	50664	51337
कुल लागत	96487	96713	98171	97412
मुख्य उत्पाद (क्विंटल)	31.43	28.00	28.80	29.02
मूल्य प्रति क्विंटल	5021	4925	4943	4953
सकल लाभ	157811	137913	142371	143743
परिवर्तनीय लागत पर आय	116131	91650	94864	97668
शुद्ध लाभ	61324	41200	44200	46331
आय लागत अनुपात	1.64	1.43	1.45	1.48

अरंड की खेती एक लाभदायक फसल है। हरियाणा के तीन ज़िलों के 60 किसानों का आर्थिक विश्लेषण किया तो पाया शुष्क व बारानी क्षेत्रों के लिए अरंड की खेती अन्य फसलों की तुलना में अधिक लाभदायक है। हरियाणा में ज़िले अनुसार अरंडी की खेती का प्रति हैक्टेयर आर्थिक विश्लेषण तालिका 1 में दर्शाया गया है। जिसके अनुसार कुल लागत क्रमश: रुपये 96487, 96713, 98171 और 97412 रेवाड़ी, सिरसा, हिसार व औसत है। अरंडी का उत्पादन प्रति हैक्टेयर क्रमश: 31.43, 28.00, 28.80 और 29.02 किवंटल पाया गया तथा औसत मूल्य 4953 रुपए था। अध्ययन मे शुद्ध लाभ क्रमश: 61324, 41200, 44200 और 463331 प्रति हैक्टेयर है। इसके अतिरिक्त आय लागत अनुपात जिसका मतलब हुआ कि एक रुपया खर्च करने पर क्रमश: 1.64, 1.43, 1.45 और 1.48 रुपये प्राप्त होंगे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है अरंड की फसल उगाना लाभदायक है।

फसलों का आय व लागत प्रति हैक्टेयर का वार्षिक तुलनात्मक अध्यन किया गया जो कि तालिका 2 में दर्शाया गया है।

तालिका 2. फसलों का आय व लागत प्रति हैक्टेयर का वार्षिक तुलनात्मक अध्ययन

फसलें	कुल लागत	सकल लाभ	शुद्ध लाभ	आय लागत अनुपात
अरंड	97412	143743	46331	1.48
कपास+सरसों	129565	160113	30548	1.24
ग्वार+सरसों	90008	110683	20675	1.23
कपास+गेहूं	162235	197913	35678	1.22
ग्वार+गेहूं	122678	148483	25805	1.21
कपास+जौ	123393	147600	24208	1.20
बाजरा+गेहूं	124983	145983	21000	1.17
बाजरा+सरसों	92313	108183	15870	1.17
ग्वार+जौ	83835	98170	14335	1.17
बाजरा+जौ	86140	95670	9530	1.11

यह आर्थिक विश्लेषण 2018-19 द्वारा सर्वेक्षण पर निर्धारित है

अध्ययन में पाया गया कि शुष्क व बारानी क्षेत्रों के लिए अरंड की खेती अन्य फसलों की तुलना में अधिक लाभदायक है। अध्ययन में पाया गया कि वार्षिक फसल चक्र शुद्ध लाभ क्रमश: अरंड (रुपये 46331), कपास+सरसों (रुपये 30548), ग्वार+सरसों (रुपये 20675), कपास+गेहूं (रुपये 35678), ग्वार+गेहूं (रुपये 25805), कपास+जौ

(शेष पृष्ठ 8 पर)

कपास के कीड़ों का एकीकृत प्रबंधन

- **मीनू एवं योगिता बाली**
कृषि विज्ञान केंद्र, भिवानी
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

1. बीज को भंडारण के समय एल्युमिनियम फॉस्फाइड (सल्फॉस) की एक टिकिया (3 ग्राम) प्रति घन मीटर क्षेत्र की दर से 48-72 घंटे तक धूमृत करें इससे बीज में छिपी गुलाबी सूंडियां नष्ट हो जाएंगी।
2. अप्रैल-मई में गहरी जुताई करें व पिछली फसल की जड़ों एवं डंठलों को एकत्रित कर नष्ट कर दें।
3. जल्दी तैयार होने वाली सिफारिश की गई किस्में बोएं।
4. बिजाई संभवत 15 मई तक पूरी कर लें।
5. खाद का संतुलित प्रयोग करें। सिफारिश अनुसार नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश एवं ज़िंक खादों का प्रयोग करें। नत्रजन वाली खाद अधिक डालने से कीड़ों का प्रकोप अधिक होता है।
6. दीमक के प्रकोप से बचाव के लिए बीज को 10 मि. ली. क्लोपायरिफॉस 20 ई. सी. प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें। 10 मी. ली. क्लोपायरिफॉस में 10 मि. ली. पानी मिलाकर उस सफेद घोल से एक किलो भिगोये हुये बीज को उपचारित करें। उपचारित बीज को 30 मिनट तक छाया में सुखाकर बोएं।
7. खेतों में निराई-गुड़ाई आवश्यकतानुसार करें ताकि घास-फूस नष्ट हो जाएँ क्योंकि घासफूस पर कई कीड़े आश्रित रहते हैं।
8. चित्तीदार सूँडी लगी, झुकी व सूख रही टहनियों तथा गुलाबनुमा फूलों को सप्ताह में दो बार काटें तथा इकट्ठा करके नष्ट कर दें ताकि कलियों व टिंडों पर चित्तीदार सूँडी व गुलाबी सूँडी का आक्रमण कम हो। चित्तीदार व गुलाबी सूँडी से प्रभावित कलियों, फूलों व टिंडों (गिरे व पोधों पर लगे हुए) को इकट्ठा कर गहरा दबा दें या नष्ट कर दें। अमेरिकन सूंडियों को इकट्ठा करके कीटनाशक मिश्रित पानी में डुबो दें।
9. मिलीबग के प्रभावकारी नियंत्रण के लिए खेतों के आस-पास व खालों/नालों/राजबाहों के किनारे उगने वाले ऊपर बताए गए परपोषी पोधों को नष्ट कर दें अथवा काट कर गहरा दबा दें। मार्च-अप्रैल में कपास के ठूंठों से हुये फुटाव व खेत में पड़े छंटियों के ढेरों के नीचे पड़े कचरे को नष्ट कर दें।
10. कातरा व अन्य कीड़ों के अंडे व सूंडियों तथा मरोड़िया बीमारी से प्रभावित पत्तों/पोधों को कीड़ों सहित तोड़कर गहरा दबा दें या नष्ट कर दें।
11. हर खेत में नियमानुसार (15 अगस्त तक हर सप्ताह तथा बाद में सप्ताह में 2 बार) 10 पौधों का निरीक्षण करें तथा देखें कि वे कौन-कौन से तथा कितने कीड़ों एवं परजीवियों से प्रभावित हैं। चुने हुये पौधों पर कीड़ों की गिनती करें तथा संख्या आर्थिक कगार पर पहुँचते ही सिफारिश की गई कीटनाशकों का विधिवत छिड़काव करें तथा बाद में भी फसल पर कीड़ों का सर्वेक्षण जारी रखें।
12. बी.टी. कपास पर रस चूसने वाले कीड़ों का प्रकोप प्राय: अधिक होता है। अत: इनके नियंत्रण का विशेष ध्यान रखें। परंतु इस पर अमरीकन सूँडी, चित्तीदार सूँडी व गुलाबी सूँडी का प्रकोप बहुत कम होता है। फसल पकने के समय अर्थात अक्तूबर महीने में गुलाबी सूँडी का प्रकोप हो सकता है। अत:आवश्यकतानुसार कीटनाशकों का छिडकाव करें।

कपास लेने के बाद कीट नियंत्रण के उपाय

1. कपास की फसल की कटाई के बाद बहुत से कीड़े तथा उनके शिशु

प्रमुख कीड़ों का आर्थिक कगार

कीड़ा	अवस्था	आर्थिक कगार	आधार
हरा तेला	शिशु	दो या इससे अधिक शिशु प्रति	पत्ता 30 पत्तों की निचली सतह पर गिनती करें
सफेद मक्खी	प्रौढ़	आठ प्रौढ़ प्रति पत्ता सुबह पत्ते चमकते/ तैलीय/चिपचिपे दिखाई	30 पत्तों की निचली व ऊपरी सतह पर गिनती करें
दीमक	10% पौधे प्रभावित	–	एक-एक मीटर की 30 कतारों में कुल एवं प्रभावित पौधों की गिनती करें।
कातरा व अन्य पत्ते खाने वाले कीड़े	–	एक सूँडी प्रति पौधा	30 पौधों का निरीक्षण करें।
चित्तीदार सूँडी	प्रभावित टहनी	1% प्रभावित टहनियाँ	30 पौधों की सभी टहनियों का निरीक्षण करें।
	फलीय भाग	55% प्रभावित फलीय भाग (गिरे हुये एवं पौधों पर)	20 पौधों के (गिरे हुये एवं पौधों पर) फलीय भागों का निरीक्षण करें।
अमेरीकन सूँडी	फलीय भाग सूँडी	5% फल प्रभावित	20 पौधों के सभी फलीय भाग देखें।
		0.5 सूंडी प्रति पौधा	20 पौधों पर 10 सूंडियाँ
गुलाबी सूँडी	प्रौढ़/नर	5 प्रौढ़ प्रति ट्रैप/रात (जून से मध्य अगस्त)	फिरोमोन ट्रैप 60x60 मीटर की दूरी पर लगाएँ।
		8 प्रौढ़ प्रति ट्रैप/रात (मध्य अगस्त से अक्तूबर)	(4-5 ट्रैप प्रति हैक्टेयर) तीन रातों केआर पकड़ की औसत निकालें।

ज़मीन के अंदर ज़मीन पर गिरे पत्तों, पौधे के अन्य भागों तथा पौधों पर बचे अधखिले, अनखिले टिंडों तथा खोखड़ियों में छिपे रह जाते हैं। ये कीड़े अगली फसल के लिए खतरनाक होते हैं। इनकी सामूहिक रोकथाम के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं।

2. आखिरी चुनाई के बाद खेतों में भेड़-बकरियों व अन्य पशुओं को चराएँ ताकि पौधों पर लगे अधखिले व अनखिले टिंडों को ये जानवर खाकर खतम कर दें।
3. कपास की मोड्डी फसल कभी न रखें। छंटियों की कटाई ज़मीन की सतह तक करें और ठूँठों को निकालकर खतम कर दें ताकि पौधे दोबारा न उग सकें। पुराने पौधों को जितना जल्दी हो सके उखाड़ कर फेंक दें।
4. कपास की छंटियों को खेत में न रखकर खेतों से दूर रखें। मार्च के महीने तक सभी छंटियों को अच्छी तरह से झाड़ लें और टिंडे, खोखड़ी व अन्य कचरे को इक्ट्ठा करके नष्ट कर दें।
5. कपास के खेतों में गहरा हल चलायें, पानी लगाएँ तथा रबी की फसल बोएं।
6. खाली खेतों में फरवरी के अंत में खुड्कार हल से गहरी जुताई करें। इससे ज़मीन में छिपी सूंडियां बाहर निकल आएंगी व जो पक्षी व अन्य जीव जंतुओं के लिए भोजन का काम करेंगी या गर्मी/सर्दी की वजह से मर जाएंगी। अप्रैल-मई के महीने में गहरी जुताई अवश्य करें।
7. खेतों में तथा आस-पास खरपतवारों को न पनपने दें क्योंकि ये कीड़े व बीमारियों को बढ़ावा देते हैं। भिंडी की खेती कपास के खेतों के पास नहीं करनी चाहिए क्योंकि यह भी सफेद मक्खी, मिली बग व अन्य कीड़ों को बढ़ावा देती है। ।

दाना मटर : सिफारिश की गई उन्नत किस्में

- ज्योति
अनुवांशिकी व पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा राज्य के कई इलाकों में अधिक सिंचाइयां तथा जलस्तर ऊंचा होने के कारण चने की फसल नहीं उगाई जा सकती। ऐसे इलाकों में मटर को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। सिंचाई की सुविधा के अनुसार इसे कई इलाकों जैसे, रिवाड़ी, महेन्द्रगढ़, सोनीपत, पश्चिमी क्षेत्र व ज़िला जींद के नरवाना तथा फरीदाबाद के पलवल तहसीलों में लगाया जा सकता है। दाना मटर की सिफारिश की गई उन्नत किस्में इस प्रकार हैं:

अपर्णा, एच एफ पी 4 (Aparna,HFP4) : इसे हरियाणा राज्य के सिंचाई वाले क्षेत्रों में सिफारिश किया जाता है। यह किस्म बौनी तथा बिना पत्तों वाली है। यह न गिरने वाली किस्म है। यह किस्म पाऊडरी मिल्ड्यू रोग के प्रति सहनशील है। इसकी पैदावार पर पत्तों में सुरंग बनाने वाले कीड़ों का असर नहीं होता है। दाने मध्यम मोटे होते हैं। इसकी फलियां देर से विकसित होती हैं जिस कारण इस किस्म पर पाले का असर नहीं पड़ता। इसकी पैदावार की क्षमता 14 क्विंटल/एकड़ से अधिक है। इसकी औसत पैदावार 10 क्विंटल/एकड़ है।

जयन्ती, एच एफ पी 8712 (Jayanti, HFP8712): यह अपर्णा से लम्बी बढ़ने वाली पत्ता रहित व बौनी किस्म है। इसके पौधे सीधे बढ़ते हैं परन्तु अगर जगह मिले तो फैल जाते हैं। फलियां हरी व लम्बी होती हैं। दाने मीठे व स्वादिष्ट होते हैं और इसी कारण से यह सब्जी के लिए भी उपयुक्त है। इसमें रतुआ व उखेड़ा बहुत कम लगता है तथा यह किस्म सफेद चूर्ण, जिसे पाऊडरी मिल्ड्यु भी कहते हैं, के लिए रोगरोधी है।इसका दाना हरा-सा सफेद, मोटा तथा गड्ढे वाला होता है। यह सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है तथा 125-130 दिनों में पक कर तैयार हो जाती है। इसकी औसत पैदावार 11 क्विंटल/एकड़ है।

उत्तरा, एच एफ पी 8909 (Uttara, HFP 8909)**:** यह किस्म काश्त के लिए समस्त उत्तरी - पश्चिमी भारत के मैदानी भागों (हरियाणा सहित) में अनुमोदित की गई है। इस किस्म के पौधे हल्के हरे, सीधे बढ़ने वाले, पत्ती रहित तथा बौने होते हैं। दानों का रंग क्रीम होता है तथा गोल और मध्यम आकार के होते हैं। इसकी औसत उपज 10-12 क्विंटल/एकड़ है तथा यह 131 दिनों में पक जाती है। इसे सिंचित क्षेत्रों में सिफारिश किया जाता है।

हरियल, एच एफ पी 9907 बी (Haryal, HFP9907B) **:** यह किस्म 128 दिनों में पक कर तैयार हो जाती है। यह किस्म लम्बी फलियां व हरे बीज वाली है। यह किस्म बीमारियों जैसे पाऊडरी मिल्ड्यू, जड़ गलन एवं रतुआ तथा जड़ गांठ वाले सूत्रकृमि की प्रतिरोधी है। इस किस्म की औसत पैदावार 10-12 क्विंटल/एकड़ है।

एच एफ पी 9426 (HFP 9426)**:** यह किस्म अधिक पैदावार वाली तथा पाऊउरी मिल्ड्यू रोग रोधी है। इसके दाने मोटे, गोल चमकीले तथा हरे होते हैं तथा यह मध्यम लम्बी बढ़ने वाली किस्म है। यह पकने के लिए 131 दिनों का समय लेती है। इस किस्म की औसत पैदावार 10 क्विंटल/एकड़ है। इसका दाना आकर्षक होने के कारण बाज़ार में अच्छे भाव में बिकता है।

6 एच एफ पी 529 (HFP 529): यह किस्म हरियाणा सहित समस्त उत्तरी-पश्चिमी भारत के मैदानी भागों में काश्त के लिए सिफारिश की गई

(शेष पृष्ठ 9 पर)

कपास की फसल में लगने वाले रोग : लक्षण एवं नियंत्रण

- **मनमोहन, ममता एवं ओमेंद्र सांगवान**
कपास अनुभाग, आनुवंशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अन्य फसलों की भांति कपास की फसल में भी बहुत सी बीमारियां लगती हैं जो अनुमानित 10-20 प्रतिशत फसल को हानि पहुंचाती हैं। पत्तों पर लगने वाले रोगों में पत्ता मरोड़ रोग मुख्य है। इसके पश्चात् कोणदार धब्बों का जीवाणु रोग भी महत्वपूर्ण है। जड़ में लगने वाले रोगों में जड़ गलन तथा झुलसा रोग मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त टिण्डा गलन जोकि फफूंद, जीवाणु तथा कीड़ों द्वारा उत्पन्न होता है, अधिक बरसात में एक महत्वपूर्ण समस्या का रूप धारण कर लेता है। इसलिए यह अति आवश्यक है कि इन रोगों की सही पहचान कर उचित रोकथाम की जा सके। इस लेख में कपास के पत्तों पर लगने वाले मुख्य रोग व उनकी रोकथाम के उपाय दिए गए हैं।

1. पैराबिल्ट : यह वर्तमान समय में कपास का मुख्य रोग है। यह समस्या आमतौर पर अगस्त से अक्तूबर महीनों के बीच आती है। इसका मुख्य कारण लम्बे समय तक सूखा रहने के पश्चात् सिंचाई देना व वर्षा का होना है। रेतीली ज़मीन में इसका अधिक प्रकोप होता है। इस समस्या के कारण पौधों के पत्ते अचानक मुरझा जाते हैं और पौधे शीघ्र सूखने लगते हैं लेकिन पौधे की जड़ें सामान्य रहती हैं और इसमें कोई रोगाणु शामिल नहीं होता। इस समस्या के लक्षण दिखाई देने के 48 घंटों के अन्दर कोबाल्ट क्लोराइड 2.0 ग्राम/200 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

2. माइरोथिसियम पत्ता छेदक धब्बा रोग : यह रोग माइरोथिसियम रोडीडम नामक फफूंद से होता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण रोगी पत्तों पर लाल बैंगनी झलक लिए हल्के-भूरे रंग की फफूंद की बिन्दियों वाले धब्बे दिखाई पड़ते हैं। आरम्भ में इन धब्बों का आकार पिन के सिर जैसा होता है। प्रकोप की अवस्था में धब्बे आपस में मिल जाते हैं। प्राय: रोग ग्रस्त भाग पत्तों से गिर जाते हैं। इससे पत्तों में छेद हो जाता है। ऐसे ही लक्षण फल (टिण्डे) के नीचे की छोटी पत्ती और कभी-कभी टिण्डों पर नज़र आते हैं।

3. पत्ता मरोड़ रोग: यह कपास का सबसे मुख्य रोग है। सबसे पहले ऊपर की कोमल पत्तियों पर इसका असर दिखाई पड़ता है, पत्तियां ऊपर की तरफ मुड़ कप जैसी आकृति की हो जाती हैं और कहीं-कहीं पर पत्तियों की निचली तरफ नसों पर पत्ती की आकार की बढ़वार भी दिखायी देती है। ऐसे पौधे छोटे रह जाते हैं, इन पर फूल, कली व टिण्डे नहीं लगते, इनकी बढ़वार एकदम रुक जाती है और इसका उपज पर बहुत विपरीत असर पड़ता है। यह रोग एक जैमिनी विषाणु द्वारा होता है। सफेद मक्खी इस रोग को फैलाने में सहायक है। बीज, ज़मीन या छुआ छूत द्वारा यह रोग नहीं फैलता है। यह रोग पौधे की किसी भी अवस्था में आ सकता है। इस रोग से 80-90 प्रतिशत तक फसल में नुकसान हो सकता है। यदि यह रोग फसल की प्रारम्भिक अवस्था में आ जाए तो ज़्यादा नुकसान होता है और फसल की पछेती अवस्था में आए तो पैदावार पर लगभग कोई फर्क नहीं पड़ता।

जब यह रोग ज़्यादा हो वहां पर देसी कपास बोई जाए क्योंकि देसी कपास में यह रोग नहीं लगता। सफेद मक्खी का पूर्ण रूप से नियन्त्रण

(शेष पृष्ठ 9 पर)

गुलाब की खेती: एक लाभदायक विकल्प

- **राजेश लाठर, वंदना एवं रविंदर सिंह**
कृषि विज्ञान केंद्र, पंचकूला
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वैश्विक फूलों की खेती में गुलाब प्रमुख फूलों में से एक है। इसका उपयोग लगभग हर कार्यक्रम में किया जाता है। गुलाब के फूल आकार में भिन्न होते हैं और विभिन्न रंगों में उपलब्ध हैं। गुलाब मूल रूप से एशिया महाद्वीप से है। गुलाब की पंखुड़ियों के कई औषधीय लाभ हैं। इसके उत्पादों का उपयोग तनाव और डिप्रेशन में राहत के लिए किया जाता है।गुलाब का उपयोग गुलकंद तैयार करने के लिए किया जाता है और गुलाबजल का उपयोग सौन्दर्य उत्पादों में किया जाता है। महाराष्ट्र, तमिलनाडु, बिहार, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, गुजरात, जम्मू और कश्मीर, पंजाब और आंध्र प्रदेश प्रमुख गुलाब उगाने वाले राज्य हैं। आजकल ग्रीनहाऊस खेती अधिक लोकप्रिय हो रही है और ग्रीनहाऊस में गुलाब की खेती लाभदायक है क्योंकि इसमें खुले क्षेत्र की तुलना में उच्च गुणवत्ता के फूलों का उत्पादन होता है।

जलवायु : बुवाई के समय इसे 25-30 डिग्री सैंटीग्रेड के बीच तापमान की आवश्यकता होती है और वर्षा 200-300 मिमी पर्याप्त है।

मिट्टी : जैविक पदार्थों से भरपूर रेतीली दोमट मिट्टी गुलाब की खेती के लिए उपयुक्त है। अच्छी वृद्धि के लिए इसे 6-8 के पी एच की आवश्यकता होती है। यह जलभराव की स्थिति के लिए काफी संवेदनशील है, इसलिए जल निकासी प्रदान करें और अतिरिक्त पानी की निकासी करें।

किस्म:

जाति	फूल का रंग	किस्म
हाइब्रिड -टी	सफेद	जवाहर, राजहंस
	गुलाबी	प्रेजिडेंट, एफैन टावर
	गहरा लाल	रक्तगंधा, क्रिमसन ग्लोरी
	नीला	ब्लू मून, ब्लू डिलाइट
	नारंगी	सुपर स्टार , मोटेजुमा
फ्लोरिबून्दा	सफेद	आइस बर्ग, चन्द्रमा
	पीला	सोनोरा, सी पर्ल
	गुलाबी	अरुणिमा, क्वीन
पोलिएंथा		ललअंजना, रेशमी
	गुलाबी	नर्तकी, स्वाति
मिनिएचर	लाल	डार्क ब्यूटी
	गुलाबी	डेसलेट, क्राई क्राई
	पीला	देहली स्कारलेट
लता रोज़		सफेदछेहली वाइट , पर्ल
	गुलाबी	स्नोगर्ल, डोरथो पार्किन

भूमि की तैयारी : गुलाब की खेती के लिए रोपाई के चार सप्ताह पहले शय्या तैयार करें। दो गड्ढों के बीच की दूरी 60-90 सै.मी. होनी चाहिए और गड्ढे की गहराई 60-75 सैं.मी. होनी चाहिए। गड्ढे को 5 किलोग्राम अच्छी तरह से सड़ी-गली गोबर की खाद और 20 मिली लीटर क्लोरपायरीफॉस को दस लीटर पानी में मिलाकर भरें और फिर गड्ढों की सिंचाई करें। शय्या या बेड पर गुलाब उगाना गड्ढों में लगाने से ज़्यादा लाभदायक है। बड़े क्षेत्र में गुलाब लगाने के लिए, पौधे लगाने के एक महीने पहले 60 सैं.मी. चौड़ी और 60 सैं.मी. गहरी नाली खोदें। इस नाली

को गोबर की खाद और क्लोरपायरीफॉस के साथ उक्त अनुपात में भरें और फिर नालीको सींचें।

नर्सरी रोपण : रोज़ा बारबोनियाना, रोज़ा इंडिका और रोज़ा मल्टीफ्लोरा जैसे रूटस्टॉक्स की कटिंग बेड पर 10-15 सैं.मी. की दूरी पर लगाई जाती है। अच्छे और स्वस्थ पौधों से कलियाँ लेकर जनवरी से फरवरी में बडिंग की जाती है।

बुवाई का समय : उत्तरी राज्यों के लिए मध्य अक्तूबर से नवंबर गुलाब की खेती के लिए सबसे अच्छा समय है। 60-75 सैं.मी. की दूरी पर रोपाई करें। रोपण के बाद छाया प्रदान करें, अगर तेज़ धूप हो तो पौधे पर पानी का छिड़काव करें। दोपहर के बाद गुलाब लगाने से बेहतर परिणाम मिलते हैं।

बुवाई की विधि : तीन विधियाँ हैं - डायरेक्ट सीडलिंग, स्टेम कटिंग और टी- बडिंग द्वारा।

वंश-वृद्धि : यह कटिंग या बडिंग के माध्यम से ब्रिअर रूटस्टॉक पर की जाती है। उत्तरी क्षेत्र में जनवरी-फरवरी टी-बडिंग के लिए आदर्श समय है।

छंटाई : रोपाई के बाद दूसरे वर्ष में छंटाई व कटाई करें और उसके बाद के वर्षो में नियमित रूप से यह क्रिया करें। उत्तर भारत में गुलाब की झाड़ियों को सितंबर मध्य से अक्तूबर के मध्य में ज़मीन के स्तर से 30 सैं. मी. ऊपर छंटाई की जाती है। पाँच-छः टहनी प्रति पौधों के साथ 4-5 कलियां प्रति टहनी रखें और मृत, रोगग्रस्त, सूखी और क्षतिग्रस्त टहनी और पत्तियों को काटें। मिनिएचर, पोलिएंथा और लता गुलाब को छंटाई की आवश्यकता नहीं है। कटाई व छंटाई के बाद 7-8 किग्रा गोबर की खाद प्रति पौधा की दर से डालें और मिट्टी में अच्छी तरह मिलाएं।

उर्वरकों का उपयोग : गोबर की खाद, पोटाश व फास्फोरस की पूरी मात्रा तथाआधा नाइट्रोजन सितंबर- अक्तूबर में छंटाई के बाद डालें। एक महीने बाद नाइट्रोजन की शेष आधी खुराक डालें। फूल उत्पादन बढ़ाने के लिए, प्रूनिंग के एक महीने के बाद GA3@ 0.2 ग्राम/लीटर पानी का छिड़काव करें। बसंत के मौसम में गुलाब उत्पादन बढ़ाने के लिए जनवरी में 10 ग्राम नाइट्रोजन और 10 ग्राम पोटाश प्रति पौधे का उपयोग करें। नवंबर और फरवरी में सूक्ष्म पोषक तत्वों ज़िंक /सल्फर/ मैंगनीज़ का 3 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

सिंचाई : गर्मी में 5 दिन के अंतराल पर और सर्दियों में 10 दिनों के अंतराल पर फसल की सिंचाई करें। बरसात के मौसम में अतिरिक्त पानी को बाहर निकालें। टपका सिंचाई जैसी आधुनिक सिंचाई तकनीक गुलाब की खेती के लिए उपयोगी है। पत्ती रोग के संक्रमण की संभावना को कम करने के लिए फव्वारा सिंचाई प्रणाली से बचें।

खरपतवार प्रबंधन : चौड़ी पती वाले खरपतवारों के लिए ग्लाइफोसेट /300 ग्राम/एकड़ तथा संकर पती वाले खरपतवारों के लिए ऑक्जेफ्लोरोफेन/200 ग्राम/एकड़ का प्रयोग पूर्व-अंकुरण के रूप में करें।

पौधों की सुरक्षा

कीट : यदि तेला, चेपा और लीफ हॉपर का संक्रमण देखा जाता है, तो मिथाइल डेमेटन 25 EC @ 2 मिली / लीटर पानी या कार्बोफ्यूरान 3 जी / 5 ग्राम / पौधा के साथ फसल पर स्प्रे करें। इल्ली के लिए मेथोमिल / 1 मिली प्रति लीटर पानी, स्टीकर के साथ मिलाकर छिड़काव करें।

रोग

डायबैक : यह एक आम बीमारी है और अगर इसे ठीक से नियंत्रित नहीं किया जाता है, तो पैदावार में बहुत कमी आती है। पौधे काले पड़ने लगते हैं और ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगते हैं और अंत में पौधे मर जाते हैं। इस रोग का प्रबंधन करने के लिए पौधे के रोगग्रस्त भाग को काटें और बैविस्टीन/2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से डालें। क्लोरोथालोनिल /2 ग्राम और टीपोल /0.5 मिली प्रति लीटर पानी की दर से फसल पर छिड़काव करें।

पत्ते का धब्बा रोग : यदि पत्तियों पर काले धब्बे दिखाई देते हैं, तो ब्लाइटॉक्स / 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करके इसका प्रबंधन करें। 7 दिनों के बाद स्प्रे दोहराएं। फव्वारा सिंचाई से बचें।

कटाई : आर्थिक उपज आमतौर पर दूसरे वर्ष से प्राप्त की जाती है। कटाई तब की जाती है जब फूलों का रंग पूरी तरह से विकसित हो जाता है और पहली एक या दो पंखुड़ियां खुलने लगती हैं लेकिन पूरी तरह से नहीं खुलती हैं। कटाई निर्धारित डंठलों की लंबाई के साथ कैंची से की जाती है। विदेशी मानकों के अनुसार, बड़े फूलों के डंठलों की लंबाई 60-90 सैं. मी. और छोटे फूलों के लिए 40-50 सैं.मी. होनी चाहिए। कटाई सुबह या देर शाम को की जाती है।

कटाई के बाद रख-रखाव : कटाई के तुरंत बाद फूलों को प्लास्टिक की बाल्टियों / कंटेनरों में रखें जिनमें ताज़ा पानी और कीटाणुनाशक हों। फिर फूलों को 10-12 घंटे प्री-कूलिंग चैंबर्स में रखें, जिसमें 10°C का तापमान हो। उसके बाद तने की लंबाई और गुणवत्ता के आधार पर फूलों को वर्गीकृत किया जाता है। 20 फूलों के बंडल को अखबार में लपेटें और बाज़ार में भेजने से पहले 100 ' 50 ' 7 सैं.मी. के माप के कार्ड बोर्ड बक्से में पैक करें। ।

(पृष्ठ 5 का शेष)

(रुपये 24208), बाजरा+गेहूं (रुपये 21000), बाजरा+सरसों (रुपये 15870), ग्वार+जौ (रुपये 14335), बाजरा+जौ (रुपये 9530)। जिसमें देखा गया कि अकेली अरंड की फसल का शुद्ध लाभ सभी वार्षिक फसलों से अधिक पाया गया।

अत: यह निष्कर्ष निकलता है कि शुष्क व बारानी क्षेत्रों में एक या दो पानी उपलब्ध हैं तो अरंड की खेती बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकती है। अगर किसान अरंड की बिजाई लाइनों मे दूरी को 5 से 8 फीट तक बढ़ाकर शुरू के 4-5 महीने तक अन्त: फसलों के साथ करता है तो अरंड की खेती बहुत ही कामयाब एवं लाभप्रद पाई गई है। अरंड के साथ मूँग, ग्वार, मूँगफली, तिल, मोठ, सब्जियाँ (टमाटर, मिर्च एवं अगेती मेथी, धनिया, मूली, गाजर) आदि की अन्त: फसल पद्धति प्रचलित है। अरंड की खेती से अकेले ही किसान वर्षभर में अन्य पारंपरिक फसलों से ज़्यादा शुद्ध लाभ ले सकते हैं। अन्त: फसलों के साथ खेती से मुनाफा और भी बढ़ जाता है और नगद पैसा जल्दी मिल जाता है।

मण्डी करण : अरंड के तेल की निर्यात माँग एवं घरेलू खपत के कारण इसके भाव में निरन्तर वृद्धि हो रही है। अन्त: बिक्री आसानी से हो जाती है। सही बिक्री मूल्य पाने के लिए फिलहाल राजस्थान के नोहर-भादरा व हरियाणा के आदमपुर, हिसार व सिरसा में उचित मंडी व्यवस्था है। परंतु पैदावार गुजरात में बेचना भी लाभप्रद है। कुछ किसान ऊंचे भाव में अरंड की बिक्री गुजरात में करते हैं। ।

सदाबहार की खेती

- **राजेश कुमार आर्य, वंदना एवं आर.पी. सहारण**
औषधीय, सगंध एवं क्षमतावान फसल संभाग
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सदाबहार (*केथेरन्थस रोसीयस*) एक बहुवर्षीय पौधा है जो ढाई से तीन फुट ऊँचा तथा सीधा बढ़ता है। इसका तना हल्का बैंगनी व हरा दोनों रंगों में पाया जाता है। इसके फूल गुलाबी, सफेद तथा केन्द्र में गुलाबी या सफेद भंवरे वाले होते हैं। इसके बीज काले तथा छोटे-छोटे होते हैं। इसके 1000 दानों का भार लगभग 1.2 ग्राम होता है।

यह भारत के अतिरिक्त इण्डोनेशिया, इंडोचायना, फिलीपींस, दक्षिण अफ्रीका, इजरायल, अमेरिका आदि देशों में फैला हुआ है। भारत मे इसे कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात तथा आसाम में उगाया जाता है। भूमि एवं जलवायु की दृष्टि से हरियाणा में भी इसकी खेती की जा सकती है।

उपयोग : सदाबहार एक बहुउपयोगी औषधीय पौधा है। इसकी जड़ों में एजमेलासीनल और रेसरपीन नामक एल्कलाइड्स होते हैं। जिनके कारण इसका प्रयोग उच्च रक्तचाप की रोकथाम के लिए होता है। इसकी पत्तियों में विनक्रीस्टीन व बिनब्लास्टीन तत्व पाये जाते हैं जो कि कैंसर व मधुमेह की रोकथाम के लिए कारगर हैं। इसे गर्भपात, जुलाब, मधुमेह मूत्रल आंव, मलेरिया, चर्मरोग, कैंसर आदि में प्रयुक्त किया जाता है।

भूमि एवं जलवायु : इसकी जड़ों की अच्छी पैदावार लेने के लिए हल्की से दोमट मिट्टी अधिक उपयुक्त है। वैसे इसे क्षारीय, लवणीय व बाढग्रस्त भूमि को छोड़कार किसी भी प्रकार की भूमि में उगाया जा सकता है। इसकी खेती के लिए गर्म व शुष्क मौसम अनुकूल रहता है। इसे सिंचित तथा बारानी दोनों दशाओं में उगाया जा सकता है।

बीज एवं बिजाई: बीज द्वारा इसकी बिजाई खेत में सीधी 30 सैं.मी. के अन्तर से पक्तियों मे की जा सकती है। जिसे 30-40 दिन के बाद पौधों की छंटाई करके 30 x30 सैं.मी. फासला रखा जा सकता है। इसके लिए लगभग एक किलो बीज प्रति एकड़ की आवश्यकता होगी जबकि नर्सरी में पौध तैयार करके खेत में रोपाई करने पर केवल 200 ग्राम बीज पर्याप्त रहता है। नर्सरी तैयार करने के लिए बीज की 200 वर्ग मीटर में बिजाई करें। नर्सरी मई-जून में तैयार करके पौध की रोपाई जुलाई-अगस्त में की जा सकती है।

खेत की तैयारी: खेत बिल्कुल समतल रखें ताकि पानी ज़्यादा देर तक न ठहर सके। खेत को इस प्रकार से तैयार करें कि इसकी मिट्टी भुरभुरी हो जाए तथा किसी प्रकार के ढेले न रहें।

खाद एवं सिंचाई: खेत को तैयार करते समय 10-12 टन प्रति एकड़ गोबर की अच्छी गली-सडी खाद ज़रूर डालें। इससे मिट्टी नरम रहेगी, पानी का संरक्षण होगा तथा जड़ों का विकास अच्छा होगा।

निराई-गुडाई : आरम्भ में खरपतवार निकालना बहुत ज़रूरी है इसलिए 1-2 निराई-गुडाई करके निकाल देने चाहिएं। अच्छी पैदावार के लिए आवश्यकतानुसार 5-6 सिंचाई समय-समय पर करें।

पत्तों की चुनाई : सालभर में, इसकी फसल से पत्तों की चुनाई 3 बार की जा सकती है। पहली 4 महीने पर, दूसरी 8 महीने पर तथा अन्तिम कटाई के समय। पौधों को ज़मीन से 15 सैं.मी. ऊपर से काटना चाहिये ताकि दुबारा फुटाव हो सके। पौधों को सुखा कर पत्तों की पैदावार भी लगभग 8-10 क्विंटल प्रति एकड़ हो सकती है।

जड़ों की पैदावार : जड़ निकालने के लिए, रोपाई के 10 महीने बाद फसल में उखाड़ने के लिए, खेत में सिंचाई करें तथा बत्तर आने पर पौधों को जड़ समेत उखाड़ें तथा जड़ों को पानी से अच्छी तरह से धोकर अलग सुखाया जाता है। सूखी जड़ों की औसत पैदावार 4-5 क्विंटल प्रति एकड़ आंकी गई है। ।

(पृष्ठ 7 का शेष)

रखें। कई प्रकार के खरपतवार भी इस रोग को फैलाने में सहायक हैं। इसलिए खेतों को, आसपास के क्षेत्रों को तथा नालियों आदि को बिल्कुल साफ रखना बहुत ज़रूरी है। भिण्डी पर भी यह रोग पाया जाता है। इसलिए जहां पर यह रोग लगता हो वहां पर भिण्डी की काश्त न करें। इस रोग की रोकथाम के लिए कोई भी फफूंदनाशक उपयोगी नहीं है।इसके बचाव के लिए कुछ सावधानियां बरतनी ज़रूरी हैं।

रोगरोधी किस्मों का प्रयोग :

- फसल की अगेती बिजाई
- खेत के आसपास खरपतवार को नहीं पनपने देना।
- सफेदमक्खी को नियंत्रण में रखना।

4. जीवाणु अंगमारी या कोणदार धब्बों का रोग : यह रोग पौधे के सभी भागों पर अपने लक्षण दिखाता है। इसके मुख्य लक्षण हैं टहनियों पर धब्बे, पत्तों पर कोनेदार धब्बे व टिण्डों पर भी धब्बे पाए जाते हैं। इस रोग के लक्षण पत्तों पर कोणदार जलसिक्त (पानीदार) धब्बों के रूप में नज़र आते हैं। ये गहरे-भूरे होकर किनारों से लाल या जामुनी रंग के हो जाते हैं व कभी-कभी आपस में मिले हुए होते हैं व तनों पर लम्बे या अण्डाकार काले रंग के धब्बे बनते हैं। प्रकोप की अवस्था में कोणदार धब्बे शिराओं के पास सिमट जाते हैं और इस प्रकार शिराएं काली पड़ जाती हैं जिससे कि पत्ता सिकुड़ जाता है और पीला पड़ कर गिर जाता है।

5. ग्रेमिल्ड्यू व दहिया रोग : यह रोग देसी कपास में लगता है जब फसल लगभग पक जाती है और अधिकतर कपास पहले ही चुन ली जाती है। मिल्ड्यू के धब्बे पुराने पत्तों की निचली सतह पर छोटे, अनियमित व सफेद कोनेदार दिखाई पड़ते हैं। रोग ग्रस्त पत्ते जल्दी ही गिर जाते हैं।

कपास के रोगों की सामूहिक रोकथाम

छिड़काव कार्यक्रम : बिजाई के 6 सप्ताह बाद अथवा जून के अन्तिम या जुलाई के पहले सप्ताह में स्ट्रैप्टो साइक्लिन (6-8 ग्राम प्रति एकड़) व कॉपर ऑक्सीक्लोराईड (600-800 ग्राम प्रति एकड़) को 150-200 लीटर पानी में मिलाकर 15-20 दिन के अन्तर पर लगभग चार छिड़काव करें। यदि गन्धक 10 कि.ग्रा./एकड़ धूड़ें या बाविस्टिन (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें तो देसी कपास के ग्रैमिल्ड्यू रोग पर नियन्त्रण पाया जा सकता है। ।

(पृष्ठ 6 का शेष)

है।इसके पौधे सीधे बढ़ते हैं तथा बौने होते हैं। इसके पौधे पकने के बाद भी नहीं गिरते। इस किस्म के दाने गोल (लगभग), क्रीम रंग के तथा मध्यम आकार के होते हैं। पौधे पाऊड़री मिल्ड्यू तथा रतुआ को सहन करने में सक्षम होते हैं तथा जड़ गांठ वाले सूत्रकृमि के प्रतिरोधी हैं। इसकी फलियां मध्यम लम्बी हैं तथा यह किस्म अधिक उत्पादन वाली है। यह 123-125 दिनों में पक जाती है। इस किस्म की औसत पैदावार 11-12 क्विंटल/एकड़ है। यह किस्म सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। ।

चुकन्दर - एक बहुउद्देशीय व बहुउपयोगी फसल

- **हर्षिता सिंह, सूर्यपाल सिंह[1] एवं सज्जन सिंह[2]**
सब्जी विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

किसानी को लाभकारी व्यवसाय बनाना है तो कम समय में अधिक लाभ देने वाली फसलों पर किसानों को अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा। चुकन्दर एक बहुउद्देशीय व बहुउपयोगी फसल है। सब्जी और चारा के साथ-साथ सलाद के रूप में शादी विवाह में अपना अलग स्थान व पहचान रखती है। चुकन्दर जड़ वाली सब्जियों में महत्वपूर्ण फसल है। इसकी अपनी विशेषता है। पहाडों से मरू क्षेत्र तक इसका उत्पादन बखूबी किया जा रहा है। विभिन्न प्रकार की मिट्टी दोमट बालुई या यूं कहिए कि सभी प्रकार की मिट्टी में चुकंदर का उत्पादन किया जा सकता है। चुकंदर को लवणीय क्षेत्रों में भी आसानी से उगाया जा सकता है। 6-7 पी.एच. मान की मिट्टी इसकी खेती के लिए उपयुक्त रहती है। चुकन्दर की खेती के लिए रेतीली भूमि की जुताई 2 से 3 बार करनी चाहिए। चिकनी मिट्टी की पहली जुताई पलटू हल से करें। हल चला कर सुहागे से समतल कर लें तथा मिट्टी को बिल्कुल भुरभुरी न करें। इसके बाद 5 इंच ऊँचा व 2 फीट चौड़ा बैड बनाकर सीधी बीज की बुवाई करें। बीज दर निर्धारण खेत में नमी और चुकंदर की किस्म के अनुसार तय करें। साधारणत: 4 से 6 किलोग्राम प्रति एकड बीज की आवश्यकता पडती है। प्रति एकड 3000 से 4000 पौधे 10 से 12 सैंटीमीटर की दूरी पर जिसमें लाईन की दूरी 25 से 30 सैंटीमीटर हो, पौधे वृद्धि के अनुकूल हैं। आमतौर पर बुवाई का समय अक्तूबर से नवम्बर तक उपयुक्त होता है। बुवाई से पहले पलेवा कर छोटी-छोटी क्यारियां बना कर लाईन में बिजाई करें। बीज को बोने से पहले पानी में 8-10 घन्टे भिगो कर छाया में सुखा लें और उसके बाद आधुनिक यन्त्रों या देसी हल से समतल खेत या तैयार किए हुए बैड पर बिजाई करें। बुवाई से पहले खेत तैयार करते समय 10-12 क्विंटल या प्रति एकड़ गोबर की खाद खेत में डालें। रासायनिक खादों का कम से कम उपयोग करें। अगर ज़रूरत पड़े तो यूरिया डी.ए.पी. और पोटाश 50, 70 और 40 कि.ग्रा. प्रति एकड प्रयोग कर सकते हैं। पानी की ज़रूरत मौसम पर निर्भर करती है। सर्दियों और बरसात में कम सिंचाई की ज़रूरत है। पहली सिंचाई बुवाई के 10-15 दिन, बाद में महीने भर पर सिंचाई करते रहना चाहिए। फसल तैयार होने पर फसल में नमी की मात्रा कम कर दें।

उद्देश्य

1. कम समय में अधिक उत्पादन : वैज्ञानिक विधि व सलाह से तैयार फसल में लगभग 65-90 टन प्रति हैक्टेयर चुकंदर का उत्पादन सम्भावित है। अनुकूल वातावरण व मिट्टी से उत्पादन अधिक होने की संभावना हमेशा रहती है। चुकंदर की उन्नत किस्मों जैसे- इग्लोपोली, ऐ. जे.पोली, ईरो टाइप ई, रोमांस काया, बी जे डब्लू-674, एम.एस.एच-9, यू एच-35 आदि के बीजों का वातावरण के अनुकूल प्रयोग कर अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। किस्म का चुनाव क्षेत्र विशेष के अनुसार कृषि वैज्ञानिकों की सलाह से करें। स्थानीय कृषि विज्ञान केन्द्र के विषय विशेषज्ञ से सलाह-मशवरा अनिवार्य है। केवल उन्हीं किस्मों का उपयोग करें जो कम समय में तैयार हो कर अधिक उत्पादन दें। चुकंदर मात्र 90 दिन में पूरी तरह मण्डी में जाने के लिए तैयार हो जाता है और मण्डी में इसकी कीमत भी किसान को अच्छी मिलती है।

2. अधिक उत्पादन अधिक लाभ: जैसा कि उपर्युक्त में बताया गया है कि 90 दिन में 65-90 टन प्रति हैक्टेयर उत्पादन जोकि मांग और आपूर्ति के हिसाब से 1500 रुपये से लेकर 5000 रुपये प्रति क्विंटल बेची जा सकती है। लालपत्ती वाली चुकंदर की मांग आजकल पांच तारा होटल, बड़े-बड़े आयोजनों व शाही शादियों में होने के कारण इसके मूल्य में वृद्धि होना स्वाभाविक है। अत: मांग के अनुसार उत्पादन कर किसान इस सब्जी फसल से अधिक लाभ अर्जन कर सकते हैं।

3. परम्परागत फसल चक्र तोड़ना: देश के अनेक भागों में परम्परागत गेहूं-चावल चक्र वाली फसलें ही उगाई जाती हैं जिसके कारण धरती की उवर्रा शक्ति का हनन हुआ व क्षीण हुई। धरती में अन्धाधुन्ध रसायनिक खादों के उपयोग के कारण कार्बन की मात्रा कम हुई है। इस अवस्था में इस फसल चक्र को तोड़कर ऐसी फसलों को तलाशना होगा जो किसान कों इस फसल चक्र से होने वाले लाभ में अधिक लाभकारी है। चुकंदर उसी श्रेणी की एक बहुउपयोगी फसल है। जिसकी अधिक कीमत से किसान अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

4. खाद्य सुरक्षा : चुकंदर जड़ वाली सब्जियों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जैसा कि विदित है चुकंदर विभिन्न उद्देश्यों के लिए उगाई जाती है। इसका उपयोग मुख्यत: सलाद तथा जूस में किया जाता है। रेशा और रसायन इसमें प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं जोकि हमारे लिए उत्तम खाद्य है और हमें खाद्य सुरक्षा प्रदान करते हैं विशेष रूप से उन तत्वों के लिए जिनकी हमारे भोजन में दिन प्रतिदिन कमी होती जा रही है।

उपयोगिता

1. जन स्वास्थ्य: चुकंदर सलाद, सब्जी व जूस के रूप में आम व खास द्वारा दैनिक रूप में उपयोगी है। चुकंदर में चीनी 8 से 10 प्रतिशत, प्रोटीन 1.5 से 2 प्रतिशत, मैग्निशियम 3 से 5 प्रतिशत तथा अन्य तत्व जैसे कैल्शियम, फॉस्फोरस, आयरन, आयोड़ीन, मैंगनीज़, विटामिन बी और सी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है इसलिए यह हमारे स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है।

2. खाद्य : चुकंदर बारह महीने की खेती है जो हमें साल भर सब्जी, सलाद व अन्य व्यंजन देती रहती है। जब भी सब्जियों का अभाव होता है इसको उपयोग में लाया जा सकता है। अधिक उत्पादन की अवस्था में सुखा कर इसकी जड़ों का उपयोग किया जा सकता है। खुदाई बड़ी व मीठी जड़ों की करें तथा यह खुदाई एक समय में न कर बाज़ार की मांग के अनुसार करें। जिससे भण्ड़ारण की समस्या से निजात के साथ-साथ बाज़ार भाव भी किसान को अधिक मिलेगा और उपभोक्ता को ताज़ा व अच्छी गुणवत्ता वाली सब्जी उपलब्ध होगी। अधिक लाभ व मण्डी भाव लेने के लिए जड़ को कटने न दें व ग्रेडिंग व सफाई कर बाज़ार में भेजें।

3. चारा फसल : वर्षभर पशुओं के लिए हरा चारा उपलब्ध कराना एक बड़ी चुनौती है। खेत जोत कम होने के साथ-साथ चारा उत्पादन क्षेत्र में कमी इस समस्या को ओर गम्भीर बना देती है। इस अवस्था में चुकंदर एक विकल्प के रूप में बहुत उपयोगी है। आजतक चुकंदर को यूरोपीय देशों में पशुओं के चारे के रूप में प्रयोग किया जा रहा था। लेकिन चारे और चीनी की मांग ने चुकंदर फसल की ओर हमारे किसानों का ध्यान आकर्षित किया। आजकल इसका उत्पादन पंजाब, हरियाणा, राजस्थान,

(शेष पृष्ठ 11 पर)

[1]बीज विज्ञान विभाग, चौ. च. सिं. ह. कृ. वि., हिसार।
[2]केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान, हिसार।

तिल उत्पादन : उन्नत कृषि क्रियाएं

- **रमेश कुमार, अशोक ढिल्लों एवं जयलाल यादव**
कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत एक प्रमुख तिल उत्पादक देश है। विश्व में सबसे अधिक तिल की खेती भारत में होती है तथा पैदावार भी अन्य देशों की अपेक्षा अधिक है। तिल की खेती आमतौर पर कम उपजाऊ ज़मीन में कम खर्च करके होती है इसलिये इसकी औसत पैदावार कम है। भारत में तिल का कुल क्षेत्र 13.98 लाख हैक्टेयर है और कुल उत्पादन 4.18 लाख टन है। हरियाणा प्रदेश में तिल की खेती तीन हज़ार हैक्टेयर में होती है। राज्य में तिल की औसत पैदावार 1000 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर है जो देश की औसत पैदावार 470 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर से अधिक है, तो भी फसल की पैदावार क्षमता 1680 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर से काफी कम है। पैदावार क्षमता तथा औसत पैदावार के इस अन्तर को कम करने के लिये फसल उत्पादन की उन्नत कृषि क्रियाएं अपनाने की आवश्यकता है। अच्छी पैदावार के लिये किसानों को निम्नलिखित उन्नत कृषि क्रियाएं अपनानी चाहिएं:

उन्नत किस्म के बीज का चुनाव : अधिक पैदावार लेने के लिये किसानों को उन्नत किस्म के अच्छी गुणवत्ता के बीज का चुनाव करना चाहिये। तिल उत्पादक अधिकतर किसानों को तिल की उन्नत किस्मों का बीज उपलब्ध नहीं हो पाता जिसके कारण फसल की अच्छी पैदावार नहीं मिल पाती। चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित तिल की उन्नत किस्मों का संक्षेप विवरण इस प्रकार है।

हरियाणा तिल नम्बर 1 (एच.टी. 1) : यह किस्म 85 दिन में पक जाती है तथा तिल की प्रमुख बीमारियां पत्ती मरोड़ व फायलोडी की प्रतिरोधी है। इसकी ऊंचाई मध्यम, पत्ते गहरे हरे तथा बीज सफेद होते हैं। इसकी औसत पैदावार 2.9 क्विंटल प्रति एकड़ है।

हरियाणा तिल नम्बर 2 (एच.टी. 2): यह किस्म 87 दिन में पक जाती है। इसका दाना सफेद होता है जिसमें तेल की मात्रा 48.2 होती है। यह पत्तों का मोजैक वायरस व फायलोडी रोग की अवरोधी किस्म है। इसकी औसत पैदावार 4.0 क्विंटल प्रति एकड़ है।

भूमि व इसकी तैयारी : तिल की खेती विभिन्न प्रकार की भूमि में की जा सकती है। लेकिन अत्यधिक रेतीली व क्षारीय भूमि इसकी खेती के लिये उपयुक्त नहीं है। अच्छे जल निकास की रेतीली दोमट मिट्टी तिल की खेती कि लिये उपयुक्त रहती है। अच्छे जमाव तथा बढ़वार के लिये खेत की 2-3 जुताइयां करके सुहागा लगाकर खूब भुरभुरा कर लेना चाहिये।

बिजाई का समय : तिल की बिजाई का उपयुक्त समय जुलाई महीने का पहला सप्ताह रहता है। इससे पहले बिजाई की गई फसल में बीमारियों व कीड़ों का प्रकोप अधिक रहता है।

बीज की मात्रा व बिजाई का समय : तिल के एक एकड़ की बिजाई के लिये उत्तम गुणवत्ता का 2.0 कि.ग्रा. बीज काफी रहता है। अच्छी पैदावार के लिये बिजाई खुड्डों में 30 सैं.मी. तथा पौधों में 15 सैं.मी. के फासले पर 2.5 सैं.मी. गहराई पर करें। उचित दूरी पर बीज डालने के लिये बीज को मिट्टी, राख या खाद में मिलाकर मात्रा बढ़ाकर बिजाई करें।

खाद की मात्रा तथा डालने की विधि : तिल की फसल को अधिक खादों की आवश्यकता नहीं होती है। यदि सम्भव हो सके तो गोबर की गली सड़ी खाद बिजाई से पहले देना अच्छा रहता है। कम उपजाऊ ज़मीन में 15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (30-35 कि.ग्रा. यूरिया) प्रति एकड़ बिजाई से पहले डाल देना चाहिये।

मिश्रित फसल : कई बार तिल की अकेली फसल लेना जोखिम भरा रहता है। किसी कारणवश तिल की पूरी फसल असफल हो जाती है तो इस तरह के जोखिम को पूरा करने के लिये प्रयोगों में यह पाया गया है कि तिल और ग्वार की मिश्रित खेती (4:1) तिल की अकेली फसल से ज्यादा मुनाफा देने वाली साबित हुई है

फसल की सिंचाई : तिल की खेती आमतौर पर कम पानी वाली क्षेत्रों में की जाती है। कम वर्षा की स्थिति में ज़रूरत के अनुसार एक या दो सिंचाई फूल आने के समय डोडियां बनने के बाद अच्छी पैदावार के लिये के लिये देना आवश्यक है।

फसल की निराई व गुड़ाई : फसल को खरपतवार से मुक्त रखने के लिये बिजाई के 20-25 दिन बाद 'ह्वील हैण्ड हो' से निराई गुड़ाई करें। खरपतवारों की रोकथाम खरपतवारनाशक दवाइयों का प्रयोग करके भी कर सकते हैं। इसके लिये स्टॉम्प 1200 मि.ली. बिजाई के तुरन्त बाद या बासालीन या ट्रैफलान 800 मि.ली. बिजाई से पहले 250 लीटर पानी के साथ छिड़काव कर सकते हैं।

कटाई : पकने के समय फसल के पौधों के पत्ते गिर जाते हैं। पौधों व फलियों का रंग हरे से पीला हो जाता है जो पकने की पहचान है। पौधों को पूरी तरह सूखने से पहले कटाई करके बंडल बांधकर सीधे एक दूसरे का सहारा देकर खेत में खड़े कर देने चाहियें। इस तरह काटने के बाद फसल को अच्छी तरह सूखने पर पर तिरपाल या पक्के फर्श पर बंडलों को उल्टा करके हल्के तरीके से झाड़ने पर तिल फलियों से निकल जाता है। यदि कुछ फलियां कटाई के समय हरी दिखाई दें तो ऐसे पौधों को दो बार झाड़ने की ज़रूरत पड़ती है। पहली बार झाड़ने के 3-4 दिन बाद दूसरी बार झाड़ा जा सकता है। ।

(पृष्ठ 10 का शेष)

पहाड़ी क्षेत्रों और दूर दक्षिण के क्षेत्रों में भी खूब होने लगा है। चुकंदर से पैदा होने वाले सहउत्पाद, फोटर बीट व शुगर बीट पशु आहार का अंग बन चुके हैं। प्रति एकड़ 700 से 800 क्विंटल हरा चारा इसमें आसानी से प्राप्त हो जाता है। यह फसल कम क्षेत्र में अधिक उत्पादन देती है। जिसकी आज हमें आवश्यकता है। यह पशुओं को उनकी शारीरिक आवश्यकता के अनुसार कार्बोहाईड्रेट्स, प्रोटीन, खनिज तत्व व विटामिन उपलब्ध करता है व पशुओं के लिए अत्यंत स्वादिष्ट व पोषक भी है। दुधारू पशुओं में इसके सेवन से उनकी उत्पादकता में वृद्धि दर्ज की गई है।

अत: किसान भाई व्यावसायिक खेती करना चाहें तो कम लागत में चुकंदर की खेती अधिक लाभप्रद है। ।

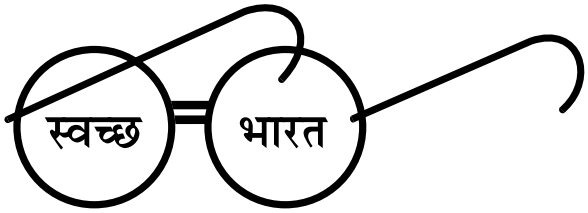

एक कदम स्वच्छता की ओर

अजोला के लाभ एवं तैयार करने की विधि

✎ **सौरभ, कौटिल्य चौधरी एवं कुलदीप सिंह**
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अजोला तेज़ी से बढ़ने वाली एक प्रकार की जलीय फर्न है, जो पानी की सतह पर तैरती रहती है। धान की फसल में नील हरित काई की तरह अजोला को भी हरी खाद के रूप में उगाया जाता है और कई बार यह खेत में प्राकृतिक रूप से भी उग जाता है। इस हरी खाद से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है और उत्पादन में भी आशातीत बढ़ोत्तरी होती है। अजोला की पंखुड़ियों में एनाबीना नामक नील हरित काई की जाति का एक सूक्ष्म जीव होता है जो सूर्य के प्रकाश में वायुमंडलीय नत्रजन का यौगीकीकरण करता है और हरी खाद की तरह फसल की नत्रजन की पूर्ति करता है। भारत में मुख्य रूप से अजोला की जाति अजोला पिन्नाटा पाई जाती है। यह काफी हद तक गर्मी सहन करने वाली किस्म है।

अजोला के लाभ :

1. इसका बड़े पैमाने पर आसानी से उत्पादन किया जा सकता है और खरीफ व रबी दोनों मौसमों में हरी खाद के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।
2. वायुमंडलीय नाइट्रोजन को परिवर्तित करने की दर लगभग 20 से 25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर होती है।
3. यह वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन को क्रमश: कार्बोहाइड्रेट और अमोनिया में बदल देता है और अपघटन के बाद, फसल को नाइट्रोजन उपलब्ध करवाता है तथा मिट्टी में जैविक कार्बन सामग्री उपलब्ध करवाता है।
4. ऑक्सीजन प्रकाश संश्लेषण में उत्पन्न ऑक्सीजन फसलों की जड़ प्रणाली और मिट्टी में उपलब्ध अन्य जीवों को श्वसन में मदद करता है।
5. यह ज़िंक, लोहा और मैंगनीज़ को परिवर्तित करता है और धान को उपलब्ध कराता है।
6. धान के खेत में अजोला छोटी-मोटी खरपतवार जैसे चारा और निटेला को भी दबा देता है।
7. अजोला प्लांट ग्रोथ रेगुलेटर और विटामिन छोड़ता है जो धान के पौधों के विकास में सहायक होते हैं।
8. अजोला एक सीमा तक रासायनिक नाइट्रोजन उर्वरक को 20 किलोग्राम पर हैक्टेयर के विकल्प का काम कर सकता है और ये फसल की उपज और गुणवत्ता बढ़ाता है।
9. यह रासायनिक उर्वरक के प्रयोग की क्षमता को बढ़ाता है।
10. यह धान के सिंचित खेत से वाष्पीकरण की दर को कम करता है।
11. सूखे अजोला को पोल्ट्री फीड के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।
12. हरा अजोला मछली के लिए भी एक अच्छा आहार है।
13. रिजका और संकर नैपियर की तुलना में अजोला से चार से पांच गुणा उच्च गुणवत्ता युक्त प्रोटीन प्राप्त होती है और अधिक जैव भार उत्पादन देता है।

आर्थिक पशुपालन उत्पादन की वृद्धि में इन दोनों कारकों के अति महत्वपूर्ण होने से अजोला को जादुई फर्न अथवा सर्वोत्तम पादप अथवा हरा सोना अथवा पशुओं के लिए च्वनप्राश की संज्ञा दी गई है।

अजोला और अन्य चारे के बायोमास और प्रोटीन की तुलना

क्रम	मद	बायोमास का आर्थिक उत्पादन (मीट्रिक टन/हैक्टेयर)	शुष्क पदार्थ (मीट्रिक टन /हैक्टेयर)	प्रोटीन (%)
1	शंकर नैपियर	250	50	4
2	कोलाकट्टो घास	40	8	0.8
3	लूसर्न	80	16	3.2
4	लोबिया	35	7	1.4
5	सुबबूल	80	16	3.2
6	ज्वार	40	3.2	0.6
7	अजोला	1000	80	24

अजोला तैयार करने की विधि

अजोला का उत्पादन करने हेतु 2 मीटर लंबे 1 मीटर चौड़े और आधा मीटर गहरे सीमेंट कंक्रीट के टैंक की आवश्यकता होती है । 25 वर्ग मीटर क्षेत्र में 10 या अधिक टैंकों का निर्माण किया जा सकता है। सबसे पहले टैंक में समान रूप से मिट्टी डाल दें। मिट्टी की परत लगभग 10 सैंटीमीटर गहरी होनी चाहिए। टैंक में गाय का गोबर एक से 1.5 किलो प्रति वर्ग मीटर की दर से (प्रति टैंक 2-3 किलो गाय का गोबर) डालना चाहिए । टैंक में हर हफ्ते प्रति वर्ग मीटर 5 ग्राम की दर से सिंगल सुपर फास्फेट डालना चाहिए (प्रति टैंक 10 ग्राम एसएसपी)।

टैंक में मिट्टी से 10-15 सैंटीमीटर की ऊंचाई तक पानी डालना चाहिए। किट संक्रमण से बचाव के लिए 2 ग्राम कार्बोफ्युरान मिलाकर ताजा अजोला इनोकल्लम तैयार करें। पानी की सतह पर निर्मित फोम की परत को हटा दें। अगले दिन पानी की सतह पे लगभग 200 ग्राम ताज़ा अजोला इनोकल्लम छिडक दें। पानी की सतह पे अजोला की परत बनने में लगभग 2 सप्ताह का समय लग जाता है। टैंक में पानी का स्तर बनाये रखें। तेज़ धूप से बचाने के लिए टैंक पर शेड या छप्पर बना दें। एक सप्ताह बाद प्रतिदिन एक से दो किलो अजोला प्रयोग करने के लिए निकाल सकते हैं। अजोला को पशुओं को खिलाने से पूर्व ताज़ा पानी में अच्छे से धो लें। अजोला और पशु आहार को 1:1 अनुपात में मिलाकर पशुओं को खिलाया जा सकता है। अजोला से हटाए गए गाय के गोबर और खनिज मिश्रण की पूर्ति के लिए सप्ताह में एक बार गाय का गोबर और खनिज मिश्रण डालना चाहिए। हर 2 महीने बाद टैंक से पुरानी मिट्टी हटा दें और 15 किलो नई मिट्टी डाल दें ताकि टैंक में नाइट्रोजन निर्माण से बचाया जा सके और अजोला को पोषक तत्व उपलब्ध होते रहें। मिट्टी और पानी निकालने के बाद कम से कम 6 महीने में एक बार पूरी प्रक्रिया को नए सिरे से दोहराते हुए अजोला की खेती की जानी चाहिए।

अजोला उत्पादन में ध्यान रखने योग्य बातें :

1. पी.एच. 5.5 से 7 के बीच रखें।
2. संक्रमण मुक्त वातावरण अच्छी उपज के लिय अति आवश्यक है।
3. सीधी ओर पर्याप्त सूर्य की रोशनी वाले स्थान को प्राथमिकता दें।
4. उपयुक्त पोषक तत्व आवश्यकता अनुसार डालते रहें।
5. अजोला को नियमित रूप से करते रहें। ❍

150 YEARS OF CELEBRATING THE MAHATMA

अक्तूबर मास के कृषि कार्य



फसलों में

धान

धान की पकी फसल की कटाई आरम्भ करें। कटाई से लगभग एक सप्ताह पहले खेत से पानी बाहर निकाल दें। फिर इसे धूप में अच्छी तरह सुखा कर ही बोरी में भरें।

बाजरा

यदि बाजरे के तुरंत बाद चना या रबी की कोई अन्य फसल बीजनी हो तो पौधों को नीचे से काट कर छोटे-छोटे भरोटे (बण्डल) बना लें और खेत के बाहर एकत्र कर लें। यदि रबी की कोई फसल न लेनी हो तो पकी फसल से बालें काट लें और पौधों को खेत में खड़ा रहने दें ताकि कुछ समय तक इन्हें हरे चारे के रूप में प्रयोग किया जा सके। अगर अरगट का प्रकोप हुआ हो तो प्रभावित फसल को हरे चारे या दाने के लिए प्रयोग न करें।

मक्की

समय पर बोई गई फसल की कटाई करें। संकर व विजय मक्की के पौधे पकने पर कभी-कभी हरे नज़र आते हैं किन्तु जब ऊपर वाला छिलका पीले व भूरे रंग का हो जाये तो समझें कि फसल पक गई है।

कपास

अमेरिकन कपास की चुनाई 15-20 दिन के अन्तर पर व देसी कपास की चुनाई 8-10 दिन के अन्तर पर करें। प्रथम व अन्तिम चुनाई की कपास अलग एकत्र करें क्योंकि यह घटिया किस्म की होती है। चुनाई ओस खत्म होने के बाद प्रारम्भ करें। अमेरिकन कपास में इस माह के अन्त तक अन्तिम सिंचाई कर दें। टिण्डे व पत्ते खाने वाली सूण्डियों अथवा मिलीबग का प्रकोप हो तो गत माह बताई गई कीटनाशकों का प्रयोग करें व कीट नियंत्रण के अन्य उपाय भी अपनाएं।

उड़द व मूंग

पकने पर फसल की फौरन कटाई करें।

तकनीकी सहायता :

- एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
- अनिल कुमार गोदारा, विभागाध्यक्ष (बागवानी)
- डी. एस. दुहन, सहायक वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान)
- तरुण वर्मा, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (कीट विज्ञान)
- रोहतास कुमार, सहायक वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
- वी. एस. हुड्डा, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान)
- देवेन्द्र सिंह बिढान, सहायक प्राध्यापक (पशु उत्पादन प्रबन्धन)
- राजेश दहिया, सहायक प्राध्यापिका (गृह विज्ञान)
- सूबे सिंह, सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

तोरिया, सरसों, राया व तारामीरा

तोरिया की फसल की खोदी करें। सरसों व राया की बिजाई इस महीने के तीसरे सप्ताह तक तथा तारामीरा की महीने भर तक कर सकते हैं। देसी सरसों की उन्नत किस्म बी एस एच नं. 1, वाई एस एच 0401, राया की किस्म आर एच 30, वरुणा, लक्ष्मी, आर एच 781, आर एच 819, आर एस 8113, आर एच 9801 व आर बी 9901 (आर बी 50) आर एच 0119, आर एच 0406, आर एच 0749, आर एच 725 व तारामीरा की फसल टी 27 ही बोयें। इन सभी फसलों के लिए 2 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ काफी रहता है। तना गलन रोग से बचाव के लिए कार्बेन्डाज़िम नामक दवा (2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज से उपचार करें) सरसों व राया के बीज का उपचार एजोटोबैक्टर टीके के साथ लाभदायक है। इन फसलों को कतारों में 30 सैं.मी. की दूरी पर बीजें। बिजाई 'पोरा' विधि से करें। बारानी क्षेत्र के लिए राया आर एच 30, वरुणा (टी 59), आर एच 0119, आर एच 0406, आर एच 781 व आर एच 819 ही बोयें तथा कतार से कतार का फासला 45 सैं.मी. रखें। असिंचित तोरिया, सरसों व राया में 16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (35 कि.ग्रा. यूरिया) तथा 8 कि.ग्रा. फास्फोरस (50 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) प्रति एकड़ बिजाई से पहले डालें।

सिंचित तोरिया व सरसों में 24 कि.ग्रा. नाइट्रोजन व 8 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति एकड़ डालें तथा सिंचित राया में 32 कि.ग्रा. नाइट्रोजन व 12 कि.ग्रा. फास्फोरस व 8 कि.ग्रा. पोटाश प्रति एकड़ डालें। 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट भी प्रति एकड़ बिजाई से पहले डालें। नाइट्रोजन की आधी मात्रा बिजाई के समय पोरें तथा शेष नाइट्रोजन की आधी मात्रा पहली सिंचाई पर डालें। तिलहनी फसलों (तोरिया, सरसों व राया) में फास्फोरस की सिफारिश की गई मात्रा सिंगल सुपर फास्फेट द्वारा ही डालें क्योंकि इस खाद द्वारा सल्फर की ज़रूरत भी पूरी हो जाती है। अगर फास्फोरस डी. ए. पी. द्वारा दे रहे हैं तो 100 कि.ग्रा. जिप्सम प्रति एकड़ डालें। यदि धौलिया अथवा आरामक्खी का आक्रमण हो तो 200 मि.ली. मैलाथियान (सायथियान) 50 ई.सी. को 200 लीटर पानी में प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें। बालों वाली सूण्डी के लिए 250 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 एस. एल. या 200 मि.ली. डाईक्लोर्वास 76 ई.सी. 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

अरहर

इस समय फसल में फली छेदक सूण्डी काफी हानि करती है। इसके लिए 300 मि.ली. मोनोक्रोटाफास 36 एस. एल. या 600 मि.ली. क्विनलफास 25 ई.सी. को 300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

लूसर्न (रिजका)

इसकी बिजाई इस माह के अन्तिम सप्ताह में करें। लूसर्न टी 9 अच्छी किस्म है। एक एकड़ खेत के लिए 4-5 कि.ग्रा. बीज काफी है। बिजाई कतारों में एक फुट के फासले पर करें। इसके बीज को भी लूसर्न का राइजोबियम का टीका लगाकर बोना चाहिये। लूसर्न बोते समय 22 कि.ग्रा. यूरिया तथा 250 कि.ग्रा. सुपर फास्फेट प्रति एकड़ डालें। इस खाद को ड्रिल द्वारा 10 सैं.मी. गहराई तक डालना चाहिए।

अलसी

इसकी बिजाई इस महीने के पहले पखवाड़े में करें। अलसी की के-2 किस्म बोने की सिफारिश की जाती है। बीज 20 कि.ग्रा. प्रति एकड़ पर्याप्त है। बिजाई कतारों में 23 सैं.मी. के फासले पर करें। खाद में 22 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (48 कि.ग्रा. यूरिया) प्रति एकड़ की दर से बिजाई के समय दें।

गेहूँ

बासमती धान आधारित फसल चक्र वाले क्षेत्रों में गेहूँ की सिंचित उपजाऊ भूमि पर समय पर बिजाई के लिए डब्ल्यू एच 1105, एच डी 2967, डी पी डब्ल्यू 621-50, डी बी डब्ल्यू 88, एच डी 3086, डब्ल्यू एच 283, पी बी डब्ल्यू 550, डब्ल्यू एच 542 (25 अक्तूबर से 15 नवम्बर तक) पछेती के लिए डब्ल्यू एच 1124, डी बी डब्ल्यू 90, एच डी 3059, डब्ल्यू एच-1021, पी बी डब्ल्यू 373 एवं राज-3765 किस्म चुनें। जबकि बाजरा व कपास फसल चक्र आधारित क्षेत्रों में गेहूँ की समय की बिजाई 15 नवम्बर तक पूर्ण कर लें। बारानी क्षेत्रों में सी 306 डब्ल्यू एच 1080, डब्ल्यू एच 1025 की बिजाई अक्तूबर के अंतिम सप्ताह से नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक कर लेनी चाहिए। इसी प्रकार कठिया गेहूँ की किस्मों डब्ल्यू एच 896, डब्ल्यू एच 912, डब्ल्यू एच डी 943 की बिजाई का उत्तम समय अक्तूबर के अंतिम सप्ताह से नवम्बर का प्रथम सप्ताह है।

बीज व मृदाजनित रोगों से बचाव के लिए वीटावैक्स या बाविस्टिन 2 ग्राम या रैक्सिल-2 डी एस (एक ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) से बीज का उपचार करें। बीज जनित करनाल बंट से बचाव के लिए बिजाई से पूर्व बीज का थाइरम (2 ग्राम) या रैक्सिल-2 डी एस (1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) से सूखा उपचार करें। गेहूँ में मिट्टी की जांच के आधार पर ही उर्वरक दें अन्यथा आम सिफारिशों के आधार पर खादों की मात्रा दें। बौनी किस्मों में सिंचित (धान व बाजरा के बाद) 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (65 कि.ग्रा. यूरिया), 24 कि.ग्रा. फास्फोरस (150 कि.ग्रा. एस एस पी) 24 कि.ग्रा. पोटाश (40 कि.ग्रा. एम ओ पी) व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ बिजाई के समय ड्रिल करें। बाकी नाइट्रोजन पहली सिंचाई पर दें। सिंचित अन्य ज़िलों में 60 कि. ग्रा. नाइट्रोजन (आधी बिजाई+आधी पहली सिंचाई पर), 24 कि.ग्रा. फास्फोरस, 12 कि.ग्रा. पोटाश व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट ऊपर बताई गई विधि से दें।

गेहूं की समय पर बिजाई हेतु 40 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ इस्तेमाल करें। पछेती बिजाई हेतु 25 प्रतिशत ज़्यादा बीज इस्तेमाल करें। मोटे दानों वाली किस्मों का 50 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ डालें। गेहूँ की बिजाई बीज एवं उर्वरक ड्रिल से करनी चाहिए तथा बिजाई से पूर्व इसका केलिब्रेशन कर लेना चाहिए। लंबी बढने वाली सी 306 किस्म की बिजाई 6-7 सैं.मी. गहरी करें जबकि अन्य किस्मों को 5-6 सैं.मी. गहरा बोएं। समय की बिजाई के लिए दो खुड्डों का फासला 20 सैं.मी. रखें।

गेहूं में यदि कनकी के प्रति शाक प्रतिरोधकता उत्पन्न हो गई है तो इसके नियंत्रण के प्रबन्धन के लिए बिजाई के तुरंत बाद व उगने से पहले पैण्डीमैथालीन 30 ई.सी. को 2 लीटर प्रति एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें। इसी के क्रमबद्ध में उगी हुई खरपतवारनाशक पिनोक्साडेन (एक्सियल) 5% ई.सी. 400 मि.ली. या क्लोडीनाफोप 15% डब्ल्यू. पी. 160 ग्राम या सल्फोसल्फ्यूरॉन 75% डब्ल्यू. जी. 13 ग्राम या टोटल 16 ग्राम या एटलांटिस 160 ग्राम का प्रति एकड़ की दर से बिजाई के 30-35 दिन बाद 200 लीटर पानी में छिड़काव करें।

जौ

बारानी क्षेत्रों में जौ की बिजाई अक्तूबर माह के दूसरे पखवाड़े में शुरू कर दें। सिंचित क्षेत्रों में समय की बिजाई 15 से 30 नवम्बर के बीच कर लें। जौ की उन्नत किस्मों बी एच 75, बी एच 393, बी एच 902, बी एच 885 व बी एच 946 का प्रयोग करें। माल्ट जौ की किस्में विशेषत: बी एच 393 की बुवाई 15 से 30 नवम्बर के बीच पूरी कर लें। बी एच 885 किस्म की बिजाई 10 से 25 नवम्बर के बीच कर लें। दिसम्बर माह में बोई गई फसल पछेती मानी जाती है। पछेती बोई गई फसल में माल्ट की पैदावार व गुणवत्ता कम हो जाती है। बी एच 885 किस्म में खूड़ से खूड़ की दूरी 18 सैं.मी. होनी चाहिए व खाद की मात्रा इस किस्म के लिए 16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (35 कि.ग्रा. यूरिया) 16 कि.ग्रा. फास्फोरस (100 कि.ग्रा. एस एस पी) व 8 कि.ग्रा. पोटाश (13 कि.ग्रा. एम ओ पी) प्रति एकड़ डालें। दीमक से बचाव के लिए 600 मि.ली. क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. या फारमोथियान 25 ई.सी. को 12.5 लीटर पानी में मिलाकर एक क्विंटल बीज का बुवाई से एक दिन पहले उपचार करें। बिजाई से पहले बीज का उपचार वीटावैक्स या बाविस्टिन 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से सूखा उपचार करें।

जई

अधिक कटाइयों के लिए जई की उन्नत किस्म एच एफ ओ 114, ओ एस 6, ओ एस 7 व ओ एस 8 की बिजाई इस माह के मध्य से शुरू करें। 40 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ पर्याप्त है। बिजाई कतारों में 25 सैं.मी. के फासले पर करें। सोलह किलोग्राम प्रति एकड़ नाइट्रोजन (35 कि.ग्रा. यूरिया) बिजाई पर पोरें तथा इतना ही पहले पानी पर दें।

चना

देसी चना की बिजाई मध्य अक्तूबर तक तथा काबुली चने की बिजाई इस माह के आखिरी सप्ताह में करें। बारानी इलाकों में उन्नत किस्म हरियाणा चना नं. 1 बोयें। जहां सिंचाई का साधन हो या वर्षा अच्छी होती हो वहां हरियाणा चना नं.-1, काबुली चना की हरियाणा काबुली नं. 1 किस्में बोयें। नम क्षेत्रों में सी 235 व हरियाणा चना नं. 3 किस्मों की बिजाई करें। हरियाणा चना नं. 5 की हरियाणा राज्य के सारे क्षेत्रों में बिजाई की जा सकती है। हरियाणा चना नं. 3 का 30-32 कि.ग्रा. व अन्य देसी किस्मों का 15-18 कि.ग्रा. तथा काबुली चने का लगभग 36 कि.ग्रा. व हरियाणा चना नं. 1 का 20 से 22 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ काफी है। बिजाई से पहले बीज का क्रमश: कीटनाशक व फफूंदनाशक टीके से उपचार करें। दीमक से बचाने के लिए 850 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. या 1500 मि.ली. क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. को पानी में मिलाकर कुल 2 लीटर घोल बनायें। ऐसे 2 लीटर घोल से 1 क्विंटल बीज को बीजने के एक दिन पूर्व पक्के फर्श या पॉलिथीन की शीट पर फैलाकर उपचारित करें। इसके बाद फफूंदनाशक बाविस्टिन (2.5 ग्राम) या जैविक फफूँदनाशक ट्राईकोडरमा विरिडी (बायोडरमा) 4 ग्राम + वीटावैक्स 1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से करें। बीजोपचार के लिए 4 ग्राम बायोडरमा और 1 ग्राम वीटावैक्स को 5 मिलीलीटर पानी में लेप बनाकर प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचार करें। बिजाई 'पोरा' विधि से 2 खूड़ों का फासला 30 सैं.मी. रखकर इस प्रकार करें कि बीज 10 सैं.मी. गहरा पड़े। इससे कम गहराई पर पड़ने पर उखेड़ा रोग लगने का भय रहता है। जहां खेत में आल की कमी हो तो 2 खूड़ों का फासला 45 सैं.मी. रख कर बिजाई के समय 12 कि.ग्रा. यूरिया व 100 कि.ग्रा. सुपर फास्फेट प्रति एकड़ ड्रिल करें। यदि डी. ए. पी. मिल जाये तो 34 कि.ग्रा. डी. ए. पी. ही प्रति एकड़ बिजाई के समय बीज के नीचे ड्रिल करें। चने के बीज को राइजोबियम का टीका अवश्य लगायें और बहुत रेतीली ज़मीन में 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ के हिसाब से डालें।

अगेती बिजाई कभी न करें। दस अक्तूबर से पहले बिजाई करने से

उखेड़ा ज़्यादा आता है। बिजाई से पूर्व प्रति किलोग्राम बीज में 2.5 ग्राम बाविस्टिन मिलाकर बोयें। झुलसा रोग से बचाव के लिए सी 235 या हरियाणा चना नं. 3 किस्म ही बोयें। जिस खेत में अंगमारी का आक्रमण रहा हो वहां चने की फसल न लें।

बरसीम

यदि पिछले महीने बिजाई न कर सके हों तो इस महीने के पहले सप्ताह तक बिजाई पूरी कर लें। जिस ज़मीन में पहली बार बरसीम की बिजाई करनी हो उसमें बीज का टीकाकरण अति आवश्यक है। समय पर खेत में पानी लगाते रहें। 22 कि.ग्रा. यूरिया और 175 कि.ग्रा. सुपर फास्फेट प्रति एकड़ बिजाई से पहले छिट्टे द्वारा डालें। रेतीली तथा कमज़ोर ज़मीन में बिजाई से पहले 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ प्रयोग करें। बरसीम और जई की मिश्रित फसल में 16 कि.ग्रा. अतिरिक्त नाइट्रोजन प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई के समय देनी चाहिए।

गन्ना

शरद्कालीन गन्ने की बिजाई का समय सितम्बर के आखिर से अक्तूबर के पहले सप्ताह तक है। शरद्कालीन किस्में सी ओ एच 56, सी ओ एच 92, सी ओ जे 64 (अगेती) व सी ओ एच 99, सी ओ एच 128, सी ओ एच 119, सी ओ 7717, सी ओ एस 8436 हैं। बिजाई के समय 45 कि.ग्रा. यूरिया तथा 125 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट व 35 कि. ग्रा. पोटाश (एम ओ पी) प्रति एकड़ बीज के नीचे पोरें।



सब्जियों में

टमाटर

खेत से अधपके टमाटरों को तोड़कर बाज़ार में भेजने का प्रबन्ध करें। समय पर सिंचाई करें तथा विषाणु एवं फफूंद रोग से रक्षा के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. तथा 400 ग्राम इण्डोफिल एम-45 को मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर, दो सप्ताह के अन्तर पर, नियमित रूप से छिड़काव करें। इस घोल के लिए लगभग 250 लीटर पानी की आवश्यकता होगी। फल छेदक कीट के नियन्त्रण के लिए 60 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें।

बैंगन

बैंगन के कच्चे फलों को समय पर तोड़कर बाज़ार में भेजें। समय पर फसल की सिंचाई करें। रस चूसने वाले कीड़ों के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। फल छेदक सूण्डी की रोकथाम के लिए 75 मि.ली. स्पाइनोसेड (ट्रेसर 45 एस.सी.) का 15 दिन के अन्तर पर बारी-बारी से प्रति एकड़ छिड़काव करें। तना छेदक कीड़े से ग्रस्त तनों व फलों को नियमित रूप से निकालते रहें तथा उन्हें नष्ट कर दें।

मिर्च

हरी मिर्च को खेत से तोड़कर बाज़ार में बेचने के लिए भेजें। उचित समय पर फसल की सिंचाई करते रहें। नाइट्रोजन खाद की मात्रा खेत में दी जा चुकी होगी। रस चूसने वाले कीड़ों की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

अक्तूबर-नवम्बर माह में मिर्च की बसन्त ऋतु की फसल के लिए नर्सरी में बिजाई की जाती है। उन्नत किस्में एन पी 46-ए. या पूसा ज्वाला या पन्त सी-1 का बीज प्रयोग करें। एक एकड़ खेत के लिए लगभग 400 ग्राम बीज की आवश्यकता होगी। बिजाई से पहले बीज को 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज का थाइरम नामक दवा से उपचार कर लें।

भिण्डी

भिण्डी के नर्म फलों को तोड़कर बाज़ार बेचने के लिए भेजें। आवश्यकता होने पर खेत में सिंचाई करें। नाइट्रोजन खाद दें। रस चूसने वाले कीड़ों की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. तथा फल छेदक कीड़ों की रोकथाम के लिए 75-80 मि.ली. स्पाईनोसेड 45 एस.सी. को प्रति एकड़ 250 लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अंतर पर छिड़काव करें।

कद्दू जाति की सब्जियां

कद्दू जाति की सब्जियों के फलों की तुड़ाई करें तथा उन्हें बाज़ार बेचने के लिए भेजें। फसल में नाइट्रोजन खाद दें। आवश्यकता होने पर फसल की सिंचाई करें। फल छेदक मक्खी की रोकथाम के लिए 400 मि. ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 1 कि.ग्रा. 250 ग्राम गुड़ और 250 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ खेत की बेलों पर छिड़काव करें। बेलों को चिट्टा रोग (पाऊडरी मिल्ड्यू) से बचाने के लिए 8-10 कि.ग्रा. बारीक गंधक के धूड़े का भुरकाव करें। धूड़ा सुबह या शाम के समय करें। डाऊनी मिल्ड्यू से बचाव हेतु बेलों पर इण्डोफिल एम-45 या ब्लाइटॉक्स 50 के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

शकरकन्दी व अरबी

शकरकन्दी की फसल की देखभाल करें। आवश्यकता होने पर सिंचाई करें। अरबी की खुदाई का प्रबन्ध करें तथा बाज़ार बेचने के लिए भेजें। तैयार होने के लिए अरबी की फसल 130-160 दिन और शकरकन्दी की फसल 130-180 दिन ले लेती है।

फूलगोभी

फूलगोभी की अगेती किस्म पूसा कातकी की फसल की देखभाल करें। फसल के तैयार फूलों को काटकर बाज़ार भेजें। पछेती किस्म (स्नोबॉल-16) की बिजाई इस माह नर्सरी में की जा सकती है। बोने से पहले बीज को कैप्टान या थाइरम 2.5 ग्राम दवा प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें। अंकुरण के 6-7 दिनों बाद 0.2 प्रतिशत कैप्टान के घोल से (आर्द्र गलन बीमारी लगने पर) नर्सरी की सिंचाई करें। हानिकारक कीटों, चेपा, कूबड़ वाले कीड़े, सूण्डी और डायमण्ड बैक मॉथ से रक्षा करने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर एक एकड़ खेत में छिड़काव करें। बन्दगोभी, गाँठगोभी, मूली और शलगम में यदि कीटों का आक्रमण हो तो यही कीटनाशक प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें। डायमण्ड बैक मॉथ की सूण्डी के लिए 60 मि.ली. डाइक्लोर्वास (न्यूवान/वैपोना) 76 ई.सी. या 400 ग्राम बी. टी. (बेसिलस थूरिजिएंसिस/बायोआस्प) का भी प्रति एकड़ छिड़काव कर सकते हैं।

बन्दगोभी और गाँठगोभी

बन्दगोभी तथा गाँठगोभी की बिजाई नर्सरी में इस मास में भी करें। बोने से पहले बीज को कैप्टान नामक दवा से उपचारित करें। 2.5 ग्राम फफूंदनाशक दवा प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजों का उपचार करें।

पालक

पालक फसल की देखभाल करें तथा तैयार पत्तों को काटकर गुच्छों में बांधकर बाज़ार में भेजें। पालक की नई बिजाई भी की जा सकती है।

मूली, शलगम व गाजर

मूली, शलगम व गाजर की तैयार जड़ों को उखाड़कर तथा उन्हें धोकर बाज़ार के लिए भेजें। इस माह विलायती किस्मों के बीजों की बिजाई तैयार खेत में करें। गाजर की किस्म नैंटीज, मूली की किस्म जापानी ह्वाइट तथा सफेद आइसिकल तथा शलगम की पर्पल टॉप ह्वाईट ग्लोब प्रयोग में लाएं। मूली की फसल पर कीट नियंत्रण के लिए 250-400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में प्रति एकड़ छिड़कें।

मटर

मटर की अगेती फसल की देखभाल करते रहें। फल लगते ही सिंचाई करें। खरपतवार निकालते रहें। अक्तूबर माह में मटर की बोनविले किस्म की बिजाई तैयार खेत में करें। एक एकड़ के लिए लगभग 20-30 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है। कतारों की दूरी 30-40 सैं.मी. रखें। खेत की तैयारी के समय 8 टन गोबर की खाद डालकर मिट्टी में मिला दें। बिजाई के समय 12 कि.ग्रा. यूरिया तथा 125 कि.ग्रा. सिंगल सुपरफास्फेट भूमि में बीज के नीचे पोरें। मटर के चुरड़ा (थ्रिप) कीट के नियंत्रण के लिए 60 मि.ली. सायपरमेथ्रिन 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें।

जड़गलन, सूखा रोग तथा अन्य बीज या मिट्टी जनित रोगों से बचाव के लिए 2 ग्राम बाविस्टिन या कैप्टान प्रति किलोग्राम बीज की दर से बिजाई से पहले बीजोपचार करें।

लहसुन

लहसुन की बिजाई यदि पिछले माह नहीं की है तो अभी कर लें और एक माह बाद 16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (35 कि.ग्रा. यूरिया खाद) से प्रति एकड़ की दर से टॉप ड्रेसिंग करें तथा सिंचाई करें।

प्याज़ (रबी)

प्याज़ के बीजों की नर्सरी में इस माह बिजाई करें। एक एकड़ खेत के लिए पौध तैयार करने के लिए लगभग 4-5 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होगी। अधिक उपज के लिए उन्नत किस्म हिसार-2 तथा पूसा रैड का ही प्रयोग करें। पौधशाला में पौध को रोगमुक्त रखना आवश्यक है।

आलू

आलू की उन्नत किस्म कुफरी चन्द्रमुखी, कुफरी बादशाह, कुफरी जवाहर, कुफरी सतलुज या कुफरी सिन्दूरी, कुफरी पुष्कर व कुफरी बहार का प्रयोग करें। एक एकड़ खेत के लिए लगभग 12 क्विंटल बीज लगता है। उचित होगा कि किसान स्वयं के खेत में प्रयोग के लिए बीज 'सीड टैक्नीक' से तैयार करें। बिजाई के समय 16-20 टन सड़ी गोबर खाद 24 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (54 कि.ग्रा. यूरिया), 20 कि.ग्रा. फास्फोरस (120 कि.ग्रा. सिंगल सुपरफास्फेट) आवश्यकतानुसार और 20-40 कि.ग्रा. पोटाश (36-64 कि. ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) प्रति एकड़ की दर से दें। आलू के बीजों को लगभग 10-15 सैं.मी. की गहराई पर बीजें। बिजाई के समय बीजों का अंकुरित होना आवश्यक है। अच्छा होगा कि पूरे आलू ही बीजें। स्वस्थ रोगरहित प्रमाणित बीज ही प्रयोग करें। आलू बीजने से पहले बीज को 5-10 मिनट तक 0.25 प्रतिशत इण्डोफिल एम-45 के घोल में रखकर उपचारित करें। बिजाई के बाद आवश्यकता होने पर खेत में सिंचाई करें। सिंचाई करते समय ध्यान रखें कि पानी आधी डोलों से ऊपर न जाये।

आलू फसल की खरपतवारों से रक्षा करने के लिए बिजाई के लगभग 10-12 दिनों बाद जब 10 प्रतिशत बीज अंकुरित हो चुके हों तो नाईट्राफिन नामक खरपतवारनाशक दवा के 2.5-3 लीटर घोल का प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें या स्टोम्प 30 ई.सी. 1.5 लीटर प्रति एकड़ की दर से बिजाई के 2-3 दिन बाद छिड़काव करें।

हरा तेला और सफेद मक्खी की रोकथाम हेतु 300 मि.ली. डाईमेथोएट 30 ई.सी. को 200-300 लीटर पानी में मिलाकर 10 दिन के अंतर पर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

प्याज़ (खरीफ)

फसल की खरपतवारों से रक्षा करें और नियमित सिंचाई करें। यदि पौधों के पास की मिट्टी वर्षा से बह गई हो तो पौधों के साथ मिट्टी चढ़ाएं। नाइट्रोजन खाद से दो बार टॉप ड्रैसिंग करने की आवश्यकता होती है- प्रथम बार पौधरोपण/बिजाई के लगभग एक माह बाद तथा दोबारा इसके एक माह बाद करें। हर बार 16 किलोग्राम नाइट्रोजन (35 कि.ग्रा. यूरिया) प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें तथा उसके पश्चात् सिंचाई करें। फसल की हानिकारक कीट, थ्रिप से रक्षा के लिए 300 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ फसल पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करें। पर्पल ब्लाच नामक बीमारी के लक्षण दिखते ही फसल पर 400-500 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराईड या इण्डोफिल एम-45 को 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ फसल में प्रयोग करें तथा आवश्यकता होने पर 10-15 दिनों बाद दोहराएं। कीटनाशक व फफूंदनाशक घोल में सेल्वेट-99 दस ग्राम या ट्राईटोन 50 मि.ली. प्रति 100 लीटर घोल में मिलाना आवश्यक है।

अन्य सब्जियां

ग्वार व लोबिया की फलियों को तोड़ कर बाज़ार में बेचने के लिए भेजें। यदि सलाद की पौध तैयार हो तो रोपाई करें। मेथी व धनिया की बिजाई भी इस माह में की जा सकती है। एक एकड़ फसल के लिए 8-10 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है।

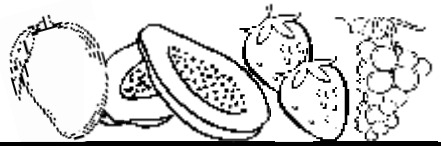

फलों में

वर्षा का पानी अगर भरा हुआ है तो उसे निकालना, वायुरोधक और फलदार पौधों की फालतू टहनियां काटना, नए लगाए पौधों की देखभाल करना, घास-फूस निकालना, पोषक तत्व देना, खाद का इंतज़ाम करना, निराई-गुड़ाई, रबी की बीच में बोई जाने वाली फसलों को लगाना और फल बेचने का प्रबंध करना आदि क्रियाएं बाग-बगीचे में करें।

नये पौधे इस महीने में भी लगाए जा सकते हैं। अगर अच्छे पौधे मिलते हों तो अब भी लगाए जा सकते हैं। लीची के पौधे इस माह में लगाने चाहिएं। अगर जुलाई-सितम्बर माह में लगाए पौधे मर गए हैं तो खाली स्थान पर उसी किस्म के पौधे लगाएं। अगर मूलवृंत पर कोई फुटाव निकलती हैं तो उन्हें हर 15 दिन के बाद काट दें। नए पौधे के फुटाव पर कीट एवं बीमारी का ध्यान रखें व सही समय पर उपचार करें। जट्टी-खट्टी या क्लीयोपेटरा पर संगतरा व माल्टा की आँख चढ़ाएं। जनवरी-फरवरी में ग्राफ्टिंग के लिए आंवला व अमरूद के देसी पौधे अभी से तैयार करें।

नींबू जाति के पौधे

पत्तों व फलों पर अगर पोषक तत्वों की कमी दिखाई दे तो ज़िंक सल्फेट 5 कि.ग्रा. और चूना 2.5 कि.ग्रा. को 1000 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। इसी प्रकार नाइट्रोजन की कमी को पूरा करने के लिए 1-2 कि.ग्रा. यूरिया को 100 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। जस्ते की कमी से पत्ते की नसों के दोनों ओर की जगह सफेद सी हो जाती है तो इसके लिए 500 मि.ग्रा. प्लाण्टामाइसिन और 2 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराईड का प्रति लीटर पानी की दर से अक्तूबर, दिसम्बर, फरवरी व जुलाई में छिड़काव करें। माल्टे के अच्छी तरह पके हुए फल तोड़ लें और बेचने का प्रबंध करें। कीड़ों की रोकथाम के लिए यदि सितम्बर में बताई गई कीटनाशक दवा का छिड़काव न किया गया हो तो इस माह के शुरू में छिड़काव करें।

नींबू वर्गीय फलों को कैंकर रोग से बचाने के लिए कॉपर आक्सीक्लोराईड 0.3 प्रतिशत का छिड़काव करें। पहला छिड़काव अक्तूबर में, दूसरा छिड़काव दिसम्बर में व तीसरा छिड़काव फरवरी में करें। अगर अमरूद व जामुन में छाल खाने वाले कीड़ों का प्रकोप हो तो 10 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. या मिथाइल पैराथियान 50 ई.सी. को 10 लीटर पानी में मिलाकर तने के छेद में भरकर चिकनी मिट्टी से बन्द करें।

बेर

नाइट्रोजन वाली खाद की बाकी बची आधी मात्रा भी (500 ग्राम-600 ग्रा. यूरिया) प्रति पेड़ के हिसाब से इस महीने के आखिर या नवम्बर में डालकर सिंचाई करें।

पाऊडरी मिल्ड्यू रोग से बचाव के लिए 200 लीटर पानी में 400 ग्राम सल्फैक्स या 200 मि.ली. कैराथेन का घोल बनाकर भली-भांति छिड़काव करें। छाल खाने वाले कीड़ों हेतु नींबू जाति के पौधों में बताया गया उपचार करें।

आम

निराई-गुड़ाई करें जिससे कि मिलीबग के लारवे सूर्य की रोशनी से खत्म हो जाएं।

लीची

लीची के पौधे इस माह में लगाए जा सकते हैं लेकिन यह ध्यान रखें कि पुराने पौधों के नीचे से थोड़ी मिट्टी लेकर नए पौधों के गड्ढों में अवश्य डालें।



पशुओं में

गाय-भैंस

सर्दी का मौसम आने वाला है। अत: अपने पशुओं को सर्दी से बचाने के लिए सभी प्रकार के प्रबंध कर लें। पशुओं के दाने को सूखे स्थान पर रखें तथा नमी से बचाएं। पशुओं को हवादार आवास में रखें जहां उन्हें नमी वाले मौसम में सांस लेने में तकलीफ न हो व श्वसन संबंधी रोग न हो।

इस मौसम में भैंस गर्मी में आती है और जब वह बोलती है, उसकी योनि पारदर्शी या साफ शीशे जैसा तार देती है और वह बार-बार पेशाब करती है। भैंस में गर्मी के लक्षण यदि सायं के समय देखे गये हों तो उसे अगली सुबह ही नये दूध कराना चाहिये और यदि लक्षण सुबह देखे गये हों तो सायं को कराना चाहिए। गर्मी में आने के 8-10 घण्टे के बाद मिलाई कराने से गर्भ ठहरने की सम्भावना बढ़ती है। नये दूध कराने के लिए अच्छा मुर्रा नस्ल का झोटा देखें या निकट के कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र पर ले जायें। यदि भैंस गर्मी में न आती हो तो पशु चिकित्सक से उसकी जांच करवायें। नियमित समय पर भैंस को गर्मी में लाने के लिए उसे सन्तुलित आहार खिलायें और अच्छी किस्म के 50 ग्राम खनिज मिश्रण प्रतिदिन दें व पेट के कीड़े मारने की दवा दें। गर्भाधारण की संभावना बढ़ाने हेतु पशुपालक कृत्रिम गर्भाधान से लेकर दस दिन तक कढ़ी पत्ता (250-300 ग्राम) प्रतिदिन दे सकते हैं।

भेड़ और बकरियां

इस मौसम में पशुओं के पेट में कीड़े हो जाते हैं। भेड़ों के पेट के अन्दर के परजीवियों को मारने के लिए उनको नियमित रूप से कृमिनाशक दवा पशु चिकित्सक की सलाह से पिलायें। पशुओं को हवादार आवास में रखें, बन्द घर में न रखें, नहीं तो पशुओं की दम घुटने से मृत्यु हो सकती है। अच्छी और अधिक ऊन लेने के लिए आप अपनी देसी भेड़ों को उत्तम नस्ल के मेंड़ों से मिलवायें ताकि अच्छी नस्ल की भेड़ें उत्पन्न हो सकें। उत्तम नस्ल के मेंड़ों के लिए लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार के पशु विज्ञान महाविद्यालय से सम्पर्क करें।

कुक्कुट

हर महीने मुर्गियों को कृमिनाशक दवा पशु चिकित्सक की सलाह पर पिलायें। यदि यह दवा न पिलाई जाए तो उनके पेट में कीड़े हो जाते हैं जो उनके विकास को रोकते हैं और साथ ही अण्डों का उत्पादन घट जाता है और उनमें बीमारी लगने की सम्भावना बढ़ जाती है। छोटे चूजों की खुराक में बाईफ्रान या एम्प्रोलीयम आदि दवा का प्रयोग करें ताकि उन्हें खूनी दस्त की बीमारी न लगे। मुर्गियों को सन्तुलित आहार दें जिसमें प्रोटीन, एनर्जी और दूसरे तत्त्वों की पूरी मात्रा हो। यदि सन्तुलित आहार देने से अण्डों का उत्पादन कम हो जाये तो आहार की जाँच प्रयोगशाला से करवायें। बिछावन को दिन में दो बार पलटें ताकि वह सूखता रहे। मुर्गी दाने की अफलाटोक्सिन नामक विषैले पदार्थ के लिए जाँच करवायें। इस मौसम में ब्रायलर मुर्गियों में मुख्यत: कोक्सी व खराब फीड की शिकायत रहती है।



घर-आंगन में

गृह विज्ञान

- सफाई का खास ध्यान रखें। यदि वर्षा का पानी घर के आसपास इकट्ठा हो गया हो तो मच्छरों की वृद्धि रोकने के लिए उसमें मिट्टी का तेल छिड़कें।
- अनाज तथा दालों में समय-समय पर सुरसुरी देखते रहें, अगर आक्रमण हो तो बचाव के उपाय करें।
- रसोई की वस्तुएं अगर घर में अधिक मात्रा में हैं तो उन्हें कभी-कभी धूप लगवायें जिससे कीटाणु उत्पन्न नहीं होते।
- चमड़ी को फटने से बचाने के लिए गर्म पानी से धोकर सरसों का तेल या मलाई या वैसलीन का प्रयोग करें।
- वर्षा ऋतु में बच्चों में चर्म रोग हो जाते हैं जिनसे बचने के लिए पानी में नीम की पत्तियां उबालें तथा उबले पानी से बच्चों को नहलाएं। डिटॉल का प्रयोग करें। ❍

फसल उत्पादन में जैव उर्वरक का महत्त्व

- **जगदीश प्रशाद,राजेश गेरा एवं बलजीत सिंह**
सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

फसल उत्पादन में सूक्ष्म जीवों का अधिक महत्त्व इसलिए है क्योंकि सूक्ष्म जीवों द्वारा पौधों को वातावरण में उपस्थित नाइट्रोजन, मृदा में उपस्थित पोषक तत्व की उपलब्धता, साथ ही सूक्ष्म जीवों द्वारा मृदा में डाले गये खरपतवारनाशक, कीटनाशक, फफूंदनाशक आदि रसायनों को भी अपघटन प्रक्रिया द्वारा इनका प्रभाव कम करने में भी सहायक होते हैं। इस समय फसलों की उत्पादकता में ठहराव तथा गिरावट का दौर शुरू हो चुका है। अच्छा उत्पादन और अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए हमें संतुलित रासायनिक उर्वरकों के साथ-साथ अच्छे कार्बनिक खाद तथा जैव उर्वरकों का उपयोग भी करना होगा। जैव उर्वरक सस्ते व वातावरण को नुकसान नहीं पहुंचाने वाले होते हैं। जैव उर्वरकों को उनकी प्रकृति व कार्य के आधार पर मुख्य रूप से पांच श्रेणियों में बांटा जा सकता है:

1. नाइट्रोजन स्थिर करने वाले जैव उर्वरक (N2fixer)
2. स्फुर घोलक जैव उर्वरक (Phosphorus Solubilizers)
3. स्फुर विलयकारी (P-Mobilizers)
4. पौधों की वृद्धि को बढावा देने वाले बैक्टीरिया (PGPR)

1. नाइट्रोजन स्थिर करने वाले जैव उर्वरक: इसमें मुक्त बैक्टीरिया जैसे की एजोटोबैक्टर, एनाबिना वायवीय व क्लोस्ट्रीडियम अवायवीय, सहजीवी (Symbiotic) राईजोबियम, फ्रैन्किया, साहचर्य सहजीवी-एजोस्पाईरिलम एवं एन्डोफाइटिक ग्लुकोनोएसिटोबैक्टर बैक्टीरिया मुख्य रूप से आते हैं।

(1) एजोटोबैक्टर - एजोटोबैक्टर जीवाणु खाद्यान्न फसलों के साथ-साथ सब्जी वाजी फसलों की जड़ों में वातावरण में उपस्थित नाइट्रोजन को स्थिर करने का कार्य करते हैं। इसके साथ ये पौधों में वृद्धि करने वाले पदार्थ जैसे कि विटामिन बी, IAA, GA, थाईमिन, राईबोफ्लेवीन प्राईरिडोक्सीन व पेन्टोथेनिक एसिड पैदा करते हैं। इसके अलावा ये पौधों की बिमारियों को जैव नियन्त्रक के रूप में भी रोकते हैं। इसके उपयोग से फसल पैदावार में 15-20 प्रतिशत तक वृद्धि होती है। इनके द्वारा विभिन्न फसलों में 20-40 किग्रा० प्रति हैक्टेयर तक नाइट्रोजन स्थिर होती है जिससे लगभग 20 प्रतिशत नाइट्रोजन उर्वरकों की खपत कम हो जाती है। इसके अलावा ये पौधों में फफूंदी द्वारा होने वाले कई रोगों के लिए प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न करते हैं एवं बीजों की अंकुरण क्षमता भी बढ़ाते हैं।

(2) राईजोबियम - यह जीवाणु मख्यत: दलहनी फसलों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य करते हैं। दलहनी फसलों में कुछ गांठें पाई जाती हैं और इन गांठों में उपस्थित जीवाणु वायुमंडल में उपलब्ध नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके पौधों को पोषण प्रदान करते हैं। ये 60 से 120 किलो नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर मृदा में एकत्रित कर सकते हैं। इनकी सात मुख्य प्रजातियां होती हैं जो कि दलहनी फसलों के लिए विशिष्टकृत होती हैं जैसे राइजोबियम लेग्युमिनोसेरम मटर के लिए, राईजोबियम मेलिलोटाई मेथी के लिए और राईजोबियम फेजियालाई फ्रेंचबीन के लिए।

(3) एजोस्पाईरिलम- यह पौधों की जड़ों में चिपके रहते हैं। ये भी नाइट्रोजन स्थिरीकरण के अलावा पौधों में वृद्धि करने वाले पदार्थ उत्पन्न करते हैं। ये 10 से 40 किलो तक नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर स्थिर करके 20 से 25 प्रतिशत नाइट्रोजनयुक्त रासायनिक उर्वरकों की बचत करते हैं।

2. स्फुर घोलक जैव उर्वरक: बहतु सारे बैक्टीरिया और कवक मिट्टी में उपलब्ध अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील फास्फोरस में बदल देते हैं जिसको पौधे आसानी से अवशोषित कर लेते हैं।

3. स्फुर विलयकारी: स्फुर विलयकारी के रूप में जाना जाने वाला महत्त्वपूर्ण माईकोराइजा का निर्माण कवक के द्वारा होता है। ये पौधों की जड़ व मृदा के बीच में प्रमुख कड़ी की भूमिका निभाते हैं। माइकोराइज़ा पौधों को पोषक तत्व उपलब्ध कराकर बदले में कार्बन ग्रहण करती है। ये पौधों को विपरीत परिस्थितियों जैसे कि लवणता, भारी धातु प्रदुषण से भी बचाने में सहायता करते हैं।

4. पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने वाले बैक्टीरिया: पीजीपीआर इनोकुलेंट पौधों की वृद्धि को पौधों में होने वाली बिमारियों की रोकथाम, उन्नत पोषक तत्व अधिग्रहण, (जैविक खाद), पादप हार्मोन उत्पन्न करते हैं। पीजीपीआर (PGPR) को पादप हार्मोन उत्पन्न करने वाले व जैव उद्दीपक के नाम से जाना जाता है। ये इन्डोल एसिटिक अम्ल, साईटोकायनिन, जिबेंलीन एवं इथाईलिन रोधक उत्पन्न करते हैं।

जैव उर्वरकों को उपयोग करने की विधि:

बीजोपचार: एक बर्तन में 250 मि.ली. पानी में 50 ग्राम गुड़ और 50 मिली० जैव उर्वरक मिलाकर अच्छी तरह घोलते हैं। इसके बाद एक बर्तन में 10 किलोग्राम बीज लेकर उसमें घोल अच्छी तरह मिलाते हैं तथा बीजों को हाथों से उलटते रहते हैं। इस बीज को छायादार स्थान में 20-30 मिनट सुखाकर बुवाई की जाती है।

- पैदावार में वृद्धि होती है।
- पर्यावरण मित्र होते हैं।
- ये सस्ते होते हैं।
- एजोटोबैक्टर से उपचारित पौधों में सूत्रकृमि की बीमारी से बचने की क्षमता होती है।
- मिट्टी की बनावट व उर्वराशक्ति बढ़ती है।
- मिट्टी से होने वाले रोगों की रोकथाम करते हैं।
- बीजों की अंकुरण क्षमता में वृद्धि होती है।
- एकदम अपना प्रभाव नहीं दिखाते, परन्तु कुछ समय उपरान्त परिणाम बहुत अच्छे होते हैं।

निष्कर्ष: जैव उर्वरकों को फसल में नाइट्रोजन उपलब्ध कराने व फास्फोरस विलेयक के रूप में ही प्रयोग किया जाता है किन्तु इनके उपयोग से फसलों को अनेक वृद्धि नियामक रसायन भी मिलते हैं जिन्हें साधारण पौधे सीधे ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं। रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मृदा की उर्वराशक्ति लगातार क्षीण होती जा रही है जोकि टिकाऊ खेती के लिए खतरनाक साबित हो रही है। टिकाऊ कृषि उत्पादन हेतु आज आवश्यकता इस बात की है कि हम कैसे मृदा स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए जैव-उर्वरकों का योगदान भुला सकते हैं क्योंकि ये पर्यावरण के मित्र भी हैं और हर प्रकार से अपना प्रभाव, बिना पर्यावरण को प्रदूषित करे, इसकी उर्वरकता बढ़ाने में सहयोग करते हैं। ।

नीम द्वारा निमेटोड (सूत्रकृमि) का समाधान

- विनोद कुमार, प्रियंका दुग्गल एवं अनिल कुमार
सूत्रकृमि विज्ञान विभाग,
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सूत्रकृमि क्या है ?

सूत्रकृमि (निमेटोड) सूक्ष्म, कृमि के समान जीव है जो पतले धागे के समान होते हैं। इनका शरीर लंबा, बेलनाकार व पूरा शरीर बिना खंडों का होता है। इन्हें इनके सूक्ष्म आकार, अर्ध पारदर्शी शरीर के कारण सामान्य नग्न आँखों से खेतों में नहीं देखा जा सकता। जिन्हें सूक्ष्मदर्शी से आसानी से देखा जा सकता है। इनका आकार 0.2 मिमी.–10 मिमी. तक हो सकता है। इन सूत्रकृमियों के मुख्य भाग में सुई के समान एक संरचना होती है जिसे स्टाइलेट कहते हैं, जिसके द्वारा ये जड़ों में संक्रमण करके उसके कोशिकाओं व उत्तकों से पोषण लेते हैं।

सुत्रकृमि ग्रसित पौधों के लक्षण

सूत्रकृमि में प्रमुख रूप से पादप परजीवी सूत्रकृमि है। पादप परजीवी सूत्रकृमि प्राय: अपने परपोषी पौधों की जड़ों में एवं जड़ों के चारों ओर की मिट्टी में अथवा पौधों के तनों, पत्तियों एवं बीजों में पाए जाते हैं। नीमेटोड ग्रसित पौधों से होने वाले फसलों के लक्षण और नीमेटोड कीट के प्रकार के आधार पर भिन्न होते हैं। इनमें मुख्य रूप से जड़ गांठ सूत्रकृमियों का विभिन्न फसलों पर प्रकोप ज़्यादातर देखा गया है, जो पौधे की जड़ों पर आक्रमण करते हैं। जिससे जड़ों की गांठें फूल जाती हैं व आपस में विभक्त होकर गुच्छा बना लेती है। जड़ों द्वारा जल व पोषक तत्व ग्रहण करने की क्षमता कम हो जाती है या रूक जाती है, जिसके कारण पौधों को भूमि से खाद पानी या पोषक तत्व पूरी मात्रा में नहीं मिल पाते और पौधों की बढ़वार रुक जाती है। जिससे पौधा आकार में बौना, पौधों की पत्तियां पीली, पौधा मुरझाने लगता है एवं फसल की उपज क्षमता कम हो जाती है।

निमेटोड (सूत्रकृमि) द्वारा ग्रस्त होने वाली फसलें

निमेटोड द्वारा प्रभावित होने वाली फसलें हैं गेहूं, धान, टमाटर, बैंगन, भिंडी, खीरा, मिर्च, इत्यादि व फलों में अमरूद, निम्बू, अंगूर, अनार, एवं समस्त प्रकार के फल व अन्य पौधे।

कैसे पहचानें ?

आपके पौधे बढ़ न पा रहे हों, पौधे सूख के मुरझा जाते हैं तथा उनकी जड़ों में गांठें बन गयी हों व उनमें फल व फूल की संख्या बहुत कम हो गयी हो।

नीम के द्वारा निमेटोड का समाधान

सूत्रकृमि विभिन्न प्रकार की फसलों में रोग उत्पन्न करता है, जिसकी पहचान आमतौर पर किसान नहीं कर पाते एवं अन्य रोगनाशक रसायनों का छिड़काव कर रोकथाम करने का प्रयास करते हैं, जिससे उनका श्रम, पैसा व समय बर्बाद होता है एवं सफलता भी नहीं मिलती। अत: इन सूत्रकृमि की पहचान करना ज़रूरी है एवं इनसे होने वाले रोगों की पहचान कर इन्हें विभिन्न विधियों द्वारा नियंत्रण किया जाना चाहिये। सूत्रकृमियों के कारगार नियंत्रण के लिये सबसे पहले सूत्रकृमि की पहचान, रोगजनक, रोग के लक्षण आदि की पहचान होना अति आवश्यक है जिससे इसकी रोकथाम करने के विभिन्न उपाय अपनाने में आसानी हो सके। वर्तमान में बढते हुये रासायनिक तत्वों के प्रयोगों के कारण भूमि, जल, पर्यावरण, खाद्य पदार्थ के खराब होने एवं मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले विपरीत

(शेष पृष्ठ 20 पर)

पराली से बायोगैस का उत्पादन : एक प्रबल संभावित तकनीक

- यादविका, कमला मलिक एवं वाई. के. यादव
प्रसंस्करण एवं खाद्य अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत में लगभग 43.95 मिलियन हैक्टेयर में धान की खेती की जाती है जिसमें उत्पादित चावल एवं भूसे का अनुपात 1:1.5 होता है। उत्पादित धान के भूसे के कुछ हिस्सों का उपयोग आधुनिक बायोमास पावर प्लांट, ईंट भट्टों, कार्डबोर्ड बनाने, मशरूम की खेती आदि के लिए किया जाता है एवं कुछ हिस्सों का उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों में घरेलू बायोमास कुकस्टोव के ईंधन के रूप में किया जाता है। कंबाइन हार्वेस्टर से कटाई के कारण खेतों से सारा भूसा एकत्रित नहीं हो पाता है एवं इसके भंडारण से जुड़ी समस्या के कारण किसान इसे रुपये प्रति मीट्रिक टन की गैरकिफ़ायती कीमत पर बेच देते हैं अथवा लगभग दो–तिहाई भूसे को खेतों में खुले तौर पर जला दिया जाता है ताकि खेत को तुरंत अगली गेहूं फसल की बुवाई के लिए तैयार किया जा सके।

धान की पराली जलाने से ग्रीन हाऊस गैसों का उत्पादन : शोधकर्ताओं का सुझाव है कि धान के भूसे के खुले मैदान में जलने से हानिकारक ग्रीनहाऊस गैसों के उत्सर्जन में भारी योगदान होता है जिनमें पोलीसाइक्लिक एरोमेटिक हाईड्रोकारबंस (PAHs), पोलीक्लोरीनेटि डाइबेनजो–पी–डाइऑक्सिन्स (PCDDs) एवं पोलिक्लोरीनेटेड डिबेंज़ोफुरन्स (PCDFs) जिन्हें डाइऑक्साइंस भी कहा जाता है। प्रयोगात्मक रूप से, यह मूल्यांकन किया गया है कि एक टन धान की पराली जलाने से 3 किलो कण पदार्थ, 60 किलो कार्बन मोनोआक्साईड, 1460 किलो कार्बन डाइआक्साईड, 199 किलो राख एवं 2 किलो सल्फर डाइआक्साईड उत्सर्जित होता है। स्थानीय रूप से पराली को जलाने से यह पर्यावरण को प्रभावित करता है क्यूंकि इन वायु प्रदूषकों में विषैले गुण होते हैं जोकि संभावित कैंसरजनित होते हैं। चूंकि नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार भिन्न होते हैं, धान के भूसे से जैव ऊर्जा उत्पादन का हरियाणा और पंजाब और भारत के अन्य उत्तरी राज्यों में व्यापक दायरा है।

धान की पराली का अवायवीय पाचन : बायोमास संसाधनों को संभालकर, ऊर्जा और जैव–उर्वरक का उत्पादन करने के लिए, अवायवीय पाचन तकनीक, ऊर्जा उत्पादन/इनपुट अनुपात के मामले में एक सबसे प्रभावी तरीका है। बायोमीथेनेशन उद्देश्यों के लिए धान की पराली को गांठ के रूप में संग्रहीत किया जा सकता है। इसके अलावा, धान की पुआल का आकार 3–5 मि.मी. के स्तर पर घटाने के लिए एक पुलावीकरण इकाई का उपयोग किया जा सकता है। धान के भूसे के निकटतम विश्लेषण से पता चला है कि धान के भूसे में 10.0 प्रतिशत नमी और 90.0 प्रतिशत कुल ठोस पदार्थ जबकि 84.0 प्रतिशत और 16.0 प्रतिशत अस्थिर ठोस पदार्थ और राख पदार्थ होते हैं। अंतिम विश्लेषण के परिणामस्वरूप सूखे वज़न के आधार पर 40.00 प्रतिशत कार्बन, 5.50 प्रतिशत हाइड्रोजन और 0.75 प्रतिशत नाइट्रोजन होती हैं। मौलिक विश्लेषण पर, यह पाया गया है कि चावल की पराली बायोमास में मौजूद नाइट्रोजन की मात्रा बहुत कम है (C/N = 54-0)। धान के भूसे के रचनात्मक विश्लेषण में 39.90 प्रतिशत सेलूलोज़, 24.0 प्रतिशत हेमिसेल्यूलोज और 5.6 प्रतिशत लिग्निन का खुलासा हुआ। बायोमीथेनेशन की क्रिया अवायवीय पाचकों में की जाती है जहां पंप का उपयोग करके फ़ीडिंग इकाई के माध्यम से तैयार धान की

पराली के सब्सट्रेट को डायजेस्टर को फीड जाता है। इन बायोगैस संयंत्रों में कोई बाहरी तापीय स्रोत की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उत्तरी भारत का वार्षिक औसत तापमान मेसोफिलिक रेंज के भीतर है। डायजेस्टर में 8-10 प्रतिशत टीएस बनाए रखने के लिए लोडिंग दर की जा सकती है जबकि 30 दिनों के हाइड्रोलिक प्रतिधारण समय (एचआरटी) में डायजेस्टर को बनाए रखा जा सकता है। पाचित स्लरी को ठोस-तरल पृथक मशीन का उपयोग करके अलग किया जा सकता है। धान के भूसे से बायोमीथेन उत्पादन के विश्लेषण से पता चला कि ऊर्जा रूपांतरण का यह मार्ग उपलब्ध उपयोगी ऊर्जा और ग्लोबल वार्मिंग क्षमता के मामले में सबसे अधिक कुशल है। बिजली उत्पादन के आंकड़ों से पता चला है कि बायोमीथेन द्वारा 777.0 किलोवाट/टन धान की पराली का बिजली उत्पादन होता है जबकि आउटपुट / इनपुट ऊर्जा अनुपात 5.5 होती है।

बायोममीथेनेशन उसी धान की पराली से अतिरिक्त ऊर्जा लेने के साथ ही एक अतिरिक्त लाभ के रूप में टिकाऊ कृषि के लिए एक मूल्यवान खाद प्रदान करता है। विश्लेषण से पता चला कि धान के भूसे की बायोमीथेनेशन द्वारा नेट ग्लोबल वार्मिंग क्षमता में 2,750 किलो कार्बन डाइआक्साईड उत्सर्जन/टन कम कर देता है। यह सुझाव दिया जा सकता है कि एनारोबिक पाचन मार्ग के माध्यम से बायोमीथेन उत्पादन के लिए धान के भूसे का उपयोग ऊर्जा और पर्यावरण अर्थशास्त्र के मामले में सबसे अच्छा तरीका है। विकेंद्रीकृत और केंद्रीकृत प्रणाली के वाणिज्यिक बायोगैस उत्पादन संयंत्रों को लॉजिस्टिक लागत कम करने के लिए गांवों के समूह स्तर पर उचित रूप से स्थापित किया जा सकता है। उपलब्ध ऊर्जा को खाना पकाने के साफ एवं हरे ईंधन के रूप में, बिजली उत्पादन के साथ-साथ वाहनों की आवश्यकता के आधार पर वाहन ईंधन अनुप्रयोगों की आपूर्ति के लिए उपयुक्त रूप से उपयोग किया जा सकता है।

सतत विकास दृष्टिकोण : धान के भूसे प्रबंधन के लिए बायोगैस आधारित ऊर्जा समाधान स्थिरता के सभी मानदंडों पर खरा उतरता है। यह समाधान भी 'तकनीकी रूप से व्यवहार्य' और पर्यावरण अनुकूल है। वाणिज्यिक बायोगैस उत्पादन उद्योगों की स्थापना के माध्यम से धान के भूसे और अन्य फसल अवशेषों को खुले में जलाने से बचाया जा सकता है। यह सब्सट्रेट के सड़ने के कारण हुई मीथेन उत्सर्जन को कम करता है। बायोगैस का उपयोग उर्वरक, कीटनाशकों और कीटनाशकों के उपयोग को कम कर सकता है। साथ में मिट्टी के स्वास्थ्य और क्षतिग्रस्त नमकीन उपजाऊ भूमि को पुनर्प्राप्त करने की क्षमता रखता है। जैव उर्वरक फॉस्फेट निर्धारण समस्या पर काबू पाने में मदद कर सकते हैं। सरकार ने बिजली और उर्वरकों को भारी सब्सिडी दी है और बायोगैस संयंत्र के उत्पादों को सब्सिडी वाले मूल्य के साथ प्रतिस्पर्धा करना है। इसलिए, बायोगैस संयंत्र से निर्मित जैविक उर्वरक को फॉस्फेटिक रासायनिक उर्वरक के समान मूल्य पर रखा जा सकता है।

यह विदेशी मुद्रा बहिर्वाह को भी बचाएगा क्योंकि अधिकांश रासायनिक फॉस्फेट भारत में आयात किए जाते हैं। बायोगैस से उत्पादित बिजली को अलग-अलग कीमतों पर वापस किया जा सकता है। धान के भूसे से 300 घन मी/टन बायोगैस की वर्तमान उत्पादकता को और अधिक टिकाऊ बनाने के लिए इस क्षेत्र में आगे के अनुसंधान और विकास के साथ सुधार किया जा सकता है।

धान के भूसे से बायोगैस का उत्पादन इसलिए रोज़गार उत्पादन में सीधे और अप्रत्यक्ष रूप से मदद करेगा, जिसके कारण यह आर्थिक रूप से व्यवहार्य नहीं बल्कि आकर्षक भी है।

बाधायें : धान के भूसे से बायोगैस के उत्पादन में प्रमुख बाधा बायोगैस संयंत्र के जैविक खाद का प्रचार है।सरकारी विभाग, विशेष रूप से कृषि, विश्वविद्यालयों द्वारा प्रस्तावित फसलों के पैकेज एवं प्रैक्टिस में जैविक खाद के उपयोग का ज़िक्र नहीं किया जाता है। रासायनिक उर्वरकों के विपरीत, जैविक खाद तत्काल परिणाम नहीं दिखाता है लेकिन दीर्घकालिक महत्वपूर्ण परिणाम होते हैं। इसलिए, सरकार को इसे व्यवहार्य बनाने के लिए किसानों को अधिक प्रभावी तरीके से जागरूक करने के लिए पहल करनी चाहिए।

निष्कर्ष : धान के भूसे का जलाया जाना भारत में एक गंभीर चिंता का विषय है और यह नीति निर्माताओं और शोधकर्ताओं का ध्यान आकर्षित कर रही है। इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह कहा जा सकता है कि लाभ दिए जाने पर, बायोगैस से उत्पन्न ऊर्जा की आपूर्ति ग्रामीण व्यवसायों और उद्यमों को बढ़ने और समृद्ध होने में सहायता करेगी, कार्बनिक उर्वरकों के उत्पादन और उपयोग से मिट्टी में सुधार होगा और उपज में वृद्धि होगी, और इससे स्थानीय नौकरी के अवसर पैदा करके रोज़गार उत्पादन में भी मदद मिलेगी (यह कहना एक संदिग्ध तथ्य नहीं होगा कि बायोगैस आधारित ऊर्जा ग्रामीण क्षेत्रों के लिए टिकाऊ समाधान प्रदान कर सकती है। ऐसी परियोजनाओं के माध्यम से सब्सिडी बिलों और विदेशी मुद्रा बहिर्वाह में काफी बचत प्राप्त की जा सकती है। इसके अलावा, ईंधन और ऊर्जा की उपलब्धता के माध्यम से, इस क्षेत्र में समग्र स्वास्थ्य और स्वच्छता में सुधार होगा, और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह ग्रामीण समुदाय के 'सशक्तिकरण' का वादा करता है, जो इसे एक बहुगुणनीय और स्केलेबल मॉडल बनने के लिए उपयुक्त बनाता है।

पर्यावरण, ऊर्जा और कृषि क्षेत्रों पर उनके व्यापक पहुंचने वाले सकारात्मक प्रभाव के कारण, धान के भूसे आधारित बायोगैस संयंत्र एक नयी पहल के साथ टिकाऊ विकास के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं जिससे किसानों और उद्योगों के बीच पारस्परिक लाभ के लिए लाभदायक भागीदारी बनाई जा सकती है। ।

(पृष्ठ 19 का शेष)

असर को देखते हुये सूत्रकृमि नियंत्रण के लिये जैविक समाधान (नीम एवं नीम की खली) के तरीके अपनाने चाहिएं। नीम की खली के इस्तेमाल से निमेटोड की संख्या बढ़नी रुक जाती है। कार्बनिक खाद (नीम) सूत्रकृमियों के प्रति प्रतिरोध उत्पन्न करने वाले कुछ ऐसे कवक व बैक्टीरिया को बढ़ावा देती है, जिससे इनका संक्रमण कम हो जाता है। खाद को भूमि की जुताई करते समय या बीज बोने या पौध लगाने के 20-25 दिन पहले डालना चाहिये। नीमखाद के इस्तेमाल से उपज से 40 प्रतिशत तक की वृद्धि भी होती है और फूलों तथा फलों की संख्या भी बढ़ती है।

घीया की फसल में नीम की खली 30 ग्राम प्रति पौधा बिजाई के एक सप्ताह पहले खेत में मिलायें।

फलों में-अनार, निम्बू, किन्नु एवं समस्त प्रकार के फलों के व अन्य पौधों के रोपण के समय एक मीटर गहरा गड्ढा खोद कर कार्बोफ्यूरान 3 जी के साथ-साथ 1 किलोग्राम नीम की खली एवं गोबर की खाद मिट्टी में अच्छी तरह मिला कर प्रति पौधारोपण करें।

अगर पौधे पहले से लगा रखे हैं तो भी पौधों की उम्र के हिसाब से नीम की खल की मात्रा संतुलित करें।

पॉलीहाउस में नीम की खली (100 ग्राम प्रति वर्ग मीटर) तथा ट्राईकोडरमा विरिडी (20 ग्राम प्रति वर्ग मीटर) फसल की रोपाई से एक सप्ताह पहले मिट्टी के ऊपरी भाग में अच्छी तरह मिलाकर हल्का पानी दें। ।

संरक्षण कृषि : मृदा प्रबंधन तकनीक

- **नरेन्द्र, रोहतास कुमार एवं अबीर डे**[1]
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

विश्व में भूमि क्षरण एक गंभीर पर्यावरणीय समस्या है जो कि हमारे पारिस्थितिकी तंत्र एवं खाद्य सुरक्षा के लिए एक खतरा है। भूमि क्षरण से मृदा का कटाव, पोषक तत्वों का दोहन, मृदा में कार्बनिक पदार्थों की कमी, मिट्टी की उत्पादन शक्ति में कमी, जैव विविधता में कमी, अनियमित भूजल स्तर, जलवायु परिवर्तन एवं आर्थिक नुकसान प्रमुख रूप से हो रहा है। भारत में सभी प्रकार की जलवायु जैसे शीतोष्ण, सम शीतोष्ण, कटिबंधीय, उष्ण कटिबंधीय इत्यादि पर कृषि की जाती है। हाल के वर्षों में, संरक्षण कृषि मिट्टी और पर्यावरणीय स्वास्थ्य के बचाव और सुधार के लिए एक वैकल्पिक कृषि क्रिया के रूप में आई है। यह कृषि की वह पद्धति है जिसके अन्तर्गत संसाधन संरक्षण तकनीक की सहायता से टिकाऊ उत्पादन स्तर के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखते हुये फसल उत्पादन लिया जाता है। जैविक कार्बन स्वस्थ मिट्टी का एक महत्वपूर्ण घटक है जो कृषि उत्पादन की उत्पादकता और दीर्घकालिक स्थाइत्व रखरखाव के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। जैविक कार्बन का प्रबंधन मुख्य रूप से निवेश-उत्पादन संबंधों को संशोधित करने पर निर्भर करता है, यानी निवेश में कमी या नुकसान को कम करके, या दोनों के संयोजन से। मृदा जैविक कार्बन और नाइट्रोजन से बहुत अधिक परस्पर जुड़े होते हैं और दोनों मिट्टी के स्वास्थ्य के रखरखाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन दोनों में से किसी का भी असंतुलित प्रबंधन मृदा स्वास्थ्य और उत्पादकता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है, तथा इससे जलवायु परिवर्तन भी प्रभावित होता है। संरक्षण कृषि प्रणाली को अपनाने से पर्यावरण एवं संसाधन दोनों का संरक्षण होता है। न्यूनतम जुताई, फसल अवशेष का स्थायी आवरण तथा फसल विविधिकरण अपनाने से मृदा एवं जल संसाधनों की गुणवत्ता और फसल की उत्पादक क्षमता बढ़ती है। फसल अवशेष से जैव विविधता, जैविक गतिविधियों एवं वायुवीय गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी होती है। यह कार्बन को संचय (सिक्वेस्ट्रेशन) करने एवं मृदा तापमान को नियंत्रित करने में भी सहायक होती है। मृदा सतह पर उपस्थित फसल अवशेष मृदा सतह पर बहने वाले पानी (रन ऑफ) और हवा की गति को कम कर देते हैं जिससे मिट्टी के महीन कणों का ऊपरी सतह से विस्थापन एवं मृदा कार्बनिक पदार्थों का क्षरण बहुत कम हो जाता है। फसल अवशेष मृदा सतह से पानी का वाष्पीकरण कम करने में सहायक होते हैं जिससे अधिक समय के लिए मृदा में नमी बनी रहती है। संरक्षण कृषि आधारित फसल प्रणालियों को अपनाकर पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है तथा साथ ही उपलब्ध संसाधनों को समुचित उपयोग में भी लाया जा सकता है। संरक्षण कृषि में हैप्पी/टर्बो सीडर तथा रोटरी डिस्क ड्रिल की मदद से गेहूँ को धान के अवशेषों के मध्य (10 टन फसल अवशेष भार के साथ) सफलतापूर्वक बोया जा सकता है।

वैश्विक स्थिति

विश्व की जनसंख्या बढ़ने के साथ-साथ भूमि क्षरण की समस्याएँ भी बढ़ती जा रही हैं जिसकी वजह से उपजाऊ मृदा एवं अनाज के लिए विभिन्न देशों के बीच खाद्य सुरक्षा के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी। इन समस्याओं से निपटने के लिये विश्व में भूमि क्षरण को रोकने तथा प्रकृतिक संसाधनों का इष्टत्म उपयोग एवं तरीकों पर पिछले कई वर्षों से विकल्पों की तलाश जारी है। भूमि संसाधनों का उपयोग एवं मृदा प्रबन्धन की विधियों की उत्पादन क्षमता निर्भर करती है। मृदा में कार्बनिक पदार्थों का प्रबन्धन अति महत्वपूर्ण है क्योंकि यह मृदा संरचना के स्थिरीकरण के लिए अत्यंत आवश्यक है। सघन कृषि के अन्तर्गत खेतों की लम्बे समय तक जुताई करने से अधोसतह में एक मज़बूत परत (क्रस्ट) बन जाती है जिससे मृदा संरचना पर गहरा प्रभाव पड़ता है। भारत-गंगा के मैदानी इलाकों (IGP) के धान-गेहूं फसल चक्र में विभिन्न समस्याओं को दूर करने के लिए कई संरक्षण कृषि-आधारित संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियाँ जिनमें शून्य-रोपण, बेड रोपण, लेजर-एडेड भूमि समतलन आदि का उपयोग किया जाता है। संरक्षण कृषि भी गेहूं स्थापना के बाद की समयबद्धता सुनिश्चित करता है।

फसल अवशेषों में बुवाई करने वाली मशीनों के अभाव एवं किसानों द्वारा साफ-सुथरा खेत रखने की सोच के कारण सिंधु-गंगा के उत्तर-पश्चिमी मैदानी इलाकों में फसल अवशेषों से छुटकारा पाने के लिए फसल अवशेषों को पूरी तरह से जलाने की परम्परा बनी हुई है। धान के अवशेषों को जलाने से इनमें से ज़हरीली गैसें जैसे: कार्बन डाइऑक्साइड (CO), सल्फर डाइऑक्साइड (SO), नाइट्रस ऑक्साइड (NO), कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) आदि निकलती हैं जिनसे समूचा वातावरण प्रदूषित हो जाता है एवं मृदा के पोषक तत्वों तथा जैव पदार्थों को नुकसान होता है। धान की पुआल के जलाने से कार्बन लगभग 90-99 प्रतिशत, नाइट्रोजन 80 प्रतिशत, फास्फोरस एवं पोटेशियम 20 प्रतिशत तथा सल्फर 50 प्रतिशत का नुकसान होता है। धान की पुआल में लगभग 50-55 प्रतिशत कार्बन, 0.62-068 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.20 0.23 प्रतिशत फास्फोरस एवं 0.78-1.15 प्रतिशत पोटेशियम होते हैं जो जलाने के उपरान्त नष्ट हो जाते हैं। धान की पुआल को जलाने पर उसमें उपस्थित कार्बन का 70, 7 एवं 07 प्रतिशत उत्सर्जन कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड एवं मिथेन के रूप में होता है जबकि कुलनाइट्रोजन का 21 प्रतिशत हिस्सा नाइट्रस ऑक्साइड के रूप में उत्सर्जित होता है। पूरे भारत में लगभग 9281 मिलियन टन फसल अवशेषों को जला दिया जाता है जिससे काफी मात्रा में पौधों के लिए ज़रूरी पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। पंजाब एवं हरियाणा में अनुमानत: 196 एवं 0.91 मिलियन टन फसल अवशेषों को प्रतिवर्ष जला दिया जाता है।

संरक्षण कृषि पारंपरिक कृषि से कैसे भिन्न है?

संरक्षण कृषि मृदा की ऊपरी व निचली सतह के अन्दर प्राकृतिक जैविक क्रियाओं को बढ़ाने पर आधारित है। संरक्षण कृषि प्रणाली में उपलब्ध संसाधनों का ईष्टतम् उपयोग एवं संरक्षण करते हुये, किसी स्थान की भौतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के अनुसार टिकाऊ फसल उत्पादन लेने के लिए नये-नये तरीके अपनाये जाते हैं। यह तरीके तीन सिद्धान्तों पर आधारित रहते हैं जोकि निम्न हैं : मृदा की भौतिक अवस्था में न्यूनतम असंतुलन, स्थायी जैविक मिट्टी को आच्छादित करना, विविधीकरण या फसल चक्र। संरक्षण कृषि में ज़ीरो-सीड-ड्रिल, हैप्पी-सीडर, टर्बो-सीडर आदि शामिल हैं। जबकि पारंपरिक कृषि प्रथा में ज़मीन से ऊपर की फसल को निकालना शामिल है। फसल सघनीकरण के कारण भूमि में मुख्य पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, सल्फर के साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे ज़िंक, लोहा, मैंगनीज़ इत्यादि की कमी के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति का गिरना, भू-जलस्तर में गिरावट,

[1]मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान संभाग, भा.कृ.अनु.प., नई दिल्ली

कृषि में मज़दूरों की कमी व कृषि आयातों की बढ़ती कीमतों की वजह से पारम्परिक कृषि के अन्तर्गत उत्पादन खर्च में वृद्धि व शुद्ध मुनाफे में कमी हो रही है। जबकि दूसरी ओर संरक्षण कृषि को अपनाकर पारम्परिक कृषि की तुलना में 25-30 प्रतिशत तक समय, ईंधन व मज़दूरी की बचत की जा सकती है। पारम्परिक कृषि की मौजूदा कृषि पद्धतियों में मज़दूरों की उपलब्धता दिन प्रतिदिन घटती जा रही है व इस पर होने वाले खर्च में भी निरंतर वृद्धि हो रही है। संरक्षण कृषि में बुवाई पर होने वाले खर्च को 5000 रूपये प्रति हैक्टेयर तक आसानी से कम किया जा सकता है। संरक्षण कृषि में फलियां शामिल करने के साथ-साथ फसल को प्राथमिकता दी जाती है। फलियों की फसल के बाद, उनके अवशेषों से कार्बन-नाइट्रोजन का अनुपात मिट्टी की सतह पर आसानी से विघटित कार्बनिक पदार्थों के रूप में बनाए रखा जाता है।

मृदा कार्बनिक कार्बन और नाइट्रोजन पर संरक्षण कृषि का प्रभाव

संरक्षण कृषि में मिट्टी को स्वस्थ तथा उसकी पैदावार बनाए रखने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि मिट्टी की सतह पर फसल अवशेषों का पर्याप्त आवरण हो। मृदा में फसल अवशेष का स्थायी आवरण होने के कारण उसमें उपस्थित सूक्ष्म जीवों की जैविक गतिविधियां बढ़ जाती हैं जिससे मृदा में कार्बनिक पदार्थो की वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप फसल को समुचित मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। कार्बनिक पदार्थ का मृदा के भौतिक गुणों जैसे: मृदा संरचना, जल धारण क्षमता, मृदा भार घनत्व, उर्वरक उपयोग क्षमता, मृदा समुच्चय, मृदा पारगम्यता दर, पोषक तत्व प्रतिधारण (रिटेंशन) को फसल के जड़ीय क्षेत्र (राइजोस्फियर) में बढ़ाने में मुख्य भूमिका है। संरक्षण कृषि के अन्दर किसान का मित्र कहे जाने वाले केंचुआ की संख्या में वृद्धि होती है। फसलों की जड़ों एवं केंचुए द्वारा बनाये हुये छिद्रों में पानी एवं हवा का अनुपात (11) बना रहता है जिससे फसलों की वृद्धि एवं विकास ठीक ढंग से होता है।

फसल की उत्पादकता पर संरक्षण कृषि का प्रभाव

मृदा की सतह पर अवशेषों को रखने से मिट्टी में नमी का संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण तथा मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है। अवशेषों को मिट्टी पर बनाए रखने से न केवल मृदा सुधार होगा बल्कि सूक्ष्म वातावरण भी फसल के अनुकूल होगा। गेहूँ की फसल में प्रकाश संशलेषण की दर 20-25 डिग्री सैल्सियस पर अधिकतम होती है तथा यह 30 डिग्री सेल्सियस के बाद तेज़ी से गिरने लगती है। गेहूँ की फसल में मार्च के महीने में तापमान के 35 डिग्री सैल्सियस से अधिक होने पर इसका सीधा प्रभाव गेहूँ की उत्पादकता पर पड़ता है जिसे हम सीमान्त ताप प्रभाव के नाम से जानते हैं। इस तापक्रम के बाद प्रत्येक डिग्री सेल्सियस की बढोत्तरी पर 4-5 प्रतिशत उपज में कमी आती है। संरक्षण आधारित कृषि करने से सीमान्त ताप प्रभाव को नियंत्रित किया जा सकता है एवं इसकी वजह से गेहूँ की फसल में होने वाले नुकसान को काफी हद तक कम किया जा सकता है। मृदा सतह पर उपस्थित फसल अवशेष तापमान को 1-3 डिग्री सैल्सियस तक कम करने में सक्षम होते हैं जिससे फसल के सूक्ष्म पर्यावरण में तापमान गेहूँ की ज़रूरत के अनुसार बना रहता है। फसल अवशेषों की वजह से कम होने वाला तापमान मृदा सतह पर उपस्थित अवशेष भार पर निर्भर करता है। सीमान्त ताप की वजह से समय पूर्व परिपक्वता के कारण गेहूँ के दाने सिकुड़ जाते हैं जिसकी वजह से कम उत्पादन प्राप्त होता है। दानों की गुणवत्ता एवं आकार खराब होने से अच्छे बाज़ार भाव नहीं मिलते हैं जिसकी वजह से किसान को भारी नुकसान उठाना पड़ता है।

संरक्षण कृषि के लिए महत्वपूर्ण प्रबंधन तकनीकियाँ

भूमि का लेजर समतलीकरण (लेजर लैंड लेवलिंग) : समान रूप से पानी का वितरण सुनिश्चित करने के लिए खेत को सावधानी पूर्वक समतल करना आवश्यक है जिससे पानी की गहराई खेत में एक समान बनी रहे। समतल खेत में जल इकट्ठा नहीं हो पाता तथा उसकी निकासी भी आसानी से हो जाती है। समतलीकरण द्वारा पादप पोषक तत्वों का बेहतर उपयोग एवं उच्च जल उपयोगी क्षमता सुनिश्चित होती है। समतलीकरण के उद्देश्य को पूरा करने हेतु नवविकसित तकनीक लेजर लैण्ड लेवलर का प्रयोग अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हुआ है। संसाधन संरक्षण तकनीकियों से फसलों में उच्चतम् परिणाम तभी आते हैं जब किसान आवश्यकतानुसार लेजर भूमि समतलीकरण के बाद कृषि करता है। सतही सिंचाई क्षेत्रों में यह आवश्यक है कि सतह उपयुक्त रूप से समतल हो व उसमें उचित ढ़लान हो ताकि सिंचाई प्रक्रिया सुचारू हो। सतही सिंचित क्षेत्रों के समतलीकरण के लिए लेजर निर्देशित उपकरणों का उपयोग आर्थिक रूप से संभव हो गया है। इन सुविधाओं का किराये पर उपलब्ध होने की वजह से इनका प्रयोग छोटे किसान भी कर सकते हैं। लेजर भूमि समतलीकरण से क्षेत्र की असमानता 20 मिलीमीटर तक कम हो जाती है। परिणामत: सिंचित क्षेत्र में 2 प्रतिशत व फसल क्षेत्र में 3-4 प्रतिशत तक वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त जल प्रयोग व वितरण की दक्षता में 35 प्रतिशत तक सुधार होता है। सिंचाई जल उत्पादकता, उर्वरक उपयोग दक्षता एवं फसल पकाव में सुधार होता है व खरपतवार दबाव कम होता है। विभिन्न क्षेत्रों में इस तकनीकी का प्रसारण तेज़ी से हो रहा है जो इस तकनीक की स्वीकार्यता एवं वैधता को दर्शाता है।

बेड प्लान्टिंग : भूमि रूपान्तरण में परिवर्तन के रूप में बैड प्लान्टिंग को सिंचित पारीस्थितिकी में संसाधन संरक्षण तकनीक के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। बैड प्लान्टिंग का अर्थ है वह प्लान्टिंग सिस्टम जिसमें फसल को मेड़ों पर लगाया जाता है व सिंचाई खूड्डों में दी जाती है। सिमिट ने एक स्थाई फरो सिंचित रेज्ड बैड प्लान्टिंग तकनीक विकसित की है। फरो सिंचित रेज्ड बैड प्लान्टिंग तकनीक ने किसानों में पकड़ हासिल की है क्योंकि यह 25-40 प्रतिशत जल, 25 प्रतिशत पोषक तत्व व 20-30 प्रतिशत बीज बचाती है। इन सबके अतिरिक्त यह प्लान्टिंग विधि जड़ वातावरण में बदलाव लाती है और जड़ क्षेत्र में वायु संचार को सुधारती है। संरक्षण कृषि में इन बैड्स को स्थायी बैड्स में बदल दिया गया है और जुताई के कार्यक्रम को एकल कार्य तक सीमित कर दिया है, जिसमें बुवाई, सफाई व फरो को रिशेपिंग एक साथ ही करते हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों में बैड प्लान्टिंग में फसल लगाने पर फसलों की उपज में वृद्धि होती है जबकि सिंचित क्षेत्रों में उपज लगभग बराबर होती है।

फसल विविधिकरण एवं टिकाऊ फसल प्रणालियां

धान-गेहूँ फसल चक्र में मूंग को शामिल करके फसल प्रणाली उत्पादकता के साथ-साथ भूमि की उर्वरा शक्ति एवं खरपतवार नियंत्रण दक्षता को भी बढ़ाया जा सकता है। वहीं दूसरी ओर धान के स्थान पर मक्का को लगाने से घटते भू-जलस्तर एवं मज़दूरों की कमी जैसी समस्याओं से निजात पायी जा सकती है। धान-गेहूँ की स्थापन विधि में बदलाव करके धान में कद्दू करके रोपाई करने की बजाय धान की सीधी

(शेष पृष्ठ 24 पर)

केंचुआ खाद : विधि, उपयोग व लाभ

- मुकेश कुमार, राजेश कुमार एवं अमित कुमार
सब्जी विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय प्रांगण, हिसार

केंचुआ द्वारा जैव-विघटनशील व्यर्थ पदार्थों के भक्षण तथा उत्सर्जन से उत्कृष्ट कोटि की कम्पोस्ट (खाद) बनाने को वर्मी कम्पोस्टिंग कहते हैं। इसकी खूबियों के कारण ही इसे प्रकृति का हलवाहा कहा जाता है। वर्मी कम्पोस्ट को मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की उर्वरा शक्ति तो बढ़ती ही है, साथ ही साथ फसलों की पैदावार व गुणवत्ता में भी बढ़ोत्तरी होती है। रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक इस्तेमाल से मृदा पर होने वाले दुष्प्रभावों का वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से सुधार होता है। इस प्रकार वर्मीकम्पोस्ट भूमि की भौतिक, रासायनिक व जैविक दशा में सुधार कर मिट्टी की उपजाऊ शक्ति कोटि का ऊकर ने में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। अनुमानत: 1 कि.ग्रा. भार में 1000 से 1500 केंचुए होते हैं। प्राय: 1 केंचुआ 2 से 3 कोकून प्रति सप्ताह पैदा करता है। तत्पश्चात हर कोकून से 3-4 सप्ताह में 1 से 3 केंचुए निकलते हैं। एक केंचुआ अपने जीवन में लगभग 250 केंचुए पैदा करने की क्षमता रखता है। नवजात केंचुआ लगभग 6-8 सप्ताह पर प्रजननशील अवस्था में आ जाता है। प्रतिदिन एक केंचुआ लगभग अपने भार के बराबर मिट्टी खाकर कम्पोस्ट में परिवर्तित कर देता है। एक कि.ग्रा. केंचुए एक वर्गमीटर क्षेत्र में 45 किलोग्राम अपघटनशील पदार्थों से 25 से 30 कि.ग्रा. वर्मीकम्पोस्ट 60 से 70 दिनों में तैयार कर देते हैं।

परिचय : खाद्य अपशिष्ट को वर्मी डाइजेस्टर में डालकर निर्मित वर्मीकम्पोस्ट (केंचुआ खाद) केंचुआ कृषकों का मित्र और 'भूमि की आंत कहा जाता है। यह सेन्द्रिय पदार्थ (ऑर्गेनिक पदार्थ), ह्यूमस व मिट्टी को खाकर ज़मीन के अंदर अन्य परतों में फैलाता है इससे ज़मीन पोली होती है और हवा का श्रवण बढ़ जाता है, और जलधारण की क्षमता भी बढ़ जाती है। केंचुए के पेट में जो रासायनिक क्रिया व सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रिया होती है, उसके भूमि में पाए जाने वाले नत्रजन, स्फुर (फॉस्फोरस), पोटाश, कैल्शियम व अन्य सूक्ष्म तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है। ऐसा पाया गया है कि मिट्टी में नत्रजन 7 गुना, फास्फोरस 11 गुना और पोटाश 14 गुना बढ़ जाता है।

केंचुए अकेले ज़मीन को सुधारने और उत्पादकता बढ़ाने में सहायक नहीं होते हैं बल्कि उनके साथ सूक्ष्म जीवाणु, सेन्द्रित पदार्थ, ह्यूमस इनका कार्य भी महत्वपूर्ण है।

केंचुए सेन्द्रिय पदार्थ, और मिट्टी खाने वाले जीव हैं जो सेप्रोफेगस वर्ग में आता है। इस वर्ग में दो प्रकार के केंचुए होते हैं : -

(1) **डेट्रीटीव्होरस** - डेट्रीटीव्होरस ज़मीन के ऊपरी सतह पर पाया जाता है। ये लाल चाकलेटी रंग, चपटी पूंछ के होते हैं इनका मुख्य उपयोग खाद बनाने में होता है। ये ह्यूमस फमर केंचुए कहे जाते हैं।

(2) **जीओफेगस** - जीओफेगस केंचुए ज़मीन के अंदर पाए जाते हैं। ये रंगहीन बंद रहते हैं। ये ह्यूमस और मिट्टी का मिश्रण बनाकर ज़मीन पोली करते हैं।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि

केंचुओं का चयन: वर्मीकम्पोस्टिंग में केंचुओं की उन प्रजातियों का चयन किया जाता है जिन में प्रजनन व वृद्धि दर तीव्र हो, प्राकृतिक तापमान के उतार चढ़ाव सहने की क्षमता हो तथा कार्बनिक पदार्थों को शीघ्रता से कम्पोस्ट में परिवर्तित करने की क्षमता हो। उदाहरणतया आइसीनियाँफीटिडा, यूडिलस, यूजेनी तथा पेरियोनिक्स एक स्केवेटस। उन्ना वजन पद के आस-पास के क्षेत्रों में आइसीनियाँफीटिडा वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए उपयोगी पाये गये हैं।

वर्मीकम्पोस्टिंग योग्य पदार्थ : इस प्रक्रिया के लिए समस्त प्रकार के जैव-क्षतिशील कार्बनिक पदार्थ जैसे गाय, भैंस, भेड़, गधा, सूअर तथा मुर्गियों आदि का मल, बायो गैस स्लरी, शहरी कूड़ा, प्रौद्योगिक खाद्यान्न व्यर्थ पदार्थ, फसल अवशेष, घास-फूस व पत्तियाँ, रसोई घर का कचरा आदि का उपयोग किया जा सकता है।

कम्पोस्टिंग: कम्पोस्टिंग किसी भी प्रकार के पात्र जैसे मिट्टी या चीनी के बर्तन, वाशवेसिन, लकड़ी के बक्से, सीमेन्ट के टैंक इत्यादि में किया जा सकता है। गड्ढों या बेड की लम्बाई-चौड़ाई उपलब्ध स्थान के अनुसार निर्धारित करें। इनकी गहराई या ऊंचाई 50 सैं.मी. से अधिक न रखें। कम्पोस्टिंग के लिए सब से नीचे की सतह 5 सैं.मी. मोटे कचरे (घास-फूस, केले के पत्ते , नारियल के पत्ते, फसलों के डंठल आदि) की तह बिछायें। इसे तह पर सड़े हुए गोबर की 5 सैं.मी. की तह बनायें तथा पानी छिड़क 1000-1500 केंचुए प्रतिमीटर की दर से छोड़ें। इसके ऊपर सड़ा गोबर और विभिन्न व्यर्थ पदार्थ जिन से खाद बनाना चाहते (10:3 के अनुपात में) आंशिक रूप से सड़ाने के बाद डालें तथा टाट या बोरी से ढक दें। इस पर पानी का प्रतिदिन आवश्यकतानुसार छिड़काव करें ताकि नमी का स्तर 40 प्रतिशत से ज़्यादा रहे। कम्पोस्टिंग हेतु छायादार स्थान का चुनाव करें जहाँ पानी न ठहरता हो।

कम्पोस्ट एकत्रीकरण : साधारणतया 60 से 70 दिन में कम्पोस्ट बनकर तैयार हो जाती है। इस अवस्था में पानी देना बन्दकर दें जिस से केंचुए नीचे चले जायें। तब कम्पोस्ट को एकत्रकर, छानकर केंचुए अलग करें तथा छाया में सुखाकर प्लास्टिक की थैलियों में भर कर सील कर दें।

वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग

- वर्मीकम्पोस्ट को खेत तैयार करते समय मिट्टी में मिलायें।
- खाद्यान्न फसलों में वर्मीकम्पोस्ट 5 टन/हैक्टेयर की दर से उपयोग करें।
- सब्जी वाली फसलों में वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग 10-12 टन प्रति हैक्टेयर करें।
- फलदार वृक्षों में 1 से 10 किग्रा. आयु व आवश्यकतानुसार तने के चारों तरफ घेरा बनाकर डालें।
- गमलों में 100 ग्राम प्रति गमले की दर से उपयोग करें।

वर्मीकम्पोस्ट के लाभ

1. वर्मीकम्पोस्ट, सामान्य कम्पोस्टिंग विधि से एक तिहाई समय (2 से 3 माह) में ही तैयार हो जाता है।
2. वर्मीकम्पोस्ट में गोबर की खाद (एफ.वाई.एम.) की अपेक्षा नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश तथा अन्य सूक्ष्म तत्व अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।
3. वर्मीकम्पोस्ट के सूक्ष्मजीव, एन्जाइम्स, विटामिन तथा वृद्धि वर्धक हार्मोन प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।
4. केंचुआ द्वारा निर्मित खाद को मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की उपजाऊ एवं उर्वरा शक्ति बढ़ती है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव पौधों की वृद्धि पर पड़ता है।
5. वर्मीकम्पोस्ट वाली मिट्टी में भू-क्षरण कम होता है तथा मिट्टी की जलधारण क्षमता में सुधार होता है।
6. खेतों में केंचुओं द्वारा निर्मित खाद के उपयोग से खरपतवार व कीड़ों का प्रकोप कम होता है तथा पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ती है।
7. वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से फसलों पर रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों की मांग कम होती है जिससे किसानों का इन पर व्यय कम होता है।
8. वर्मीकम्पोस्ट से प्राकृतिक संतुलन बना रहता है, साथ ही भूमि, पौधों या अन्य प्राणियों पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता।

वर्मीकम्पोस्टिंग में विशेष सावधानियां

- आंशिक रूप से सड़े कार्बनिक व्यर्थ पदार्थों का उपयोग ही करें क्योंकि इस कम्पोस्टिंग प्रकिया में तेज़ी आती है।
- कम्पोस्टिंग बेड में मौसम के अनुसार नमी का स्तर बनाए रखें।
- कम्पोस्टिंग बेड या गड्ढे को धूप व वर्षा से बचायें।
- कल्चर बेड को जूट की बोरी या पुआल से ढककर रखें।

निष्कर्ष : इस तरह आप अपने पौधों, सब्जियों और फसल के लिए छोटे और बड़े स्तर पर केंचुआ खाद तैयार कर सकते हैं। इसके इलावा अपनी भूमि को भी रासायनिक और कीटनाशकों के दोहन से बचा सकते हैं।

बाजरा खाने के बेमिसाल फायदे

- संतोष रानी, पूनम यादव[1] एवं संदीप भाकर
कृषि विज्ञान केंद्र, फतेहाबाद
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

पुराने ज़माने में लोग मोटा अनाज जैसे जौ, चना, बाजरा खाना पसंद करते थे, लेकिन अब समय बदल गया है। आज की पीढ़ियों के लोग सिर्फ गेंहू से बनी रोटी ही खाना पसंद करते हैं, क्योंकि वह नहीं जानते कि पहले वाले इन मोटे अनाजों में कितनी पौष्टिकता होती थी। बाजरा भी उन्हीं में से एक है, जिसको खाने से ढेरों फायदे होते हैं। भले ही लोग बाजरा खाने से कतराते हों, लेकिन शायद वह इस बात से बेखबर हैं कि इसमें अन्य अनाजों की अपेक्षा प्रोटीन और आयरन प्रचुर मात्रा में होता है। इसमें वह सभी गुण होते हैं, जिससे स्वास्थ्य ठीक रहता है। डॉक्टर भी इस बात को मानते हैं कि अन्य अनाजों की अपेक्षा बाजरा में प्रोटीन, आयरन, ज़िंक, कैल्शियम की मात्रा ज़्यादा होती है। स्वस्थ शरीर के लिए बाजरा में सारे तत्व पाए जाते हैं। इसलिए आप अगर बाजरा की रोटी खाना पसंद नहीं करते हैं तो अब पंसद करना शुरू कर दीजिए, क्योंकि इससे आप के शरीर को कई पोषक तत्व मिलेंगे, जिनसे आप स्वस्थ रहते हैं।

ग्रामीण इलाकों में जाड़ों में बाजरा से बनी रोटी व टिक्की को सबसे ज़्यादा पसंद किया जाता है। क्योंकि बाजरा प्राकृतिक रूप से गरम होता है। इसको खाने से गठिया, बाव, दमा और आर्थराइटिस जैसी समस्या नहीं होती है। तो आईये जानते हैं बाजरे से मिलने वाले इसके कई और मुख्य फायदों के बारे में जिनसे आपकी बड़ी परेशानियां कम हो सकती हैं।

- बाजरे की रोटी का स्वाद जितना अच्छा है, उससे अधिक उसमें गुण भी हैं।
- बाजरे की रोटी खाने से सेहत स्वस्थ रहती है, अगर गेहूं या फिर चावल की बात करें तो बाजरे में ऊर्जा का स्तर उनसे कई गुणा ज़्यादा पाया जाता है। बाजरे में कैल्शियम भरपूर होता है, जिससे हड्डियों की परेशानी दूर होती है।
- बाजरे की रोटी खाने वाले को हड्डियों में कैल्शियम की कमी से पैदा होने वाला रोग आस्टियोपोरोसिस और हड्डियों के रोग नहीं होंगे। बाजरे में भरपूर कैल्शियम होता है, जो हड्डियों के लिए रामबाण औषधि है। खासतौर पर गर्भवती महिलाओं को कैल्शियम की गोलियां खाने के स्थान पर रोज़ बाजरे की दो रोटी खानी चाहिएं।
- बाजरे में आयरन भी इतना अधिक होता है कि खून की कमी या खून की कमी से होने वाले रोग एनीमिया भी नहीं होते हैं।
- इतना ही नहीं बाजरे का सेवन करने वाली महिलाओं में प्रसव में असामान्य पीड़ा के मामले भी न के बराबर पाए गए।
- बाजरा लीवर से संबंधित रोगों को भी कम करता है। लीवर की सुरक्षा के लिए भी बाजरा खाना लाभकारी है।
- डाक्टर तो बाजरे के गुणों से इतने प्रभावित हैं कि इसे अनाजों में 'वज्र' की उपाधि देने में जुट गए हैं।
- बाजरे का किसी भी रूप में सेवन लाभकारी है।
- उच्च रक्तचाप, हृदय की कमज़ोरी, अस्थमा से ग्रस्त लोगों तथा दूध पिलाने वाली माताओं में दूध की कमी के लिये यह टॉनिक का कार्य करता है।
- यदि बाजरे का नियमित रूप से सेवन किया जाय तो यह कुपोषण, क्षरण सम्बन्धी रोग और असमय वृद्ध होने की प्रक्रियाओं को दूर करता है।
- बाजरे की खपत से शरीर प्राकृतिक रूप से शान्त होता है। यह एंग्जायटी, डिप्रेशन और नींद न आने की बीमारियों में फायदेमन्द होता है। यह माइग्रेन के लिये भी लाभदायक है।
- इसमें लेसिथिन और मिथियोनिन नामक अमीनो अम्ल होते हैं जो अतिरिक्त वसा को हटा कर कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को कम करते हैं।
- बाजरे में उपस्थित रसायन पाचन की प्रक्रिया को धीमा करते हैं। डायबिटीज में यह रक्त में शक्कर की मात्रा को नियन्त्रित करने में सहायक होता है।
- बाजरे को किसी भी रूप में खाया जा सकता है। आप चाहें तो बाजरे की खिचड़ी, चाट बाजरा राब, बाजरे की पूरी, बाजरे की मीठी घुघरी, पकोड़े, कचोरी चाट, बाटी, मठरी, हलवा, बर्फी, बिस्कुट, केक, बाजरे के लड्डू आदि के रूप में बना के खा सकते हैं। ।

[1]कृषि विज्ञान केंद्र, महेंद्रगढ़

(पृष्ठ 22 का शेष)

बिजाई एक लाभकारी विकल्प हो सकता है। धान आधारित फसल चक्र को अधिक लाभकारी बनाने के लिये कम अवधि के धान के बाद आलू व मक्का या सूरजमुखी को शामिल किया जा सकता है। सिंधु-गंगा के मैदानी इलाकों में धान-गेहूँ फसल प्रणाली का अन्य फसलों के साथ सघनीकरण करने से पारम्परिक धान-गेहूँ फसल चक्र की अपेक्षा अधिक उत्पादकता व शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है। गन्ने की फसल को अक्तूबर माह में अन्त:वर्तीय फसलों (गेहूँ, सरसों, प्याज़, लहसुन, धनिया व अन्य दलहनी व तिलहनी फसलें इत्यादि) के साथ सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। ऐसा करने से गन्ने के उत्पादन के अलावा फसलों से अतिरिक्त आय भी प्राप्त हो जाती है। अत: गन्ने के साथ फसलें उगाकर दोहरा लाभ प्राप्त करके गन्ना आधारित फसल चक्रों को अधिक टिकाऊ बनाया जा सकता है।

मल्चिंग

ज़मीन की सतह पर फसल अवशेष छोडने से उगने वाले खरपतवारों को भौतिक बाधा उत्पन्न होती है। ज़ीरो-टिलेज विधि (फसल अवशेषों के साथ) खरपतवारों के बीजों को खाने वाले परभक्षियों की मात्रा को बढ़ावा देती है जोकि खरपतवार के बीज भंड़ार को कम करने में सहायक होते हैं। धान के फसल अवशेष गेहूँ की फसल में मंडूसी (फ्लेरिस माइनर) के अंकुरण एवं वृद्धि को रोकते हैं।

स्टेल बीज शय्या तकनीक

इस तकनीक का प्रयोग धान की सीधी बुवाई वाले क्षेत्रों में खरपतवार को कम करने के लिए किया जाता है। इस विधि में धान की बुवाई के एक महीने पहले एक या दो सिंचाई देकर खरपतवार के बीजों को उगने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और उसके बाद गैर चयनात्मक शाकनांशक का छिड़काव बुवाई के 5-7 दिन पहले करके मार दिया जाता है। इस विधि से पिछले सत्र के स्वयंसेवक धान (वोल्यूटर राइस) एवं जंगली धान को भी नियंत्रित किया जा सकता है। ।

फसल अवशेष प्रबन्धन

- **अभिलाष सिंह मौर्य, सूबे सिंह[1] एवं जोगिन्दर सिंह मलिक**
प्रसार शिक्षा विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हमारे देश में सामान्य तौर पर यह देखा गया है कि फसलों के अवशेषों का उचित प्रबन्धन करने पर न ही किसान भाइयों द्वारा और न ही सरकारों द्वारा कोई विशेष ध्यान दिया जाता है या कह सकते हैं कि फसलावशेषों का उपयोग मृदा मे कार्बनिक जीवांश पदार्थ तथा नाइट्रोजन इत्यादि की मात्रा बढ़ाने के लिए नहीं किया जाता है बल्कि इनका अधिकतर हिस्सा दूसरे घरेलू उपयोग में किया जाता है या फिर उन्हें विभिन्न तरीकों से नष्ट कर दिया जाता है। पिछले कुछ वर्षों में एक समस्या मुख्य रूप से देखी जा रही है कि जहां हार्वेस्टर के द्वारा फसलों की कटाई की जाती है उन खेतों में फसलों के तनों का अधिकतर भाग खेत में छूट जाता है और खड़े रह जाते हैं ठूंठ जिसे किसानों द्वारा आग लगाकर जला दिया जाता है। जिसका तत्कालिक प्रभाव यह होता है कि देश के अनेक प्रदेशों मे धुन्ध छाने की समस्या अत्यधिक बढ़ जाती है। मौसम वैज्ञानिक इसका मुख्य कारण खेतों मे बचे हुए अवशेषों को जलाना मान रहे हैं। जबकि यदि इन बचे हुए फसलावशेषों को सही ढंग से खेती में ही उपयोग कर लिया जाये तो इसके द्वारा हम पोषक तत्वों तथा जीवांश पदार्थो के एक बहुत बड़े अंश की पूर्ति कर सकते हैं।

फसलावशेषों को न जलाने के लाभ

- एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन के घटक के रूप में फसलावशेषों के उपयोग के फलस्वरूप मृदा में कार्बनिक पदार्थो की बढ़ोत्तरी से मृदा में प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले विभिन्न जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ती है जिससे मृदा की उत्पादन क्षमता तथा उत्पाद की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।
- फसलावशेषों के उचित प्रबन्धन से वातावरण में उत्पन्न होने वाली विभिन्न विपरीत परिस्थितियों से बचा जा सकता है।
- दलहनी फसलों के फसल अवशेष मृदा में नाइट्रोजन तथा अन्य पोषक तत्वों की मात्रा को बढ़ाने में सहायक होती है।
- फसलों के अवशेषों का उपयोग कम्पोस्ट खाद बनाने में सहायक होती है जो कि मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं में लाभदायक होती है।
- पादप अवशेषों का उपयोग मल्च या आवरण के रूप में करने से मृदा जल संरक्षण के साथ-साथ फसलों को खरपतवारों से भी बचाने में सहायक होती है।
- मृदा के जीवांश पदार्थो में हो रहे लगातार ह्रास को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।
- मृदा जलधारण क्षमता तथा मृदा वायु संचार में बढ़ोत्तरी होती है।
- मृदा संरचना में सुधार होता है।

फसल अवशेष को जलाने पर हानियां

- फसलों के अवशेषों को जलाने से उनके जड़, तना तथा पत्तियों में उपस्थित लाभदायक पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं।
- फसलों के अवशेषों को जलाने से मृदा के तापमान में वृद्धि होती है जिसके कारण मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
- पादप अवशेषों के साथ-साथ लाभदायक कीट भी जलकर मर जाते हैं जिसके कारण वातावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
- पशुओं के चारे की व्यवस्था प्रभावित होती है।
- जहाँ पर कम्बाइन का प्रयोग फसलों की कटाई के लिए किया जाता है वहां पर फसलों के अवशेष डंठल के रूप में खड़े रह जाते हैं एवं उनके जलाने पर नज़दीक के किसानों की फसलों में तथा आबादी में आग लगने की सम्भावना बनी रहती है।
- वायु प्रदूषण से किसान, उनके परिवार तथा अन्य गाँव वासी आँख तथा साँस के रोगों से ग्रसित हो जाते हैं।

फसल अवशेषों को जलाने पर दण्ड

माननीय राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण ने फसल के अवशेषों को जलाना एक दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया है। फसलावशेषों को जलाने पर निम्नलिखित दण्ड अथवा सज़ा का प्रावधान किया गया है :

- कृषि भूमि का क्षेत्र 02 एकड़ से कम होने की दशा में आर्थिक दण्ड रुपये 2500/- प्रति घटना।
- कृषि भूमि का क्षेत्र 02 एकड़ से अधिक किन्तु 05 एकड़ से कम होने की दशा में आर्थिक दण्ड रुपये 5000/- प्रति घटना।
- कृषि भूमि का क्षेत्र 05 एकड़ से अधिक होने की दशा में आर्थिक दण्ड रुपये 15000/- प्रति घटना।
- कम्बाइन हार्वेस्टिंग मशीन का रीपर के बिना प्रयोग पूर्णतया प्रतिबन्धित कर दिया गया है।
- कृषि अवशेषों के जलाये जाने की पुनरावृत्ति होने की दशा में (लगातार दो घटनायें होने की दशा में) सम्बन्धित किसानों को सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली समस्त सुविधाएं यथा सब्सिडी इत्यादि से वंचित किये जाने की कार्यवाही का निर्देश राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण नई दिल्ली द्वारा दिए गए हैं।

फसल अवशेषों को उपयोग करने के तरीके

फसल अवशेषों का प्रबन्ध करना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे न सिर्फ हम ज़मीन में जीवांश पदार्थ की मात्रा में वृद्धि कर मृदा को भविष्य में खेती योग्य सुरक्षित रख सकते हैं अपितु पर्यावरण प्रदूषण तथा साँस से सम्बन्धित बीमारियों को भी कम कर सकते हैं।

- फसल अवशेषों का खेत पर ही उचित प्रबन्धन करने के लिए रोटावेटर जैसी मशीनों का उपयोग करना चाहिए, जिससे खेत को तैयार करते समय एक बार में ही समस्त फसलावशेषों को बारीक टुकड़ों मे काटकर मिट्टी मे आसानी से मिलाया जा सकता है।
- फसल अवशेषों के उचित प्रबन्धन के लिए आवश्यक है कि अवशेष को खेत में जलाने की अपेक्षा उनसे कम्पोस्ट तैयार करके खेत में प्रयोग किया जाये। उन क्षेत्रों मे जहाँ चारे की कमी नहीं होती वहाँ मक्का, ज्वार, बाजरा इत्यादि की कड़वी तथा धान के पुआल एवं गेहूं के भूसे को खेत में ढेर बनाकर खुला छोड़ने के बजाय गड्ढों में कम्पोस्ट बनाकर उपयोग करना चाहिए।
- कृषकों द्वारा खरीफ, रबी तथा जायद की फसलों की कटाई तथा मड़ाई के उपरान्त जड़, तना तथा पत्तियों के रूप में पादप अवशेष भूमि के अन्दर एवं भूमि के ऊपर उपलब्ध रह जाते हैं। इनको यदि लगभग 20 किग्रा यूरिया प्रति एकड़ की दर से मिट्टी पलटने वाले हल अथवा

(शेष पृष्ठ 28 पर)

[1]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

चारा फसलों में एच.सी.एन. विषाक्तता

- राजेश कथवाल, के. डी. शर्मा एवं सतपाल[1]
रामधन बीज फार्म
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सुडान घास, ज्वार और लोट्स प्रजाति जैसे और सफेद क्लोवर में प्राकृतिक रूप से सायनोजेनिक ग्लूकोसाइड होते हैं। जब पशु चरते हैं या फिर घास को काटा जाता है, ऐसे में पौधों के ऊतक टूट जाते हैं, ऐसा होने से काफी मात्रा में हाइड्रोसायनाइड एसिड या एच.सी.एन. उत्पन्न होता है। पशु जुगाली करने वाले पशु एच.सी.एन. विषाक्तता से ज़्यादा प्रभावित होते हैं, क्योंकि इनके पेट में उपस्थित सूक्ष्म जीव ग्लूकोसाइड को तोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एच.सी.एन. रक्त में तुरन्त घुल जाता है और शरीर के सारे ऊतकों में मिल जाता है। कोशिकीय रेस्पिरेशन में सायटोक्रोम ऑक्सीडेस किण्वक (एंजाइम) होता है। इस किण्वक के साथ एच.सी.एन. एक जटिल अक्रियशील कम्पलैक्स बना लेता है और इस कारण से कोशिकीय स्तर पर एच.सी.एन. ऐसफिक्शेसन पैदा कर देता है। ऐसी अवस्था में ऊर्जा का निर्माण होना बंद हो जाता है और ऊतक मरने लगते हैं। 20 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम शुष्क पादप ऊतकों में एच.सी.एन. की मात्रा को घातक माना जाता है। एच.सी.एन. की मात्रा विषम वातावरण की परिस्थितियों में, खास कर सूखा पड़ने पर, या फिर पाला पड़ने के बाद पौधे में बढ़ जाती है। इसके बढ़ने का दूसरा कारण अत्यधिक मात्रा में नाइट्रोजन का प्रयोग करना है।

भारत में 120 से ज़्यादा पौधे ऐसे हैं जो सायनोजेनेटिक ग्लुकोसाइड होते हैं। चारा फसलों में गुणवत्ता के मुख्य कारक उपलब्ध प्रोटीन की मात्रा, पाचनशीलता व विषैले तत्वों का निम्मतम स्तर में होना है। चारा फसलों में पाए जाने वाले विषैले तत्व वे तत्व हैं जो स्वयं या उनके मैटाबोलिक उत्पाद् के उपयोग में बाधा करते हैं एवं पशुओं के स्वास्थ्य को भी नुकसान पहुँचाते हैं। इन विषैले तत्वों की सामान्य विशेषताएं इस प्रकार हैं : 1. गौण – चयउदय के उत्पाद्। 2. सभी पौधों में कुछ मात्रा में विद्यमान रहते हैं। 3. कुछ तत्व चारे में आम रूप से मिलते हैं। 4. रक्षात्मक कार्य। 5. कड़वे, रंगीन, ज़हरीले, गंधनीय, अपोषक और प्रतिरोधक क्षमता को हानि पहुँचाने वाले।

19वीं पशुगणना के अनुसार हमारे देश में 512 मिलियन पशुधन है, जिसके लिए वर्ष 2012 के आँकड़ों के अनुसार देश में 61 प्रतिशत हरे चारे व 21 प्रतिशत् सूखे चारे की कमी है। अत: सफल डेयरी प्रबन्धन के लिए उचित मात्रा में हरे व सूखे चारे का उपलब्ध होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि गुणवत्तापूर्ण चारा भी आवश्यक है।

एच.सी.एन के विषैलेपन को कम करने की व्यवस्था

पशुओं के भूखा होने पर तुरन्त ज्वार का हरा चारा न खिलाएं बल्कि पहले सूखा चारा दें। यदि पशुओं को ज्वार के खेत में चरने के लिए छोड़ना हो तो दोपहर बाद खोलें। जब तक चारा 18 से 24 इंच की बढ़वार तक न हो तब तक पशुओं को चारा न दें। पशुओं को ज्वार को फूल आने तक की अवस्था पर खिलाना चाहिए या तब दें जब ज्वार प्रौढ़ हो जाए। पाला पड़ा ज्वार, आधा पका ज्वार या सूखा ज्चार पशुओं को नहीं खिलाना चाहिए, क्योंकि ऐसे ज्वार में सायनोजेनिक ग्लुकोसाइड की मात्रा अत्यधिक होती है। पशुओं को सल्फर चटाना चाहिए। इससे एच.सी.एन. की विषाक्तता कम हो जाती है। पशुओं को गुड़ खिलाने से भी आराम मिलता है। ये पशु एच.सी.एन. की दी गई मात्रा को झेलने में सक्षम हैं :

पशु	मिलीग्राम प्रति किलोग्राम प्रतिदिन
सूअर	2.9
पोल्ट्री	2.8
रूमीनेन्ट (बकरियों पर आधारित शोध के अनुसार)	0.25
घोड़ा	0.4

[1]चारा अनुभाग, आनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

जल का जीवन में महत्व और बचत के उपाय

- अमनदीप सिंह, नरेंद्र कुमार एवं सूबेसिंह[1]
कृषि अभियांत्रिक एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आधारभूत पंचतत्वों में से एक जल हमारे जीवन का आधार है। जल के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। इसलिये कवि रहीम ने कहा है– ''रहिमन पानी राखिये बिना पानी सब सून। पानी गये न उबरै मोती मानुष चून।'' यदि जल न होता तो सृष्टि का निर्माण सम्भव न होता। यही कारण है कि यह एक ऐसा प्राकृतिक संसाधन है जिसका कोई मोल नहीं है। जीवन के लिये जल की महत्ता को इसी से समझा जा सकता है कि बड़ी-बड़ी सभ्यताएँ नदियों के तट पर ही विकसित हुईं और अधिकांश प्राचीन नगर नदियों के तट पर ही बसे। जल की उपादेयता को ध्यान में रखकर यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम न सिर्फ जल का संरक्षण करें बल्कि उसे प्रदूषित होने से भी बचायें। इस सम्बन्ध में भारत के जल संरक्षण की एक समृद्ध परम्परा रही है और जीवन के बनाये रखने वाले कारक के रूप में हमारे वेद-शास्त्र जल की महिमा से भरे पड़े हैं। ऋग्वेद में जल को अमृत के समतुल्य बताते हुए कहा गया है– अप्सु अन्त: अमृतं अप्सु भेषनं।

जल की संरचना – पूर्णत: शुद्ध जल रंगहीन, गंधहीन व स्वादहीन होता है। इसका रासायनिक सूत्र H_2O है। ऑक्सीजन के एक परमाणु तथा हाइड्रोजन के दो परमाणु बनने से H_2O अर्थात जल का एक अणु बनता है। जल एक अणु में जहाँ एक ओर धनावेश होता है वहीं दूसरी ओर ऋणावेश होता है। जल की ध्रुवीय संरचना के कारण इसके अणु कड़ी के रूप में जुड़े रहते हैं। वायुमण्डल में जल तरल, ठोस तथा वाष्प तीन स्वरूपों में पाया जाता है। पदार्थों को घोलने की विशिष्ट क्षमता के कारण जल को सार्वभौमिक विलायक कहा जाता है। मानव शरीर का लगभग 66 प्रतिशत भाग पानी से बना है तथा एक औसत वयस्क के शरीर में पानी की कुल मात्रा 37 लीटर होती है। मानव मस्तिष्क का 75 प्रतिशत हिस्सा जल होता है। इसी प्रकार मनुष्य के रक्त में 83 प्रतिशत मात्रा जल की होती है। शरीर में जल की मात्रा शरीर के तापमान को सामान्य बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

जल संकट और भारत – आबादी के लिहाज से विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश भारत भी जल संकट से जूझ रहा है। यहाँ जल संकट की समस्या विकराल हो चुकी है। न सिर्फ शहरी क्षेत्रों में बल्कि ग्रामीण अंचलों में भी जल संकट बढ़ा है। वर्तमान में 20 करोड़ भारतीयों को शुद्ध पेयजल उपलब्ध नहीं हो पाता है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, तमिलनाडु और केरल जैसे राज्यों में जहाँ पानी की कमी बढ़ी है, वहीं राज्यों के मध्य पानी से जुड़े विवाद भी गहराए हैं। भूगर्भीय जल का अत्यधिक दोहन होने के कारण धरती की कोख सूख रही है। जहाँ मीठे पानी का प्रतिशत कम हुआ है वहीं जल की लवणीयता बढ़ने से भी समस्या विकट हुई है। भूगर्भीय जल का अनियंत्रित दोहन तथा इस पर बढ़ती हमारी निर्भरता पारम्परिक जलस्रोतों व जल तकनीकों की उपेक्षा तथा जल संरक्षण और प्रबन्ध की उन्नत व उपयोगी तकनीकों का अभाव, जल शिक्षा का अभाव, भारतीय संविधान में जल के मुद्दे का राज्य

[1]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

सरकारों के अधिकार क्षेत्र में रखा जाना, निवेश की कमी तथा सुचिंतित योजनाओं का अभाव आदि ऐसे अनेक कारण हैं जिसकी वजह से भारत में जल संकट बढ़ा है। भारत में जनसंख्या विस्फोट ने जहाँ अनेक समस्याएँ उत्पन्न की हैं, वहीं पानी की कमी को भी बढ़ाया है। वर्तमान समय में देश की जनसंख्या प्रतिवर्ष 1.5 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। ऐसे में वर्ष 2050 तक भारत की जनसंख्या 150 से 180 करोड़ के बीच पहुँचने की सम्भावना है। ऐसे में जल की उपलब्धता को सुनिश्चित करना कितना दुरूह होगा, समझा जा सकता है। आंकड़े बताते हैं कि स्वतंत्रता के बाद प्रतिव्यक्ति पानी की उपलब्धता में 60 प्रतिशत की कमी आयी है।

जल संरक्षण एवं संचय के उपाय - जल जीवन का आधार है और यदि हमें जीवन को बचाना है तो जल संरक्षण और संचय के उपाय करने ही होंगे। जल की उपलब्धता घट रही है और मारामारी बढ़ रही है। ऐसे में संकट का सही समाधान खोजना प्रत्येक मनुष्य का दायित्व बनता है। यही हमारी राष्ट्रीय ज़िम्मेदारी भी बनती है और हम अन्तरराष्ट्रीय समुदाय से भी ऐसी ही ज़िम्मेदारी की अपेक्षा करते हैं। जल के स्रोत सीमित हैं। नये स्रोत हैं नहीं, ऐसे में जलस्रोतों को संरक्षित रखकर एवं जल का संचय कर हम जल संकट का मुकाबला कर सकते हैं। इसके लिये हमें अपनी भोगवादी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना पड़ेगा और जल के उपयोग में मितव्ययी बनना पड़ेगा। जलीय कुप्रबंधन को दूर कर भी हम इस समस्या से निपट सकते हैं। यदि वर्षाजल का समुचित संग्रह हो सके और जल के प्रत्येक बूँद को अनमोल मानकर उसका संरक्षण किया जाये तो कोई कारण नहीं है कि वैश्विक जल संकट का समाधान न प्राप्त किया जा सके। जल के संकट से निपटने के लिये कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव यहाँ बिन्दुवार दिये जा रहे हैं-

1. प्रत्येक फसल के लिये ईष्टतम जल की आवश्यकता का निर्धारण किया जाना चाहिए तद्नुसार सिंचाई की योजना बनानी चाहिए। सिंचाई कार्यों के लिये स्प्रिंकलर और ड्रिप सिंचाई जैसे पानी की कम खपत वाली प्रौद्योगिकियों को प्रोत्साहित करना चाहिए। कृषि में औसत व द्वितीयक गुणवत्ता वाले पानी के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, विशेष रूप से पानी के अभाव वाले क्षेत्रों में।
2. विभिन्न फसलों के लिये पानी की कम खपत वाले तथा अधिक पैदावार वाले बीजों के लिये अनुसंधान को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
3. जहाँ तक सम्भव हो ऐसे खाद्य उत्पादों का प्रयोग करना चाहिए जिसमें पानी का कम प्रयोग होता है। खाद्य पदार्थों की अनावश्यक बर्बादी में कमी लाना भी आवश्यक है। विश्व में उत्पादित होने वाला लगभग 30 प्रतिशत खाना खाया नहीं जाता है और यह बेकार हो जाता है। इस प्रकार इसके उत्पादन में प्रयुक्त हुआ पानी भी व्यर्थ चला जाता है।
4. जल संकट से निपटने के लिये हमें वर्षाजल भण्डारण पर विशेष ध्यान देना होगा। वाष्पन या प्रवाह द्वारा जल खत्म होने से पूर्व सतह या उपसतह पर इसका संग्रह करने की तकनीक को वर्षाजल भण्डारण कहते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि तकनीक को न सिर्फ अधिकाधिक विकसित किया जाय बल्कि ज़्यादा से ज़्यादा अपनाया भी जाये। यह एक ऐसी आसान विधि है जिसमें न तो अतिरिक्त जगह की ज़रूरत होती है और न ही आबादी विस्थापन की। इससे मिट्टी का कटाव भी रुक जाता है तथा पर्यावरण भी संतुलित रहता है। बंद एवं बेकार पड़े कुँओं, पुनर्भरण पिट, पुनर्भरण खाई तथा पुनर्भरण शॉफ्ट आदि तरीकों से वर्षाजल का बेहतर संचय कर हम पानी की समस्या से उबर सकते हैं।
5. वर्षाजल प्रबंधन और मानसून प्रबंधन को बढ़ावा दिया जाय और इससे जुड़े शोध कार्यों को प्रोत्साहित किया जाये। जल शिक्षा को अनिवार्य रूप से पाठ्यक्रम में जगह दी जाये।
6. जल प्रबंधन और जल संरक्षण की दिशा में जन जागरुकता को बढ़ाने का प्रयास हो। जल प्रशिक्षण को बढ़ावा दिया जाये तथा संकट से निपटने के लिये इनकी सेवाएँ ली जाएं।
7. पानी के इस्तेमाल में हमें मितव्ययी बनना होगा। छोटे-छोटे उपाय कर जल की बड़ी बचत की जा सकती है। मसलन हम दैनिक जीवन में पानी की बर्बादी कतई न करें और एक-एक बूँद की बचत करें। बागवानी जैसे कार्यों में भी जल के दुरुपयोग को रोकें।
8. औद्योगिक विकास और व्यावहारिक गतिविधियों की आड़ में जल के अंधाधुंध दोहन को रोकने के लिये तथा इस प्रकार से होने वाले जल प्रदूषण को रोकने के लिये कड़े व पारदर्शी कानून बनाये जाएँ।
9. जल संरक्षण के लिये पर्यावरण संरक्षण ज़रूरी है। जब पर्यावरण बचेगा तभी जल बचेगा। पर्यावरण असंतुलन भी जल संकट का एक बड़ा कारण है। इसे इस उदाहरण से समझ सकते हैं। हिमालय पर्यावरण के कारण सिकुड़ने लगे हैं। विशेषज्ञों के अनुसार सन 2030 तक ये ग्लेशियर काफी अधिक सिकुड़ सकते हैं। इस तरह हमें जल क्षति भी होगी। पर्यावरण संरक्षण के लिये हमें वानिकी को नष्ट होने से बचाना होगा।
10. हमें ऐसी विधियाँ और तकनीकें विकसित करनी होंगी जिनसे लवणीय और खारे पानी को मीठा बनाकर उपयोग में लाया जा सके। इसके लिये हमें विशेष रूप से तैयार किये गये वाटर प्लांटों को स्थापित करना होगा। चेन्नई में यह प्रयोग बेहद सफल रहा जहाँ इस तरह स्थापित किये गये वाटर प्लांट से रोज़ाना 100 मिलियन लीटर पानी पीने योग्य पानी तैयार किया जाता है।
11. प्रदूषित जल का उचित उपचार किया जाय तथा इस उपचारित जल की आपूर्ति औद्योगिक इकाईयों को की जाये।
12. जल प्रबंधन व शोध कार्यों के लिये निवेश को बढ़ाया जाये।
13. जनसंख्या बढ़ने से जल उपभोग भी बढ़ता है ऐसे में विशिष्ट जल उपलब्धता (प्रतिव्यक्ति नवीनीकृत जल संसाधन की उपलब्धता) कम हो जाती है। अत: इस परिप्रेक्ष्य में हमें जनसंख्या पर भी ध्यान देना होगा।
14. हमें पानी के कुशल उपयोग पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। जल वितरण में असमानता को दूर करने के लिये जल कानून बनाने होंगे।

जल संचय की विधियां

1. **नलकूपों द्वारा रिचार्जिंग** - छत से एकत्र पानी को स्टोरेज टैंक तक पहुँचाया जाता है। स्टोरेज टैंक का फिल्टर किया हुआ पानी नलकूपों तक पहुँचाकर गहराई में स्थित जलवाही स्तर को रिचार्ज किया जाता है। उपयोग न किये जाने वाले नलकूप से भी रिचार्ज किया जा सकता है।
2. **गड्ढे खोदकर** - ईंटों के बने ये किसी भी आकार के गड्ढे का मुँह पक्की फर्श से बंद कर दिया जाता है। इनकी दीवारों में थोड़ी-थोड़ी दूर पर सुराख बनाये जाते हैं इसकी तलहटी में फिल्टर करने वाली

वस्तुएँ डाल दी जाती हैं।

3. **सोक वेज या रिचार्ज शाफ्ट्स** – इनका उपयोग वहाँ किया जाता है जहाँ मिट्टी जलोढ़ होती है। इसमें 30 सैं.मी. व्यास वाले 10 से 15 मीटर गहरे छेद बनाये जाते हैं, इसके प्रवेश द्वार पर जल एकत्र करने के लिये एक बड़ा आयताकार गड्ढा बनाया जाता है। इसका मुँह पक्की फर्श से बन्द कर दिया जाता है। इस गड्ढे में बजरी, रोड़ी, बालू, इत्यादि डाले जाते हैं।
4. **खोदे कुएँ द्वारा रिचार्जिंग** – छत के पानी को फिल्ट्रेशन बेड से गुजारने के बाद कुओं तक पहुँचाया जाता है। इस तरीके में रिचार्ज गति को बनाये रखने के लिये कुएँ की लगातार सफाई करनी होती है।
5. **खाई बनाकर** – जिस क्षेत्र में ज़मीन की ऊपरी पर्त कठोर और छिछली होती है वहाँ इसका उपयोग किया जाता है। ज़मीन पर खाई खोदकर उसमें बजरी, ईट के टुकड़े आदि को भर दिया जाता है। यह तरीका छोटे मकानों, खेल के मैदानों, पार्कों इत्यादि के लिये उपयुक्त होता है।
6. **रिसाव टैंक** – ये कृत्रिम रूप से सतह पर निर्मित जल निकाय होते हैं। बारिश के पानी को यहाँ जमा किया जाता है। इससे संचित जल रिसकर धरती के भीतर जाता है। जिससे भूजलस्तर ऊपर उठता है। संग्रहीत जल को सीधे बागवानी इत्यादि कार्यों में प्रयोग किया जा सकता है। रिसाव टैंकों को बगीचों, खुले स्थानों और सड़क के किनारे हरित पट्टी क्षेत्र में बनाया जाना चाहिए।
7. **सरफेस रनऑफ हार्वेस्टिंग** – शहरी क्षेत्रों में सतह माध्यम से पानी बहकर बेकार हो जाता है। इस बहते जल को एकत्र करके कई माध्यम से धरती के जलवाही स्तर को रिचार्ज किया जाता है।
8. **रूफ टॉप रेनवाटर हार्वेस्टिंग** – इस प्रणाली के तहत वर्षा का पानी जहाँ गिरता है वहीं उसे एकत्र कर लिया जाता है। रूफ टॉप हार्वेस्टिंग में घर की छत ही कैचमेन्ट क्षेत्र का काम करती है। बारिश के पानी को घर की छत पर ही एकत्र किया जाता है। इस पानी को या तो टैंक में संग्रह किया जाता है या फिर इसे कृत्रिम रिचार्ज प्रणाली में भेजा जाता है। यह तरीका कम खर्चीला और अधिक प्रभावकारी है।

वास्तव में आज की ज़रूरत है कि हम वर्षाजल का पूर्ण रूप से संचय करें। यह ध्यान रखना होगा कि बारिश की एक भी बूँद व्यर्थ न जाए। इसके लिये रेन वॉटर हार्वेस्टिंग एक अच्छा माध्यम हो सकता है। आवश्यकता है इसे और विकसित व प्रोत्साहित करने की। इसके प्रति जनजागृति और जागरूकता को बढ़ाना भी समाज की आवश्यकता है। ।

(पृष्ठ 25 का शेष)

रोटावेटर की सहायता से जुताई/पलेवा के समय मिला देने से पादप अवशेष लगभग 20 से 30 दिन के अन्दर ज़मीन में सड़ जाते हैं जिससे मृदा में कार्बनिक पदार्थों एवं अन्य तत्वों की बढ़ोत्तरी होती है जिसके परिणामस्वरूप फसलों के उत्पादन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

- गेहूं के भूसे तथा धान के पुआल के भूसे का उपयोग मशरूम उत्पादन में सफलतापूर्वक किया जा सकता है।
- बाजरा, ज्वार, मक्का इत्यादि के हरी कड़बी का उपयोग हे (Hay) तथा साइलेज (Silage) बनाने में किया जा सकता है। ।

ढींगरी खुम्ब उत्पादनः एक लाभकारी व्यवसाय

- **मीनू[1], रूमी रावल एवं स्वाति मेहरा**
खाद्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी केंद्र
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

खुम्बी एक पौष्टिक आहार है जिसमें प्रोटीन, खनिज लवण तथा विटामिन जैसे पोषक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। इसमें वसा तथा कार्बोहाइड्रेट की कम मात्रा होने के कारण यह हृदय रोगियों तथा मधुमेह के रोगियों के लिए अच्छा आहार है। यह एक प्रकार की फफूँद होती है। इसमें क्लोरोफिल नहीं होता और इसको सीधी धूप की ज़रूरत भी नहीं होती बल्कि इसे बारिश और धूप से बचाकर किसी मकान या झोंपड़ी की छत के नीचे उगाया जाता है जिसमें हवा का उचित आवागमन हो।

ढींगरी एक सीप के आकार की खुम्बी होती है जो कि साधारणत: बड़ी ही आसानी से उगाई जा सकती है। स्वाद व पौष्टिकता में यह किसी भी खुम्बी से कम नहीं है और इसकी खेती भी साल में केवल कुछ महीनों को छोड़कर लगभग सारे साल की जा सकती है। सफेद बटन खुम्बी की तुलना में न केवल इसकी खेती सरल है बल्कि इसकी पैदावार भी ज़्यादा होती है। अधिक उत्पादन होने पर इसको धूप में सुखाकर इसका भंडारण भी किया जा सकता है और इससे अनेक मूल्य-संवर्धित खाद्य पदार्थ भी बनाए जा सकते हैं। इसको किसी भी कमरे या कम लागत की बांस व सरकंडे से बने हुये छप्पर में उगाया जा सकता है। गेहूं या सरसों का भूसा, धान की पुआल, केले का तना आदि को ढींगरी उगाने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।

गेहूँ, सरसों या धान के भूसे को लगभग 10-12 घंटे पानी में भिगो लिया जाता है और दूसरे दिन भूसे या तूड़े को जाली पर रख दिया जाता है जिससे अतिरिक्त पानी निकल जाए। इसके बाद भीगी पुआल या भूसे में दो प्रतिशत स्पान (खुम्बी का बीज) मिलाकर उसको पॉलिथीन के लिफाफों में भर कर कमरे के अंदर किसी आधार पर एक-एक फुट की दूरी पर रखें। लिफाफे 30x45 सैं.मी या 45x60 सैं.मी आकार के हों तथा उनमें 5 से 10 सैं.मी की दूरी पर ½ x 1 सैं.मी. व्यास के छेद हों। पॉलिथीन के थैलों के स्थान पर लकड़ी की पेटी या टोकरी भी ले सकते हैं। कमरे में नमी बनाए रखने के लिए दिन में 2-3 बार साफ पानी का छिड़काव करें। व्यापारिक स्तर पर ढींगरी उत्पादन के लिए भूसे का गरम पानी से उपचार ज़रूर करें। गेहूं के भूसे या धान की पुआल या अन्य किसी तरह के अवशेष को छिद्रित जूट के थैले या बोरे में भरकर रातभर ठंडे पानी में गीला कर लिया जाता है। दूसरे दिन इस गीले भूसे का थैले सहित गरम पानी में (60-65° सेल्सियस) 20-30 मिनट डालकार निकाल लेते हैं। ठंडा होने पर इस भूसे को तारपोलीन या प्लास्टिक शीट पर फैला देते हैं ताकि इससे पानी निचुड़ जाए। यह उपचरित भूसा बिजाई के लिए तैयार है। स्पान डालने के 2-3 दिन बाद तूड़ी या पुआल में सफ़ेद-सफ़ेद धागे से दिखाई देने लग जाते हैं जो लगभग 12-13 दिन में पूरी तरह से फैलकर तूड़ी या पुआल को सफेद व कड़ा बना देते हैं। पॉलिथीन हटाने के बाद जो भूसे के खंड बाहर निकलते हैं उन्हे दोबारा एक-एक फुट की दूरी पर रख दिया जाता है। पहले की तरह कमरे के अंदर नमी रखने के लिए पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए। स्पान मिलने के 21-25 दिन बाद खुम्बी दिखने लगती है तथा 3-4 दिन में ये तोड़ने लायक हो जाती है।

खुम्बी को मुड़ने से पहले तोड़ लेना चाहिए। ढींगरी के उत्पादन में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए : भूसा या पुआल बारिश में भीगी न हो, पॉलिथीन के लिफाफे को ¾ से ज़्यादा न भरें, कमरे का तापमान 20-28° सेल्सियस रहना चाहिए। कम तापमान ज़्यादा नुकसान नहीं करता, कमरे में 80-90 आर्द्रता प्रतिशत होनी चाहिए, भूसा खंडों पर जब भी पानी डालें छिड़काव के रूप में डालें, कमरे में ताज़ी हवा के आने-जाने का प्रबंध होना चाहिए।नमी बनाए रखने के लिए खिड़की या रोशनदान पर गीली बोरी टांग कर रखें, कमरे में हर रोज 3-4 घंटे के लिए रोशनी दें। ।

[1]कृषि विज्ञान केंद्र, भिवानी।

Common Fertilizers Used in Haryana

- **Pooja Rani, Usha Kumari[1] and Devraj[2]**
Krishi Vigyan Kendra, Sadalpur
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Those materials which are either natural or manufactured and containing nutrients essential for growth and development of plants are called as fertilizers. Increase in crop production during recent time is due to fertilizer use in field crops. The production and usage of fertilizer materials are mainly centred to providing the N, P and K needs of plants. However, the micronutrient fertilizers are also gaining popularity in recent time. While, the list of fertilizers available in worker is too long but here we will discuss properties of some important and commonly used fertilizers such as :

Nitrogen Fertilizer

1. Ammonium Sulphate: It is white crystalline salt with good keeping quality in dry conditions. It contains Nitrogen (20.6%) and Sulphur (24%). It is readily soluble in water and is non-hygroscopic, however, under humid condition (rainy season) it forms lumps. As ammonium ion is readily absorbed on the colloidal complex of soil, thus, the leaching loss of this fertilizer is very less in soil and thereby making it best option for wetland crops such as paddy and jute. It has excellent physical properties and can be mixed with phosphate and potassic fertilizers. It is acid forming fertilizer and suitable for salt affected and sulphur deficient soils. Paddy takes up nitrogen in ammonical form in early stage and nitrate form in later stage. So, ammonium sulphate is best suited for basal dressing and top dressing of paddy field.

2. Urea : Urea is a cheapest source of nitrogen. It is a white crystalline product which is highly hygroscopic and has a tendency of caking. It contains 46% nitrogen in amide form. It is less acidic compared to ammonium sulphate and it can be mixed with phosphatic and potassic fertilizers. However, the mixture should be used just after preparation because water soluble P converted to water insoluble calcium phosphate. Urea can be used in every soil and for every crop. The price per unit nitrogen of urea is less than that of other fertilizers. Urea can be applied at any time i.e. before soaring at the time of sowing top dressing & foliar spray. Urea is a crystalline fertilizer so its broadcasting is very easy.

Phosphatic Fertilizers

The nutrient phosphorus present in phosphoric fertilizers is usually expressed in terms of phosphoric anhydride. The ions of phosphoric acid combine with calcium to form three salts which are sold to farmers as commercial phosphatic fertilizers. These three salts are : (1) Monocalcium phosphate (2) Dicalcium phosphate and (3) Tricalcium phosphate. The important phosphatic fertilizers are :

1. Single Super Phosphate (SSP) : It is the most commonly available grade in Indian market. The whole of P_2O_5 in super phosphate is water soluble form which is readily available to plants. It is grey or brown in colour and is available in granular as well as in powdered form. Granular SSP can be easily and uniformily applied by hand or machine but powdered SSP may cake up as it absorbs water. It contains 16% water soluble P_2O_5, 12% sulphur 21% calcium and small quantities of micronutrients. It contains some free acids so it should be packed in polyethylene or laminated jute bags which are resistant to acids. It should be stored in moisture proof godown to prevent conversion of monocalcium phosphate to dicalcium phosphate.

2. Diammonium Phosphate (DAP) : It is granular, non-hygroscopic, free flowing and has excellent physical properties. It is a complex fertilizer which contains 46% P_2O_5 and 18% Nitrogen in ammonium form and this is reason that it is most popular P-fertilizer among farmers of Haryana. It can be mixed with any fertilizer. It is highly concentrated form of P fertilizers hence, its distribution and application cost per unit of P_2O_5 is low as compared to SSP.

Potassium Fertilizers

The potassium in fertilizers expressed as K_2O (Potassium Oxide) and is commonly referred as Potash. The potassium fertilizers easily dissolve in water and split up into potassium ion (K+) and other anions. It is the K+ ion which is absorbed by growing plants. Muriate of Potash (MOP) and Sulphate of Potash (SOP) are two commonly used fertilizers by farmers of Haryana.

1. MOP (Potassium Chloride) : In pure form it is the white crystalline salt but fertilizer grade MOP ranges from white to red. It is free flowing and completely soluble in water and does not pose any problem in handling and storage. It contains 60% K_2O and its chlorine content makes it less suitable for crops like tobacco, potato, grapes and other chloride sensitive crops as their quality is lowered. Otherwise, it could be used for all crops and soils. MOP is neutral in reaction and it can be safely mixed with most of fertilizers. It should be applied either at the time of sowing or prior to it.

2. Potassium Sulphate : It is white crystalline salt and contains 50% K_2O and 18% Sulphur. Its properties are more or less same to MOP but its per unit cost of K_2O is higher than MOP which restrict its use to only chloride sensitive crops. It is a preferred K fertilizer for tobacco and potato as well as for salt affected soils because of its low salt index compared to MOP. I

[1]Gandhi Krishi Vigyan Kendra, Banglore
[2]Krishi Vigyan Kendra, Panipat

Rainwater Harvesting – A Solution to Water Crisis

- **Manjeet, Parveen Kumar and Naveen Kumar**
Department of Agronomy
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Water is an extremely precious natural resource covering more than 70% earth surface. Development of human societies is heavily dependent upon the availability of freshwater in adequate quantities and with suitable qualities. All sources of freshwater on earth originate from rainfall. Increasing population together with intensifying urbanization and industrialization affects availability and results in deterioration of quality of freshwater due to discharge of pollutants. Water resource managers and water-use planners in many corners of the world have projected that within next two decades, total availability of freshwater will fall short of needs if the current trend continues unabated and rainwater harvesting is the only solution to this emerging problem of water scarcity. The concept of rain water harvesting has a long history. Evidences indicate domestic rain water harvesting having been used in the Middle East for about 3000 years and in other parts of Asia for at least 2000 years. India has a long tradition of water harvesting.

Rain water harvesting is a technique of collection and storage of rainwater that runs off from roof tops, parks, roads, open grounds, etc. into natural reservoirs or tanks, or the infiltration of surface water into sub-surface aquifers before it is lost as surface runoff and subsequently storing this water for later use.

Water harvesting in India has boomed during the last two decades in two markedly in different ways from the traditional technique. Collection and storage of rainwater in earthen tanks for domestic and agricultural uses is very common in India since historical times. The traditional knowledge and practice of rain water harvesting has largely been abandoned in many parts of India after the implementation of dam and irrigation projects.

Components of rain water harvesting system : The following are the components of rain water harvesting system :

- Catchment : It refers to the prepared surface area from which the runoff is collected.
- Collection system: This refers to the arrangement made for collecting and storing the rainfall with minimal quantitative loss.
- Utilization system : This is the arrangement required to make use of the collected rainwater for productive purposes in future.

Methods of rain water harvesting : The methods of rain water harvesting are given below:

- Storing rain water for direct use
- Recharging ground water aquifers, from roof top run off
- Recharging ground water aquifers with runoff from ground area

Scope of rain water harvesting

The potential for rainwater harvesting is huge. Everywhere we can collect rainwater particularly that is lost as runoff from the roof of the building viz.; individual homes, colonies, apartments, institutions, schools/colleges/universities, clubs and hospitals industries slums.

Need and importance of rain water harvesting : There is huge amount of monsoon flow which remains uncaptured and eventually ends up in the natural sinks, especially seas and oceans. Rain may soon be the only source of clean water. Rainwater harvesting systems use the principle of conserving rainwater where it falls and have the following benefits:

- Meet ever increasing demand of water
- Improves quality and quantity of groundwater
- Reduces flooding
- They provide relatively high quality water (in most areas), soft and low in minerals at low costs
- Direct capturing of rainwater significantly reduces our reliance on water from dams/ reservoirs and canal systems. This will exert less pressure on national water storage capacity at macro-level and can potentially reduce the need to expand dams or build new ones
- Reduces soil erosion and flooding typically created by storm water run-off in urban areas of India
- Encourages households and institutions to be equipped with an on-site and decentralized water supply of reliable quality
- Reduces silting and contamination of waterways from polluted surface run-off
- Helps to create mass awareness and appreciation for conservation of water resources

Precautions to be taken to ensure quality of harvested water :

- Roof, over which water falls, should be cleaned before rain fall and stored in storage tank for direct use.
- Do not store initial 10 to 15 minutes of runoff and it should be diverted for recharging ground water aquifers after proper filtration.

The rain water collected from roof top should pass through suitable type of filter and only then it should be stored in storage tank / used for recharging ground water aquifers.

Burning of Crop Residues – A National Threat

- **N.K.Goyal, Sandeep Rawal and B.R.Kamboj**[1]
Krishi Vigyan Kendra Damla,Yamunanagar
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Crop residues are important resources, not only as sources of nutrients for succeeding crops and hence agricultural productivity, but also for improved soil, water and air quality. A better understanding of the impact of crop residue management on the soil properties is needed in order to manage agricultural land sustainably. Crop residue is an important component of soil health and the burning of straw ultimately costs the producer money. Burning of crop residues influence the soil physically, chemically and biologically and results in loss of natural resources as under :

1. Reduced Soil Fertility and Organic Matter : The nutrient eco-system of soil is substantially altered with stubble burning. For instance, carbon, nitrogen and sulphur, which are essential constituents of soil fertility, are lost in massive proportions. Existing minerals in the soil are adversely affected by stubble burning, thereby negatively impacting the subsequent cropping cycle. A substantial amount of organic matter in the top layer of soil which significantly contributes to its fertility is destroyed due to the heat produced by stubble burning. Apart from loss of nutrients, some of the soil properties like soil temperature, pH, moisture, available phosphorus and soil organic matter are greatly affected due to burning.

The cumulative impact of this is reduced productivity of soil.. When straw is burned, about 90% of these nutrients are lost. It is estimated that burning of one tonne of rice straw accounts for loss of 5.5 kg Nitrogen, 2.3 kg Phosphorus, 25 kg Potassium and 1.2 kg Sulphur besides, organic carbon. Generally, crop residues of different crops contain 80% of Nitrogen (N), 25% of Phosphorus (P), 50% of Sulphur (S) and 20% of Potassium (K). If the crop residue is incorporated or retained in the soil itself, it gets enriched, particularly with organic C and N. Finally, by incorporating straw into the soil you are returning organic matter back into the soil. Leaving straw in the field also returns nutrients valuable to crop growth back to the soil. These nutrients include carbon, nitrogen, phosphorus, potassium, sulphur, calcium and magnesium.

2. Wind, Water and Soil Erosion : During heavy rain events, exposed soil is much more likely to be eroded away than soil that is protected by crop residue. The straw absorbs the impact of the rain and allows the water to infiltrate the soil rather than simply running off, carrying valuable topsoil with it. Eroding soil takes with it important crop nutrients that need to be replaced to maintain crop yields. These nutrients further degrade water quality and contribute to environmental problems. Maintaining residue on the field, both above and underground is a well known soil conservation or erosion control measure. Residue protects the soil from wind erosion, it slows down and prevents water from running off and acts as a barrier allowing rain water to infiltrate deep into the soil, recharging it with water. Wind erosion is also greatly reduced by leaving crop residue on the field. Standing straw helps to slow wind speeds at ground level, protecting the topsoil from being blown away and trapping blowing soil. Furthermore, the residue acts as a continuum gap between water in the soil and water in the atmosphere, which basically means that evaporation of soil water, in a soil covered with residue, is decreased. Crop residue can be a very effective tool in preventing soil erosion.

3. Negative Impact on Soil Properties : Heat from burning residues elevates soil temperature causing death of beneficial soil organisms. Frequent residue burning leads to complete loss of microbial population and reduces level of N and C in the top 0-15 cm soil profile, which is important for crop root development. Leaving crop residue on the fields has many known beneficial effects. For one, the residues are used as a nutrition source for soil organisms which slowly break it down into smaller and finer particles which end up constituting soil organic matter. This in turn is broken down providing nutrition for crops and reducing fertilizer requirements. Burning of crop residues affects the physical, chemical and biological properties of soil-our natural resource.

What Costs to the Soil from Stubble Burning :

1. Loss of organic matter
2. Increased potential for soil compaction
3. Greater potential for erosion (wind and water)
4. Loss of valuable nutrients (carbon, nitrogen, phosphorous, potassium, sulphur, calcium and magnesium)
5. Damage to soil structure (poor drainage and less efficient transfer of water and nutrients to the crop) organic matter from straw, stubble and chaff binds soil particles, improving soil structure. Well-structured soils drain faster and make better seedbeds. Most importantly, good soil structure improves the ability of the soil to deliver water and nutrients to crops
6. Reduced soil water infiltration and increased evaporation and run-off due to crop residue removal
7. Reduced numbers of macro and micro-

[1]Registrar, CCSHAU, Hisar

organisms, especially earthworms and therefore reduced biopores.

8. Greater use of fertilizers and pesticides:. In order to compensate for the loss of fertility, chemical-based fertilizers and pesticides are increasingly used in successive years due to decreasing soil fertility (as a result of stubble burning, and excessive use of chemical fertilizers, recurrent wheat-paddy cycle, etc.).

4. Adverse Health Outcomes : Stubble burning has been considered as an easiest and most widely used process to get rid of the crop residue. Researchers have shown that the burning of agricultural biomass residue or stubble burning is a major health hazard. It doesn't just affects the organic carbon levels of the soil but also produces an uncontrollable amount of harmful smoke that causes air pollution to the immediate vicinity. A large number of toxic pollutants are emitted into our atmosphere due to the open burning of the paddy straw/stubbles. The stubble burning shoots up the carbon dioxide levels in the air by 70%. The concentration of carbon monoxide and nitrogen dioxide also rises by 7 and 2.1% respectively, triggering respiratory and heart problems. Poisonous gases like carbon monoxide, nitrogen dioxide and oxides of sulphur are released in vast quantities due to stubble burning, thereby causing air pollution. These gaseous emissions give rise to health risks, diseases such as asthma, chronic bronchitis, decreased lung function, as well as eye and skin diseases.. These toxic gases either build a cloud of ash or formulate into smog that is formed due to the intensified amount of smoke present in the atmosphere. The burning of stubbles more often contributes to the frequent formation of brown clouds that have an adverse effect on the local air quality hampers atmospheric visibility and further impacting the reasons for climate change. Since these residues also travel across other parts of Northern India posing a serious threat to the biological life.

5. Other Ecological Damages : In addition to the deleterious effects on public health, stubble burning threatens natural resources and biodiversity. For instance, crop residue burning pollutes water bodies and terrestrial eco-systems and the smoke emitted from its combustion reduces visibility, significantly leading to numerous ecological and biodiversity threats, impacting natural resources, forests, and larger eco-systems The addition of organic materials in sufficient amounts to soil is important for improving soil health as the organic substrates influence the microbial population in the soil, which is responsible for nutrient transformations resulting in the availability of nutrients, particularly N, P, and S. Incorporation of crop residues increased the population of aerobic bacteria and fungi while burning decreased it .

Options to Burning of Crop Residues:

There are several benefits from leaving standing stubble in the field, including trapping rainwater, minimizing water and wind erosion and returning valuable.

Stubble burning is a serious issue and it must be sought on an immediate effect.

One great way to approach the issue is to think of alternatives to deal with it. Converting stubble into energy is an innovative way to address the issue. Not only it helps in reducing the greenhouse effect but also helps to fight against the threats of global warming. Setting up biomass power plants in the villages can help meet the energy needs of the villagers. Setting up biomass fuel plants to generate fuel using paddy husk or making fodder for livestock out of the collected stubble can also serve as an important step to bring down the adverse effect of crop residues finding their way into the environment during the senseless burning of crops.

A new Central Sector Scheme on 'Promotion of Agricultural Mechanization for *In-Situ* Management of Crop Residue in the States of Punjab, Haryana, Uttar Pradesh and NCT of Delhi' for the period from 2018-19 to 2019-20 has been implemented. Strategies for *in situ* crop residue management must be planned for effective implementation to enable zero burning. Various equipments/ machines such as Super Straw Management System (SMS) attached with existing combine harvester, Happy Seeder, Straw Chopper / Mulcher, Rotary Slasher, Reversible M B Plough, Rotavator, etc. have been developed and successfully demonstrated in the farmers' fields. Bailing of rice straw with the help of balers for use in the cardboard and paper industry seems to be another viable option in the future provided balers are available at an affordable price or custom hiring is encouraged.

Food security and environmental improvement depend on soil carbon, a valuable resource that can be sustained through cost-effective crop residue management. Crop residues of common agricultural crops are important resources, not only as sources of nutrients for succeeding crops and hence agricultural productivity, but also for improved soil, water and air quality. Improved residue management and reduced tillage practices should be encouraged because of their beneficial role in reducing soil degradation and increasing soil productivity.

हरियाणा खेती एवं अन्य प्रकाशनों में विज्ञापन हेतु विज्ञापन दरें

पृष्ठ	साधारण (रु०)	छः या छः माह से अधिक समय के लिए विज्ञापन दर (रु०)	रंगीन विज्ञापन दर (रु०)
चौथा कवर पृष्ठ	2500/–	2400/–	6000/–
दूसरा कवर पृष्ठ	2400/–	2300/–	5800/–
तीसरा कवर पृष्ठ	2300/–	2200/–	5500/–
साधारण पृष्ठ	2000/–	1900/–	4700/–
आधा पृष्ठ	1200/–	1100/–	–

लिफाफे का मुख पृष्ठ	–	आकार 9 सैं.मी. × 11 सैं.मी.	4000/–
पिछला पृष्ठ	–	आकार 18 सैं.मी. × 22 सैं.मी.	4000/–

जी.एस.टी. - विश्वविद्यालय के नियमों के अनुसार।

विज्ञापन देने हेतु निम्न पते पर संपर्क करें :

प्रकाशन अनुभाग

गांधी भवन

चौ. च. सिं. हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय

हिसार (हरियाणा)

फोन : 01662-255234

ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती

वर्ष 52 अंक 10

स्वर्ण-जयंती वर्ष
2 अक्तूबर 2019 - 1 अक्तूबर 2020

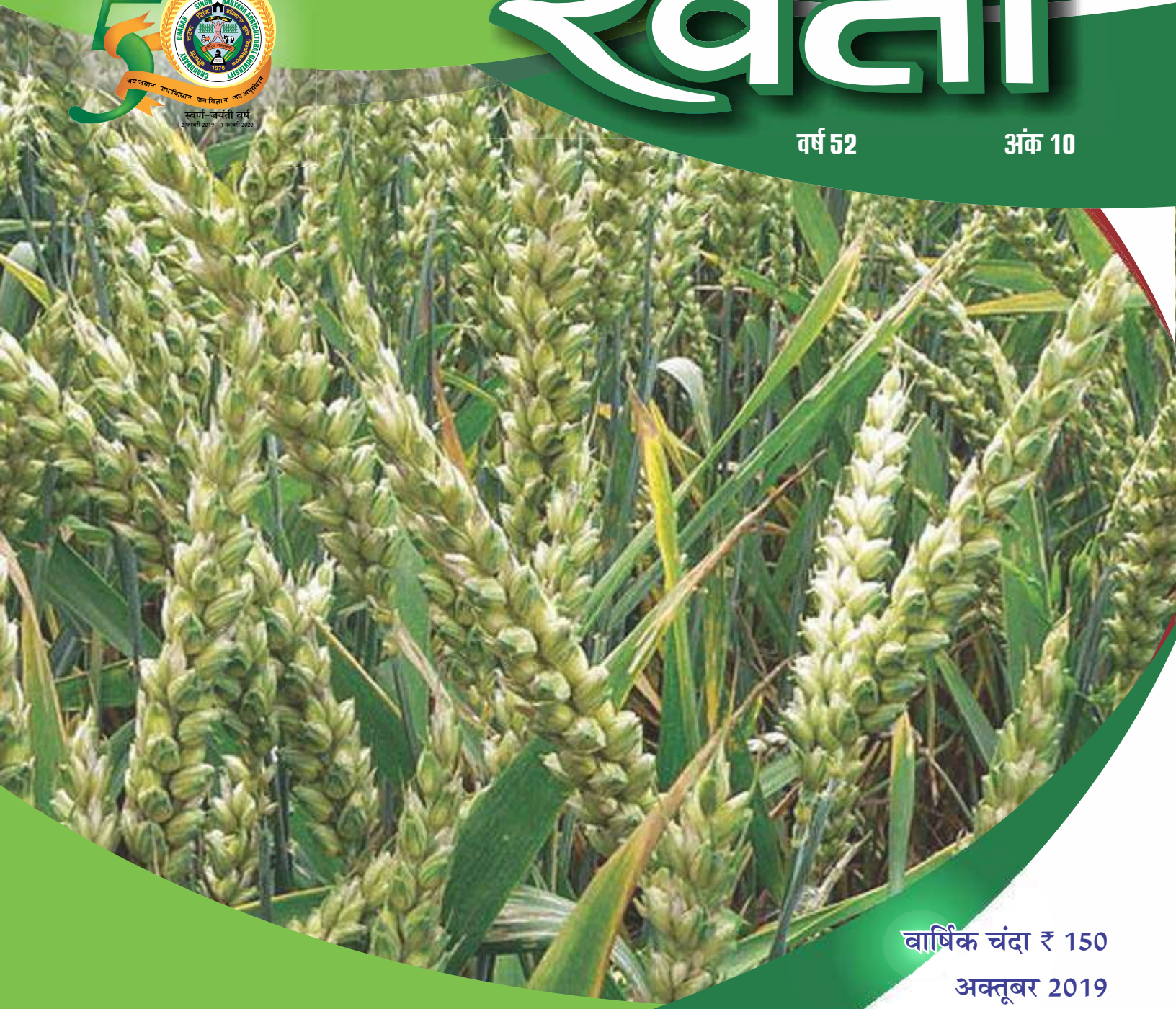

वार्षिक चंदा ₹ 150

अक्तूबर 2019

आजीवन सदस्यता ₹ 1500

प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित

© कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 52 | अक्तूबर 2019 | अंक 10

इस अंक में

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ
गेहूं : उन्नत किस्में एवं उनका बीज उत्पादन	विक्रम सिंह, एम. एस. दलाल एवं विरेंद्र सिंह हुड्डा	1
गेहूं व जौ फसलों में बीज उपचार	सुनील कुमार, सतबीर सिंह जाखड़ एवं हवा सिंह सहारण	3
राया उत्पादन : उन्नत कृषि क्रियाएं	रमेश कुमार, अशोक ढिल्लों एवं आशीष शिवरान	4
सरसों में खरपतवार नियंत्रण : कैसे करें	विरेंद्र सिंह हुड्डा, समुन्द्र सिंह एवं एस. एस. पुनिया	5
ग्रीनहाऊस - पॉलीहाऊस में शिमला मिर्च की खेती	राजेश कुमार, विकास कुमार शर्मा एवं गगन मेहता	6
बाकला : एक क्षमतावान दलहनी फसल	वंदना, राजेश एवं रविंद्र चौहान	7
बरसीम - एक गुणकारी चारा फसल	सतपाल, नवीन कुमार एवं डी. एस. फोगाट	8
अमरूद की शरदकालीन पैदावार बढ़ाने की तकनीक	अंकित गावरी, जीत राम शर्मा एवं प्रवीण	9
बाग का वैज्ञानिक रेखांकन	हेमंत सैनी, सूबेसिंह एवं नरेन्दर सिंह	10
बीज उत्पादन: एक लाभकारी व्यवसाय	सुनील कुमार, अनील कुमार मलिक एवं सतबीर सिंह	11
जैव उर्वरक : वर्गीकरण, लाभ,उपचार एवं सावधानियां	निधि शर्मा, कविता रानी एवं जगदीश प्रसाद	12
सही हॉर्स पॉवर का ट्रैक्टर कैसे खरीदें	नरेन्द्र, विनोद कुमार एवं सुशील कुमार	20
वाष्पीकरण और उससे होने वाले नुकसान	नरेन्द्र कुमार, अमनदीप सिंह एवं संजय कुमार	21
कृषि कार्यों में तेल एवं ऊर्जा की बचत	नवीन कुमार, मुकेश जैन एवं प्रवीन	22
भूमि संरक्षण के आर्थिक पहलू	अरविन्द एवं नरेंद्र कुमार	22
कृषि वानिकी : स्वच्छ पर्यावरण उपयोगी	ए. के. देशवाल, जे. एन. यादव एवं वी. पी. एस. यादव	23
गर्मियों में वस्त्रों का चुनाव कैसे करें	नीलम सैनी, पूनम रानी एवं रेनू बाला	24
चुन्नट के प्रयोग से कपड़े की सजावट	ज़ेबा जमाल एवं निशा आर्य	25
मौसम विज्ञान में सुदूर संवेदन का उपयोग	दर्शना दुहन, धर्मेंद्र सिंह एवं संदीप आर्य	26
किचन गार्डन: आज की आवश्यकता	तनवी मेहता, डी. एस. दुहन एवं वी. पी. एस. पंघाल	28
Health Benefits of Whole Grain Cereal Based Bioactive Compounds	Jayanti Tokas, Himani and Poonam Mor	29
Supply Chain Management System for Crop Residue	Kanishk Verma, Parmod Sharma and Y. K. Yadav	31
स्थाई स्तम्भ : नवम्बर मास के कृषि कार्य		**13**

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

सह-निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह-निदेशक (हिन्दी)

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

सम्पादक (अंग्रेजी)
सुनीता सांगवान
प्रकाशन अनुभाग

डीटीपी एवं आवरण सज्जा
राजेश कुमार
प्रकाशन अनुभाग

गेहूं : उन्नत किस्में एवं उनका बीज उत्पादन

- **विक्रम सिंह, एम. एस. दलाल[1] एवं विरेंद्र सिंह हुड्डा[2]**
रामधन सिंह बीज फार्म
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

रबी मौसम की मुख्य फसल है गेहूं, इसके उत्पादन में प्रदेश व देश को आत्मनिर्भर बनाने में हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय का अहम् योगदान है। 'गेहूं शोध वैज्ञानिकों' ने अधिक पैदावार देने वाली कई उन्नत किस्मों का विकास किया है। गेहूं की अधिक पैदावार लेने हेतु उन्नत किस्मों की जानकारी होना बहुत ज़रूरी है। गेहूं की किस्मों की सिफारिश उपलब्ध साधनों व उस क्षेत्र की जलवायु के अनुसार की जाती है। गेहूं की उन्नत किस्मों का विवरण विभिन्न दशाओं के अनुरूप निम्न प्रकार है:

कम उपजाऊ, कम सिंचित दशा व बारानी क्षेत्र

सी-306 : यह किस्म देसी लम्बी (125-135 सैं.मी.) बढ़ने वाली है। यह अगेती बिजाई के लिए उपयुक्त है। इसके दाने मध्यम आकार के, सख्त, शरबती व चमकीले होते हैं। इस किस्म में शुरू की बढवार फैलकर होती है और फुटाव भी अधिक होता है। इसकी पत्तियां पतली, हल्के हरे रंग की तथा बालियां रोयेंदार व गुंथी होती हैं। इसकी औसत पैदावार 10 क्विंटल प्रति एकड़ भले हो, इसके विशेष गुणों के कारण बाज़ार में इसके अधिक भाव मिलते हैं क्योंकि खाने में इस किस्म को प्राथमिकता दी जाती है।

डब्ल्यू एच 1025 : यह किस्म अगेती बिजाई के लिए उपयुक्त है। इसमें फुटाव अधिक है और औसत ऊंचाई लगभग 100 सैं.मी. है तथा इसकी पत्तियां गहरे हरे रंग की होती हैं और तना सख्त है। यह किस्म गिरती नहीं है, सूखा सह सकती है और 155 दिनों में पक जाती है। इसकी बालियां लम्बी, दाने शरबती, सख्त, लम्बे व चमकीले होते हैं। औसत पैदावार 11.6 क्विंटल प्रति एकड़ है।

डब्ल्यू एच 1080 : यह किस्म बारानी क्षेत्रों व कम सिंचाई वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इसकी औसत लम्बाई लगभग 86 सैं.मी. है। इसका तना सख्त है और यह गिरती नहीं है। पत्तियां चौड़े आकार की, बालियां रोंयेदार, दाने मध्यम आकार के, सख्त, व शरबती रंग के होते हैं। यह किस्म सूखा सह सकती है और 151 दिनों में पक जाती है। इसमें रतुआ रोग नहीं आता व बारानी क्षेत्रों में इसकी औसत पैदावार 13 क्विंटल प्रति एकड़ है।

मध्यम उपजाऊ व कम सिंचित

कई बार किसानों के पास सिंचाई व खाद की समुचित व्यवस्था नहीं होती है, ऐसी अवस्था में गेहूं की अधिक पैदावार लेने के लिए उपयुक्त किस्म इस प्रकार हैं:

डब्ल्यू एच 1142 : यह किस्म कम सिंचाई व कम खाद वाली स्थितियों के अनुकूल है। यह किस्म गिरती नहीं है, सूखा सह सकती है। दाने मध्यम आकार के सख्त व शरबती रंग के होते हैं। इसकी औसत पैदावार 20.4 क्विंटल प्रति एकड़ है। यह किस्म पीला व भूरा रतुआ अवरोधी है।

डब्ल्यू एच 147 : यह एक बौनी किस्म है जो शुरू में तेज़ी से बढती है और इसमें फुटाव अधिक होता है। इसकी पत्तियां चौड़ी व हल्के रंग की होती हैं। बालियां ऊपर की तरफ से मोटी होती हैं। दाने मध्यम आकार के, सख्त, व शरबती रंग के होते हैं। यह 151 दिनों में पक जाती है व इसकी औसत पैदावार 20 क्विंटल प्रति एकड़ है। इसमें नम जलवायु से पीला रतुआ व पाऊडरी मिल्ड्यू रोग लग सकता है। सिंचाई करते समय ध्यान रखें की तेज़ हवा न चलती हो अन्यथा फसल गिर सकती है।

[1]गेहूं अनुभाग, अनुवांशिकी व पौध प्रजनन विभाग
[2]सस्य विज्ञान विभाग

अधिक उपजाऊ व सिंचित दशा

डब्ल्यू एच 1105 : गेहूं की नई किस्म 'डब्ल्यू एच 1105' चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के गेहूं व जौ अनुभाग, अनुवांशिकी व पौध प्रजनन विभाग द्वारा वर्ष 2012 में विकसित की गई थी। यह एक बौनी किस्म है जो गिरती नहीं है। यह 142 दिनों में पक जाती है व दाना पकते समय होने वाली गर्मी को सहने में सक्षम है। इसकी अनुकूलता विस्तृत है तथा इसकी औसत पैदावार 24 क्विंटल प्रति एकड़ है व इसकी उत्पादन क्षमता 28 क्विंटल प्रति एकड़ आंकी गई है। यह किस्म गेहूं की प्रमुख बीमारियों की प्रतिरोधी है। इसकी पौष्टिक गुणवत्ता अच्छी है। इसमें आयरन, ज़िंक, मैंगनीज़ व कॉपर आदि प्रचुर मात्रा में होते हैं।

एच डी 2967 : यह एक बौनी (98 सैं.मी.) किस्म है जो 143 दिनों में पक जाती है। इसकी पौष्टिक गुणवत्ता अच्छी है। इसमें आयरन, ज़िंक व कॉपर आदि प्रचुर मात्रा में होते हैं। यह किस्म गेहूं की रतुआ बीमारियों की प्रतिरोधी है लेकिन पीले रतुए का अधिक प्रकोप होने पर इसमें पीला रतुआ रोग आ जाता है। इसकी अनुकूलता विस्तृत है तथा इसकी उत्पादन क्षमता 27 क्विंटल प्रति एकड़ आंकी गई है व इसकी औसत पैदावार 23.6 क्विंटल प्रति एकड़ है।

एच डी 3086 : यह एक बौनी (93 सैं.मी.) किस्म है जो 143 दिनों में पक जाती है। यह चपाती बनाने के लिए उपयुक्त है। इसकी औसत पैदावार 20.5 क्विंटल प्रति एकड़ है। यह किस्म गेहूं की रतुआ बीमारियों पीला व भूरा रतुआ, खुली कंगियारी व पत्तियों की कंगियारी की प्रतिरोधी है। इसकी उत्पादन क्षमता 28.1 क्विंटल प्रति एकड़ व इसकी ज़ोनल औसत पैदावार 22 क्विंटल प्रति एकड़ आंकी गई है।

डी बी डब्ल्यू 88 : यह एक बौनी (97 सैं.मी.) किस्म है जो 143 दिनों में पक जाती है। इस किस्म में रतुआ रोग नहीं लगता व करनाल बंट कम लगता है। इसकी पौष्टिक गुणवत्ता अच्छी है। इसमें प्रोटीन प्रचुर मात्रा में होते हैं। इसकी ज़ोनल औसत पैदावार 22 क्विंटल प्रति एकड़ है व इसकी उत्पादन क्षमता 27.9 क्विंटल प्रति एकड़ आंकी गई है।

डब्ल्यू एच 542 : यह एक बौनी किस्म है जो अधिक पैदावार देती है। इसका पौधा सख्त, तना मज़बूत व गिरता नहीं है। पत्तियां छोटे आकार की व पतली, बालियां चिकनी होती हैं। इसमें फुटाव अधिक होता है तथा इसकी औसत पैदावार 23 क्विंटल प्रति एकड़ है। इस किस्म में रतुआ रोग नहीं लगता व करनाल बंट कम लगता है। दाने छोटे व सख्त होते हैं। यह 142 दिनों में पक जाती है।

डब्ल्यू एच 283 : यह एक बौनी (100 सैं.मी.) किस्म है जो अधिक पैदावार देती है। इसकी हरे रंग की झुकी पत्तियां व सफेद रंग की बालियां होती हैं। दाने मोटे, सख्त, चमकीले व शरबती रंग के होते हैं। यह किस्म गेहूं की रतुआ बीमारियों पीला व भूरा रतुआ व पत्तियों की कंगियारी की प्रतिरोधी है। इसकी औसत पैदावार 20.8 क्विंटल प्रति एकड़ है।

डी पी डब्ल्यू 621-50 : यह एक बौनी (97 सैं.मी.) किस्म है जो 144 दिनों में पक जाती है। यह किस्म पीला रतुआ व पत्तों के रतुआ अवरोधी है। इसकी पौष्टिक गुणवत्ता अच्छी है। यह चपाती बनाने के लिए उपयुक्त है। इसकी औसत पैदावार 23.6 क्विंटल प्रति एकड़ है।

पी बी डब्ल्यू 550 : यह एक बौनी (85 सैं.मी.) किस्म है जो अधिक पैदावार देती है। इसका पौधा मज़बूत व तना सख्त होता है। दाने मध्यम आकार के सख्त व शरबती रंग के होते हैं। इसमें फुटाव अधिक होता है तथा इसकी औसत पैदावार 23 क्विंटल प्रति एकड़ है। यह किस्म पीला रतुआ अवरोधी है व करनाल बंट कम लगता है। यह किस्म समय पर बिजाई व अधिक उपजाऊ व सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

पछेती बिजाई - अधिक उपजाऊ व सिंचित दशा

डब्ल्यू एच 1124 : यह किस्म अधिक पैदावार व गुणवत्ता वाली नई किस्म है। यह एक मध्यम बौनी किस्म है जिसकी औसत ऊंचाई 91 सैं.मी. है व जिसके पौधे सघन तथा अधिक फुटाव वाले होते हैं। इसका तना मज़बूत है इसलिए यह गिरती नहीं है। बालियां मध्यम लम्बी, दाने मध्यम आकार के सख्त व शरबती रंग के होते हैं। यह किस्म गेहूं की प्रमुख बीमारियों की प्रतिरोधी है। इसकी पौष्टिक गुणवत्ता अच्छी है। यह 121 दिनों में पक जाती है व दाना पकते समय होने वाली गर्मी को सहने में सक्षम है। इसकी औसत पैदावार 17.1 क्विंटल प्रति एकड़ है।

डब्ल्यू एच 1021 : यह एक बौनी (95 सैं.मी.) किस्म है जो पछेती बिजाई के लिए उपयुक्त है. इसका तना मज़बूत है इसलिए यह गिरती नहीं है व इसके पौधे सघन तथा अधिक फुटाव वाले होते हैं। बालियां लम्बी, दाने मध्यम आकार के सख्त व शरबती रंग के होते हैं। यह किस्म गेहूं की प्रमुख बीमारियों की प्रतिरोधी है। यह 121 दिनों में पक जाती है व दाना पकते समय होने वाली गर्मी व लवणों को सहने में सक्षम है। इसकी औसत पैदावार 15.6 क्विंटल प्रति एकड़ है। इसकी बिजाई के लिए बीज की मात्र 50 कि. ग्रा. प्रति एकड़ रखें।

एच डी 3059 : यह पछेती बिजाई व अधिक पछेती बिजाई में अधिक पैदावार देने वाली किस्म है। यह एक बौनी (93 सैं.मी.) किस्म है. यह 121 दिनों में पक जाती है व दाना पकते समय होने वाली गर्मी व लवणों को सहने में सक्षम है। यह किस्म रतुआ अवरोधी है। इसकी पौष्टिक गुणवत्ता अच्छी है। इसमें प्रोटीन प्रचुर मात्रा में होते हैं। इसकी औसत पैदावार 17 क्विंटल प्रति एकड़ है।

राज-3765 : यह पछेती बिजाई में अधिक पैदावार देने वाली किस्म है। यह एक बौनी (95 सैं.मी.) किस्म है जिसके पौधे सघन तथा अधिक फुटाव वाले होते हैं तथा इसका तना मज़बूत होता है। इसकी पत्तियां सघन नुकीली व पकने पर सफेद होती हैं। इसमें पीला रतुआ कम लगता है तथा इसकी औसत पैदावार 16 क्विंटल प्रति एकड़ है।

डी बी डब्ल्यू 90 : यह एक बौनी (91 सैं.मी.) किस्म है जो 121 दिनों में पक जाती है व दाना पकते समय होने वाली गर्मी व लवणों को सहने में सक्षम है। यह पछेती बिजाई व अधिक पछेती बिजाई में अधिक पैदावार देने वाली किस्म है। यह किस्म रतुआ अवरोधी है व चपाती, बिस्कुट व ब्रेड बनाने के लिए उपयुक्त है तथा इसकी पौष्टिक गुणवत्ता अच्छी है। इसकी औसत पैदावार 17.1 क्विंटल प्रति एकड़ है।

कठिया गेहूं

डब्ल्यू एच 896 : यह एक बौनी (96 सैं.मी.) किस्म है। यह अधिक उपजाऊ व सिंचित अवस्था में समय की बिजाई के लिए उपयुक्त है। इसका तना मोटा, पत्तियां सीधी व बालियां सफेद सघन व लम्बे तुडे वाली होती हैं। दाने बड़े व सूजी के लिए उपयुक्त हैं। यह किस्म गेहूं की रतुआ बीमारियों, करनाल बंट व कंगियारी की प्रतिरोधी है। इसकी औसत पैदावार 21.0 क्विंटल प्रति एकड़ है।

डब्ल्यू एच 912 : यह अधिक उपजाऊ व सिंचित अवस्था में समय की बिजाई के लिए उपयुक्त किस्म है। यह एक बौनी (90 सैं.मी.) किस्म है। इसका तना मज़बूत, न गिरने वाली, बालियां भूरे रंग व लम्बे तुडे वाली होती हैं। दाने मोटे, सख्त, आकर्षक व पेस्टा के लिए उपयुक्त है। यह किस्म गेहूं की रतुआ बीमारियों पीला व भूरा रतुआ व करनाल बंट की प्रतिरोधी है। इसकी औसत पैदावार 22.0 क्विंटल प्रति एकड़ है।

डब्ल्यू एच डी 943 : यह समय की बिजाई के लिए अधिक उपजाऊ व सिंचित अवस्था में उपयुक्त किस्म है। यह एक बौनी (89 सैं.मी.) किस्म है। दाने शरबती व सख्त व पेस्टा के लिए उपयुक्त हैं। यह किस्म गेहूं की प्रमुख बीमारियों की प्रतिरोधी है। इसकी औसत पैदावार 20.8 क्विंटल प्रति एकड़ है।

गेहूं की अधिक पैदावार लेने के लिए शुद्ध बीज का होना ज़रूरी है, लेकिन किसानों को हर साल शुद्ध बीज प्राप्त करने के लिए बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। किसानों को या तो शुद्ध बीज प्राप्त नहीं होता है या इसके लिए बहुत समय व धन खर्च करना पड़ता है। इन परेशानियों से बचने के लिए किसान एक बार किसी प्रमाणित संस्था जैसे कृषि विश्वविद्यालय, राज्य बीज विकास निगम व राष्ट्रीय बीज निगम आदि से शुद्ध बीज लेकर अपने खेत में बीज लें तो उसी से वह शुद्ध बीज तैयार करके, उसकी शुद्धता को कई सालों तक कायम रख सकते हैं। शुद्ध बीज कम से कम 98 प्रतिशत साफ सुथरा होना चाहिए अर्थात इसमें कचरा 2 प्रतिशत, खरपतवार 0.10 प्रतिशत व अन्य फसलों के बीज 0.10 प्रतिशत से अधिक नहीं होने चाहियें। इस बीज की जमाव शक्ति लगभग 90 प्रतिशत तथा बीज में नमी 10-12 प्रतिशत तक होनी चाहिए। गेहूं का शुद्ध बीज तैयार करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए :

खेत का चुनाव : शुद्ध बीज तैयार करने के लिए ऐसा खेत चुनना चाहिए जिसकी ज़मीन उपजाऊ हो व जहाँ सिंचाई की समुचित व्यवस्था हो। उस खेत में दूसरी फसलों के पौधे व खरपतवार नहीं होने चाहियें।

बीज उपचार : बीज यदि पहले से उपचारित नहीं हों तो इसमें 2 ग्रा. वीटावैक्स या बाविस्टिन प्रति किलो ग्राम बीज की दर से मिला लें ताकि खुली कंगियारी नामक बीमारी की रोकथाम हो सके। खुली कंगियारी, ध्वज पत्ता कंगियारी व करनाल बंट से बचाव के लिए एक ग्रा. रैक्सिल प्रति किलो ग्राम बीज की दर से उपचारित करें।

बिजाई का तरीका : शुद्ध बीज तैयार करने के लिए इसकी बिजाई समय पर व कतारों में करनी चाहिए जिससे गैर पौधे निकलने का काम आसानी से किया जा सके। खेत में खाद-पानी किस्म के अनुसार दिया जाए। फसल के गिरने का ध्यान रखें।

फसल की छंटाई : शुद्ध बीज तैयार करने के लिए छंटाई का काम बहुत महत्त्वपूर्ण है। शुद्ध बीज वाली फसल में अगर किसी अन्य किस्म का पौधा या खरपतवार हो तो उसको भी निकाल देना चाहिए। खुली कंगियारी से प्रभावित पौधों को पॉलीथीन के थैले से ढक कर सावधानी पूर्वक निकाल कर खेत से दूर मिट्टी में दबा दें ताकि बीमारी के कण खेत में न बिखरें। कुछ खरपतवार जैसे जई, हिरनखुरी आदि अंत तक आते रहते हैं, इनको समय पर निकालना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

कटाई व मढ़ाई : जो खेत शुद्ध बीज तैयार करने के लिए चुना गया है, अगर उसके आस-पास गेहूं की अन्य किस्मों की बिजाई नहीं की गई है तो सारे खेत को काट लेना चाहिए लेकिन यदि खेत के किसी तरफ भी गेहूं की अन्य किस्म की बिजाई की गई है तो खेत के उस ओर से 3 मीटर चौड़ी पट्टी फसल काट कर अलग से साफ मशीन द्वारा मढ़ाई कर लेनी चाहिए।

बीज रखाव : इस बीज को झारने से छान लें ताकि खरपतवारों के बीज व छोटे सिकुड़े हुए दाने नीचे रह जाएँ। मोटे दानों में अगर कोई दूसरी तरह का दाना दिखाई दे तो उसको भी निकाल देना चाहिए। इस साफ व शुद्ध बीज को अच्छी तरह सुखा कर लोहे की टंकी आदि में भरकर अलग से रख दें। कीड़ों से बचाने के लिए सल्फास का प्रयोग करना चाहिए।

उपर्युक्त बातों का ध्यान रख कर किसान हर साल स्वयं ही शुद्ध बीज तैयार कर सकते हैं और शुद्ध बीज प्राप्त करने के लिए बहुत सी कठिनाइयों से बच सकते हैं।

नोट : पीला रतुआ प्रभावित हरियाणा के उत्तर पूर्वी क्षेत्रों में किसान भाई पी बी डब्ल्यू 343, पी बी डब्ल्यू 373, डी बी डब्ल्यू 17, डब्ल्यू एच 711, एच डी 2851, सुपर, बरबट आदि किस्में न उगायें क्योंकि ये किस्में पीला रतुआ के अत्यन्त रोगग्राही हैं। ।

गेहूं व जौ फसलों में बीज उपचार

- **सुनील कुमार[1], सतबीर सिंह जाखड़ एवं हवा सिंह सहारण[2]**
बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बीज उपचार एक शब्द है जो उत्पादों और प्रक्रियाओं दोनों का वर्णन करता है। बीज उपचार निम्न में से किसी एक प्रकार से किया जा सकता है।

बीज ड्रेसिंग : यह बीज उपचार का सबसे आम तरीका है। बीज या तो एक सूखे मिश्रण या लुग्दी अथवा तरल घोल से गीले रूप में उपचारित किया जाता है। ड्रेसिंग, खेत और उद्योगों दोनों में लागू की जा सकती है। कम लागत के मिट्टी के बर्तन बीज को दवा के साथ मिश्रण के लिए प्रयोग किए जा सकते हैं। या बीजों को एक प्लास्टिक शीट पर फैलाकर आवश्यक मात्रा में उस पर दवा छिड़क कर किसानों द्वारा यांत्रिक रूप से मिलाया जा सकता है।

बीज कोटिंग (लेप) : बीज पर अच्छे तरीके से चिपकने के लिए मिश्रण के साथ एक विशेष बाइंडर का प्रयोग किया जाता है। कोटिंग के लिए उद्योग द्वारा उन्नत उपचार प्रौद्योगिकी की आवश्यकता होती है।

बीज पैलेटिंग : यह सर्वाधिक परिष्कृत बीज उपचार प्रौद्योगिकी है। जिससे बीज की पैलेटिबिलिटी तथा हैंडलिंग बेहतर करने के लिए बीज का शारीरिक आकार बदला जाता है। पैलेटिंग के लिए विशेष अनुप्रयोग मशीनरी तथा तकनीकों की आवश्यकता होती है और यह सबसे महंगा अनुप्रयोग है।

किसान (70 प्रतिशत से अधिक) अपना स्वयं का बीज प्रयोग में लाते हैं जो कि उपचारित नहीं होता। एक अनुमान के अनुसार हमारे देश में 80 प्रतिशत बीज की बुवाई बिना उपचार की जाती है जबकि विकसित देशों में बीज की बुवाई शत-प्रतिशत बीज उपचारित होती है। हमारे देश में ज़्यादातर किसान न तो बीज उपचार से परिचित हैं और न ही बीज उपचार की विधि को अपनाते हैं। हालांकि बीज उपचार की विधि समेकित कीट प्रबन्धन में भी उचित रहती है।

बीज उपचार करते समय सबसे पहले दीमक की रोकथाम के लिए कीटनाशक दवा का उपयोग बुवाई से पहले दिन करना चाहिए ताकि कीटनाशक दवा का घोल बीज में अच्छी तरह से समा जाए। अगले दिन फफूंदनाशक और अन्त में जीवाणु खाद के टीके बीज में मिला दें।

जीवाणु खादों से बीजों का उपचार करने हेतु बीज को साफ फर्श या प्लास्टिक आदि की शीट पर फैला लें। 50-60 ग्राम गुड़ को 2 कप पानी में घोल लें। फिर इस घोल को एक एकड़ के बीजों में मिला दें। गीले बीजों पर जीवाणु खाद का पैकेट खोलकर अच्छी तरह से बीज पर छिड़क दें। इसके बाद हल्के हाथ से बीजों पर जीवाणु खाद मिला दें ताकि बीज के हर दाने पर जीवाणु खाद की परत चढ़ जाए। उपचारित बीज को शीघ्र बो दें और बुवाई तक उसे छायादार और ठण्डे स्थान पर रखें। रबी की फसलों में बीज उपचार निम्न प्रकार से करें:

गेहूं

गेहूं में बीज उपचार अनुमोदित कीटनाशक, फफूंदनाशक व जैविक खाद से उपचारित कर फरकरा होने पर एक घंटे बाद बिजाई करें।

खुली कांगियारी (लूज़ स्मट) : गेहूं की बालियां काले पाऊडर के रूप में बदल जाती हैं। रोगी पौधों में प्राय: बालियां निकलने से पूर्व सबसे ऊपरी पत्ती (फ्लैग लीफ) पीली हो जाती है। यह रोग प्रदेश के सभी भागों व लगभग सभी किस्मों में पाया जाता है।

1. धूप उपचार : मई-जून के महीने में किसी शांत एवं धूप वाले दिन प्रात: 8 से 12 बजे तक बीज को पानी में 4 घंटे भिगोने के बाद उसे पतली परत के रूप में (40 किलोग्राम बीज की मात्रा 15 वर्ग गज) पक्के फर्श पर सुखा लें। इसे किसी तिरपाल, कपड़े या बोरी आदि से न ढकें। सुखाये बीज को बोने के समय तक किसी सूखे स्थान पर रखें। धूप उपचार के बाद किसी दवा उपचार की आवश्यकता नहीं। या

उन्नत सौर ताप उपचार (सितम्बर माह में) : यदि किसी कारणवश सौर ताप उपचार मई-जून माह में नहीं किया गया हो तो सितम्बर माह में भी किसी शांत एवं धूप वाले दिन कर सकते हैं। इस उपचार में 40 किलोग्राम बीज को 40 लीटर पानी में भिगोया जाता है व इसके लिए गेलवेनाईज्ड टब (36" x 36" ऊपरी चौड़ाई, 24" x 24" सतह की चौड़ाई, 13" गहराई) उपयुक्त होगा। बीज को पानी में डालने के बाद टब के मुंह पर एक पारदर्शी पॉलीथीन कस कर बांध दें और 8 बजे प्रात: से 2 बजे दोपहर तक धूप में ही रहने दें। 6 घण्टे भिगोने के बाद बीज को पानी से निकाल लें और धूप में पतली परत के रूप में पक्के फर्श पर फैला कर पूर्णतया सुखा लें। सूखे बीज को दांतों से तोड़ने पर कड़क की आवाज़ आयेगी। सुखाये बीज को बिजाई तक किसी सूखे स्थान पर रखें। इस उन्नत सौर ताप उपचार से गेहूं की खुली कांगियारी, पत्तों की कांगियारी व करनाल बंट बीमारियों के बीज जन्य बीजाणुओं का प्रभावी नियंत्रण हो जाता है।

2. दवा उपचार : वीटावैक्स या बाविस्टिन 2 ग्राम या टैब्यूकोनाज़ोल (रैक्सिल 2 डी. एस.) 1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से सूखा उपचार करें।

पत्तियों की कांगियारी (फ्लैग स्मट) : पत्तों पर लम्बी काली धारियां नसों के साथ-साथ बनती हैं जो बाद में फट कर काला चूर्ण सा बन जाता है। यह रोग प्रदेश के शुष्क जिलों में अधिक पाया जाता है।

पत्तों पर लम्बी काली धारियां

1. वीटावैक्स या बाविस्टिन 2 ग्राम या टैब्यूकोनाज़ोल (रैक्सिल 2 डी. एस.) 1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से सूखा उपचार करें।
2. रोगी पौधों को उखाड़ कर सुखाने के बाद जला दें।
3. रोगग्रस्त खेतों में रोगग्राही किस्मों की बिजाई बार-बार न करें।
4. डब्ल्यू एच 283 व डब्ल्यू एच 896 रोगरोधी किस्में हैं।

करनाल बंट : रोगग्रस्त दानों में काले रंग का पाऊडर बन जाता है व इनसे सड़ी मछली जैसी गंध आती है। किन्हीं-किन्हीं बालियों में व कुछ दानों पर इस बीमारी का प्रकोप होता है। यह रोग प्राय: प्रदेश के नमी वाले क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है।

करनाल बंट रोगग्रस्त दाने

1. बीज का थाइरम 2 ग्राम या टैब्यूकोनाज़ोल (रैक्सिल 2 डी. एस.) 1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से सूखा उपचार करें।
2. रोगग्रस्त खेतों में रोगग्राही किस्मों की बिजाई न करें।
3. डब्ल्यू एच 283, डब्ल्यू एच 542, राज 3765 व डब्ल्यू एच 896 किस्मों में यह रोग कम लगता है।

ममनी (गेगला या सेहू) : इन बीमारियों से ग्रस्त पौधों के तनों का आधार फूल जाता है और पत्तियों पर टेढ़ी-मेढ़ी सी सलवटें दिखाई देती हैं। ऐसे पौधों की बालियां स्वस्थ पौधों की अपेक्षा छोटी व मोटी रह जाती हैं जिनमें स्वस्थ दानों की जगह काले रंग की ममनियां बन जाती हैं। इनमें हज़ारों की संख्या में सूक्ष्म सूत्रकृमि होते हैं। मौसम में कम तापमान व अधिक नमी के कारण पत्तियों व बालियों पर पीले रंग का चिपचिपा, लेसदार पदार्थ दिखाई देता है। ऐसी बालियां प्राय: मुड़ी हुई तथा बिना दानों की होती हैं।

(शेष पृष्ठ 5 पर)

[1]शोध छात्र, बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग
[2]विस्तार शिक्षा निदेशालय

राया उत्पादन : उन्नत कृषि क्रियाएं

- **रमेश कुमार, अशोक ढिल्लों एवं आशीष शिवरान**
कृषि विज्ञान केंद्र, महेन्द्रगढ़
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

राया हरियाणा प्रदेश के दक्षिण-पश्चिम क्षेत्रों की रबी मौसम की प्रमुख तिलहनी फसल है। प्रदेश के इन क्षेत्रों में इस फसल की खेती लगभग दो-तिहाई क्षेत्रफल में होती है। इस क्षेत्र के किसान फसल उत्पादन की उन्नत कृषि क्रियाएं अपनाकर अच्छी पैदावार लेने की कोशिश करते हैं। यही कारण है कि राया उत्पादन में प्रदेश का औसत पैदावार की दृष्टि से देश में पहला स्थान है। परन्तु अधिकांश क्षेत्र में एक ही तरह के फसल-चक्र अपनाने से अनेक प्रकार के समस्याएं उत्पन्न हुई हैं जिनके कारण फसल की पैदावार प्रभावित हो रही है। प्रतिकूल मौसम, तना गलन व मरगोजा का अत्यधिक प्रकोप, कम लागत के आदानों (जिप्सम, जीवाणु खाद, इत्यादि) के प्रयोग के प्रति किसानों की उदासीनता, उर्वरकों की संतुलित मात्रा तथा सामयिक प्रयोग में कमी, पैदावार को प्रभावित करने के प्रमुख कारण हैं। पैदावार में निरन्तरता बनाये रखने व अधिक पैदावार के लिये इन समस्याओं के समाधान हेतु सुझाई तकनीकों को अपनाना अत्यन्त आवश्यक है। उपर्युक्त समस्याओं के समाधान तथा फसल उत्पादन की अन्य क्रियाओं हेतु कारगर तकनीक उपलब्ध हैं। ज़रूरत है किसानों द्वारा अपनाने की। इस लेख में राया उत्पादन की उन्नत कृषि क्रियाओं का विवरण दिया जा रहा है ताकि किसान इन्हें अपनाकर फसल की अच्छी पैदावार ले सकें।

बिजाई : राया की अधिक पैदावार के लिये किसानों को चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित उन्नत किस्मों की बिजाई करनी चाहिये। किस्म का चयन करते समय खेत की मिट्टी, सिंचाई जल की उपलब्धता, बिजाई का समय इत्यादि तथ्यों को ध्यान में रखें। सिफारिश की गई उन्नत किस्मों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

आर एच 30 : यह किस्म सभी परिस्थितियों (बारानी, सिंचित, पछेती बिजाई इत्यादि) के लिये एक उत्तम किस्म है। इसका बीज मोटा होता है। पकने पर इस फसल की फलियां नहीं झड़ती। यह किस्म 135-140 दिन में पकती है तथा इसकी औसत पैदावार 9-10 क्विंटल प्रति एकड़ है।

टी 59 (वरूणा) : यह किस्म भी प्रदेश की सभी परिस्थितियों के लिये एक उपयुक्त किस्म है। इसका बीज मोटा होता है। इसकी औसत पैदावर 8-10 क्विंटल प्रति एकड़ है। पकने में यह किस्म 142-145 दिन का समय लेती है।

आर एच 8812 (लक्ष्मी) : इस किस्म की सिफारिश राज्य के सिंचित क्षेत्रों में समय पर बिजाई के लिये सिफारिश की गई है। इसकी फलियां मोटी, बीज मोटे तथा काले रंग के होते हैं। यह किस्म 142-145 दिन में पकती है। इसकी औसत पैदावर 9-10 क्विंटल प्रति एकड़ है।

आर एच 9304 (वसुन्धरा) : इस किस्म की सिफारिश प्रदेश के सिंचित क्षेत्रों में समय पर बिजाई के लिये की गई है। यह पकने में 130-135 दिन का सम्य लेती है। पकने के समय इसकी फलियां झड़ती नहीं हैं तथा औसत पैदावर 10.5 क्विंटल प्रति एकड़ है। यह किस्म पाला तथा तापमान के प्रति सहनशील है।

आर एच 9801 (स्वर्ण ज्योति) : इस किस्म की सिफारिश प्रदेश के सिंचित क्षेत्रों में पछेती बिजाई के लिये की गई है। यह किस्म 130-140 दिन में पक जाती है तथा पकने के समय इसकी फलियां नहीं झड़ती। यह किस्म पछेती बिजाई में अन्य किस्मों से अधिक पैदावार देती है। इसकी औसत उपज 7-8 क्विंटल है।

आर बी 50 : इस किस्म की प्रदेश के बारानी क्षेत्रों में बिजाई के लिए सिफारिश की गई है। इसकी फलियां लम्बी व मोटी होती हैं। यह पकने में 146 दिन लेती है तथा बारानी क्षेत्रों में इसकी औसत पैदावर 7.2 क्विंटल प्रति एकड़ है।

आर एच 406 : इस किस्म की सिफारिश प्रदेश के बारानी क्षेत्रों में समय पर बिजाई के लिये की गई है। यह पकने में 142-145 दिन का समय लेती है। इस किस्म के दाने मोटे होते हैं। इसकी औसत उपज 8.5-9.5 क्विंटल प्रति एकड़ है। यह किस्म सिंचित अवस्था में भी अच्छी पैदावार देती है।

आर एच 0749 : इस किस्म की प्रदेश के सिंचित क्षेत्रों में समय की बिजाई के लिये सिफरिश की गई है। इसकी फलियां लम्बी, मोटी तथा बीज मोटे होते हैं। इसकी औसत उपज 10-11 क्विंटल प्रति एकड़ है।

बिजाई का समय : राया की बिजाई के लिये 30 सितम्बर से 20 अक्तूबर का उपयुक्त समय रहता है। बिजाई के समय दिन का अधिकतम तापमान 28 डिग्री सैल्सियस से अधिक नहीं होना चाहिये।

बीज की मात्रा : सिंचित अवस्था में एक एकड़ की बिजाई के लिये 1250 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है। बारानी हालत में दो कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ जमीन में नमी के अनुसार प्रयोग करना चाहिये।

बिजाई का तरीका : फसल की कतारों में 30 सैं.मी. के फासले पर 4-5 सैं.मी. गहरी बिजाई करें। बिजाई के तीन सप्ताह बाद पौधे से पौधे की दूरी 10-15 सैं.मी. रखकर पौधों की छटनी करें।

खाद एवं उर्वरक : फसल की अच्छी पैदावर के लिये खादों का संतुलित उपयोग अति आवश्यक है। सिंचित फसल में 32 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (160 कि.ग्रा. अमोनियम सल्फेट या 128 कि.ग्रा. किसान खाद या 70 कि.ग्रा. यूरिया), 12 कि.ग्रा. फास्फोरस (75 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट या 25 कि.ग्रा. डी.ए.पी.), 8 कि.ग्रा. पोटाश (14 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) प्रति एकड़ की आवश्यकता होती है। फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा बिजाई से पहले डालें और शेष नाइट्रोजन की मात्रा पहले पानी के साथ डालें। फास्फोरस तथा गंधक की मात्रा पूरी करने के लिये सिंगल सुपर फास्फेट का प्रयोग करें क्योंकि इसमें फास्फोरस के अतिरिक्त 12 प्रतिशत गंधक होती है। यदि फास्फोरस की पूर्ति के लिये डी.ए.पी. का प्रयोग करना है तो उसमें 100 कि.ग्रा. जिप्सम प्रति एकड़ बिजाई से पहले की जुताई के समय डालें। असिंचित फसल में 16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (80 कि.ग्रा. अमोनियम सल्फेट या 64 कि.ग्रा. किसान खाद या 35 कि.ग्रा. यूरिया), 8 कि.ग्रा. फास्फोरस (50 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट या 17 कि.ग्रा. डी.ए.पी) प्रति एकड़ बिजाई से पहले पोर करें। इसके अतिरिक्त बीज उपचार एजोटीका तथा फास्फोटीका से करें।

सिंचाई : राया में दो सिंचाइयों, एक फूल निकलने के समय और दूसरी फलियां लगते समय, की आवश्यकता होती है। यदि पानी कम मात्रा में उपलब्ध हो तो एक सिंचाई फूल आने के समय देनी चाहिये।

खरपतवार नियन्त्रण : विभिन्न प्रकार के खरपतवारों की रोकथाम के लिये एक गोड़ाई तीन सप्ताह तथा दूसरी गोडाई पांच सप्ताह बाद करें। राया उत्पादन क्षेत्रों की रेतीली भूमि में मरगोज़ा (परजीवी खरपतवार) का प्रकोप काफी होता है जिससे पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसकी रोकथाम के लिये राऊंड अप/ग्लाईसेल (ग्लाइफोसेट 41% एस.एल.) की 25 मि.ली. प्रति एकड़ बिजाई के 25-30 दिन व 50 मि.ली. मात्रा प्रति एकड़ बिजाई के 50 दिन बाद 150 लीटर पाने में मिलाकर छिड़काव करें। छिड़काव के समय या बाद में खेत में नमी का होना ज़रूरी है। फसल को नुकसान से बचाने के लिये खरपतवारनाशक की सही मात्रा का प्रयोग करें तथा दोबारा छिड़काव न करें। ।

सरसों में खरपतवार नियंत्रण : कैसे करें

- **विरेंद्र सिंह हुड्डा[1], समुन्द्र सिंह एवं एस. एस. पुनिया**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सरसों हरियाणा प्रदेश में सर्द ऋतु में उगाई जाने वाली एक महत्त्वपूर्ण तिलहनी फसल है। पूरे भारत में सरसों के उत्पादन एवं उत्पादकता के हिसाब से हरियाणा प्रदेश का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हमारे देश में सरसों के अंतर्गत आने वाली कुल कृषि योग्य भूमि का केवल 8-9 प्रतिशत भाग हरियाणा में है लेकिन देश के कुल उत्पादन में हरियाणा प्रदेश का योगदान लगभग 12-13 प्रतिशत है। पिछले कुछ वर्षों से सरसों की उत्पादकता की दृष्टि से हरियाणा अग्रणी राज्य रहा है। भारतवर्ष की अत्यधिक दर से बढ़ती जनसंख्या के लिए अधिक मात्रा में खाद्यान्नों, का उत्पादन अतिआवश्यक है ताकि हर आदमी को समुचित भोजन प्राप्त हो सके। सभी प्रकार की फसलों के अधिक उत्पादन के लिए गुणवत्ता वाले बीज, संतुलित खाद, उचित मात्रा व अवस्था में सिंचाई, समय पर बिजाई या रोपाई एवं फसलों की बीमारियों, कीटों व खरपतवारों की रोकथाम बहुत ज़रूरी है जिसके लिए आधुनिक कृषि क्रियाओं को अपनाना ज़रूरी है। फसलों में होने वाले नुकसान में खरपतावारों का योगदान बहुत ज़्यादा है जो पैदावार को 10-60 प्रतिशत व कई बार इससे भी अधिक कम कर देते है। खरपतवारों के कारण न केवल फसलों का उत्पादन कम होता है बल्कि उत्पादित फसल व बीज की गुणवत्ता भी कम हो जाती है। खरपतवार न केवल फसल को मिलने वाले पोषक तत्वों (नाईट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश) को फसलों से चुरा लेते हैं बल्कि हमारी भूमि से पानी को भी अवशोषित कर लेते हैं। इसके अलावा खरपतवार कीड़े व बीमारियों को बढ़ावा देते हैं। अत: फसलों की सही पैदावार एवम् बीजों की गुणवत्ता के लिए खरपतवारों की रोकथाम अनिवार्य है।

निराई-गुड़ाई करके खरपतवारों को नष्ट करने का तरीका सदियों पुराना है व आज भी कारगर है। खुरपा, कस्सी, कसोले, व्हील हैण्ड हो व हाथ से खरपतवारों को आसानी से नष्ट किया जा सकता है। चौड़ी कतार वाली फसलों में कल्टिवेटर चलाकर भी खरपतवारों को नष्ट किया जा सकता है। निराई-गुड़ाई से न केवल खरपतवारों का नियंत्रण होता है बल्कि पौधों की जड़ों को हवा भी मिलती है व खेत में नमी का संरक्षण होता है। जो अधिक पैदावार में सहायक है। लेकिन निराई-गुड़ाई हर जगह सम्भव नहीं है। समय पर मज़दूर न मिलना, मज़दूरी की अधिक लागत, खेत की अवस्था व बारिश के मौसम में निराई-गुड़ाई सम्भव नहीं है। अक्सर खरपतवार फसल से पहले उग जाते हैं व फसल के अन्दर एक से अधिक बार उगने व अलग-अलग खरपतावारों के कारण निराई-गुड़ाई कई बार करनी पड़ती है जो हर जगह सम्भव नहीं है व उत्पादक लागत को बढ़ा देती है, ऐसी अवस्था में खरपतवारनाशकों का प्रयोग कर खरपतवारों पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

सरसों के मुख्य खरपतवार : बाथू, खड़ बाथू, प्याज़ी, सेंजी, जंगली धनिया, जंगली पालक, मैंणा, चटरी, मटरी, हिरण खुरी, कृष्ण नील, कंडाई, सरसों की दूधी आदि सरसों के मुख्य चौड़े पत्ते वाले खरपतवार हैं। जंगली जई, कनकी आदि सरसों के मुख्य घास जाति वाले खरपतवार हैं।

खरपतवार नियन्त्रण : निराई-गुड़ाई करके खरपतवारों को नष्ट करें। सरसों में दो गोड़ाइयां बिजाई के तीन व पांच सप्ताह बाद अवश्य करें। लेकिन निराई-गुड़ाई हर जगह सम्भव नहीं है। ऐसी अवस्था में खरपतवारनाशकों का प्रयोग कर खरपतवारों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। प्रयोगों में पाया गया है कि खतपतवारनाशक पेंडीमेथालीन (स्टॉम्प 30 ई.सी.) की 1.25 से 1.5 लीटर मात्रा प्रति एकड़ का फसल बिजाई के तुरन्त बाद इस्तेमाल करने से बहुत सारे खरपतवारों का नियन्त्रण हो जाता है। खतपतवारनाशक पेंडीमेथालीन का छिड़काव करते समय खेत में उपयुक्त नमी का होना बहुत ज़रूरी है। प्रयोगों में ये भी पाया गया है कि सरसों में घास जाति वाले खरपतवारों को आइसोप्रोटुरोन या प्यूमा पॉवर या टोपिक खरपतवारनाशक का बिजाई के 30-35 दिन बाद छिड़काव करके नियंत्रित किया जा सकता है।

ज़्यादातर तिलहनी फसलें वर्षा पर निर्भर करती हैं तथा अधिकतर वर्षा की दबी हुई नमी में खासकर रबी मौसम में बीजी जाती हैं। अत: ऐसी स्थिति में खेत की ऊपरी सतह सूखी रहती है इसलिए ज़मीन पर डाली जाने वाली खरपतवारनाशक रसायन की सिफरिश नहीं की जाती क्योंकि सूखी ज़मीन में इन दवाओं का असर खरपतवार नियंत्रण पर असरदार नहीं पाया गया है। ऐसी अवस्था में खतपतवारनाशक पेंडीमेथालीन की उपर दी गई मात्रा को बिजाई से 7-10 पहले डाल करके मिट्टी में मिलाने (पी.पी. आई) से भी बहुत सारे खरपतवारों का नियन्त्रण हो जाता है। जहां तक सम्भव हो सके, निराई-गुड़ाई का तरीका ही अपनाएँ। इस विधि/तरीके को अपनाने से बीज की गुणवत्ता बढ़ती है, साथ-साथ फसल की पैदावार भी अच्छी होती है।

सरसों में मरगोज़ा (ओरोबैंकी) खरपतवार : हरियाणा प्रान्त में सर्द ऋतु में उगाई जाने वाली फसलों में सरसों एक महत्वपूर्ण फसल है। मरगोज़ा (ओरोबैंकी) एक ऐसा नुकसानदायी जड़ परजीवी खरपतवार है जो सरसों की खेती के लिये एक भंयकर समस्या बन चुका है। साधारणत: मरगोज़ा खरपरतवार की समस्या उन क्षेत्रों में केन्द्रित है जहां पर सरसों की खेती हल्की रेतीली बालू मिट्टी वाली ज़मीनों, जिसमें पानी को पकड़े रखने की क्षमता अपेक्षाकृत कम एवं सिंचाई व्यवस्था मुख्यत: वर्षा आधारित एवं फव्वारा सिस्टम पर निर्भर है। दक्षिणी हरियाणा विशेषकर लोहारू, भिवानी, तोशाम, सतनाली, ढिगावा, बाढ़डा, दादरी, नारनौल, रेवाड़ी एवं उसके आसपास के क्षेत्रों में इसका अत्यधिक प्रकोप देखा गया है। स्थानीय भाषाओं में मरगोज़ा, रूखड़ी, सरसों का मामा, खुंबी, गुल्ली आदि नामों से भी जाना जाता है।

मरगोज़ा खरपतवार एक वार्षिक पौधा है जिसका प्रसार बीज द्वारा ही होता है। इसके बीज बहुत ही सूक्ष्म, अण्डाकार, गहरे भूरे-काले रंग के होते हैं जिन्हें नंगी आंखों से देख पाना मुश्किल है। इसकी बीज उत्पादन एवं अंकुरण क्षमता बहुत ही ज़बरदस्त है। इसका अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसका एक पौधा लगभग 1-2 लाख बीज बनाने की क्षमता रखता है तथा भूमि में सामान्यत: 10-15 साल पड़े रहने के बाबजूद इसका बीज पुन: उग सकता है।

आमतौर पर यह देखा गया है कि मरगोज़ा खरपतवार जनवरी महीने के आखिर तक ज़मीन के अन्दर रहकर ही सरसों की फसल को नुकसान पहुंचाता रहता है और फरवरी माह में उचित तापमान मिलने पर 7-10 दिन बाद फूल आ जाते हैं और फूल आने के 7-8 दिन बाद बीज बनने शुरू हो जाते हैं। सरसों की फसल पकने से पहले ही इसके बीज पक कर खेत में झड़ जाते हैं। कभी-कभी अगेती बोई गई फसल में बिजाई के 45-60 दिन बाद भी इसका पौधा दिखाई पड़ता है। दूसरे गैर-परजीवी खरपतवारों की अपेक्षा, सरसों में मरगोज़ा खरपतवार का नियन्त्रण करने में काफी

[1]जिला विस्तार विशेषज्ञ, के. वी. के. जींद

मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। अपने पूरे जीवनचक्र में काफी समय तक भूमिगत रहने, सरसों के पौधे की जड़ों से जुड़कर पानी, पोषक तत्वों एवं प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया की आपूर्ति करना, अद्‌भुत बीज प्रसार, अंकुरण एवं उत्पादन क्षमता के कारण परम्परागत खरपतवार नियन्त्रण के तरीके लगभग नाकाफी साबित हुए हैं। इसके इलावा जब तक इस पर जीवी खरपतवार का पौधा ज़मीन के ऊपर दिखाई देता है, सरसों की फसल को लगभग सारा नुकसान पहुंचा चुका होता है। इसलिए हमें ऐसे खरपतवारनाशक विधि की आवश्यकता है जो कि सरसों की फसल व पौधों को बिना नुकसान पंहुचाए इससे जुड़े परजीवी खरपतवार को नियन्त्रित कर सकें।

पिछले 14 साल से हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार के वैज्ञानिक सरसों में मरगोज़ा से होने वाली हानियों व इसकी रोकथाम के उपायों पर शोधकार्य कर रहे हैं। अनुभव के आधार पर यह पाया गया है कि जिस दवाई से मरगोज़ा का नियन्त्रण किया जा सकता है अगर उस दवाई का सही समय पर और सही मात्रा में उपयोग न किया जाये तो इससे सरसों की फसल को भी नुकसान होने की संभावना बनी रहती है। शोधकार्य से यह निष्कर्ष निकला कि ग्लाइफोसेट खरपतवारनाशक की 25 मि.ली. मात्रा प्रति एकड़ बिजाई के 30 दिन बाद व 50 मि.ली. मात्रा प्रति एकड़ बिजाई के 55-60 दिन बाद 125-150 ली. पानी में छिड़काव करने से मरगोज़ा का 60-90 प्रतिशत तक नियन्त्रण होता है। ध्यान रखें कि छिड़काव के समय या बाद में खेत मे नमी का होना ज़रूरी है इसके लिए छिड़काव से 2-3 दिन पहले या बाद में सिंचाई अवश्य करें। सुबह के समय जब पत्तों पर ओस व नमी बनी होती है तब भी छिड़काव न करें एवं दूसरा छिडकाव करते समय ध्यान रखें कि छिड़काव फूलों पर न गिरे। ।

(पृष्ठ 3 का शेष)

ममनियां

1. ममनी रहित साफ बीज का प्रयोग करें।
2. बीज में ममनी/गेगले वाले दाने हों तो बिजाई से पहले ऐसे बीज को पानी में डाल दें और अच्छी तरह हिलाएं। ममनी हल्की होने के कारण पानी की सतह पर तैरने लगेगी जिन्हें साधारण छलनी से निकाल कर जला दें।

दीमक : बिजाई से कटाई तक बहुत नुकसान करती है। हल्की ज़मीन में कम नमी तथा अधिक तापमान की अवस्था में बहुत अधिक नुकसान होता है। यह कीड़ा ऐसे क्षेत्रों में बहुत ही हानिकारक है। अत: ऐसी भूमि में बीज उपचार करना बहुत ही आवश्यक हो जाता है।

40 किलोग्राम गेहूं के बीज को 60 मिली. क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. या 200 मि.ली. इथियोन 50 ई.सी. (फॉसमाईट 50 ई.सी.) से उपचारित करें। इन कीटनाशकों में से किसी एक को पानी में मिलाकर 2 लीटर घोल बना लें। फिर बीज को एकसार फर्श पर बिछा दें और यह घोल ऊपर से छिड़क दें। बीज को हिला दें ताकि यह घोल सब बीजों को लग सके। उपचारित बीज को रात भर सूखने के बाद ही बोयें। उपर्युक्त उपचार से बीज फूल जाते हैं। इसलिए सीड-ड्रील का डिसचार्ज रेट 10 प्रतिशत बढ़ा दें।

जौ

दीमक के अतिरिक्त गेहूं के अन्तर्गत दी गई सिफारिशें इस फसल में भी लागू होती हैं।

दीमक : इस की रोकथाम के लिए 100 किलोग्राम जौ के बीज को 600 मि.ली. क्लोरपायरीफॉस 20 ई. सी. से उपचारित करें। इस कीटनाशक को पानी में मिलाकर कुल 12.5 लीटर घोल बनायें व गेहूं में बताये गए तरीके से उपचार करें। ।

ग्रीनहाऊस - पॉलीहाऊस में शिमला मिर्च की खेती

- राजेश कुमार, विकास कुमार शर्मा एवं गगन मेहता
उद्यान विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

साधारणतया शिमला मिर्च में भी अधिकतर किस्में असीमित बढ़वार करने वाली होती हैं। जिसमें फल पकने पर लाल, पीले व अन्य रंग के हो जाते हैं। शिमला मिर्च अधिकतर चार लोब वाली होती है। शिमला मिर्च की उपयुक्त किस्मों में फलों का भार 150-200 ग्राम तक होता है। पॉलीहाऊस में उगाने के लिए हमेशा सही किस्म का चुनाव बहुत आवश्यक है, जोकि अधिक उपज देने के साथ ही कीट एवं रोगों के प्रति प्रतिरोधी हो। आप पॉलीहाऊस में विभिन्न रंग वाली किस्में उगा सकते हैं।

पौध तैयार करना : किस्मों के चुनाव के बाद उनकी स्वस्थ पौध संरक्षित क्षेत्रों जैसे पॉलीहाऊस या ग्रीनहाऊस में प्लास्टिक ट्रे में ही करें जिसमें मिट्टी रहित मीडिया (कोकोपीट, वर्मीकुलाईट व परलाइट) को 3:1:1 अनुपात के आधार पर बनाया जाना चाहिए।

बीज दर: सामान्य किस्मों का बीज 800-1000 ग्राम तथा संकर प्रजातियों का 500 ग्राम बीज प्रति हैक्टेयर पर्याप्त है।

रोपाई : ग्रीनहाऊस के अन्दर पौध की रोपाई से एक माह पहले गहरी जुताई करके भूमि को अच्छी प्रकार तैयार करना चाहिए तथा भूमि से विभिन्न प्रकार के रोगाणुओं व कीटाणुओं के निदान के लिए मिट्टी को फार्मल्डीहाइड के घोल से उपचारित करना चाहिए। ग्रीनहाऊस की मिट्टी को पारदर्शी पॉलीथीन (30 से 40 माइक्रॉन मोटाई) से लगभग 15 दिन तक बढ़कर खुली धूप आने देना चाहिए जिससे पॉलीथीन चादर के अन्दर का तापक्रम बढ़े और गैस सरलता से कवक आदि को मार सके। इस प्रकार उपचारित मिट्टी को लगभग एक सप्ताह के लिए खुला छोड़ देना चाहिए तथा उसको उलटते-पलटते रहना चाहिए जिससे उसमें उपस्थित दवा (गैस) का अंश मिट्टी से निकल जाये तथा जब पौध की रोपाई की जायें तो दवा का विपरीत प्रभाव पौधे की वृद्धि व विकास पर न पड़े। पौध तैयार होने के बाद पॉलीहाऊस में पौध की रोपाई से पूर्व उठी हुई क्यारियां बनाई जाती हैं। जिनकी चौड़ाई 80-90 सैं.मी. हो सकती है तथा दो क्यारियों के बीच लगभग 40-45 सैं.मी. का स्थान खाली छोड़ा जाता है। क्यारियां बनाने के बाद प्रत्येक क्यारी पर दो ड्रिप पाइपों को 40-50 सैं.मी. की चौड़ाई पर डाला जाता है।

रोपाई का समय : अगस्त-सितम्बर। शिमला मिर्च की रोपाई-30-40 सैं.मी. पर पौधे से पौधे की दूरी पर रोपा जाता है। इस प्रकार 1000 वर्ग मीटर ग्रीनहाऊस में शिमला मिर्च के 3600-3800 पौधों की रोपाई की जा सकती है।

खाद एवं उर्वरक : शिमला मिर्च की भरपूर उपज लेने हेतु यह अति आवश्यक है कि उसमें पर्याप्त मात्रा में गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट खाद के साथ-साथ रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग भी किया जाये। अच्छी उपज प्राप्त करने हेतु एक हैक्टेयर क्षेत्र में 20 टन सड़ी गोबर या कम्पोस्ट की खाद 100 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फास्फोरस एवं 50 कि.ग्रा. पोटाश देना आवश्यक है। उर्वरकों की यह मात्रा भूमि परीक्षण के आधार पर कम व अधिक की जा सकती है। गोबर अथवा कम्पोस्ट खाद बुवाई से लगभग 15-20 दिन पूर्व खेत में समान रूप से बिखेर कर हल द्वारा जुताई करके मिट्टी में अच्छी तरह मिला दें। रोपाई से पूर्व नाईट्रोजन की आधी मात्रा एवं फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा खेत में डालकर मिलानी चाहिए।

खरपतवारों की रोकथाम : सब्जी की फसल में निराई-गुड़ाई करना अति आवश्यक है, जिससे खरपतवारों को समय पर नष्ट किया जा

सके। प्रथम निराई-गुड़ाई 15-20 दिन बाद करें तथा प्रयास करें कि शुरू के 45 दिनों तक खरपतवार नहीं रहें।

बीमारियों की रोकथाम: अच्छी उपज प्राप्त करने हेतु समय-समय पर बीमारियों का नियंत्रण करना अति आवश्यक है।

आर्द्रगलन : पौधशाला में लगने वाले रोगों में आर्द्रगलन सबसे हानिकारक रोग है। इस रोग के प्रमुख लक्षण अंकुरण का कम होना, बीज का अंकुरण से पहले गल जाना या अंकुरण के उपरांत पौधों का सड़कर गिरने लगना। इस रोग के कारण रोगग्रस्थ पौधे गिरकर मर जाते हैं।

रोकथाम :

1. गर्मी में पौधशाला की गहरी जुताई अथवा खुदाई करने से रोगों के बीजाणु नष्ट हो जाते हैं।
2. बीजों को थाइरम या कैप्टान की 2.5 ग्राम मात्रा प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।
3. पौधशाला में बीमारी दिखाई पड़ने पर थाइराम या कैप्टन 0.25 प्रतिशत का छिड़काव जड़ों के पास करना चाहिए।

फल का गलना व टहनीमार रोग: यह एक फफूँद रोग से होता है। फलों पर भूरे रंग के धब्बे पड़ने के बाद वह गलने लग जाते हैं। टहनियां उपर से सूखने लग जाती हैं।

रोकथाम : थाइरम या कैप्टान या एमीसान 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम के हिसाब से बीज का उपचार करें। 400 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या जिनेब या इण्डोफिल एम-45 को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से 10-15 दिन के अन्तर पर छिड़कें।

पत्ती मरोड़ और मोजैक (विषाणु): पौधों की बढ़वार रुक जाती है, पत्तियां मोटी, भद्दी, मुड़ी हुई हो जाती हैं। तने पर धारियां पड़ जाती हैं। फल बहुत ही छोटा रह जाता है जो मरा हुआ-सा दिखाई देता है।

रोकथाम : स्वस्थ और रोगहरित बीज लें। बीमारी फैलाने वाले कीड़ों की नर्सरी व खेतों में रोकथाम करें। 10-15 दिन के अन्तर पर कीटनाशक दवाइयों का छिड़काव करें, जैसा कि सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए बताया गया है। रोगी पौधों को आरम्भ में ही निकाल कर नष्ट कर दें। इस कीट के नियंत्रण के लिए 400 मि.ली मैलाथियन 50 ई.सी. की 200-300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करें।

दीमक : जिससे हल्के भूरे रंग के कीट (वर्कर) ज़मीन में रहकर जड़ों व तनों को काट देते हैं। पौधे मुरझाकर सूख जाते हैं। सितम्बर से नवम्बर तथा फरवरी-मार्च में इसका अधिक प्रकोप होता है।

रोकथाम एवं सावधानियां : यह दोनों जीव पत्तों से रस चूसते हैं जिससे पत्ते पीले पड़ जाते हैं। पौधे कमज़ोर हो जाते हैं। यह जीव मरोड़िया रोग भी फैलाते हैं।

रोकथाम एवं सावधानियां : 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. का छिड़काव 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15-20 दिन के अन्तर पर करें। प्रैम्पट 20 ई.सी अथवा 300 मि.ली. (फैनपरोपैथ्रिन 15 प्रतिशत+पाइरिपरोक्सीफेन 5 प्रतिशत) प्रति एकड़ को 200 लीटर पानी में मिलाकर फूल आने से पहले छिड़काव करें व 10-12 दिन के अंतर पर 2-3 बार दोबारा छिड़काव करें।

फलों की तुड़ाई : फल का आकार पूर्ण रूप से विकसित हो जाने पर इनको हरी अवस्था में ही तोड़ लेना चाहिए। यदि दिन के समय तुड़ाई करनी हो तो फलों को तोड़ने के उपरांत छाया में रखें। फलों की छंटाई करके उनके आकार के अनुसार फलों का चयन करके श्रेणियां बनाकर पैकिंग करके बाज़ार में भेजना चाहिए, जिससे बाज़ार भाव अच्छा मिलता है। रोग ग्रसित एवं कटे-फटे फलों को छांटकर निकाल देना चाहिए।

उपज : इसकी औसत उपज 100 से 250 क्विंटल प्रति एकड़ है। ।

बाकला : एक क्षमतावान दलहनी फसल

- वंदना, राजेश एवं रविंद्र चौहान
कृषि विज्ञान केंद्र, पंचकूला
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बाकला (*विसिया फाबा*) एक रबी दलहनी फसल है, जिसका क्षमतावान दलहनी फसलों में एक पौष्टिक सब्जी तथा दाल के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह फाबेसी कुल से है। बाकला को कई क्षेत्रीय नामों से जाना जाता है जैसे काली मटर, कद्दू हरालियाकी, राजरावन, बाकला-सेम आदि। विश्व की लगभग 70 प्रतिशत बाकला की पैदावार अकेले चीन देश में होती है। मिश्र, सीरिया, चीन और अमेरिका में इसकी मुख्य खेती होती है।

भारत में इसकी सिफारिश हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, बिहार, उत्तरप्रदेश, झारखण्ड और छत्तीसगढ़ के लिए की गई है। यह सीधी बढ़वार वाला मज़बूत 0.5 से 1.8 मीटर लम्बे तने वाला एक-वर्षीय पौधा है। इसकी फलियां 10-12 सैं.मी. लम्बी, रोंये युक्त होती हैं। बाकला में 24-28 प्रतिशत प्रोटीन होता है। इसकी नरम मुलायम फलियों को सब्जी की तरह इस्तेमाल किया जाता है। पके हुए दानों को छिलका उतारकर चने की दाल की तरह उपयोग किया जा सकता है। हरी फसल को पशुओं को चारे के रूप में भी खिलाया जा सकता है। बाकला में मैग्नीशियम, फॉस्फोरस, कैल्शियम, पोटाशियम, सल्फर, आयरन, थायमिन की भरपूर मात्रा होती है। भारतीय लोगों को संतुलित आहार प्रदान करने तथा कुपोषण से बचाने के लिए बाकला का अच्छा योगदान हो सकता है।

इसकी खेती कम पानी वाले और सिंचित क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा सकती है। अत: बाकला की खेती से अच्छी पैदावार लेने के लिए किसानों को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

जलवायु: यह एक रबी की फसल है। अच्छे जमाव के लिए 20-22 सैंटीग्रेड तापमान की आवश्यकता होती है। अच्छी बढ़वार और पैदावार के लिए ठण्डा मौसम उपयुक्त होता है। फसल पकने के समय शुष्क वातावरण होना चाहिए।

भूमि का चुनाव एवं खेत की तैयारी : बाकला की खेती के लिए दोमट मिट्टी से हल्की चिकनी मिट्टी उपयुक्त होती है। रेतीली, अम्लीय या क्षारीय ज़मीन पर इसे नहीं उगाना चाहिए। खेत की तैयारी के लिए एक बार मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करने के उपरान्त 2-3 बार हैरो या कल्टीवेटर से खेत को समतल बना लेना चाहिए। बुवाई के समय खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।

बिजाई का समय : मैदानी इलाकों में अक्तूबर के आखिरी पखवाड़े या नवम्बर के पहले तथा दूसरे सप्ताह में इसकी बिजाई कर देनी चाहिए। पहाड़ी क्षेत्रों में पानी की सुविधानुसार अक्तूबर मास में बिजाई करनी चाहिए।

बीज का उपचार : अच्छी पैदावार लेने के लिए बिजाई से पहले बीज का राईजोबियम के टीके से उपचार करें। बाकला की जड़ों में विद्यमान ग्रन्थियां वायुमण्डल नाइट्रोजन को ज़मीन में स्थापित करती हैं। इस उपचार से ग्रन्थियां अच्छी बनती हैं। टीका लगाने का ढंग इस प्रकार है: 50 से 60 ग्राम गुड़ को दो कप पानी में घोल लें। फिर इस घोल को एक एकड़ के बीजों में मिला दें। गुड़ लगे बीजों पर टीके को डालकर हाथ से मिलाएं ताकि द्रव्य बीजों पर अच्छी तरह लग जाए। बिजाई से पहले बीज को छाया

में सुखा लें। उपचारित बीज से लगभग 10 से 15 प्रतिशत अधिक पैदावार होने की सम्भावना होती है।

बीज की मात्रा व बिजाई की विधि : दाने की फसल के लिए 100 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टेयर और चारे की फसल के लिए 120 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर बीज डालना चाहिए। अच्छी पैदावार के लिए बिजाई कतारों में करनी चाहिए। कतार से कतार की दूरी 45 सैं.मी. और पौधे से पौधे की दूरी 7-10 सैं.मी. होनी चाहिए। अगर इसे चारे के लिए बीजना है तो कतार से कतार की दूरी 30 सैं.मी. और पौधे से पौधे की दूरी 4-5 सैं.मी. होनी चाहिए। बीज को 3-4 सैं.मी. की गहराई पर बोना चाहिए। यदि बीज का जमाव कम हो तो खाली स्थानों पर खुरपे की सहायता से दौबारा बीज बीजना चाहिए।

खाद व उर्वरक: बाकला को खाद की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती है। परन्तु कम उपजाऊ/कमज़ोर ज़मीन में 40 किलोग्राम शुद्ध नत्रजन तथा 60 किलोग्राम शुद्ध फास्फोरस प्रति हैक्टेयर डालना चाहिए। नाइट्रोजन आधी व फास्फोरस की पूरी मात्रा बिजाई से पहले जुताई पर डालें। नाइट्रोजन की बाकी आधी मात्रा को पहला पानी देने के बाद प्रयोग में लायें।

सिंचाई: एक सिंचाई बिजाई से पहले करनी चाहिए। इसके बाद पहली सिंचाई 30 दिन बाद, दूसरी फूल आने पर और तीसरी दाना बनने के समय करनी चाहिए। सिंचाई के साथ-साथ जल निकासी का भी सुनिश्चित प्रबन्ध होना चाहिए।

खरपतवार नियन्त्रण : खरपतवारों को नियन्त्रित करने के लिए 2-3 निराई-गुडाई करना आवश्यक होता है। निराई-गुड़ाई 15, 30 तथा 45 दिन के बाद करनी चाहिए।

कटाई व गहाई : जब बाकला की 80-85 प्रतिशत पत्तियां सूख कर गिए जाएं व फलियों का रंग काला पड़ जाए, तभी फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। अक्तूबर माह में बोई गई फसल 4 महीनों में फलियां तुडाई के लिए तैयार हो जाती है। फसल कटाई समय पर न करने से फलियां चटक कर ज़मीन पर दाने बिखेर देंगी और पैदावार में कमी आएगी। तत्पश्चात् फसल को 2-3 दिन तक खुली धूप में सुखाना चाहिए। इसके बाद हल्के हाथ से डण्डों से पिटाई करके दाने निकालें। ट्रैक्टर या बैलों से गहाई करके या थ्रैशर से भी इसके दानों को निकाला जा सकता है।

पैदावार : बाकला के दानों की औसत पैदावार 30-35 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। हरा चारा 40-50 टन प्रति हैक्टेयर होता है।

बीज भण्डारण : दानों को भण्डारण करने से पहले अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए ताकि इनमें 10-12 प्रतिशत तक नमी रह जाए। भण्डारण ठण्डी जगह पर कीटाणुरहित बोरियों में भरकर करना चाहिए, अधिक गर्मी के वातावरण में भण्डारण करने से बीज की अंकुरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। ।

लेखकों से अनुरोध

हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। लेख में अंग्रज़ी शब्दों का प्रयोग न करें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें**। अपना लेख हमें ई-मेल पर भी भेज सकते हैं : **haryanakhetihau@gmail.com**

बरसीम - एक गुणकारी चारा फसल

- **सतपाल, नवीन कुमार एवं डी. एस. फोगाट**
चारा अनुभाग, अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा में किसान की आजीविका में पशुधन का महत्वपूर्ण स्थान है। पशुओं की दुग्ध उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए संतुलित पशु आहार बहुत ज़रूरी है। सर्दियों में हरे चारे के रूप में बरसीम का एक महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि पशु आहार की दृष्टि से यह बहुत ही गुणकारी चारा माना जाता है। बरसीम के चारे में 20-22 प्रतिशत प्रोटीन की मात्रा होती है। बरसीम की एक विशेषता यह भी है कि इस फसल की कई बार कटाइयां ली जा सकती हैं और नवम्बर से मई तक इसका हरा चारा उपलब्ध रहता है। इसलिए बरसीम की खेती को वैज्ञानिक पद्धति से उगाना अति आवश्यक है ताकि इसकी ज़्यादा पैदावार ली जा सके।

उन्नत किस्में

मैस्कावी : यह बरसीम की पुरानी किस्म है और लगभग सारे उत्तर भारत में प्रचलित है। यह किस्म जल्दी फुटाव लेने वाली है तथा नवम्बर से मई तक 4-5 अच्छी कटाइयां दे देती है। इसकी औसत पैदावार 620-680 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

हिसार बरसीम 1 : यह बरसीम की उन्नत किस्म है जिसकी हरियाणा प्रदेश में काश्त के लिए सिफारिश की गई है। यह किस्म मैस्कावी के मुकाबले अधिक पत्तेदार, जल्दी बढ़वार एवं अच्छी गुणवत्ता वाली और 8-10 दिन अधिक हरी रहने वाली किस्म है। यह किस्म 700-740 क्विंटल प्रति हैक्टेयर हरा चारा और 90-100 क्विंटल प्रति हैक्टेयर शुष्क चारा देती है। यह किस्म तना गलन एवं जड़ गलन रोगों की प्रतिरोधी है।

हिसार बरसीम 2 : यह बरसीम की नई उन्नत किस्म है जिसकी हरियाणा प्रदेश में काश्त के लिए सिफारिश की गई है। यह किस्म मैस्कावी व हिसार बरसीम 1 के मुकाबले अधिक पत्तेदार, जल्दी बढ़वार एवं अच्छी गुणवत्ता वाली व अधिक दिन हरी रहने वाली किस्म है। यह किस्म 780-800 क्विंटल प्रति हैक्टेयर हरा चारा और 100-110 क्विंटल प्रति हैक्टेयर शुष्क चारा देती है। यह किस्म तना गलन एवं जड़ गलन रोगों के प्रति ज़्यादा प्रतिरोधी है।

मिट्टी : मध्यम से भारी मिट्टी बरसीम की फसल के लिए उपयुक्त होती है। यह फसल लवण सहनशील भी है और इसे हल्की खारी ज़मीन में भी उगाया जा सकता है। हल्की व रेतीली मिट्टी में बरसीम को नहीं लगाना चाहिए।

बिजाई का समय : बरसीम की फसल के लिए सितम्बर के आखिरी सप्ताह से लेकर अक्तूबर का पूरा महीना सर्वोत्तम माना गया है। पछेती बिजाई करने पर इसके हरे चारे की पैदावार कम हो जाती है इसलिए इसकी समय पर बिजाई कर देनी चाहिए।

बरसीम का टीकाकरण : बरसीम की अधिक बढ़वार व पैदावार लेने हेतु इसके बीज को एक खास किस्म के जीवाणुओं राइज़ोबियम कल्चर से बिजाई से पहले टीकाकरण करना चाहिए। राइज़ोबियम कल्चर के पैकेट हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के माइक्रोबायोलोजी विभाग से प्राप्त किए जा सकते हैं।

टीकाकरण के लिए 50 ग्राम गुड़ को आधे लीटर पानी में घोल लें। एक एकड़ के बीज (8-10 किलो) को फर्श पर डालकर ऊपर से गुड़ का घोल डालें और साथ में एक पैकेट कल्चर भी छिड़क दें। अब बीज को हाथ से अच्छी तरह मिला दें ताकि हर बीज पर जीवाणु चिपक जाएं। राइजोबियम के इस टीके को गुड़ के घोल में भी मिला सकते हैं। उपचार के

बाद बीज को छाया में सुखाकर खेत में बिजाई कर दें।

बीज की मात्रा व बिजाई: एक एकड़ खेत के लिए 8-10 किलो बीज को एक प्रतिशत नमक के घोल में डालकर रखना चाहिए ताकि हल्के बीज व 'कासनी' खरपतवार के बीजों को बरसीम से अलग किया जा सके।

पहली कटाई से अधिक तथा उत्तम किस्म का हरा चारा लेने के लिए बरसीम को जापानी सरसों या चाइनीज़ कैबेज के साथ मिलाकर बोना चाहिए। मिश्रित फसल में बरसीम के 8 किलो बीज के अतिरिक्त 500 ग्राम जापानी सरसों या चाइनीज़ कैबेज बीज एक एकड़ के लिए काफी हैं। बरसीम को छिड़का विधि द्वारा बोया जाता है।

खाद की मात्रा : बरसीम फसल में 10 किलो नाइट्रोजन व 28 किलो फास्फोरस प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई से पहले डालनी चाहिए। बाद में बरसीम खुद ही वातावरण से नाइट्रोजन लेती रहती हैं।

सिंचाइयां : बरसीम में पहली सिंचाई बहुत महत्वपूर्ण है अत: यह जल्दी ही कर देनी चाहिए। हल्की मिट्टी में प्रथम सिंचाई बिजाई के 3-5 दिन में तथा भारी मिट्टी में 8-10 दिन बाद अवश्य कर देनी चाहिए क्योंकि प्रथम सिंचाई का बरसीम की बढ़वार में विशेष योगदान होता है। अन्य सिंचाइयां मौसम के अनुसार 15-20 दिनों के अन्तराल पर करनी चाहिएं। अधिक तापमान पर अक्तूबर में भी सिंचाइयां 10-15 दिन के अन्तराल पर करनी चाहिएं। बरसीम में नमी की कमी बिल्कुल भी नहीं होनी चाहिए क्योंकि पानी की कमी का सीधा असर हरे चारे की पैदावार पर पड़ता है।

कटाइयां : बरसीम की फसल 60 दिन के बाद पहली कटाई के लिए तैयार हो जाती है। इसके बाद की कटाइयां 40 दिनों के अंतराल पर सर्दियों में तथा 30 दिन के अंतराल पर बंसत के दिनों में करें। इस प्रकार से बरसीम में 5-6 कटाइयां ली जा सकती हैं।

बीज तैयार करना : बीज तैयार करने के लिए बरसीम से कासनी तथा अन्य अवांछित पौधों को निकाल देना चाहिए। 25 मार्च के आसपास अन्तिम कटाई लेने के बाद एक सिंचाई तुरन्त कर देनी चाहिए। दूसरी सिंचाई 20 दिन बाद कर देनी चाहिए। बरसीम का बीज मई के अन्त में पक कर तैयार होता है और इसकी पैदावार लगभग 2 क्विंटल प्रति एकड़ होती है।

हानिकारक कीड़ों की रोकथाम

काली चींटी : यह चींटी अंकुरित होने वाले बीजों को उठा ले जाती है। इसकी रोकथाम के लिए चींटियों के रहने वाले स्थान पर मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत धूड़े का भुरकाव करें।

सफेद ग्रास हॉपर : यह कीड़ा अप्रैल माह में बरसीम की बीज वाली फसल पर आक्रमण करता है। इसकी रोकथाम के लिए 400 मिली लीटर मैलाथियान 50 ई.सी. को 300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड की दर से छिड़काव करें।

बीमारियां : बरसीम में मुख्यत: तना गलन रोग का प्रकोप होता है। यह रोग फफूंद के कारण होता है जो कि बीज या ज़मीन में मौजूद रहती है। यह तने के निचले हिस्से पर आक्रमण करता है जिसके फलस्वरूप तना सड़ना आरम्भ हो जाता है। इसकी रोकथाम के लिए तना गलन प्रतिरोधी किस्म एच.बी. 2 का प्रयोग करना चाहिए तथा रोगमुक्त खेत का चुनाव करना चाहिए और रोगवाले खेत को गर्मी में पानी से भर देना चाहिए ताकि इसमें वर्तमान फफूंद नष्ट हो जाये। यदि फसल में बीमारी दिखाई देने लगे तो 0.1 प्रतिशत बाविस्टिन के घोल से भूमि को सिंचित करें। इस कार्य के लिए 10 लीटर घोल एक वर्ग मीटर क्षेत्र के लिए पर्याप्त होता है। ।

अमरूद की शरदकालीन पैदावार बढ़ाने की तकनीक

- **अंकित गावरी, जीत राम शर्मा एवं प्रवीण**
उद्यान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अमरूद हरियाणा की एक महत्वपूर्ण फसल है। यह सूखा सहन करने की शक्ति रखता है तथा हर प्रकार की मिट्टी व जलवायु में हो सकता है। इसलिए अमरूद का फल राज्य के लगभग सभी जिलों में अच्छी पैदावार देता है। अमरूद एक पौष्टिक गुणों से भरपूर फल है। अमरूद स्कर्वी रोग की रोकथाम के लिए बहुत कारगर माना जाता है क्योंकि इसमें बहुत अधिक मात्रा में विटामिन 'सी' (150-200 मि. ग्रा. प्रति 100 ग्राम गुदा) होता है।

अमरूद की साल में दो फसल प्राप्त होती हैं - एक फसल जुलाई-अगस्त (वर्षाकालीन फसल) व दूसरी नवम्बर-जनवरी (शीतकालीन फसल) में। वर्षाकालीन फसल की पैदावार शीतकालीन फसल की पैदावार से अधिक होती है। लेकिन इसके फल अच्छे गुण वाले नहीं होते। बरसात वाली फसल में कीट व बीमारियां अधिक आती हैं जिस वजह से इसकी गुणवत्ता पर असर पड़ता है और ज़्यादा दिनों तक सुरक्षित नहीं रख सकते। इसके अलावा शीतकालीन फसल का भाव वर्षाकालीन फसल से अधिक मिलता है। इन्ही कारणों की वजह से शीतकालीन फसल लेना हमेशा लाभदायक माना जाता है। बरसात की फसल की पैदावार कम करके सर्दी की फसल की पैदावार को बढ़ाया जा सकता है जो कि फसल प्रबंध द्वारा ही संभव है। अमरूद फसल प्रबंध के बहुत से तरीके जैसे सिंचाई पर रोक, बसंत में आये फूलों की तुड़ाई, काट-छांट उपयोग में लेकर वर्षाकालीन फसल से बचा जा सकता है।

फसल प्रबंध के निम्न तरीके शीतकालीन फसल की पैदावार बढ़ाने में कारगर हैं :

सिंचाई पर रोक : हरियाणा में सर्दियों की फसल की तुड़ाई के बाद सिंचाई को फरवरी से मध्य मई तक रोक दिया जाता है और परिणामस्वरूप पानी की कमी के कारण फूलों का गिरना शुरू हो जाता है और पेड़ आराम अवस्था में चले जाते हैं। इसके बाद जून में पेड़ बेसिन को खोदकर खाद व सिंचाई प्रदान की जाती है और 20-25 दिन में पेड़ पर ज़्यादा मात्रा में फूल आते हैं जो सर्दी की फसल को बढ़ावा देते हैं।

पोषण : सर्दियों की फसल की मात्रा बढ़ाने के लिए खाद का प्रयोग अप्रैल-मई से बदलकर जून कर देना चाहिए। इस वजह से अधिक वानस्पतिक विकास होने के कारण वर्षाकालीन फसल से बचा जा सकता है और सर्दी की फसल ली जा सकती है।

छंटाई : छंटाई एक सस्ता एवं प्रभावी फल प्रबंध का तरीका है। छंटाई द्वारा फल प्रबंध इस सिद्धांत पर आधारित है कि अमरूद का फल नए वानस्पतिक विकास पर आता है। उचित समय पर शाखाओं कि छंटाई करके वर्षाकालीन फसल से बचा जा सकता है। चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार की सिफारिश अनुसार वर्षाकालीन फसल से बचने और शीतकालीन फसल में वृद्धि के लिए अप्रैल माह में शाखा की सिरे से 25-30 प्रतिशित तक छंटाई कर देनी चाहिए। ऐसा करने से वर्षाकालीन फसल का फूल ही नहीं आता और अंत में शीतकालीन फसल में वृद्धि होती है।

फूलों की तुड़ाई : वर्षा वाली फसल के फूलों की तुड़ाई, सर्दी वाली फसल में वृद्धि करती है। फूलों कि तुड़ाई मुख्यत: हाथों से या रसायनों द्वारा

(शेष पृष्ठ 11 पर)

बाग का वैज्ञानिक रेखांकन

- **हेमंत सैनी, सूबेसिंह एवं नरेन्दर सिंह**
कृषि विज्ञान केन्द्र, सदलपुर
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

फलों के बाग लगाना लोगों का शौक भी होता है और आमदनी का अच्छा खासा साधन भी साबित होता है। मगर बगैर पूरी जानकारी के बाग लगाना मुनासिब नहीं होता। पूरी पड़ताल करके वैज्ञानिक तरीके से बाग लगाने में ही ज़्यादा भलाई है। उत्पादन और जनसंख्या के हिसाब से हमें केवल 48 ग्राम फल और 136 ग्राम सब्जियां ही प्रति व्यक्ति प्रति दिन मिल रही हैं। फलों का उत्पादन देश की जनता की ज़रूरत के हिसाब से नहीं हो पा रहा है। उत्पादन बढ़ाने के लिए ज़रूरी है कि ज़्यादा से ज़्यादा क्षेत्र में बाग लगाए जाएं और उन स्थानों का सही इस्तेमाल किया जाए, जहां दूसरी खेती नहीं की जा सकती है।

बगीचे की अच्छी योजना वही कही जाती है जिसमें कि हर पेड़ को बढ़ने के लिए सही जगह मिल सके, पेड़ों की देखरेख करने में कोई परेशानी न हो व पेड़ देखने में सुंदर लगें। बगीचे में कम से कम खर्च हो, इसके लिए जहां तक हो सके पेड़ों को सीधी लाइन में लगाना अच्छा रहता है। फल के पेड़ों का सही दूरी पर रेखांकन करना। उद्यान का रेखांकन करने के लिए सबसे पहले खेत के किसी एक किनारे से ज़रूरी दूरी की आधी दूरी रखते हुए पहली लाइन का रेखांकन करते हैं। इसके बाद हर लाइन के लिए ज़रूरी दूरी रखते हुए पूरे खेत में दोनों किनारे से इसी विधि द्वारा रेखांकन कर लेते हैं व निशान लगी जगहों पर पौधे रोपते हैं। बगीचे की रूपरेखा बनाने की खास विधियां इस तरह से हैं : वर्गाकार विधि, आयताकार विधि, त्रिभुजाकार विधि, पंच भुजाकार विधि, षट्भुजाकार विधि व कंटूर विधि।

वर्गाकार विधि : यह विधि सबसे आसान है। इसे ज़्यादातर किसान इस्तेमाल में लाते हैं। किनारों से करीब 6 मीटर जगह छोड़कर पेड़ लगाने का काम शुरू करना चाहिए। इस विधि में पेड़ों को सीधी लाइन में लगाया जाता है और पेड़ से पेड़ व लाइन से लाइन की दूरी समान होती है। इस विधि में सबसे पहले एक आधार रेखा खींची जाती है, जो पौधे लगाने की दूरी के आधे अंतर पर खींची जाती है। माना कि पौधे लगाने की दूरी 10 मीटर है, तो पहली लाइन की दूरी 5 मीटर रखनी चाहिए। आधार रेखा के दोनों तरफ से समानांतर रेखाएं खींची जाती हैं और जहां पर ये रेखाएं खत्म होती हैं, वहीं पर इनको एक समानांतर रेखा से मिला देते हैं। इसके बाद तय दूरी पर आधार रेखा पर रेखाएं खींचते हैं। रेखाएं जहां पर एक दूसरे को काटती हैं, उन जगहों पर पौधे लगाए जाते हैं। इस विधि द्वारा पौधे एक सीधी रेखा में होते हैं और पौधों में एक तय दूरी होने की वजह से बाग घना नहीं हो पाता है। इससे सिंचाई, निराई गुड़ाई, कीटनाशक का छिड़काव, पौधों की कटाई छंटाई व सधाई वगैरह बागवानी के काम करने आसान होते हैं। इस विधि में 2 लाइनों में 4 पौधे मिलकर एक वर्ग तैयार करते हैं।

आयताकार विधि : यह विधि वर्गाकार विधि की तरह ही होती है। इसमें अंतर यह है कि लाइन से लाइन की दूरी पौधे से पौधे की दूरी से ज़्यादा होती है। इस विधि में 2 लाइनों में 4 पौधे मिलकर एक आयत बनाते हैं, इसलिए इसको आयताकार विधि कहते हैं। पेड़ों को फैलने व बढ़ने के लिए सही जगह मिलती है, जिससे बागवानी संबंधी काम करने में आसानी रहती है।

त्रिभुजाकार विधि : इस विधि में लाइन व पौधे की आपसी दूरी वर्गाकार विधि की तरह ही होती है। इस विधि में अंतर यह है कि दूसरी लाइन में पहली लाइन के दो पौधों के बीच एक पौधा लगाया जाता है। इस प्रकार तीन पौधे मिलकर एक त्रिभुज बनाते हैं। पेड़ों को फैलने व बढ़ने के लिए सही जगह मिल जाती है, जिससे बागवानी के काम करने में आसानी रहती है। इस विधि को अपनाने में कोई खास फायदा नहीं होता है।

पंचभुजाकारविधि : यह विधि वर्गाकार विधि की तरह ही होती है। इसमें अंतर इतना होता है कि हर वर्ग के बीच में एक पौधा ज़्यादा लगाया जाता है। इस विधि में वर्गाकार विधि से लगभग दो गुने ज़्यादा पेड़ लगाए जाते हैं, जिससे बगीचा ज़्यादा घना हो जाता है। इस वजह से बागवानी के काम करने में परेशानी होती है। इस विधि में चारों कोनों में स्थायी पौधे लगाए जाते हैं और बीच में पूरक पौधे (जैसे पपीता, फालसा, अनन्नास आदि जल्दी फल देने वाले पौधे) लगाए जाते हैं। जब स्थायी पौधों का फैलाव ज़्यादा हो जाता है, तो पूरक पौधों को काट कर निकाल देते हैं।

षट्भुजाकार विधि : इस विधि में 6 पौधे मिलकर षट्भुजाकार आकार बनाते हैं और सातवां पौधा इनके बीच में लगाया जाता है। इस विधि में पौधों को फैलने व बढ़ने के लिए सही जगह मिलती है। इस विधि में बगीचा ज़्यादा घना होता है, लेकिन बागवानी के काम करने में आसानी रहती है। इस विधि में 15 फीसदी ज़्यादा पेड़ लगाए जाते हैं। यह विधि मुश्किल होने की वजह से कम इस्तेमाल में लाई जाती है। इस विधि में लाइन की दूरी पौधों की दूरी से कम होती है। इस विधि में पौधों का फासला हर दिशा में बराबर होता है।

कंटूर विधि : यह विधि ज़्यादातर पहाड़ी इलाकों में जहां ज़मीन ऊंची नीची या ऊबड़ खाबड़ होती है, अपनाई जाती है। इसमें पौधे सीधी लाइन में न लगाकर ज़मीन की बाहरी रेखा के मुताबिक लगाए जाते हैं। पौधों को पानी की ज़रूरत पड़ने पर बरतनों से पानी दिया जाता है। इस विधि में दूसरी विधियों के मुकाबले पौधों की संख्या कम होती है। शहरों के पास वाले ज़्यादातर बागों में पंच भुजाकार विधि का इस्तेमाल किया जाता है, क्योंकि शहरों के पास की ज़मीन ज़्यादा महंगी होती है और इस विधि में अन्य विधियों के मुकाबले ज़्यादा पौधे लगाए जाते हैं। इस विधि में पूरक पौधों से उस वक्त आमदनी मिलनी शुरू हो जाती है, जब स्थायी पौधे बढ़ रहे होते हैं। इस विधि से बाग से जल्दी ही फल मिलने लगते हैं।

पौधों में निम्नलिखित सारणी अनुसार फासला रखें :

पोधों का नाम	कतार से कतार व पौधे से पौधा दूरी (मीटर में)	प्रति एकड़ पोधों की संख्या
नीम्बू व लेमन, अनार, आम कलमी (बौनी)	5	156
बेर, चीकू, बेल, आम कलमी (मध्यम तथा भारी)	8-9	72-56
आम बीजू	10	42
मीठा संतरा तथा ग्रेप फ्रूट	7	90
अमरुद, लोकाट, अंजीर, शहतूत, संतरा (किन्नो, पर्ल तथा संकर)	6-7	110-90
अंगूर (निफ्फिन, टेलीफोन विधि एवं बोवेर विधि)	3	435
अंगूर (शीर्ष विधि)	2	1054
लीची, आंवला	8-10	72-49
खजूर, आडू व अलूचा	6	110
पपीता, फालसा	1.5-2	1742-1054
नाशपाती	7-8	90-72
करोंदा	2-3	1054-435

नोट: पौधों और कतारों का फासला क्षेत्र की जलवायु व अन्य बातों को ध्यान में रखकर निर्धारित करें। ।

बीज उत्पादनः एक लाभकारी व्यवसाय

- **सुनील कुमार, अनील कुमार मलिक[1] एवं सतबीर सिंह**
बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

देश के खाद्यान्न उत्पादन में उत्तम गुणवत्ता वाले बीजों का विशेष महत्व है। विशेषज्ञों ने अनुमान लगाया है कि यदि किसान अधिक उपज देने वाली किस्मों के बेहतर गुणवत्ता वाले बीजों का उपयोग करें तो कृषि उत्पादन 20 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। हरियाणा के किसान जो अधिक उपज वाली प्रजातियों को अपनाने के लिए देश में अगुआ रहे हैं उन्हें प्रमाणित बीज के उत्पादन में अभी काफी कुछ करना है। उन्नत बीजों की मांग निरंतर बढ़ रही है क्योंकि ''जैसा बोओगे, वैसा काटोगे'' वाली कहावत किसानों की समझ में आ चुकी है। इसलिए यह ज़रूरी हो गया है कि किसान खुद अच्छे बीज उत्पादक बनें। इस लेख में उत्तम बीज पैदा करने के लिए आवश्यक कृषि तकनीकों का विवरण दे रहे हैं ताकि किसान इन्हें अपना कर बीज पैदा करने का व्यवसाय कर सकें।

बीज उत्पादन कार्यक्रम के स्रोत : जो किसान बीज उत्पादन कार्यक्रम को लेना चाहते हैं वे निम्नलिखित स्रोतों से संपर्क करें: राज्य बीज विकास निगम, राष्ट्रीय बीज निगम, कृभको, इफको

बीज की उपलब्धता : उत्तम किस्म का बीज तैयार करने के लिए आधार बीज या प्रमाणित बीज, प्रादेशिक बीज विकास निगम, राष्ट्रीय बीज निगम, कृषि विश्वविद्यालय, कृषि अनुसंधान केंद्र या पंजीकृत बीज विक्रेता से ही खरीदें। बीज के थैले पर लेबल, टैग व मोहर अवश्य लगे हुए होने चाहिएं।

बीज उत्पादन तकनीक

खेत का चुनाव : किसी भी फसल का बीज तैयार करने के लिए ऐसे खेत का चयन करें जिसमें वही फसल पहले साल न ली हो, यदि हो तो वह उसी किस्म व उसी दर्जे का बीज बोई हुई हो। ऐसा करना इसलिए ज़रूरी है कि आपके द्वारा तैयार किए जाने वाले बीज में मिलावट न हो।

बीज वाली फसल की अन्य किस्मों से दूरी: अगर आप कई एकड़ में एक ही किस्म तथा उसी दर्जे के बीज का उत्पादन कर रहे हैं तो इन खेतों में आपस में फासले की कोई ज़रूरत नहीं होती। परंतु इन खेतों के चारों और एक निश्चित दूरी तक अन्य किस्मों के पौधे नहीं होने चाहिएं। अगर आप अलग-अलग किस्म का बीज उत्पादन कर रहे हैं तो प्रत्येक किस्म के बीच में निश्चित दूरी अवश्य रखें। आमतौर पर पर-परागण वाली फसलों में यह दूरी ज़्यादा होती है, जैसे सूरजमुखी में 400 मीटर, बाजरा में 200 मीटर, राया में 25 मीटर। जबकि स्वयं परागण वाली फसलें जैसे गेहूं, चना, ग्वार, मूंगफली, सोयाबीन इत्यादि में यह दूरी बहुत ही कम यानी 5 मीटर रखें।

सस्य क्रियाएं : बीज वाली फसल उगाने के लिए बीज की मात्रा साधारण फसल से कुछ कम रखें ताकि पौधों की छंटनी करने में आसानी रहे ओर बीज भी सुडौल बने तथा अन्य कृषि क्रियाएं विभिन्न फसलों के लिए निर्धारित सिफारिशों के अनुसार करें।

छंटाई : बीमार तथा कमज़ोर पौधों की छंटाई करनी चाहिए। दूसरी किस्मों के पौधों की छंटाई फसल में बढ़वार के समय, फूल आने पर तथा पकने पर की जाती है। पर-परागण वाली फसलों में बढ़वार के समय तथा फूल आने से पहले की छंटनी महत्वपूर्ण होती है। फसल के बीज की गुणवत्ता के लिए उसकी शुद्धता 98 प्रतिशत होनी चाहिए।

[1]शोध छात्र, विस्तार शिक्षा निदेशालय

कटाई तथा निकलवाई : पूरी तरह पकने पर फसल काट लें। थ्रैशर या कंबाइन से बीज निकालें। निकालते समय बीच में दूसरी किस्म या मिट्टी इत्यादि की मिलावट न होने दें।

बीज की सफाई : बीच में घास का बीज, कच्चा बीज तथा मिट्टी हो सकती है। इसलिए बीज की सफाई मशीन से की जाती है, जिससे मिट्टी, कच्चा दाना तथा घास का बीज मशीन के पंखे द्वारा निकाला जाता है। बीज में उपर्युक्त पदार्थो की मात्रा 2 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

पैकिंग, लेबलिंग तथा जांच : बीज को साफ करने तथा सुखाने के बाद नई बोरियों में ही भरें। बीज की पूरी जानकारी लेबल पर लिखकर बोरियों में डालें तथा ऊपर भी बांधें। बीज का नमूना बीज की प्रयोगशाला में भेजकर जांच करवाएं।

बीज का भंडारण : बीज का भंडारण ठंडे साफ तथा सूखे स्थान पर किया जाता है। भंडारों में बीज को कीड़ों से बचाने के लिए कीटनाशक गोलियां उतनी ही छोड़ें जितनी से उसके बीज के जमाव पर असर न पड़े। बीज को अच्छी तरह सुखाकर रखें तथा उसमें नमी की मात्रा लगभग 12 से 14 प्रतिशत हो। ।

(पृष्ठ 9 का शेष)

की जाती है। हाथों से फूलों को तोड़ना बहुत ही मुश्किल होता है। इसलिए दूसरा तरीका यानि रासायनिकों का छिड़काव ही लाभकारी माना जाता है। फूलों की तुड़ाई के लिए मुख्य रूप से नेफ्थेलिन एसिटिक एसिड (NAA) का प्रयोग किया जाता है। चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार की सिफारिश अनुसार वर्षाकालीन फसल से बचने के लिए 30 ग्राम नेफ्थेलिन एसिटिक एसिड को 50 मि.ली. एल्कोहॉल में घोलकर 100 लीटर पानी में मिला कर फरवरी-मार्च में छिड़काव करना चाहिए। इस बात पर खास ध्यान रखना चाहिए कि छिड़काव उस अवस्था में करें जब पौधे पर 50 प्रतिशत से ज़्यादा फूल आ रहे हों। ।

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक निःशुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह निःशुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह निःशुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

जैव उर्वरक : वर्गीकरण, लाभ,उपचार एवं सावधानियां

- **निधि शर्मा, कविता रानी एवं जगदीश प्रसाद**
सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जैव उर्वरक अकेले या संयोजन में जीवित या अव्यक्त सूक्ष्मजीवों का समूह हैं। ये जैव उर्वरक कई यौगिकों के स्राव द्वारा फसल उत्पादकता में वृद्धि करते हैं जो पौधों की वृद्धि और विकास में सहायक होते हैं। ''माइक्रोबियल कन्सोरसिया'' लाभकारी सूक्ष्मजीवों का मिश्रण है जो पौधों के पोषण और स्वास्थ्य में मदद करता है। विशेष रूप से जब इन्हें कार्बनिक पदार्थों के साथ जोड़ा जाता है तो वे जैविक खाद के रूप में काम कर सकते हैं। इनके उपयोग से स्पष्ट हुआ है कि नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम उर्वरकों की अनुशंसित खुराक का 50% भाग कम किया जा सकता है। जिन तरीकों से ये जैव उर्वरक पौधे की वृद्धि को बढ़ाते हैं, उनमें पौधों की वृद्धि-विनियमन करने वाले पदार्थों का स्रवण, नाइट्रोजन स्थिरीकरण, कार्बनिक फास्फोरस का खनिजीकरण, खनिज पदार्थों की वृद्धि और पादप रोगजनकों का दमन शामिल हैं।

वर्गीकरण

नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले सूक्ष्मजीव : सबसे महत्वपूर्ण नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले सूक्ष्मजीव – *राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पिरिलम, सायनोबैक्टीरिया* और अजोला हैं जो मिट्टी के प्राथमिक निवासी हैं।

राइजोबियम : दलहनी फसलों के साथ सहजीवी संबंध बनाते हैं।

एजोटोबैक्टर : गेहूं, मक्का, सरसों, कपास और अन्य सब्जियों की फसलों के साथ प्रयोग किया जा सकता है।

एजोस्पिरिलम : मुख्य रूप से बाजरा, मक्का, गन्ना और गेहूं के लिए अनुशंसित है।

अजोला का उपयोग चावल के लिए जैव उर्वरक के रूप में किया जाता है और इसे चावल की फसल में 40-60 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर योगदान देने के लिए जाना जाता है।

फास्फोरस घुलनशील सूक्ष्मजीव : *पैंटोए एग्लोमेरान्स* या *एवंस्यूडोमोनाज पुटिडा*, कार्बनिक और अकार्बनिक फास्फोरस स्रोतों से अघुलनशील फास्फोरस को घोलने में सक्षम सूक्ष्मजीव हैं। ये मिट्टी में बाध्य फास्फोरस के विघटन के लिए अपने आसपास के क्षेत्र में कार्बनिक अम्लों का स्राव करते हैं।

अर्बुसकुलर मायकोराइजल कवक : *ग्लोमस, गिगासपोरा, अकाओलोस्पोरा, स्क्लेरोकेस्ट* और *एंडोगोन* पोषक तत्वों का, मुख्य रूप से फास्फोरस का स्थानांतरण करते हैं। उनके पास पोषक तत्वों के भंडारण के लिए पुटिकाएं हैं। इनमें मुख्य जाति ग्लोमस प्रतीत होती है, जिसकी कई प्रजातियां मिट्टी में वितरित होती हैं।

राइजोबैक्टीरिया (पीजीपीआर) : यह पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने वाले सूक्ष्मजीवों का समूह है जो जड़ों या आस-पास की मिट्टी का उपनिवेश करता है और फसलों के लिए फायदेमंद होता है। इनमें *स्यूडोमोनाज, एजोस्पिरिलम, एजोटोबैक्टर, बैसिलस, एंटरोबैक्टीरिया, राइजोबियम, एरविनिया* और *फ्लेवोबैक्टीरियम* के उपभेद शामिल हैं।

जैव उर्वरक के लाभ :

1. ये मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने के साधन हैं।
2. सूक्ष्मजीव क्रिया लंबी अवधि में होती है, जिससे मिट्टी की उर्वरता में सुधार होता है। यह मिट्टी के प्राकृतिक आवास को बनाए रखता है। यह फसल की उपज को 20-30% तक बढ़ाता है, रासायनिक नाइट्रोजन और फास्फोरस को 30% तक बदल देता है, और पौधे की वृद्धि को उत्तेजित करता है।
3. यह सूखे और कुछ मिट्टी जनित बीमारियों से भी सुरक्षा प्रदान कर सकता है।
4. जैव उर्वरक मिट्टी के प्राकृतिक पोषक चक्र को बहाल करते हैं और मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों का निर्माण करते हैं।
5. जैव उर्वरक ''पर्यावरण हितैषी'' होते हैं।
6. वे कार्बनिक पदार्थों का विघटन करते हैं और मिट्टी के खनिजीकरण में मदद करते हैं।

उपचार

बीज उपचार : जैव उर्वरक के प्रत्येक पैकेट (200 ग्राम) को 200 मिलीलीटर गुड़ के घोल में मिलाया जाता है। फिर इस घोल को एक हैक्टेयर के लिए आवश्यक बीजों में मिलाया जाता है ताकि बीज के ऊपर जैव उर्वरक की एक समान कोटिंग हो और फिर 30 मिनट के लिए छाया में सूखाया जाता है। उपचारित बीजों का उपयोग 24 घंटों के भीतर किया जाना चाहिए। जैव उर्वरक का एक पैकेट 10 किलो बीज के उपचार के लिए पर्याप्त है। *राइजोबियम, एजोस्पिरिलम, एजोटोबैक्टीरिया* और *फॉस्फोबैक्टीरिया* को बीज उपचार के रूप में लागू किया जाता है।

पौध उपचार : इस विधि का उपयोग रोपाई वाली फसलों के लिए किया जाता है। जैव उर्वरक के पांच पैकेट (1.0 कि.ग्रा.) एक हैक्टेयर के लिए आवश्यक होते हैं और 40 लीटर पानी के साथ मिश्रित होते हैं। रोपाई के मूल भाग को 5 से 10 मिनट के लिए घोल में डुबोया जाता है और फिर प्रत्यारोपित किया जाता है। *एजोस्पिरिलम* का विशेष रूप से चावल के लिए उपयोग इस विधि से किया जाता है।

मृदा उपचार : चार किलो अनुशंसित जैव उर्वरक 200 किलोग्राम खाद में मिलाया जाता है और रात भर रखा जाता है। यह मिश्रण बुवाई या रोपण के समय मिट्टी में शामिल किया जाता है।

जैव उर्वरकों के उपयोग में सावधानी :

- जैव उर्वरकों को नाइट्रोजन उर्वरकों के साथ कभी न मिलाएं।
- फफूंदनाशकों के साथ जैव उर्वरकों को कभी न लगाएं।
- जैव उर्वरकों को सीधे सूर्य के प्रकाश में उजागर न करें।
- जैव उर्वरकों को कमरे के तापमान पर संग्रहीत किया जाता है, न कि 0° से नीचे या 35° से ऊपर।
- इस्तेमाल किए हुए घोल को रात भर न रखें। ।



एक कदम स्वच्छता की ओर

नवम्बर मास के कृषि कार्य



फसलों में

धान

पकी फसल की कटाई के लगभग एक सप्ताह पहले खेत से पानी निकाल दें जिससे फसल को काटने में आसानी रहेगी। कटाई के 2-3 दिन बाद कटे पौधों को तख्ते या ड्रम पर पटक कर दाने अलग कर लें। दानों को सुखाकर बोरों में भर लें।

कपास

कपास की चुनाई करें लेकिन सुबह ओस में तथा अधखिले टिण्डों में से चुनाई न करें। आखिरी चुनाई के बाद खेत में भेड़-बकरियों व अन्य पशुओं को चरने हेतु छोड़ दें ताकि पत्तों व सूण्डी ग्रसित टिण्डों को खाने से सूण्डियां भी साथ में नष्ट हो जाएं।

मूंगफली

फसल की खुदाई करें। खुदाई से एक सप्ताह पहले सिंचाई कर देने से फलियां निकालने में आसानी रहती है व साढ़ी में यदि गेहूं की बिजाई करनी हो तो पलेवा करके खुदाई कर लें अन्यथा मूंगफली के दाने उग जाते हैं।

गेहूं

बारानी हालातों में सी-306 की बिजाई अक्तूबर के अंतिम सप्ताह से नवम्बर के पहले सप्ताह तक करें। कम उपजाऊ, कम सिंचित दशा व बारानी क्षेत्रों के लिए डब्ल्यू एच 1080 एवं डब्ल्यू एच 1025 का प्रयोग भी कर सकते हैं। मध्यम उपजाऊ व कम सिंचित दशा के लिए डब्ल्यू एच 1142 एवं डब्ल्यू एच 147 का प्रयोग करें। सिंचित उपजाऊ भूमि में समय पर बिजाई के लिए (25 अक्तूबर से 15 नवम्बर तक) डब्ल्यू एच 1105, एच डी 2967, डी बी डब्ल्यू 88, डी पी डब्ल्यू 621-50, एच डी 3086, डब्ल्यू एच 283, पी बी डब्ल्यू 550, डब्ल्यू एच 542 की सिफारिश की जाती है। पछेती बिजाई (26 नवम्बर से 25 दिसम्बर तक) के लिए डब्ल्यू एच 1021, डब्ल्यू एच 1124, डी बी डब्ल्यू 90, एच डी 3059 एवं राज 3765 किस्मों का प्रयोग करें। कठिया गेहूं के लिए डब्ल्यू एच 896, डब्ल्यू एच 912, डब्ल्यू एच डी 943 किस्मों का प्रयोग करें। पीला रतुआ प्रभावित हरियाणा के उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों में किसान पी बी डब्ल्यू 343, पी बी डब्ल्यू 373, डब्ल्यू एच 711, एच डी 2851, डी बी डब्ल्यू 17, सुपर, बरबट आदि किस्में न उगाएं क्योंकि ये किस्में पीला रतुआ के अत्यंत रोगग्राही हैं। सी-306 (सिंचित इलाके) की बिजाई इस माह के दूसरे सप्ताह तक पूरी कर लें। पछेती बिजाई के लिए 50 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ काफी है। बिजाई कतारों में, खाद-बीज ड्रिल या पोरा विधि से 20 सैं.मी. की दूरी पर करें। ध्यान रहे कि देसी किस्मों की बिजाई लगभग 6-7 सैं.मी. तथा बौनी किस्मों की बिजाई 5-6 सैं.मी. से अधिक गहरी न करें।

खरपतवारों की रोकथाम हेतु फसल की शुरू की बढ़वार में लगभग 30 दिन के अन्दर ही एक बार निराई-गुड़ाई करें। यदि खरपतवारों की रोकथाम शाकनाशकों द्वारा करनी हो तो चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों की रोकथाम के लिए 2,4-डी का प्रयोग करें। इसके लिए 250 ग्राम 2,4-डी (सोडियम साल्ट 80%) को या 300 मि.ली. 2,4-डी (एस्टर 34.6%) या एलग्रीप 8 ग्राम 250 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ में छिड़काव करें। गेहूं में मालवा, जंगली पालक, हिरणखुरी व अन्य चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु कारफेन्ट्राजोन ईथाईल (एफीनिटी) 40% डी. एफ. की 20 ग्राम प्रति एकड़ या सभी प्रकार के चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु ऐली एक्सप्रैस 50% डी.एफ. (मैटसल्फ्यूरॉन 10%+कारफेन्ट्राजोन 40% मिश्रण) की 20 ग्राम मात्रा प्रति एकड़+0.2% सहायक पदार्थ के हिसाब से 200-250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। यह छिड़काव बौनी किस्मों में बिजाई के लगभग 30-35 दिन बाद व देसी किस्मों में बिजाई के 40-45 दिन बाद (जब पौधों में 3-6 पत्तियां बन जाएं) करना चाहिए। ध्यान रखें 2,4-डी का प्रयोग गेहूं की डब्ल्यू एच-283 किस्म में तथा मिलवां गेहूं के साथ चना, सरसों आदि की फसल में न करें।

मंडूसी या कनकी व जंगली जई का नियंत्रण

आईसोप्रोटूरान 50% घु.पा. (टोलकान, टारस, ग्रेमिनान, नोसीलोन, रक्षक, हैक्सामार, इफ्को, आईसोप्रोटूरान, एग्रीलान, मिलरोन) गेहूं की बिजाई के 30-35 दिन बाद 800 ग्राम दवा का प्रति एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

या

आईसोप्रोटूरान 75% घु.पा. (एरिलोन, डैलरान, हिप्रोटूरान, नोसीलान, एगरोन, रक्षक) गेहूं की बिजाई के 30-35 दिन बाद 500 ग्राम दवा का प्रति एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। ऐसे क्षेत्रों में जहां पर कनकी में आईसोप्रोटूरान प्रतिरोधकता नहीं आई है, वहां आईसोप्रोटूरान 75% (डी.ई. नोसिल) का प्रयोग लाभदायक है। प्रतिरोधकता वाले क्षेत्र में आइसोप्रोटूरान का प्रयोग बंद कर दिया गया है।

या

आईसोप्रोटूरान-सहायक पदार्थ-सेलवेट (टेन्क मिक्स) : आईसोप्रोटूरान वर्गीय खरपतवारनाशक की 3/4 सिफारिश की गई मात्रा

तकनीकी सहायता :

- एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
- अश्वनी कुमार, संकाय सलाहकार (बागवानी)
- डी. एस. दुहन, सहायक वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान)
- तरुण वर्मा, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (कीट विज्ञान)
- रोहतास कुमार, सहायक वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
- वी. एस. हुड्डा, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान)
- देवेन्द्र सिंह बिढान, सहायक प्राध्यापक (पशु उत्पादन प्रबन्धन)
- राजेश दहिया, सहायक प्राध्यापिका (गृह विज्ञान)
- सूबे सिंह, सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

को 250 लीटर पानी में नान-आयोनिक सहायक पदार्थ (सेलवेट) के 0.1% के छिड़काव घोल में मिलाकर बिजाई के 30-35 दिन बाद छिड़कें। बाज़ार में अन्य उपलब्ध सहायक पदार्थ टी पॉल व सैलविट हैं।

गेहूं की बिजाई यदि दिसम्बर के प्रथम सप्ताह या बाद में हो तो आईसोप्रोटूरान 200 ग्राम प्रति एकड़ पहली सिंचाई के तुरंत पहले करने से जंगली जई, कनकी व बथुआ का नियंत्रण हो जाता है।

धान-गेहूं फसल-चक्र वाले क्षेत्रों में जहां 10-15 वर्षों से आईसोप्रोटूरान का प्रयोग किया गया है वहां कनकी में इस खरपतवारनाशक के विरुद्ध प्रतिरोधकता आ गई है। अत: प्रतिरोधकता से प्रभावित इलाकों में आईसोप्रोटूरान की बजाय निम्नलिखित में से किसी एक खरपतवारनाशक का प्रयोग करना ज़्यादा उचित रहेगा :

- क्लोडीनाफोप (टोपिक या मुल्ला या प्वाइंट या रक्षक प्लस या जय विजय या टोपल) 15% घु.पा. 160 ग्राम प्रति एकड़ बिजाई के 30-35 दिन बाद;

या

- सल्फोसल्फ्यूरान (लीडर, सफल-75 या एस एफ-10) 75% घु.पा. 13 ग्राम प्रति एकड़ + 500 मि.ली. पृष्ठ सक्रिय क्रमक/ चिपचिपा या सहायक पदार्थ बिजाई के 30 से 35 दिन बाद

या

- फीनोक्साप्रोप (पूमा सुपर) 10% ई.सी. 480 मि.ली. या फीनोक्साप्रोप (पूमा पावर) 400 ग्राम+200 ग्राम सहायक पदार्थ प्रति एकड़ बिजाई के 30 से 35 दिन बाद।

या

- पीनोक्साडैन (एक्सियल) 5 प्रतिशत ई.सी. 400 मि.ली. मात्रा प्रति एकड़ बिजाई के 30-35 दिन बाद।

कनकी प्रतिरोधकता वाले क्षेत्रों में मिले जुले (चौड़ी व संकरी पत्ती वाले) खरपतवारों के नियंत्रण हेतु पीनोक्साडेन (एक्सियल) या क्लोडीनाफोप (टोपिक या मुल्ला या प्वाइंट या जयविजय) फिनोक्सोप्रोप (पूमा सुपर या पूमा पावर) की ऊपर सिफारिश की गई मात्रा की बिजाई के 30-35 दिन बाद छिड़काव करें तथा इसके एक सप्ताह बाद 2,4-डी या मैटसल्फ्यूरान (एल्ग्रीप) या कारफेन्ट्राजोन (ऐफीनीटी) या ऐलीएक्सप्रैस की सिफारिश की हुई मात्रा का छिड़काव करें। उपरोक्त रासायनों को मिलाकर छिड़काव न करें।

गेहूं में मिले जुले खरपतवारों (चौड़ी व संकरी पत्तियों वाले) विशेषकर आइसोप्रोट्यूरान-प्रतिरोधी क्षेत्रों में टोटल (सल्फोसल्फ्यूरान + मैटासल्फ्यूरान, रेडीमिक्स सहायक पदार्थ सहित) की 16 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ या एटलांटिस (मिजोसल्फ्यूरान + आयडोसल्फ्यूरान सहायक पदार्थ सहित तैयार मिश्रण) की 160 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ या वेस्टा (क्लोडिनाफोप + मैटसल्फ्यूरान, रेडीमिक्स) की 160 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से प्रयोग करें। ध्यान रहे कि जिन खेतों में गेहूं के बाद ज्वार या मक्की की फसल लेनी हो उन खेतों में लीडर, टोटल व एटलांटिस का छिड़काव न करें।

उपर्युक्त में से किसी एक शाकनाशक दवा का 200-250 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

गेहूं में मिले-जुले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु एकोर्ड प्लस 22 प्रतिशत ई.सी. (फिनोक्साप्रोप 8 प्रतिशत+ मैटीब्यूजीन 14 प्रतिशत रेडीमिक्स) का 500 मि.ली. प्रति एकड़ के हिसाब से 200 लीटर पानी में घोलकर बिजाई के 30-35 दिन उपरांत (जब खरपतवार 2-4 पत्तियों के हों) छिड़काव करें। लेकिन गेहूं की किस्मों पी बी डब्ल्यू 550, डब्ल्यू एच 542 व डब्ल्यू एच 283 में इसका प्रयोग न करें।

गेहूं में यदि कनकी के प्रति शाक प्रतिरोधकता उत्पन्न हो गई है तो इसके नियंत्रण के प्रबन्धन के लिए बिजाई के तुरंत बाद व उगने से पहले पैण्डीमैथालीन 30 ई.सी. को 2 लीटर प्रति एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें। इसी के क्रमबद्ध में उगी हुई खरपतवारनाशक पिनोक्साडेन (एक्सियल) 5% ई.सी. 400 मि.ली. या क्लोडीनाफोप 15% डब्ल्यू. पी. 160 ग्राम या सल्फोसल्फ्यूरॉन 75% डब्ल्यू. जी. 13 ग्राम या टोटल 16 ग्राम या एटलांटिस 160 ग्राम का प्रति एकड़ की दर से बिजाई के 30-35 दिन बाद 200 लीटर पानी में छिड़काव करें।

गेहूं की बौनी किस्मों में यूरिया खाद 60 कि.ग्रा. व डी.ए.पी. 50 कि.ग्रा. या सिंगल सुपर फास्फेट 150 कि.ग्रा. तथा ज़िंक सल्फेट 10 कि.ग्रा. प्रति एकड़ के हिसाब से बोते समय ज़मीन में ड्रिल करें। हरियाणा के अम्बाला ज़िले में 40 कि.ग्रा. तथा अन्य क्षेत्रों में 20 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति एकड़ की दर से बोते समय ड्रिल करने की सिफारिश की जाती है। बोने के 21-25 दिन बाद हल्का पानी लगाने से पहले खड़ी फसल में 60 किलोग्राम यूरिया बखेर दें। रेतीली ज़मीन में गेहूं बोने के बाद ही दी जाने वाली नत्रजन खाद की मात्रा को दो बराबर हिस्सों में पहला तथा दूसरा पानी लगाने के बाद खेत में छिड़क दें तथा बत्तर आने पर खेत की गोड़ी करें। गेहूं की देसी किस्मों में खाद का प्रयोग बौनी किस्मों में दी जाने वाली खाद की मात्रा का आधा ऊपर बताए गए समय तथा तरीके के अनुसार प्रयोग करें।

गेहूं में लोहे की कमी में नीचे की पत्तियां हरी तथा नई निकलने वाली पत्तियां पीली धारीदार या पूर्णतया पीली हो जाती हैं। यह ट्यूबवैल के पानी में बाईकार्बोनेट की अधिकता के कारण प्रकट होती हैं। इसके उपचार के लिए गेहूं की फसल पर 0.5% फैरस सल्फेट घोल के 8-10 दिन के अंतर पर लगातार 2-3 छिड़काव करें। बाईकार्बोनेट को उदासीन करने के लिए पानी की जांच करवाकर आवश्यकता अनुसार जिप्सम डालें। फैरस सल्फेट को हरा कसीस के नाम से भी जाना जाता है। यह हरे रंग का होना चाहिए, लाल रंग का नहीं क्योंकि इस रंग के छिड़कने से लाभ नहीं होगा।

दीमक से फसल को बचाने के लिए बुवाई से एक दिन पहले 150 मि.ली. क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. पानी में मिलाकर कुल 5 लीटर घोल बनाएं व पक्के फर्श पर 100 किलोग्राम गेहूं को फैलाकर इस घोल से उपचारित करें।

ममनी या टुण्डू से बचाव के लिए बीजने से पहले ओसाई करके ममनीयुक्त दाने, जो रंग में काले-भूरे, आकार में छोटे, गेहूं के सामान्य दाने से करीब एक-चौथाई और हल्के होते हैं, निकाल दें। गेहूं के भारी स्वस्थ बीज पानी में नीचे बैठ जाते हैं और ममनीयुक्त दाने पानी के ऊपर तैरने लगते हैं जिन्हें निकाल कर नष्ट कर दें और नीचे बैठे बीज को छाया में सुखाकर बोयें। बालों व पत्तों के कंडुआ से बचाव हेतु वीटावैक्स या बाविस्टिन या (2 ग्राम/किलोग्राम बीज) या रैक्सिल-2 डी.एस. (1 ग्राम/किलोग्राम बीज) से बीज का उपचार करें। जिन खेतों में पिछले वर्ष पत्तियों का कंडुआ (फ्लैग स्मट) देखा गया हो, उनमें यथासंभव गेहूं न लगाएं या रोगरोधी किस्म डब्ल्यू एच 283 की काश्त करें। करनाल बंट नामक

बीमारी को रोकने के लिए थाइरम (2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) से बीजोपचार करें। थाइरम उपर्युक्त फफूंदनाशकों के साथ मिश्रणीय है।

गुडगांव व महेन्द्रगढ़ जिलों में मोल्या नामक बीमारी के कारण खेत में कहीं-कहीं पौधे बौने, पीले व सूखे से दिखाई देते हैं। इनसे बचाव के लिए ऐसे खेतों में गेहूं न लेकर जौ की रोगरोधी किस्म सी-164, सरसों, चना या बाजरा लें जिससे कि खेत में सूत्रकृमियों की संख्या घटती रहे। जिन खेतों में यह समस्या गंभीर हो रही है उस खेत में बिजाई से पूर्व 13 किलोग्राम फ्यूराडान 3-जी प्रति एकड़ मिला दें। ऐसे खेतों में गेहूं की बिजाई 15 नवम्बर से पहले करना भी ठीक है।

जौ

बारानी क्षेत्रों में जौ की समय पर बिजाई अक्तूबर माह के दूसरे पखवाड़े से शुरु कर दें व सिंचित क्षेत्रों में 15-30 नवम्बर के बीच कर लें। जौ के लिए बी एच-75, बी एच-885, बी एच-393, बी एच 946 व बी एच-902 बीजें। समय पर बिजाई के लिए बारानी में 30, सिंचित क्षेत्रों में 35 किलोग्राम व पछेती बिजाई के लिए 45 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ डालें। बिजाई कतारों में लगभग 22 सैं.मी. की दूरी पर करें। पछेती बिजाई और बारानी क्षेत्रों में 18-20 सैं.मी. कतारों का फासला अच्छा पाया गया।

जौ की अच्छी फसल लेने के लिए 24 कि.ग्रा. शुद्ध नाइट्रोजन (जो कि 52 कि.ग्रा. यूरिया खाद से ली जा सकती है) तथा 12 किलोग्राम शुद्ध फास्फोरस (75 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) का अवश्य प्रयोग करें। आधी नाइट्रोजन की खाद व पूरी फास्फोरस बिजाई के समय पोरें। बाकी नाइट्रोजन की खाद को पहले पानी के साथ दें। ज़मीन में पोटाश की कमी हो तो 6 कि.ग्रा. शुद्ध पोटाश (10 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) भी अवश्य डालें। रेतीली ज़मीन में प्रति एकड़ 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट का भी प्रयोग करें। बारानी जौ की फसल में 12 कि.ग्रा. शुद्ध नाइट्रोजन तथा 6 कि.ग्रा. शुद्ध फास्फोरस बिजाई के समय ड्रिल करें। ये मात्रा 25 कि.ग्रा. यूरिया व 14 कि.ग्रा. डी. ए. पी. से दी जा सकती है।

दीमक से बचाव के लिए 600 मि.ली. क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. को पानी में मिलाकर कुल 12.5 लीटर घोल बनाकर बुवाई से पहले दिन 100 किलोग्राम बीज का उपचार करें। ऐसे बीज को रात भर पक्के फर्श पर पड़ा रहने दें। नमी से गेहूं व जौ का बीज फूल जाता है अत: सीड ड्रिल के सुराख 10% ज़्यादा खोलें।

बोने से पहले बीज का कार्बेंडाज़िम या विटावैक्स (2.0 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) से उपचार करें। उपचार बंद कंडुआ, जालीदार व धारीदार धब्बों वाले रोगों से बचाव करता है।

नोट : यूरिया खाद लगातार डालते-डालते फास्फोरस, पोटाश तथा ज़िंक की बहुत कमी हो गई है। अत: अब अकेले यूरिया खाद से गेहूं या तिलहन की अच्छी फसल नहीं ली जा सकती। इसलिए नहरी तथा बारानी ज़मीन में नत्रजन तथा फास्फोरस 2 : 1 के अनुपात में डालें और 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ अवश्य प्रयोग करें। संतुलित खाद के बिना पूरी उपज लेना असंभव है।

लूसर्न

लूसर्न टाईप-9 बिजाई के लिए उत्तम किस्म है। इसकी बिजाई इस माह के प्रथम सप्ताह तक कर लें। 4-5 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ के हिसाब से कतारों में 30 सैं.मी. की दूरी पर 5 सैं.मी.गहराई में बीजें।

लूसर्न बोते समय 22 किलोग्राम यूरिया खाद तथा 250 कि.ग्रा. सुपर फास्फेट प्रति एकड़ के हिसाब से डालें। इस खाद को ड्रिल द्वारा 10 सैं.मी. गहराई तक डालना चाहिए। पिछले वर्ष वाली रिजका (लूसर्न) में नवम्बर में 312 कि.ग्रा. सुपर फास्फेट प्रति एकड़ डालें।

बरसीम

समय पर बीजी गई फसल की पहली कटाई इस माह के अंतिम सप्ताह में करें तथा 15-20 दिन के अंतर पर सिंचाई करें।

जई

जई की किस्म ओ एस-6, ओ एस-7 एवं एच जे 8 की बिजाई इस माह के मध्य तक पूरी कर लें। छोटे दाने वाली किस्मों (एच जे-114) का 30 किलोग्राम बीज व मोटे दानों का 40 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ काफी है। 16 किलोग्राम नाइट्रोजन (35 कि.ग्रा. यूरिया) बिजाई के समय तथा 16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (35 कि.ग्रा. यूरिया) पहली सिंचाई के समय डालें। चारे व बीज की अधिक पैदावार के लिये बीज को बिजाई से पहले एजोटोबैक्टर (तीन पैकेट प्रति एकड़ बीज) से उपचारित करें।

चना

चने की बिजाई यदि पूरी न की हो तो शीघ्र ही पूरी कर लें। चने की किस्म (हरियाणा चना नं. 1) पछेती बिजाई के लिए 35 कि.ग्रा. डी.ए.पी. या 100 कि.ग्रा. सुपर फास्फेट व 12 कि.ग्रा. यूरिया प्रति एकड़ के हिसाब से ड्रिल करके बीज के नीचे डालें। सिंचित इलाकों में 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट का प्रयोग भी करें।

चने की फसल को दीमक से बचाने के लिए 100 कि.ग्रा. बीज को 850 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. या 1500 मि.ली. क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. से बुवाई से एक दिन पहले उपचारित करें परंतु उपचार से पहले कीटनाशक को पानी में मिलाकर कुल दो लीटर घोल बनाएं व फिर 100 किलोग्राम बीज में मिलाएं।

रोगग्रस्त बीज द्वारा उत्पन्न अंगमारी से बचाव के लिए बाविस्टिन (2.5 ग्राम/किलोग्राम बीज) से बीजोपचार हितकर पाया गया है जो कि राइजोबियम का टीका लगाने से पूर्व किया जा सकता है।

सरसों व राया

उन्नत किस्में जैसे आर एच-30, टी-59, आर एच-8113, आर बी-50, आर एच-8812, आर एच-781, आर एच-819, आर एच 9304, आर एच 0119, आर एच-9801, आर एच-0406, आर एच-0749, आर बी-9901 की सिफारिश की गई है। तना गलन रोग से बचाव के लिए कार्बेंडाज़िम (2 ग्राम/किलोग्राम बीज) नामक दवा से उपचारित बीज की ही बिजाई करें।

सरसों, राया व तारामीरा की बिजाई शीघ्र ही पूरी कर लें। तोरिया, सरसों व राया की बारानी फसलों के लिए 16 कि.ग्रा. शुद्ध नाइट्रोजन तथा 8 कि.ग्रा. शुद्ध फास्फोरस प्रति एकड़ बिजाई के समय बीज के नीचे ड्रिल करें। यदि सरसों या तोरिया की फसल सिंचित ली जा रही है तो इसके लिए 24 कि.ग्रा. शुद्ध नाइट्रोजन और 8 कि.ग्रा. शुद्ध फास्फोरस/एकड़ प्रयोग करें। इसी तरह सिंचित राया के लिए 32 कि.ग्रा. शुद्ध नाइट्रोजन और 12 कि.ग्रा. शुद्ध फास्फोरस/एकड़ बिजाई के समय पोरा करें। रेतीली ज़मीन में 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ का भी प्रयोग करें। भारी ज़मीन में सारी खादें बिजाई के समय ड्रिल करें परंतु रेतीली ज़मीन में आधी नाइट्रोजन बोते समय और शेष आधी मात्रा पहला पानी लगाते समय डालें। सरसों एवं राया की बुवाई ट्रैक्टर चालित रीजर-सीडर से करें। फास्फोरस

की मात्रा सिंगल सुपर फास्फेट द्वारा डालना उपयोगी है क्योंकि इससे सल्फर की पूर्ति हो जाती है।

तारामीरा की अच्छी फसल लेने के लिए, जो कि कमज़ोर ज़मीन में ली जाती है, 12 कि.ग्रा. शुद्ध नाइट्रोजन/एकड़ बिजाई के समय डालें।

राया में मरगोज़ा (ओरोबैन्की) परजीवी खरपतवार के नियंत्रण के लिए राऊंडअप/ग्लाईसेल (ग्लाफोसेट 41% एस. एल.) की 25 मि.ली. मात्रा प्रति एकड़ बिजाई के 25-30 दिन बाद व 50 मि.ली. मात्रा प्रति एकड़ बिजाई के 50 दिन बाद 150 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। छिड़काव हमेशा फ्लैट फैन नोज़ल व नैप सैक स्प्रेयर से करें। अगर इस खरपतवारनाशक का सही समय पर व सही मात्रा में उपयोग न किया जाए तो इससे सरसों की फसल को भी हानि पहुंच सकती है। इसलिए फसल पर दोबारा या ज़्यादा मात्रा में छिड़काव न करें। ध्यान रखें कि छिड़काव के समय या बाद में खेत में नमी का होना ज़रूरी है इसके लिए छिड़काव से 2-3 दिन पहले या बाद में सिंचाई करें। सुबह के समय पत्तों पर ओस/नमी बनी होती है तब भी छिड़काव न करें।

इन फसलों में यदि चितकबरा कीट (पेंटिड बग) जिसको धोलिया भी कहते हैं और आरा मक्खी की सूण्डी का प्रकोप हो तो 200 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। बालों वाली सूण्डी (कातरा) का प्रकोप तोरिया, सरसों, बरसीम आदि फसलों पर हो जाता है। इसकी रोकथाम के लिए 500 मि.ली. एकालक्स 25 ई.सी. या 250 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 एस. एल. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

गन्ना

यदि दुमदार कंडुआ नज़र आए तो गन्ने के अंगुओं के ऊपर सावधानी से बोरी चढ़ाकर नीचे से काट लें, फिर पूरे पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें। लाल सड़न रोग से प्रभावित पौधों को भी उखाड़कर नष्ट कर दें। गन्ने में पायरिल्ला या सफेद मक्खी का आक्रमण हो तो 600-800 मि. ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 400-600 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

पानी की उपयोगिता बढ़ायें

पानी की उपयोगिता बढ़ाने के लिए यदि किसान अपनी बहुत रेतीली ज़मीन में एक भारी सा रोलर पानी लगाने के 48 घण्टे के बाद 6-7 दफा फेर दें और इसके बाद कम गहरी जुताई करके इसमें गेहूं आदि बीजें तो बाद में ऐसे खेतों में पानी कम लगाना पड़ेगा। रोलर का वज़न तकरीबन 800 कि.ग्रा. होना चाहिए और यह ट्रैक्टर से खींचा जा सकता है।

आवश्यक : ट्यूबवैल के पानी और मिट्टी को, मिट्टी पानी परीक्षण प्रयोगशाला से अवश्य टैस्ट करवाकर प्रयोग करें। पानी का नमूना लेने के लिए ट्यूबवैल को 1 से 2 घंटा चलाने के बाद एक साफ-सुथरी शीशे या प्लास्टिक की बोतल में पानी भर लें। उस बोतल पर अपना नाम व पता, खेत का नाम, ट्यूबवैल की गहराई तथा जिस किस्म की ज़मीन में पानी लगाना है, उसका विवरण लिख दें। इसी तरह जिस खेत में पानी लगाना है उस खेत की मिट्टी का नमूना 15 सैं.मी. गहराई तक का 4-5 जगह से लेकर, मिश्रण का ½ किलोग्राम नमूना लें।



सब्जियों में

टमाटर

पके फलों को तोड़कर बाज़ार भेजें। अधपके फलों को ही तोड़ लें और कमरे में रखें। पके हुए फलों को चिडियां खेत में नुकसान पहुँचाती हैं। विषाणु रोग को फैलने से बचाने के लिए तथा हानिकारक कीटों से रक्षा के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ खेत पर छिड़काव करें। विषाणु ग्रस्त पौधों को खेत से जड़ सहित उखाड़ कर नष्ट कर दें। फफूंद रोग होने पर 800 ग्राम डाईथेन एम-45 को घोलकर प्रति एकड़ खेत में छिड़काव करें। यह दवा मैलाथियान के साथ भी घोलकर छिड़की जा सकती है। दवा प्रयोग के बाद एक सप्ताह तक इन्हें न खायें और आवश्यकतानुसार 15 दिन की अवधि पर छिड़काव दोहराते रहें। फल छेदक कीट लगने पर 75 मि.ली. फैनवेलरेट 20 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। समय-समय पर काने फलों को तोड़ कर मिट्टी में दबा दें।

इस माह बसन्त ऋतु की फसल की पौध तैयार करने के लिए नर्सरी में बीजों की बिजाई करें। उन्नत किस्में जैसे हिसार अरुण, हिसार लालिमा, हिसार ललित या अन्य उचित किस्मों का प्रयोग करें। एक एकड़ के लिए 200 ग्राम बीज की आवश्यकता होगी। बीज को एमीसान 2.5 ग्राम या 2 ग्राम कैप्टान या थाइरम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।

बैंगन

बैंगन के कच्चे फलों को समय पर तोड़कर बाज़ार में भेजें। किसी चाकू या अन्य धारदार यंत्र से फलों को तोड़ें। गोभ व फल छेदक के लिए 75 मि.ली. स्पाइनोसेड (ट्रेसर 45 एस. सी.) को प्रति एकड़ 80 लीटर पानी में मिलाकर 15 दिनों के अंतर पर तीन छिड़काव करें। फल एक सप्ताह के बाद तोड़ें। काने फल और मुरझाई हुई कोंपलें तोड़कर भूमि में दबा दें। बसंत की फसल के लिए इस माह भी नर्सरी की बिजाई की जा सकती है। उन्नत किस्में जैसे बी आर 112, हिसार श्यामल व हिसार प्रगति बीजें। एक एकड़ खेत के लिए पौध तैयार करने के लिए 200 ग्राम बीज की आवश्यकता होगी। बीज को नर्सरी में बोने से पहले थाइरम या कैप्टान (2.5 ग्राम दवा प्रति किलोग्राम बीज) से उपचारित कर लें। फल गलने से रोकने के लिए 400 ग्राम डाईथेन एम-45 को 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें।

मिर्च

जुलाई-अगस्त में रोपी गई मिर्च की फसल यदि मसाले के लिए लेनी हो तो इस माह फीके लाल रंग के फलों को तोड़कर छत पर या अन्य स्थान पर सुखाएं। यदि फसल हरी मिर्चों के लिए है तो हरे फलों को तोड़कर बाज़ार भेजें तथा आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें। बसन्त ऋतु की मिर्च की फसल के लिए नर्सरी की बिजाई करें (यदि पहले न की हो तो) उन्नत किस्में जैसे एन पी 46-ए व पन्त सी-1 और पूसा ज्वाला का प्रयोग करें। एक एकड़ खेत के लिए लगभग 400 ग्राम बीज की आवश्यकता पड़ती है।

बिजाई से पहले बीजों को कैप्टान 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से उपचारित कर लें। एक ग्राम दवा को प्रति 400-500 ग्राम बीज की दर से उपचारित करें। शुरू से ही विषाणु से प्रभावित पौधे उखाड़ कर नष्ट कर

दें। उखाड़ते समय ध्यान रहे कि ऐसे पौधों का संपर्क स्वस्थ पौधों से न होने पाये। छिड़काव करने के बाद एक सप्ताह तक फलों को खाने के लिए प्रयोग न करें। फसल को चुरड़ा व अष्टपदी (माईट) कीड़ों से बचाने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर 15-20 दिन के अंतर पर छिड़कें।

भिण्डी

भिण्डी की फलियों को नर्म अवस्था में तोड़कर बाज़ार भेजें। वर्षा ऋतु में बीजी गई फसल इस माह तक समाप्त हो जाएगी। आवश्यकता होने पर सिंचाई करें।

कद्दू जाति की सब्जियां

कद्दू जाति की सब्जियां जैसे कद्दू, लौकी, तोरी, करेला, टिण्डा आदि के फलों को बाज़ार भेजें। आवश्यकता होने पर सिंचाई करें। खरीफ के मौसम में लगाई गई फसल इस माह में समाप्त हो जाएगी। इस वर्ग की सब्जियां अधिक ठण्डा मौसम सहन नहीं कर पार्ती। बसन्तकालीन (अगेती) फसल के लिए इस माह के अंत में पॉलिथीन की थैलियों में खाद-मिट्टी भर कर बिजाई कर सकते हैं। दिसम्बर से जनवरी माह तक उन्हें पाले से बचाकर रखें तथा फरवरी के शुरू में पौध वाली थैलियों के ऊपर के खोल को हटा कर बिना जड़ों को नुकसान पहुंचाए पौध खेत में लगा दें। ऐसा करने से बसन्तकालीन फसल जल्दी ली जा सकती है।

शकरकन्दी व अरबी

तैयार फसल की खुदाई करें तथा उन्हें भली प्रकार तैयार करके बाज़ार में बेचने के लिए भेजें।

मटर

मटर की अगेती किस्म अर्कल से इस माह फलियां मिलेंगी। उचित अवस्था में फलियों को तोड़ें और बेचने के लिए बाज़ार भेजें। फसल की आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा एक या दो बार फसल की निराई की आवश्यकता होती है।

बोनविले किस्म, जिसकी बिजाई आपने अक्तूबर माह में की है उसकी देखभाल करें। पहली सिंचाई बिजाई के लगभग तीन सप्ताह बाद, यूरिया खाद (13-15 किलोग्राम प्रति एकड़ की दर से) देकर करें। इस माह के प्रथम पखवाड़े में मटर की पछेती बिजाई की जा सकती है। बिजाई का तरीका व खेत की तैयारी वैसे ही करें जैसे पहले की फसल के लिए बताया गया था।

हानिकारक कीड़ों से फसल की रक्षा करें। मटर का खुरची (थ्रिप्स) से बचाव के लिए 60 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. सायपरमेथ्रिन 10 ई.सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ खेत में छिड़काव करें। यदि आवश्यकता हो तो 2 सप्ताह बाद छिड़काव दोबारा करें। पत्ती में सुरंग बनाने वाले कीड़ों से रक्षा पाने के लिए 400 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ खेत में छिड़काव करें। ध्यान रहे कि ये दवाएं मनुष्यों के लिए हानिकारक हैं। अत: दवा प्रयोग के बाद लगभग 3 सप्ताह तक फलियों को खाने के लिए प्रयोग न करें। चूर्णी रोग लगने पर 500 ग्राम घुलनशील गंधक (सल्फेक्स) या 200 ग्राम बाविस्टीन या कैराथेन 40 ई.सी. 80 मि.ली. 200 लीटर पानी में घोल कर प्रति एकड़ छिड़काव करें। बोने से पहले बीजों का कैप्टान या बाविस्टिन (2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) से उपचार करें।

फूलगोभी

अगेती फसल के तैयार फूलों को काट कर बाज़ार में भेजें। इस माह पूसा कातकी किस्म की फसल समाप्त हो जाएगी। अत: खेत को तैयार करके फूलगोभी की दूसरी फसल लगाएं। अर्द्ध पछेती किस्म हिसार-1 के खेत की देखभाल करें। सिंचाई करना आवश्यक है व खरपतवार निकालें तथा नाइट्रोजन वाली खाद खड़ी फसल में दो बार दें-प्रथम बार पौधरोपण के लगभग 3-4 सप्ताह बाद तथा दोबारा पौधों में गांठ (फूल) बनते समय। फूलगोभी की पछेती किस्म स्नोबाल-16 की पौध नर्सरी में तैयार करें। खेत की तैयारी के बारे में पहले बताया जा चुका है। स्नोबाल-16 किस्म के बीज की इस माह के प्रथम पखवाड़े में भी नर्सरी में बिजाई की जा सकती है, जैसा कि पहले बताया जा चुका है। फूलगोभी की पछेती किस्म स्नोबाल-16 की पौध तैयार करने के लिए बीज को बोने से पहले कैप्टान (2.5 ग्राम/किलोग्राम बीज) से उपचारित करें। अंकुरण के तीसरे व दसवें दिन बाद 0.2 प्रतिशत कैप्टान के घोल से नर्सरी को सिंचित करें।

हानिकारक कीड़ों (चेपा, कूबड़ वाला कीड़ा, सूण्डी और डायमण्ड बैक मॉथ) से रक्षा पाने के लिए 400 मिलीलीटर मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर एक एकड़ खेत में छिड़कें। दवा का प्रयोग आवश्यकता होने पर दस दिनों के बाद दुबारा करें। दवा के प्रयोग के बाद फसल को एक सप्ताह तक खाने के काम में न लें। इन कीड़ों की रोकथाम बंदगोभी, मूली आदि में भी इसी प्रकार करें। डायमण्ड बैक मॉथ के लिए 60 मि.ली. न्युवान 76 ई.सी. या 400 ग्राम बेसिलस थूरिंजिएंसिस (बी टी) बायोआस्प प्रति एकड़ खेत में छिड़कें।

बन्दगोभी और गांठगोभी

इन दोनों फसलों में से (अगेती फसल जो रोपी जा चुकी है) खरपतवार निकालें तथा खड़ी फसल में दो बार नाइट्रोजन वाली खाद (11 किलोग्राम यूरिया खाद प्रति एकड़ की दर से प्रति बार) दें तथा सिंचाई करें। प्रथम मात्रा पौध की रोपाई के 3-4 सप्ताह बाद तथा दूसरी मात्रा पौधों में गांठ बनने के समय दें। पछेती किस्मों की पौध तैयार होने पर उन्हें तैयार खेत में रोपें। खेत तैयार करने की विधि पिछले माह बताई गई है। इस माह भी पछेती किस्मों की प्रथम पखवाड़े में नर्सरी में बिजाई कर सकते हैं। बोने से पहले बीज को कैप्टान 2.5 ग्राम दवा प्रति किलोग्राम बीज से उपचारित करें। पहले रोपी गई फसल से तैयार गांठों को काटकर बाज़ार में भेजें।

पालक

पालक की तैयार फसल के पत्तों को काटकर व बंडलों में बांधकर बाज़ार भेजें। नियमित सिंचाई करें तथा खड़ी फसल में दो बार नाइट्रोजन खाद दें (22 किलोग्राम यूरिया खाद प्रति एकड़ खेत में प्रति बार दें)। यूरिया खाद देने के बाद सिंचाई करना आवश्यक है। पालक की नई बिजाई भी इस माह की जा सकती है। खेत की तैयारी व उन्नत किस्मों के बारे में पहले बताया जा चुका है।

लहसुन

लहसुन की फसल की सिंचाई करें, खरपतवार निकालें तथा बिजाई के लगभग एक माह बाद 16 किलोग्राम नाइट्रोजन अर्थात् 35 किलोग्राम यूरिया खाद प्रति एकड़ खेत की दर से खड़ी फसल में दें। टॉप ड्रैसिंग करें तथा सिंचाई करें।

मूली, शलगम व गाजर

देसी किस्मों की मूली की जड़ों को उखाड़कर, धोकर तथा गाजर व शलगम के पत्तों को काटकर, बाज़ार बेचने के लिए भेजें। जड़ों को नर्म अवस्था में उखाड़ना आवश्यक है क्योंकि सख्त होने के बाद ये खाने लायक नहीं रहतीं तथा बाज़ार में इनका उचित मूल्य भी नहीं मिलता। हानिकारक कीटों से बचाने के लिए 250-400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई. सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ खेत पर छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर दस दिनों के बाद यही छिड़काव फिर दोहराएं। दवा का प्रयोग करने के बाद एक सप्ताह तक फसल को खाने के काम में न लें। फसल की खुली जड़ों पर मिट्टी चढ़ायें तथा आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। पिछले माह बीजी गई विलायती किस्मों की फसल की देख-रेख करें। इस माह भी इन फसलों की विलायती किस्में बीजी जा सकती हैं। खेत की तैयारी के बारे में पहले बताया जा चुका है। बोने से पहले बीज को कैप्टान या थाइरम (2.5 ग्राम/किलोग्राम बीज) से उपचारित करना आवश्यक है।

प्याज़ (रबी)

प्याज़ की पनीरी की देखभाल करें, सिंचाई करें व खरपतवार निकालें। यदि बिजाई न की हो तो इस माह के शुरू तक कर लें।

खरीफ प्याज़

प्याज़ की फसल की देखभाल करें तथा सिंचाई करें। इस माह के अंत में खुदाई शुरू की जा सकती है। यदि गन्ठों की बढ़वार पूरी हो गई हो तो खुदाई से लगभग 12-14 दिन पहले सिंचाई बन्द कर दें। गन्ठों को बाज़ार बेचने के लिए भेजें।

आलू

बिजाई के लगभग 25-30 दिनों के बाद मिट्टी चढ़ाएं तथा इसी समय 24 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (55 कि.ग्रा. यूरिया खाद) प्रति एकड़ की दर से दें। हानिकारक कीड़ों मुख्यतया चेपा (अल) से रक्षा के लिए 300 मि. ली. रोगोर 30 ई.सी. को 300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर दस दिनों के अंतर पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करें। ध्यान रखें कि आलुओं की खुदाई से कम से कम तीन सप्ताह पूर्व दवाओं का प्रयोग बंद कर दें। इन कीटनाशक दवाओं के प्रयोग से विषाणु रोग का भी नियंत्रण हो जाएगा क्योंकि ये कीट भी इस बीमारी को फैलाते हैं। विषाणु रोग से ग्रस्त पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दें। अगेता झुलसा रोग लगने पर फसल पर 600-800 ग्राम ब्लाईटॉक्स या जाइनेब या मैन्कोजेब के 250 लीटर पानी के घोल से प्रति एकड़ 15 दिनों के अंतर पर छिड़काव करते रहें।

सौंफ, धनिया व मेथी

सौंफ की बिजाई 15 अक्तूबर से 25 अक्तूबर तक करें। धनिया व मेथी की सीधी बिजाई के लिए नवम्बर का माह उपयुक्त है। सौंफ को रोपाई विधि से भी लगाया जा सकता है। सौंफ की पी एफ 35, जी एफ 1, एच एफ 33, धनिया की नारनौल सलैक्शन, पंत हरीतिमा, हिसार आनन्द तथा मेथी की पूसा अर्ली बंचिंग, हिसार सोनाली व कसूरी उन्नत किस्में हैं, इनकी बिजाई नवम्बर माह में करें।

अन्य सब्जियां

ग्वार व लोबिया की फलियों को तोड़कर बाज़ार में बेचने के लिए भेजें। ये फसलें इस माह तक समाप्त हो जाएंगी। सलाद की फसल की संभाल करें तथा पौध की रोपाई न की हो तो करें। धनिया तथा मेथी की फसल की देखभाल करें तथा पत्तियां खाने लायक होने पर काट कर बाज़ार भेजें। सिंचाई करें तथा खाद दें।



फलों में

इस महीने तापक्रम कम होने लगेगा। इसलिए नये बागों में लगाये पौधों को ठण्ड व पाले से बचाना आवश्यक है। नये लगाये गए और छोटे पौधों के ऊपर बाजरा या सरकण्डे की झोंपड़ी बनाएं और पूर्व-दक्षिण दिशा में इसको खुला रखें ताकि पौधे को सूर्य की रोशनी मिल सके। पतझड़ वाले पौधों की पत्तियां ठण्ड से झड़ जाती हैं (जैसे अंगूर, आड़ू, अनार, आलूबुखारा आदि) इन पौधों को पाले से बचाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। पाले से बचाने के लिए बागों में उचित नमी को बनाए रखना भी आवश्यक है। इसलिए नियमित अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। अधिक पाले वाली रात को शाम के समय बागों की सिंचाई अवश्य करनी चाहिये व घास-फूस से धुआं करना चाहिये।

नींबू जाति के फल

मोटल लीफ (जस्ते की कमी) से पत्तों की नसों के दोनों ओर की जगह सफेद-सी हो जाती है। 500 मि.ग्रा. प्लांटामाईसिन और 2 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराईड का प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव दिसम्बर में करें।

आम

मिलीबग के अंडों को खत्म करने के लिए ज़मीन की निराई-गुड़ाई करें ताकि सूर्य की रोशनी से ये खत्म हो जाएं या जानवरों द्वारा खा लिए जायें। 15-20 दिन के अंतराल पर सिंचाई करें।

बेर

एक सिंचाई इस माह के अंत में फल लग जाने के बाद लाभप्रद रहेगी। इसके साथ-साथ आधी बची हुई यूरिया खाद की मात्रा 625 ग्राम प्रति पेड़ डालें। खाद पौधे के मुख्य तने से 3-4 फुट दूर डालनी चाहिए। 15-20 दिन के अंतराल पर सिंचाई करें। खाद मिट्टी की जांच के आधार पर डालनी चाहिए।

इस माह में 1.5% यूरिया व 0.5% ज़िंक सल्फेट का छिड़काव करने से न केवल वानस्पतिक वृद्धि होती है बल्कि फल, फूल भी कम गिरते हैं और आंतरिक गुणों में सुधार होता है।

बेर की फसल को मक्खी के प्रकोप से बचाने हेतु इस माह के शुरू में 500 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ बाग के पेड़ों पर छिड़कें। मध्य दिसम्बर में इन्हीं दवाइयों के छिड़काव को दोहराएं।

सफेद चूर्णी रोग या पाऊडरी मिल्ड्यू रोग, जिसके आक्रमण से फलों पर सफेद चूर्ण या पाऊडर-सा छा जाता है, से बचाव के लिए घुलनशील गंधक (सल्फेक्स) 500 ग्राम प्रति 250 लीटर पानी में या केराथेन के घोल (200 मि.ली. दवाई 200 लीटर पानी में) छिड़कें। पहला छिड़काव फूल निकलने से पहले तथा दूसरा उस समय करें जब फल मटर के दाने के बराबर हों।

फार्म प्रबन्ध

1. रबी फसलों की बिजाई का समय शुरू हो रहा है अत: किसान अपनी फार्म योजना बनाते समय उपलब्ध संसाधनों जैसे पानी, मज़दूरों की उपलब्धता व पूंजी को ध्यान में रखते हुए ही फसलों व किस्मों का चुनाव करें।
2. पिछले वर्ष जिन फसलों/किस्मों से अधिक मुनाफा मिला हो उन्हें अवश्य लगाएं।
3. रासायनिक खादों का प्रयोग अधिक न करके संतुलित मात्रा में ही करें ताकि फसल उत्पादन में लागत कम हो सके।
4. खरीफ फसल उत्पादों को एकदम इकट्ठा मण्डी में न ले जाकर समय-समय पर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में मण्डीकरण करें।



पशुओं में

गाय-भैंस

- ठंड की शुरूआत में पशुओं को ज़्यादा देखभाल की ज़रूरत होती है।
- शाम को पशुओं को अंदर या छत के नीचे बांधें।
- सुबह के समय एक दम से पल्ली/बोरी/पर्दा न हटाएं, थोड़ी-थोड़ी करके हटाएं।
- पशु आवास में पशुओं का बिछौना/मैट इत्यादि सूखा रखें। यदि मैट इस्तेमाल करते हैं तो उसे प्रतिदिन साफ करके धूप ज़रूर लगाएं।
- विशेषकर ठंडी हवाओं से पशुओं को बचाएं।
- सभी पशुओं में सुनिश्चित करें कि उन्हें मुंह-खुर का टीका लग गया हो।
- पशु चिकित्सक से परामर्श कर क्षेत्रीय ज़रूरतों के अनुसार मुंह-खुर/गलघोंटू/लंगड़ा बुखार का संयुक्त टीकाकरण करें।
- थनैला रोग से बचाव हेतु साफ-सफाई पर ध्यान दें, थनों को दूध निकालने के बाद भी धोएं, पशु का दूध-दोहने के बाद उसे कम से कम आधा घंटा बैठने न दें व कटड़ा/कटड़ी या बछड़ा/बछड़ी को दूध निकालने से पहले लगाएं।
- चारा भण्डारण को देखें कि कहीं दीवार के आसपास या फर्श पर पानी/नमी जाने से फफूंद न लग गई हो। काले पड़े या फफूंद लगे चारे को हटाएं व पशु को न दें।
- भेड़-बकरियों में ऊन उतारने के 21 दिन बाद परजीवीनाशक घोल में नहलाएं/डुबोएं।
- भेड़-बकरियों में पी. पी. आर. रोग का टीका लगवाएं।
- हरे चारे के लिए बरसीम व रिजका की बिजाई माह के मध्य तक पूरी कर लें।
- छोटे व नवजात पशुओं में गीलापन न्यूमोनिया का मुख्य कारक हो सकता है, अत: छोटे व नवजात पशुओं को बिल्कुल भी गीला न रहने दें व ठण्डी हवा से भी बचाव करें।
- जिन पशुओं को 3 महीने या अधिक समय गर्भधारण किए हो गए हों उन पशुओं का पशु चिकित्सक से परीक्षण अवश्य करवाएं।
- पशुओं को ठण्ड से बचाने के साथ-साथ ताज़ा हवा भी ज़रूरी है, अत: ध्यान रहे कि पशु बाड़े में गंदी हवा न ठहरे व तापमान नियंत्रित रखते हुए वातानुकूलन का भी ध्यान रखें।
- सर्दी के मौसम में पशुओं के दाना-मिश्रण में अनाज की मात्रा बढ़ाएं व प्रतिदिन 50-60 ग्राम खनिज मिश्रण ज़रूर दें।
- जो पशु ब्याने के 2-3 महीने बाद नए दूध नहीं हुए हैं, या गर्मी के लक्षण नहीं दिखा रहे हैं उन्हें पशु चिकित्सक से चैक ज़रूर करवाएं व ऐसे पशुओं को प्रतिदिन अंकुरित अनाज (गेहूं/बाजरा/मक्का इत्यादि) ज़रूर दें।
- मौसम में बदलाव के कारण पशुओं में बदहज़मी की समस्या हो सकती है, अत: हाज़मे के लिए काला नमक, हींग, हरड़, मोटी सौंफ, मीठा सोडा इत्यादि दे सकते हैं।
- सर्दियों में पशुओं की पानी की खपत कम हो जाती है, अत: ध्यान रहे कि पशुओं को ताज़ा और पीने योग्य पानी ज़रूर दें।



घर-आंगन में

ग्रामीण स्वच्छता एवं वातावरण स्वच्छता बनाए रखने के लिए एवं वातावरण को प्रदूषण से बचाने के लिए प्लास्टिक की वस्तुएं जैसे पॉलीथीन, ग्लास, प्लेट व प्लास्टिक बोतल का उपयोग बन्द करें। अब त्यौहारों का मौसम शुरू होने वाला है घर की सफाई रखने के लिए कूड़ा-कर्कट घर के बाहर निकाल कर न फैंके। सूखा व गीला कूड़ा किसी एक जगह एकत्रित कर दें। घर में प्लास्टिक व पॉलीथीन की जगह घर में तैयार कपड़े के थैले या जूट के थैले प्रयोग में लाएं। बच्चों को प्लास्टिक के टिफिन में खाना न दें उसकी जगह सूती कपड़ा प्रयोग करें। पानी की निकासी का ध्यान रखें तथा व्यर्थ पानी न बहने दें। रसोईघर के पानी को घर में बनी बगीची में उपयोग में लाएं। ❍

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951(ई) के तहत एक सूचना जारी की है कि 12 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स+ फंजीसाइड्स+हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 8 अगस्त 2018 से ही बन्द कर दिया गया है। इनकी सूची इस प्रकार है:

8 अगस्त, 2018 से प्रतिबंधित कीटनाशक

1. **बेनोमाईल** (Benomyl)
2. **कार्बाराइल** (Carbaryl)
3. **डायजिनॉन** (Diazinon)
4. **फेनारिमोल** (Fenarimol)
5. **फेन्थियॉन** (Fenthion)
6. **लिन्यूरॉन** (Linuron)
7. **मैथॉक्सी इथाइल मरकरी क्लोराइड** (Methoxy Ethyl Mercury Chloride)
8. **मिथाइल पैराथियॉन** (Methyl Parathion)
9. **सोडियम सायनाइड** (Sodium Cyanide)
10. **थियोमेटॉन** (Thiometon)
11. **ट्रायडमॉर्फ** (Tridemorph)
12. **ट्राइफ्लूरालिन** (Trifluralin)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

सही हॉर्स पॉवर का ट्रैक्टर कैसे खरीदें

- **नरेन्द्र, विनोद कुमार एवं सुशील कुमार**
फार्म मशीनरी और पॉवर इंजीनियरिंग विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कृषि की प्राथमिक मांग उपर्युक्त ऊर्जा और शक्ति होती है। खेत को तैयार करने और बीज बोने से लेकर फसल की कटाई, गहाई, सफाई, भण्डारण और परिवहन आदि विभिन्न कार्यों में विभिन्न मात्रा में और विभिन्न प्रकार की शक्ति का प्रयोग किया जाता है जिनका उल्लेख इस प्रकार है।

शक्ति (पॉवर) के प्रकार : हाथ के औज़ारों और यन्त्रों को चलाने के लिए शक्ति का मुख्य स्रोत मानव शक्ति है। सामान्यत: मानव की शक्ति लगभग 0.1 हॉर्सपॉवर मानी जाती है। इसलिए मानवीय स्रोत से मिलने वाली कुल शक्ति सारे कृषि कार्यों को पूरा करने की दृष्टि से बहुत कम है। सबसे अधिक पशुओं की संख्या भारत में होने से कृषि शक्ति का महत्वपूर्ण स्रोत पशु शक्ति ही रही है।

मुख्य रूप से बैल, ऊंट और भैंसा कृषि कार्यों के लिए प्रधान शक्ति स्रोत हैं। मध्यम आकार के एक बैलों की जोड़ी की क्षमता 1.0 हॉर्सपॉवर मानी गई है। खेतों की भौगोलिक स्थिति, तकनीकी जानकारी का अभाव यान्त्रिक उपकरणों की ऊंची प्रारंभिक लागत इत्यादि के कारण भारतीय किसानों को पशु-शक्ति के प्रयोग करने के लिए बाध्य करते हैं। कृषि शक्ति का एक अन्य और महत्वपूर्ण स्रोत यान्त्रिक-शक्ति एवं विद्युत शक्ति है जो ट्रैक्टरों, इंजनों और विद्युत मोटरों के प्रयोग से मिलती है। यह ईंधन को उपयोगी कार्य में बदलने के सक्षम साधन हैं। डीज़ल इंजन की दक्षता 32 से 38 प्रतिशत तक और पैट्रोल इंजन की दक्षता 25 से 32 प्रतिशत तक होती है। कृषि ट्रैक्टर और पंप सैट सभी डीज़ल से चलते हैं। हरियाणा में आमतौर पर ट्रैक्टरों की हॉर्सपॉवर सामान्यत: 20 से 50 तक होती है। इनका प्रचालन खेत के आकार और कुशल प्रयोग-विधि पर निर्भर करता है।

कृषि ट्रैक्टर का चयन : कृषि ट्रैक्टर का चयन आर्थिक रूप से लाभप्रद होना चाहिए, तभी उसमें लगाई गई पूंजी को उपयोगी माना जा सकता है। ट्रैक्टर का उपयोग आर्थिक दृष्टि से तब तक सही नहीं कहा जा सकता जब तक कि वह शक्ति के अन्य प्रभावकारी स्रोतों की भरपाई नहीं करता और प्रचालन लागत को कम नहीं करता।

ट्रैक्टर के चयन पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है, जिनका विवरण नीचे दिया गया है :

1. कृषि कार्यों के आधार पर : कृषि कार्य का प्रकार और उसकी मात्रा, प्रयोग में लाया गया ईंधन, तकनीकी जानकारी, कुशल प्रचालक और ट्रैक्टरों के प्रकार। कृषि कार्यों में ऐसे ट्रैक्टरों की आवश्यकता होती है जो कि फसल की बुवाई से पहले और कटाई के बाद गहाई और ढुलाई के समय तक का कार्य संतोषजनक ढंग से कर सकें। सामान्यत: ट्रैक्टर का प्रयोग खेत की जुताई-बिजाई यन्त्रों, निराई-गुड़ाई यन्त्रों, फसल सुरक्षा यन्त्रों, कटाई, गहाई और ढुलाई के यन्त्रों के प्रचालन हेतु किया जाता है। ट्रैक्टरों द्वारा स्थिर-मशीनों व यन्त्रों के पट्टे, घिरणी या पीटीओ शाफ्ट द्वारा शक्ति प्रदान की जाती है। इस प्रकार के कार्य करने में अलग से स्वचालित मोटर रखने की आवश्यकता नहीं होती, इसलिए ट्रैक्टर का चयन करते समय ऑपरेटर के आराम, शांतिपूर्ण और सरल संचालन पर गंभीरता पूर्वक विचार किया जाना चाहिए।

2. कृषि योग्य भूमि के आधार पर : किसान को अपने खेत और अन्य कृषि कार्यों के लिए आवश्यक हॉर्सपॉवर और आकार वाला ट्रैक्टर ही खरीदना चाहिए। सामान्यत: एक हैक्टेयर क्षेत्र के लिए ट्रैक्टर की 1.0 हॉर्सपॉवर उपयोगी मानी गई है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि 30-35 एकड़ क्षेत्र के लिए सामान्यत: 30-35 हॉर्सपॉवर का ट्रैक्टर अधिक उपयोगी रहता है। बहुफसली और गहन कृषि योग्य भूमि और अधिक भूमि वाले किसानों के लिए अधिक हॉर्सपॉवर का ट्रैक्टर उपयुक्त होगा क्योंकि बहुफसली और गहन कृषि योग्य भूमि और अधिक भूमि में सभी कृषि कार्य कम समय में पूर्ण करने होते हैं।

3. भूमि की किस्म एवं सिंचाई की आवश्यकता के आधार पर : किसी-किसी स्थान की मृदा अवस्था और भू-भाग भी ट्रैक्टर के चयन पर अधिक प्रभाव डालते हैं। छोटे आकार के ट्रैक्टर हलकी और बलुई मृदा में अधिक कृषि-कार्य कर सकते हैं, जबकि दोमट और चिकनी सख्त मृदा में अधिक हॉर्सपॉवर का बड़ा ट्रैक्टर उपयोगी होता है।

4. क्षेत्र की जलवायु और भौगोलिक स्थिति के आधार पर : शुष्क और गर्म जलवायु के क्षेत्रों में वायु शीतलन (एयर-कूल्ड) प्रणाली वाले ट्रैक्टरों का उपयोग लाभदायक होता है, क्योंकि भाप बनने और उबलने की क्रिया में बार-बार पानी की आपूर्ति की आवश्यकता नहीं होती। इसी तरह अधिक ऊंचाई और अधिक वायु दबाव वाले क्षेत्रों में भी वायु-शीतलन प्रणाली वाले ट्रैक्टरों का उपयोग लाभदायक होता है, क्योंकि ऐसे क्षेत्रों में पानी के जमने का खतरा रहता है।

5. रखरखाव और निर्माता द्वारा सेवा के आधार पर : खरीदने के बाद ट्रैक्टर निर्माता द्वारा सेवा प्रदान करने की सुविधा और निर्माता के स्थायित्व की भली-भांति जानकारी लेनी आवश्यक है। ऐसी स्थिति में यह विश्वास हो जाता है कि मरम्मत के लिए आवश्यक पुर्ज़ों और विश्वसनीय सेवा की पूर्ति तुरंत हो जाएगी। औज़ारों और पुर्ज़ों के बारे में निर्देश की पूरी सूची उपलब्ध होनी चाहिए जिससे चालक को पता चल सके कि उसका उपयोग कैसे किया जाए।

अत: यह स्पष्ट है कि ट्रैक्टर के चयन में उचित ध्यान देना अति आवश्यक है ताकि इसका भरपूर लाभ उठाया जा सके।

तकनीकी तौर पर भी ट्रैक्टर की आवश्यक शक्ति की गणना निम्नलिखित रूप से की जा सकती है :

1. मशीन का सबसे अच्छा आकार निर्धारित करें, जो उपलब्ध समय में ऑपरेशन पूरा कर सके।
2. चयनित मशीन के लिए शक्ति की आवश्यकता की गणना करें।

1. मशीन का सबसे अच्छा आकार : सबसे महत्वपूर्ण ऑपरेशन को पूरा करने के लिए मशीन की आवश्यक चौड़ाई की गणना उपलब्ध समय और परिचालन गति को जानकर की जा सकती है। एक मशीन की सैद्धांतिक क्षेत्र क्षमता की गणना निम्नलिखत समीकरण द्वारा की जा सकती है।

$$\text{सैद्धांतिक क्षेत्र क्षमता (TFC) (है./घंटा)} = \frac{\text{मशीन की चौड़ाई (मी.)} \times \text{परिचालन गति (कि.मी./घंटा)}}{10} \quad ...(1)$$

कुल क्षेत्रफल और कार्य समय ज्ञात करने के बाद, वांछित मशीन की प्रभावी क्षेत्र क्षमता की गणना इस प्रकार से की जा सकती है:

$$\text{प्रभावी क्षेत्र क्षमता (EFC)} = \frac{\text{कुल क्षेत्रफल (हैक्टेयर)}}{\text{कार्य समय (घंटा)}} \quad ...(2)$$

(शेष पृष्ठ 23 पर)

वाष्पीकरण और उससे होने वाले नुकसान

- **नरेन्द्र कुमार, अमनदीप सिंह एवं संजय कुमार**
कृषि अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वाष्पीकरण वह प्रक्रिया है जिस से पानी द्रवीय अवस्था से सीधा गैसीय अवस्था में परिवर्तित हो जाता है। तालाबों, कुंडों, नहरों और किसी जल भण्डारण वाले स्थान पर सूर्य की सीधी किरणें पड़ती हैं, तो पानी की ऊपरी सतह गरम हो जाती है। इसकी वजह से पानी वाष्प में परिवर्तित हो जाता है। वाष्पीकरण जल-चक्र के लिए बहुत ही आवश्यक है। यह किसी भी जगह की जलवायु और वहां की कृषि पर सीधा प्रभाव डालता है। परन्तु वाष्पीकरण के कारण जो पानी हमने जलाशयों, तालाबों में भंडारित कर रखा होता है वह वाष्पीकरण की वजह से उड़ जाता है। इसकी वजह से भण्डार किये हुए जल का एक बड़ा भाग बर्बाद हो जाता है। तालाबों और कुंडों में भारी जल स्तर गिरावट महसूस की जाती है। पानी की कमी की वजह से उसे उपयोग करने में कठीनाईआती है। जल भंडारों को बनाने में लगी भारी राशि के कारण यह आवशयक है कि इनमें भरे हुए जल की हर एक बून्द को संरक्षित करें और उसका इस्तेमाल करें। वाष्पीकरण न सिर्फ जल के स्रोतों से होता है बल्कि यह पौधों और भूमि के पृष्ठ से भी होता है। वाष्पीकरण होने और उसे बढ़ाने के बहुत से कारक हैं। हम इन घटकों को कम करके वाष्पीकरण को कम कर सकते हैं।

वाष्पन में सहायक कारक : वाष्पन सतह का तापमान, हवा में जल वाष्प की उपस्थिति, हवा का वेग, वायुमंडलीय दवाब, जल स्रोत का आकार और प्रकृति एवं बादलों का आवरण।

वाष्पीकरण के लिए हवा और वाष्पन सतह का तापमान दोनों ही बहुत महत्वपूर्ण हैं। इन दोनों के तापमान का मुख्य कारण सौर ऊर्जा है। हवा का तापमान जितना अधिक होगा उसमें उतनी ही अधिक पानी को वाष्प बनाने की क्षमता होगी। दूसरी तरह से जितना अधिक पानी की सतह का तापमान होगा पानी उतना ही अधिक वाष्प बनेगा। इसी कारण उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में वाष्पीकरण बहुत होता है। हवा का जल के वाष्प बनाने की क्षमता का सीधा सम्बंध उसके तापमान पर निर्भर करता है। समुद्र से दूर जो क्षेत्र अंतर्देशीय होते हैं वहां वाष्पीकरण ज़्यादा होता है। इसका मुख्य कारण ये है कि समुद्र के पास वाली जगहों में हवा में नमी ज़्यादा होती है और अंतर्देशीय क्षेत्रों में नमी कम होती है। भूमि की सतह के पास वाष्पीकरण का मुख्य कारण पवन है। हवा का वेग वाष्पीकरण पर सीधा प्रभाव डालता है। खुले स्थानों में हवा का वेग अधिक होता है जिसकी वजह से वाष्पीकरण अधिक होता है। इसके विपरीत जो क्षेत्र कम खुले होते हैं, वहां किसी वस्तु या पेड़ों की वजह से हवा का वेग कम हो जाता है। इसी कारण वाष्पीकरण की मात्रा बहुत कम हो जाती है। मेघाच्छादन सौर विकिरण में अवरोध डालता है और किसी स्थान की वायु के तापमान को प्रभावित करता है। इस प्रकार यह अप्रत्यक्ष रूप से वाष्पीकरण प्रक्रिया को नियंत्रित करता है।

वाष्पीकरण को रोकने के उपाय

जल के स्रोतों से वाष्पीकरण को कम करने के लिए कई तकनीकें अपनाई जाती हैं। जैसे - ऊंचाई पर जलाशयों का निर्माण करना, जल स्रोतों का आयतन अनुपात कम करना, जल के सतह के क्षेत्रफल को कम करना, कृत्रिम जलवाही स्तरों का निर्माण, वाष्पीकरण में सहायक ऊर्जा को कम करना, हवा के वेग को नियंत्रित करना आदि।

जलाशयों और तालाबों को ऊंचाई पर निर्मित करने से वाष्पीकरण में कमी आती है। ऊंचाई पर औसबिंदु तापमान में बढ़ोत्तरी और जल के सतह के तापमान में गिरावट आती है। जितना तल खुला अधिक होगा उतना ही उस से वाष्पीकरण अधिक होगा। कम सतह क्षेत्र और आयतन अनुपात बनाये रखने से वाष्पन में कमी होती है। कृत्रिम जलवाही स्तरों में समुचित भूमिकीय संरचनाओं का निर्माण किया जा सकता है। तब इन जल स्तरों में, जो वायुमंडल के सामने खुले नहीं हैं, भू-पृष्ठ जलाशयों के जल को पूरित किया जा सकता है। इस से भी वाष्पीकरण में कमी आती है। जल के स्रोतों पर सतह पर कोई रासायनिक द्रव्य या पाऊडर फैला देने से भी वाष्पीकरण में कमी आती है। इसके लिए हम सिटीले अलकोहल का इस्तेमाल कर सकते हैं। यह रासायनिक द्रव्य मुख्य रूप से प्रवर्तन का काम करता है। रासायनिक द्रव्य सतह पर फैला देने से सूर्य से पड़ने वाली किरणें जल सतह पर से ही परावर्तित हो जाती हैं। हवा के वेग को नियंत्रित करने के लिए हम पवन ब्रेक का इस्तेमाल कर सकते हैं। पेड़ों की सीधी कतार लगा कर हम पवन ब्रेक बनाते हैं। इस से पवन विक्षोभ एवं जल सतह पर पवन की कुल मात्रा में कमी आती है। जिसके कारण वाष्पीकरण कम हो जाता है।

भूमि के पृष्ठ पर वाष्पीकरण को रोकने के उपाय

1. पौधे के अवशेष 2. बजरी, घास फूस, प्लास्टिक और कागज़
3. तारकोल और बालू का मसाला, तेल और रासायनिक पदार्थ

पौधों के अवशेष वाली तकनीक में पहले की फसल के अवशेषों को निकाले बिना नई फसल सीधे बो दी जाती है। इससे सूर्य की सीधी किरणों का भूमि पर प्रवाह कम हो जाता है। पलवार करना भी भूमि से वाष्पीकरण को रोकने में बहुत अधिक सहायक है। पलवार करने से भूमि का हवा और सूर्य की किरणों से कोई सीधा संबंध नहीं रहता। जिस के कारण वाष्पीकरण न के बराबर हो जाता है। पलवार के लिए हम फसलों का भूसा, प्लास्टिक, बजरी और कागज़ का भी इस्तेमाल कर सकते हैं। इस से भूमि में नमी बनी रहती है। तेल और दूसरे रसायनों का इस्तेमाल भी वाष्पीकरण को कम करने के लिए किया जा सकता है। हेक्साडेकानौल और ऑक्टाडानौल नमक रसायन इसमें सहायक हैं। पौधे उगाना सबसे सस्ती और फायदेमंद तकनीक है।

वाष्पीकरण से होने वाली हानि

1. वर्ष 2000 में वाष्पीकरण के कारण कुल जल हानि 16 कि.मी.^{3} के बराबर थी जो कि उस समय की पूरी आबादी की पेयजल मांग के बराबर थी।
2. मई के महीने में वाष्पन दर 4 से 10 मि.मी. के बराबर होती है और जनवरी में यह 1 से 6 मि.मी. के बराबर होती है। इस से अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि गर्मियों में वाष्पीकरण के कारण कितना बहुमूल्य पानी बर्बाद हो जाता है।
3. हमारे देश के मध्य भाग में औसत वाष्पन 300 से 350 सैं.मी. तक और उत्तरी भाग में 100 से 150 सैं.मी. तक होता है।
4. हमारे देश का औसत वार्षिक वाष्पन 1400 से 1800 मि.मी. तक है। यदि हम इसे पूरे देश के क्षेत्रफल से गुणा करते हैं तो एक बहुत बड़ा पानी का आयतन प्राप्त होगा। जो कि ये अनुमान लगाने के लिए बहुत है कि कितना सारा पानी हमारे बिना इस्तेमाल के ही बर्बाद हो जाता है। ।

कृषि कार्यों में तेल एवं ऊर्जा की बचत

- नवीन कुमार, मुकेश जैन एवं प्रवीन
फार्म मशीनरी एवं ऊर्जा अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आजकल खेती के अधिकतर कार्य इंजन चालित यंत्रों से होते हैं, जिस वजह से खेती का खर्च बढ़ता जा रहा है। कृषि यंत्रों का सही ढंग से उपयोग करके किसान ईंधन खपत को कम कर सकते हैं। इसके लिए किसानों को निम्न बातों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है:

- नई मशीन के साथ दी गई निर्देश पुस्तिका को ध्यान से पढ़ें और उसमें दिए गये निर्देशों के अनुसार ही मशीन का प्रयोग करें।
- अपने ट्रैक्टर की हर रोज़ जांच-पड़ताल करें। हर सेकेण्ड एक बूंद भी टपकती रही तो प्रति वर्ष 2000 लीटर डीज़ल का नुकसान होगा।
- इंजन चालू करने पर यदि टैपिट से आवाज़ आए, मतलब इंजन में हवा कम जा रही है, उसे ठीक करवाएं अन्यथा डीज़ल की खपत बढ़ेगी।
- इंजन शुरू करने पर कुछ काला धुआं निकलता है पर यह जल्दी ही स्वयं साफ हो जाता है। किन्तु लगातार काला धुआं निकले, मतलब है इंजन पर अतिरिक्त बोझ पड़ रहा है या इंजेक्टर अथवा इंजेक्शन पम्प की कोई खराबी है। अत: काम के बोझ को उतना ही रखें जिससे इंजन काला धुआं न दे तथा डीज़ल भी ज़्यादा न लगे।
- इंजन चालू करने के बाद कुछ देर गर्म होने दें। ठन्डे इंजन से काम लेने पर पुर्ज़ों में घिसावट अधिक होगी एवं डीज़ल भी अधिक खर्च होगा।
- ट्रैक्टर की निर्देश पुस्तिका में दिए गए सुझाव अनुसार ही पहियों में हवा दवाब रखें अन्यथा डीज़ल की खपत बढ़ जाएगी।
- ट्रैक्टर से खेत में चौड़ाई के बजाए लम्बाई में कार्य करें। इस प्रकार खेत के किनारों पर घूमने में कम समय लगेगा। ट्रैक्टर का खाली घूमना कम होगा।
- उपकरणों का आकार और ट्रैक्टर चलाने की रफ्तार वैसी ही रखें जो इंजन की पूरी शक्ति से मेल खाये। ऊंचे से ऊंचे गीयर में चलाएं लेकिन ट्रैक्टर से धुंआ न निकले। अगर आपका ट्रैक्टर टॉप गीयर में भी पूरी गति के साथ आगे बढ़ता है, तो आपका उपकरण बहुत छोटा है। एक बड़ा उपकरण या कई उपकरणों की मिली-जुली व्यवस्था से आपको ट्रैक्टर की शक्ति का अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने और डीज़ल की बर्बादी रोकने में मदद मिल सकती है।
- अगर आप छोटे आकार के उपकरणों का इस्तेमाल करते हैं या कम स्पीड पर चलते हैं तो ईंधन की खपत 30 प्रतिशत तक बढ़ सकती है।
- पम्प सेट या थ्रैशर इत्यादि चलाने के लिए इंजन को उतने ही चक्करों पर चलाएं जिससे मशीन को पूरे चक्कर मिल सकें। मशीनों को ज़्यादा चक्करों पर चलाने से ईंधन खर्च बढ़ने के अतिरिक्त टूट-फूट की सम्भावना भी बढ़ जाती है।
- पम्प सेट में ज़्यादा बड़ा या छोटा पम्प या इंजन प्रयोग करने से डीज़ल की लागत बढ़ती है और पानी कम मिलता है। अत: जल की उपलब्धता के अनुसार ही सही इंजन और पम्प का चुनाव करें जो कम खर्च में ज़्यादा पानी दें।
- पम्प सेट को पानी की सतह के करीब लगाकर खर्च में बचत करें। पम्प को चलाने वाले पट्टे (बेल्ट) को सही कस कर रखें। पट्टे में कम से कम जोड़ हों तथा पट्टे और घिर्नियों को एक सीध में रखें।
- पम्प सेट से पानी बाहर फेंकने वाले नल को जितना ज़्यादा उठाया जाएगा तो उतना ही अधिक डीज़ल खर्च होगा। इसे उतना ही ऊँचा उठाएं जितने की आवश्यकता हो।
- इंजन आयल ज़्यादा पुराना होने पर उसकी शक्ति घटने लगती है तथा डीज़ल ज़्यादा खर्च होने लगता है। इसलिए निश्चित समय पर इंजन के तेल और फिल्टर को ज़रूर बदलें।

भूमि सरंक्षण के आर्थिक पहलू

- अरविन्द[1] एवं नरेंद्र कुमार
कृषि अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भूमि मानव के लिए अमूल्य धरोहर है। मानव जीवन को बनाये रखने के लिए भूमि संरक्षण की बात की जाती है। वास्तव में भूमि संरक्षण की विवेचना आर्थिक दृष्टि से नहीं की जानी चाहिए। सामान्य योजनाओं के अंतर्गत भूमि संरक्षण से प्राप्त आर्थिक लाभ उतने महत्व का नहीं होता जितना की मिट्टी के संरक्षण का होता है। भूमि का मालिक होने के कारण किसान ऐसी योजनाओं के लिए व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी भले ही न महसूस करें, फिर भी प्रत्यक्ष रूप में उत्पादन में वृद्धि से ऐसी योजनाओं की उपयोगिता को समझ सकता है।

तत्कालिक एवं संभावी उत्पादन क्षमता के अनुसार हर एक भूमि की मूल्य-सीमा होती है। परन्तु संसाधन के रूप में मिट्टी की कीमत पैसों से कहीं अधिक आंकी जानी चाहिए। सदियों तक इसी मिट्टी से जीविकोपार्जन हेतु उत्पादन किया जा रहा है। इसलिए भूमि संरक्षण उपायों को प्रयुक्त कर उत्पादन एवं आय के माध्यम से पूरे समाज को लाभान्वित किया जाता है। एक किसान ऐसे साधनों पर उतना ही खर्च कर सकता है जितना कि उसे लाभ होता है लेकिन ऐसी विचार धारा समाज, प्रदेश एवं राष्ट्र से अपेक्षित नहीं होनी चाहिए।

कृषि संरक्षण में संभवत: भूमि-संरक्षण ही एक ऐसा उपाय है जिसका प्रतिफल (पैसों के रूप में) बहुत धीमा है। वेदिकाओं के निर्माण के बाद संभवत: उतना उत्पादन नहीं होगा जितना वेदिका बनने के पूर्व होता रहा होगा। इसका मुख्य कारण वेदिकाओं के निर्माण में प्रयुक्त ऊपरी मिट्टी से नीचे की अपेक्षाकृत कम उत्पादक मिट्टी में खेती करने से होता है। इसी प्रकार जंगलों के लगाने के बहुत वर्षों बाद जंगल की उपयोगिता समझी जाती है। इसी तरह समतलीकरण, मेड़बंदी या अन्य भूमि संरक्षण उपायों को प्रयुक्त करने से उपज आने वाले कुछ वर्षों में घट सकती है परन्तु आगे आने वाले वर्षों में इसकी आपूर्ति निश्चित रूप से हो जाती है। यदि कोई किसान या संस्था उत्पादन के अन्य लागतों जैसे उर्वरक, बीज, सिंचाई आदि की उपयोगिता की तुलना भूमि-संरक्षण से प्राप्त लाभों से करेगा तो निश्चित ही उसकी दृष्टि में भूमि संरक्षण का महत्व कम होगा। वास्तव में इन उपायों की उपयोगिता इन्हें भविष्य में 5-10 वर्षों के बाद मिलती है।

भूमि-संरक्षण का तुलनात्मक मूल्य : भूमि संरक्षण के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करते समय निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए:

भूमि कटाव से हुई क्षति : भूमि कटाव के रूप में हुई क्षति किसानों के लिए बहुत बड़ी क्षति है लेकिन इससे कहीं अधिक राष्ट्र के लिए होती है। भूमि कटाव से भूमि की उर्वरता एवं उत्पादन क्षमता कम होती है और कभी-कभी तो पूरा का पूरा क्षेत्र नष्ट होकर वीरान हो जाता है। भूमि कटाव का प्रभाव से मिट्टी की हानि, भूमि पर पानी के प्रवाह में वृद्धि (सूखे और बाढ़ की संभावनाएं बढ़ जाती हैं) हो जाती है। इसलिए अगर भूमि कटाव से हुई क्षति का आंकलन किया जाये तो इन पहलुओं को ध्यान में रखना चाहिए।

कटाव से मिट्टी की उर्वरता पानी या हवा के माध्यम से चली जाती है। फलस्वरूप मिट्टी की उत्पादन क्षमता घटती है और क्षेत्र नलिकाओं के माध्यम से छोटे-छोटे भागों में विभक्त हो जाता है। परिवहन व रेलमार्ग क्षतिग्रस्त होते हैं। मिट्टी कटाव के कारण पेय-जल आपूर्ति भी प्रभावित होती है।

[1]हरियाणा अंतरिक्ष अनुप्रयोग केन्द्र (हरसैक), हिसार

कृषि वानिकी : स्वच्छ पर्यावरण उपयोगी

- **ए. के. देशवाल, जे. एन. यादव एवं वी. पी. एस. यादव**
कृषि विज्ञान केन्द्र, फरीदाबाद
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय प्रांगण, हिसार

साधारण भाषा में कृषि फसलों के साथ-साथ खेत में विचार पूर्वक वृक्ष लगाने को कृषि वानिकी कहते हैं। उदाहरण के तौर पर पोपलर, सफेदे, खेजड़ी आदि के साथ फसलों की खेती करना। कृषि वानिकी में वृक्ष सारे खेत में या केवल खेत की मेढों पर लगाये जाते हैं। कृषि वानिकी द्वारा प्रति इकाई भूमि से अपेक्षाकृत ज़्यादा उत्पादन एवं लाभ प्राप्त होता है।

हरियाणा देश की जनता के लिए अनाज की पूर्ति करने में अहम् भूमिका निभाता है तथा इसके 80 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र में खेती की जाती है। मौसम में बदलाव के कारण कृषि उत्पादन पर बहुत प्रभाव देखा गया है और उत्पादकता में स्थिरता देखी गयी है। एक अनुमान के अनुसार मौसम में बदलाव के कारण इस सदी के अन्त तक हमारे देश में कृषि उत्पादन लगभग 10-40 प्रतिशत तक घट सकता है। मौसम में इस बदलाव के लिए वायुमण्डल में ग्रीन हाऊस गैसों की ज़्यादा मात्रा को ज़िम्मेदार माना गया है। पिछले लगभग 25 सालों में इन गैसों की मात्रा वायुमंडल में अत्यधिक बढी है। इसके लिए औद्योगीकरण, वाहनों की संख्या में अत्यधिक बढोत्तरी और वनों की अंधाधुंध कटाई को ज़िम्मेदार ठहराया जाता है। वनों की कटाई लगभग 17 प्रतिशत ग्रीन हाऊस गैसों के उत्पादन के लिए ज़िम्मेदार है। ग्रीन हाऊस गैसों में मुख्यत: कार्बनडाईऑक्साइड, ओज़ोन, मीथेन, नाईट्रस ऑक्साइड और क्लोरोफ्लुरो कार्बन हैं और इनमें अकेली कार्बनडाईऑक्साइड लगभग 50 प्रतिशत ग्रीन हाऊस असर के लिए ज़िम्मेदार है।

वायुमंडल में इन गैसों की मात्रा को कम करने, मौसम बदलाव को रोकने और स्वच्छ पर्यावरण के अनेक उपाय हैं। इन उपायों में वृक्षों को लगाकर कार्बनडाईऑक्साइड को पौधों द्वारा भोजन बनाने की क्रिया के तहत प्रयोग कर लकड़ी में लम्बे समय के लिए स्थिर करना या सोखना एक मुख्य उपाय हैं। भारतवर्ष में वृक्ष लगभग 11 प्रतिशत कार्बनडाईऑक्साइड को ही सोख पाते है। इसकी मात्रा बढाने के लिए हमें अधिक से अधिक वृक्ष लगाने होंगे। इसीलिए भारत सरकार ने हर राज्य में बडे स्तर पर वृक्ष लगाने का कार्यक्रम चला रखा है और पर्यावरण सुरक्षा के लिए पहले से निर्धारित देश के 33 प्रतिशत भाग में वन क्षेत्र पूरा करने का निश्चय किया है। इस कार्यक्रम के तहत हरियाणा के 20 प्रतिशत क्षेत्र में वृक्ष लगाना है। इस 20 प्रतिशत के लक्ष्य को पूरा करने के लिए खेतों में कृषि वानिकी के अन्तर्गत कृषि फसलों के साथ वृक्ष लगाना भी एक मुख्य उपाय है। इसके साथ-साथ किसान भाई खेतों में कृषि वानिकी के तहत वृक्ष लगाते समय इस बात का ध्यान रखें कि वृक्षों का कृषि फसलों की पैदावार पर कम असर पड़े। इसके लिए वृक्षों व फसलों का सही चुनाव, वृक्षों की उचित दूरी व उनकी जड़ों व टहनियों की सही तरीके से काट-छांट ज़रूरी है। कृषि वानिकी के लिए वृक्षों का चुनाव नीचे दिए गुणों के आधार पर करना चाहिए :

1. तेज़ बढोत्तरी वाला वृक्ष जैसे पोपलर, सफेदा, बकैन आदि होना चाहिए।
2. गहरी जड़ वाले वृक्ष होने चाहिएं जैसे शीशम, खेजड़ी। कृषि फसलें ऊपरी सतह से खुराक प्राप्त कर लेती हैं तथा वृक्ष एवं कृषि फसलों में आवश्यक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा नहीं होगी।
3. छत्र (क्राउन) का घेरा कम होना चाहिए। यदि छत्र छोटा होगा तो कृषि फसलों को ज़्यादा प्रकाश मिलेगा तथा पैदावार ज़्यादा होगी।
4. वृक्ष लेगुमिनोसी के कुल के होंगे तो ज़मीन में नाइट्रोजन बढाएंगे जैसे शीशम, खेजड़ी जिससे फसलों की पैदावार बढती है।

वृक्षों का चुनाव : जिन क्षेत्रों में ज़मीन अच्छी है तथा अच्छी सिंचाई की सुविधा है वहां पोपलर आधारित कृषि वानिकी अपनाकर अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है तथा पर्यावरण स्वच्छ रखा जा सकता है। पोपलर सीधा तथा तेज़ बढने वाला व फसलों को बहुत कम नुकसान पहुंचाने वाला एसा वृक्ष है जो ज़मीन की उत्पादकता बनाए रखता है।

क्लोनल सफेदा के पौधे भी सीधे तथा तेज़ी से बढते हैं। क्लोनल सफेदा के पौधे, सौंठी (कुरूक्षेत्र) स्थित वन विभाग की नर्सरी से प्राप्त किए जा सकते हैं। सेम व जल भराव वाले खेतों में सफेदा आधारित भूजल विसर्जन तकनीक को लगाना चाहिए। इस तकनीक के तहत खेत के दोनों तरफ उत्तर-दक्षिण दिशा में 2.6 मीटर चौडी व 45 सैं.मी. ऊंची मेढ़ें बनाई जाती हैं। इन मेढ़ों के दोनों तरफ कतार में सफेदे की रोपाई की जाती है। खेत के शेष भाग में कृषि फसलें उगाई जाती हैं। सफेदे की कतारें उत्तर-दक्षिण दिशा में होने के कारण कृषि फसलों पर इनकी छाया का प्रभाव बहुत कम होता है।

शीशम तथा नीम के पौधे मेढों पर 4 मीटर के फासले पर या पूरे खेत में 10x10 मीटर के फासले पर लगाने चाहिएं। डरेक (मीलिया कंपोज़िटा) भी कृषि वानिकी के लिए अच्छा विकल्प है क्योंकि यह बकेन (मीलिया अजैडीरैक) से सीधा व तेज़ी से बढने वाला वृक्ष है जो फसलों को भी कम नुकसान करता है। जिन क्षेत्रों में नीलगाय की समस्या हो वहां डरेक नहीं लगाना चाहिए।

इस प्रकार किसान कृषि वानिकी अपनाकर अपनी आमदनी बढाने के साथ-साथ पर्यावरण को सुरक्षित रखने में अपना योगदान दे सकते हैं। किसान कृषि वानिकी के अन्तर्गत पौधारोपण की विस्तृत तकनीकी जानकारी वानिकी विभाग चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार या ज़िलों में स्थित कृषि विज्ञान केन्द्रों से प्राप्त कर सकते हैं। ।

(पृष्ठ 23 का शेष)

समीकरण 1 और 2 के आधार पर मशीन की चौड़ाई की गणना करें।

$$\text{मशीन की चौड़ाई} = \frac{\text{कुल क्षेत्रफल} \times 1000}{\text{परिचालन गति} \times \text{कार्य समय} \times \text{क्षेत्र दक्षता (प्रतिशत)}}$$

2. चयनित मशीन के लिए शक्ति की आवश्यकता : एक जुताई की मशीन को खींचने के लिए ड्रॉ-बार पॉवर की आवश्यकता होती है जो निर्भर करती है यात्रा की गति और मशीन के ड्राफ्ट (खिंचाव) पर। आवश्यक खिंचाव शक्ति (ड्रॉ-बार पॉवर) की गणना निम्न सूत्र का उपयोग करके की जा सकती है:

$$\text{ड्रॉ-बार पॉवर (किलोवाट)} = \frac{[\text{मशीन का खिंचाव (किलो न्यूटन/मी.)} \times \text{मशीन की चौड़ाई (मी.)} \times \text{परिचालन गति (कि.मी./घंटा)}]}{}$$

मशीन का खिंचाव (किलो न्यूटन/मीटर)

यंत्र का नाम	औसत परिचालन गति (कि.मी./घंटा)	मिट्टी के प्रकार		
		भारी	मध्यम	हल्की
मिट्टी पलट हल	4-6	13-14	10-11	6-7
डिस्क प्लो	6	5-6	4-5	3-4
हैरो	6	5-6	4-5	3-4
कल्टीवेटर	6	4-5	3-4	1-2

स्रोत : मेहता एवं अन्य (2010)

ट्रैक्टर की शक्ति को आम तौर पर पीटीओ पॉवर से नामित किया जाता है। ट्रैक्टर पीटीओ पॉवर की गणना एक रूपांतरण गुणक द्वारा ड्रा-बार पॉवर को विभाजित करने से की गई थी। जिसका निम्नलिखित समीकरण है :

पीटीओ पॉवर (किलोवाट) = ड्रॉ-बार पॉवर x 1.25

यह रूपांतरण गुणक अलग-अलग मिट्टी के लिए अलग होता है। इस प्रकार उपर्युक्त लिखी गई प्रक्रिया से मशीन की ज़रूरत के हिसाब से ट्रैक्टर शक्ति का चयन कर सकते हैं। ।

गर्मियों में वस्त्रों का चुनाव कैसे करें

- **नीलम सैनी, पूनम रानी एवं रेनू बाला**
वस्त्र एवं आवरण सज्जा विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मौसम का बदलता मिज़ाज़ हमारी ड्रैसिंग सेंस भी बदल देता है। गर्मी के आते ही अलमारी में रखे मोटे और गर्म कपड़ों की जगह हल्के और ठंडक देने वाले रंगीन कपड़े आ जाते हैं। हम चाहते हैं इस गर्मी में कुछ ऐसा पहनें जो हमें गर्मी से राहत देने के साथ-साथ लोगों को आकर्षित भी करे। सभी चाहते हैं इस मौसम में हमारी ड्रेस एकदम यूनीक हो, जो सोबर भी लगे और ट्रेंडी भी।

रंग का रखें ध्यान: गर्मियों में हमेशा ड्रेस के मैटीरियल के साथ उसके कलर पर भी ध्यान देना ज़रूरी है। मौसम में कपड़े हल्के रंगों के होने चाहिएं जो आंखों को ठंडक दें। कॉटन मिक्स सिल्क, शिफॉन, लिनन, जॉर्जट व हैंडलूम और खादी से बने वस्त्रों को पहनें जो पसीने को सोख लेते हैं। फैशन के लिहाज से देखा जाए तो एक दुबली लड़की पर आड़ी लाईन वाले शॉर्ट कुर्ती व छोटी कद-काठी वाली लड़कियों को आड़ी लाइन वाले कुर्ते खासे फबते हैं। गर्मी से बचने के लिए अधिकतर लड़कियां स्लीवलेस ड्रेस पहनना पसंद करती हैं लेकिन इससे धूप में हाथों की त्वचा जल सकती है। दोपहर में हमेशा ऐसी ड्रैस पहनें जो कॉटन और पूरी बाजू की हो। रात को आप चाहें तो स्लीवलेस पहन सकते हैं।

हेवी वर्क न पहनें : कॉटन, शिफान के ड्रेसेस फॉर्मल लुक के लिए पहने जाते हैं जो अच्छे लगते हैं। इस मौसम में लिनन और जॉर्जट के लांग स्कर्ट पहनें। कॉटन हेंडलूम व खादी ठंडक पहुंचाने वाले व पसीना सोखने वाले फेब्रिक हैं जिससे आप तपती गर्मी में भी अच्छा महसूस करते हैं। बुजुर्ग महिलाएं सलवार कमीज़ पहनें। खादी का कुर्ता स्टाइल से पहनें जो ढीला हो उसके साथ ही चूड़ीदार सलवार पहनें। इस मौसम में कली वाले कुरते अनारकली पेटर्न में अलग-अलग प्रिंट के साथ पहनें।

इनसे दूर रहें : सिल्क, साटन, सिन्थेटिक, कोलेस्टर मिक्स, नायलॉन, वेलवेट कपड़ों से इन्फेक्शन होता है। हेवी फेब्रिक के कपड़े न पहनें जिसे संभालना मुश्किल हो।

त्वचा रोग हो जाता है : गर्मी बहुत से बदलाव लेकर आती है। लोगों के पहनावे से लेकर पूरी दिनचर्या बदलने लगती है। सही ज्ञान न होने पर कुछ भी पहनना त्वचा के लिए हानिकारक हो सकता है। गर्मी में घेरदार कुरते, जॉर्जट व शिफॉन पर की गई फ्लोरल प्रिंट, कॉटन सिल्क, टसर का इस्तेमाल ज़्यादा किया जाता है। गर्मी में खासतौर से ब्लॉक प्रिंट, वेजीटेबल, कॉटन मिक्स लिनन फेब्रिक का इस्तेमाल किया जाता है।

जो सहज हो वही पहनें : गर्मी में फैशन कूल होना चाहिए। ज़्यादा गहरे रंग न पहनें व लिनन व कॉटन के कपडों को इस्तेमाल करें। कॉटन के प्रिंट, कुशन, साधारण क्रोशिया वाली डिज़ाइन के फेब्रिक इस मौसम के लिए बेहतर हैं। अधिकतर गर्मी में ब्रश पेटिंग व डाई पेंटिंग के ड्रेसेस चलते हैं। युवाओं को अपने आराम के हिसाब से कॉटन पेंट व सलवार कमीज़, कॉटन सूट, अनारकली सूट्स पहनना चाहिए।

स्टाइल के लिए एक्सपेरिमेंट करें : एक्सपेरिमेंट करने से नहीं डरें। गर्मी ऐसा मौसम है, जब कपड़ों के मामले में आप धड़ल्ले से तरह-तरह का एक्सपेरिमेंट कर सकती हैं। एक्सपेरिमेंट करें, पर साथ ही ध्यान रखें कि वह एक्सपेरिमेंट आप पर अच्छा भी दिखे। कैप्री के साथ कुर्ता या फिर ढीली फिटिंग वाली पैंट के साथ कॉटन की शर्ट आपको आकर्षक लुक देगी।

हल्के कपड़ों का चुनाव करें : सर्दियां जाने के बाद गर्मियों के लिए हमारी अलमारी से रंगीन और हल्के कपड़े बाहर निकल आते हैं। जिसमें से हमें सही चुनाव करना होता है। गर्मियों में सभी चाहते हैं कि कुछ ऐसे कपड़े पहनें जो हल्के होने के साथ ही सोबर लुक वाले हों। जिससे हम गर्मी से भी बच सकें और हमारे फैशन में भी कोई कमी न आये। इसके लिए आप को हल्के कपड़े जैसे जॉर्जट और कॉटन के कपड़ों का चुनाव सही रहेगा।

रंग से भी फर्क पड़ता है : कपड़ों के साथ-साथ सही कलर का भी फर्क पड़ता है हल्के रंग गर्मियों के मौसम में फबते हैं। हल्के रंग में आप कुर्तियां,टॉप या मिडी कुछ भी पहन सकती हैं। सफेद, हल्का नीला और भी हल्के कलर में आप कपड़ों का चुनाव कर सकती हैं। रंगों का सही चुनाव करने से भी हम गर्मी से और धूप की तेज़ किरणों से बचते हैं।

कपड़ों की इन क्वालिटी से दूर रहें : गर्मियों में कपड़ों की क्वालिटी का भी खास ध्यान रखना चाहिए। हम कॉटन,जॉर्जट जैसे कपड़ों को चुन सकते हैं सिल्क, साटन, सिन्थेटिक, कोलेस्टर, मिक्स, नायलॉन जैसे कपड़ों को चुनना गलत साबित हो सकता है। इन कपड़ों से आपको त्वचा की बीमारी जैसे रैशेस की समस्या हो सकती है।

गर्मियों मे सहज और ढीले कपडे पहनें : गर्मियों में भी अक्सर कपड़ों का चुनाव करते समय सभी फिगर का ध्यान रखते हैं, जबकि गर्मी में सहज होना मायने रखता है। गर्मियों के मौसम में ढीले टॉप और कुर्तियों में भी आप कूल दिख सकती हैं। इसके साथ ही इस मौसम में सहज कपड़ों को चुनें, जिसमें आप आराम महसूस करें।

गर्मी के मौसम में एक चौड़े और हवादार टॉप का चुनाव करें, जो गर्मी में आपको काफी आराम देगा। गर्मी में चुस्त के बजाय चौड़े और हवादार पैंट पहनें। इससे आपको चलने में भी आसानी होगी। पेशेवर बैठकों और कार्यों के लिए परिधानों में हल्के रंगों का चुनाव करें। बटनदार कमीज़ जैसे क्लासिक टॉप का इस्तेमाल करना भी बेहतर होगा। हर मौसम के हिसाब से हमें कपड़ों का चुनाव करना चाहिए। खासतौर पर यह समस्या गर्मियों में ही आती है जब हमें हल्के कपड़ों के साथ-साथ त्वचा के अनुसार भी कपड़ों का चुनाव करना पड़ता है क्योंकि इस मौसम में गलत चुनाव करने पर न सिर्फ त्वचा पर असर पड़ता है बल्कि कई बीमारियों का भी खतरा रहता है। इसलिए यह जानना बेहद ज़रूरी है कि इस मौसम में कैसे कपड़े पहनें। ।

आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें।

- सह-निदेशक (प्रकाशन)

चुन्नट के प्रयोग से कपड़े की सजावट

- ज़ेबा जमाल[1] एवं निशा आर्य
वस्त्र एवं आवरण सज्जा विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

चुन्नट विधि में कपड़े पर सुन्दर पैटर्न बनाने के लिए प्लीट्स डाली जाती हैं। इस तकनीक से कपड़े की चौड़ाई को प्लीट्स के द्वारा समेटकर कम कर दिया जाता है। वस्त्र के सीधी तरफ टांके छोटे लिए जाते हैं जबकि पीछे की तरफ लम्बे टांकों का काम होता है। इसे स्मॉकिंग भी कहते हैं।

चुन्नट विधि का प्रयोग करने के लिए कौन सा कपड़ा सबसे अच्छा है?

लिनन, क्रेप, रेशम, लॉन, कपास, गिंगहम्स, मखमल एवं शिफॉन अच्छे हैं। आप प्लेन या प्रिंटेड कॉटन, पोपलिन कॉटन लॉन सिल्क, सैटिन, कॉटन ब्लेंड्स, ऑर्गैन्डी, लाइटवेट डेनिम और लाइट वेट ब्लेंड्स चुन सकते हैं।

चुन्नट विधि का प्रयोग करने के लिए कितना अतिरिक्त कपड़ा चाहिए?

अंतिम टुकड़े की चौड़ाई के लिए आपको कम से कम 3 गुना कपड़ा चाहिए। यानी अगर आप 10 इंच का अंतिम स्मोक्ड टुकड़ा चाहते हैं तो आपको चुन्नट बनाने के लिए 30 इंच का कपड़ा लेना होगा।

चुन्नट विधि का प्रयोग करने के लिए कौन सा धागा सबसे अच्छा है?

चुन्नट कढ़ाई के धागे से बनाई जाती हैं। रेशमी कपड़ों पर रेशम के धागे का उपयोग करें और सूती कपड़े पर सूती धागे का उपयोग करें।

चुन्नट विधि के लिए कपड़े कैसे तैयार करें?

चुन्नट विधि का प्रयोग करने से पहले कपड़े को पहले एक बार धो लें जिससे कपड़े को बाद में सिकुड़ने से बचाया जा सके।

चुन्नट की डिज़ाइन कैसे बनायें?

चुन्नट की डिज़ाइन बनाने के लिए कपड़े को उलटी तरफ से इस्त्री कर लें ताकि शिकन खत्म हो जाये। स्केल और पेंसिल की मदद से बराबर दूरी पर डॉट्स लगाएं ताकि प्लीट्स बराबर एवं सुन्दर बनें।

स्मॉकिंग के बुनियादी नियम

- स्मॉकिंग करने के लिए क्रुएल सुई 5 नंबर से 8 नंबर तक अच्छी रहती है।
- स्मॉकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखें की सुई हमेशा सीढ़ी रेखा में रहे।
- तनाव एवं खिंचाव भी बराबर होना चाहिए जिससे की पैटर्न एक समान तैयार हो।
- ध्यान रहे कि स्मॉकिंग करते वक़्त धागा उलझे नहीं बाद में इसे काटना आपके पैटर्न को ख़राब कर सकता है।

स्मॉकिंग की प्रक्रिया

चरण 1 : कपड़े को इकठ्ठा करके चुन्नट बना लें। चुन्नट को गिन कर बीच की दो चुन्नटों पर चॉक की सहायता से निशान लगा लें। इन दो चुन्नटों के बीच का कपड़ा ही आपके पैटर्न का केंद्र है। इस केंद्र के दोनों ओर पैटर्न एक सामान होना चाहिये।

चरण 2 : टांके लगाते समय पहली प्लीट अथवा चुन्नट को छोड़ दिया जाता है जिससे कि काम करते समय आप बाकी प्लीट्स इसके बराबर बना सकें।

चरण 3 : चारों तरफ थोड़ा एक्सट्रा कपड़ा (seam allowance) अवश्य छोड़ दें। इसके बाद अपने ट्रेस किये हुए पैटर्न के हिसाब से सुई और धागे से टांक लें।

चरण 4 : स्मॉकिंग के टांके

1. स्टेम स्टिच : यह एक रस्सी जैसा दिखता है। इसे उसी तरह बनाया जाता है जैसे कि कढ़ाई के तने का टांका। आमतौर पर इस टांके का इस्तेमाल स्मॉकिंग करने की शुरुआत में किया जाता है – क्योंकि यह चुन्नटों को कसकर पकड़ लेता है। प्रत्येक स्टेम स्टिच कपड़े की एक चुन्नट को उठाता है और इसे अगले में जोड़ता है।



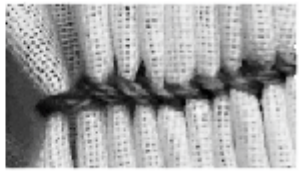

2. गेहूं स्टिच : यह स्टिच आउटलाइन स्टिच और स्टेम स्टिच का संयोजन है। ऊपर की स्थिति में धागे के साथ आउटलाइन स्टिच बनाया गया है और फिर इसके तुरंत बाद स्टेम स्टिच बनाया जाता है। यह एक गेहूं के आकार का पैटर्न बनाता है।

3. केबल स्टिच : इस स्टिच को उसी तरह बनाया जाता है जैसे कि कढ़ाई में केबल का टांका किया जाता है। पहले धागे को सुई के नीचे रखा जाता है फिर अगली स्टिच के लिए धागे को सुई के ऊपर रखा जाता है। केबल स्टिच बनाते समय सुई को सीधी रेखा में ही चलाएं जिससे कि आपकी स्टिच सीधी एवं सुन्दर बने।



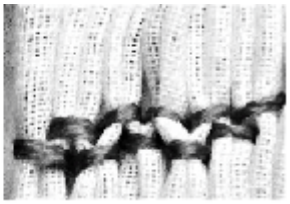

चरण 5 : जब प्रत्येक पंक्ति पूरी हो जाती है तो अंत में सिंगल प्लीट पर स्टिच बनाते हुए अंत में गांठ लगाते हैं।

चरण 6 : फुल स्मॉकिंग टांके बनने के बाद सीम रिपर से ध्यानपूर्वक चुन्नट के कच्चे टांके को काट दें। इस्त्री पर स्टीम सेटिंग का उपयोग करें जिससे कि प्लीट्स सेट की जा सकें।

सुंदर स्मॉकिंग टांके बनाने में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आपके सभी टांके एक बराबर हों। हमेशा अपने टांके को समान और सुचारू बनायें। स्मॉकिंग के द्वारा आसान टांकों से बहुत सुन्दर एवं आकर्षक पैटर्न बनाये जाते हैं। स्मॉकिंग का प्रयोग कुशन कवर, तकिया का कवर, कुर्ती, जैकेट आदि में किया जाता है। ।

[1]शोधार्थी, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

मौसम विज्ञान में सुदूर संवेदन का उपयोग

- दर्शना दुहन, धर्मेंद्र सिंह एवं संदीप आर्य[1]
हरियाणा स्पेस एप्लीकेशन सेंटर (हरसैक)
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

रिमोट सेंसिंग एक तकनीक है जिसमें वस्तु या घटना के शारीरिक संपर्क में आए बिना उसके बारे में जानकारी इकट्ठी की जाती है। वर्तमान उपयोग में, ''सुदूर संवेदन'' विद्युत चुम्बकीय विकिरणों के आधार पर उपग्रह या विमान आधारित सेंसर प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से पृथ्वी की सतह, वातावरण और महासागरों में वस्तुओं के वर्गीकृत और पता लगाने के काम आ रहा है। यह दो तरह से होता है (1) सक्रिय सुदूर संवेदन (जैसे जब एक संकेत एक उपग्रह या विमान द्वारा उत्सर्जित होता है और वस्तु के द्वारा पुन: प्रतिबिंब संवेदक को भेजा जाता है) और ''निष्क्रिय'' सुदूर संवेदन (जैसे जब सूरज की रोशनी का उपयोग करके वस्तु या घटना के बारे में जानकारी इकट्ठी की जाती है)। रिमोट सेंसिंग भूगोल, भूमि सर्वेक्षण और पृथ्वी विज्ञान विषयों (अर्थात : जल विज्ञान, पारिस्थितिकी, मौसम विज्ञान, समुद्र विज्ञान, हिमनद विज्ञान, भू-विज्ञान) सैन्य, खुफिया, वाणिज्यिक, आर्थिक, योजना, और मानवीय आवेदन सहित कई क्षेत्रों में प्रयोग किया जाता है।

मौसम विज्ञान, वायुमंडलीय विज्ञान की एक शाखा है जिसमें वायुमंडलीय रसायन विज्ञान और वायुमंडलीय भौतिकी शामिल है। मौसम विज्ञान, जलवायु विज्ञान, वायुमंडलीय भौतिकी और वायुमंडलीय रसायन विज्ञान, वायुमंडलीय विज्ञान के उप-विषय हैं। मौसम विज्ञान के अध्ययन में मौसम की प्रक्रिया एवं मौसम का पूर्वानुमान केन्द्रबिन्दु होते हैं। मौसम विज्ञान और जल विज्ञान, जलविद्युत विज्ञान के अंत: विषय क्षेत्र की रचना करते हैं। पृथ्वी का वायुमंडल और इसके महासागरों के बीच का संपर्क सागर वातावरण प्रणाली का एक हिस्सा हैं। मौसम विज्ञान का उपयोग सैन्य, ऊर्जा उत्पादन, परिवहन, कृषि, और निर्माण के रूप में कई विविध क्षेत्रों में किया जाता है।

रिमोट सेंसिंग का मौसम विज्ञान में इस्तेमाल, दूरदराज के मौसम की घटनाओं से डेटा एकत्र करना और बाद में मौसम की जानकारी उत्पादित करना है। सुदूर संवेदन के सामान्य प्रकार रडार, लिडार और सैटेलाइट (या फोटोग्राममेट्री) हैं। यह दूरदराज स्थान से वातावरण के बारे में डेटा एकत्र करता है और आमतौर पर वहां संग्रह करता है जहां उपकरण स्थित है। रडार और लिडार निष्क्रिय नहीं हैं क्योंकि दोनों वायुमंडल के एक विशिष्ट हिस्से को रोशन करने के लिए विद्युत चुम्बकीय विकिरण का उपयोग करते हैं। मौसम उपग्रह के साथ सामान्य उद्देश्य वाली पृथ्वी के विभिन्न ऊंचाई पर घूमने वाले पृथ्वी-अवलोकन उपग्रह, जंगल की आग से लेकर एल नीनो तक की घटनाओं के अध्ययन के लिए एक अनिवार्य उपकरण बन गए हैं।

स्थानिक पैमाने : वायुमंडल के अध्ययन को अलग-अलग क्षेत्रों में विभाजित किया गया है जो समय और स्थानिक पैमाने पर निर्भर करते हैं। इस पैमाने के चरम पर जलवायु विज्ञान है, जिसमें किसी स्थान के दीर्घकालिक मौसम का अध्ययन किया जाता है। घंटों से दिनों तक के कालक्रम में मौसम में होने वाले परिवर्तनों के अध्यन को मौसम विज्ञान कहा जाता है। मौसम विज्ञान के तहत होने वाली वायुमंडलीय घटनायें जैसे आंधी, तूफान, वर्षा, आदि के बारे में सुदूर संवेदन की सहायता से पहले से सचेत किया जा सकता है। इन घटनाओं की मापन प्रणालियां अलग-अलग होती हैं जैसे आंधी तूफान के लिए सतही मीटर पैमाना, बारिश के लिए मिलीमीटर पैमाना आदि। कुछ वायुमंडलीय गति प्रणालियों के पैमाने नीचे दी गयी तालिका 1 में प्रस्तुत किये गए हैं। मौसम विज्ञान को सूक्ष्म, मेसो और सिनोप्टिक पैमाने पर विभाजन किया गया है। इन तीनों पैमानों का भू-स्थानिक आकार सीधे उचित समय सीमा के साथ संबंधित है।

सूक्ष्मदर्शी मौसम विज्ञान : सूक्ष्मदर्शी मौसम विज्ञान लगभग एक किलोमीटर (0.62 मील) या उससे कम के पैमाने पर वायुमंडलीय घटनाओं का अध्ययन करता है। इमारतों और अन्य बाधाओं (जैसे एकाकी पर्वत) के कारण होने वाली गड़गड़ाहट, बादल और स्थानीय उग्रता को इस पैमाने पर चित्रित किया जाता है। सूक्ष्मदर्शी मौसम, वातावरण में सबसे महत्वपूर्ण मिश्रण और विलयन की प्रक्रियाओं को नियंत्रित करता है। सूक्ष्म मौसम विज्ञान के महत्वपूर्ण विषयों में मिट्टी, वनस्पति, सतह के पानी तथा वायुमंडल के बीच होने वाले गैसीय विनिमय तथा गर्मी हस्तांतरण को शामिल किया जाता है। यह विनिमय/हस्तांतरण ज़मीन के निकट अशांति के कारण होता है।

तालिका 1: वायुमंडलीय गति प्रणालियों के पैमाने

गति का वर्गीकरण	क्षैतिज पैमाने (मीटर)
मॉलिक्यूलर मीन फ्री पाथ	10^{-7}
मिनट तुर्बुलेंट इंडीज़	10^{-2}–10^{-1}
स्माल इंडीज़	10^{-1}–1
डस्ट डेविल्स	1–10
गूस्ट्स	10–10^{2}
बवंडर	10^{2}
आंधी का मेघ	10^{3}
फ्रेंटस, स्क्वैल लाइन्स	10^{4}–10^{5}
समुद्री तूफान	10^{5}
सिनॉप्टिक चक्रवात	10^{6}
ग्रहों की तरंगें	10^{7}
वायुमंडलीय ज्वार	10^{7}
मध्य आंचलिक हवा	10^{7}

इन परिवहन या विनिमय प्रक्रियाओं को मापने के लिए माइक्रोमेटेरोलॉजिकल या फ्लक्स टावरों का उपयोग किया जाता है। ऐसे टावरों को विभिन्न पारिस्थितिकी प्रणालियों जैसे कृषि, जंगल, घास तथा पानी आदि में स्थापित किया जाता है और इनसे सम्बंधित विभिन चर (वेरिएबल्स) को मापा जाता है। जिन चरों को अक्सर मापा या व्युत्पन्न किया जाता है उनमें शुद्ध विकिरण, सवेंद्य ऊष्मा अंतरण, अव्यक्त गर्मी प्रवाह, ज़मीन गर्मी भंडारण, और वायुमंडल, जैवमंडल तथा जलमंडल के लिए महत्वपूर्ण गैसों का प्रवाह शामिल है। भारत में इस तरह के कई टॉवर स्थापित किये गए हैं जिनमें से प्रमुख हैं :

1. हल्द्वानी (उत्तराखंड), बरकोट (उत्तराखंड), मेरठ (उत्तर प्रदेश) और बैतूल (मध्य प्रदेश) में मौजूद ऊर्जा, जल वाष्प और CO_2 एक्सचेंज को मापने वाले फ्लक्स टॉवर।
2. भारतीय मौसम विभाग द्वारा स्थापित स्वचालित मौसम स्टेशन वैमानिकी मौसम संबंधी स्टेशन (कुल 54)।

[1]वानिकी विभाग, चौ. च. सिं. ह. कृ. वि., हिसार।

3. भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन द्वारा स्थापित स्वचालित मौसम स्टेशन।

मेसोस्केल मौसम विज्ञान : मेसोस्केल मौसम विज्ञान वायुमंडलीय घटनाओं का वह अध्ययन है जिसमें क्षैतिज पैमाने 1 किमी से 1000 किमी तक शामिल हैं और ऊर्ध्वाधर पैमाने जो पृथ्वी की सतह पर शुरू होता है और इसमें वायुमंडलीय सीमा परत, क्षोभमंडल, ट्रोपोपॉज और समताप मंडल के निचले खंड शामिल हैं। मेसोस्केल का समय एक दिन से लेकर सप्ताह तक रहता है। मेसोस्केल मौसम प्रणाली में समुद्री ब्रीज, स्क्वॉल लाइन, मेसोस्केल संवहन परिसरों, उष्णकटिबंधीय और अतिरिक्त उष्णकटिबंधीय चक्रवातों में गरज के साथ तेज़ हवाओं की घटनाएं, उष्णकटिबंधीय और अतिरिक्त उष्णकटिबंधीय चक्रवातों में बारिश के बैंड और स्थलाकृतिक रूप से उत्पन्न मौसम प्रणाली जैसे कि पहाड़ की लहरों, और समुद्र और ज़मीन की हलचल का अध्ययन किया जाता है। इन घटनाओं के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक और शोधकर्ता राडार तथा उपग्रहों (भूस्थैतिक और ध्रुवीय दोनों) से प्राप्त आंकड़ों का उपयोग करते हैं। प्रमुख उपग्रह/सेंसर जो इस तरह की घटनाओं के अध्ययन के लिए उपयोग में लाये जाते थे या लाये जाते हैं को तालिका 2 में प्रस्तुत किया गया है।

सिनॉप्टिक स्केल मौसम विज्ञान : सिनोप्टिक शब्द ग्रीक शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है ''एक साथ''। सिनोप्टिक स्केल मौसम विज्ञान (जिसे बड़े पैमाने या साइक्लोनिक स्केल के रूप में भी जाना जाता है) 1000 किलोमीटर या उससे अधिक का वायुमंडलीय घटनाओं का अध्ययन करने का एक क्षैतिज पैमाना है। यह समय और स्थान पर 1000 किलोमीटर और 105 सेकंड (28 दिन) तक के पैमाने पर वायुमंडलीय परिवर्तनों की भविष्यवाणी करता है। आमतौर पर सिनॉप्टिक मौसम विज्ञान द्वारा वर्णित घटनाओं में बाह्योष्णकटिबंधीय चक्रवात, बैरोक्लिनिक द्रोणी और पर्वत पृष्ठ, फ्रन्टल ज़ोन और कुछ हद तक जेट स्ट्रीम जैसी घटनाएं शामिल हैं। ये सभी आमतौर पर एक विशिष्ट समय के लिए मौसम के नक्शे पर दिए जाते हैं। इन घटनाओं के अध्ययन के लिए भी तालिका 2 में दिए गए सैटेलाइट्स इस्तेमाल किये जा सकते हैं।

वैश्विक पैमाने पर मौसम विज्ञान : वैश्विक स्तर के मौसम विज्ञान के अंतर्गत उष्ण कटिबंध से ध्रुवों तक गर्मी के परिवहन इसके पैटर्न का अध्ययन सम्मिलित है। बहुत बड़े पैमाने पर कंपनों को इस पैमाने पर रेखांकित किया जाता है। इन कंपनों में समय अवधि आमतौर पर महीनों जैसे कि मैडेन-जूलियन दोलन, या वर्षों, जैसे एल नीनो-दक्षिणी दोलन और प्रशांत दशकीय दोलन के क्रम पर होती है। वैश्विक स्तर का मौसम विज्ञान, जलवायु विज्ञान श्रेणी में आता है जो की बड़े समयकाल की जलवायु और मौसम में होने वाले परिवर्तनों को परिभाषित करता है। लंबे समय के वैश्विक दोलनों की समझ तथा जलवायु और मौसम की गड़बड़ी पर इनके प्रभाव आदि का अध्ययन इसके अंतर्गत किया जाता है। लम्बे समय के उपग्रहीय आंकड़ों को लेकर इन विषयों पर विस्तृत अध्ययन किये गए हैं साथ ही इन आंकड़ों का उपयोग करके ऐसी घटनाओं से सम्बंधित भविष्यवाणियों पर शोध कार्य चल रहा है।

निष्कर्ष : मौसम विज्ञान से सम्बंधित आंकड़े आज के परिवेश में आम जन की आवश्यकता बन गयी है, चाहे किसान हो, आम जनता हो, वैज्ञानिक हो, या प्रसाशन हो। मौसम विज्ञान से सम्बंधित आंकड़े सुदूर संवेदन के उपयोग से लगातार, बहुत ही सस्ते में और उपर्युक्त तीनों स्केल (सूक्ष्म, मेसो और सिनॉप्टिक) पर एकत्रित किये जा सकते हैं। ।

तालिका 2: मेसोस्केल मौसम वायुमंडलीय घटनाओं के अध्ययन के लिए उपयोग में लाये जाने वाले प्रमुख उपग्रह/सेंसर

उपग्रह/सेंसर	उपयोग
भूस्थिर संचालक पर्यावरणीय उपग्रह (GOES)	चक्रवात, बारिश, चमक तापमान, वाष्प दाब की कमी आदि।
नेशनल ओशनिक एंड एटमोस्फेयरिक एडमिनिस्ट्रेशन (NOAA), जलवायु पूर्वानुमान केंद्र (CPC)	बारिश, चक्रवात, चमक तापमान आदि।
NOAA-अग्रिम बहुत उच्च संकल्प रेडियोमीटर (AVHRR)	बादल, चक्रवात आदि।
रक्षा मौसम विज्ञान उपग्रह कार्यक्रम (DMSP)	महासागर की सतह पवन की गति (MW), उष्णकटिबंधीय चक्रवात की तीव्रता का अनुमान
लैंडसैट (LANDSAT)	बादल, चक्रवात आदि।
सैटेलाइट फॉर अर्थ ऑब्ज़र्वेशन (SPOT)	बादल चक्रवात आदि।
रडार इमेजिंग उपग्रह (RISAT)	चक्रवात, बादल, आदि।
मध्यम संकल्प इमेजिंग स्पेक्ट्रो-रेडियोमीटर (MODIS)	चमक तापमान, वाष्प दाब की कमी, बादल, पृथ्वी विकिरण बजट आदि।
उन्नत स्कैटरोमीटर (ASCAT-A)	महासागर की सतह पवन की गति (MW), पवन की दिशा, उष्णकटिबंधीय चक्रवात की तीव्रता का अनुमान आदि।
निम्बस उपग्रह (NIMBUS)	बादल, चक्रवात आदि।
ARGOS और ALTIKA के साथ उपग्रह (SARAL), जेसन-3, क्रायोसेट	ओशन वेव हाइट्स, समुद्र संबंधी ऊष्मा सामग्री आदि।
भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह प्रणाली (INSACT-3D), कल्पना	बादल, बारिश, चक्रवात आदि।
मेटोसैट सेकंड जनरेशन (MSG) उपग्रह	चमक तापमान, वाष्प दाब की कमी, पृथ्वी विकिरण बजट आदि।
METOP (स्कैटरोमीटर)	सतह ऊर्जा बजट, सतह पवन की गति (MW) आदि।

किचन गार्डनः आज की आवश्यकता

- **तनवी मेहता, डी. एस. दुहन एवं वी. पी. एस. पंघाल**
सब्जी विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अच्छे स्वास्थ्य के लिए दैनिक आहार में संतुलित पोषण का होना बहुत ज़रूरी है। फल एवं सब्जियां इसी संतुलन को बनाये रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं क्योंकि ये विटामिन, खनिज लवण, कार्बोहाइड्रेट व प्रोटीन के अच्छे स्रोत होते हैं। इसलिए यह ज़रूरी है कि इन फल एवं सब्जियों की नियमित उपलब्धता बनी रहे। सब्जी उत्पादन में आज विश्व में हम अग्रणी स्थान पर हैं, किन्तु फिर भी देश की 35 प्रतिशत जनता कुपोषण की शिकार है। इस कठिनाई के निदान के लिए किचन गार्डन (गृहवाटिका) का प्रयोग नितांत आवश्यक है।

किचन गार्डन घर के पीछे वाली जगह पर, पास वाली भूमि पर, घर की छत पर, पॉलिथीन की चादर पर मिट्टी डालकर, गमलों में या खेत में पानी के साधन के साथ कहीं भी हो सकती है। घर के बगीचे में सब्जी उत्पन्न करना कई दृष्टिकोण से लाभप्रद है जिससे परिवार के सदस्यों के स्वास्थ्य तथा ज्ञान में वृद्धि होती है। साथ ही साथ ऐसा करने से रासायनिक कीटनाशकों व कृषि उर्वरकों से मुक्त सब्जियां मिल सकती हैं। जिससे अनेक प्रकार की बीमारियों से बचाव हो सकता है। सब्जी बगीचे का आकार ज़मीन की उपलब्धता एवं व्यक्तियों की संख्या पर निर्भर करता है। सामान्यतः 4-5 व्यक्तियों के परिवार की पूर्ति के लिए 200-300 वर्ग भी ज़मीन पर्याप्त होती है।

सब्जी बगीचा (किचन गार्डन)/गृह वाटिका लगाने के फायदे

- इसे एक मन भावन शौक के रूप में अपनाया जा सकता है।
- घर के पीछे या फिर किसी ओर खाली पड़ी हुई भूमि में सरलता से की जा सकती है।
- घर में व्यर्थ पानी व कूड़ा-करकट का सदुपयोग हो सकता है।
- मनपसंद व ताज़ी सब्जियों की प्राप्ति होती है।
- साल भर स्वास्थ्यवर्धक व सस्ती सब्जी, फल एवं फूल प्राप्त होते रहते हैं।
- यह परिवार के सदस्यों के मनोरंजन व व्यायाम का अच्छा साधन है जिससे शरीर स्वस्थ रहता है।
- बाज़ार की तुलना में सस्ती, ताज़ी एवं उत्तम गुणवत्ता वाली सब्जियां मिलती हैं।
- कीमती कृषि औज़ारों की आवश्यकता नहीं होती है। घरेलू औज़ारों को प्रयोग में ला सकते हैं।
- सब्जी खरीदने के लिए बाज़ार नहीं जाना पड़ता बल्कि घर में ही ताज़ी, स्वादिष्ट शाक-सब्जियां नियमित रूप में मिलती रहती हैं। जिससे की पेट्रोल का खर्चा भी बचता है।
- किचन गार्डन में जैविक खादों से सब्जियां तैयार की जा सकती हैं जो अंधाधुन्ध छिड़के जाने वाले रासायनिकों से बचाती हैं।

सब्जी बगीचा लगाने हेतु ध्यान देने योग्य बातें

- गृह के एक कोने में कम्पोस्ट खाद का निर्माण किया जा सकता है जिसमें घर का कचरा डाला जा सके जो बाद में सड़कर खाद के रूप में प्रयोग किया जा सके।
- गृह वाटिका का स्थान घर के निकट होना चाहिए।
- सब्जियों की सुरक्षा के लिए कंटीली झाड़ी व फेंसिंग लगाएं जिसमें लता वाली सब्जी लगाएं।
- जिस स्थान पर गृह वाटिका लगानी हो वहां की मिट्टी में जल एवं वायु का प्रवाह अच्छा होना चाहिए।
- सब्जियों व पौधों की देखभाल एवं इसके अंदर आने जाने के लिए छोटे-छोटे रास्ते बनायें।
- आवश्यकतानुसार सब्जियों के लिए छोटी-छोटी क्यारियां बनायें।
- क्यारियों के सिंचाई हेतु नालियां बनायें।
- जिन सब्जियों को पौधरोपण से लगाना है उनकी नर्सरी (बगीचे) के एक कोने में अलग से एक महीना पहले तैयार कर लें जैसे टमाटर, मिर्च, बैंगन, फूलगोभी, ब्रोक्कोली इत्यादि।
- एक ही तरह की सब्जी की फसल को सभी क्यारियों में एक साथ न लगाकर उनमें 15 दिन का अंतर ज़रूर रखें। ऐसी फसल चुनें जिसकी उपलब्धता लम्बे समय तक बनी रहे।
- बीज, खाद व दवाइयां, फसल सुरक्षा सामग्री आदि का प्रबंध पहले ही कर लें।
- जड़ वाली सब्जियों को मेड़ों पर लगाएं।
- फसल चक्र के अनुसार सिद्धांतों का चुनाव करें।
- सब्जियों के पहले 40-50 दिनों तक खरपतवार मुक्त रखना आवश्यक है अतः समय -समय पर खुरपी द्वारा निराई-गुड़ाई करते रहें।
- आलू, प्याज़, भिंडी, सेम, मटर, शलगम, मेथी, पोदीना, पालक, चौलाई आदि की बिजाई सीधी बीज विधि से करें।
- धनियो को बोने से पहले दो हाथों के बीच में रगड़ या तोड़ विधि से दो भाग कर लें।
- सब्जियों का चयन इस प्रकार करें कि उनकी साल भर उपलब्धता बनी रहे।

बीज को बोने एवं पौध-रोपण का समय : सब्जियों को मौसम के हिसाब से लगाया जाना चाहिए।

खरीफ मौसम वाली सब्जियां : इन्हें जून-जुलाई में लगाया जाता है जैसे- तोरई, भिंडी, अरबी, करेला, लौकी, ग्वार, मिर्च, टमाटर आदि।

रबी मौसम वाली सब्जियां : इन्हें सितम्बर-नवम्बर में लगाया जाता हैं जैसे- बैंगन, टमाटर, मिर्च, मेथी, प्याज़, लहसुन, धनिया, पालक, गोभी, गाजर, मटर आदि।

जायद मौसम वाली सब्जियां : इन्हें फरवरी-मार्च में बोया जाता है जैसे- कद्दूवर्गीय सब्जियां आदि।

किचन गार्डन या गृह वाटिका में क्या-क्या उगाएं : सब्जी बगीचे में उपर्युक्त सब्जियों के अलावा फल वृक्षों जैसे- केला, पपीता, नीम्बू, अमरूद, करौंदा आदि को सामान्यतः जून-जुलाई एवं फूलों को मौसम के हिसाब से गमलों में लगाया जा सकता है। इसके साथ ही कुछ क्यारियों में एक साथ दो फसलें या एक फसल के बीच में दूसरी फसल अंतरवर्तीय फसलों के रूप में लगाई जा सकती हैं।

इस प्रकार सब्जी बगीचा की सहायता से संतुलित पोषण को प्राप्त किया जा सकता है, साथ ही अतिरिक्त उत्पादन को बेचकर लाभ कमाया जा सकता है। ।

Health Benefits of Whole Grain Cereal Based Bioactive Compounds

- **Jayanti Tokas, Himani and Poonam Mor**
Directorate of Human Resource Management
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

A need for food that contributes to individual nutrition and health status, and also to the sustainability of the planet, is rising as a consequence of consumer's awareness of foods nutritional value and origin. Amongst them, whole-grain cereals and their foods are the one which have gained importance during the last decade only. The whole-grain cereals are a unique blend of bioactive components (phytochemicals and antioxidants). The increased consumption of whole-grains/products has been associated with reduced risk of many chronic diseases. However, the bioactive compounds in whole grain have not been explored much as compared to that in fruits and vegetables which are responsible for the health benefits of whole-grain consumption.

Bioactive compounds are extra nutritional elements found in foods that are capable of modulating metabolic processes and resulting in the promotion of better health but are not essential for the human body. They include an extremely heterogeneous class of compounds (polyphenolic compounds, carotenoids, tocopherols, phytosterols and organosulfur compounds) with different chemical structures and distribution in nature. The bran/germ fraction of cereal-grains contains the majority of bioactive compounds (Figure 1). Routine consumption of whole grains/products is associated with reduced risks of chronic diseases such as type 2 diabetes, cardiovascular diseases and cancer. As compared to the refined grains, the whole-grains and foods from whole-grains contain all the essential parts viz. bran, endosperm and germ. The outer layer of grain contains much higher levels of bioactive compounds (phenolic compounds, phytosterols, tocols and carotenoiods) than the inner parts. The lignans,alkyl-resorcinols and phenolic acids of whole grains can be

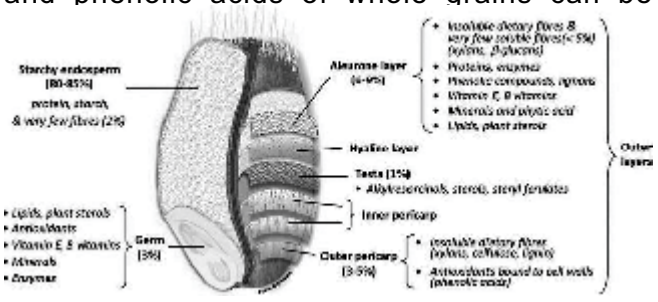

Fig. 1. Structure of a whole grain

metabolized and absorbed in humans and induce the physiological changes underlying the protective effects.

Bioactive Compounds in Whole-Grain Cereals : The unique bioactive compounds of whole-grains complement those in fruits and vegetables when consumed together. The major bioactive compounds in whole-grain cereals are phenolic compounds, phytosterols, phytic acid, dietary fibers (mainly beta-glucan), lignans, g-oryzanols, cinamic acid, ferulic acid, avenanthramides, inositols and betaine. Some of the bioactive compounds are quite specific to certain cereals, for example, avenanthramide and saponins in oats, beta glucans in oats and barley, g-oryzanol in rice and alkyl resorcinol in rye. However, other cereals also contain these bioactive compounds but relatively in fewer amounts. The important bioactive compounds found in whole-grain cereals are:

1. Phenolic compounds : Phenolic compounds possess one or more aromatic rings with one or more hydroxyl groups and are categorized as phenolic acids, flavonoids, stilbenes, coumarins and tannins. These are secondary metabolites playing essential function in the reproduction and growth of the plants, act as defense mechanisms against pathogens and parasites, and also contribute to the plant color. In addition to this, phenolic compounds in our diet provide health benefits because of their highly antioxidant capacity. Polyphenols may have far more benefits in vivosuch as enhancing endothelial function, cellular signaling and anti-inflammatory properties, reduced risk of chronic diseases, etc. In UK, public health recommendations to reduce the risk of coronary heart disease suggested to include oats and oat-based products as part of their diet.

2. Flavonoids : Flavonoids are compounds with a C_6-C_3-C_6 skeleton that consists of two aromatic rings joined by a three carbon link. Sorghum has been reported to have the widest range of flavonoids. Cereals have small quantities of flavonoids, except barley which contains measurable amounts of catechin and pro-cyanidins. Flavonoids have antioxidant, anticancer, anti-allergic, anti-inflammatory, anti-carcinogenic and gastro protective properties.

3. Lignans : Lignans are polyphenolic bioactive compounds that are present in flax seeds, whole-grains like corn, oats, wheat and rye. Lignans have good antioxidant activity and weak oestrogenic activity which makes them useful in combating chronic diseases. Lignans also inhibit colon cancer cell growth.

4. Carotenoids : Carotenoids are the most wide spread pigments in nature with yellow, orange and red colors with their role as pro-vitamins and antioxidants. More than 600 different carotenoids occur in plants,microorganisms and animals. Commonly found carotenoids in whole-grain cereals are lutein, zeaxanthin, beta-cryptoxanthin, beta carotene and alpha carotene. Lutein is the present in wheat followed by zeaxanthin and beta cryptoxanthin. Rice bran contains lutein and zeaxanthin, which improves eye sight. Maize is the best source with 11mg/kg of carotenoids on dry weight basis. Carotenoids are evenly distributed within the grain, with significant quantities in endosperm in contrast to other micro nutrients such as minerals, trace elements and polyphenols. Carotenoids also provide color in whole-grain flour.

5. Phytic acid : Phytic acid, a bioactive compound is also known as Inositol hexaphosphate (IP_6). It accounts for more than 70% of the total kernel phosphorus. Phytic acid is mainly present in the bran fraction of whole-grain cereals, especially within the aleurone layer. In corn, IP_6 is mostly found in the germ. Phytic acid from whole-grain cereals is considered nutritionally negative, as it chelates minerals such as Zn, Fe, Ca and Mg, thus limiting its intestinal bioavailability.

6. Phenolic acid : Phenolic acids are derivatives of benzoic and cinnamic acids which are present in all cereals. Sorghum and millet have the widest variety of phenolic acids. The phenolic acids occur in both free and bound form in cereals. The outer layer of the pericarp contains free phenolic acids. The major phenolic acids present in cereals are ferulic acids and p-coumaric acid, of which ferulic acid is the most abundant hydroxycinnamic acid found in cereal grains. Wheat bran is also a good source of ferulic acid which has antioxidant properties to combat free radicals and astringency that deters consumption by insects and animals. The wheat grain contains 0.8-2g/kg of ferulic acid on dry weight basis, which is 90% of total polyphenols. Coumaric acids are hydroxyl derivatives of cinnamic acid and p-coumaric acid is present in the lowest amount in the center of the grain kernel and its amount increases towards the outer layers. These have anti-tumor activity against malignant tumors.

7. Phytosterols : Cereal products are significant sources of plant sterols than vegetables. Oils and margarines are the most important natural source of plant sterols in human diets. They decrease serum cholesterol levels and are beneficial in preventing colon cancer.

8. Gamma-oryzanol : g-Oryzanol is a component of rice-bran oil. Its content in whole-grain rice is 18-63mg/100g dry weight. Its concentration varies in rice-bran (185-421mg/100g), depending on the rice variety, milling time and stabilization process and extraction methods. g-Oryzanol also has antioxidant activity.It is also associated with decreasing cholesterol absorption and platelet aggregation.

9. Beta-glucan : b-glucan are polysaccharides in the cell walls of aleurone layer and endosperm in barley and oat kernels. In barley, they are concentrated in the endosperm while in oats they are concentrated in the aleurone layer. The highest amount of β-glucan is found in barley (3-11%) and oats (3-7%), with lesser amounts in rye (1-2%) and wheat (<1%). Only trace amounts are present in corn, sorghum, rice and other cereals. b-glucan has been promoted as a means of reducing serum and plasma cholesterol levels.

Bioactive Compounds in the Prevention of Colon Cancer : Most of the antioxidative bioactive compounds in grain are bound and can survive gastrointestinal digestion to reach the colon intact, where they provide an antioxidant environment. These antioxidative bioactive compounds are in the insoluble form and bound to cell wall. Since cell wall materials are difficult to digest, they survive upper gastrointestinal digestion and finally reach the colon. In the colon, the fiber is fermented and some of the bioactive compounds which have antioxidant activity are released. Only 0.5-5% of the ferulic acid is absorbed within the small intestine, mainly the soluble fraction and this typical whole-grain wheat phenolic acid would probably exert a major action in the protection of the colon from cancer. Thus, bound antioxidant phenolic acids might act along the whole length of the digestive tract by trapping oxidative compounds.

Cereal and cereal products are a staple component of diets around the world which makes substantial contribution to the intake of carbohydrates, protein, fiber, vitamin E, some of the B vitamins, sodium, selenium, magnesium and zinc. The health benefits of whole-grain cereals are due to the presence of bioactive compounds. Identifying and quantifying cereal bioactive compounds will help us to select grains with increased levels of these health-promoting compounds. However, research is needed to determine their bioavailability, metabolism and health contribution in humans. ।

Supply Chain Management System for Crop Residue

- **Kanishk Verma, Parmod Sharma and Y. K. Yadav**
Department of Renewable and Bio-Energy Engineering
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

India and China produce and consume more than half of the world's total rice supply. Rice is the staple food crop in Asia, where 91% of it is grown and consumed. For every 4 tonnes of rice grain, 6 tonnes of straw is produced. In India, 97.19 Mt of paddy straw is produced every year, and around 23% of it is left unutilized. Mostly these are burnt in fields which emit greenhouse gases hazardous to human and ecosystem health. Paddy straw can be alternatively used as feedstock for clean energy and the conversion can be achieved mainly by thermo-chemical or biochemical/biological processes. Thermochemical conversion includes combustion, pyrolysis, gasification and liquefaction while biochemical conversion encompasses digestion and fermentation. Rice husk is mainly used in boilers as fuel and bagasse mainly for power or paper production. Sugarcane tops is the most surplus residue as it is mostly burnt in the fields itself. These residues are typically burnt in the fields or used to meet household energy needs by farmers and villagers. As India makes further economic progress, farmers are likely to shift to modern fuels like kerosene and LPG. This will further increase availability of such crop residues. A potential 61.1 Mt of fuel crop residue and 241.7 Mt of fodder crop residues are being consumed by farmers themselves. This can be freed up if alternatives are provided to them. The survey shows that farmers are willing to sell crop residues provided they get decent remuneration and alternatives. Gross biomass residue available from crop production in India is shown in Fig. 1.

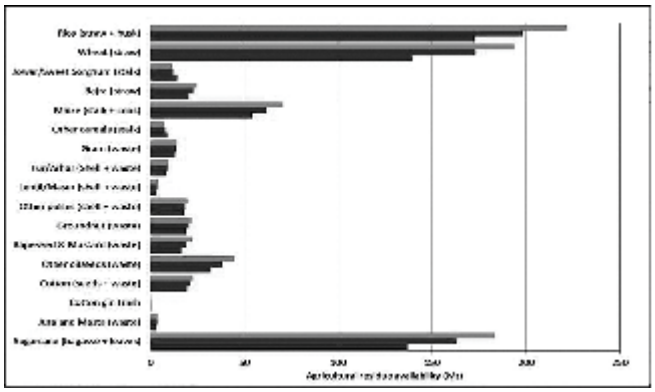

Fig. 1: Total crop residue available in India (Purohit, 2015)

Power generation from biomass

Biomass power and cogeneration programme in India is implemented with the main objective of optimum use of country's biomass resources for power generation. Biomass materials used for power generation include bagasse, rice husk, straw, cotton stalk, coconut shells, soya husk, de-oiled cakes, coffee waste, jute wastes and ground nut shells, saw dust etc. As per the Ministry of New and Renewable Energy, the current availability of biomass in India is estimated at about 500 Mt per year. Studies sponsored by this Ministry has estimated surplus biomass availability at about 120 – 150 million tons per annum covering agricultural and forestry residues corresponding to a potential of about 18,000 MW. This apart, about 7000 MW additional power could be generated through bagasse based cogeneration in the country's 550 sugar mills, if these sugar mills were to adopt technically and economically optimal levels of cogeneration for extracting power from the bagasse produced by them.

Biomass supply chain and logistics

Biomass supply chain include all the unit operations necessary to move biomass feed stocks from the land to the biomass energy plant and to ensure that the delivered feedstock meets the specifications of the conversion process. The packaged biomass can be transported directly from farm or from stacks next to the farm to the processing plant. Biomass may be minimally processed (i.e. ground) before being shipped to the plant, as in case of biomass supply from the stacks. Generally the biomass is trucked directly from farm to biorefinery if no processing is involved. Another option is to transfer the biomass to a central location where the material is accumulated and subsequently dispatched to the energy conversion facility. In the biomass supply depot, the biomass could be pre-processed minimally (ground) or extensively (pelletized). The choice of any of the options depends on the economics and cultural practices. The critical components to reduce costs in harvesting, collecting and transportation of biomass includes; reduction in number of passes through the field, increase in the bulk density of biomass, minimal moisture content and biomass transportation options.

The logistics of transporting, handling and storing the bulky and variable biomass material for delivery to the bio-energy processing plant is an important part of the supply chain that is often

overlooked. Whether the biomass comes from forest residues, straw residues from crops grown on arable land, the relative cost of collection will be considerable. Careful development of a system to minimize machinery use, human effort and energy inputs can have a considerable impact on the cost of the biomass as delivered to the processing plant. The logistics of supplying biomass to a power plant with sufficient volumes of biomass from a number of sources of suitable quality are complex. Agricultural residues can be stored on the farm and then can be delivered directly to the conversion plant on demand; this requires considerable logistics to ensure sustainable supply of biomass.

Biomass supply chain management

Biomass supply chain is emerging as a key factor in the progress of biomass energy sector in a particular country. The supply chain management is a big problem in any biomass project. The problem is due to the large number of stages involved in entire biomass value chain. It starts right from biomass resource harvesting, biomass collection, processing, storage and its transportation to the point of ultimate utilization. Voluminous nature of the biomass makes its handling difficult because it requires bigger modes of logistics, employment of a larger number of work-force and a better storage infrastructure, as compared to any other feedstock. This can be done by considering the following:

- Assuring available market for the Biomass providers or the producers
- Assuring the project developers of a reliable chain and consistent feedstock availability
- Awareness to the project developer of the resources in closest proximity to the plant site
- Assurance to the project developer of the resource quality
- Timely pick-up and drop of biomass to the processing plant

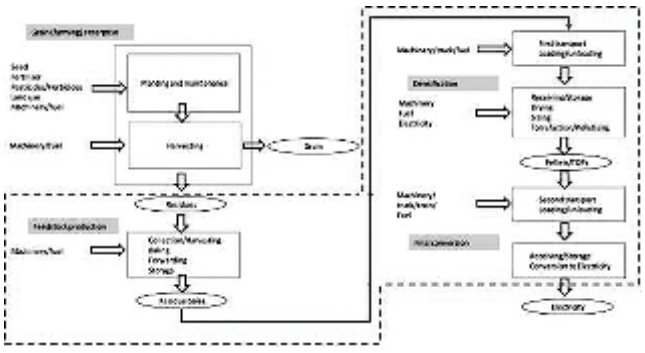

Fig. 2: Supply chain system for crop residue

- Proper fuel preparation as per technology requirements
- Removal of intermediaries involved in the process to increase profits
- Does not require long term contracts
- Competitive fuel prices for better return
- Assistance to producers in crop management

Benefits of supply chain management system

The benefits of a biomass supply chain management are enumerated below:

- Support to the ever increasing power needs of the country
- Promotion of biomass energy technologies
- Development of rural infrastructure
- Increased opportunities for social and micro-entrepreneurship
- Creation of direct and indirect job opportunities
- Efficient utilization of crop residue at farm
- Potential of averting millions of tonnes of GHGs emissions
- Raising the farmers income

Conclusions

In India alone, there has been several cases where biomass power projects of the scale greater than 5 MW are on sale already, even with their power purchase agreements still in place. Such events necessitate the need to have a mechanism in place which would further seek the promotion of such technologies. Biomass supply chain is an attractive solution to different problems afflicting biomass projects, at the same time providing the investors and entrepreneurs with a multi-million dollar opportunity. Although such a concept has been in existence in the developed world for a long time now, it has not witnessed many entrepreneurial ventures in developing nations where the need to strengthen the biomass supply chain becomes even more necessary. However, one needs to be really careful while initiating such a model since it cannot be blindly copied from western countries due to entirely different land-ownership patterns, regional socio-political conditions and economic framework. With a strong backup and government support, such an idea could go a long way in strengthening the biomass supply chain, promotion of associated clean energy technologies and in making a significant impact on enhancement of farmer's socio-economic status in developing countries.

हरियाणा खेती एवं अन्य प्रकाशनों में विज्ञापन हेतु विज्ञापन दरें

पृष्ठ	साधारण (रु०)	छः या छः माह से अधिक समय के लिए विज्ञापन दर (रु०)	रंगीन विज्ञापन दर (रु०)
चौथा कवर पृष्ठ	2500/–	2400/–	6000/–
दूसरा कवर पृष्ठ	2400/–	2300/–	5800/–
तीसरा कवर पृष्ठ	2300/–	2200/–	5500/–
साधारण पृष्ठ	2000/–	1900/–	4700/–
आधा पृष्ठ	1200/–	1100/–	–

लिफाफे का मुख पृष्ठ	–	आकार 9 सैं.मी. × 11 सैं.मी.	4000/–
पिछला पृष्ठ	–	आकार 18 सैं.मी. × 22 सैं.मी.	4000/–

जी.एस.टी. - विश्वविद्यालय के नियमों के अनुसार।

विज्ञापन देने हेतु निम्न पते पर संपर्क करें :

प्रकाशन अनुभाग
गांधी भवन
चौ. च. सिं. हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय
हिसार (हरियाणा)
फोन : 01662-255234

ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती

वर्ष 52 अंक 11



वार्षिक चंदा ₹ 150 नवम्बर 2019 आजीवन सदस्यता ₹ 1500

प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित

© कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 52 | नवम्बर 2019 | अंक 11

इस अंक में

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ
गेहूं की अगेती बिजाई में सावधानियां	यश पाल सिंह सोलंकी, मीना सिवाच एवं जगत सिंह	1
कीटनाशक रसायनों का सुरक्षित प्रयोग	जयलाल यादव एवं नरेन्द्र सिंह	2
रबी फसलों में दीमक से बचाव हेतु बीज उपचार	जयलाल यादव एवं रमेश कुमार	3
मेथी की उन्नत उत्पादन तकनीक	ईशा, सतबीर सिंह पूनिया एवं टोडरमल	4
पॉलीहाऊस में खीरा की व्यावसायिक खेती	राजेश कुमार, विकास कुमार शर्मा एवं गगन मेहता	4
चना उत्पादन : उन्नत कृषि क्रियाएं	रमेश कुमार, अशोक ढिल्लों एवं जयलाल यादव	5
मृदा स्वास्थ्य कार्ड	चरण सिंह, राम प्रकाश एवं सीमा	6
नींबू वर्गीय पौधों के रोग व निदान	राजेन्द्र सिंह, ममता एवं हवा सिंह सहारण	7
पैदावार बढ़ाने हेतु : उर्वरकों का सही उपयोग	राकेश कुमार, विकास एवं मनोज कुमार शर्मा	8
जड़ वाली सब्जियों की काश्त : कीटों व बीमारियों से बचाव	अमित कुमार, नरेंदर सिंह एवं बलबीर सिंह	9
अजोला – चारा उत्पादन एवं उपयोगिता	राजेश कुमार आर्य, सतपाल एवं निशा	9
फल व सब्जियों का जीवन में महत्त्व	सुरेंद्र सिंह, आर.एस.सैनी एवं मुकेश कुमार	10
फसल अवशेष जलाना : दुष्प्रभाव एवं प्रबन्धन	सूबेसिंह, प्रदीप कुमार चहल एवं भरत सिंह घणघस	11
कृषि अवशेष : गत्ता कैसे बनाएं	कनिष्क वर्मा, प्रमोद शर्मा एवं वाई. के. यादव	12
बारानी क्षेत्रों में सरसों की वैज्ञानिक खेती	कुलदीप सिंह, अमित कुमार एवं सुरेंद्र कुमार शर्मा	19
सहजन : कृषि वानिकी उपयोगी पेड़ व इसकी विशेषताएं	बलवान सिंह मंडल, नीलम मंडल एंव अनील कुमार	20
पौधों द्वारा भारी धातुओं के प्रदूषण का समाधान	प्रतिभा, सोनाली एवं सुषमा शर्मा	22
फसल अवशेष जलाने से समस्या एवं समाधान	मनजीत, जोगिन्दर सिंह मलिक एवं सूबे सिंह	23
गर्भावस्था के दौरान – क्या न करें	सुमित श्योराण, बिमला ढांड़ा एवं कृष्णा दुहन	25
वस्त्रों की सजावट: डिज़ाइन एवं तकनीक	ज़ेबा जमाल एवं निशा आर्य	25
किसानों की आय दोगुना करने में – आधुनिक कृषि पद्धतियों का योगदान	अनिल कुमार मलिक, सूबे सिंह एवं सुनील कुमार	26
धान की पराली से जैविक खाद	बलजीत सिंह सहारण, जगदीश प्रशाद एवं सरिता रानी	27
तिल – शरीर सृजनहार	नीता कुमारी, संगीता सी. सिंधु एवं प्रदीप कुमार चहल	28
पॉली हाऊस लगायें – आमदनी बढ़ायें	जगत सिंह, मीना सिवाच एवं विजयपाल पंघाल	28
Wheat Diseases and their Management	Rajender Singh and H. S. Saharan	29
Happy Seeder : Operating Instructions	Pooja Rani, Sube Singh and Anil Saroha	30
Quality Seed to Raise Socio-economic Standard of Farmers	Sunil Kumar, Anil Kumar Malik and S. S. Jakhar	31
Quality Seed Production of Wheat	Y. P. S. Solanki, Meena Siwach and Jagat Singh	32
स्थाई स्तम्भ : दिसम्बर मास के कृषि कार्य		**13**

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

सह-निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह-निदेशक (हिन्दी)

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

सम्पादक (अंग्रेजी)
सुनीता सांगवान
प्रकाशन अनुभाग

डीटीपी एवं आवरण सज्जा
राजेश कुमार
प्रकाशन अनुभाग

गेहूं की अगेती बिजाई में सावधानियां

- **यश पाल सिंह सोलंकी, मीना सिवाच एवं जगत सिंह**
कृषि विज्ञान केंद्र, रोहतक
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बहुत से किसान ऐसे हैं जिनके पास सिंचाई के साधन बिल्कुल ही नहीं है और उन्हें केवल वर्षा पर ही निर्भर रहना पड़ता है। उनके लिए गेहूं की सी-306 व डब्ल्यू एच 1025 किस्मों की सिफारिश की गई है। अगेती बिजाई का समय 25 अक्तूबर से 7 नवम्बर तक है। गेहूं की अगेती बिजाई से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए किसानों को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

उपयुक्त किस्में

सी 306 : यह एक देसी व लम्बी बढ़ने वाली (120-135 सैं.मी.) किस्म है। जिसमें फुटाव अधिक होता है। इसका दाना मध्यम आकार का, सख्त, शरबती व चमकीला होता है। चपाती बनाने के लिए यह सबसे अच्छी किस्म है। इसकी औसत उपज 25 मन प्रति एकड़ है। लेकिन यह रतुआ व खुली कांगियारी के लिए रोगग्राही है।

डब्ल्यू एच 1025 : यह एक बौनी (100 सैं.मी.) व मज़बूत तने वाली किस्म है। यह अधिक फुटाव वाली व रतुआ रोग अवरोधी किस्म है। इसका दाना मध्यम आकार का व शरबती रंग का होता है। इसकी चपाती भी अच्छी बनती है। इसकी औसत उपज 28 मन प्रति एकड़ (बारानी) है जबकि सिंचित क्षेत्रों में 40 मन प्रति एकड़ है। यह किस्म खेत में गिरती नहीं है।

बारानी व कम सिंचाई वाले क्षेत्रों के लिए गेहूं की एक नई किस्म डब्ल्यू एच 1142 की बिजाई करने की सिफारिश की गई है। इस किस्म के दाने शरबती, सख्त तथा मध्यम आकार के होते हैं। यह किस्म खेत में गिरती नहीं है। यह सूखे को सह सकती है तथा इस किस्म की पैदावार भी अच्छी है।

बारानी क्षेत्रों में नमी का संरक्षण करना बहुत आवश्यक है ताकि बिजाई के समय उचित मात्रा में नमी मिल सके। हरी खाद के प्रयोग से नमी का संरक्षण व उर्वरता को और बढ़ाया जा सकता है।

बीज की मात्रा

- छोटे आकार के बीज वाली किस्मों का बीज 40-50 किलो प्रति एकड़ डालें।
- मोटे दाने वाली किस्मों का बीज 50-60 किलो प्रति एकड़ डालें।
- बारानी हालात में अंकुरण की समस्या के कारण बीज दर 10% अधिक रखें।

बीज व बीज उपचार

- हमेशा साफ, स्वस्थ व शुद्ध बीज का प्रयोग करना चाहिए।
- बीज का जमाव 85% से कम नहीं होना चाहिए।
- फसल को दीमक से बचाने के लिए बिजाई से पहले क्लोरोपायरीफॉस (20 ई.सी.) 60 मि.ली. या फारमोथियान (25 ई.सी.) 100 मि.ली. को पानी में मिलाकर 2 लीटर घोल बनायें और 40 किलो बीज को उपचारित करें।
- खुली कांगियारी से बचाव के लिए 2 ग्राम विटावैक्स या बाविस्टीन/किलो बीज से उपचारित करें।
- तरल जीवाणु खाद के लिए एजोटोबैक्टर (200 मि.ली.) व पी.एस.बी. (200 मि.ली.) प्रति 40 किलो बीज का प्रयोग करें।

बिजाई का तरीका

- बिजाई हमेशा अच्छे बत्तर में करें। सीड एवं फर्टिलाईज़र ड्रिल से बिजाई करना सर्वोत्तम है।
- दो कतारों का अन्तर 8 इंच रखना चाहिए।
- लम्बी बढ़ने वाली किस्म सी-306 की बिजाई 6-7 सैं.मी. गहरी की जा सकती है।
- अन्य किस्मों की बिजाई 5-6 सैं.मी. गहरी करनी चाहिए।

खाद की मात्रा

- मिट्टी की जांच के अनुसार संतुलित खादों का प्रयोग करें।
- बौनी किस्मों (सिंचित दशा) में क्रमशः शुद्ध नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश तथा ज़िंक की मात्रा 60, 24, 12 तथा 10 किलोग्राम/एकड़ है।
- देसी किस्मों में क्रमशः शुद्ध नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश तथा ज़िंक की मात्रा 24, 12, 6 तथा 10 किलोग्राम/एकड़ डालें।
- नत्रजन की आधी मात्रा तथा अन्य खादों की पूरी मात्रा बिजाई के समय डालें।
- नत्रजन का शेष भाग पहली सिंचाई के साथ दें।
- बारानी दशा में क्रमशः शुद्ध नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश तथा ज़िंक की मात्रा 12, 6, 0 तथा 0 किलोग्राम/ एकड़ डालें।
- बारानी दशा में सभी खादें बिजाई के समय डालें।
- सिंचित दशा में 50 किलोग्राम डी.ए.पी. तथा 110 किलोग्राम यूरिया (अथवा 150 किलोग्राम सिंगल सुपरफास्फेट तथा 130 किलोग्राम यूरिया), 20 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश व 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ काफी है।
- गेहूं की बिजाई से पहले 6 टन गोबर की खाद या 2 टन वर्मी कम्पोस्ट प्रति एकड़ डालें।

सिंचाई

- पानी की उपलब्धता के अनुसार सिंचाई करें।
- पहली सिंचाई बिजाई के 20-22 दिन बाद बहुत आवश्यक है।
- जहां भूमिगत जल स्तर ऊंचा हो वहां गेहूं में 1-2 सिंचाइयां करें। [

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951(ई) के तहत एक सूचना जारी की है कि 12 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स+ फंजीसाइड्स+हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 8 अगस्त 2018 से ही बन्द कर दिया गया है। इनकी सूची इस प्रकार है:

8 अगस्त, 2018 से प्रतिबंधित कीटनाशक

1. **बेनोमाईल** (Benomyl)
2. **कार्बाराइल** (Carbaryl)
3. **डायजिनॉन** (Diazinon)
4. **फेनारिमोल** (Fenarimol)
5. **फेन्थियॉन** (Fenthion)
6. **लिन्यूरॉन** (Linuron)
7. **मैथॉक्सी इथाइल मरकरी क्लोराइड** (Methoxy Ethyl Mercury Chloride)
8. **मिथाइल पैराथियॉन** (Methyl Parathion)
9. **सोडियम सायनाइड** (Sodium Cyanide)
10. **थियोमेटॉन** (Thiometon)
11. **ट्रायडमॉर्फ** (Tridemorph)
12. **ट्राइफ्लूरालिन** (Trifluralin)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

कीटनाशक रसायनों का सुरक्षित प्रयोग

- **जयलाल यादव एवं नरेन्द्र सिंह**[1]
कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

क्रान्ति की सफलता से भारत खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर होने के साथ-साथ इनका निर्यातक भी बन गया है। यह सब अर्जित करने में उन्नत किस्मों के बीजों, खादों व उर्वरकों, अभियांत्रिकी तथा कीटनाशक रसायनों का योगदान सर्वोपरि है। भारत की जनसंख्या वृद्धि को देखते हुए जल्द ही दूसरी हरित क्रांति की आवश्यकता होगी। दूसरी हरित क्रान्ति के अंतर्गत निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने में भी कीटनाशक रसायनों के प्रयोग का योगदान महत्वपूर्ण होगा।

भारत में कीटनाशकों की कुल खपत विश्व के कुल कीटनाशकों की उत्पन्नता की मात्र दो प्रतिशत है या फिर ये कहें कि हमारे देश में प्रति हैक्टेयर औसतन केवल 380 ग्राम कीटनाशक का प्रयोग होता है जबकि अनेक विकसित देशों में जैसे अमेरिका, जापान व अन्य यूरोपियन देशों में प्रति हैक्टेयर प्रयोग का स्तर 16-17 कि.ग्रा. है।

कीटों पर अपने शीघ्र व प्रभावकारी असर के कारण पिछले कुछ दशकों में अनेक प्रकार के कीटनाशक बाज़ार में आए तथा इनका अंधाधुन्ध प्रयोग हुआ। इसके परिणामस्वरूप अनेक समस्याएं जैसे पर्यावरण प्रदूषण, खाद्य पदार्थों व भूमि में कीटनाशक अवशेषों की उपस्थिति, जल प्रदूषण, कीटों में कीटनाशक रोधी क्षमता पैदा होना, मित्र जीवों को हानि आदि भी सामने आई हैं। इसके अलावा इनके ज़हरीले प्रभाव के कारण स्वास्थ्य सम्बन्धी कई विकार उत्पन्न हुए हैं तथा अनेक जानें भी गई हैं। उपर्युक्त कुप्रभावों को ध्यान में रखते हुए कीटनाशकों के सुरक्षित प्रयोग करने के उपायों की जानकारी होना बहुत ज़रूरी है।

कीटनाशकों के सुरक्षित प्रयोग से अभिप्राय यह है कि इनका प्रयोग सावधानी से हो ताकि मनुष्य, पशु-पक्षी व मित्र जीव इनके दुष्प्रभाव से बचे रहें तथा पर्यावरण को भी कम हानि हो। हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि कीटनाशक किसी भी तरह से, चाहे स्पर्श द्वारा या निगले जाने से अथवा सांस द्वारा, हमारे शरीर में प्रवेश न करें। कीटनाशक रसायनों को कीटों के खिलाफ केवल अन्तिम हथियार के रूप में ही प्रयोग करना चाहिए। कीटनाशकों के सुरक्षित प्रयोग के उपाय निम्न प्रकार से हैं :

क. कीटनाशक प्रयोग करने से पहले :

- कीटनाशक (दवाई) के डिब्बे, पैकेट या बोतल पर चिपके लेबल अथवा साथ लगे कागज़/पुस्तिका में लिखे निर्देशों को ध्यानपूर्वक पढें व सुरक्षा सम्बन्धी सावधानियों का सख्ती से पालन करें। लेबल पर कीटनाशक प्रयोग के अवधि की तारीख अवश्य जांच करें।
- विष सम्बन्धी जानकारी देने वाले संकेतों को समझें। लाल त्रिकोण अत्यन्त विषैला तथा पीला, नीला व हरा त्रिकोण क्रमशः बहुत विषैला, मध्यम विषैला व हल्का विषैला दर्शाते हैं।
- कीटनाशक प्रयोग के लिए शान्त व साफ मौसम वाला दिन चुनें। हवा की गति 5 किलोमीटर प्रति घंटा या उससे कम हो तो अच्छा होगा।
- कीटनाशकों के सीधे स्पर्श से बचें तथा इन्हें शरीर के किसी भी अंग पर न गिरने दें। सांस द्वारा भी कीटनाशक को अन्दर न जाने दें। इसके लिए रबड़ के दस्ताने, रबड़ के बूट व चश्मे पहनें तथा नाक पर गैस-मास्क लगाएं अथवा इसे मलमल के कपड़े से ढांपें। ऐसे एप्रेन अथवा कपड़े पहने जिनसे सारा शरीर ढका रहे।
- छिड़काव पम्प अथवा धूड़ा मशीन का निरीक्षण करें तथा यदि इनसे कोई रिसाव/बिखराव हो रहा हो तो उसे ठीक करें।
- छिड़काव/धूड़ा करने वाला (ऑप्रेटर) एक स्वस्थ वयस्क होना चाहिए तथा उसके शरीर पर कोई घाव/फोड़ा आदि न हो अन्यथा घाव पर जल-रोधी पट्टी लगा कर उसे सीलबंद कर दें।
- ऑप्रेटर छिड़काव पम्प/धूड़ा मशीन चलाने का प्रशिक्षण प्राप्त करें।
- साफ पानी, तौलिया, साबुन आदि की व्यवस्था करें।
- कीटनाशक को उसकी मूल पैकिंग/डिब्बे में ही रहने दें, दूसरी बोतल/डिब्बे आदि में न डालें।
- कीटनाशक के डिब्बे/बोतल आदि को सावधानी से खोलें। इन्हें भूलकर भी मुंह से न खोलें तथा न ही सूंघें।
- कीटनाशक को पानी में हाथ से न मिलाएं बल्कि किसी छड़ी आदि का प्रयोग करें।
- कीटनाशकों का भण्डारण बच्चों व पालतू जानवरों की पहुंच से दूर अलग कमरे/अलमारी में करें तथा ताला लगाकर रखें।
- छिड़काव वाले खेत/स्थान के पास खाने-पीने की वस्तुएं न रखें।
- बच्चों को कीटनाशक प्रयोग की अनुमति न दें।
- खाली पेट छिड़काव न करें क्योंकि ऐसा करने से दवाई का कुप्रभाव होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

ख. कीटनाशक प्रयोग करते समय

- छिड़काव/धूड़ा करते समय छिड़कावकर्त्ता (ऑप्रेटर) अपनी पीठ उस दिशा में रखें जिधर से हवा आ रही हो ताकि दवाई शरीर पर न गिरे।
- इस दैरान कुछ भी खाना-पीना अथवा धुम्रपान करना वर्जित है।
- लगातार व देर तक छिड़काव/धूड़ा न करें तथा बीच-बीच में कीटनाशक प्रयोग किए खेत से दूर विश्राम करें। विश्राम के समय नींबू-पानी लेना लाभप्रद है।
- कीटनाशक का फसल से दूर बहाव (ड्रिफ्ट) को रोकने के लिए नोज़ल को फसल की सतह के निकट रखें, अधिक ऊपर न उठाएं।
- तेज़ धूप व गर्मी अथवा तेज़ हवा के समय कीटनाशकों का प्रयोग न करें। अगर छिड़काव करना बहुत ज़रूरी हो तो फव्वारे की बूंदों को थोड़ा मोटा करें।
- बन्द नोज़ल या पाईप को खोलने के लिए मुंह से फूंक मार कर साफ करने का प्रयास न करें।
- दवाई भरते समय इसे स्प्रे पम्प अथवा टंकी पर न छलकने दें या इसके लिए कीप का प्रयोग करें।
- छिड़काव कर्त्ता के पास अन्य व्यक्ति मौजूद रहें ताकि विष चढ़ने की स्थिति में वह उसे सम्भाल सकें।

ग. कीटनाशक प्रयोग के बाद :

- छिड़काव/धूड़ा करने के तुरन्त बाद दवाई से सने कपड़े, जूते, दस्ताने आदि उतार दें।
- कीटनाशक के खाली डिब्बों/बोतलों को न तो खेत में खुला छोड़ें तथा न ही अन्य काम में लें। इन्हें तोड़ कर चपटा कर दें तथा खाली पड़ी बंजर ज़मीन में गहरा दबा दें।
- कीटनाशक के घोल को छिड़काव पम्प में न रहने दें। पम्प व नालियों को साफ पानी से धोएं व खाली करें। नालियों को गोलाई में समेट कर भण्डार में रखें।
- हाथ, पांव, मुंह आदि साबुन लगा कर साफ करें तथा बाद में स्नान करें।

(शेष पृष्ठ 3 पर)

[1]सहायक वैज्ञानिक (पौध रोग), क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल।

रबी फसलों में दीमक से बचाव हेतु बीज उपचार

- **जयलाल यादव एवं रमेश कुमार**
बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

दीमक एक बहुभक्षी एवं सामाजिक कीट है जो भूमि के नीचे घर बना कर समूह में रहता है। प्रत्येक समूह में राजा और रानी होते हैं जो केवल प्रजनन का काम करते हैं। इनके अतिरिक्त कमेरे और सिपाही कीट होते हैं जिनके पंख नहीं होते और वे प्रजनन भी नहीं कर सकते। कमेरे कीटों के बहुत तेज़ दांत होते हैं और ये ही फसलों को हानि पहुंचाते हैं।

दीमक (सफेद चींटी) की समस्या हरियाणा के दक्षिण-पश्चिमी ज़िलों में बढ़ती जा रही है। यह कीट फसलों को उगने से लेकर कटाई तक बहुत हानि पहुंचाता है। इसका प्रकोप रेतीले व शुष्क क्षेत्रों या फिर ऐसे स्थानों पर जहां पर तापमान ऊंचा और मिट्टी की उर्वरा शक्ति कम हो, अधिक होता है। दीमक का प्रकोप बिजाई के तुरन्त बाद अक्तूबर-नवम्बर में तथा फिर पकते समय (फरवरी-मार्च) अधिक होता है।

दीमक पौधों की जड़ों और तनों के भूमिगत भाग को खाती है। जिन पौधों को दीमक लग जाती है वे पीले पड़ जाते हैं। कुछ समय पश्चात् ये मुरझाकर सूख जाते हैं। जब दीमक का आक्रमण फसल पकने के समय होता है तो गेहूं और जौ की बालियां सिर्फ घास-भूसे का गुच्छा भर रह जाती हैं। उनमें या तो दाने आते ही नहीं या फिर नाम मात्र को आते हैं। अनुमान है कि हर साल गेहूं की फसल को केवल दीमक से ही 6 से 20 प्रतिशत तक की हानि होती है।

दीमक से बचाव के लिए गेहूं, जौ तथा चने के बीज का बिजाई से पहले बीज उपचार करें। बीज उपचार बिजाई से एक दिन पहले करें। बीज उपचार के बाद बीज को पतली तह में बिछा कर छाया में सुखाएं। बीज उपचार निम्नलिखित कीटनाशकों (दवाइयों) से किया जा सकता है :

बिजाई से पहले 100 किलोग्राम बीज उपचार करने हेतु गेहूं, जौ तथा चने के लिए कीटनाशकों की मात्रा, पानी तथा कुल घोल की मात्रा तालिका में दी गई हैं:

फसल	कीटनाशक नाम	मात्रा प्रति 100 किलोग्राम (मि.ली. में)	पानी की मात्रा (लीटर में)	कुल घोल (लीटर में)
गेहूं	क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी.	150	4.85	5.0
	इथियोन 50 ई.सी.	500	4.50	5.0
जौ	क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी.	600	11.90	12.5
चना	क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी.	1500	500 मि.ली.	2.0
	मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल.	850	1.150	2.0

बीज उपचार की विधि : एक क्विंटल (100 किलोग्राम) बीज को पक्के फर्श या पॉलीथीन की बड़ी शीट पर फैला दें और आधी दवाई के घोल को बीज पर छिड़क दें और अच्छी तरह मिला दें। इसके बाद बची हुई आधी दवाई का घोल भी छिड़क कर ठीक प्रकार से मिला दें ताकि बीज के सभी भागों पर दवा की एक पतली परत सी बन जाए। उपचारित बीज को रात भर फैलाकर पड़ा रहने दें और सुबह इसे बिजाई के लिए प्रयुक्त करें। बिजाई से पहले कीटनाशक के उपचार के सिफारिश की गई फफूंदनाशक का बीमारियों व टीके का उपचार करें व फिर इसके बाद बुवाई करें।

बीज उपचार के फायदे :

- एक उत्तम टिकाऊ, सस्ता, आसान तथा अच्छा उपाय।
- मित्र कीटों एवं परजीवियों के लिए अपेक्षाकृत सुरक्षित।
- अंकुरित पौधों को पक्षियों द्वारा निकालने की हानि कम।
- वायु तथा जल में ज़हर की मात्रा भी बहुत ही कम।

नोट : *गेहूं तथा जौ की फसल में बीज उपचार से बीज फूल जाते हैं। इसलिए सीड ड्रील का डिसचार्ज रेट 10 प्रतिशत बढ़ा दें। गेहूं की खड़ी फसल में दीमक का आक्रमण होने पर 2 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. को 2 लीटर पानी में मिलाकर ऐसे कुल 4 लीटर घोल को 20 किलोग्राम रेत में मिलाएं व इसके बाद एक एकड़ गेहूं की फसल में एकसार भुरकाव करके सिंचाई कर दें।*

सावधानियां :

- कीटनाशक खरीदते समय उसकी काम में लेने की अन्तिम तारीख अवश्य देखें ताकि पुरानी कीटनाशक के उपयोग से बचा जा सके।
- यदि खेत में खरीफ की फसल ली हो तो पिछली फसल के बचे हुए अवशेष, खरपतवार तथा अन्य कचरा इकट्ठा करके जला दें।
- बिजाई के बाद मशीन में बचे हुए उपचारित बीज को कृपया बाहर खुला खेत में न डालें क्योंकि इससे पक्षियों खासकर हमारे राष्ट्रीय पक्षी मोर की मृत्यु बहुत होती है। यह बहुत ही ध्यान रखने की बात है।
- यदि गोबर की खाद का प्रयोग करें तो वह ठीक प्रकार से सड़ी-गली होनी चाहिए।
- फसल को समय पर पानी अवश्य दें क्योंकि फसल में पानी की कमी होने पर भी दीमक का प्रकोप शुरू हो जाता है। [

(पृष्ठ 2 का शेष)

- छिड़काव के समय प्रयुक्त हुए वस्त्रों व अन्य सामान को साबुन लगाकर धोएं।
- छिड़काव पम्प, बाल्टी, मापक जार आदि को नालों, तालाबों आदि में न धोएं।
- बिखरी हुई दवाई को सूखी मिट्टी डाल कर सोख लें तथा उसे इकट्ठा कर पानी के स्रोतों से दूर मिट्टी में दबा दें।

घ. अन्य सुझाव :

- कीटनाशक छिड़कें/धूड़ा किए गए खेत में कम से कम दो सप्ताह तक मवेशियों को न घुसने दें।
- फसल पकने से 15 दिन पहले छिड़काव/धूडा न करें।
- छिड़काव के 6 घण्टे के भीतर अगर बारिश हो जाए तो छिड़काव दोबारा करें।
- कीटनाशकों के अवशेषों को कम करने के लिए फलों व सब्जियों को नल के बहते पानी में भली प्रकार से धोएं।
- लापरवाही से अथवा दुर्घटनावश ज़हर चढ़ने पर रोगी का डॉक्टर से तुरन्त उपचार करवाएं।
- परन्तु इससे पूर्व रोगी की प्राथमिक चिकित्सा शुरू कर दें। रोगी को तुरन्त दुर्घटना स्थल से हटाएं तथा दवाई से सने कपड़े, जूते आदि उतार दें।
- रोगी अगर होश में हो तो शीघ्रता से 2-3 गिलास साफ पानी पिलाएं व उल्टी करवाएं।
- शरीर के प्रदूषित भागों को साबुन लगाकर धोएं। आंख में दवाई गिरने पर आंख को 10-15 मिनट तक बार-बार साफ पानी से धोएं।
- तेज़ बुखार या पसीना आने पर ठण्डे पानी से शरीर पोंछें तथा कंपकंपी आने पर कंबल से ढकें। आवश्यकता पड़ने पर कृत्रिम श्वास भी दें। [

मेथी की उन्नत उत्पादन तकनीक

- **ईशा, सतबीर सिंह पूनिया एवं टोडरमल**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मेथी रबी फसलों में उगाई जाने वाली एक मुख्य फसल है। यह फसल मुख्यत: राजस्थान, तमिलनाडू, गुजरात, मध्य प्रदेश, पंजाब एवं उत्तरप्रदेश में लगाई जाती है। परन्तु कुछ वर्षों से हरियाणा में भी इस फसल के अधीन क्षेत्रफल बढ़ता जा रहा है। इन सभी राज्यों में से अधिकतम उत्पादन राजस्थान का है।

इसे व्यावसायिक तौर पर बीज के माध्यम से उगाया जाता है। मेथी का उपयोग मसालों के रूप में और विभिन्न खाद्य पदार्थों में भी किया जाता है। इसकी फली और पत्तियों का उपयोग सब्जी के रूप में किया जाता है। नित्यक्रम में मेथी का सेवन हमें कई प्रकार की बीमारियों से न केवल बचाता है अपितु हमारे शरीर की रोग से लड़ने की क्षमता को भी बढ़ाता है। मेथी का उपयोग स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक लाभकारी है जैसे ये चर्बी को घटाता है, पाचन क्रिया को भी बढ़ाता है। क्षेत्रों के अनुसार मेथी को कई नाम दिये गऐ हैं। जैसे हिंदी में मेथी, मराठी में मेथ्या, कन्नड़ में मेनथ्या, इत्यादि।

जलवायु: सामान्य मेथी का वानस्पतिक नाम *ट्राइगोनेलाफोनीम* - ग्रींक है। यह रबी की फसल है तथा इसकी खेती रबी के मौसम यानि अक्तूबर-नवंबर में की जाती है। मेथी के लिए लंबे ठंडे मौसम और कम तापमान उपयुक्त रहता है। वातावरण में अधिक नमी या बादलों की छाया सफेद चूर्णी रोग तथा चेपा के प्रकोप को निमंत्रण देता है।

भूमि एवं भूमि की तैयारी: मेथी की खेती सभी तरह की मिट्टी में की जा सकती है, लेकिन दोमट या बलुई दोमट मृदा में मेथी की खेती से अत्यधिक उत्पादन होता है। इस मृदा में कार्बनिक पदार्थ प्रचुर मात्रा में होता है। इसमें पर्याप्त मात्रा में जल निकास की क्षमता होनी चाहिए।

उन्नतशील किस्में : हरियाणा के क्षेत्रों के लिए एच एम 65 एक उन्नत किस्म है। लाभ सेलेक्शन-1, गुजरात मेथी-2, आर एम टी 1, राजेन्द्र क्रांति, हिसार सोनाली, कोयम्बटूर-1 कुछ अन्य उन्नत किस्में हैं।

बीज मात्रा : सामान्य मेथी की खेती हेतु बीज मात्रा आठ किलोग्राम प्रति एकड़, मध्यम किस्म की भूमि के लिए तथा 6 किलोग्राम प्रति एकड़ हल्की भूमि के लिए पर्याप्त है।

बिजाई का समय : मध्य अक्तूबर से मध्य नवंबर मेथी की बुवाई के लिए उपयुक्त समय है। 20 नवम्बर से 10 दिसम्बर तक हिसार क्षेत्र के लिए बिजाई का उपयुक्त समय है। पहाड़ी क्षेत्र में इसे मार्च-अप्रैल तक बोया जा सकता है।

अधिक उत्पादन के लिए इसकी बुवाई पंक्तियों में 30 सैं.मी. कतार से कतार दूरी पर एवं 10 सैं.मी. पौधे से पौधे की दूरी पर पोरा विधि से करें।

सिंचाई : मेथी के अंकुरित होने के लिए मृदा में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। पहली सिंचाई 4 से 6 पत्तियां आने पर ही करनी चाहिए। मुख्यत: सर्दी में 2 सिंचाइयों का अतंर 15 से 25 दिन तथा गर्मी के दिनों में 10 से 15 दिन रखना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : रासायनिक खाद के रूप में 8 किलोग्राम नाइट्रोजन (17.5 किलोग्राम यूरिया), 16 किलोग्राम फॉस्फोरस (100 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट) प्रति एकड़ बिजाई के समय ड्रिल करें। गोबर खाद या कम्पोस्ट को खेत की तैयारी से पहले डालना चाहिए। चूंकि यह दलहनी फसल है इसलिए फसल को कम नाइट्रोजन देने की आवश्यकता है।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

पॉलीहाऊस में खीरा की व्यावसायिक खेती

- **राजेश कुमार, विकास कुमार शर्मा एवं गगन मेहता**
उद्यान विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

साधारणत: खीरा उष्ण मौसम की फसल है। इनकी वृद्धि की अवस्था के समय पाला पड़ने में इसकी अत्यधिक हानि होती है। फलों की उचित वृद्धि व विकास के लिए 15-20 डिग्री सैं.ग्रे. का तापमान उचित होता है। खरबूजा व तरबूज की अपेक्षा खीरे को कम तापक्रम की आवश्यकता पड़ती है।

किस्मों का चुनाव : ग्रीनहाऊस में ऐसी किस्मों का चुनाव किया जाता है जो कि गाइनोसियस हो (बीज रहित) तथा फल कोमल एवं मुलायम एवं उपज अच्छी हो। इस प्रकार की किस्मों में बगैर परागण के सीधा फल का विकास होता है। खीरा अपरागित प्रकार का होता है और सभी फूल मादा ही होते हैं जिन्हें यूरोपीय किस्में भी कहा जाता है। इसमें बगैर परागण या फर्टीलाईज़ेशन के फलों का स्थापन व विकास होता है। इसके फल मुलायम, बीज रहित एवं बिना कड़वाहट के होते हैं। इन्हें छीलने की भी आवश्यकता नहीं होती।

पौध तैयार करना : किस्मों के चुनाव के बाद उनकी स्वस्थ पौध भी संरक्षित क्षेत्रों जैसे पॉलीहाऊस या नर्सरी ग्रीनहाऊस में ही प्लास्टिक के खानेदार ट्रे में मीड़िया (कोकोपीट, वर्मीकुलाईट व परलाइट) को 3:1:1 अनुपात के आधार पर बनाया जाता है। आमतौर पर खीरे की पौध 20-25 दिनों में रोपाई योग्य हो जाती है। सर्दी में बीजों को ट्रे में बोने के बाद अंकुरण हेतु 20 से 25 डिग्री सैं.ग्रे. तापक्रम पर रखा जाता है। अंकुरण के तुरन्त बाद उनको नर्सरी ग्रीनहाऊस या पॉलीहाऊस में लगा दिया जाना चाहिए।

भूमि व उसकी तैयारी : रोपाई से एक माह पहले खेत की गहरी जुताई करके भूमि को अच्छी प्रकार तैयार करना चाहिए तथा भूमि से विभिन्न प्रकार के रोगाणुओं व कीटाणुओं के निदान के लिए मिट्टी को फार्मल्डीहाइड के घोल से उपचारित करना चाहिए। इसमें 1.5 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद, 5 ग्रा. नाईट्रोजन 2.5 फॉस्फोरस व 2.5 ग्रा. पोटाश की शुद्ध मात्रा प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से डालनी चाहिए तथा मिट्टी में अच्छी प्रकार से मिला देना चाहिए।

कृषि क्रियाएं एवं खरपतवार नियंत्रण : पौध तैयार होने के बाद पॉलीहाऊस में पौध की रोपाई से पूर्व ग्रीनहाऊस में उठी हुई क्यारियां बनाई जाती हैं। जिनकी चौड़ाई 80-90 सैं.मी. हो सकती है तथा दो क्यारियों के बीच लगभग 40-45 सैं.मी. का स्थान खाली छोड़ा जाता है। क्यारियां बनाने के बाद प्रत्येक क्यारी पर दो ड्रिप पाइपों को 40-50 सैं.मी. की चौड़ाई पर डाला जाता है। आवश्यकता अनुसार पौधों की निराई-गुड़ाई करनी चाहिए।

रोपाई व उसका समय : खीरा विभिन्न मौसम के लिए उपलब्ध किस्मों के अनुसार पूरे वर्ष उगाया जा सकता है। दो उठी क्यारियों के बीच से दूरी 1.5 से 1.6 मीटर होना चाहिए तथा इसको एक ही कतार पर 30 से 40 सैं.मी. की दूरी पर रोपते हैं। जिसमें 1000 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में 2200-2300 तक पौधे लगाये जा सकते हैं।

रोपाई का समय : पॉलीहाऊस में तीन फसलें उगाई जाती हैं: पहली - अगस्त में, दूसरी - अक्तूबर और तीसरी-फरवरी में।

फसल को सहारा देना : रोपाई के 25-30 दिन बाद रस्सियों के द्वारा सहारा देकर लपेटने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। ये रस्सियां क्यारियों के

(शेष पृष्ठ8 पर)

चना उत्पादन : उन्नत कृषि क्रियाएं

- **रमेश कुमार, अशोक ढिल्लों एवं जयलाल यादव**
कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत का विश्व में दलहन उत्पादन में यद्यपि विशेष स्थान है तो भी अपनी शाकाहारी जनसंख्या की दालों की मांग पूरी नहीं कर पाता। दालों की बढ़ती मांग व आयात खर्च को देखते हुए दलहनी फसलों की खेती का महत्व तथा उत्पादकता बढ़ाने की आवश्यकता है। भारत में दलहनी फसलों की खेती 236.3 लाख हैक्टेयर में होती है तथा कुल पैदावार 147.6 लाख टन है। चना, मसर, मटर रबी मौसम की तथा अरहर, उड़द, मूंग खरीफ मौसम की प्रमुख दलहनी फसल हैं। हरियाणा प्रदेश में इन फसलों की खेती 1.79 लाख हैक्टेयर में होती है। चना रबी मौसम की प्रमुख दलहनी फसल है। चना की खेती अधिकतर दक्षिण पश्चिम ज़िलों में होती है। हरियाणा राज्य में चना की औसत पैदावार 10.0 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है जो सिफारिश की गई उन्नत किस्मों की औसत पैदावार 20-25 क्विंटल प्रति हैक्टेयर से काफी कम है। फसल की उत्पादकता बढ़ाने के लिये किसानों द्वारा फसल उत्पादन की उन्नत कृषि क्रियाएं अपनाने की आवश्यकता है जिनका संक्षेप में विवरण निम्नलिखित है:

उन्नत किस्में

सी 235 : इस किस्म की बिजाई की सिफारिश प्रदेश के सिंचित क्षेत्रों के लिये की गई है। यह किस्म अंगमारी (ब्लाईट) रोग की सहनशील है परन्तु उखेड़ा रोगग्राही है। इसकी औसत पैदावार 8 क्विंटल प्रति एकड़ है।

हरियाणा चना नं. 1 : यह किस्म बारानी तथा सिंचित दोनों परिस्थितियों में बिजाई के लिये उपयुक्त है। यह किस्म अन्य किस्मों की अपेक्षा जल्दी पकती है। यह किस्म उखेड़ा रोग के प्रति सहनशील है तथा इसमें फली छेदक कीड़े का आक्रमण अपेक्षाकृत कम होता है। इसकी औसत पैदावार 8-10 क्विंटल प्रति एकड़ है।

हरियाणा चना नं. 3 : इस किस्म की सिफारिश सिंचित क्षेत्रों में बिजाई के लिये की गई है। यह किस्म सीधी बढ़ने वाली तथा फैलाव कम होता है। इस किस्म का दाना मोटा होता है। यह किस्म उखेड़ा, जड़गलन, अंगमारी व चना की अन्य प्रमुख बीमारियों की अवरोधी है। इसकी औसत पैदावार 8-10 क्विंटल प्रति एकड़ है।

हरियाणा चना नं. 5 : हरियाणा प्रदेश के सिंचित क्षेत्रों में बिजाई के लिये इस किस्म की सिफारिश की गई है। इस किस्म के पौधे सीधे, लम्बे और कम फैलावदार होते हैं। यह किस्म उखेड़ा व जड़गलन रोग की रोगरोधी किस्म है। इसकी औसत पैदावार 8.5 से 10.0 क्विंटल प्रति एकड़ है।

बिजाई का समय : अच्छी पैदावार के लिये चना फसल की मध्य अक्तूबर से 30 अक्तूबर तक बिजाई करें। अगेती बिजाई की हुई फसल में तापमान अधिक होने के कारण उखेड़ा रोग लगने का भय रहता है तथा वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है जिससे बीज कम बनते हैं और पैदावार कम होती है।

बीज की मात्रा : एक एकड़ में फसल की बिजाई के लिये 15-18 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। मोटा दाना की किस्मों (हरियाणा चना न. 3) की बिजाई के लिये 30-32 कि.ग्रा. बीज की प्रति एकड़ आवश्यकता होती है।

जीवाणु खादों का प्रयोग : चना की अच्छी पैदावार के लिये बिजाई से पहले बीज का राइजोबियम तथा पी.एस.बी. के टीके से उपचार करें। टीके लगाने के लिये 50 ग्राम गुड़ को 2 कप पानी में घोल लें। इस घोल को एक एकड़ के बीज में मिला दें। गुड़ लगे बीज पर टीकों को डालकर हाथ से मिलाएं ताकि द्रव्य बीजों पर अच्छी तरह लग जाये। इसके बाद उपचारित बीज को छाया में सुखाकर बिजाई करें।

बिजाई की विधि : सिंचित परिस्थितियों में चना की बिजाई खुडों में 30 सैं.मी. तथा बारानी परिस्थितियों में जहां नमी कम हो 45 सैं.मी. की दूरी पर करें। जहां बाजरा के बाद चना की फसल ली जाती है वहां नमी आमतौर पर हल्की से मध्यम दर्जे की होती है, ऐसी स्थिति में चना की बिजाई चौड़ी पंक्तियों (45 सैं.मी.) की दूरी पर करें। चना की बिजाई दोहरी पंक्ति (30/60 सैं.मी.) में की जा सकती है। दो पंक्तियों के बीच की दूरी 30 सैं.मी. तथा दोहरी पंक्तियों में आपसी दूरी 60 सैं.मी. रखें।

खाद एवं उर्वरक : चना की अच्छी पैदावार के लिये 6 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (12-13 कि.ग्रा. यूरिया) तथा 16 कि.ग्रा. फास्फोरस (100 कि.ग्रा. सिंगल सुपरफास्फेट या 35 कि.ग्रा. डी.ए.पी.) प्रति एकड़ बिजाई के समय ड्रिल करें। सिंचित फसल में उपर्युक्त पोषक तत्वों के साथ 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ प्रयोग करें।

सिंचाई : वैसे तो चना की बिजाई बारानी क्षेत्रों में ही प्राय: की जाती है परन्तु सिंचाई करने से पैदावार में बढ़ोत्तरी होती है। अत: जहां हो सके, फूल आने से पहले बिजाई के 45 से 60 दिन के बीच एक सिंचाई करें। दूसरी सिंचाई वर्षा न होने की अवस्था में टाट विकसित होने की अवस्था पर करें ताकि दाने कमज़ोर न रहें। ध्यान रहे कि सिंचाई में प्रयुक्त पानी खारा न हो।

निराई-गुड़ाई : चना की अच्छी पैदावार लेने के लिये दो निराई-गुड़ाई करना आवश्यक है। पहली गुड़ाई बिजाई से 25-30 दिन तथा दूसरी 45-50 दिन पर करें।

कीड़ों की रोकथाम : दीमक, कटुआ सूण्डी तथा फली छेदक सूण्डी चना फसल के प्रमुख कीड़े हैं। दीमक फसल की बिजाई से कटाई तक हानि पहुंचाती है। दीमक का प्रकोप हल्की रेतीली भूमि तथा अर्ध नमी की अवस्था में अधिक होता है। कटुआ सूण्डी उगते हुए पौधे को तने के बीच अथवा बढ़ते हुए पौधों की शाखाओं को काटकर नुकसान पहुंचाती है। फली छेदक सूण्डी पत्तियों, कलियों व फलियों (टाट) पर आक्रमण करती है। यह फलियों में बन रहे दानों को खाकर नष्ट कर देती है। दीमक की रोकथाम के लिये बीज का क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. (15 मि.ली. प्रति कि.ग्रा. बीज) से उपचार करें।

कटुआ सूण्डी की रोकथाम के लिये 80 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. या 50 मि.ली. साइपरमैथरिन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. डैकामैथरिन 2.8 ई.सी. को 100 लीटर पाने में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

फली छेदक सूण्डी की रोकथाम के लिये 400 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. या 400 ग्राम कार्बेरिल 50 डब्ल्यू.पी. या 200 मि.ली. मोनोक्रोटोफॉस 36 एस. एल. या 80 मि.ली. फैनवालरेट 20 ई.सी. या 50 मि.ली. साइपरमैथरिन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. डैकामैथरिन 2.8 ई.सी. या 150 मि.ली. नोवालूरान (रीमोन 10 ई.सी.) को 150 लीटर पाने में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव उस समय शुरू करें जब एक सूण्डी प्रति मीटर लाईन पौधों पर मिलने लगे तथा पौधों पर 50 प्रतिशत टाट पड़ गये हों। यदि ज़रूरी हो तो दूसरा छिड़काव 15 दिन बाद करें। बड़ी सूण्डियों को हाथ से इकट्ठा करके नष्ट करें।

बीमारियों की रोकथाम : उखेड़ा, तना गलन, जड़ गलन तथा अंगमारी चना फसल की प्रमुख बीमारियां हैं जो फसल की पैदावार को प्रभावित करती हैं। इन बीमारियों की रोकथाम के लिये निम्नलिखित उपाय अपनाएं :

- रोगरोधी किस्मों की बिजाई करें।
- स्वस्थ बीज का प्रयोग करें तथा बीज का बाविस्टिन (2.5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) से उपचार करें।
- रोगग्रस्त पौधों को जलाकर नष्ट करा दें।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड

- **चरण सिंह, राम प्रकाश एवं सीमा**
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना भारत सरकार द्वारा 19 फरवरी की फसल-वार की सिफारिश की गई है जिसमें पोषक तत्वों और उर्वरकों की फसलवार सिफारिशें हैं। जो कि व्यक्तिगत फार्मों के लिए आवश्यक हैं ताकि किसानों को इनपुट के विवेकपूर्ण उपयोग के माध्यम से उत्पादकता में सुधार करने में मदद मिल सके। सभी मिट्टी के नमूनों का परीक्षण देश भर के विभिन्न मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं में किया जाना है।मृदा स्वास्थ्य कार्ड एक मुद्रित रिपोर्ट है जिसे एक किसान को उसकी प्रत्येक खेत के लिए सौंप दिया जाएगा। इसमें 12 मापदंडों अर्थात् एन, पी, के (मैक्रो-पोषक तत्व), सल्फर (माध्यमिक- पोषक तत्व) ज़िंक, बोरोन, लौह, मैंगनीज़, कॉपर (सूक्ष्म पोषक तत्व) और पीएच (मिट्टी की प्रतिक्रियाएं मिट्टी की अम्लता/क्षारीयता), कुल घुलित लवण, ऑर्गेनिक कार्बन (भौतिक पैरामीटर) के संबंध में उसकी मिट्टी की स्थिति होगी। इसके आधार पर, उर्वरक सिफारिशों और खेत के लिए आवश्यक मिट्टी संशोधन का भी संकेत देगा। कार्ड किसान के खेत की मिट्टी की पोषक स्थिति के आधार पर एक सलाहकार होगा। यह आवश्यक विभिन्न पोषक तत्वों की खुराक पर सिफारिशें दिखाएगा। इसके अलावा, यह किसान को उर्वरकों और उनकी मात्रा को लागू करने की सलाह देगा, ताकि उत्तम पैदावार का एहसास हो सके।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना भारत के प्रधान मंत्री द्वारा किसानों के कल्याण के लिए शुरू की गई थी। यह योजना किसानों को उन फसलों के बारे में जानने में मदद करती हैं जो वैज्ञानिक तरीकों पर आधारित मिट्टी के आधार पर लगाई जा सकती हैं। ऐसा करने से किसान फसलों की कटाई करते समय अधिकतम उपज प्राप्त कर सकते हैं। योजना के तहत, विश्लेषण के आधार पर, किसानों को एक मृदा स्वास्थ्य कार्ड प्रदान किया जाता है जो फसलों को निर्धारित करता है जिसे विशेष मिट्टी में उगाया जा सकता है और फसलों की उत्पादकता को विकसित करने के उपाय किए जाते हैं। इस लेख में, हम मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के विभिन्न पहलुओं को विस्तार से देखते हैं। मृदा स्वास्थ्य कार्ड मिट्टी की उर्वरता की स्थिति और फसल उत्पादकता को प्रभावित करने वाले अन्य महत्वपूर्ण मिट्टी मापदंडों की क्षेत्र-विशिष्ट विस्तृत रिपोर्ट है।

सॉइल हेल्थ कार्ड में विवरण शामिल हैं : मृदा उर्वरता के बारे में जानकारी, फसलों में उर्वरक प्रयोग की खुराक, खारा या क्षारीय मिट्टी के मिट्टी संशोधन पर जानकारी तथा एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन।

मापदंड : मिट्टी के नमूनों को सिंचित क्षेत्र में 2.5 हैक्टेयर के ग्रिड में और 10 हैक्टेयर में बारिश वाले क्षेत्रों में जीपीएस उपकरण और राजस्व मानचित्रों की मदद से तैयार किया जाएगा।

मिट्टी का नमूना: रबी और खरीफ की फसल की कटाई के बाद या जब खेत में कोई खड़ी फसल न हो, तो साल में दो बार मिट्टी के नमूने लिए जाते हैं। मृदा नमूने को एक प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा 15-20 सेमी की गहराई से मिट्टी को 'वी' आकार में काटकर एकत्र किया जाएगा। इसे चार कोनों और क्षेत्र के केंद्र से एकत्र किया जाएगा और अच्छी तरह से मिश्रित किया जाएगा और इसका एक हिस्सा नमूने के रूप में उठाया जाएगा। छाया वाले क्षेत्रों से बचा जाएगा। चुने गये नमूने को कोडित किया जाएगा। फिर इसे विश्लेषण के लिए मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला में स्थानांतरित किया जाएगा। मिट्टी के नमूने का परीक्षण सभी स्वीकृत 12 मापदंडों के लिए निम्नलिखित मानकों के अनुसार अनुमोदित मानकों के अनुसार किया जाएगा :

* कृषि विभाग और उनके स्वयं के कर्मचारियों के स्वामित्व वाली राज्य स्तर की प्रयोगशाला में।
* कृषि विभाग के स्वामित्व वाले राज्य स्तर पर मज़दूरों पर, लेकिन आउटसोर्स एजेंसी के कर्मचारियों द्वारा।
* आउटसोर्स एजेंसी और उनके कर्मचारियों द्वारा स्वामित्व वाली राज्य स्तर की प्रयोगशाला में।
* के.वी.के. और एस ए यू सहित आई सी ए आर संस्थानों में।
* प्रोफेसर/वैज्ञानिक की देखरेख में छात्रों द्वारा विज्ञान महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों की प्रयोगशालाओं में।

रुपये की राशि : 190 रुपये प्रति मिट्टी नमूना राज्य सरकारों द्वारा प्रदान किया जाता है। इसमें किसान को मृदा नमूने के संग्रह, उसके परीक्षण, उत्पादन और मृदा स्वास्थ्य कार्ड के वितरण की लागत शामिल है।

परीक्षण किए गए 12 पैरामीटर हैं :

भौतिक पोषक तत्व : पीएच (मिट्टी की प्रतिक्रियाएं मिट्टी की अम्लता वक्षारीयता), कुल घुलित लवण, ऑर्गेनिक कार्बन

प्रमुख पोषक तत्व : नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश

मध्यम पोषक तत्व : सल्फर

सूक्ष्म पोषक तत्वों : ज़िंक, बोरोन, लौह, मैंगनीज़, कॉपर

समझने में आसानी के लिए परीक्षा परिणाम रंग कोड के साथ दिखाए जाते हैं: हरा=पर्याप्त; पीला=मध्यम; बैंगनी=अम्लीय/सोडिक; लाल=कमी; सोडिक (सोडियम या नमक की लवणता को दर्शाता है)

मृदा स्वास्थ्य कार्ड पोर्टल : किसानों को मृदा नमूनों और परीक्षण प्रयोगशाला रिपोर्टों के विवरण के साथ वेब पोर्टल पद पर पंजीकरण करना होगा।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड मोबाइल एप्लिकेशन : विश्व मृदा दिवस के अवसर पर, केंद्रीय कृषि और किसान कल्याण मंत्री राधा मोहन सिंह ने देश में 120 मिलियन खेत जोत के लिए मृदा स्वास्थ्य के बारे में जानकारी प्रदान करने के उद्देश्य से मोबाइल ऐप लॉन्च किया।

एप्लिकेशन को फील्ड-स्तरीय श्रमिकों को लाभ होगा क्योंकि यह फील्ड में नमूना संग्रह के समय नमूना विवरण दर्ज करते समय स्वचालित रूप से जीआईएस निर्देशांक से उस स्थान को इंगित करेगा जहां से नमूना एकत्र किया गया है।

यह ऐप राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के लिए विकसित अन्य जियोटैगिंग ऐप की तरह काम करता है। ऐप में किसानों के विवरण शामिल हैं जिनमें नाम, आधार कार्ड नंबर, मोबाइल नंबर, लिंग, पता आदि शामिल हैं। मृदा स्वास्थ्य कार्ड किसानों को मिट्टी के स्वास्थ्य और उर्वरता में सुधार के लिए पोषक तत्वों की उचित खुराक की सिफारिश के साथ मिट्टी की पोषक तत्वों की स्थिति के बारे में सूचित करता है।

एक खेत को हर दो साल में एक बार मृदा कार्ड मिलेगा ताकि पोषक तत्वों की कमी का नियमित रूप से पता लगाया जा सके और उसमें सुधार किया जा सके। उर्वरकों के असंतुलित उपयोग से खेतों को नुकसान होता है और उत्पादन में कमी आती है।

नमूनों के ऑनलाइन पंजीकरण और परीक्षा परिणाम मृदा स्वास्थ्य कार्ड के राष्ट्रीय पोर्टल पर अपलोड किए गए हैं। परीक्षण के परिणामों के आधार पर, सिस्टम स्वचालित रूप से सिफारिशों की गणना करता है।

उद्देश्य : किसानों की मिट्टी की गुणवत्ता और लाभप्रदता में सुधार करना, ग्रामीण युवाओं के लिए रोज़गार सृजन

मृदा विश्लेषण के बारे में जानकारी अध्ययन करने के लिए, किसानों को उनके घर पर मृदा परीक्षण की सुविधा उपलब्ध कराना।

लाभ : मृदा स्वास्थ्य कार्ड से किसानों को मिट्टी की सेहत सुधारने और अंतत: उत्पादकता बढ़ाने में, मृदा स्वास्थ्य कार्ड प्राप्त करने के बाद किसानों ने एन, पी और के उपयोग को कम कर दिया है और सूक्ष्म पोषक तत्वों के उपयोग में वृद्धि की है जिससे उन्हें फसलों की प्रजनन क्षमता बढ़ाने में मदद करता है। किसानों को धान और कपास जैसी अधिक इनपुट-गहन फसलों से कम इनपुट-गहन फसलों की ओर विविधता लाने में मदद करता है, किसानों को इनपुट प्रतिस्थापन खोजने में भी मदद मिली है, सरकारों से सब्सिडी वाले सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसी विशिष्ट योजनाओं के निर्माण में मदद की है।

कमियां: कई किसान सामग्री को समझने में असमर्थ हैं, इसलिए अनुशंसित प्रथाओं का पालन करने में असमर्थ हैं।

प्रति इकाई क्षेत्र में मिट्टी के नमूनों की संख्या मिट्टी की परिवर्तनशीलता पर आधारित नहीं है। कृषि विस्तार अधिकारियों और किसानों के बीच समन्वय का अभाव। माइक्रोबियल गतिविधि, नमी प्रतिधारण गतिविधि आवश्यक है लेकिन मृदा स्वास्थ्य कार्ड में गायब है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड रासायनिक पोषक संकेतकों पर अधिक केंद्रित है। भौतिक और जैविक गुणों के बीच केवल मिट्टी का रंग शामिल है। अपर्याप्त मृदा परीक्षण अवसंरचना। कुछ महत्वपूर्ण संकेतक (i) फसल का इतिहास, (ii) जल संसाधन (मिट्टी की नमी), (iii) मिट्टी की ढलान, (iv) मिट्टी की गहराई, (v) मिट्टी का रंग, (vi) मिट्टी की बनावट (थोक घनत्व) और (vii) सूक्ष्म जैविक गतिविधि आदि शामिल नहीं हैं। [

(पृष्ठ 4 का शेष)

खरपतवार नियंत्रण: मेथी में हरियाणा के क्षेत्रों में मुख्यत: निम्नलिखित खरपतवारों का प्रकोप रहता है : मैना, जंगलीजई, जंगलीपालक, मटरी, मंडूसी, हिरणखुरी, सैंजी, गजरीला

खेत को खरपतवार से मुक्त रखकर मेथी की अच्छी फसल लेने के लिए कम से कम दो निराई-गुड़ाई, पहली बुवाई के 30 से 35 दिन तथा दूसरी 60 से 65 दिन पश्चात अवश्य करनी चाहिए। इससे मिट्टी में हवा का संचार अच्छे से होता है।

रोग एवं रोकथाम : सफेद रंग के फफूंद धब्बों के लिए 0.2 प्रतिशत सल्फैक्स या 0.1 प्रतिशत कैराथेन दवा का छिड़काव 10 से 15 दिन के अन्तर पर करें।

कटाई : इसकी कटाई किस्मों एवं उसके उपयोग में लाए जाने वाले भाग पर निर्भर करती है। सब्जी के लिए पहली कटाई जब मेथी हरी अवस्था में हो तब की जाती है। बुवाई के लगभग 4 सप्ताह उपरान्त पौधे को भूमि सतह के पास से काटते हैं। लगभग 4-5 कटाई ली जाती है।

बीज के लिए उगाई गई फसल लगभग 120 से 160 दिन में पक जाती है। इसकी कटाई या तो जब फलियाँ पीली पड जाएं या नीचे पत्ती गिरने पर शुरु करनी चाहिए। देरी से फसल काटने पर बीज झड़ जाते हैं। कटाई के बाद उसके बण्डल बनाकर 4 से 6 दिनों तक सुखाएं ताकि नमी न हो एवं बीजों की गुणवत्ता को भी हानि न पहुंचे। [

लेखकों से अनुरोध

हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। लेख में अंग्रज़ी शब्दों का प्रयोग न करें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें**। अपना लेख हमें ई-मेल पर भी भेज सकते हैं : **haryanakhetihau@gmail.com**

नींबू वर्गीय पौधों के रोग व निदान

- राजेन्द्र सिंह, ममता एवं हवा सिंह सहारण
उद्यान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा में नींबू वर्गीय फलों का क्षेत्रफल काफी बढ़ा है। जो प्रदेश की अर्थव्यवस्था के लिए फायदेमंद है। माल्टा, संतरा, नींबू, मिट्ठा नींबू व ग्रेपफ्रूट नींबूवर्गीय श्रेणी में आते हैं। इन फलों में विटामिन 'सी' की मात्रा अधिक होती है। इसके अतिरिक्त इन फलों में विटामिन 'ए', 'बी' एवं खनिज तत्व भी पाए जाते हैं। इन फलों पर विभिन्न बीमारियों का प्रकोप होता है। जिसकी वजह से फल की पैदावार व गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इन बीमारियों की पहचान व निवारण बताया जा रहा है :

संतरा एवं माल्टा का कोढ़ : पत्तों, टहनियों और फलों पर गहरे भूरे रंग के खुरदरे धब्बे पड़ जाते हैं जो धब्बों के चारों ओर पीले वृत्ताकार दिखाई देते हैं।

टहनीमार रोग : टहनियां ऊपरी सिरे से सूखनी शुरू हो जाती हैं कभी-कभी बड़ी-बड़ी टहनियां भी सूख जाती हैं और फल व तने भी गल सकते हैं।

गूंद निकलने का रोग (पौध गलन) : ज़मीन के बराबर सतह के नज़दीक तने की छाल उखड़कर गल जाती है जिससे अन्दर की लकड़ी मर जाती है और उसमें से गूंद सा निकलने लगता है।

तने व फल का गलना : पहले पत्तों, टहनियों और फलों पर बाहर से पीले गहरे रंग के गोल धब्बे पड़ जाते हैं। बाद में ये धब्बे ऊपर को उभरकर खुरदरे और गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। धब्बों के बाहर वाला पीला रंग खत्म हो जाता है। और पतों व फल की सतह कागज़ की तरह हो जाती है।

जस्ते की कमी : पत्ते की नसों के बीच की जगह सफेद सी हो जाती है। ऊपर के पत्ते छोटे रह जाते हैं।

सभी बीमारियों का नियन्त्रण कार्यक्रम:

दिसम्बर-फरवरी : गोंद निकलने वाले भागों को कुरेद कर साफ करें। बोर्डो पेस्ट लगाएं, फिर एक सप्ताह बाद दोबारा बोर्डो पेस्ट लगायें। काट-छांट के बाद 0.3 प्रतिशत (3 ग्राम एक लीटर पानी) को 500 लीटर पानी में बने घोल से तीन छिड़काव करें - पहला छिड़काव अक्तूबर, दूसरा दिसम्बर में एवं तीसरा फरवरी में करें अथवा 500 मि.ग्रा. प्लान्टामासिन और 2 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड को प्रति लीटर पानी की दर से जुलाई, अक्तूबर-दिसम्बर व फरवरी में छिड़काव करें।

अप्रैल-मई : कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत का छिड़काव करें। उसके बाद जस्ते की कमी को रोकने के लिये 3 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट 1.5 कि.ग्रा. ज़िंक 1.5 कि.ग्रा. बुझा हुआ चूना 500 लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें।

जुलाई : बरसात की पहली बौछार के तुरन्त बाद 0.3 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का छिड़काव करें।

अगस्त-सितम्बर : संतरे व माल्टे के कोढ़ की रोकथाम के लिए जिन दिनों बारिश न हो उन दिनों में 0.3 प्रतिशत कॉपर-ऑक्सीक्लोराइड का छिड़काव करें। सितम्बर माह में व अप्रैल मई में छिड़के गये ज़िंक सल्फेट व चूने के मिश्रण का छिड़काव भी दोहरायें। केवल स्वस्थ प्रमाणित तनों की कटिंग लगाएं।

अक्तूबर-नबम्बर : फरवरी के महीने में बताया गया कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का छिड़काव करें। [

पैदावार बढ़ाने हेतु : उर्वरकों का सही उपयोग

- **राकेश कुमार, विकास एवं मनोज कुमार शर्मा**
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आज हमारे देश की जनसंख्या लगातार बढ़ रही है जिसके कारण खाद्यान्नों की मांग भी बढ़ रही है। इस मांग को पूरा करने के लिए अधिक खाद्यान्न उत्पादन आवश्यक है। अधिक फसल उत्पादन के लिये आधुनिक कृषि तकनीक में उन्नत बीज, समय से फसल बुवाई, कोड़ाई, उर्वरक का उपयोग, खरपतवार नियंत्रण, कीट व रोग नियंत्रण, समय से कटाई एवं फसल चक्र का उपयोग करने लगे हैं। इनमें सबसे महंगा उपादान उर्वरक है। कृषि उत्पादन बढ़ाने में उर्वरकों का महत्व विशेष है। फसलों में पैदावार बढ़ाने के लिए आवश्यक पोषक तत्वों का उचित मात्रा में देना आवश्यक है। इससे भूमि की उपजाऊ शक्ति भी बनी रहती है। उर्वरकों की कीमतें अधिक होती हैं तथा इनकी उपलब्धता भी सीमित है। इसलिए उर्वरकों का सही उपयोग कम लागत व अधिक पैदावार के लिए अत्यंत आवश्यक है। प्राय: पौधे, प्रयोग किये गये नत्रजन का 40 से 50 प्रतिशत, फास्फोरस का 10 से 20 प्रतिशत, पोटाश का 50 प्रतिशत तथा सूक्ष्म तत्व युक्त उर्वरकों का 2 से 5 प्रतिशत ही उपयोग कर पाते हैं। इसलिए कृषि में अधिक लाभ लेने के लिए उर्वरकों का सही उपयोग अति आवश्यक है।

उर्वरकों के सही उपयोग के लिए ध्यान रखने योग्य कुछ बातें :

- उर्वरकों की मात्रा का निर्धारण व चुनाव मिट्टी की उपजाऊ शक्ति, फसल एवं उसकी किस्म की आवश्यकता अनुसार करें। सबसे पहले खेत की मिट्टी की जांच करवाएं, इससे पोषक तत्वों की भूमि में मात्रा का पता चलता है। मिट्टी परीक्षण से आपको मिट्टी में सुधार की आवश्यकता है या नहीं यह भी पता चलता है। यदि आपकी मिट्टी अम्लीय है तो उसमें चूना डालकर भूमि सुधार कर सकते हैं। क्षारीय भूमि सुधारने के लिए रासायनिक भूमि सुधारक पदार्थों जैसे जिप्सम, पाइराइट, फॉस्फोजिप्सम एवं गंधक का अम्ल आदि का प्रयोग किया जाता है। भूमि सुधार करके उर्वरक की क्षमता का पूर्ण उपयोग कर सकते हैं।
- रासायनिक उर्वरकों की प्रयोग क्षमता में बढ़ोत्तरी के लिए साथ में देसी खादों जैसी हरी खाद, गोबर की खाद तथा कम्पोस्ट आदि का प्रयोग करें। देसी खादें भूमि की जल व पोषक तत्व धारण करने की क्षमता को बढ़ाती हैं। इनके सही उपयोग से मिट्टी में गंधक व सूक्ष्म तत्वों की आपूर्ति खुद ही होती रहती है।
- रेतीली भूमि में यूरिया उर्वरक को खड़ी फसल में सिंचाई के 1-2 दिन बाद डालें ताकि उर्वरक का पानी के साथ बह कर नीचे की ओर रिसाव न हो।
- उर्वरकों का प्रयोग तब करें जब फसल को पोषक तत्वों की अधिकतम आवश्यकता हो जैसे फसल के जमाव, फुटाव व फूल आने के समय।
- फसल बोने के लिये मिट्टी को खूब भुरभुरा करना चाहिए जिससे पौधों की जड़ों का अधिक फैलाव होकर अधिक से अधिक पोषक तत्वों का उपयोग कर सकें। समय पर फसल की बुवाई एवं अनुशंसित बीज की मात्रा से कम उर्वरक से अधिक उपज प्राप्त कर सकते हैं। समय से पहले या देरी से बुवाई करने पर डाले गए उर्वरक की उपयोगिता कम हो जाती है एवं कीट या पौधा रोग की अधिक सम्भावना होती है।
- अमोनियम युक्त उर्वरक जैसे अमोनियम क्लोराइड, अमोनियम सल्फेट, किसान खाद व यूरिया को भूमि की ऊपरी सतह पर न डाल कर निचली सतहों में पोरने या मिलाने से, नत्रजन की गैस के रूप में होने वाली हानि से बचा जा सकता है।
- भूमि में स्थिर हो जाने वाली फास्फोरस व पोटाश पोषक तत्वों के उर्वरकों को सक्रिय जड़ क्षेत्र में ही डालें। इन्हें भूमि की ऊपरी सतह पर बिखेर कर न दें ताकि ये कम से कम मिट्टी के संपर्क में आ पाएं व जिसमें इनकी कम से कम मात्रा अप्राप्य रूप में बदलें।
- बारानी फसलों में भी उर्वरकों को संतुलित रूप में ही डालें। फास्फोरस व पोटाश फसल को विकसित जड़ विन्यास प्रदान करते हैं। जिससे फसल सूखा झेलने में अधिक सक्षम हो जाती है। सीमित नमी वाले क्षेत्रों में उर्वरक अधिक से अधिक संभव गहराई पर नमी में डालने से भी पौधे इनका भरपूर लाभ उठा पाते हैं।
- रबी की फसलों में फास्फोरस उर्वरक अवश्य प्रयोग में लाएं। क्योंकि दिसम्बर जनवरी महीने में जब अधिक ठंड व कोहरे के कारण फास्फोरस की उपलब्धता कम हो जाती है, भूमि में जैविक व रासायनिक क्रियाएं मंद पड़ जाती हैं तब फसल को इनकी अधिकतम मात्रा चाहिए। अत: जिन फसलों में फास्फोरस का प्रयोग किया जाता है उन्हीं में ही बढ़वार व पैदावार ठीक मिलती है। खरीफ फसल में यदि भूमि में प्राप्य फास्फोरस 15 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर से अधिक हो तो बिना फास्फोरस उर्वरक प्रयोग किए औसत पैदावार ली जा सकती है।
- खड़ी फसलों में पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने में पर्णीय छिड़काव आंशिक परंतु तुरंत लाभ देता है। जस्ता, लोहा, नत्रजन व फास्फोरस की कमी पूर्ति हेतु क्रमश: 0.5% ज़िंक सल्फेट, 0.5-1.0% फैरस सल्फेट, 2.5-3.0% यूरिया व 1.5-2.0% डी.ए.पी. के घोल का प्रयोग करें। उर्वरकों का भूमि में प्रयोग अधिक हितकर होता है।
- यूरिया का छिड़काव हमेशा खरपतवार उखाड़ने के बाद करें। यदि खरपतवार का नियंत्रण करना सम्भव न हो तो ऊपर से नत्रजन (नाइट्रोजन) का प्रयोग न करें। [

(पृष्ठ4 का शेष)

समानान्तर 8-9 फुट की उंचाई पर स्थापित की जाती हैं तथा इन्हें ज़मीन के पास लाकर प्रत्येक पौधे को एक रस्सी के द्वारा लपेटा जाता है। इसकी मुख्य शाखा पर फूलों के गुच्छे लगते हैं, जिन्हें बगैर नुकसान पहुंचाये पौधों को रस्सियों के सहारे लपेटा जाता है।

हानिकारक कीड़े : खीरे का लाल भृंग: यह कीट बेलों को काफी क्षति पहुंचाता है। इससे बचाव हेतु कार्बेरिल (सेविन) (1 से 2 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव करें। [

आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें।

- सह-निदेशक (प्रकाशन)

जड़ वाली सब्जियों की काश्त : कीटों व बीमारियों से बचाव

- **अमित कुमार, नरेंदर सिंह एवं बलबीर सिंह**
सब्जी विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सब्जियों में जड़ वाली सब्जियां अपना विशेष स्थान रखती हैं। खासकर सर्दी के मौसम में किसान इनसे कम लागत में अधिक मुनाफा कमा सकते हैं। जड़ वाली सब्जियों में गाजर, मूली व शलगम अपने औषधिक गुणों के लिए जानी जाती हैं। इन्हें किसान बाज़ार की मांग के हिसाब से तोड़कर या जूस व अचार आदि बनाकर अधिक मुनाफा ले सकते हैं। आइये जानें कि इन सब्जियों की काश्त व बचाव कैसे करें :

गाजर : गाजर के लिए पूसा केसर, हिसार गैरिक, नैन्टीस आदि किस्मों का उपयोग कर सकते हैं। ये किस्में अच्छी पैदावार देने वाली हैं और इनकी औसत पैदावार लगभग 100-110 क्विंटल प्रति एकड़ है।

मूली : मूली के लिए हिसार स्वेती,जपानी व्हाईट, पूसा चेतकी व पंजाब सफेद आदि किस्मों का इस्तेमाल कर अच्छी उपज ले सकते हैं। ये किस्में 40-45 दिन में तैयार हो जाती हैं और लगभग 60-120 क्विंटल प्रति एकड़ तक पैदावार ली जा सकती हैं।

शलगम : जो किसान भाई शलगम की खेती करना चाहते हैं वे 4 व्हाईट और पर्पल टॉप व्हाईट ग्लोब आदि किस्में प्रयोग कर सकते हैं। इनकी औसत पैदावार 80-90 क्विंटल प्रति एकड़ है।

भूमि को तैयार करना : गोबर की खाद को खेत तैयार करते समय ही खेत में अच्छे से मिला दें। खेत को 2-3 बार गहरा जोतें व पाटा लगाएं। इस प्रकार करने से खेत में उचित नमी बनी रहती है।अगर खेत समतल नहीं है तो इसे भी बिजाई से पहले समतल कर लेना चाहिये।

बिजाई का उचित समय

देसी किस्मों के लिए : गाजर - मध्य सितंबर, मूली - अगस्त से सितंबर एवं शलगम - अगस्त से सितंबर।

यूरोपियन किस्मों के लिए : इन किस्मों की बिजाई ठंडे मौसम में करनी चाहिये। इनके लिए बिजाई का उचित समय अक्तूबर से नवम्बर तक है।

बीज की मात्रा : गाजर के लिए 4-5 किलोग्राम/एकड़, मूली के लिए 3 किलोग्राम/एकड़ एवं शलगम के लिए 2 किलोग्राम/एकड़ बीज पर्याप्त रहेगा।

बीजने की विधि : जड़ वाली सब्जियों को हल्की डोलियों पर बोना चाहिये। ताकि अधिक उपज के साथ-साथ अच्छी गुणवत्ता वाली जड़ें भी प्राप्त हो सकें। डोलियों के बीच की दूरी 30-45 सैं.मी. व पौधे से पौधे की दूरी 6-8 सैं.मी. रखना चाहिये। बीज को डोलियों की चोटी पर 2-3 सैं. मी. गहरा डालना चाहिये।

खाद व उर्वरक प्रबंधन : खाद व उर्वरक हमेशा ज़मीन की जांच के बाद आवश्यकतानुसार डालने चाहियें। सामान्य भूमि के लिए जड़ वाली सब्जियों में 20 टन गोबर की खाद जो अच्छे से सड़ी हुई हो को खेत की जुताई के समय डाल दें। प्रति एकड़ के हिसाब से 24 किलोग्राम नाइट्रोजन व 12 किलोग्राम फास्फोरस खेत में बिजाई के समय डालें। गाजर में इनके साथ-साथ 12 किलोग्राम पोटाश की मात्रा अतिरिक्त डालें व नाइट्रोजन की आधी मात्रा बिजाई पर और शेष 3-4 सप्ताह बाद दें।

(शेष पृष्ठ 10 पर)

अजोला – चारा उत्पादन एवं उपयोगिता

- **राजेश कुमार आर्य, सतपाल[1] एवं निशा**
औषधीय, सगंध एवं क्षमतावान फसलें अनुभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अजोला एक फर्न है जो कि आमतौर पानी की सतह पर तैरता रहता है। वैसे तो इसका उपयोग जैविक खाद के रूप में काफी समय से हो रहा है क्योंकि इसमें पाये जाने वाले जीवाणुओं में वायुमण्डल से नत्रजन को लेकर स्थिर करने की क्षमता होती है। जैसे की दलहनी फसलों में होती है। आजकल, इसका उपयोग पशु चारे के रूप में भी होने लगा है। क्योंकि यह दूध देनेवाले पशुओं के पोषण तथा स्वस्थ रखरखाव के लिए एक उत्तम हरा चारा है। वैसे भी अजोला अन्य चारा वाली फसलों की तुलना में वार्षिक उत्पादन अधिक देता है। अजोला में सभी प्रकार के पोषक तत्व पाये जाते हैं इसलिए यह गाय-भैंसों में वृद्धि तथा दूध उत्पादन है। उत्पादन शुरू करने के लिए शुद्ध प्रजाति का बीज विश्वसनीय स्रोत से लें। उचित समय पर 1 सैं.मी. उपज से कटाई करने से इसका उत्पादन अधिक होता है। अपने देश में पाई जाने वाली अजोला प्रजाति की लम्बाई 2-3 सैं.मी. तथा चौड़ाई 1-2 सैं.मी. होती है। अजोला चारा इसमें गोबर मिश्रित होने से आमतौर पर पशु पसन्द नहीं करते और अधिक उत्पादन के लिए गोबर का इस्तेमाल किया जाता है।

उत्पादन की विधि : अजोला तालाब, नदी, गड्ढों व टब आदि में आसानी से उगाया जा सकता है। भारत में मुख्यत: अजोला पिन्नाटा का उपयोग किया जाता है। आजकल, अधिक उत्पादन के लिए नैशनल रिसोर्स डेवल्पमैंट विधि प्रयोग की जा रही है। जिसमें प्लास्टिक शीट की सहायता से 2×2×0.2 मीटर पानी भरने के लिए क्यारी बनाते हैं। इसमें 10-15 कि.ग्रा. उपजाऊ मिट्टी तथा 2 कि.ग्रा. गाय के गोबर की खाद तथा 30 ग्रा. सुपर फास्फेट का मिश्रण भर देते हैं और दोबारा पानी भर कर जल स्तर 10 सैं.मी. तक पहुंचा देते हैं और इसमें 1 कि.ग्रा. अजोला कल्चर डालते हैं। तीव्र वृद्धि के कारण 10-15 दिनों में 500-600 ग्राम अजोला हरा चारा प्रतिदिन इस क्यारी से मिलना आरम्भ हो जाता है। प्रत्येक 5 दिन बाद, इस क्यारी में 20 ग्राम सुपर फास्फेट तथा 1 कि.ग्रा. गोबर दुबारा डालें। इसके अतिरिक्त ऑयरन, कॉपर, सल्फर आदि भी डालना चाहिए।

अजोला उपयोगिता : उपरोक्त विधि से अजोला चारा उत्पादन आसान, सस्ता तथा लाभकारी है। इससे कम खर्च में, दूध उत्पादन बढ़ाया जा सकता है क्योंकि अजोला एक बहुउपयोगी क्षमतावान पशु चारा है। गायों में दूध उत्पादन क्षमता बढ़ती है। इसे मुर्गियों के लिए सबसे अच्छा आहार माना गया है। अजोला एक निश्चित सीमा तक रासायनिक उर्वरक का एक अच्छा विकल्प है। यह पशुओं में बांझपन की दर को कम करता है।

इसे रबी व खरीफ, दोनों मौसमों में उगाया जा सकता है। अधिक उत्पादन के लिए पी.एच. मान 5-7 के बीच रखना चाहिए तथा सूरज की रोशनी की अच्छी उपलब्धता होनी चाहिए।

पोषक गुणवत्ता : अजोला में सभी आवश्यक पोषक तत्व विद्यमान होते हैं। इसमें प्रोटीन की मात्रा 25-30 प्रतिशत है जो कि लाइसिन, अर्जिनीन व मेथियोनीन का मुख्य स्त्रोत है। अजोला में लिग्निन की मात्रा कम होती है इसलिए इसका पाचन पशुओं के शरीर में आसानी से हो जाता है। इसके अतिरिक्त, पारंपरिक यूरिया खाद की जगह पर अजोला के उपयोग से उत्पादन में वृद्धि होती है क्योंकि इसमें नाइट्रोजन 28-30

[1]चारा अनुभाग, आनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

प्रतिशत, खनिज पदार्थ 10-15 प्रतिशत, बीटा कैरोटीन, कैल्शियम, मैगनीशियम, पोटाशियम, फॉस्फोरस, आयरन व कॉपर प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। पोषक गुणवत्ता के आधार पर अजोला को ग्रीन गोल्ड की संज्ञा भी दी जाती है।

अजोला चारा उपयोग विधि : अजोला पोषण से दूध उत्पादन 10-20 प्रतिशत तक बढ़ता है। इसका प्रयोग 60 ग्राम तक करने पर 10 प्रतिशत तक सांद्र आहार फटाया जा सकता है। संकर नस्ल की गाय में 2 कि.ग्रा. सांद्र आहार की जगह 2 कि.ग्रा. अजोला खिलाते हैं। अजोला को राशन के साथ 1:1 के अनुपात में सीधे पशुओं को दिया जा सकता है। अजोला का उपयोग पशुओं में दूध की मात्रा तथा वसा प्रतिशत बढ़ाने के लिए किया जाता है क्योंकि इसके उत्पादन में खर्च कम आता है तथा लाभ अधिक होता है। इसलिए दिन-प्रतिदिन अजोला की चारे के रूप में उपयोगिता बढती जा रही है। [

(पृष्ठ 9 का शेष)

सिंचाई प्रबंधन : गाजर में 5-6 और मूली व शलगम में 3-4 बार पानी लगाना चाहिये। पानी लगाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये की पानी डोलियों के तीन-चौथाई भाग से ऊपर न जाये।

खरपतवार नियंत्रण : खरपतवार को रोकने के लिए 2-3 बार निराई-गोड़ाई करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त आवश्यकता अनुसार करें।

जड़ों की खुदाई : गाजर की देसी किस्मों को 100-130 दिन और यूरोपियन किस्मों को 60-70 दिनों बाद खोदना चाहिए। मूली की देसी किस्मों को 45-55 दिन और यूरोपियन किस्मों को 34-40 दिनों बाद करनी चाहिए। शलगम की 35-40 दिनों बाद खुदाई करनी चाहिए। जड़ों की खुदाई किस्मों और फसल की मौजूदा अवस्था पर भी निर्भर करती हैं।

हानिकारक कीट व बीमारियां

चेपा : यह कीट मुख्यत: मूली की बीज वाली फसल में नुकसान करता है। इसके शिशु व प्रौढ़ पत्तियों व फलियों का रस चूसते हैं और फसल को नुकसान पहुंचाते हैं।

रोकथाम :

1. जिन शाखाओं पर इस कीट का आक्रमण दिखाई दे उनको तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
2. मिथाइल डेमेंटान 25 ई.सी. या डाइमेंथोएट 30 ई.सी. को 250-400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।
3. अगर सिंगरों के लिए फसल लगाई है तो 250-400 मि.ली. मेंलाथियान 50 ई.सी. को 250-400 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

आल्टरनेरिया ब्लाईट : पीले व भूरे रंग के धब्बों का पत्तों पर पाया जाना इस रोग के होने का संकेत है। कभी-कभी धब्बों में धारियां भी पाई जाती हैं।

रोकथाम :

1. खरपतवारों को खेत में न उगने दें, खेत की अच्छे से सफाई रखें।
2. इंडोफिल एम-45 या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड-50 की 400 ग्राम दवाई को 200 लीटर पानी में मिला कर छिड़काव 10-12 दिन के अन्तर पर करना चाहिए। [

फल व सब्जियों का जीवन में महत्व

- **सुरेंद्र सिंह, आर.एस.सैनी[1] एवं मुकेश कुमार[2]**
सायना नेहवाल कृषि प्रौद्योगिकी प्रशिक्षण व शिक्षा संस्थान
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

ऐसा माना जाता है कि पहला सुख निरोगी काया। यदि आपका शरीर स्वस्थ नहीं है तो आप किसी भी वस्तु का सुख महसूस नहीं कर सकते। शरीर को स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनाये रखने में विटामिन और खनिज तत्वों का खास महत्व है। ये दोनों पोषक तत्व शरीर को कई बीमारियों से भी बचाते हैं। फल व सब्जियों का हमारे भोजन में अतुलनीय योगदान है। ये हमारे भोजन का अभिन्न अंग है। इन्हें सुरक्षात्मक खुराक भी कहा जाता है क्योंकि इनमें खनिज, लवण व विटामिन प्रचुर मात्रा में होते हैं। इनके अतिरिक्त इनमें रेशा भी होता है। इन्हें नियमित रूप से आहार में शामिल करने से अनेक रोगों से बचा जा सकता है। फल व सब्जियों से मिलने वाले विटामिन व खनिज पदार्थों के बारे में नीचे विस्तार से बताया गया है:

विटामिन : विटामिन हमारे शरीर को बनाने में योगदान देते हैं और साथ ही अनेक बीमारियों से लड़ने की शक्ति प्रदान करते हैं। विटामिन दो प्रकार के होते हैं - वसा में घुलनशील ('ए','डी','ई' व 'के') एवं जल में घुलनशील ('बी' व 'सी')।

विटामिन 'ए' : आंखों की रोशनी बरकरार रखने के लिए यह विटामिन अति आवश्यक है। यह त्वचा को पोषण भी प्रदान करता है। यह एक शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेन्ट (जीवन रक्षक तत्व) है। यह शरीर के रोग प्रतिरोधी तंत्र को सुदृढ़ करने में भी सहायक है। विभिन्न खाद्य पदार्थों में यह विटामिन दो प्रकारों - रेटीनोल एवं बीटाकैरोटीन के रूप में पाया जाता है। सामान्यत: बीटाकैरोटीन फलों एवं सब्जियों में पाया जाता है। यह पोषक तत्व फलों एवं सब्जियों को चटख हरा, नारंगी, लाल और पीला रंग प्रदान करता है। विटामिन 'ए' टमाटर, पपीता, शकरकंदी, गाजर, कद्दू, शिमला-मिर्च, खुमानी और आम में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

विटामिन 'बी' : ये विटामिन विभिन्न आहारों से ऊर्जा ग्रहण कर इसे शरीर में प्रसारित कर देते हैं। यह स्वस्थ रक्त का निर्माण करने में भी सहायक हैं। मुंह में छाले होना व जलन होना इसकी कमी के लक्षण हैं। भिण्डी, टमाटर, केला और हरी सब्जियां विटामिन 'बी' के अच्छे स्रोत हैं।

विटामिन 'सी' : यह शरीर में होने वाली विभिन्न क्रियाओं को सुचारू रूप से संचालित करने में सहायक है। यह मांस-पेशियों, लिगामेन्ट्स और कार्टिलेज को स्वस्थ बनाए रखने में सहायक है। घाव को शीघ्र भरने में भी यह विटामिन सहायक है। विटामिन सी एन्टी-ऑक्सीडेन्ट भी है। इस कारण यह शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाता है। नींबू, संतरा, आंवला, ताज़े फलों और सब्जियों जैसे शिमला-मिर्च, मटर और टमाटर इस विटामिन के प्रमुख स्रोत हैं।

विटामिन 'डी' : इसकी कमी से सूखा रोग व हड्डियां कमज़ोर हो जाती हैं। अण्डा, मछली, मछली का तेल, मशरूम, दूध, दही, पनीर व सूर्य की किरणें विटामिन डी के मुख्य स्रोत हैं।

विटामिन 'ई' : यह भी एंटी-ऑक्सीडेन्ट का कार्य करता है। विटामिन 'ई', फ्री रेडिकल्स (शरीर के लिए नुकसान देह पदार्थ) से होने वाली शरीर की अति को रोकता है व कोशिकाओं को सुरक्षा प्रदान करता है। शरीर में फ्री रेडिकल्स प्रदूषण और कोशिकाओं की टूट-फूट से पैदा

[1]कृषि विज्ञान केंद्र, मंडकोला
[2]कृषि विज्ञान केंद्र, बावल

होते हैं। चिकित्सकों के अनुसार विटामिन 'ई' युवा बनाए रखने में सहायक हैं व कैंसर से भी बचाव करता है। विटामिन 'ई' वृद्धा वस्था की ओर अग्रसर होने वाली कुदरती प्रक्रिया को धीमा कर देता है। हरी पत्तेदार सब्जियों में यह विटामिन पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

विटामिन 'के' : इस विटामिन की कमी से शरीर में चोट लगने पर रक्तस्राव जल्दी से नहीं रुकता। वनस्पति तेल व हरी पत्तेदार सब्जियां इसके मुख्य स्रोत हैं।

फोलिक एसिड : हमारे शरीर में खून बनाने के लिए फोलिक एसिड बहुत आवश्यक होता है। यह हरी पत्तेदार सब्जियों में पाया जाता है।

खनिज पदार्थ : खनिज तत्वों में प्रमुख रूप से आयरन, कैल्शियम, पोटाशियम, मैग्नीशियम, मैंगनीज़ और आयोडीन आदि हैं:

आयरन : हीमोग्लोबिन के निर्माण के लिए यह एक आवश्यक पोषक तत्व है। हीमोग्लोबिन रक्त में पाया जाने वाला एक ऐसा तत्त्व है जो शरीर में ऑक्सीजन का सही ढंग से प्रसार करता है। आहार में आयरन की कमी से एनीमिया नामक बीमारी हो जाती है। इसमें मरीज बेहद दुर्बल और थकान अनुभव करता है और उसे सांस लेने में भी दिक्कत होती है। इस सन्दर्भ में यह बात याद रखी जानी चाहिए कि विटामिन सी शरीर में आयरन को अवशोषित करने में मदद करता है। हरी सब्जियों जैसे पालक, मेथी, खजूर व सेब आयरन के मुख्य स्रोत हैं।

कैल्शियम : हड्डियों व दांतों की मज़बूती के लिए कैल्शियम एक आवश्यक पोषक तत्व है। शरीर में कैल्शियम की कमी से आस्टयोपोरोसिस नामक बीमारी हो जाती है व ज़रा-सा आघात लगने पर हड्डियां टूट जाती हैं। आमतौर पर बढ़ती उम्र में यह बीमारी ज़्यादा होती है। कैल्शियम दूध और इससे निर्मित उत्पादों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। फलों में यह केले, अमरूद व हरी पत्तेदार सब्जियों में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

पोटाशियम : यह खनिज तत्व शरीर में तरल पदार्थों के संतुलन को बरकरार रखता है। मांसपेशियों के सुचारू रूप से संचालन में भी पोटाशियम सहायक है। यही नहीं यह ब्लड प्रेशर को भी नियंत्रित रखने में मदद करता है। टमाटर, चुकन्दर, केला इसके प्रमुख स्रोत हैं।

आयोडीन : आयोडीन थायरोक्सिन नामक हार्मोन के निर्माण के लिए आवश्यक है। इसके अलावा यह शरीर की चयापचय क्रिया (मेटाबोलिज्म) को भी सुचारू रूप से संचालित करने में मददगार है। पालक में आयोडीन पाया जाता है।

मैग्नीशियम : यह मांस पेशियों को स्वस्थ व सक्रिय रखने में सहायक है। यह शरीर के एंजाइम सिस्टम को भी सही रखता है। पालक, शकरकंद, सेम और अंजीर में मैग्नीशियम पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

मैंगनीज़ : यह खनिज तत्व कैल्शियम और आयरन के साथ संयुक्त होकर अपना प्रभाव छोड़ता है। शरीर के विभिन्न एंजाइमों को सुचारू रूप से सक्रिय करने में इस खनिज तत्त्व की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यह कोशिकाओं को भी स्वस्थ रखने में सहायक है। मटर, केला और अन्ननास मैंगनीज़ के प्रमुख स्रोत हैं।

शरीर को चुस्त दुरुस्त व स्वस्थ रखने के लिए अपने खान-पान व दैनिक आहार में फलों और सब्जियों को अवश्य महत्व देना चाहिए व मौसम के फल और सब्जियों का नियमित सेवन करना चाहिए ताकि शरीर के लिए आवश्यक विटामिन व खनिज पदार्थों की पूर्ति हो सके। [

फसल अवषेश जलाना : दुष्प्रभाव एवं प्रबन्धन

- **सूबेसिंह[1], प्रदीप कुमार चहल एवं भरत सिंह घणघस**
विस्तार शिक्षा विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अक्सर यह देखने में आया है कि किसान अपनी धान फसल अवशेषों को जला देते हैं। ऐसा करने से उनकी भूमि की उपजाऊ शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है तथा पर्यावरण भी प्रदूषित होता है। फसल अवशेष भूमि में जब सड़ते-गलते हैं तो भूमि में कार्बनिक पदार्थ में बढ़ोत्तरी होती है तथा मिट्टी की उत्पादकता भी बनी रहती है। इसलिए फसल अवशेष मिट्टी के पुनर्जन्म के लिए और मिट्टी की संरचना बनाये रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि इन अवशेषों को सही ढंग से उपयोग करें तो इनके द्वारा हम पोषक तत्वों के एक बहुत बडे अंश की पूर्ति कर सकते हैं। इस समस्या का मूल कारण धान-गेंहू फसल-चक्र है। इन दोनों फसल के बीच समय कम होने के कारण फसल अवशेष को जलाना किसान को आसान लगता है जबकि यह किसानों के लिए घाटे का सौदा होता है जिसकी जानकारी किसानों के पास नहीं है। किसानों द्वारा धान के पुआल को इकट्ठा करके जला दिया जाता है जबकि यह पशुओं के चारा के रूप में उपयोग किया जा सकता है। खेतों में धान के अवशेष जलने से वायुमंडल में प्रदूषण होता है इससे सल्फर, नाइट्रोजन एवं कार्बन डाईऑक्साइड आदि का उत्सर्जन होता है जो वातावरण एवं आम आदमी के लिए ठीक नहीं है।

धान के भूसे के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए विशेष रूप से कम लागत वाले उद्योगों को बढ़ावा देना चाहिए जैसे - गत्ता बनाना, कम्पोस्ट बनाना, मशरूम उत्पादन के लिए खाद बनाने में उपयोग किया जा सकता है अथवा खाद बनाने की इकाइयां तैयार की जा सकती हैं जो मशरूम उत्पादक के लिए उपयोगी होंगी। धान के भूसे को विभिन्न औद्योगिक उत्पादों को बनाने के लिए कच्चे माल के रूप में उपयोग किया जा सकता है। धान के भूसे को पशुओं के नीचे बिछाने के लिए उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार यह गोबर व मूत्र के साथ मिलकर खाद बनाने के काम में लाया जा सकता है। धान के भूसे को सरसों के भूसे के साथ मिलाकर ईंट के भट्ठों में उपयोग में लाया जा सकता है। धान के पुआल को पलवार लगाने से मृदा में खरपतवार, नमी संरक्षण के साथ जीवांश पदार्थ की वृद्धि की जा सकती है। भूमि में जीवांश पदार्थ का उचित स्तर बनाये रखने के लिए हमारा प्रयास होना चाहिए कि अधिक मात्रा में फसल अवशेष का उपयोग किया जाए तथा कृषि क्रियाओं को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाए जो मृदा में जीवांश पदार्थ की वृद्धि में सक्रिय हो सके।

धान के भूसे/पराली को फसल में मल्च के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। धान के भूसे को मिट्टी में मिलाने से यह अधिकांश पोषक तत्व मिट्टी को लौटा देता है और मिट्टी में पोषक तत्वों को संरक्षित करने की क्षमता बढ़ाता है। किसान को धान के भूसे/पराली को न जलाने के लिए जानकारी उपलब्ध कराने के लिए सभी किसान हितकारी, आपूर्तिकर्त्ता, सेवाप्रदाता, शोधकर्त्ता, विस्तार एजेंट, नीति निर्माताओं, सिविल सेवकों को शामिल होने की ज़रूरत है। धान के भूसे का प्रबन्धन करने के लिए इसकी मशीनें सहकारी समितियों को आपूर्ति की जाएं और सब्सिडी दरों पर किसानों को उपलब्ध कराया जाए। इसके प्रचार-प्रसार के लिए विभिन्न विस्तार रणनीतियों, प्रर्दशन, खेत प्रर्दशन और किसान भ्रमण का उपयोग किया जा सकता है। इसको रोकने के लिए सरकार को सख्त कानून बनाकर उसे लागू करवाना चाहिए। धान के भूसे को जलाने की निगरानी सुनिश्चित की जानी चाहिए।

[1]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

धान का भूसा जलाने से पड़ने वाले प्रभाव : फसल अवशेष जलने की समस्या समय के साथ-साथ बढ़ती जा रही है। धान के अवशेष जलने की तीव्रता पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उत्तराखण्ड में सबसे अधिक देखी जाती है। जिसके द्वारा एक विशाल भौगोलिक क्षेत्र में वायु की गुणवत्ता में गिरावट देखी गई है। फसल अवशेष जलाने से वायुमंडलीय गैसो में बड़ी मात्रा में वायु प्रदूषण शामिल होते हैं। इस कारण गंभीर पर्यावरण समस्या उत्पन्न होती है साथ ही साथ कृषि और मानव स्वास्थ्य में गिरावट आती है। जिस कारण मानव को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

पर्यावरण का नुकसान: फसल अवशेष जलने से उत्सर्जित प्रमुख प्रदूषकों और कण वातावरण में शामिल होते हैं जो ग्लोबल वार्मिंग में काफी योगदान करते हैं। फसल अवशेष जलने के दौरान उत्सर्जित काला कार्बन वातावरण को गर्म करता है और यह कार्बन डाईऑक्साईड़ के बाद ग्लोबल वार्मिंग में दूसरा सबसे महत्वपूण योगदानकर्त्ता है।

मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव : धान के अवशेष को जलाने से मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ तथा पोषक तत्वों में कमी आती है। इसके साथ-साथ फसल अवशेष जलने के कारण मिट्टी में उपस्थित लाभदायक सूक्ष्म वनस्पतियों और सूक्ष्म जीवों को भी नष्ट कर देता है।

मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव : बड़े पैमाने पर धान के अवशेष जलाने से वातावरण प्रदूषित हो जाने के कारण मनुष्य के स्वास्थ को खतरा पैदा हो जाता है। जैसा कि देखा गया है बच्चे, बूढ़े व सांस के मरीज़ के लिए यह धुआं अति संवेदनशील हो जाता है। इस दौरान सांस व त्वचा की बीमारियों में अत्यधिक वृद्धि देखी गयी है। जिस कारण बच्चों, वृद्धों और श्रमिकों के स्वास्थ्य पर होने वाला खर्च बढ़ जाता है।

लाभकारी सूक्ष्म जीवाणुओं पर प्रभाव

धान की फसल अवशेष जलाने से भूमि में उपस्थित सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या में भारी कमी आती है। इससे भूमि की उर्वरा शक्ति में कमी आती है।

पशुओं के चारे में कमी : किसानों द्वारा धान के पुआल को इकट्ठा करके जला दिया जाता है जबकि यह पशुओं के चारा के रूप में उपयोग किया जा सकता है। धान के भूसे को इकट्ठा करके जहां पर चारे की कमी होती है वहां पहुंचाया जा सकता है और इसके द्वारा अतिरिक्त लाभ हो सकता है।

दुर्घटनाओं में वृद्धि : फसल अवशेष जलाने से कई बार आग फैलकर आस-पास की फसल को भी नष्ट कर देती है।

धान फसल अवशेषों का प्रबन्धन : फसल अवशेष प्रबन्धन के लिए वर्तमान में निम्न उपायों को अपनाया जा सकता है। जैसे पशुधन चारा, पशुधन विस्तार, मिट्टी में मिलाना, कंपोस्टिंग, बिजली उत्पादन, मशरूम की खेती, बायोगैस, जैव ईंधन, कागज़ और लुगदी बोर्ड निर्माण इत्यादि।

धान अवशेष का खेत में प्रबन्धन : फसल अवशेष को मिट्टी में मिलाने के लिए 2-3 जुताई की अतिरिक्त आवश्यकता होती है। फसल अवशेष के आकार को छोटा करने के लिए रोटावेटर/हैरो का प्रयोग करें। धान की पराली को मिट्टी में मिलाने के बाद सिंचाई करें व यूरिया खाद का इस्तेमाल करें ऐसा करने से फसल अवशेष शीघ्र गल-सड़ कर मिट्टी में मिल जाएंगे। धान की पराली में मुख्य पोषक तत्वों के साथ अल्प मात्रा में सूक्ष्म पोषक तत्व भी पाए जाते हैं। इसलिए पौधों की वृद्धि पर सीधा प्रभाव पड़ता है। धान की पराली को भूमि में मिलाने से मृदा की भौतिक दशा, मृदा की जल धारण एवं जल शोषण की क्षमता बढ़ती है एवं मृदा के सूक्ष्म जीवों के लिए भोजन प्रदान करते हैं।

मशरूम उत्पादन के लिए : मशरूम की खेती एक लाभदायक व्यवसाय है। धान के भूसे का प्रयोग मशरूम उत्पादन के लिए किया जा सकता है। (शेष पृष्ठ 23 पर)

कृषि अवशेष : गत्ता कैसे बनाएं

- **कनिष्क वर्मा, प्रमोद शर्मा एवं वाई. के. यादव**
अक्षय ऊर्जा एवं जैव ऊर्जा अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

रबी के मौसम के दौरान गेहूं, जौ, चना, सरसों, कपास और गन्ना होते हैं खरीफ मौसम में धान, ज्वार, बाजरा और मक्का। इन प्रमुख और लघु फसलों से उत्पन्न कुल अवशेष 24.697 मिलियन टन प्रति वर्ष प्राप्त होता है। इसमें से प्रमुख कृषि अवशेष गेहूं और धान के हैं जो कि कुल अवशेषों का लगभग 80% योगदान देता है। शेष राशि कपास के अवशेषों (7.78%) और सरसों (3.66%) द्वारा योगदान की जाती है। सामान्यत: किसान कृषि अवशेषों को खेत में ही जला देते हैं जिससे वातावरण प्रदूषित होता है और मिट्टी की उर्वरता भी नष्ट होती है। जिससे सोना उगलने वाली धरती जहां ऊसर होने के कगार पर है वहीं हवा भी ज़हरीली हो रही है।

कृषि अवशेष जलाने से होने वाले नुकसान : पराली जलाने से पर्यावरण के नुकसान से अधिक मिट्टी की उर्वरा शक्ति प्रभावित होती है। फसल के अवशेष को जलाने से फसल की ऊपरी परत में मौजूद सूक्ष्म जीवों को नुकसान होता है। इससे मिट्टी की जैविक गुणवत्ता प्रभावित होती है। केवल एक टन पराली जलाने से 5.5 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 2.3 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 25 कि.ग्रा. पोटैशियम और 1.2 कि.ग्रा. सल्फर जैसे मिट्टी के पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। पराली की आग की गरमी से मिट्टी में मौजूद कई उपयोगी जीवाणु और मित्र कीट भी नष्ट हो जाते हैं।

प्रबन्धन के उचित सुझाव : कृषि अवशेषों का प्रयोग जलाने की बजाये गत्ता बनाने में किया जा सकता है जिससे किसान को कई लाभ होंगे। कागज़ और कार्डबोर्ड मुख्य रूप से प्राकृतिक फाइबर-आधारित उत्पादों बांस, भांग, पपीरस, लकड़ी, कपास और धान की पराली से बनाए जाते हैं। कार्डबोर्ड भारी शुल्क कागज़ के लिए सामान्य शब्द है और इसे अक्सर पेपरबोर्ड कहा जाता है। भारत में, कागज़ उद्योग को सामान्यत: तीन खंडों में वर्गीकृत किया गया है : 1. मुद्रण और लेखन, 2. न्यूजप्रिंट एवं पेपरबोर्ड, और 3.औद्योगिक पैकेजिंग (पेपरबोर्ड)। पेपरबोर्ड सबसे बड़ा भाग है, जिसमें कुल घरेलू पेपर की मांग का 45% हिस्सा है, इसके बाद प्रिंटिंग और राइटिंग (35%) और न्यूजप्रिंट (20%) है। उद्योग को वन आधारित (21%), कृषि आधारित (23%) और पुनर्नवीनीकरण फाइबर-आधारित कागज़ (56%) में विनिर्माण कागज़ के लिए उपयोग किए जाने वाले कच्चे माल के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

कृषि अवशेष से गत्ता बनाने के लाभ : कृषि अवशेष को जलाने की रीत से छुटकारा मिलेगा। वातावरण दूषित नहीं होगा। मिट्टी की उर्वरकता बनी रहेगी। किसान की आय में बढ़ोत्तरी होगी। रोज़गार के अवसर प्राप्त होंगे जिससे बेरोज़गारी घटेगी।

गत्ता बनाने की विधि : कृषि अवशेषों को एकत्रित करना >कृषि अवशेष से बुरादा तैयार करना > यूरिया ग्लू के साथ मिलाकर पल्प तैयार करना > पल्प से गत्ते की शीट तैयार करना > शीट को सुखाना > कटाई।

गत्ता बनाने के लिए सबसे पहले कृषि अवशेषों को एकत्रित करके बुरादा तैयार किया जाता है। बुरादा तैयार करते समय कृषि अवशेष के साथ रद्दी अखबार भी पुनरावृत्त किया जाता है। बुरादा तैयार होने के बाद उसमें यूरिया ग्लू (गोंद) मिलाकर पल्प तैयार किया जाता है। यूरिया युक्त गोंद सबसे सस्ता और मज़बूत होता है। ग्लू बुरादे को कंठस्थ बांधने में सक्षम साबित होता है। इसके बाद पल्प को हॉट रोलर प्रेसिंग मील मे डाला जाता जो गत्ता तैयार करके निकालती है। गत्ते को कुछ समय सूखने के लिए धूप में रखा जाता है। फिर गत्ते की कटाई की जाती है। हम ज़रूरत के हिसाब से प्रेसिंग रोलर ड्रम्स की सेटिंग करके अलग-अलग मोटाई का गत्ता बना सकते हैं। इस प्रकार किसान गत्ते को उचित मूल्य में बेच कर कृषि अवशेष से भी लाभ उठा सकता है। [

दिसम्बर मास के कृषि कार्य



फसलों में

गेहूँ

यदि गेहूँ की बिजाई अब तक न कर सके हों तो इस महीने के पहले पखवाड़े तक अवश्य कर लें। इस समय की बिजाई के लिए डब्ल्यू एच 1124, राज 3765, डब्ल्यू एच 1021 व डी बी डब्ल्यू 90, एच डी 3059 ही बोएं। प्रति एकड़ 60 किलोग्राम बीज डालें व सूखे की स्थिति में लगभग 12 घंटे भिगोने के बाद बीज बोएं। जहां तक संभव हो खूडों का फासला घटाकर 18 सैं.मी. (7 इंच) कर दें। बिजाई से पहले यथोचित बीजोपचार अवश्य कर लें। धान की कटाई के बाद गेहूँ की बुवाई ज़ीरो-टिल सीड कम फर्टीलाइज़र ड्रिल मशीन से या हैप्पी सीडर से करें।

रबी फसलों में, विशेषकर गेहूं में खरपतवारों की समस्या निरंतर बढ़ती जा रही है। अत: किसानों से अनुरोध है कि खरपतवारों को पहली तथा दूसरी सिंचाई के बाद एक या दो बार निराई-गुड़ाई करके खेत से निकाल दें। खरपतवारों की रोकथाम हेतु फसल की शुरू की बढ़वार में लगभग 30 दिन के अन्दर ही एक बार निराई-गुड़ाई करें। यदि खरपतवारों की रोकथाम शाकनाशकों द्वारा करनी हो तो चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों की रोकथाम के लिए 2,4-डी का प्रयोग करें। इसके लिए 250 ग्राम 2,4-डी (सोडियम साल्ट 80 प्रतिशत) को या 300 मि.ली. 2,4-डी (एस्टर 34.6 प्रतिशत) या एलग्रीप 8 ग्राम 250 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ में छिड़काव करें। गेहूँ में मालवा, जंगली पालक, हिरणखुरी व अन्य चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु कारफेन्ट्राजोन ईथाईल (एफीनिटी) 40% डी. एफ. की 20 ग्राम प्रति एकड़ या सभी प्रकार के चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु लेनफिडा 50% डी.एफ. (मैटसल्फ्यूरॉन 10%+कारफेन्ट्राजोन 40% मिश्रण) की 20 ग्राम मात्रा प्रति एकड़+0.2% सहायक पदार्थ के हिसाब से 200-250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। यह छिड़काव बौनी किस्मों में बिजाई के लगभग 30-35 दिन बाद व देसी किस्मों में बिजाई के 40-45 दिन बाद (जब पौधों में 3-6 पत्तियां बन जाएं) करना चाहिए। ध्यान रखें 2,4-डी का प्रयोग गेहूँ की डब्ल्यू एच-283 किस्म में तथा मिलवां गेहूँ के साथ चना, सरसों आदि की फसल में न करें।

जंगली मटर, रस्सा/कंडाई और हिरणखुरी के नियंत्रण के लिए 500 ग्राम प्रति एकड़ 2,4-डी सोडियम साल्ट (80%) या 300 मि.ली. प्रति एकड़ 2,4-डी एस्टर (34.6%) का प्रयोग करें। उपर्युक्त रसायनों को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

मंडूसी या कनकी व जंगली जई का नियंत्रण

आईसोप्रोटूरान 50% घु.पा. (टोलकान, टारस, ग्रेमिनान, नोसीलोन, रक्षक, हैक्सामार, इफ्को, आईसोप्रोटूरान, एग्रीलान, मिलरोन) गेहूँ की बिजाई के 30-35 दिन बाद 800 ग्राम दवा का प्रति एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

या

आईसोप्रोटूरान 75% घु.पा. (एरिलोन, डैलरान, हिप्रोटूरान, नोसीलान, एगरोन, रक्षक) गेहूँ की बिजाई के 30-35 दिन बाद 500 ग्राम दवा का प्रति एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। ऐसे क्षेत्रों में जहां पर कनकी में आईसोप्रोटूरान प्रतिरोधकता नहीं आई है, वहां आईसोप्रोटूरान 75% (डी.ई. नोसिल) का प्रयोग लाभदायक है। प्रतिरोधकता वाले क्षेत्र में आइसोप्रोटूरान का प्रयोग बंद कर दिया गया है।

या

आईसोप्रोटूरान-सहायक पदार्थ-सेलवेट (टेन्क मिक्स) : आईसोप्रोटूरान वर्गीय खरपतवारनाशक की 3/4 सिफारिश की गई मात्रा को 250 लीटर पानी में नान-आयोनिक सहायक पदार्थ (सेलवेट) के 0.1% के छिड़काव घोल में मिलाकर बिजाई के 30-35 दिन बाद छिड़कें। बाज़ार में अन्य उपलब्ध सहायक पदार्थ टी पॉल व सैलविट हैं।

गेहूँ की बिजाई यदि दिसम्बर के प्रथम सप्ताह या बाद में हो तो आईसोप्रोटूरान 200 ग्राम प्रति एकड़ पहली सिंचाई के तुरंत पहले करने से जंगली जई, कनकी व बथुआ का नियंत्रण हो जाता है।

धान-गेहूँ फसल-चक्र वाले क्षेत्रों में जहां 10-15 वर्षों से आईसोप्रोटूरान का प्रयोग किया गया है वहां कनकी में इस खरपतवारनाशक के विरुद्ध प्रतिरोधकता आ गई है। अत: प्रतिरोधकता से प्रभावित इलाकों में आईसोप्रोटूरान की बजाय निम्नलिखित में से किसी एक खरपतवारनाशक का प्रयोग करना ज़्यादा उचित रहेगा :

- क्लोडीनाफोप (टोपिक या मुल्ला या प्वाइंट या रक्षक प्लस या जय विजय या टोपल) 15% घु.पा. 160 ग्राम प्रति एकड़ बिजाई के 30-35 दिन बाद;

या

- सल्फोसल्फ्यूरान (लीडर, सफल-75 या एस एफ-10) 75% घु.पा. 13 ग्राम प्रति एकड़ + 500 मि.ली. पृष्ठ सक्रिय क्रमक/चिपचिपा या सहायक पदार्थ बिजाई के 30 से 35 दिन बाद

तकनीकी सहायता :

- एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
- अश्वनी कुमार, संकाय सलाहकार (बागवानी)
- तरुण वर्मा, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (कीट विज्ञान)
- डी. एस. दुहन, सहायक वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान)
- रोहतास कुमार, सहायक वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
- राजेश दहिया, सहायक प्राध्यापिका (गृह विज्ञान)
- वी. एस. हुड्डा, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान)
- देवेन्द्र सिंह बिढान, सहायक प्राध्यापक (पशु उत्पादन प्रबन्धन)
- सूबे सिंह, सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

या

- फीनोक्साप्रोप (पूमा सुपर) 10% ई.सी. 480 मि.ली. या फीनोक्साप्रोप (पूमा पावर) 400 ग्राम+200 ग्राम सहायक पदार्थ प्रति एकड़ बिजाई के 30 से 35 दिन बाद।

या

- पीनोक्साडैन (एक्सियल) 5 प्रतिशत ई.सी. 400 मि.ली. मात्रा प्रति एकड़ बिजाई के 30-35 दिन बाद।

कनकी प्रतिरोधकता वाले क्षेत्रों में मिले जुले (चौड़ी व संकरी पत्ती वाले) खरपतवारों के नियंत्रण हेतु पीनोक्साडेन (एक्सियल) या क्लोडीनाफोप (टोपिक या मुल्ला या प्वाइंट या जयविजय) फिनोक्सोप्रोप (पूमा सुपर या पूमा पावर) की ऊपर सिफारिश की गई मात्रा की बिजाई के 30-35 दिन बाद छिड़काव करें तथा इसके एक सप्ताह बाद 2,4-डी या मैटसल्फ्यूरान (एल्ग्रीप) या कारफेन्ट्राजोन (ऐफीनीटी) या ऐलीएक्सप्रैस की सिफारिश की हुई मात्रा का छिड़काव करें। उपरोक्त रसायनों को मिलाकर छिड़काव न करें।

गेहूं में मिले जुले खरपतवारों (चौड़ी व संकरी पत्तियों वाले) विशेषकर आइसोप्रोट्यूरान-प्रतिरोधी क्षेत्रों में टोटल (सल्फोसल्फ्यूरान+ मैटासल्फ्यूरान, रेडीमिक्स सहायक पदार्थ सहित) की 16 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ या एटलांटिस (मिजोसल्फ्यूरान + आयडोसल्फ्यूरान सहायक पदार्थ सहित तैयार मिश्रण) की 160 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ या वेस्टा (क्लोडिनाफोप + मैटसल्फ्यूरान, रेडीमिक्स) की 160 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से प्रयोग करें। ध्यान रहे कि जिन खेतों में गेहूं के बाद ज्वार या मक्की की फसल लेनी हो उन खेतों में लीडर, टोटल व एटलांटिस का छिड़काव न करें।

गेहूं में यदि कनकी के प्रति शाक प्रतिरोधकता उत्पन्न हो गई है तो इसके नियंत्रण के प्रबन्धन के लिए बिजाई के तुरंत बाद व उगने से पहले पैण्डीमैथालीन 30 ई.सी. को 2 लीटर प्रति एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें। इसी के क्रमबद्ध में उगी हुई खरपतवारनाशक पिनोक्साडेन (एक्सियल) 5% ई.सी. 400 मि.ली. या क्लोडीनाफोप 15% डब्ल्यू. पी. 160 ग्राम या सल्फोसल्फ्यूरॉन 75% डब्ल्यू. जी. 13 ग्राम या टोटल 16 ग्राम या एटलांटिस 160 ग्राम का प्रति एकड़ की दर से बिजाई के 30-35 दिन बाद 200 लीटर पानी में छिड़काव करें।

उपर्युक्त में से किसी एक शाकनाशक दवा का 200-250 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

नवम्बर माह में बीजी गई बौनी किस्मों में बिजाई से 20-25 दिन बाद तथा देसी किस्मों में 30-35 दिन बाद पहली सिंचाई अवश्य करें।

गेहूँ की पछेती किस्मों, जैसे राज 3765, डब्ल्यू एच 1124, डब्ल्यू एच 1021, डी बी डब्ल्यू 90 तथा एच डी 3059 की बिजाई के समय 65 किलोग्राम यूरिया, 150 किलोग्राम सुपरफास्फेट या 50 किलोग्राम डी ए पी तथा 20 किलोग्राम म्यूरेट आफ पोटाश प्रति एकड़ के हिसाब से डालें। इसके साथ-साथ 10 किलोग्राम/एकड़ ज़िंक सल्फेट इतनी ही सूखी मिट्टी में मिलाकर, बिजाई के समय खेत में छिट्टा दें। पोटाश की सिफारिश अम्बाला व यमुनानगर ज़िलों के लिए 40 कि.ग्रा. प्रति एकड़ है। देसी किस्म, जो नवम्बर के शुरू में बोई गई थी, की पत्तियों पर यदि जस्ते की कमी के लक्षण दिखाई दें तो महीने के मध्य में एक किलोग्राम ज़िंक सल्फेट, 5 किलोग्राम यूरिया मिलाकर 200 लीटर पानी में घोलकर एक एकड़ में छिड़काव कर दें। इसी प्रकार 15 दिन बाद ज़िंक व यूरिया से दूसरा छिड़काव करें। नाइट्रोजन खाद की बाकी आधी मात्रा पहली सिंचाई के समय डाल देनी चाहिए। देसी गेहूँ के लिए 25 कि.ग्रा. यूरिया तथा बौनी किस्मों के लिए 65 कि.ग्रा. यूरिया प्रति एकड़ डालें। यदि ज़मीन अधिक रेतीली है तो इसमें नाइट्रोजन की मात्रा का आधा भाग पहली सिंचाई पर डालें और आधा भाग गेहूँ में दूसरे पानी पर डालें। खाद डालने के बाद गोड़ी अवश्य कर दें।

बीज एवं मृदाजनित रोगों से बचाव : ममनी व टुण्डू से बचाव के लिए गेहूँ के बीज से ममनीयुक्त दाने, जो रंग में काले भूरे, आकार में छोटे, गेहूँ के दानों से लगभग एक चौथाई और हल्के होते हैं, निकाल दें। बीज को पानी में डालकर इन्हें निकाला जा सकता है। गेहूँ के भारी स्वस्थ बीज पानी में नीचे बैठ जाते हैं और ममनीयुक्त दाने पानी के ऊपर तैरने लगते हैं, जिन्हें निकाल कर नष्ट कर दें और नीचे बैठे बीज को छाया में सुखा लें (बोने से पहले खुली कांगियारी से बचाव के लिए वीटावैक्स या बाविस्टिन 2 ग्राम या रैक्सिल-2 डी एस (एक ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) से बीज का उपचार करें। बीज जनित करनाल बण्ट से बचाव हेतु बिजाई से पूर्व बीज का थाइरम 2 ग्राम या रैक्सिल-2 डी एस (1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) से सूखा उपचार करें।

गुडगांव, महेन्द्रगढ़, भिवानी, रोहतक व फरीदाबाद ज़िलों के कुछ भागों में मोल्या नामक बीमारी के कारण खेत में कहीं-कहीं पौधे बौने, पीले व सूखे से दिखाई देते हैं। इस रोग से बचाव के लिए ऐसे खेतों में गेहूँ की फसल न लेकर सरसों, तोरिया, चना, गाजर, धनिया व मेथी बोएं और जौ की अवरोधी किस्मों बी एच-75, बी एच 393 बीजें। अत्यधिक रोगग्रस्त खेत में फ्युराडान-3 जी दानेदार दवा 13 किलोग्राम प्रति एकड़ की दर से खाद के साथ मिलाकर पोर दें व बिजाई करें।

दीमक से बचाव

फसल को दीमक से बचाने के लिए बिजाई के एक दिन पहले 100 किलोग्राम बीज को 150 मि.ली. क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. या 500 मि.ली. इथियान 50 ई.सी. से उपचारित करें। दवाई में पानी मिलाकर कुल 5 लीटर घोल बनाएं, फर्श पर रखे बीज पर छिड़कें तथा अच्छी तरह मिलाएं ताकि दवाई हर बीज को लग जाए। इस तरह दवाई लगे बीज को रात भर सूखने दें तथा अगले दिन बोएं।

जौ

दिसम्बर मास में बोई फसल पछेती मानी जाती है जिसमें माल्ट की पैदावार व गुणवत्ता कम हो जाती है। एक एकड़ के लिए 45 किलोग्राम बीज लेकर बीज को कतारों में 18-20 सैं.मी. की दूरी पर पोरा या केरा विधि से बोएं। समय पर बीजी गई फसल में बिजाई के 40-45 दिन बाद पहला पानी लगाएं। बिजाई के समय 26 किलोग्राम यूरिया, 75 किलोग्राम सुपर फास्फेट तथा 10 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश डालें। सुपर फास्फेट को पोरा करें, बिखेरें नहीं।

जौ में पहला पानी लगाते समय नाइट्रोजन की आधी मात्रा (26 किलोग्राम यूरिया) डालें। यदि जौ की पत्तियों पर जस्ते की कमी के लक्षण दिखाई दें तो अधिक पैदावार लेने के लिए गेहूँ में बताए गए (जस्ते-यूरिया के) घोल का छिड़काव करें।

बिजाई से पहले बीज का उपचार वीटावैक्स या बाविस्टिन 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से सूखा उपचार करें।

जौ में दीमक से बचाव के लिए 100 किलोग्राम बीज को बिजाई से एक दिन पहले 600 मि.ली. क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. से उपचारित करना चाहिए। दवा में पानी मिलाकर कुल 12.5 लीटर घोल बनाएं।

जौ में पहली सिंचाई के बाद एक या दो बार फसल की नलाई करें। यदि ऐसा न कर सकें तो 200-250 लीटर पानी में 400 ग्राम 2, 4-डी (सोडियम साल्ट) प्रति एकड़ को घोलकर फसल की बिजाई के 40 दिन बाद छिड़काव करने से चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार नष्ट हो जाते हैं या चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियन्त्रण के लिए एलग्रीप 20 प्रतिशत घु. पा./घु. दाने 8 ग्राम + 200 मिली. चिपचिपा पदार्थ या 2, 4 डी अमाईन 58 एस एल 500 मिली. या एफीनिटी 40 डी.एफ. (कारफेन्ट्राजोन-इथाईल) 20ग्राम प्रति एकड़ को 200 लीटर पानी में घोलकर बिजाई के 40-45 दिन बाद छिड़काव करें। घास जाति के खरपतवारों (कनकी, जंगली जई व लोमड़ घास) के नियन्त्रण हेतु एक्सियल 5 ई.सी. (पिनोक्साडेन) 400 मि.ली. प्रति एकड़ को 200 लीटर में घोलकर बिजाई के 40-45 दिन बाद छिड़कें। मिश्रित खरपतवारों (संकरी व चौड़ी पत्ती वाले) के नियन्त्रण के लिए एक्सियल 5 ई.सी. 400 मि.ली. के साथ अलग्रीप 20 प्रतिशत घु. पा./घु. दाने 8 ग्राम + 200 मि.ली. चिपचिपा पदार्थ या 2, 4-डी अमाईन 58 एस.एल. 500 मि.ली. या एफीनिटी 40 डी.एफ. 20 ग्राम प्रति एकड़ को 200 लीटर पानी में मिलाकर बिजाई के 40-45 दिन बाद छिड़काव करें।

चना

चने में आवश्यकतानुसार फूल आने से पहले एक पानी देना चाहिए। चने की पत्तियों पर यदि भूरे रंग के धब्बे दिखाई दें तो समझना चाहिए कि चने के खेत में ज़िंक की कमी है। इसलिए इस भूमि में अगली बिजाई से पहले 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट अवश्य डालना चाहिए। हरियाणा चना नं. 1 को सिंचित क्षेत्रों में दिसम्बर के मध्य तक भी बोया जा सकता है। कभी-कभी फली छेदक सूण्डी इन दिनों में फूलों व पत्तियों आदि पर आक्रमण कर देती है। अत: इसके नियंत्रण के लिए 200 मि.ली. मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. या 400 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. को 100 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

नोट : किसानों से अनुरोध है कि अपने ट्यूबवैल तथा पंपिंग सैट के पानी की जांच, मिट्टी-पानी का परीक्षण प्रयोगशाला से जो कि हर ज़िले में है, करवाएं। हो सकता है आपका पानी जौ के लिए ठीक हो और चने की फसल को बिल्कुल खराब कर दे।

तोरिया, सरसों व राया

महीने के दूसरे पखवाड़े में तोरिया की पकी हुई फसल की कटाई करें तथा समय पर बीजी गई सरसों व राया की फसलों को महीने के अंत में पानी दें। यदि सरसों व राया के निचले पत्तों के किनारों का रंग गुलाबी पड़ जाए तो यह ज़िंक की कमी का कारण है। इसके लिए एक किलोग्राम ज़िंक सल्फेट, 5 किलोग्राम यूरिया को 200 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ फसल पर छिड़काव करें। पत्तियों पर सफेद फफोले वाली बीमारी से रक्षा के लिए 600 ग्राम डाईथेन एम-45 को 250-300 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ छिड़कें। बिजाई से पहले 96 कि.ग्रा. किसान खाद व 50 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट तोरिया और सरसों में प्रति एकड़ डालें। राया के लिए अमोनियम सल्फेट 160 कि.ग्रा. या 128 कि.ग्रा. किसान खाद और 75 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट प्रति एकड़ बिजाई से पहले डालें।

सरसों, राया तथा तोरिया पर चेपा (अल या माहू) पत्तों, टहनियों, फूलों व फलियों से रस चूस कर काफी हानि पहुंचाता है। यदि इसका आक्रमण औसत 10% फूलों वाली शाखाओं पर हो जाए तब रोगोर 30 ई.सी. को 250 से 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 से 20 दिन के अंतर पर छिड़कें। दवाई की मात्रा फसल की बढ़वार पर निर्भर करती है। साग के लिए उगाई गई सरसों पर केवल 250 से 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. का छिड़काव हर 10 दिन के अंतर पर करें और फसल को छिड़काव के बाद 7 दिन तक प्रयोग में न लाएं। लाभदायक कीड़ों, जैसे मधुमक्खियों आदि को बचाने के लिए छिड़काव दोपहर बाद करें।

सफेद रतुआ व अन्य बीमारी के लिए मैन्कोज़ेब 600 ग्राम दवा 250-300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। ये छिड़काव सफेद रतुआ बीमारी के लक्षण दिखते ही करें तथा दूसरा छिड़काव 15 दिन के अंतर पर दोहराएं। ध्यान रहे इस बीमारी की रोकथाम के लिए दवाई का छिड़काव पत्तों की निचली सतह पर भी अवश्य करें।

जिन क्षेत्रों में सरसों में तना गलन (उखेड़ा) रोग का प्रकोप हर साल होता है वहां बिजाई के 45-50 दिन तथा 65-70 दिन के बाद कार्बेन्डाज़िम का छिड़काव 0.1 प्रतिशत (200 ग्राम दवाई/200 लीटर पानी) की दर से करें।

गन्ना

गन्ने की मध्य-समय में पकने वाली किस्मों की कटाई करके गुड़ बनाएं। देर से पकने वाली किस्मों को पाले से बचाने के लिए फसल में समय-समय पर पानी लगाते रहें। लाल सड़न रोग से प्रभावित खेतों से गन्ने की कटाई कर लें। ऐसे खेतों में मोढ़ी की फसल न लें।

सोनीपत, फरीदाबाद व रोहतक ज़िलों में स्केल कीड़े की समस्या बढ़ती जा रही है। कीड़ाग्रस्त फसल की शीघ्र कटाई करें और बची हुई पत्तियों व ठूंठों को जला दें। ऐसी फसल की मोढ़ी न रखें।

बरसीम व लूसर्न

बरसीम की फसल को हरे चारे के लिए कटाई करने के बाद पानी लगाएं। लूसर्न की फसल को पहला पानी दें। सर्दियों में 20-25 दिन के अंतर पर फसल को पानी देते रहें। अधिक सर्दी पड़ने पर 13 कि.ग्रा. यूरिया डालने से बढ़वार ठीक मिल जाएगी।

मसर

मसर की उन्नत किस्में है हरियाणा मसर 1, सपना व गरिमा। मसर की पछेती बिजाई इस माह के प्रथम सप्ताह तक कर सकते हैं। इसके लिए 18 से 20 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ डालें। मसर की पछेती बिजाई की सूरत में भी 15 किलोग्राम यूरिया तथा 100 कि.ग्रा. सुपरफास्फेट प्रति एकड़ अवश्य ड्रिल करें। यदि सुपरफास्फेट उपलब्ध न हो तो यूरिया तथा सुपर फास्फेट की जगह अकेला 35 किलोग्राम डी.ए.पी. ही बीज के नीचे ड्रिल करें। मसर में राइजोबियम का टीका लगाना न भूलें। रेतीली ज़मीन में 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई के समय डालें।

कपास

अगले वर्ष कपास में गुलाबी सूण्डी के आक्रमण को कम करने के लिए आखिरी चुनाई के बाद खेत में भेड़, बकरी तथा दूसरे पशुओं को चरने के लिए अवश्य छोड़ दें ताकि ये पौधों के साथ कीट-ग्रसित टिण्डों को खा जाएं। उसके बाद छंटियों को ज़मीन में गहराई से काटें ताकि दोबारा फुटाव

न हो सके और बाद में अगले वर्ष सूण्डियों व मीलीबग को अपनी पहली पीढ़ी को चलाने के लिए खुराक बहुत कम मिले। छंटियों को सूखने के बाद झाड़ कर ही गांव में ले जायें तथा नीचे गिरे कचरे को जला कर नष्ट कर दें ताकि गुलाबी सूण्डी, मीलीबग व अन्य कीड़े नष्ट हो जाएं।



सब्जियों में

टमाटर

खेत को दूसरी फसल के लिए तैयार करें। नर्सरी में की गई बिजाई की देखभाल करें। इस माह भी नर्सरी में बिजाई की जा सकती है। पिछले माह बताई गई किस्मों को प्रयोग में लें तथा बिजाई से पहले 2.5 ग्राम एमिसान या कैप्टान या थाइरम दवा से प्रति किलोग्राम बीज का उपचार करें। कम तापमान होने के कारण अंकुरण तथा पौध की बढ़वार धीमी होगी। जल्दी अंकुरण तथा पौध को पाले से बचाने के लिए नर्सरी को रात में पॉलीथीन की शीट से ढक कर रखें।

बैंगन

नर्सरी में पौध की देखभाल करें। इस माह भी (यदि बिजाई पहले नहीं की है) बिजाई की जा सकती है। किस्म व बीज की मात्रा व बीजोपचार के सम्बन्ध में पिछले माह बताया जा चुका है। पौधे को पाले से बचाने का प्रबंध करें।

मिर्च

नर्सरी में की गई बिजाई की देखभाल करें। नर्सरी में बिजाई इस माह के प्रथम पखवाड़े में भी की जा सकती है। ठण्ड होने से बीजों को उगने में अधिक समय लगेगा तथा पौध की बढ़वार धीमी होगी। नर्सरी में पौध को पाले से बचाएं।

फूलगोभी

खेत में लगी फसल की देखभाल करें। जैसा कि पिछले माह बताया जा चुका है, खड़ी फसल में दो बार यूरिया खाद देकर सिंचाई करें- पहली बार रोपाई के लगभग तीन-चार सप्ताह बाद तथा फिर पौधों में गांठ बनते समय सिंचाई करें। पछेती किस्म की पौध तैयार हो तो खेत में रोपाई करें।

हानिकारक कीड़ों (चेपा, कूबड़ वाला कीड़ा और डायमण्ड बैकमॉथ) से बचाव के लिए 400 मि.ली. मैलाथियॉन 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। आवश्यकता होने पर दस दिन बाद दोबारा छिड़काव करें। दवा छिड़काव के बाद एक सप्ताह तक फसल को खाने के काम में न लें। डायमण्ड बैकमॉथ सूण्डी के लिए ऊपर लिखी कीटनाशक या 400 ग्राम बैसिलस थुयरिनाजिएंसिस (बायोआस्प घु. पा.) या 300 मि.ली. डायजिनान 20 ई.सी. (वासुडीन/बैंजानीन) या 60 मि.ली. नुवान 76 ई.सी. का प्रति एकड़ छिड़काव करें।

बन्दगोभी व गांठगोभी

खेत में आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। फसल को यूरिया खाद दो बार दें-पहली बार रोपाई के 3-4 सप्ताह बाद तथा फिर पौधों में गांठ बनते समय (हर बार लगभग 35 कि.ग्रा. यूरिया खाद प्रति एकड़)। पछेती किस्मों की पौध की तैयार खेत में रोपाई करें। कीड़ों की रोकथाम फूलगोभी में बताए ढंग से करना आवश्यक है।

पालक

फसल में नियमित सिंचाई करें तथा खड़ी फसल में दो बार नाइट्रोजन खाद (हर बार 22 कि.ग्रा. यूरिया खाद प्रति एकड़) दें। पहली बार बिजाई के 4 सप्ताह बाद व फिर इसके 4 सप्ताह बाद। किसान खाद देने के बाद सिंचाई करें।

मूली, शलगम व गाजर

जड़ वाली फसलों की समय पर बिजाई करें। खुली हुई जड़ों पर मिट्टी चढ़ाएं। विलायती किस्मों की बिजाई छोटे पैमाने पर इस माह भी की जा सकती है। सिंगरों के लिए उगाई फसल पर यदि सूण्डी या अल का आक्रमण हो तो 250-400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250-400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। दवा प्रयोग के बाद एक सप्ताह तक सब्जियां खाने के काम में न लें।

मटर

बिजाई के लगभग 4-6 सप्ताह बाद यूरिया खाद (13 कि.ग्रा. प्रति एकड़ की दर से) देकर सिंचाई करें। पछेती फसल में निराई करें, खरपतवार निकालें।

मटर की फसल की हानिकारक कीटों से रक्षा करें। मटर की थ्रिप्स (चूरड़ा) से बचाव के लिए प्रति एकड़ 60 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। यदि आवश्यकता हो तो दो सप्ताह बाद दोबारा छिड़काव करें। पत्तों में सुरंग बनाने वाले कीड़ों से रक्षा के लिए 400 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. का 200-250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। दवा प्रयोग के बाद तीन सप्ताह तक फसल खाने के काम में न लाएं।

सफेद चूर्णी रोग (पत्तियों, फलियों पर आटे जैसा सफेद चूर्ण दिखाई देता है) का प्रकोप होने पर प्रति एकड़ 500 ग्राम घुलनशील गंधक या 200 ग्राम बाविस्टिन या 80 मि.ली. कैराथेन 40 ई.सी. को 200 लीटर पानी में घोलकर खेत पर छिड़काव करें तथा आवश्यकतानुसार 15 दिन के अंतर पर दोहराएं।

लहसुन

फसल की आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। नाइट्रोजन खाद (35 किलोग्राम यूरिया खाद प्रति एकड़) की अभी तक टॉप ड्रेसिंग कर चुके होंगे।

(रबी) प्याज़

प्याज़ की पनीरी इस माह तैयार हो जाएगी। अत: समय से खेत को तैयार करें। एक एकड़ खेत में लगभग 20 टन गोबर की सड़ी खाद बिखेर कर जुताई करें। रोपाई से पहले प्रति एकड़ 25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (55 कि.ग्रा. यूरिया खाद), 20 कि.ग्रा. फास्फोरस (120 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) तथा 10 कि.ग्रा. पोटाश (16 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) खेत में दें। खेत को उचित नाप की क्यारियों में बांट लें। रोपाई का सबसे अच्छा समय इस माह के आखिरी सप्ताह से जनवरी का प्रथम सप्ताह है। रोपाई के तुरंत बाद सिंचाई अवश्य करें।

आलू

मिट्टी चढ़ाते समय नाइट्रोजन खाद दे चुके होंगे। खेत की नियमित सिंचाई करें तथा हानिकारक कीटों व बीमारियों से रक्षा करें। हानिकारक कीटों, मुख्यत: चेपा (अल), से बचाव के लिए प्रति एकड़ फसल पर 300 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 200-300 लीटर पानी में घोलकर

10-15 दिन के अंतर पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करें। ध्यान रखें कि आलुओं की खुदाई से कम से कम तीन सप्ताह पूर्व दवाओं का प्रयोग बंद कर दें। इन कीटनाशक दवाओं के प्रयोग से विषाणु रोग पर भी नियंत्रण हो जाएगा क्योंकि ये कीट ही इस बीमारी को फैलाते हैं। विषाणु रोगग्रस्त पौधों को उखाड़ कर नष्ट करें, यदि कच्ची फसल निकालनी हो तो 70-75 दिनों पर निकालें तथा बाज़ार बेचने के लिए भेजें।



फलों में

इस महीने में ठंड पड़नी शुरू हो जाएगी। इसलिए सदाबहार पौधों को पाले से बचाना आवश्यक है। जहां तक संभव हो सके बागों की सिंचाई भी करते रहें, ताकि पाले का कम से कम असर हो। इस महीने करीब-करीब सारी फसलों में कम्पोस्ट या गोबर की सड़ी खाद भी डालें और आने वाले बसंत मौसम में सदाबहार के पौधे लगाने के लिए खड्डों की खुदाई व भराई का काम शुरू कर दें ताकि पौधे फरवरी के शुरू में ही लगाए जा सकें। आड़ू व अलूचा के पौधे दिसम्बर तथा बेर व आंवला के पौधे मध्य फरवरी के अंत तक लगाए जा सकते हैं। बेर, आंवला व अमरूद वैज ग्राफ्टिंग से तैयार करने के लिए पौधों की काट-छांट कर लें।

संगतरा, माल्टा, नींबू आदि

किन्नो के पके फलों को इस माह तोड़ लें ताकि अगली फसल अच्छी हो। बाग से घास-फूस नष्ट करने के लिए खरपतवारनाशक दवाई का प्रयोग करें। पौधे के नीचे 4-6 इंच से गहरी गुड़ाई न करें। इस माह के अंत तक पौधों को निम्नलिखित मात्रा में गोबर की खाद दें और सिंचाई भी करें। सिंगल सुपर फास्फेट और म्यूरेट ऑफ पोटाश मिट्टी जांच के आधार पर डालनी चाहिए।

पौधों की आयु	गोबर खाद (प्रति पौधा)	सिंगल सुपर फास्फेट (कि.ग्रा.)	म्यूरेट ऑफ पोटाश (ग्राम)
1 से 3 साल	10 से 40 कि.ग्रा.	0.250-0.750	100
4 से 6 साल	40 से 70 कि.ग्रा.	1.0-1.500	150
और उससे अधिक	100 कि.ग्रा.	2.0	175

बाग की सिंचाई 20 दिन में एक बार करें। पुराने बागों में पेड़ों की सूखी हुई लकड़ी व शाखाओं को काटें।

सूखी व कैंकर रोगी टहनियों को काटकर 1.5 किलोग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड को 500 लीटर पानी में बने घोल से तीन छिड़काव करें। तने पर बोर्डो पेस्ट का लेप करें।

आम

गोबर की खाद व फास्फोरस इसी महीने में डालें, 10 साल के पौधे में तने से 1 मीटर की दूरी छोड़कर पूरी छतरी में गोबर खाद 100 कि.ग्रा. व 1 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट डालें।

मिलीबग के बच्चे ज़मीन में से निकलकर तनों से होकर पौधों पर चढ़ते हैं। इनको चढ़ने से रोकने के लिए ज़मीन से 0.5 से 1 मीटर की ऊंचाई तक 25-30 सैं.मी. चौड़ी चिकनी अल्काथीन (250-400 गेज की पॉलिथीन) की पट्टी लगाएं। इस पट्टी को लगाने से पहले तने की सूखी छाल 5-8 सैं.मी. चौड़ी पट्टी के बराबर को कुल्हाड़ी से उतार कर बराबर कर लें। फिर 5 सैं.मी. चौड़ी गर्म लुक (तारकोल) की तह पर अल्काथीन नीचे व ऊपर चिपकाएं। अल्काथीन मुलायम होने के कारण कीड़े ऊपर नहीं चढ़ सकेंगे। पौधों का अन्य भाग ज़मीन से नहीं छूना चाहिए। यह काम मध्य-दिसम्बर तक कर लें।

सूखी व रोगी टहनियों को काट दें। 0.3 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के घोल (300 ग्राम कॉपर आक्सीक्लोराइड 100 लीटर पानी में) से छिड़काव करें।

बेर

दर्मियानी व पछेती किस्मों में सफेद चूर्णी या पाऊडरी मिल्ड्यू से बचाव के लिए घुलनशील गंधक (सल्फर 400 ग्राम 200 लीटर पानी में) या केराथेन (200 मि.ली. 200 लीटर पानी में) का घोल बनाकर छिड़काव करें। मध्य-दिसम्बर में फल मक्खी के लिए 500 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

आड़ू व अलूचा

आड़ू (शर्बती, प्लोरिडासन, प्रभात, सर रेड) व अलूचा (काला अमृतसरी, सतलुज परपल) के पौधे इस महीने के अंत में लगाए जा सकते हैं। आड़ू में हर वर्ष टहनियों को एक-तिहाई काट दें। इस माह के अंत में कटाई-छंटाई आरंभ कर सकते हैं। गोबर की सड़ी खाद फास्फोरस व पोटाश इस माह के अंत तक डालें और अच्छी तरह गुड़ाई करके बाग की सिंचाई करें।

आंवला

15 दिसम्बर तक सभी फलों की तोड़ाई पूरी कर लें अन्यथा फ्रूट नक्रोंशीश बीमारी का प्रकोप बढ़ जाता है। इस समय आंवला में विटामिन-सी भरपूर मात्रा में उपलब्ध होता है।

अमरूद

बाग की सिंचाई करें व फसल की देखभाल करें। अगर पत्ते हल्के पीले रंग के हों तो 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट व 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव करें। फल को पेड़ पर पकने न दें।

अन्य फलों में

अंगूर की कटाई-छंटाई का कार्यक्रम जनवरी माह में करना होगा, इसलिए कैंची, ब्लाईटॉक्स या बेनलेट और ज़िंक सल्फेट आदि का प्रबंध अभी से करें।



पशुओं में

गाय-भैंस

सर्दी से पशुओं के बचाव के लिए अपने पशुघर का प्रबंध ठीक ढंग से करें। इसमें हवा के आवागमन और वर्षा से बचाव का भी उपाय होना चाहिए। पशुओं का बिछावन सूखा होना चाहिए और इसे समय-समय पर बदलते रहना चाहिए। पशुओं को ठण्डी हवा से बचाना चाहिए।

इस मौसम में भैंसें नए दूध होती हैं। ब्याने के डेढ़-दो मास बाद भैंस में गर्मी के लक्षण (मदकाल) दिखाई देने चाहिएं। भैंस को गर्मी में आने के 10-12 घण्टों के बाद एक अच्छे झोटे से मिलवाना चाहिए या निकट के कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र से नए दूध करवाना चाहिए। यदि भैंस गर्मी में न आती हो तो उसे पशु चिकित्सक को दिखाएं। नियमित रूप से भैंस को

गर्मी में आने के लिए यह आवश्यक है कि उसको संतुलित आहार व 30-50 ग्राम खनिज मिश्रण प्रतिदिन खिलाएं। भैंसें अधिकतर रात को या सुबह के समय गर्मी के लक्षण दिखाती हैं। जब ये गर्मी में आती हैं तो बार-बार पेशाब करती हैं और बोलती हैं, चारा कम खाती हैं और इनकी दूध की मात्रा भी घट जाती है। इसके अतिरिक्त ये कुछ बेचैनी के लक्षण भी दिखाती हैं। कई भैंसों में गर्मी की पहचान बहुत कठिनाई से होती है क्योंकि इनकी गर्मी गूंगी रहती है। यदि नसबंदी कराया हुआ झोटा भैंसों के समूह में छोड़ दिया जाए तो गर्मी में आई भैंसों की आसानी से पहचान की जा सकती है और इससे आप ठीक समय पर अपनी भैंस का प्रजनन करा सकते हैं।

पशुओं को गलघोंटू एवं मुंह व खुरपका बीमारी से बचाव का टीका अवश्य लगवाएं। बीमार पशु को तुरंत अलग कर पशु चिकित्सक से उपचार करवाना चाहिए।

अपने पशुओं को कृमिनाशक दवाइयां पशु चिकित्सक की सलाह से पिलाएं। यदि दुधारू पशुओं को कृमिहीन न किया जाए तो उनमें दूध देने की क्षमता और छोटी आयु के पशुओं में विकास घट जाता है। बाह्य परजीवियों की रोकथाम के लिए भी उचित प्रबंधन करना चाहिए तथा पशु-आवास को भी नियमित अंतराल पर कीटाणुनाशक घोल से साफ करना चाहिए।

यदि बरसीम के साथ सूखा चारा न दिया जाए और बरसीम गीली हो तो पशुओं के पेट में गैस के कारण अफारा आ सकता है। इससे बचने के लिए पशुओं के वज़न के हिसाब से 2 प्रतिशत सूखे चारे आहार में अवश्य प्राप्त होने चाहिएं। यदि अफारा आ जाए तो पशु को 50-60 मि.ली. तारपीन का तेल, 10 ग्राम हींग, आधा किलोग्राम सरसों या अलसी के तेल में मिलाकर देने से अफारा ठीक हो जाता है।

गाय-भैंस का दूध थन को अंगुलियों और अंगूठे के बीच दबाकर न निकालें। पूरे हाथ से अंगूठा बाहर रखकर पूर्ण हस्त विधि द्वारा ही दूध निकालें। दूध निकालने से पहले तथा बाद में लाल दवा के कीटाणुनाशक घोल से थनों को अच्छी तरह साफ करना चाहिए।

यदि गाय-भैंस का गोबर पतला हो जाए तो तुरंत अपने पशु चिकित्सक से सलाह लें।

भेड़-बकरी

भेड़-बकरी को स्वस्थ रखने के लिए उन्हें कृमिनाशक दवाई पिलानी आवश्यक है। यह दवाई आप अपने पशु चिकित्सक की सलाह से पिलाएं। यह चिकित्सालय से मुफ्त में मिलती है।

सर्दियों के मौसम में भेड़-बकरियों को सर्दी से बचाना भी ज़रूरी है। खास कर मेमनों को ठंडी हवाओं से बचाना चाहिए। मेमनों का फर्श सूखा रखना चाहिए।

कुक्कुटों में

मुर्गियां

मुर्गियों से अधिक अण्डे प्राप्त करने के लिए मुर्गीघर में रोशनी का ठीक प्रबंध होना चाहिए। दिन और रात की कुल रोशनी मिलाकर 16 घण्टे होनी चाहिए।

मुर्गियों का बिछावन यदि गीला हो जाए तो उसे सूखे बिछावन से बदल दें। मुर्गियों के बिछावन को दिन में तीन-चार बार पलटना चाहिए।

जो मुर्गियां अभी अण्डे नहीं देने लगी हैं और कुछ दिनों के बाद अंडे देने लगेंगी, उनकी चोंच कटवा लें क्योंकि अण्डे देने के दौरान ये मुर्गियां आपस में लड़ती हैं और एक दूसरे को ज़ख्मी कर देती हैं जिससे इनकी अण्डे देने की क्षमता घट जाती है।

मांस के लिए रखे ब्रायलरों को 6-8 सप्ताह की आयु में बेच देना चाहिए।

यदि मुर्गियों का आहार संतुलित नहीं है तो आप मुर्गी आहार, पशु पोषाहार विभाग, पशु चिकित्सा महाविद्यालय, लुवास, हिसार की प्रयोगशाला में जांच कराएं तथा आप उनकी सलाह से परिवर्तित दाना बनाएं। यदि ठंडी हवा चलती हो तो खिड़कियों में झूल लगा दें और मुर्गीघर में बुरादे की बुखारी का प्रयोग करें।

मुर्गीदाने में रेशा 6-7 प्रतिशत और नमक की मात्रा 0.6 प्रतिशत से ज़्यादा न हो। दाने को सूखी जगह पर रखें। बीमार मुर्गियों को अलग घर में ले जाएं।



घर-आंगन में

- भोजन में ताज़ी सब्जियों का प्रयोग करें।
- मौसमी सब्जियों का अचार, चटनी व मुरब्बे के रूप में प्रयोग करें।
- कच्चे सलाद का ज़्यादा से ज़्यादा सेवन करें।
- सर्दी में हरी पत्तेदार सब्जियों का अधिक से अधिक इस्तेमाल करें।
- घर के कामकाज के लिए व नहाने के लिए गुनगुने पानी का इस्तेमाल करें।
- गर्म ऊनी वस्त्रों को समय-समय पर धूप दिखाती रहें।
- त्वचा की खुश्की दूर करने के लिए तेल या ग्लिसरीन का प्रयोग करें।
- मूंगफली, तिल, चने व गुड़ के पौष्टिक लड्डू बनाएं व बच्चों और बड़ों को खाने के लिए दें। यह लड्डू स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभकारी होते हैं। महिलाएं इनका सेवन स्वयं भी अवश्य करें। इससे कार्य करने की शक्ति मिलेगी व घर तथा खेत के कार्य करने में परेशानी नहीं होगी।

भण्डारित अनाज की कीड़ों से रक्षा

अगर अनाज अच्छी तरह से सुखा कर, कीट-रहित व सूखे भण्डार में ढककर भण्डारित किया है तो उसके कीड़ों अथवा नमी से खराब होने की संभावना बहुत कम है। फिर भी भण्डारित अनाज का समय-समय पर निरीक्षण करना चाहिए। यह क्रिया वर्षा ऋतु में बहुत महत्वपूर्ण होती है। यदि अनाज में कीड़ा लगा हो तो इसमें जहरीली गैस छोड़ने वाली दवाई एल्यूमिनियम फास्फाईड (सैल्फास, क्विनलफॉस, फास्फ्यूम) की 7 गोलियां (3 ग्राम) प्रति 1000 घनफुट या 28 घनमीटर स्थान के हिसाब से डालें और 7 दिन तक भण्डार बंद रखें। इन दवाइयों का प्रयोग पूरी सावधानी से किसी विशेषज्ञ की देखरेख में करें।

बारानी क्षेत्रों में सरसों की वैज्ञानिक खेती

- **कुलदीप सिंह, अमित कुमार एवं सुरेंद्र कुमार शर्मा**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसमें लगभग 70 प्रतिशत वर्षा दक्षिण-पश्चिमी मानसून के समय मात्र चार महीने में होती है। भारत का लगभग 60 प्रतिशत कृषि क्षेत्र असिंचित है तथा भारतीय अर्थव्यवस्था काफी हद तक मानसून पर निर्भर करती है। यदि हमारे देश के वर्षा आधारित क्षेत्रों में विकास किया जाए व उन्नत कृषि तकनीकों व जल संरक्षण तकनीकों को टिकाऊ तरीके से अपनाया जाए तो कृषि उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है।

देश का बहुत बड़ा क्षेत्र सुखाग्रस्त होने के कारण सभी सुविधाएं होने के बावजूद हमारी खाद्य-सुरक्षा व पोषण सुरक्षा को खतरा महसूस होता है। हरियाणा प्रांत का लगभग 20 प्रतिशत हिस्सा असिंचित क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। सरसों इस क्षेत्र की प्रमुख तिलहनी फसल है। इसकी खेती मुख्य रूप से बीज के लिए की जाती है, जिससे तेल प्राप्त होता है। तेल निकालने के बाद बची हुई खली पशुओं को खिलाने तथा खाद के रूप में प्रयोग की जाती है। इसकी पत्तियां हरी सब्जी के रूप में प्रयोग की जाती हैं तथा सूखे तने को ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। सरसों के तेल की तीव्र गंध सिनिग्रिन नामक एलकालॉएड के कारण होती है। शुष्क क्षेत्रों की परिस्थितियों में एक ऐसी फसल की आवश्यकता है जो कि कम से कम सिंचाइयों में अधिक उपज व आर्थिक लाभ दे सके। अत: सरसों ऐसी फसल है जिसकी खेती विभिन्न प्रकार की मृदा में कम पानी में की जा सकते है। सरसों की खेती में लागत बहुत कम होती है तथा श्रमिकों की कम आवश्यकता होती है।

वर्गीकरण

सरसों वर्ग में सम्मिलित अनेक फसलों में से तोरिया, सरसों, राई ऐसी उल्लेखनीय फसलें हैं जिनकी खेती बारानी क्षेत्रों में अत्यधिक की जाती है। तारामीरा नामक चौथी फसल भी इसी वर्ग में आती है। इनमें राया सरसों का क्षेत्र सर्वाधिक है अत: इसकी उन्नत खेती के लिए निम्नलिखित सस्य क्रियाएं की जाती हैं :

जलवायु : हरियाणा में सरसों की खेती शरद (रबी) की ऋतु में की जाती है। इस फसल को 18° से 25° सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। अधिक तेल उत्पादन की उपज के लिए तोरिया और सरसों को ठंडा मौसम, साफ और खुले आसमान की आवश्यकता होती है। सरसों 25 से 40 सैं.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी तरह से लगाई जा सकती है।

मृदा : सरसों की खेती रेतीली से लेकर भारी मृदा में की जा सकती है। लेकिन हल्की दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। भारी मृदा में बुवाई के तुरन्त बाद हल्की बौछार होने से पपड़ी बन जाती है जिससे अंकुरण घट जाता है।

खेत की तैयारी : बीज के अच्छे अंकुरण व जमाव के लिए खेत को अच्छी तरह तैयार करना आवश्यक है। असिंचित क्षेत्रों में वर्षा के पहले जुताई करके खरीफ मौसम में खेत पड़ती छोड़ना चाहिए, जिससे वर्षा के पानी का संरक्षण हो सके। उसके बाद हल्की जुताइयां करके खेत तैयार करना चाहिए। सीमित नमी वाले क्षेत्रों में रीजर सीडर से बिजाई का बहुत अच्छा परिणाम मिलता है। क्योंकि यह मशीन ऊपर की सूखी मिट्टी हटा कर नम मिट्टी में खुड के भीतर बीज डालती है जिसमें अंकुरण पर्याप्त होता है।

उन्नत किस्में

आर एच 30, टी 59, आर एच 819, आर एच 725, आर एच 761, आर एच 781, आर एच 406, आर एच 119

बीज की मात्रा व उपचार : बुवाई के लिए शुष्क क्षेत्रों में 4 से 5 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर पर्याप्त रहता है। बुवाई से पहले बीज को 2.5 ग्राम मैन्कोजेब प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।

बुवाई का समय एवं विधि: सरसों की बुवाई के लिए उपयुक्त तापमान 25-26° सेल्सियस रहता है। बारानी में सरसों की बुवाई 25 सितम्बर से 10 अक्तूबर व राया के लिए 30 सितम्बर से 20 अक्तूबर एवं तारामीरा की सारे अक्तूबर में की जाती है। कतार से कतार की दूरी 45 सैं.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 15 सैं.मी. रखनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : सरसों की फसल को खाद एवं उर्वरक की संतुलित मात्रा में आवश्यकता होती है। इसके लिए असिंचित क्षेत्रों में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन व 20 कि.ग्रा. फास्फोरस एवं 40 कि.ग्रा. सल्फर की सिफारिश की जाती है।

निराई एवं गोड़ाई : अगर पौधों की संख्या अधिक हो तो बुवाई के 20-25 दिन बाद निराई के साथ छंटाई कर पौधे निकालने चाहिएं।

फसल चक्र : बारानी क्षेत्रों में चने के साथ कतारों में सरसों आने से अच्छी आमदनी होती है। चने की 4 से 6 कतारों के बाद एक कतार सरसों की लगाई जाती है।

पौध संरक्षण

चितकबरा कीड़ा/ आरा मक्खी : अंकुरण के 10 दिन में कीट अधिक नुकसान पहुंचाते हैं इसकी रोकथाम के लिए मैलाथियान 50 ई.सी. को 500 लीटर पानी में प्रति हैक्टेयर की दर से प्रात: या सांयकाल में बुरकें।

माहू/चेपा : रोकथाम हेतु 800 मि.ली. रागोर 30 ई.सी. 800 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

सफेद रतुआ : लक्षण दिखाई देते ही फसल बोने के 45, 60 व 75 दिन बाद मैन्कोज़ेब 2 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

मरगोज़ा : पौधों को बीज बनने से पहले ही उखाड़ कर नष्ट करें। इसके लिए ग्लाइफोसेट खरपतवारनाशक की 25 मि.ली. मात्रा प्रति एकड़ बिजाई के 40 दिन बाद व 50 मि.ली. मात्रा प्रति एकड़ बिजाई के 55-60 दिन बाद 125-150 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

कटाई : सरसों की फसल फरवरी-मार्च तक पक जाती है। सरसों के पत्ते झड़ने लगे और फलियां पीली पड़ने लगें तो फसल की कटाई कर लें। कटाई के बाद पौधों को छोटे-छोटे बंड़लों में बांधकर खेत में छोड़ देते हैं। पौधे पूर्ण रूप से सूख जाने पर ट्रैक्टर या डंडों से मड़ाई करके ओसाई कर बीजों को अलग कर लिया जाता है। उन्नत किस्म का बीज व उचित सस्य क्रियाएं तथा पौधा संरक्षण अपनाने पर सरसों की उपज लगभग 20-30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक ली जा सकती है। [

सहजन : कृषि वानिकी उपयोगी पेड़ व इसकी विशेषताएं

- **बलवान सिंह मंडल, नीलम मंडल[1] एंव अनील कुमार[2]**
कृषि विज्ञान केन्द्र, अम्बाला शहर
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सहजन [हिन्दी: सहजन, मुनगा, पंजाबी: सोहंजन, संस्कृत: भोभंजन, शिग्रु, अंग्रेजी: ड्रम स्टिक प्लांट, वानस्पतिक नाम: मोरिंगा ओलिफेरा] लम्बी फलियों वाली एक सब्जी का पेड़ है, जोकि भारत और दुनिया भर में उगाया जाता है। विज्ञान ने प्रमाणित किया है कि इस पेड़ का हर भाग स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक है। भारतीयों के लिए गर्व की बात है कि यह मूलत: उत्तर भारत से ही दुनिया भर में फैला है। सहजन का वृक्ष मध्यम आकार का होता है और यह किसी भी प्रकार की ज़मीन पर उगाया जा सकता है। गर्म और नमी वाले मौसम में यह बढ़िया वृद्धि करता है। सहजन के बीज से पौधा तैयार किया जा सकता है। नर्सरी में इसकी पौध बीज या कलम से तैयार की जा सकती है। सहजन के बीज बोने से पहले रात भर पानी में भिगोकर रखें, सुबह बीज फोड़कर अंदर वाली गुठली को ही बोयें। पौधरोपण बरसात या फरवरी-मार्च में करना चाहिये। अगर एक से अधिक पौधे लगाने हों तो उनके बीच कम से कम 7-8 फीट का फासला अवश्य हो। खेत की बाड़ में इसे तीन से चार मीटर के फासले पर लगाया जा सकता है। हरियाणा में सहजन कृषि वानिकी का भी हिस्सा बन सकता है। सहजन का पेड़ कहीं भी आसानी से लगाया जा सकता है। हालांकि यह पौधा बिना पानी के भी ज़िन्दा रहता है, अगर इसे आवश्यकता भर का पानी मिलता रहे तो यह साल भर फल दे सकता है। इसकी जड़ों में पानी तभी डालना चाहिए जब ज़रूरत हो। कम लागत और कम देखभाल वाली सहजन की फसल एक हैक्टेयर में 52-56 टन पैदावार देती है। सहजन के पेड़ पर लगभग आठ माह में ही फलियां लगने लगती हैं। निकारागुआ देश में पशु चारे के लिए इसकी सघन खेती की जा सकती है। वहां इसकी पौध 6 इंच के फासले पर लगाई जाती है और कटाई बरसीम की तरह 75 दिन के अंतराल पर की जाती है। एक बार पौध रोपण के बाद कई वर्ष तक हरे चारे की कटाई हो सकती है। इसके पेड़ से हरे चारे के साथ-साथ सब्जी के लिए फलियां व पत्तियां प्राप्त की जा सकती हैं। यह तेज़ी से बढ़ने वाला पेड़ है अत: टिम्बर प्राप्त करने की दृष्टि से भी इसे उगाया जा सकता है। भोजन और उपचार के अतिरिक्त सहजन का प्रयोग पानी साफ करने और हाथ धुलने के लिए भी किया जा सकता है।

हर मर्ज की एक दवा: सहजन की हो जहां हवा

शीर्षक पढ़कर आश्चर्य हो रहा होगा, परन्तु यह सही है कि 300 से अधिक बीमारियों का ईलाज अकेले सहजन से सम्भव है। सहजन या सोहांजना बहुत ही जाना-पहचाना नाम है। गांव-देहात में बहुत लोगों ने इसकी फलियों का अचार खाया होगा और पत्तियों व फूलों की सब्जी भी। गांव में इसे देसी ऐंटीसेप्टिक भी कहते हैं। दक्षिण भारत में यह बहुत लोकप्रिय है। यहां इसकी पत्तियों का उपयोग सांभर और तरकारियों में उसी प्रकार किया जाता है जैसे उत्तर भारत में हरी मिर्च और अदरक, परन्तु उत्तर भारत में यह उपेक्षित है।

इतना जाना-पहचाना और सहज उपलब्ध होने के बावजूद इसके गुणों को भुला देने के कारण ही हमने इसकी उपेक्षा की।

पिछले 10-15 वर्ष पहले वैज्ञानिकों ने इसके गुणों को पहचाना और अब यह कुपोषण और बीमारियों के नियंत्रण के लिए सबसे चहेता पेड़ बन गया है और इसके गुणों के कारण इसे चमत्कारिक वृक्ष की संज्ञा दी गयी है। दुनिया की कुछ स्वयंसेवी संस्थाएं जैसे ट्रीज़ फॉर लाईफ, चर्च वर्ल्ड सर्विस और एजुकेशनल कन्सर्न फॉर हंगर ऑर्गेनाईज़ेशन आदि इसके पोषक और औषधीय गुणों के कारण इसे लोकप्रिय बनाने में जुटी हैं।

अफ्रीकी देशों में कुपोषण मिटाने के लिए बच्चों को इसके पत्तों और फलियों का साग खिलाया जा रहा है। यही नहीं गाय के दूध की वृद्धि के लिए इसका उपयोग हरे चारे के रूप में भी किया जा रहा है। गुणों की खान होने के कारण भारतीय मूल का यह पेड़ अब पश्चिमी, पूर्वी और दक्षिणी अफ्रीका, उष्ण कटिबंधीय एशियाई देशों, लेटिन अमेरिका, कैरेबियन व प्रशांत देशों और फ्लोरिडा आदि स्थानों पर बड़े पैमाने पर उगाया जा रहा है। इसलिए अब ज़रूरत है सहज रूप से उपलब्ध सहजन को सहेजने की जिससे इस चमत्कारिक वृक्ष के गुणों से सहज ही लाभान्वित हुआ जा सके और जानिए ऐसे:

सहजन का हर भाग उपयोगी: पत्तियां - सिर दर्द, नेत्र रोग, अस्थमा, ट्यूमर, मोच व सूजन, पेट के कीड़े, हिचकी, हृदय रोग आदि में उपयोगी। फूल - मांसपेशियों के रोगों में उपयोगी। फलियां - यकृत, तिल्ली, पित्तदोष, स्नायुदुर्बलता, कुष्ठ, श्वेत कुष्ठ, फोड़ा आदि में फलियों का साग लाभकारी व बलवर्धक। बीज - नेत्र रोग व सिर दर्द में उपयोगी। बीजों का तेल जोड़ों के दर्द व कुष्ठ रोग में लाभकारी। छाल - मेनीनजाईटिस, गले के छाले, गैस, आंतरिक सूजन, यकृत रोग में उपयोगी। गोंद - दांत, कान का दर्द आदि में उपयोगी। जड़ - सिर दर्द, नेत्र रोग, सांस के रोग, पाचन, तिल्ली का बढ़ना, बवासीर, दाद, बुखार, त्वचा रोग, गुर्दे व मूत्र रोग आदि में उपयोगी।

सहजन के फायदे :

सहजन की पत्ती : इसकी पत्तियों में प्रोटीन, विटामिन 'बी6' विटामिन 'सी', विटामिन 'ए', विटामिन 'बी', आयरन, मैग्नीशियम, पोटैशियम, ज़िंक जैसे तत्व पाए जाते हैं। इसकी फली में विटामिन 'सी' और पत्ती में कैल्शियम प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। सहजन में एंटीऑक्सिडेंट, बायोएक्टिव प्लांट कंपाउंड होते हैं।

सहजन की सूखी पत्तियों के 100 ग्राम पाऊडर में दूध से 17 गुना कैल्शियम और पालक से 25 गुना अधिक आयरन होता है। इसमें गाजर से 10 गुना अधिक बीटा-कैरोटीन होता है, जोकि आंखों, स्किन और रोगप्रतिरोधक तंत्र के लिए बहुत लाभदायक है। सहजन में केले से 3 गुना अधिक पोटैशियम और संतरे से 7 गुना अधिक विटामिन 'सी' होता है, पत्तियां प्रोटीन का भी बेहतरीन स्रोत हैं। एक कप ताज़ी पत्तियों में 2 ग्राम प्रोटीन होता है। यह प्रोटीन किसी भी प्रकार से मांसाहारी स्रोतों से मिले प्रोटीन से कम नहीं है क्योंकि इसमें सभी आवश्यक एमिनो एसिड्स पाए जाते हैं।

सहजन की फली और पत्ती का सूप पीने या दाल में सहजन की पत्ती मिलाकर बनाने से बदलते मौसम के असर से बचाव होता है। यह रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ाकर ऐसे मौसम में होने वाले सर्दी-जुकाम होने से रोकता है। यहां तक कि एड्स के रोगियों को दी जाने वाली एंटी रेट्रोवायरल उपचार के साथ यह हर्बल सप्लीमेंट के रूप में दिया जाता है।

पेट की समस्याओं के लिए कारगर : सहजन हल्का रेचक है, अत: यह पेट साफ करता है। फाइबर की वजह से यह कब्ज़ दूर करता है। पेट के

[1]राजकीय (स्नातकोत्तर) महाविद्यालय, पंचकूला
[2]कृषि विज्ञान केन्द्र, दामला (यमुनानगर)

सहजन में पाई जाने वाली विशेषताएं

किन-किन रोगों में उपयोगी है	क्या करता है	उपयोग	100 ग्राम सूखी पत्तियों में पोषक तत्वों की मात्रा
अल्सर व रसौल, आंखों के रोग, आंत्रशोथ, कान के रोग, खांसी, गले के रोग, ग्रंथियों की सूजन, गुर्दे के रोग, घाव, जुकाम, जोडों का दर्द, ड्रॉप्सी, त्वचा रोग, तिल्ली का बढ़ना, दमा, नेत्र लेश्मला शोध-कॅन्जॅन्क्टिवाईटिस, पीलिया, पेट के कीड़े, फोड़े व फुंसी, ब्लड प्रेशर, बुखार-मलेरिया, वायरल बुखार, मधुमेह-डायबिटीज़, मिरगी, मुहांसे, मूत्राशय के रोग, मोच, रक्ताल्पता- अनीमिया, रक्त विकार, शुक्राणुओं की कमी, सांस के रोग, स्कर्वी, सूजन, सिर दर्द, सुजाक-गोनोरिया, हैज़ा, दस्त-अतिसार, पेचिश, क्षय रोग-टी.बी.	सहजन का रोज़ उपयोग किया जाए तो बहुत से रोग तो ऐसे हैं जो पास फटकने की हिम्मत ही न कर पाएं। ऐसा इसलिए कि यह शरीर की रोग प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाने के साथ-साथ सूक्ष्म जैविक क्रियाओं को भी दुरुस्त करता है, जैसे। शरीर में मेटाबॉलिक क्रियाओं को बढ़ाता है। कोशिकाओं की वृद्धि को नियमित करता है। प्राकृतिक सीरम कोलेस्टेरॉल को बढ़ाता है। जिगर और किडनी की स्वाभाविक कार्यप्रणाली को प्रोत्साहित करता है। पाचन प्रक्रिया को व्यवस्थित करता है। रक्त संचार प्रणाली को सुदृढ़ करता है। शरीर में शर्करा स्तर को सामान्य बनाता है। शरीर के स्वाभाविक सुरक्षातंत्र को मज़बूत करता है। मस्तिष्क व आंखों का पोषण करता है। शरीर की ऊर्जा बढ़ाता है। एंटी ऑक्सीडेन्ट के रूप में कार्य करता है। प्रति-उद्दीपक (एंटीइन्फलेमेटरी) के रूप में कार्य करता है। त्वचा की झुर्रियां दूर कर त्वचा का पोषण करता है। कुपोषण को दूर करता है।	। पत्तियों, फूल, फलियों व बीजों का औषधि के रूप में उपयोग।। पत्तियां व फलियां सब्जी के रूप में प्रयोग की जाती हैं। दक्षिण भारत में फलियों को सांभर में डाला जाता है।। फलियों का अचार बनाया जाता है।। बीज पानी शुद्ध करने के काम आते हैं।। बीजों से 30-40 प्रतिशत तेल प्राप्त होता है जो जैतून के तेल के समकक्ष है और बाज़ार में बेन तेल के नाम से बिकता है।। खल प्राकृतिक खाद के रूप में उपयोगी और पानी शुद्ध करने के काम आती है।। सहजन के वृक्ष भू-क्षरण रोकने में उपयोगी हैं।। पत्तियों का पशु चारे के रूप में उपयोग। स्वीडिश युनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चरल साईंस, उपासला द्वारा निकारागुआ में किये अनुसंधान में पता चला कि गायों को चारे के साथ सहजन की दो से तीन किलो सूखी पत्तियां खिलाने से दूध उत्पादन में 50 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई। जो गाय सामान्य चारा खा कर 3.1 किलो दूध देती थी, वह गाय सहजन की पत्तियां मिला चारा खाने के बाद 4.91 से 5.07 किलो दूध देने लगी। इस प्रकार दूध में 1.8 से 1.97 किलो की वृद्धि दर्ज की गयी। सहजन की पत्तियां खिलाने से दूध के रंग और स्वाद में कोई अंतर नहीं आया। सहजन की हरी पत्तियां हरे चारे के रूप में पशुओं को खिलाई जा सकती हैं। हरियाणा के जिन क्षेत्रों में हरे चारे की कमी है और पशु चारे के लिए वृक्षों में सहजन विशेष उपयोगी है।। फिलीपींस और सेनेगल में कुपोषण उन्मूलन कार्यक्रम के अन्तर्गत बच्चों को सहजन खिलाया जा रहा है और इसके बहुत उत्साहवर्धक परिणाम सामने आये हैं।	। कैलोरी : 205। प्रोटीन : 27.1 ग्राम । वसा : 2.3 ग्राम। कार्बोहाईड्रट : 38.2 ग्राम। रेशा : 19.2 ग्राम। कैल्शियम : 2003 मि.ग्रा.। मैग्नीशियम : 368 मि.ग्रा. । फास्फोरस : 204 मि.ग्रा.। पोटैशियम : 1324 मि.ग्रा.। कॉपर : 0.57 मि.ग्रा.। सल्फर : 870 मि.ग्रा. । ऑक्ज़ेलिक एसिड :1.6 मि.ग्रा. । विटामिन 'ए' (बीटा सीरोटीन) : 16.3 मि.ग्रा. । विटामिन 'बी$_1$' (थाईमिन) : 2.64 मि.ग्रा. । विटामिन 'बी$_2$' (राईबोफ्लुविन) : 20.5 मि.ग्रा.। विटामिन 'बी$_3$' (निकोटिनिक एसिड) : 8.2 मि.ग्रा.। विटामिन 'सी' (एस्कार्बिक एसिड) : 17.3 मि.ग्रा.। विटामिन 'ई' : 113 मि.ग्रा.। अर्जिनिन : 1.33%। हिस्टिडिन : 0.61%। लाईसिन : 1.32% । ट्रिप्टोफन : 0.43% । फिनॉयलेनेलिन : 1.39%। मीथिओनिन : 0.35%। थ्रिओनिन : 1.19%। ल्यूसिन 1.95% । आईसोल्यूसिन : 0.83% । वैलिन : 1.06%। इनके अतिरिक्त सहजन में विटामिन 'बी$_6$', विटामिन 'के', ओमेगा 6, ज़िंक आदि भी होते हैं।

सहजन के पोषक तत्वों की अन्य महत्वपूर्ण खाद्य पदार्थों से तुलना (प्रति सौ ग्राम)

पोषक तत्व	सामान्य भोजन	सहजन	
		हरी पत्तियां	सूखी पत्तियां
विटामिन ए	1.8 मि.ग्रा. गाजर	6.8 मि.ग्रा.	16.3 मि.ग्रा.
कैल्शियम	120 मि.ग्रा. दूध	440 मि.ग्रा.	2003 मि.ग्रा.
पोटैशियम	88 मि.ग्रा. केला	259 मि.ग्रा.	1324 मि.ग्रा.
प्रोटीन	3.1 ग्राम दही	6.7 ग्राम	27.1 ग्राम
विटामिन सी	30 मि.ग्रा. संतरा	220 मिग्रा	17.3 मिग्रा

कीड़े और जीवाणुओं से भी सहजन मुक्ति दिलाता है। सहजन की जड़ का पाऊडर पेट में पाए जाने वाले राउंड वर्म को खत्म करता है।

वज़न घटाने में सहायक : जानिए कैसे ? सहजन में ड़ाईयूरेटिक गुण होते हैं जोकि शरीर की कोशिकाओं में अनावश्यक जल को कम करता है। इसके एंटी-इन्फलेमेटोरी गुण शरीर की सूजन कम करते हैं। फाईबर से भरपूर सहजन शरीर में फैट अवशोषण कम करता है। इन्सुलिन रेजिस्टेंस कम करके यह अनावश्यक फैट जमने को रोकता है।

दूध पिलाने वाली माताओं के लिए सहजन बहुत बढ़िया है: सहजन की पत्ती को घी में गर्म करके प्रसूता स्त्री को दिए जाने का पुराना रिवाज़ है। इससे दूध की कमी नहीं होती और जन्म के बाद की कमज़ोरियों जैसे थकान आदि का भी निवारण होता है। बच्चे का स्वास्थ्य सही रहता है और वज़न भी बढ़ता है। सहजन में पाए जाने वाला पर्याप्त कैल्शियम किसी कैल्शियम सप्लीमेंट से कई गुना अच्छा है।

यह ब्लड़ शुगर लेवल और कोलेस्ट्रॉल लेवल संतुलित करता है: ये हाई ब्लड़ शुगर लेवल को कम करता है। कोलेस्ट्रॉल कम करने की वजह से यह हृदय के लिए अच्छा है।

हृदय रोग, मेटाबोलिक डिसऑर्डर जैसे डायबिटीज़, इन्सुलिन रेजिस्टेंस आदि की वजह से होने वाली जलन और सूजन से सहजन राहत दिलाता है। सहजन की पत्ती के अतिरिक्त इसकी फली, फूल, बीज में भी यह गुण पाए जाते हैं। सहजन की सब्जी खाने से भी यह लाभ उठाये जा सकते हैं।

यह कैंसर प्रतिरोधी है : इसके एंटी ऑक्सिडेंट, Kaempferol, Quercetin, Rhamnetin तत्व एंटी-कैंसर होते हैं। यह स्किन, लीवर, फेफड़े और गर्भाशय के कैंसर होने से सुरक्षा करता है।

सहजन के एंटी ऑक्सिडेंट शरीर की कोशिकाओं की मरम्मत करते हैं। न्यूट्रीशनल गुणों से भरपूर सहजन एनर्जी की कमी पूरी करता है और जल्दी थकान नहीं होने देता, इसमें पाए जाने वाले बेहतरीन एमिनो एसिड्स बनाते नए टिश्यूस बनाते हैं। अत: यह शरीर के विकास के लिए लाजवाब है।

किडनी स्टोन समस्या में कारगर: यह किडनी में जमे अनावश्यक कैल्शियम को शरीर से बाहर निकालता है इससे स्टोन नहीं बनने पाता और यह किडनी स्टोन से होने वाले दर्द और जलन को भी कम करता है।

थाईरॉइड रोगी : जिनकी थाईरॉइड ग्लैंड अधिक सक्रिय होती है को सहजन अवश्य खाना चाहिए। सहजन खाते हैं तो बढ़ा हुआ थाईरॉइड स्राव कम होने लगता है। थाईरॉइड रोग की दो कंडीशन गंभीर रोग और हैशिमोटा की बीमारी दोनों के लिए सहजन का सेवन रोग मुक्ति दिलाता है।

बढ़िया हेयर टॉनिक है : सहजन का ज़िंक, विटामिन और एमिनो एसिड्स मिलकर केराटिन बनाते हैं। जोकि बालों की बढ़वार के लिए बहुत आवश्यक है। सहजन की फली में मिलने वाले बीज में एक खास तेल होता है जिसे ठमद वपस कहते हैं। यह तेल बालों को लम्बे, घने करता है और डैंड्रफ, बाल झड़ने की परेशानी दूर करता है। अत: सहजन की सब्जी खाएं, सूप पियें या पत्ती के पाऊडर का सेवन करें।

कई स्किन रोगों में सहजन का उपयोग करके लाभ उठा सकते हैं। सहजन का तेल सोरायसिस, एक्ज़िमा रोग में लगायें, फायदा होगा, बीजों का यह तेल यानि बेन ऑयल, डस्ट और ब्लैक हैड्स समस्या में चेहरे पर लगायें। इसका क्लींजिंग और ऐंटीसेप्टिक गुण इन्हें खत्म करता है। स्किन के लिए उपयोगी विटामिनों, एंटीओक्सिडेंट गुणों से भरपूर यह तेल चेहरे की झुर्रियां और महीन लकीरें दूर करता है।

फूलों की चाय न्यूट्रीशनल गुणों से भरपूर है : यह चाय यूरिन इन्फेक्शन, सर्दी-जुकाम ठीक करती है। सहजन के फूल सलाद के रूप में भी खाए जाते हैं। सहजन के इतने फायदे हैं कि गिनती कम पड़ जाये। सहजन अनिद्रा, अस्थमा, हाईपरटेंशन, गठिया, आर्थराईटिस, एनीमिया, आंत का अल्सर भी ठीक करता है और घाव जल्दी भरता है। दिमागी स्वास्थ्य के लिए सहजन लाजवाब है। सहजन डिप्रेशन, बेचैनी, थकान, भूलने की बीमारी ठीक करता है।

स्वास्थ्य लाभ के अतिरिक्त पानी साफ करने में भी कारगर है। जिसका सदियों से प्रयोग होता रहा है। इसके बीजों को कूटकर पानी में मिलाने से हानिकारक शैवाल और प्रदूषक तत्व अलग हो जाते हैं।

जानवरों के लिए एक बढ़िया चारा है : दूध देने वाले जानवर अधिक दूध देते हैं और मांस के लिए पाए जाने वाले मवेशी खूब स्वस्थ रहते हैं।

सहजन का तेल (Ben oil) उड़ता नहीं है, इसलिए घड़ियों में प्रयोग किया जाता है। यह बेन आयल कभी खराब नहीं होता। इस मीठे तेल की कोई खुशबू नहीं होती। अत: ये इत्र परफ्यूम बनाने में उपयोग किया जाता है।

सहजन से प्रोटीन, ज़िंक, पोटैशियम, मैंगनीज़, मैग्नीशियम, आयरन, कॉपर, कैल्शियम, विटामिन 'सी', विटामिन 'बी3', विटामिन 'बी2', विटामिन'बी', विटामिन'ए' आदि सारे विटामिन आपकी थाली में मिलेगें।

सहजन शरीर के भिन्न अंग जैसे : मस्तिष्क, नेत्र, कान, दांत, गला, फेफडे, हृदय व रक्त संचार, यकृत, आमाशय, तिल्ली, पित्ताशय, गुर्दे, छोटी आंत, बडी आंत, मूत्राशय, त्वचा, घुटने व जोडों का दर्द, मांसपेशियां व हड्डियों के लिए लाभकारी है। [



एक कदम स्वच्छता की ओर

पौधों द्वारा भारी धातुओं के प्रदूषण का समाधान

- **प्रतिभा, सोनाली एवं सुषमा शर्मा**[1]
आणविक जीव विज्ञान, जैव प्रोद्योगिकी एवं जीव सूचना विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

पिछली शताब्दी से वैश्विक औद्योगीकरण, युद्ध और प्राकृतिक प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप जैव मण्डल में बड़ी मात्रा में हानिकारक तत्वों की वृद्धि हुई है। वर्तमान समय में प्रदूषण सम्पूर्ण विश्व की एक जटिल समस्या है। उदाहरण के लिए प्रत्येक वर्ष 11,000 टन पारा जैवमंडल में छोड़ा जाता है। प्रदूषक दो मुख्य वर्गों में आते हैं : अकार्बनिक और कार्बनिक। अकार्बनिक प्रदूषकों की श्रेणी में भारी धातुएं आती हैं जैसे कैडमियम, पारा, सीसा आदि। कार्बनिक प्रदूषकों में विस्फोटक, रासायनिक खाद, खरपतवारनाशक और कीटनाशक शामिल हैं। प्रदूषण विकासशील देशों के एक बड़े हिस्से को प्रभावित करता है। परिणामस्वरूप किसान खाद्य उत्पादन के लिए प्रदूषित जल और भूमिका उपयोग करने के लिए बाध्य हैं।

प्रदूषक धातु : भारी धातु फसल को नुकसान पहुंचाती है जैसे कि फसल की पैदावार, मिट्टी की प्रजनन क्षमता और खाद्य शृंखला में एकत्रण। पारा ज़हरीला है और हमारी खाद्य शृंखला में मिलकर शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली, तंत्रिका तंत्र और शारीरिक विकास पर बुरा प्रभाव डालता है। आरसेनिक युक्त पानी को पीने से चर्म रोग तथा किडनी एवं मूत्राशय कैंसर होने की बहुत भारी संभावना है। कृषि में अधिक मात्रा में आरसेनिक के इस्तेमाल से मिट्टी की गुणवत्ता व फसल की पैदावार में गिरावट आती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार करीबन 4 करोड़ बांग्लादेशियों को आरसेनिक मिलावट की वजह से जान का खतरा हो सकता है।

परंपरागत उपचार रणनीतियां : परंपरागत उपचार में आमतौर पर प्रदूषित स्थानों से दूषित पदार्थों का भौतिक निष्कासन और एक निर्धारित स्थान पर उनका निपटान शामिल है।

भौतिक उपचार रणनीतियां इस समस्या को पूर्ण रूप से समाप्त नहीं कर पाती हैं और केवल इसका स्थानांतरण करती हैं। इसके अतिरिक्त ये रणनीतियां न केवल महंगी है, अपितु पर्यावरण के लिए विघटनकारी हैं व अस्थाई रूप से विभिन्न रसायनों के सम्पर्क में वृद्धि कर सकती हैं और अक्सर अवशिष्ट पदार्थ भी छोड़ सकती हैं।

फाइटोरेमेडिएशन क्या है और यह कैसे काम करता है : फाइटोरेमेडिएशन का अर्थ है - पौधों का उपयोग करके मिट्टी और सतह के जल से प्रदूषक को हटाकर या कम करके वातावरण को शुद्ध करना। इसे पर्यावरण के अनुकूल एक सस्ते, टिकाऊ और प्रभावी विकल्प के रुप में प्रस्तावित किया गया है। पौधे प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा सौर ऊर्जा का प्रयोग करके जड़ों द्वारा मिट्टी से जल व रसायनों को अवशोषित करते हैं। इस प्रकार पौधे प्राकृतिक क्रियाओं द्वारा दूषित पदार्थों को उतनी गहराई तक साफ कर पाते हैं, जितनी गहराई तक इनकी जड़ें पहुंच पाती हैं, जैसे कि :

- प्रदूषकों को जड़, तना या पत्तियों में एकत्र कर लेना।
- उन्हें कम हानिकारक रसायनों में बदल देना।
- उन्हें भाप में परिवर्तित करके हवा में छोड़ देना।
- प्रदूषकों को अपनी जड़ों में सोख लेना, जहां उन्हें मिट्टी में रहने वाले जीवाणु कम हानिकारक रसायनों में तोड़ देते हैं।
- पौधे 'हाइड्रोलिक नियंत्रण' द्वारा दूषित भूजल के प्रवाह को स्वच्छ क्षेत्रों में मिलने से भी रोकते हैं।

फिर इन पौधों को क्षेत्र से हटाकर नष्ट कर दिया जाता है।

एक आर्दश फाइटोरेनेडिएशन में निम्नलिखित प्रमुख गुण होने चाहिएं :

[1]बीज विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

1. प्रदूषक के प्रति सहनशीलता
2. प्रदूषक को तोड़ने या उच्च मात्रा में जैव भार में इकट्ठा करने की क्षमता।
3. व्यापक जड़ प्रणाली
4. भारी मात्रा में मिट्टी से जल को अवशोषित करने की क्षमता।
5. तीव्र विकास दर और उच्च जैव भार स्तर

प्रक्रिया में कितना समय लगता है : एक स्थान को साफ करने में कई वर्ष लग सकते हैं। सफाई समय कई कारकों पर निर्भर करता है, जैसे-

1. प्रदूषक की मात्रा
2. दूषित क्षेत्र की गहराई तथा क्षेत्रफल
3. पौधों का विकास समय और मौसम आदि

उपरोक्त कारक एक स्थान से दूसरे स्थान पर निर्भर होते हैं। पौधों को खराब मौसम, कीट या जानवरों से क्षतिग्रस्त होने पर पुन: प्रत्यारोपित करना पड़ सकता है और सफाई समय को बढ़ा सकता है।

क्या यह सुरक्षित है : यह कम जोखिम वाली और आर्कषक सफाई विधि है। वन्य जीवों को प्रदूषित पौधों को ग्रहण करने से बचाने के लिए बाड़ या अन्य बाधाएं बनाई जा सकती हैं। कुछ मामलों में पौधे हवा में रासायनिक वाष्प छोड़ सकते हैं। फोटो वोलेटिलाइज़ेशन (Photovolatization) एक ऐसी स्थिति में हवा का नमूना लेकर यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि कहीं ये जानलेवा तो नहीं।

फाइटो रेमेडिएशन क्यों उपयोग किया जाना चाहिए : यह पर्यावरण के अनुकूल एक सस्ती, टिकाऊ और प्रभावी सफाई विधि है। क्योंकि यह :

- पौधों की प्राकृतिक क्रियाओं का लाभ उठाता है।
- अन्य सफाई विधियों की तुलना में कम उपकरण व कम श्रम लगता है।
- अधिकांश काम पौधे करते हैं तो यह ऊर्जा को भी बचाता है।
- मिट्टी के कटाव को भी रोकता है।
- स्थान को आर्कषक बनाता है।
- आस-पास की वायु गुणवत्ता में सुधार करता है।

फाइटो रेमेडिएटर पौधों के उदाहरण : सरसों, पोपलर, सूरजमुखी, कैनोला, भारतीय घास आदि प्रमुख उदाहरण हैं।

भविष्य संभावनाएं : पौधों की कुछ प्रजातियां प्रदूषण के प्रति सहनशील होती हैं और प्रदूषित क्षेत्र में जीवित रहने की क्षमता रखती हैं। ऐसी प्रजातियों की पहचान करके लोगों को अवगत करवाने की आवश्यकता है जिनकी बढ़ोत्तरी ज़्यादा हो और जो कम समय में अधिक जैव भार देकर ज़्यादा मात्रा में प्रदूषकों का सफाया कर सकें। [

(पृष्ठ 12 का शेष)

पशु चारा के लिए : धान का भूसा चारे के रूप में उपयोग किया जाता है। धान के भूसे में मवेशियों के लिए पाचन ऊर्जा और आवश्यक पोषक तत्वों की कम मात्रा पाई जाती है। जबकि धान का भूसा अधिक पाचनशील होता है परन्तु जहां तक हो सके ज़मीन के करीब से काटना चाहिए।

बिजली उत्पादन : बिजली उत्पादन एक आर्थिक विकल्प है लेकिन वर्तमान में केवल कुछ ही संयंत्र काम कर रहे हैं जो न के बराबर हैं।

पशुओं के बिछावन के लिए : यह मवेशियों के नीचे बिछाने के लिये काम में लिया जा सकता है। यह जानवरों के मूत्र का शोषण करके इसे नष्ट होने से बचाता है। गोबर व मूत्र के साथ मिश्रित होकर इन्हें खाद के गड्ढे में समान रूप से बिछाने में सहायक होता है। खाद के विच्छेदन में सहायक होते हैं। कार्बन नाइट्रोजन अनुपात स्थिर रखकर नाइट्रोजन को नष्ट होने से बचाते हैं। धान फसल से प्राप्त भूसा और पराली पशुओं के नीचे बिछाली के रूप में बिछाने के लिए सबसे अच्छी सामग्री है। इसकी खाद में पौधे के लिए लगभग सभी पोषक तत्वों का समावेश होता है। इसलिए इनको मृदा में मिलाने से मृदा उर्वरता में वृद्धि होती है। [

फसल अवशेष जलाने से समस्या एवं समाधान

- **मनजीत, जोगिन्दर सिंह मलिक एवं सूबे सिंह**[1]
प्रसार शिक्षा विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय प्रांगण, हिसार

भारतीय आबादी का मुख्य व्यवसाय कृषि और पशुपालन है। इसमें सालाना लगभग 500 मिलियन टन से अधिक फसल अवशेष पैदा होते हैं। इन अवशेषों को मुख्य तौर पर पशुचारे के रूप में उपयोग किया जाता है तथा इसके साथ साथ यह घरेलू और औद्योगिक ईंधन का भी स्रोत हैं। लेकिन हाल ही के वर्षों में मानव श्रम की कमी, परंपरागत तरीकों से फसल अवशेषों को हटाने में कमी और फसलों की कटाई के लिए नवीनतम मशीनों के उपयोग के कारण फसल अवशेषों को जलाने की समस्या बढ़ रही है। उत्तर भारत विशेषत: पंजाब, हरियाणा व उत्तरप्रदेश में चावल, गेहूं, कपास, मक्का, गन्ना और बाजरा की फसलों के अवशेषों का एक बड़ा हिस्सा मुख्य रूप से आगामी फसल की बुवाई के लिए क्षेत्र को साफ करने के लिए खेत में जला दिया जाता है जो आज की बड़ी समस्या बन गया है। फसल अवशेषों को जलाना पर्यावरण प्रदूषण के साथ-साथ मानव-स्वास्थ्य के लिए खतरनाक साबित हो रहा है। दूसरी ओर यह ग्लोबलवार्मिंग को भी बढ़ावा दे रहा है। जिसके कारण ग्रीनहाऊस गैसों का उत्पादन बढ़ रहा है। इसके परिणाम स्वरूप गर्मी की अवधि साल दर साल बढ़ रही है जो सारे विश्व के लिए एक चिंता का विषय बनी हुई है। इसका दूसरा विपरीत प्रभाव मिट्टी के स्वास्थ्य पर पड़ रहा है जिसके कारण मिट्टी में उपलब्ध नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश एवं सल्फर जैसे पोषक तत्वों का नुकसान होता है। मिट्टी के पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने के लिए किसान की उत्पादन लागत में भी वृद्धि हुई है। हाल ही के वर्षों में भारतीय कृषि प्रतिकूल जलवायु का सामना कर रही है क्योंकि सूखे, बाढ़, फसल उत्पादकता में कमी, दिन-प्रतिदिन कीटों एवं बीमारियों के बढ़ते हुए प्रकोप जैसी विभिन्न समस्याएं किसानों की आय में असुरक्षा का कारण बनकर सामने खड़ी हैं। इसके साथ यह एक विरोधाभास है कि फसल अवशेषों का जलाना और चारे की अपर्याप्तता दोनों मुद्दे इस देश में मौजूद हैं। कहीं न कहीं ये दोनों मुद्दे एक दूसरे से जुड़े हुए भी हैं। जिससे हाल ही के वर्षों में देश में चारे की कीमतों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। एक उत्पादक और लाभप्रद तरीके से अवशेषों का प्रबंधन करने के लिए संरक्षण कृषि एक अच्छा अवसर प्रदान करती है। संरक्षण कृषि आधारित प्रौद्योगिकियों को अपनाने के साथ इन अवशेषों का उपयोग मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार, फसल उत्पादकता में वृद्धि, प्रदूषण घटाने और कृषि की स्थिरता और लचीलेपन में वृद्धि के लिए किया जा सकता है ।

फसल अवशेषों को जलाने के मुख्य कारण : श्रमिकों की कमी/अनुपलब्धता, फसल अवशेषों के प्रबन्धन के लिए कटाई के दौरान उच्च मज़दूरी, आगामी फसल की बुवाई के लिए समय की कमी, किसानों में पर्यावरण के बारे में जागरूकता की कमी, विशेष रूप से कटाई के उपयोग में मशीनीकरण का उपयोग बढ़ाना, पशुधन की संख्या घटना, खेत में फसल अवशेष कंपोस्टिंग में लंबी अवधि लेना, आर्थिक रूप से व्यावहारिक वैकल्पिक समाधान की अनुपलब्धता, फसल अवशेष (भूसे) के लिए एक बड़ी परिवहन लागत, भूसे के लिए भंडारण सुविधा की कमी, चावल फसलों के भूसे का कम पौष्टिक मूल्य, फसल अवशेष के लिए बाज़ार की कमी, आदि।

फसल अवशेषों का उपयोग : फसल अवशेषों का उपयोग विभिन्न रूप जैसे पशु चारा, कंपोस्टिंग, बिजली उत्पादन, जैव ईंधन उत्पादन और मशरूम की खेती के लिए किया जा सकता है। इसके अलावा कई अन्य

[1]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

कार्यों छप्पर, चटाई और खिलौना बनाने में भी फसल अवशेषों का उपयोग सदियों से हो रहा है।

1. पशुओं का चारा: भारत में फसल अवशेष पारंपरिक रूप से पशुचारे के रूप में उपयोग किए जाते हैं। हालांकि फसल अवशेष अप्रत्याशित और पाचन में कम होने के कारण पशुधन के लिए एकमात्र राशन नहीं बना सकते हैं। फसल अवशेषों में कम घनत्व वाले रेशेदार पदार्थ होते हैं तथा इनमें नाइट्रोजन कम, घुलनशील कार्बोहाइड्रेट, खनिज और विटामिन अलग-अलग तथा कम मात्रा में होते हैं। जानवरों की पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अवशेषों को यूरिया और गुड़ के साथ प्रसंस्करण की आवश्यकता होती है।

2. खाद बनाने के लिए : परंपरागत रूप से खाद तैयार करने के लिए फसल अवशेषों का उपयोग होता है। इसके लिए फसल अवशेषों का उपयोग जानवरों के बिस्तर के रूप में किया जाता है और फिर गोबर के गड्ढे में ढेर कर दिया जाता है। इस भूसे के प्रत्येक किलोग्राम में लगभग 2-3 किलोग्राम मूत्र अवशोषित होता है जो इसे नत्रजन के साथ समृद्ध करता है। एक हेक्टेयर भूमि से चावल की फसल के अवशेष पोषक तत्वों के रूप में लगभग 3 टन खाद के रूप में पोषक तत्वों के साथ समृद्ध होते हैं, जिसका उपयोग फसल उत्पादकता में वृद्धि के साथ-साथ कृषि की लागत को कम किया जा सकता है। इसके अलावा इसे रोटावेटर की सहायता से मिट्टी में मिलाकर भी खाद के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

3. बायोमेथनेशन : इस प्रक्रिया का उपयोग उच्च गुणवत्ता वाली ईंधन गैस बनाने के लिए किया जा सकता है। इसके साथ इससे उच्च गुणवत्ता वाली खाद भी प्राप्त होती है जिसे खेतों में डालने के लिए उपयोग किया जा सकता है। बायोमास जैसे चावल का भूसा, पशुओं के गोबर को बायोगैस टैंक में डालकर मीथेन गैस का उत्पादन किया जाता है जो कि रसोई घर के लिए एक अच्छा व कम लागत वाला ईंधन है ।

4. उद्योगों में उपयोग : पराली का उपयोग विभिन्न उद्योगों जैसे बिजली उद्योग आदि में ईंधन के रूप किया जा सकता है । पराली के केक बनाकर इसे कोयले के दूसरे विकल्प के रूप में आसानी से प्रयोग में लाया जा सकता है। इसके अलावा पेपर और कार्ड-बोर्ड इंडस्ट्री में तथा सेनेटरी वेयर की पैकिंग के लिए भी पराली का उपयोग किया जा सकता है।

फसल-अवशेष प्रबंधन

1. फसल अवशेष जलाने पर प्रतिबंध : फसल अवशेष जलाने को 1981 के वायु अधिनियम, आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 और विभिन्न उपयुक्त अधिनियमों के तहत एक अपराध के रूप में अधिसूचित किया गया था। इसके अलावा किसी भी दोषी किसानों पर जुर्माना लगाया जाना चाहिए। गांव और ब्लॉक स्तर के प्रशासनिक अधिकारियों को प्रवर्त्तन के लिए इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

2. पहचान और रोकथाम: रिमोट सेंसिंग तकनीक का एक संयोजन - सैटेलाइट इमेजरी का उपयोग- और स्थानीय अधिकारियों उप-मंडल मजिस्ट्रेट, तहसीलदार, ब्लॉक डेवलपमेंट ऑफिसर, पटवारी और गांव स्तरीय श्रमिकों वाली एक टीम का उपयोग वास्तविक जलने वाली फसल अवशेषों की घटनाओं का पता लगाने व रोकने के लिए जाना चाहिए।

3. फसल अवशेष के लिए बाज़ार की स्थापना : धान के भूसे और अन्य फसल अवशेष के वैकल्पिक उपयोग के लिए मार्गों को बढ़ाने के प्रयास किए जाने चाहिएं। मिसाल के तौर पर धान के भूसे में काफी मात्रा में कैलोरीफुल वैल्यू होता है जो इसे बायोमास आधारित बिजली संयंत्रों में ईंधन के रूप में उपायों के लिए उपयुक्त बनाता है। इसी प्रकार इसका उपयोग बायो-ईंधन, कार्बनिक उर्वरकों और कागज़ और गत्ता बनाने वाले उद्योगों में उपयोग किया जा सकता है।

4. जन जागरूकता अभियान : फसल अवशेष जलने से स्वास्थ्य पर पड़ रहे दुष्प्रभाव को उजागर करने के प्रयास किए जाने चाहिएं। यह विषाक्त कणों का अत्यधिक उच्च स्तर का उत्पादन करता है जो आसपास के लोगों के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। इसके अलावा फसल अवशेष के वैकल्पिक उपयोग के बारे में किसानों को सूचित करते हुए विभिन्न प्रिंट-मीडिया, टेलीविज़न शो और रेडियो के माध्यम से अभियानों के अलावा किसान शिविरों, प्रशिक्षण और कार्यशालाओं के माध्यम से भी प्रयास किए जाने चाहिएं।

5. फसल अवशेष प्रबंधन प्रौद्योगिकियों का प्रदर्शन : अधिकांश किसान फसलों की प्रबंधन प्रौद्योगिकी के बारे में नहीं जानते हैं इसलिए सार्वजनिक और निजी एजेंसियों के द्वारा जागरूक करके और नवीनतम तकनीकों के प्रदर्शन के द्वारा किसानों को सिखाने में एक बड़ी भूमिका निभाई जा सकती है। इससे इस मुद्दे को संभालने के लिए किसान के प्रबंधन कौशल और ज्ञान में सुधार होगा।

6. कृषि-उपकरणों पर सब्सिडी : राज्य सरकारों को केंद्र के सहयोग से, यांत्रिक उपकरणों पर सब्सिडी प्रदान करने के लिए योजनाएं शुरू करनी चाहिएं ताकि फसल अवशेषों को मिट्टी में बनाए रखा जा सके जो मिट्टी के स्वास्थ्य को बढ़ाने में मदद करेगी। इसके अलावा जिन-जिन कृषि यंत्रों पर सब्सिडी उपलब्ध हो उसके बारे में किसान को पूर्ण रूप से अवगत कराया जाना चाहिये ताकि वो इन सब्सिडियों का पूरा फायदा उठा सके और अपनी फसल व उनके अवशेषों का सुचारु रूप से प्रबंधन कर सके ।

7. फसल-विविधीकरण : फसल तकनीकों के विविधीकरण पर विभिन्न दीर्घकालिक प्रयास चल रहे हैं जिससे फसल अवशेष जलने को प्रभावी ढंग से रोका जा सकता है। इन्हें वैकल्पिक फसलों की खेती (चावल/धान और गेहूं के अलावा) के माध्यम से कम किया जाना चाहिए जो कम फसल अवशेष उत्पन्न करते हैं और फसल चक्रों के बीच अधिक अंतर अवधि होती है। इसके साथ-साथ किसान को विभिन्न फसल चक्रों के लाभ से भी अवगत कराया जाना चाहिए ताकि वो इन फसल चक्रों को अपनाने का सही निर्णय लेने में सक्षम हो सके।

चावल और गेहूं की फसल अवशेष जलने के कारण प्रदूषण की समस्या को नीति निर्माताओं और विभिन्न अधिकारियों द्वारा ज़्यादा तवज्जो नहीं मिली है। आंशिक रूप से इस तथ्य के कारण हो सकता है कि चावल और गेहूं अवशेषों का जलाना केवल अक्तूबर, नवंबर और दिसंबर के चयनित महीनों के दौरान होता है।लेकिन इन महीनों के दौरान उत्पन्न हुए प्रदूषण के कारण जन स्वास्थ्य के साथ-साथ क्षेत्र-विशेष का पर्यावरण स्तर भी बुरी तरह प्रभावित होता है।

इसलिए फसल अवशेष जलने के मुद्दे से निपटने के लिए कंबाइन हारवेस्टर जैसे फसलों की कटाई में उपयोग की जाने वाली मौजूदा मशीनरी में सुधार की तत्काल आवश्यकता है। जिससे फसल कटाई के साथ-साथ फसल अवशेषों का भी निपटारा हो सके । इसके साथ-साथ सरकार को नवीनतम मशीनरी जैसे कि हैप्पीसीडर, ज़ीरो टिलेज व स्ट्रॉ बाइंडर पर प्रोत्साहन प्रदान करने की आवश्यकता है। इसके अलावा किसानों की सोच व दक्षता निर्माण भी महत्वपूर्ण पहलू है क्योंकि अवशेष जलाने के बारे में किसानों की सोच में बदलाव के बिना प्रौद्योगिकी बहुत मदद नहीं कर सकती। किसानों को प्रदूषण और मानव स्वास्थ्य के बारे में विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम और अन्य मास मीडिया के माध्यम से अवगत कराना चाहिए। सरकार को विभिन्न क्षेत्रों के लिए फसलों के अवशेषों को बेचने के लिए मंच भी प्रदान करने चाहिएं जिससे किसानों की आय को दो गुना करने में मदद मिले तथा यह समस्या समाधान के साथ-साथ किसान के लिए अतिरिक्त आय उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध हो। [

गर्भावस्था के दौरान – क्या न करें

- **सुमित श्योराण, बिमला ढांड़ा एवं कृष्णा दुहन**
मानव विकास और पारिवारिक अध्ययन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गर्भावस्था के दौरान शारीरिक स्वास्थ्य और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य के बारे में खास ख्याल और देखभाल की जानी चाहिए। गर्भावस्था के दौरान आहार का खास ख्याल रखना आवश्यक होता है, जिससे जच्चा-बच्चा दोनों ही हृष्ट-पुष्ट रह सकें। लेकिन गर्भवती महिलाओं के साथ अक्सर ये समस्या रहती है कि वे गर्भावस्था में क्या करें और किन से बचें, क्या खाएं और क्या न खाएं। किन पौष्टिक आहार का सेवन करें और किन आहार के सेवन से गर्भवती को बचना चाहिए। उपर्युक्त समस्याओं के संबंध में विवरण नीचे दिया गया है। उदाहरण के लिए :

- भारी वज़न न उठाएं जैसे कि पानी से भरी बाल्टी, सील बट्टा, भारी कुर्सी, बक्सा इत्यादि।
- बहुत देर तक न खड़े रहें। यदि आपको रसोई में बहुत देर तक खड़ा होना पड़ता है तो चाहे तो वहां एक कुर्सी रख लें।
- सीढ़ियों का प्रयोग कम से कम करें। यदि आप भूतल पर नहीं रहती हैं और मज़बूरी में आपको नीचे जाना पड़ता है तो कोशिश करें कि एक ही बार में अपने सारे काम निपटा लीजिए। इसके लिए एक कार्य सूची बना लेना उचित होगा, सीढ़ियां रेलिंग पकड़ कर ही उतरें।
- बाहरी खाना न लें, खासतौर पर जंक फूड, जैस कि पिज्जा, बर्गर आदि, होटलों, शादी, ब्याह इत्यादि में भी न खाएं। इनकी शुद्धता की गारंटी नहीं होती और आपको संक्रमण हो सकता है।
- तला और मसालेदार न खाएं, इनसे गैस, अम्ला या जलन हो सकती है।
- डॉक्टर की सलाह से ही दवाओं का सेवन करें। यहां तक कि छोटी-मोटी बीमारियों के लिए भी अपने आप दवा न लें।
- गर्भावस्था के दौरान कम से कम यात्रा करें।
- गर्भावस्था के दौरान तनावपूर्ण या डरावने धारावाहिक या फिल्म न देखें।
- ऐसा कोई काम न करें जिसमें आपको अत्यधिक तनाव का सामना करना पड़े।
- इस दौरान तंग कपड़े न पहनें।
- कुछ अध्ययनों में पता चला है कि गर्भावस्था के दौरान मोबाइल फोन का अत्यधिक इस्तेमाल होने वाले बच्चे के लिए हानिकारक हो सकता है।
- अकेले न रहें। यदि अकेले रहती हों तो हमेशा अपने मोबाइल को अपने साथ रखें।
- बाथरूम में खड़े होकर न नहाएं और इस बात की पुष्टि करें कि काई आदि जमने से फिसलने का खतरा न हो।
- धूम्रपान कतई न करें और किसी और को भी अपने करीब धूम्रपान न करने दें। अप्रत्यक्ष धुम्रपान से भी बच्चे को खतरा हो सकता है।
- कैफीन का सेवन न करें।
- कुछ मछलियां जैसे कि ट्यूना मछली, इत्यादि में पारा धातु अधिक मात्रा में होता है, इन्हें न खाएं। इनके सेवन से शिशु के मस्तिष्क का विकास प्रभावित हो सकता है।
- पहले तीन महीनों में इन चीज़ों का सेवन न करें। कच्चा चीज़, कच्चा अण्डा, सलाद ड्रेसिंग, कच्ची मछली और सॉस के रूप में संसाधित

(शेष पृष्ठ 26 पर)

वस्त्रों की सजावट: डिज़ाइन एवं तकनीक

- **ज़ेबा जमाल[1] एवं निशा आर्य**
वस्त्र एवं आवरण सज्जा विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वस्त्रों की सतह को सजाने के लिए कपड़ों पर सुन्दर डिज़ाइन बना कर और रचनात्मक कार्य कर के उन्हें और भी अधिक सुन्दर एवं आकर्षक बनाया जाता है । कपड़े की सतह को सुन्दर बनाने एवं अलंकृत करने के लिए कई तरीकों का उपयोग किया जाता है । इस काम के लिए ज़्यादातर सामान्य चीज़ों को ही इस्तेमाल किया जाता है जैसे लैस, बटन, मोती, सुई, धागा आदि।

परिधानों पर सजावट की तकनीक : फैब्रिक सतह को अलंकृत करने वाली तकनीक इस प्रकार है।

1. कढ़ाई (Embroidery) : वस्त्रों को सुन्दर बनाने के लिए सुई और धागे का प्रयोग करके कढ़ाई करना बहुत पुरानी कला है। इसमें अलग-अलग तरह के सुंदर टांके बनाये जाते हैं। इस हुनर में हमारी गांव की महिलाएं बहुत माहिर होती हैं। यह कला हमारे घरों में पीढ़ियों से चलती आ रही है। कढ़ाई में चार तरह के टांकों का काम होता है जैसे : (1) उठाए गए काम (Embossed Effect), (2) काउच किए गए काम (Couching), (3) भरने के टांके (Filling Stitch), (4) गिने धागे की कढ़ाई (Counting of thread)

2. क्विल्टिंग (Quilting) : क्विल्टिंग मशीन एवं हाथ दोनों से ही की जाती है। इस तकनीक में पुराने एवं न पहनने लायक कपड़ों की परत बनाई जाती है और सबसे ऊपर वाले कपड़े पर सुन्दर डिज़ाइन बना कर धागे से काम किया जाता है। क्विल्टिंग का इस्तेमाल करके बहुत ही सुन्दर चादर, बिस्तर, दुलाई आदि बनाई जाती हैं। अब क्विल्टिंग को और भी आकर्षक बनाने के लिए उसके अंदर कपड़ों के साथ-साथ फोम की भी परत डाली जाने लगी है जिससे की डिज़ाइन में उभार आये और वह आकर्षक लगे।

3. अधिरोपण (Applique work) : एप्लीक में आधार वस्त्र की सीढ़ी तरफ प्रिंट वाले या सादे रंगीन कपड़ों को फूल पत्ती के आकार में सुई धागे से लगाया जाता है। एप्लीक बनाने की डिज़ाइन सबकी अपनी पसंद की होती है। एप्लीक बनाने वाले के हुनर एवं मेहनत का प्रतीक होता है।

4. पैचवर्क (Patchwork) : पैचवर्क का उपयोग ज़्यादातर बिस्तर रजाई और कुशन बनाने के लिए किया जाता है। पुराने कपड़ों के टुकड़ों को अलग-अलग आकार में काट कर जोड़ा जाता है। पैच का आकार बनाने वाले की इच्छा पर निर्भर करता है। ज़्यादातर पैच सरल ज्यामितीय आकारों जैसे चकोर, तिकोना में ही बनाया जाता है क्योंकि इनको जोड़ना आसान होता है।

5. ट्रिमिंग (Trimming) : कपड़ों पर दो प्रकार की सजावट सबसे लोकप्रिय है जैसे :

- *फ्रिंज ट्रिम :* फ्रिंज एक सजावटी कपड़ा ट्रिम है जो वस्त्रों के किनारे पर लगाया जाता है जैसे दुपट्टे के किनारे पर या सजावटी लटकन आदि।
- *सिलाई ट्रिम :* इसे वस्त्रों को सुन्दर बनाने के लिए लगाया जाता है, इनका ज़्यादा इस्तेमाल बटन, रफल एवं उरेब पट्टी में ही किया जाता है।

6. लेसवर्क (Lace work) : लैस में कपड़े को खुले तरीके से बिना जाता है। यह काम मशीन एवं हाथ दोनों तरीकों से किया जाता है। लैस में

[1]शोधार्थी, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

बहुत सुन्दर फूल, पत्ती एवं बूटियां बनाई जाती हैं जो की वस्त्रों की सुंदरता को बढ़ा देती हैं।

7. पाइपिंग (Piping) **:** पाइपिंग एक प्रकार का ट्रिम या अलंकरण है जिसका उपयोग विभिन्न स्टाइल लाइन बनाने के लिए और कपड़ों को अलंकृत करने के लिए किया जाता है। आमतौर पर कपड़े की पट्टी ओरैब पर काटी जाती है और अक्सर इसे गले, आस्तीन, प्रिसेस लाइन, एम्प्रेस लाइन आदि पर लगा कर वस्त्रों को डिज़ाइन किया जाता है।

8. मोती वर्क (Beadwork) **:** मोती एक अन्य प्रकार का अलंकरण है। अलग-अलग तरह की मोतियों को सुई और धागे से कपड़े के ऊपर सुन्दर डिज़ाइनों में लगाया जाता है। मोती लगाते वक़्त मज़बूती का ख़ास ख्याल रखा जाता है जिससे कि बाद में मोती निकल न जाएं।

9. बाटिक (Batik) **:** बाटिक कपड़ों की रंगाई की बहुत पुरानी और लोकप्रिय तकनीक है। बाटिक से डाई किये गए वस्त्र आकर्षक रूप से सुन्दर लगते हैं। बाटिक विधि में गर्म मोम पूरे कपड़े पर लगायी जाती है जिससे कि सारे कपड़े पर डाई का असर न हो एवं अपनी पसंद के हिसाब से कुछ ही जगह को डाई किया जाये।

इन सभी तकनीकों का प्रयोग करके कपड़े को बहुत आसानी से घर पर ही अत्यधिक सुन्दर बनाया जा सकता है। [

(पृष्ठ 25 का शेष)

मांस। इन पदार्थों में कुछ ऐसे जीवाणु होते हैं (जैसे साल्मोनेला, टोक्सोप्लाजमोसिज), जिससे बच्चे में जन्मजात दोष आ सकते हैं।

- अपने पालतू जानवरों के मल से बचें। उनमें हानिकारक परजीवी हो सकते हैं जो भ्रूण के मस्तिष्क को हानि पहुंचा सकता है।
- पहले तीन महीने तेज़ गंध के बीच न जाएं, इससे आपको मितली, उल्टी होने की संभावना कम होगी।
- उछल-कूद बिल्कुल न करें, ऐसी कोई गतिविधि न करें जिसमें गिरने का खतरा हो।
- बिना डाक्टरी सलाह के कोई व्यायाम न करें।
- कम न खायें। आप आमतौर पर जितना खाती हैं, उससे अधिक खायें। आमतौर पर एक शिशु को 300 कैलोरी की आवश्यकता होती है, इसलिए कम से कम इतनी कैलोरी और लें। ये भी ध्यान रखें कि कहीं आप आवश्यकता से अधिक तो नहीं खा रही हैं।
- गरम पानी में भरे स्नान टब में न नहाएं। खासतौर पर पहले महीनों में। इससे शरीर के अन्दर का तापमान बढ़ जाता है, जो बच्चे को बुखार होने जैसा होता है। ऐसा करने से बच्चा जन्म दोष के साथ पैदा हो सकता है।
- प्यासे न रहें। समय-समय पर पानी पीते रहें। इससे रक्त परिसंचरण सही रहेगा। निर्जलित होने पर समय से पहले प्रसव का खतरा होता है।
- पेट के बल न सोएं।
- गर्भावस्था के दौरान एक्स-रे से दूर रहें।

उपयुक्त सुझाव गर्भवती महिला और भ्रूण दोनों की उचित देखभाल करने के लिए नेतृत्व करेंगे और साथ ही इससे किसी भी दुर्घटना से बचने में मदद मिलेगी और सुरक्षित प्रसव होगा। [



एक कदम स्वच्छता की ओर

किसानों की आय दोगुना करने में – आधुनिक कृषि पद्धतियों का योगदान

- **अनिल कुमार मलिक[1], सूबे सिंह एवं सुनील कुमार[1]**
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत में खाद्य समृद्धि के बावजूद किसानों की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। इसके दो प्रमुख कारण हैं : पुरानी पद्धति से कृषि कार्य करना तथा संसाधनों का अभाव। भारत सरकार ने वर्ष 2022 तक किसानों की आय दोगुना करने का लक्ष्य रखा है, जो कि आधुनिक कृषि पद्धति अपनाए बिना संभव नहीं है। किसानों की आय बढ़ाने के लिए उनका रुझान अधिक उपज और समृद्ध खेती, भूमि की अवस्था, उपलब्ध उपकरण, उन्नत तकनीकी और खेत में विगत वर्ष लगी फसल पर निर्भर करता है। कृषि द्वारा अधिकतम आय अर्जित करने के दो ही उपाय हैं। पहला, उत्पादन को बढ़ाएं एवं दूसरा लागत को कम करें। कृषि की प्रत्येक इकाई का सही समय, सही तरीके से उपयोग करके कृषि की लागत को कम किया जा सकता है। इसके साथ बीज, उर्वरक पौध संरक्षण, रसायनों तथा सिंचाई योग्य जल अपव्यय आदि बातों पर ध्यान देकर किसानों की आय को बढ़ाया जा सकता है। निम्नलिखित सुझावों को अपनाकर किसान अपनी आय को बढ़ा सकते हैं तथा अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार ला सकते हैं ।

अच्छे किस्म के गुणवता युक्त बीजों का प्रयोग

अधिक उत्पादन के लिए अच्छे किस्म के बीजों का प्रयोग अति आवश्यक है। कहते हैं जैसा आप बोओगे वैसा पाओगे इसलिए बीज एक ऐसा आदान है, जिसकी समृद्ध कृषि में काफी अहम् भमिका होती है।

बीजोपचार एवं उचित समय पर बुवाई

किसानों को बीजोपचार अवश्य करना चाहिए, ताकि कम लागत में फसल निरोग रहे। इसके अलावा स्थिति के अनुसार (अगेती/पछेती) किस्में अपनाएं ताकि अच्छी पैदावार हो। अच्छे उत्पादन एवं अधिक पौध वृद्धि के लिए पौधों का उचित समय पर बुवाई करना अति आवश्यक है।

आरंभिक जुताई एवं संरक्षण खेती

आरम्भिक जुताई से बीजों का अंकुरण अच्छा होता है। तथा खरपतवार पर भी नियंत्रण होता है। संरक्षण खेती के अंतर्गत शून्य जुताई, (ज़ीरो टिलेज) बुवाई की एक ऐसी विधि है, जिसमें किसान पूरे खेत को नए सिरे से नहीं जोतता है परन्तु फसल कटाई के बाद बिना जुताई किए उसी खेत में बुवाई कर देता है।

बुवाई करने के नये तरीके एवं बीजों की मात्रा

बुवाई के नये तरीके जैसे बीज ड्रील, यांत्रिक ड्रील, कतार में बुआई इत्यादि द्वारा कम समय में ज़्यादा क्षेत्र पर बुआई की जा सकती है। यांत्रिक ड्रील द्वारा एक दिन में औसतन 12 से 15 एकड़ क्षेत्र में बुवाई की जा सकती है। बीजों की मात्रा कृषि विशेषज्ञ द्वारा बताये गये सुझाव के अनुसार ही होनी चहिए जिससे बीज लागत कम होती है एवं उनका विकास अच्छा होता है।

उचित मात्रा में रासायनिक उर्वरक, जैव उर्वरक का प्रयोग

उर्वरकों का प्रयोग उचित मात्रा में करना चहिए, जिससे फसलों का विकास समान रूप से हो तथा अधिक उपज होने के साथ-साथ लागत भी कम होती है। प्राय: कृषक अधिक पैदावार के लालच में ज़्यादा मात्रा में नाईट्रोजनयुक्त उर्वरकों का प्रयोग करते हैं जो वातावरण को बहुत हानि पहुंचाता है। अधिक रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से उत्पादकता पर बहुत

(शेष पृष्ठ 27 पर)

[1]शोधार्थी, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

धान की पराली से जैविक खाद

- **बलजीत सिंह सहारण, जगदीश प्रशाद एवं सरिता रानी**[1]
सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा में अधिकतर किसान धान की पराली को आग लगाकर नष्ट कर देते हैं जिससे प्रदूषण बढ़ता है और ज़मीन के लाभदायक जीव जन्तु भी नष्ट हो जाते हैं। यदि किसान धान की पराली से खाद बनायें और खेतों में दस टन प्रति हैक्टेयर के हिसाब से डालें तो इससे ज़मीन की उर्वरा शक्ति बढ़ेगी और किसान को कम रासायनिक खाद डालनी पड़ेगी। जैविक खाद अपेक्षाकृत स्थिर उत्पाद है जो कार्बनिक पदार्थों के बाद परिणाम देता है। फसल अवशेष और पशु खाद-विघटित खाद में आमतौर पर प्रमुख पोषक तत्वों की मात्रा कम होती है। सामान्य तौर पर, कार्बन कम हो जाता है और अन्य पोषक तत्व जैविक खाद के दौरान केन्द्रित होते हैं।

कम्पोस्टिंग फसल के अवशेषों को एक बेहतर जैविक उर्वरक में परिवर्तित करता है। यद्यपि चावल की खाद में जैविक उर्वरक, नाइट्रोजन और फॉस्फोरस जैसे प्रमुख पोषक तत्व अक्सर कम होते हैं, वे अत्यधिक लाभकारी हो सकते हैं क्योंकि, इनमें सूक्ष्म पोषक तत्व, एंजाइम और सूक्ष्म जीव होते हैं जो अक्सर अकार्बनिक उर्वरकों में पाए जाते हैं। चावल का भूसा पोटैशियम से भरपूर होता है।

बनाने की विधि

अच्छी खाद बनाने के लिए नाइट्रोजन, नमी, सामग्री और प्रचुर मात्रा में सूक्ष्म जीव होने आवश्यक हैं। कंपोस्टिंग सबसे अच्छा है जब साइटों को समतल किया जाता है, अच्छी तरह से सूखा, छाया के नीचे, और जब खाद सामग्री छोटे टुकड़ों (3 से 5 सैं.मी.) में कट जाती है।

यदि संभव हो तो, खाद के ढेर को अनाज की फसल सामग्री (उच्च कार्बन और कम नाइट्रोजन सामग्री) से युक्त परतों में बनाया जाना चाहिए जो फलियां या खाद अपशिष्ट (उच्च नाइट्रोजन सामग्री) के साथ संयुक्त है। 2:1 के अनुपात में मिलाएं (अनाज: फलियां/खाद)। कम्पोस्ट ढेर को नम रखा जाना चाहिए-बहुत गीला नहीं (जैसे, खाद ढेर से निकलने वाला पानी नहीं) और न ही अधिक सूखा। अपघटन में सहायता के लिए, अपने खाद के ढेर को क्षय सामग्री (जैसे गोबर का घोल, गोमूत्र), नाइट्रोजन उर्वरक (जैसे यूरिया) और/या सूक्ष्म जीव के साथ छिड़कें। ऐसे योजक वांछनीय है क्योंकि उनमें नाइट्रोजन और/या सूक्ष्म जीव होते हैं जो अपघटन में सहायता करते हैं। कई किसान पका कम्पोस्ट ही निर्माण करते हैं और फिर उन्हें बस खड़े होने देते हैं, लेकिन हर दो सप्ताह में ढेर को मिलाना और मोड़ना सबसे अच्छा है। जब नमी और तापमान की स्थिति अच्छी होगी, तो खाद 4-8 सप्ताह में तैयार हो जायेगी।

खाद के फायदे

खाद में सूक्ष्म पोषक तत्वों और सूक्ष्मजीवों की एक शृंखला होती है जो फसल के विकास और मिट्टी के स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद होते हैं, और आमतौर पर अकार्बनिक उर्वरकों में निहित नहीं होते। कम्पोस्टिंग पोषक तत्वों को केन्द्रित करता है। खाद में पोषक तत्व धीरे-धीरे जारी होते हैं और लीचिंग द्वारा खो जाने की संभावना कम होती है। कम्पोस्टिंग (55° सैं.ग्रे. से ऊपर) में उत्पन्न उच्च तापमान, रोग जनकों के स्तर को कम रखते हैं और खाद सामग्री में निहित खरपतवार बीजों की व्यवहार्यता को कम करते हैं। एक बार जब खाद उपयोग के लिए तैयार हो जाती है, तो इसे संभालना आसान है (यह काफी स्थिर है और इसमें बहुत कम गंध होती है)। जैविक कचरे खेतों में व्यापक रूप से उपलब्ध हैं। मृदा जल का संरक्षण अधिक होता है। पौधों की जड़ों के लिए उचित वातावरण बनता है और इनकी वृद्धि भी बहुत अच्छी होती है। यह प्रक्रिया प्रदूषण रहित भी होती है। कम्पोस्ट खाद की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए रॉक फॉस्फेट डालकर इसकी फॉस्फोरस युक्त कम्पोस्ट भी तैयार की जा सकती है। इसके प्रयोग से जैविक पदार्थ की मात्रा भी बढ़ जाती है।

खाद की सीमाएं

जैविक कचरे को एकत्र करना और जमा करना, खाद के ढेर को बदलना और खेत में खाद फैलाने के लिए बहुत अधिक श्रम की आवश्यकता हो सकती है। किसानों को उच्च पैदावार प्राप्त करने के लिए पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त करने के लिए बहुत अधिक खाद डालने की आवश्यकता हो सकती है। अधिक उपज देने वाली फसलों के लिए, अकार्बनिक उर्वरकों की आवश्यकता आमतौर पर खाद के रूप में होती है। आमतौर पर कम्पोस्ट में केवल 1/20वीं से 1/30वीं आम अकार्बनिक उर्वरकों की नाइट्रोजन होती है।

खाद के सभी पोषक तत्व आवेदन के वर्ष के दौरान फसलों के लिए उपलब्ध नहीं होता हैं। [

(पृष्ठ 26 का शेष)

ही बुरा प्रभाव पड़ता है, इसलिए अब किसानों को अधिक जैविक उर्वरकों जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, केंचुआ खाद, इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए जिससे मृदा की उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

उन्नत सिंचाई का प्रयोग

फव्वारा सिंचाई, टपका सिंचाई इत्यादि विधियों का प्रयोग करके किसान समय, श्रम एवं पानी की बचत कर सकता है। सीमित जल की उपलब्धता के तहत वैकल्पिक फसल प्रणाली का प्रयोग करना हमेशा लाभदायक रहता है।

समेकित खेती प्रणाली

किसान कृषि के साथ-साथ डेयरी, मत्स्यपालन, वानिकी, मुर्गीपालन रेशम उत्पादन इत्यादि को अपनाकर अतिरिक्त आय अर्जित कर सकते हैं।

कटाई, छंटाई एवं भण्डारण

उचित समय पर फसलों की कटाई करके किसान अधिक मूल्य अर्जित कर सकते हैं क्योंकि सही समय पर कटी फसल सही तरीके से पक जाती है तथा उसको सुखाने, संरक्षित करने का खर्च भी बच जाता है। उत्पाद को अलग- अलग श्रेणियों में छांटकर बेचना लाभदायक होता है। कई बार अनुचित भंडारण के कारण फलस्वरूप् अच्छा मूल्य नहीं मिलता। अत: कृषि उत्पादों की समुचित भंडारण की व्यवस्था आज की ज़रूरत बन गई है।

प्रसंस्करण

स्वयं सहायता समूह, उत्पादक समूह, कृषक समूह आदि बनाकर किसान भाई स्वयं अपने उत्पादों का प्रसंस्करण कर सकते हैं। प्रसंस्करण से न केवल कृषि उत्पादों की आयु बढ़ती है बल्कि उत्पाद के मूल्य में भी वृद्धि होती है।

फसल बीमा योजना

फसल बीमा योजना एक अति महत्वपूर्ण योजना है जिसको अपनाकर किसान प्राकृतिक आपदाओं से होने वाले नुकसानों की भरपाई कर सकते हैं। साथ ही अपनी आमदनी को सुरक्षित कर सकते हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त नई तकनीकियों को अपनाकर किसान अधिक से अधिक आय प्राप्त कर सकते हैं। साथ ही कृषि आधारित व्यवसायों को स्थापित कर ग्रामीण परिवेश में रोज़गार का सृजन भी कर सकते हैं। [

[1]सस्य विज्ञान विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

तिल – शरीर सृजनहार

- नीता कुमारी, संगीता सी. सिंधु एवं प्रदीप कुमार चहल[1]
खाद्य एवं पोषण विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

तिल *पेडालियेसी* परिवार का प्रमुख सदस्य है। आयुर्वेद में तेल का प्रमुख एवं श्रेष्ठ स्रोत तिल माना गया है। तिल से ही तेल बना है। शरीर एवं मस्तिष्क, हृदय एवं नाड़ी को बल प्रदान करने वाला होता है - तिल। इसके तेल में पॉली तथा अनसेचुरेटेड फैटी एसिड अधिक होते हैं जो रक्त कोलेस्ट्रोल एवं बीटा लाइपोप्रोटीन पर नियन्त्रण रखते हैं। तिल मूत्राशय एवं प्रजनन अंग के स्वास्थ्य संरक्षण तथा उनके विभिन्न रोगों को दूर करने में उपयोगी है। काला तिल जिसे रामतिल भी कहा जाता है, इसमें लोहा सर्वाधिक 56.6 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम होता है। इसलिए यह रक्तहीनता के रोगी के लिऐ बेहद उपयोगी है। इसको भून कर अथवा अंकुरित कर गुड़ के साथ भी खा सकते हैं। लड्डू भी बनाकर खा सकते हैं।

तिल में लेसिचिन, लोहा विटामिन 'ई', 'बी' तथा 'सी', संपूर्ण प्रोटीन एमिनो एसिड, उत्तम किस्म का फॉस्फोरस पर्याप्त मात्रा में होता है। इस दृष्टि से यह स्नायविक रोग, रक्तहीनता, स्मरण शक्ति ह्रास, हृदय रोग, उच्च रक्तचाप के लिये अति उपयोगी है। पोषण एवं रोग निवारण की दृष्टि से तिल का अंकुरण ही श्रेष्ठ है। सफेद तिल में फास्फोरस-575 मिलीग्राम तथा 100 किलोग्राम अत्यधिक होने से यह स्नायु-संस्थान, लकवा ग्रस्त रोगियों तथा विकासशील बच्चों के लिये श्रेष्ठ आहार है। यह स्नायु-कोशिकाओं के निर्माण में सहयोग करता है। इसमें अच्छे किस्म का प्रोटीन भी मिलता है। उदरशूल की स्थिति में 15 ग्राम तिल को खूब चबा चबा कर खायें। तिलों को पीस कर गर्म कर गोला बनायें। उदरशूल पर रखें तो आराम मिलता है।

मूत्र प्रदाह, सूजन तथा पेशाब में पस सेल्स आने की स्थिति में 15 ग्राम तिल तथा 15 ग्राम देशी खांड को पीसकर सोयाबीन या गाय के कच्चे दूध के साथ खायें, फायदा मिलेगा। 35 ग्राम पुष्ट तिल को 12 घंटे पानी में भिगोकर पुन: उसे 12 घंटे गीले कपड़े में बांधें। अंकुरित होने पर पीस कर या चबा कर खाने से मस्से तथा रक्तार्श, रक्तहीनता, प्रसव वेदना, दृष्टि दोष, पथरी आदि रोग ठीक होते हैं। काले तिल को भून कर गुड़ के साथ लड्डू बनायें। प्रतिदिन दो लड्डू खाने से दांत के रोग, बहुमूत्र, वात रोग रक्तहीनता, वीर्यपात, प्रमेह, गले की सूजन आदि रोग ठीक होते हैं। 100 ग्राम तिल, 15 ग्राम अजवाइन तथा 50 ग्राम गुड़ मिलाकर 10 लड्डू बनायें। प्रतिदिन रात्रि को 1-2 लड्डू खाने से प्रमेह, प्रोस्टेट जन्य, विकार, बहुमूत्र, बिस्तर पर पेशाब करना आदि मूत्र सम्बन्धी रोग ठीक होते हैं।

यह उत्तम पौष्टिक आहार है। इसमें शरीर स्वस्थ एवं शक्तिशाली बनता है। इसके चूर्ण को मक्खन के साथ खाने से अर्श ठीक होता है और तिल के पत्तों की पीसकर जीर्ण भयंकर फोड़े पर बांधें तो आराम मिलता है। इसके पत्तों से सिर के बालों को धोने से बाल चमकीले, स्वस्थ एवं घने होते हैं। तिल के पौधों में विशेष प्रकार की रोगाणुनाशक गंध होती है। इसके पौधों के पत्ते को बिस्तर के नीचे रखने से खटमल समाप्त होते हैं।

माँ का दूध बढ़ाने के लिए, माहवारी चक्र को ठीक करने के लिए, मंदाग्नि कोष्ठबद्धता, स्नायविक कमज़ोरी, कोध्र, उत्तेजना, अनिद्रा, स्मरण शक्ति ह्रास की स्थिति में तिल का भरपूर प्रयोग करें। शाव प्रकाश निघंटु के अनुसार तिल कटु, स्वादिष्ट, कफ-पित्तनाशक, बल्य, व्रण, त्वचा व बालों के लिये, स्पर्श में शीतल, दुग्धवर्धक, दांतों के विकार को दूर करने वाला तथा बुद्धि बढ़ाने वाला होता है। सफेद तथा अन्य तिलों की अपेक्षा काला तिल सर्वश्रेष्ठ है। [

[1]विस्तार शिक्षा विभाग, कृषि महाविद्यालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

पॉली हाऊस लगायें – आमदनी बढायें

- जगत सिंह, मीना सिवाच एवं विजयपाल पंघाल[1]
कृषि विज्ञान केन्द्र, रोहतक
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

पॉली हाऊस वह आकृति है जो बाँस या लोहे के बने ढाँचे पर विशेष प्रकार की पॉलीथीन शीट ढककर बनाई जाती है। इनको बनाने में आने वाली लागत तथा वातावरण पर नियन्त्रण की सुविधा के आधार पर पॉली हाऊस तीन प्रकार के होते हैं :

कम लागत वाले साधारण पॉली हाऊस

इनमें वातावरण को नियन्त्रित करने के लिये किसी यन्त्र का प्रयोग नहीं किया जाता है।

मध्यम लागत वाले पॉली हाऊस

इनमें तापमान को नियन्त्रित करने के लिये साधारण यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है।

अधिक लागत वाले अति तकनीकी पॉली हाऊस

इनमें वातवरण (तापमान, प्रकाश, आर्द्रता व वायु संचालन) स्व-नियन्त्रित होता है। इसके लिये अति आधुनिक तकनीक का प्रयोग किया जाता है। ढांचे की बनावट के आधार पर पॉली हाऊस कई प्रकार के होते हैं। जैसे - झोंपड़ीनुमा, गुफानुमा, गुम्बदाकार आदि।

सब्जियों का चुनाव

बे-मौसमी उत्पादन के लिये वही सब्जियां उपयुक्त होती हैं जिनकी बाज़ार में मांग अधिक हो और वे अधिक भाव पर बिक सकें। इन सब्जी फसलों में टमाटर, खीरा, शिमला मिर्च आदि प्रमुख हैं। इनमें बे मौसमी नर्सरी भी तैयार की जा सकती है। पॉलीहाऊस में उगाई गई फसलों की गुणवत्ता भी अच्छी होती है। पॉली हाऊस से फसलों को अधिक वर्षा से होने वाले, नुकसान से भी बचाया जा सकता है। मई-जून के महीनों में पॉलीहाऊस में कोई फसल न उगायें तथा इस दौरान मिट्टी का सौर ऊर्जा से उपचार करें। पॉलीहाऊस में फसलों की बे मौसमी पौध/नर्सरी तैयार करके बाहर खेत में अगेती पैदावार लेकर अधिक कमाई की जा सकती है।

सस्य क्रियाएं एवं देखभाल

खुले खेत में अपनाई जाने वाली सभी सस्य क्रियाएं पॉलीहाऊस के अन्दर अपनाई जाती हैं। गोबर की खाद (14 टन प्रति एकड़) का भरपूर उपयोग किया जाना चाहिए। प्रति इकाई क्षेत्रफल में पौधों की संख्या बढ़ाकर पौधों की छंटाई व ट्रेनिंग द्वारा बेलवाली सब्जी फसलों से अधिक उत्पादन लिया जा सकता है। पॉलीहाऊस में टपका सिंचाई विधि के साथ पलवार (मल्च) का प्रयोग करके कम पानी से अधिक पैदावार लेकर अधिक लाभ कमाया जा सकता है। पॉली हाऊस के अन्दर 1.0 मी. चौड़ी व 0.15 मी. ऊंची बैड बनाई जाती है जिनकी लम्बाई आवश्यकतानुसार रखी जाती है। बैड से बैड की दूरी 70 सैं.मी. से कम नहीं होनी चाहिए। एक बैड पर 60 सैं.मी. की दूरी पर दो लाईन बनाई जाती हैं। लाईन में पौधों के बीच की दूरी 50 सैं.मी. होनी चाहिए। [

[1]सब्जी विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

Wheat Diseases and their Management

- **Rajender Singh and H. S. Saharan**
Department of Plant Pathology
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Wheat is an important food grain crop of rabi season in Haryana. For good crop harvest, quality seed, application of balance fertilizers, irrigations and other plant protection measure are pre-requisite. Wheat suffers from a number of diseases like rusts, smuts, bunts and powdery mildew, etc. Hence, it is essential to know about disease symptoms and their management.

1. Loose smut : It occurs throughout the state in almost all commercially grown wheat varieties and causes yield losses. The disease is noticed at or after ear emergence when black powdery ear heads appear from infected plants. In smutted spikes, all the spikelets are filled with black powdery mass of spores. The spores from diseased ears are blown away by the wind and cause infection at the anthesis stage of the crop to the developing grains in the healthy ear heads and pathogen gets established in the embryo of seed. Such internally infected seed apparently looks healthy serves as a source of inoculums for the disease during next crop season. It has been observed that at boot stage the flag leaf of infected tillers shows characteristic yellowing or tip drying which always starts from the top. The flag leaf yellowing or tip drying of infected tillers can easily be recognized in the field from a distance and such tillers/plants can be rouged out to control the secondary spread of the disease. Loose smut can be managed by following ways :

- Treat the seed with systemic fungicides i.e. Tebuconazole 2DS @ 1 g/kg or carboxin or carbendazim @ 2 g/km seed.
- Rogue out the diseased plants as soon as observed and destroy them by burning or burying in the soil.
- *Durum* wheat varieties viz., WH 896 and WH 912 are resistant to loose smut.

2. Flag smut : The disease is more pronounced in light and sandy soils of Bhiwani, M.Garh, Rewari, Hisar, Sirsa, Rohtak and Ambala (Naraingarh tehsil) districts of the state. The disease can cause heavy losses if susceptible varieties are taken in the infested fields year after year continuously.

Symptoms of the disease are produced on leaf, leaf sheath, culms and ear heads but leaf and leaf sheath are more commonly affected. Long narrow lead gray or black streaks or stripes running parallel to the veins are formed on leaf and other affected plant parts. These stripes are initially covered with epidermis which later ruptures and expose black sooty mass of the fungus spores. The affected leaves become twisted and drooping (flagged). Later, the shredding of diseased leaves also takes place. The spikes emerged on the affected tillers remain sterile bearing no grains and if grains formed they are shrivelled with very poor viability. The pathogen can survive in soil and disease plant debris for many years. This disease can be managed by following ways :

- Seed treatment with Tebuconazole 2DS @ 1g/kg or carboxin or carbendazim @ 2g/km seed.
- Rogue out diseased plants and destroy by burning.
- Grow resistant varieties viz., WH 283 and WH 896 in infested fields year after year.

3. Karnal bunt : The disease has international importance and strict quarantine has been imposed by countries where it is not known. Its permissible limit at international level is zero per cent.

Karnal bunt disease in the wheat seeds/ grains is observed only after threshing of the wheat crop and there is no symptom of the disease in the standing crop. The disease grains are generally, partially or sometime wholly converted into black powdery mass enclosed by pericarps of the seed. Freshly harvested diseased grains emit fishy rotten smell. During threshing the pericarp of the diseased grain is ruptured and the exposed fungus spores stick to the surface of the healthy seeds which helps in build up of disease inoculums in the field. The flour prepared from seed lot having more than five per cent bunted grains imparts fishy odour, blackish colour of flour and makes it unfit for human consumption. The pathogen is seed as well as soil borne and infection takes place at anthesis stage of the crop by secondary sporidia through wind currents. The disease can be managed by following ways:

- Seed treatment with Tebuconazole 2DS @ 1g/kg seed or thiram @ 2g/kg seed for seed borne inoculum.
- Avoid cultivation of highly susceptible varieties like WH 147, PBW 343 and HD 2329 in disease prone areas or infested fields.
- Grow resistant / tolerant varieties i.e. WH 283, Raj 3765, PBW 502, WH 896 and WH 912.
- Follow 2-3 years crop rotation with non-host crop.
- Seed production programme should be taken in less disease prone areas.

4. Brown or leaf rust : Brown coloured lesions or pustules are formed on leaf and leaf sheath. The pustules are scattered throughout the leaf areas. The disease is generally observed in the second

fortnight of February or 1st week of March. Disease intensity increases with growth stages of the crop. Grains are usually light and shrivelled depending on disease severity. Brown rust can be managed by the following ways :

- Grow resistant tolerant like WH 1184, WH 1105, WH 896, WH 912, RAJ 3765, WH 283, WH 1142 and WH 1124.
- Spray mancozeb or zineb @ 2kg per ha on the first appearance of disease symptoms and repeat 2-3 sprays at 10-15 days interval.

5. Yellow or stripe rust : Disease is recognized by the presence of linear chains of yellow rust pustules formed on leaf. The yellow rust causes server losses if it appears in early seedling stage of the crop. In severe attack yellow pustules are formed on glumes of ear heads and even on the awns. Disease usually appears during the month of January when average temperature is between 11-15° C. The yellow rust can be managed by following ways:

- Grow resistant varieties like WH 1184, WH 1105, WH 1142, WH 1124, WH 283 WH 896, WH 912 and Raj 3765.
- Spray mancozeb or zineb @ 2 kg/ha at the appearance of the disease symptoms and repeat 2-3 sprays at an interval of 10-15 days or spray of propiconazole @1ml/litre of water or 200 ml in 200 litres of water per acre on just appearance of diseased symptoms.

6. Powdery mildew : Scattered masses of powder like symptoms appear on the leaf. The disease progresses from lower leaves to upper leaves. Leaf dries in severe attack and even the development of ear heads is adversely affected and grains formed are shrivelled and lighter in weight. The disease is more common in irrigated areas, namely, Ambala, Karnal, Kaithal, Kurukshetra and Yamunanagar districts of the state because of the high humidity. Powdery mildew can be effectively managed by following ways:

- Grow resistant/tolerant varieties viz. WH 283, WH 542, WH 896 and WH 912.
- Spray of soluble sulphur @ 2-2.25kg/ha in 400-500 litres of on appearance of diseased symptoms.
- Avoid late sowing of timely sown varieties. [



Happy Seeder : Operating Instructions

- **Pooja Rani, Sube Singh[1] and Anil Saroha[2]**
Krishi Vigyan Kendra, Hisar
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

To sow wheat in time, the burning of rice residues is a common practice in North India, specially in Punjab, Haryana, Delhi and Uttar Pardesh. This burning decreases soil fertility and is harmful to humans, animals and the environment. With the combustion of rice residues, harmful gases are produced which create very dangerous situations for our environment. From the whole amount of nutrients absorbed from soil, 25% nitrogen and phosphorus, 50% sulphur and 75% potash is preserved in roots, stems and leaves of plant, hence, the crop residues are storehouse of nutrients. If these residues get incorporated in soil, they can improve soil fertility. Thus, an approach of in-situ residue management is the best in terms of soil health management and environment protection.

Happy Seeder is the most effective tool for sowing wheat in rice residues without burning and is capable of drilling wheat seeds directly into the fields with residual surface retention and without any soil disturbance. This technology is eco-friendly and also saves water.

Key Features of Turbo Happy Seeder :

- Possibility of sowing wheat crop just after rice harvesting i.e. option for long duration wheat and rice varieties.
- Possibility of sowing wheat in the residual moisture i.e. saving of one irrigation.
- Timely sowing of wheat even after long duration basmati rice varieties.
- Crop residue helps in moisture and temperature conservation.
- Improved soil health.
- Environment friendly technology to check air pollution.

However, one of the major constraints in the large-scale adoption of this technology is the lack of skills or knowledge about the operation, calibration and maintenance of the machinery. There are different field situation specific adjustments needed before using the machine in the field. These adjustments include sowing depth, fertilizer rate and seeding rate, etc., depending on crop and field conditions to realize the potential benefits of the technology. So, some operating notes are there which will be helpful for farmers.

Operating Instructions for Turbo Happy Seeder :

There are some instructions to ensure before, during and after use of happy seeder for proper functioning of machinery :

[1]Direcorate of Extension Education, CCSHAU, Hisar
[2]Dept. of Farm Machinery & Power Engineering, CCSHAU, Hisar

Before Wheat Sowing :

- The field should be properly levelled before transplanting rice crop.
- Distribute the free residues evenly over the residues anchored across the field so that the tailings load becomes uniform across the field.
- In the early morning, wet residues (due to moisture from the atmosphere and soil surface) tend to clog the machine. Therefore, the happy seeder can be used after sufficient evaporation of the residue moisture.
- Ensure that the moisture content of the soil at planting time is optimal and uniform in order to have a uniform crop. The moisture content of the soil is critical to machine operation, as excessive soil moisture can uproot anchored residues, then obstruct the machine and low soil moisture affects the germination of wheat.
- Check the condition of the drill and make the necessary adjustments or repairs. In particular, fasteners, blade bolts and welds before operating. Replace broken or worn parts.
- Select the appropriate row spacing, seed quantity and depth based on field and crop.
- Add the seed to the seed box. Do not fill the seed box more than three-quarters to avoid buckling of the seed box.
- Do not mix the fertilizer with seeds when sowing, as this will damage the seed metering device. Make sure the fertilizer is free of clumps.

During Wheat Sowing Operation :

- Use a double-clutch tractor to operate the machine in the field. Tractors of 45-55 hp are enough to operate a 9 to 12 tyne happy seeder. Use the double clutch lever to reduce the forward speed of the tractor to eliminate occasional accumulations of residue during machine operation.
- Engage the tractor PTO gear, set the tractor engine to 1800-2000 rpm and operate the tractor at 1st low gear or 2nd low gear depending on the residual load on the ground.
- Ensure optimal depth of planting by adjusting the depth control wheel. Raise a happy seeder while turning on the headland without disengaging the PTO. Adjust the top link of the machine to keep the machine upright during field operation.

After Wheat Sowing Operation :

- Cleaning of machine parts must be done after use, i.e. The seed box, fertilizer box, dosing mechanism, seed tubes, furrows, window drums, ground wheels, etc. should be cleaned and washed at the end of the season.
- After drying the planter, grease all bearings, points, chain and sprockets.
- Store the planter in a cool and dry place. [

Quality Seed to Raise Socio-economic Standard of Farmers

- **Sunil Kumar, Anil Kumar Malik[1] and S. S. Jakhar**
Department of Plant Pathology
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

The new agricultural technology introduced during the mid-sixties helped our country to achieve self-sufficiency in food grain production. Considering the study up-trend in the growth of population self sufficiency in the production of food grains and edible oils is not a small achievement. It would not be an exaggeration to say that the green revolution in the country emerged from new seeds. Seed is a vital Input and a dynamic instrument for increasing agricultural production. Farmers in India have known the value of good seed since time immemorial and have been contributing for the improvement of seeds through the process of selection and cultivation. Quality seed production is a specialized activity and the farmer's custom of retaining a portion of crop production as seed cannot act as a substitute for quality seed. Since the practice generally lacks the expertise to segregate seeds of genetic vigour and it is unable to avoid poor germination.

Seed quality describes the potential performance of a seed lot. Trueness to variety; the presence of inert matter, seed of other crops, or weed seed; germination percentage; vigor; appearance; and freedom from disease are important aspects of seed quality. High-quality seed lots should meet minimum standards for each of these characteristics. The standards of official certification agencies are usually accepted as the minimum requirements for high-quality seed.

The need for quality seed have been recognized by the Government of India long ago and several Research Stations have been set up under the Indian Council of Agricultural Research (ICAR) for the improvement of seed quality. Apart from this, State Agricultural Universities have also undertaken breeding programmes for achieving the crop improvement of all major crops grown in their respective areas of operation. The National Seeds Corporation (NSC) was set up in 1963 to produce foundation seeds of prominent crops and the organization has over the years risen to the role of leader in the country in developing the seed industry on a large scale. The Seed Act was legislated in 1966 to maintain the purity of seed and to regulate the quality of seeds sold in the market for commercial cultivation. In 1976, the National Seed project (NSP) was launched and the seed production process was decentralized. State Seed Corporations have been set up under the NSP in the respective state for the multiplication and distribution of certified seeds. Many private

companies, national as well as multinational, have also taken up seed development, multiplication and distribution programmes all over the country.

Despite many progressive steps taken by the Government and the private organizations, the production and distribution aspect aspects of quality seed has been far from satisfactory and has been resulted in a supply gap of seed in the country. This inability of seed industry to supply quality seeds in proportion to the demand has resulted in the proliferation of spurious seeds. There are instances of supplying commercial grain as seed by the merchants in Haryana leading to huge economic losses to the farmers resulting in suicide and deaths of the many farmers.

There is necessity in the country to go for demanded projections for various seeds. An estimation of demand for seeds of different crops is a complex exercise at the best because of the unpredictable deviations in the farmers' preferences for crops each year. The farmers' seed demand have been observed to vary sharply following their crop selection which in turn is governed by many factors.

Benefits of Using Quality Seeds :

- They are genetically pure (true to type)
- The good quality seed has high return per unit area as the genetic potentiality of the crop can be fully exploited
- Less infestation of land with weed seed/other crop seeds
- Less disease and insect problem
- Minimization of seed/seedling rate i.e., fast and uniform emergence of seedling
- They are vigorous, free from pests and disease
- They can be adopted themselves for extreme climatic condition and cropping system of the location
- The quality seed respond well to the applied fertilizers and nutrients
- Uniform in plant population and maturity
- Crop raised with quality seed are aesthetically pleasing
- Good seed prolongs life of a variety
- Yield prediction is very easy
- Handling in post-harvest operation will be easy
- Preparations of finished products are also better
- High produce value and their marketability

Taking all these things into consideration, the Government should revitalize its machinery to estimate the demand projections and to produce and supply the good seeds of various crops to the farmers at right time, at his door step at reasonable prices. It should have a thorough and strict check over the production of quality seeds by the private agencies and sale of the same by the dealers to the farmers. If this is done, the farmers' problems will be solved to a great extent and no doubt, it can improve farmers' social-economic life. [

Quality Seed Production of Wheat

- **Y. P. S. Solanki, Meena Siwach and Jagat Singh**
Krishi Vigyan Kendra, Rohtak
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Quality seed has been recognised as one of the vital inputs in increasing the agricultural production. Experiments have shown that 10-15% yield of wheat can be increased only by using the quality seed. But the farmers face a lot of difficulties in getting quality seed every year. Either they do not get desired quantity of seed or they have to spend a lot of time and money for procuring such seed. Therefore, all the farmers are unable to procure it. If a farmer takes some care, he can avoid both these problems to a large extent by producing quality seed of a variety himself. Wheat is a self-pollinated crop and it is very easy to maintain its purity. Once the certified seed is purchased by the farmer from certifying agencies like Agricultural Universities, Seeds Development corporations and National Seeds Corporations, etc., the farmer can maintain it for a number of years without an appreciable decrease in its genetic purity and potentiality.

The quality seed should meet the following requirements : purity of seed (not less than 98%); Inert material (not more than 2%); other crops seed (not more than 0.10%); weed seeds (not more than 0.10%); objectionable weeds (not more than 5%); germination (not less than 85%); moisture (not more than 12%).

The main points for producing quality seeds are: u Grow the certified seed in a good fertile field where irrigation facilities are available and it is free from weeds and other crop plants : u Before sowing, the seed should be treated with Vitavax/Bavistin @ 2g per kg of seed to insure the control of loose smut, u The sowing should be done at normal time and in lines, u The seed rate should be reduced to facilitate the proper roguing, u The application of irrigation and fertilizers according to package of practices is essential to harvest good yield and well filled grains, u The hoeing and weeding should be done well in time. If some weeds like Hiran Khuri and Phalaris minor are present in the crop, they should be removed before maturity, u The off-type plants should be removed as and when noticed, u The smutted plants should be removed carefully and burried in the soil much away from the field, u If the field, which is selected for producing seed is not having wheat crop on either side, the whole field should be harvested. But if the field is surrounded by other wheat variety, then a strip of three meter from all sides of the field should be harvested separately. The remaining crop should be harvested and threshed separately in a well cleaned thresher, u After threshing, small, broken and shriveled seeds should be separated with the help of a sieve. The bold seeds should be dried well before storing in the bins, and u For storing celphos may be used to avoid the attack of weevilsm etc. [

हरियाणा खेती एवं अन्य प्रकाशनों में विज्ञापन हेतु विज्ञापन दरें

पृष्ठ	साधारण (रु०)	छः या छः माह से अधिक समय के लिए विज्ञापन दर (रु०)	रंगीन विज्ञापन दर (रु०)
चौथा कवर पृष्ठ	2500/–	2400/–	6000/–
दूसरा कवर पृष्ठ	2400/–	2300/–	5800/–
तीसरा कवर पृष्ठ	2300/–	2200/–	5500/–
साधारण पृष्ठ	2000/–	1900/–	4700/–
आधा पृष्ठ	1200/–	1100/–	–

लिफाफे का मुख पृष्ठ	–	आकार 9 सैं.मी. × 11 सैं.मी.	4000/–
पिछला पृष्ठ	–	आकार 18 सैं.मी. × 22 सैं.मी.	4000/–

जी.एस.टी. - विश्वविद्यालय के नियमों के अनुसार।

विज्ञापन देने हेतु निम्न पते पर संपर्क करें :

प्रकाशन अनुभाग

गांधी भवन

चौ. च. सिं. हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय

हिसार (हरियाणा)

फोन : 01662-255234